श्रीः ।

हारीतसंहिता.

श्रीमदात्रेयमहर्षिहारीतमुनिसंवादरूपा ।

(वैद्यकग्रन्थः)

वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्रिणानु-
वादितया भाषाव्याख्यया समन्विता ।

सेयं

फरुखनगरानिवासिना प्रसिद्धराजवैद्येन पण्डितमुरलीधर-
शर्मणा संशोधिता ।

खेमराज श्रीकृष्णदास, इत्यनेन

मुम्बय्यां

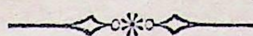
स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" मुद्रणालये

मुद्रयित्वा प्रकाशिता ।

शके १८२७ संवत् १९६२.

Printed at the "Shri Venkateshwar" Steam Press, Bombay.

प्रस्तावना.



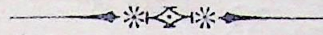
सर्व महाशय विद्वज्जनोंको विदित हो कि, इस अनाद्यनंत संसारमें प्रथम सुख निरोगी काया कहाती है. वह शारीरक आरोग्यता जिस साधनसे कीजाती है, उसको वैद्यकशास्त्र कहते हैं. इसीकोही आयुर्वेदभी कहते हैं. यह आयुर्वेद ऋग्वेदका उपवेद है. प्रमाण--"**ऋग्वेदादायुर्वेदं,--यजुर्वेदाद्धनुर्वेदम्**"इत्यादिक हैं इस आयुर्वेदके ऊपर अनेक ऋषियोंने स्वस्वानुभवके साथ पृथक्पृथक् वैद्यकशास्त्रसंहिता निर्माण करी हैं.--वे वैद्यकशास्त्रकी अन्य अन्य संहिता बडे विस्तारसे युक्त हैं. परंतु श्रीमान् आत्रेयमहर्षि और हारीतमुनि इन दोनों गुरु शिष्योंके संवादसे हारीतसंहितानामक संहिताके दो ग्रंथ निर्माण किये गयेहैं यह दो ग्रंथ एक **बृहद्धारीतसंहिता** और एक **लघुहारीतसंहिता** इस नामसे विख्यात हैं. तहां बृहद्धारीतसंहिता ग्रंथ बहुत विस्तीर्ण होनेसे अल्पप्रज्ञ आधुनिक अल्पायुष लोगोंके उपयोगमें उतना नहीं आसक्ता है. इसवास्ते उस **बृहद्धारीतसंहिता** ग्रंथका साररूप यह **लघुहारीतसंहिता** ग्रंथ सर्व आधुनिक वैद्यलोगोंके उपयोगमें आवेगा. ऐसा समझकर हमने इस ग्रंथको वेरीनिवासी पंडित **रविदत्त**शास्त्रीजीके द्वारा हिंदीभाषाऽनुवाद बनवाकर और शास्त्रिद्वारा अत्यंत शुद्धकरवायकर छपवायके प्रसिद्ध किया है.--यह **हारीतसंहिता** ग्रंथ बहुतही उपकारक और स्वल्प होकरभी सर्व वैद्योंको सब तरहके औषधज्ञान और रोगोंकी चिकित्सा करनेमें अप्रतिम साह्यकारी होगा; इसमें कुछ संदेह नहीं. इस ग्रंथकी भाषामें ऋषिभाषित होनेसे कहीं कहीं अशुद्धसे शब्दप्रयोग दीखते हैं परंतु वे प्रयोग आर्ष समझकर वैसेके वैसेही रखदिये गये हैं. कारण वे प्रयोग शुद्धकरनेमें ऋषिका तात्पर्य समझता नहीं है. इसवास्ते जैसेकी वैसेही जहांकहांके प्रयोग रखदिये गये हैं और अन्यत्र अच्छी रीतिसे शुद्ध कियागया है. अस्तु वैद्य महाशय लोग इस अपूर्व ग्रंथको अवश्य संग्रहमें रखकर रोगनिवारण द्वारा निर्मल कीर्तिको प्राप्त करैंगे.

आपका—

खेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्)यंत्रालयाध्यक्ष–बंबई.

हारीतसंहिताविषयानुक्रमणिका ।



इति प्रथमस्थानं समाप्तम्

द्वितीयं स्थानम् ।

अथ चतुर्थस्थानम् ।

अथ पंचमं कल्पस्थानम् ।

षष्ठं शारीरस्थानम् ।

इति ।

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

अथ हारीतसंहिता ।

भाषाटीकासमेता ।

प्रथमोऽध्यायः १.

मंगलाचरणम् ।

नत्वा शिवं परमतत्त्वकलाविरूढं ज्ञानामृतैकचटुलं परमात्मरूपम् ॥ रागादिरोगशमनं दमनं स्मरस्य शश्वत्क्षपाधिपधरं त्रिगुणात्मरूपम् * ॥ १ ॥

श्रीमद्देवी षदद्वंद्वं प्रत्यूहव्यूहनाशनम् ॥
तन्नमामि नतिर्य्यस्य वितरत्युत्तमां मतिम् ॥ १ ॥
शिवसहायपुत्रेण रविदत्तेन धीमता ॥
हारीतसंहिताभाषाटीका नूनं विरच्यते ॥ २ ॥

परमतत्त्व कलापै आरूढहुए और ज्ञानरूपी अमृतसे सुंदर और परमात्मरूपको धारण कियेहुये और रागआदि रोगोंको शांत करनेवाले और कामदेवको दग्ध करनेवाले और निरंतर चंद्रमाको मस्तकमें धारण करनेवाले और त्रिगुणात्मरूपवाले ऐसे महादेवजीको प्रणाम करकै (यह हारीतसंहितानामक ग्रंथ करताहूं) ॥ १ ॥

आत्रेयहारीतसंवाद ।

हिमवदुत्तरे कूले सिद्धगन्धर्वसेविते ॥ शान्ते मृगगणाकीर्णे नाना पादपशोभिते ॥ २ ॥ तत्रस्थं तपसा युक्तं तरुणादित्यतेजसम् ॥ शुद्धस्फटिकवच्छुभ्रं भूतिभूषितविग्रहम् ॥ ३ ॥ जटाजूटाटवीमूले उषितं शुभ्रकुण्डलम् ॥ आत्रेयं बहुशिष्यैस्तु राजितं तपसान्वितम् ॥ ४ ॥ पप्रच्छ शिष्यो हारीतः सर्वज्ञानमिदं महत् ॥ ५ ॥

१ चटुलं सुंदरं चंचलं शोभितं च । * संहितां करोमीति शेषेणान्वयः ।

सिद्ध और गंधर्वोंसे सेवित किये और शांतस्वरूप मृगोंके समूहसे व्याप्त और अनेक प्रकारके वृक्षोंसे शोभितहुआ ऐसे हिमालयपर्वतके उत्तरकूलपै ॥ २ ॥ तरुण सूर्यके तेजके समान तेजवाले और तपको करतेहुये और शुद्धहुये बिल्लोरी पत्थरके समान श्वेतरूपवाले और भूतस भूषितहुये शरीरवाले और पूर्वोक्त जगहमें स्थित ॥ ३ ॥ और जटाजूटरूपी वनके मूलमें वसतेहुये और श्वेतकुंडलोंको धारणकिये और बहुतसे शिष्योंसे प्रकाशितहुये और तपस्वी ऐसे आत्रेयजी महाराजको ॥ ४ ॥ हारीत नामवाला शिष्य इस संपूर्ण महाज्ञानको पूछताभया ॥ ५ ॥

हारीत उवाच ॥ भवन् ! गुणगणाधार ! आयुर्वेदविदां वर ! ॥ विनयादविनीतोऽहं पृच्छामि मुनिपुङ्गव ॥ ६ ॥ कथं रोगसमुत्पत्तिरुत्पन्नो ज्ञायते कथम् ॥ उपचारः प्रचारश्च कथं वा सिद्धिमिच्छति ॥ ७ ॥ एतत्सम्यक् परिज्ञानं कथयस्व महामुने ! ॥ एवं पृष्टो महाचार्य्यो हारीतेन महात्मना ॥ प्रत्युवाच ऋषिः पुत्रं प्रहस्योत्फुल्ललोचनः ॥ ८ ॥

हारीत कहने लगा—हे भगवन् ! हेगुणोंके समूहके आधार ! हे आयुर्वेदके जानने वालोंमें श्रेष्ठ! हेमुनियोंमें उत्तम ! अविनीत मैं विनयसे पूछताहूं ॥ ६ ॥ कैसे रोगकी उत्पत्ति होतीहै ? और उत्पन्न हुआ रोग कैसे जाना जाता है ? और रोगकी चिकित्सा और पथ्य कैसे होताहै ? और वही रोग कैसे सिद्धिको प्राप्त होताहै ? ॥ ७ ॥ हे महामुने ! इस परिज्ञानको अच्छीतरह कहो ऐसे महात्मा हारीतसे पूछेहुये महाचार्य आत्रेयजी हँसके और खिलेहुये नेत्रोंवाले होकै मुनि पुत्रके समान हारीतसे कहनेलगे ॥ ८ ॥

आत्रेय उवाच ॥ शृणु पुत्र ! महाप्राज्ञ ! सर्वशास्त्रविशारद ! ॥ चिकित्साशास्त्रकुशल ! वैद्यविद्याविचक्षण ॥ ९ ॥ आयुर्वेदमपारन्तु श्लोकानां लक्षसंख्यया ॥ कथं तस्य परिज्ञानं कालेनाल्पेन पुत्रक ! ॥ १० ॥

आत्रेयजी कहतेहैं—हेपुत्र! हेमहाप्राज्ञ! हेसर्वशास्त्रोंमें कुशल! हेचिकित्साशास्त्रमें कुशल! हेवैद्योंकी विद्याके जाननेवाले ! ॥ ९ ॥ हेपुत्र ! आयुर्वेद अपार है और तिसके लक्षश्लोक हैं तिसका जानना मनुष्योंको थोडेकालकरकै कैसे होसक्ताहै अर्थात् मुश्किलहै ॥ १० ॥

अल्पायुषोऽल्पवक्तारः स्वल्पशास्त्रविशारदाः ॥ अल्पावधारणे शक्ताः कलौ जाता इमे नराः ॥ ११ ॥ अल्पः कलियुगश्चायं

नरोपद्रवकारणम् ॥ कथं पुत्र! प्रवक्ष्यामि विस्तरेण तवागमम् ॥ १२ ॥

अल्प आयुवाले और अल्प बोलनेवाले और स्वल्प अर्थात् थोडे शास्त्रको जाननेवाले और अल्प निश्चयवाले ऐसे ये मनुष्य कलियुगमें उपजेहैं ॥ ११ ॥ यह कलियुगभी अल्प रूप है परंतु मनुष्योंको उपद्रवोंका कारण है इसवास्ते हे पुत्र! तेरेमति विस्तारसे वैद्यक शास्त्रको कैसे कहूं ॥ १२ ॥

यस्य श्रवणकालो यो याति चान्तश्च पुत्रक! ॥ तस्माच्चाल्पतरेणाऽपिवक्ष्यामि शृणु साम्प्रतम् ॥ १३ ॥ चतुर्विंशसहस्रैस्तु मयोक्ता चाद्यसंहिता ॥ तथा द्वादशसाहस्री द्वितीया संहिता मता ॥ १४ ॥ तृतीया षट्सहस्रैस्तु चतुर्थी त्रिभिरेव च ॥१५॥ पञ्चमी दिक्पञ्चशतैः प्रोक्ताः पञ्चात्र संहिताः ॥ तस्माच्चाल्पतरेणापि वक्ष्यापि शृणु पुत्रक! ॥ १६ ॥

हे पुत्र! जिसको जो सुननेका समय होता है वह अंतको प्राप्त हो जाता है तिसकारणसे अति थोडे करकै तेरेको अब कहताहूं सुन ॥ १३ ॥ मैंने चौबीसहजार श्लोकोंसे युक्त प्रथम संहिता कही है और तैसेही बारहहजार श्लोकोंसे संयुक्त दूसरी संहिता कही है ॥ १४ ॥ और तैसेही छःहजार श्लोकोंसे युक्त तीसरी संहिता कही है और तीन हजार श्लोकोंसे संयुक्त चौथी संहिता कही है ॥ १५ ॥ औरं डेढ हजार अर्थात् पंद्रहसौ श्लोकोंसे संयुक्त पाँचवी संहिता कही है. ऐसे पांच संहिता मैंने कही हैं तिस कारणसे हे पुत्र! मैं संक्षेपसे कहूंगा तू सुन ॥ १६ ॥

येन विज्ञानमात्रेण गदवेदविदो भवेत् ॥ किमत्र बहुनोक्तेन चाल्पसारे विशारद! ॥ १७ ॥ येन धर्मार्थसौख्यं च तद्धि कर्म समाचरेत् ॥ येन संजायते श्रेयो येन कीर्तिर्महत्सुखम् ॥ १८ ॥ तत्कर्म नितरां साध्यं जनानन्दविधायकम् ॥ १९ ॥

जिसके जानने मात्रसे आयुर्वेदको जाननेवाला मनुष्य हो जाता है. हे विशारद! अल्पसारमें बहुत कहनेसे यहां क्या है ॥ १७ ॥ जिस कर्म्मसे धर्म–अर्थ–सुख–इन्होंकी प्राप्ति होवै तिसकर्म्मका आचरण करना और जिस कर्म्मसे कल्याण–कीर्ति–अतिसुख–ये होवैं ॥ १८ ॥ तिस कर्म्मको निरंतर करै यही कर्म्म मनुष्योंको आनंदका देनेवाला है ॥ १९ ॥

एकं शास्त्रं वैद्यमध्यात्मकं वा सौख्यं चैकं यत्सुखं वा तपो वा॥ वन्द्यश्चैको भूपतिर्वा यतिर्वा एकं कर्म श्रेयसं वा यशो वा॥२०॥ बहुतरमुपचारात् सारमाधारलोके जननमतिसुखानां वर्द्धनं श्रेयसां वा ॥ विगतकलुषभावा चोज्वला कीर्त्तिमूर्त्तिर्न खलु कुटिलतास्याः श्रूयते लोकवृन्दैः ॥ २१ ॥

एकही शास्त्र ठीक है, वैद्यक अथवा वेदांत—और सुखभी एकही ठीक है, भोग अथवा तप—वंदनाके योग्यभी एकही ठीक है, राजा अथवा संन्यासी—कर्मभी एकही ठीक है, कल्याण अथवा यश ॥ २० ॥ इस संसारमें चिकित्सा करनेसे बहुतसा सार प्राप्त होता है, वही सार अतिसुखोंको उपजाता है और कल्याणको बढाता है, और तिसीसे कलुष भावसे वर्जित और प्रकाशित ऐसी कीर्ति उत्पन्न होती है और इस कर्मकरनेवालेकी कीर्तिकी कुटिलता मनुष्योंके समूहोंने कहींभी नहीं सुनी है ॥ २१ ॥

आयुर्वेदमिदं सम्यग् न देयं यस्य कस्यचित् ॥ २२ ॥ नाभक्तायाप्यशान्ताय न मूर्खाय न चाधमे ॥ शान्ते देयं न देयं स्यात् सर्वथा नाऽधमेऽधने ॥ २३ ॥

अच्छी तरहसे यह आयुर्वेद ऐसे तैसे मनुष्यको नहीं देना ॥ २२ ॥ और जो भक्त नहीं हो और जो क्रोधीहो और जो मूर्खहो और जो नीचहो तिसकेलिये कभीभी नहीं देना, शांतिवाले पुरुषको देना, नीच और धनसे रहितको आयुर्वेद नहीं देना ॥ २३ ॥

धर्मिष्ठो कुहनी विवर्जितमनाः शान्तः शुचिः शुद्धधीर्धीरोऽभीरुविवेकसारहृदयो विद्याविलासोज्वलः॥ प्राज्ञो रोगगणप्रचारनिपुणोऽलुब्धः सदा तोषधृगित्थं सर्वगुणाकरो नृपजनैः पूज्यः सदा रोगवित् ॥ २४ ॥

अत्यंत धर्मको माननेवालाहो और कपटसे वर्जित मनवालाहो और शांतहो पवित्रहो शुद्ध बुद्धिवालाहो धीरहो डरनेवाला नहींहो और विवेकके सारसे संयुक्त हृदयवालाहो और विद्याके आनंदसे प्रकाशितहो पंडितहो रोगोंके समूहके प्रचारमें निपुणहो लोभी नहींहो और सबकालमें संतोषको धारने वालाहो ऐसा सबगुणोंका खजानारूपी वैद्य राजालोगोंको सब कालमें पूजना चाहिये ॥ २४ ॥

दृष्ट्वा यथा मृगपतिं गजयूथनाथः संशुष्कमानमदबिन्दुकपोलधारः ॥ स्यक्त्वा वनं व्रजति चाकुलमानसेन दृष्ट्वा तथा गदगजो

भिषजं प्रयाति ॥ २५ ॥ यद्वत्तमोवृतमिदं भुवनं मयूखैः प्राकाश्यमाशु कुरुते सकलं रविस्तु ॥ तद्वत्सुवैद्य उपलभ्य रुजोतिनाशं शीघ्रं करोति गदिनं गदमुक्तभारम् ॥ २६ ॥

जैसे सिंहको देखकै हस्तियोंके समूहके स्वामीकी मदबिंदुओंकी धारा गंडस्थलमेंही सूख जाती है और वह हाथी उस वनको त्याग व्याकुल मन करकै भागता है तैसे वैद्यको देखकर रोगरूपीगजराज गमन करता है ॥ २५ ॥ जैसे आंधेरेसे संयुक्तहुवे स्थानमें सूर्य किरणोंसे शीघ्र प्रकाशको करता है तैसेही कुशलवैद्य रोगीको प्राप्त होकर रोगको शीघ्रही अत्यंत नाशकरदेता है और रोगीको रोगके भारसे छुटादेता है ॥ २६ ॥

लुब्धः क्रूरः शठजठरको मद्यपश्चालसश्चाधीरो भीरुर्विकलहृदयो हीनकर्मार्थमन्दः ॥ शास्त्रज्ञातोऽप्यविदितगदज्ञानपाखण्डखण्डो वर्ज्यो वैद्यः प्रबलमतिभिर्भूमिपैर्वा सुदूरात् ॥ २७ ॥

लोभीहो क्रोधीहो शठहो कठोरहो मदिराको पीनेवालाहो आलस्यवालाहो धीरनहींहो डरनेवालाहो विकलहुये हृदयवालाहो हीनकर्म्मवालाहो प्रयोजनमें मंदहो रोगको नहीं पिछाननेवालाहो पाखंडी ऐसा वैद्य जो शास्त्रको जाननेवालाभी हो तबभी अच्छी बुद्धिवाले राजाको दूरसे वर्ज्जना चाहिये ॥ २७ ॥

वैद्यशास्त्रपठनविधि।

अद्रुतं चाप्यशङ्कञ्च नात्युच्चं नीचमेव च ॥ यः पठेच्छास्त्रमित्थञ्च शास्त्राप्तिस्तस्य दृश्यते ॥ २८ ॥ चर्वणं गिलनं चापि कम्पितं श्वसितं तथा ॥ नीचोच्चं चैव गम्भीरं वर्जयेत्पाठकेनतु ॥ २९ ॥

अद्रुत प्रकार-अशुद्ध-अतिऊंचा प्रकार-नीचाप्रकार इन्होंसे रहित साधारण प्रकारसे जो शास्त्रको पढै तिसको शास्त्रकी प्राप्ति होती है ॥ २८ ॥ चाबना, निगलना, काँपना, अतिश्वास लेना, नीचापना, ऊँचापना, गंभीरपना, इन सबोंको पठनकरनेवाला वर्ज्जै ॥ २९ ॥

अनध्याये न शास्त्रस्य नोत्सवे यज्ञकर्मसु ॥ जातके सूतके चाथ पठनं न विधीयते ॥ ३० ॥ चतुर्दश्यष्टमीदर्शप्रतिपत्पूर्णिमास्तथा ॥ वर्ज्याः पञ्च इमाः पाठे मुनिभिः परिकीर्तिताः ॥ ३१ ॥ अकाले दुर्दिने गर्जे दिग्दाह भूमिकम्पन ॥ शास्त्रपाठस्तथा वर्ज्यो ग्रहणे

चन्द्रसूर्य्ययोः॥ ३२॥ द्वादशैते अनध्यायाः प्रोक्ताः शृणु तु पुत्रक॥ गुरुपीडासमुत्पन्ने नृपे संपीडितेऽथवा ॥ ३३ ॥ आहवे जीवसम्पाते प्रदोषे वाऽथवा पुनः ॥ राष्ट्रपीडासमुत्पन्ने न कुर्याच्छास्त्रपाठनम् ॥ ३४ ॥ एतैस्तु पठितं शास्त्रं न स्वार्थे सिद्धिसाधकम् ॥ न श्रेयसे न माङ्गल्ये नोपकारे सुखावहम् ॥ ३५ ॥.

अनध्याय, उत्सव, यज्ञकर्म, जन्मका सूतक, मृतसूतक इन्होंमें शास्त्रको नहीं पढना॥ ३०॥ चतुर्दशी,-अष्टमी,-अमावास्या,-प्रतिपदा,-पूर्णिमा ये पाचोंतिथि मुनिजनोंने पढनेमें वर्ज्जी हैं ॥ ३१ ॥ अकाल दुर्दिन, गर्ज्जना, दिग्दाह, भूमिकंप अर्थात् भूचाल, चंद्रमाका ग्रहण, सूर्यका ग्रहण इन्होंमें शास्त्रका पढना वर्जित है ॥ ३२ ॥ हे पुत्र ! बारह अनध्याय कहे हैं तू सुन गुरुको पीडा उपजै, राजाको पीडा उपजै ॥ ३३ ॥ युद्ध, जीवोंका मरना, प्रदोष, देशको पीडा उपजै ऐसे छः ये और छः अकाल आदि कहचुके इन बारहोंमें शास्त्रका पाठ करै नहीं ॥ ३४ ॥ इन अनध्यायोंमें पठित किया शास्त्र अपने प्रयोजनमें सिद्धिको नहीं देता और कल्याणको नहीं करता और मंगलको नहीं देता और उपकारमें सुखको नहीं देता ॥ ३५ ॥

एवं ज्ञात्वा पठति निपुणो वैद्यविद्यानिधानं श्रेयस्तस्य प्रतिदिनमसौ वाञ्छितार्थं प्रपद्येत ॥ कीर्तिः सौख्यं भवति नितरां तस्य लोकप्रशंसा पूज्यो राज्ञां सततमपि वै जायते स्वार्थसिद्धिः॥ ३६॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे वैद्यगुणदोषशास्त्रपठनाविधिर्नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

ऐसे जानकै जो कुशल वैद्य शास्त्रका पठन करता है तिसको कल्याण मिलता है, और नित्यप्रति मनोवांछित प्रयोजन प्राप्त होता है और तिस वैद्यको नित्यप्रति सुखहोता है, संसारमें कीर्ति और प्रशंसा प्राप्त होती है और अपने प्रयोजनकी सिद्धि होती है और ऐसे पठन करनेवाला पंडित राजा लोगों करकै निरंतर पूजनेके योग्य है ॥ ३६ ॥ इति वेरीनिवासि बुध शिवसहायतनयवैद्यरविदत्तशास्त्रि-अनुवादित-हारितसंहिताभाषाटीकायां प्रथमस्थाने वैद्यगुणदोषशास्त्रपठनविधिर्नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः।

चिकित्सासंग्रह।

आत्रेय उवाच ॥ अथातः संप्रवक्ष्यामि शास्त्रस्यास्य समुच्चयम् ॥
आयुर्वेदसमुत्पत्तिं सर्वशास्त्रार्थसंग्रहम् ॥ १ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—इस पहले अध्यायको कहके अब दूसरे आध्यायमें इस शास्त्रके समुच्चयको कहताहूं और आयुर्वेदकी समुत्पत्तिको और सब शास्त्रोंके अर्थका संग्रह करताहूं ॥ १ ॥

अष्टौ चात्र चिकित्साश्च तिष्ठन्ति भिषजां वर ! ॥
ता वक्ष्यामि समासेन चिकित्साश्च पृथक्पृथक् ॥ २ ॥

हे वैद्योंमें श्रेष्ठ ! इसग्रंथमें आठ प्रकारकी चिकित्सा स्थित हैं तिन्होंको और पृथक् पृथक् चिकित्साको कहूंगा ॥ २ ॥

संग्रहस्य प्रवक्ष्यामि प्रथमं चान्नपानकम् ॥ अरिष्टं च द्वितीयं स्यात्तृतीयं च चिकित्सितम् ॥ ३ ॥ कल्पं चतुर्थकं प्रोक्तं सूत्रस्थानन्तु पञ्चमम् ॥ षष्ठं चात्र शरीरं स्यादित्यायुर्वेदकारकाः ॥ ॥ ४ ॥ शल्यशालाक्यकायाश्च तथा बालचिकित्सितम् ॥ अगदं विषतन्त्रञ्च भूतविद्या रसायनम् ॥ वाजीकरणमेवेति चिकित्सा चाष्टधा स्मृता ॥ ५ ॥ वैद्यागमेषु सर्वेषु प्रोक्तं श्रेष्ठमिदं महत् ॥ तथा चाष्टौ चिकित्सायां वदन्ति वेदविज्जनाः ॥ ६ ॥

और संग्रहके अन्नपाननामक प्रथमस्थानको कहूंगा और अरिष्ट नामवाला दूसरा स्थान है, और चिकित्सित नामवाला तीसरा स्थान है ॥ ३ ॥ कल्प नामवाला चौथा स्थान है, सूत्रस्थान पाँचवाँ है, शारिरस्थान छठा है ऐसा आयुर्वेदको करनेवाले कहते हैं ॥ ४ ॥ शल्य—शालाक्य--कायचिकित्सा—बालचिकित्सित--अगद- विषतंत्र-भूतविद्या--रसायन--वाजीकरण- ऐसे चिकित्सा आठ प्रकारसे कही हैं ॥ ५ ॥ वैद्योंके सब ग्रन्थोंमें यह उत्तम और बडा ग्रंथ माना है ऐसे वेदको जाननेवाले जन चिकित्सामें आठ प्रकारको कहते हैं ॥ ६ ॥

यन्त्रशस्त्राग्निक्षाराणामौषधं पथ्यमेव च ॥
स्वेदनं मर्दनं चैव कथितान्युपकारिणाम् ॥ ७ ॥

यंत्रकर्म्म, शस्त्रकर्म, अग्निकर्म, औषध, पथ्य, स्वेदन, मर्दन ये सब उपकारियोंके लिये कहे हैं ॥ ७ ॥

एतैर्वैद्यकशास्त्रस्य सारो भवति सर्वतः ॥ ८ ॥

इन्होंसे वैद्याकशास्त्रका सार सब जगहसे यंत्रकर्म्म, शस्त्रकर्म, बन्धकर्म इन्होंके द्वारा होता है जिस करके वैद्य उद्धार करता है ॥ ८ ॥

अथ शल्यतन्त्रम्।

यन्त्रशस्त्रार्थबन्धैस्तु येन चोद्ध्रियते भिषक् ॥ तच्च शल्योद्धरणकं प्रोच्यते वैद्यकागमे ॥ नाराचवालवल्लीभिर्भल्लैः कुन्तैश्च तोमरैः॥ ॥ ९ ॥ शिलाग्निभिन्नगात्रस्य तत्र सार्य्यादिशल्यकम् ॥ १० ॥ तत्प्रतीकारकरणं तच्च शल्यचिकित्सितम् ॥ तथा बाणसमुद्दिष्टतृणपांशुकृमीकचम् ॥ रक्तवस्तु तथा पेशी पूयं शेषान्तरेऽपि यत् ॥ ११ ॥ तच्छल्यमिति जानीयाल्लोष्टकाष्ठादिभिन्नकम् १२

अथ शल्यतंत्रका लक्षण--यह वैद्यकशास्त्रमें शल्योद्धरण अर्थात् शल्यको निकासना कहते हैं जो बाण केश वल्ली--भाला--कुंतशस्त्र--तोमरशस्त्र--इन्हों करकै ॥ ९ ॥ पत्थर और अग्निसे भिन्न हुवे शरीरवाले मनुष्यके प्राप्त हुआ जो शल्य जिसको निकासनेका उपाय करना यह शल्यचिकित्सित कहाता है ॥ १० ॥ और बाण अर्थात् तीरका उद्देशलेके कहाहुआ तृण--फांस--कीडा--बाल--आदि लालचीज--मांसकी पेशी--राद--और शेष अन्तरमें जो कछु हो ॥ और लोहा लकडी आदि जो है इन सबोंको शल्य जानना यह शल्यतंत्र है ॥ ११ ॥ १२ ॥

अथ शालाक्यम्।

शिरोरोगा नेत्ररोगाः कर्णरोगा विशेषतः ॥ भ्रूकण्ठशंखमन्यासु ये रोगाः सम्भवन्ति हि ॥ १३ ॥ तेषां प्रतीकारकर्म नासावर्त्याञ्जनानि च ॥ अभ्यङ्गं मुखगण्डूषक्रिया शालाक्यनामिका॥ १४॥ इति शालाक्यं नाम ॥

अथ शालाक्य तंत्रका लक्षण--शिरके रोग, नेत्रोंके रोग, कानके रोग और विशेष करके भ्रुकुटी--कनपटी--कंधा--इन्होंमें जो रोग उपजैं ॥ १३ ॥ तिन्होंको दूर करनेके लिये जो नस्यकर्म--अंजन--अभ्यंग अर्थात् मालिस--गंडूष अर्थात् कुल्ले करना आदि क्रिया--ये सब शालाक्य कहाते हैं ॥ १४ ॥

अथ कायचिकित्सा।

कषायचूर्णगुटिका पञ्चानां शोधनानि च ॥
कोष्ठामयानां शमनीक्रिया कायचित्सितम् ॥ १५ ॥

अथ कायचिकित्साका लक्षण--काढा चूरन गोली स्वेदन स्नेहन वमन विरेचन बस्ति कर्म ये सब और कोष्ठके रोगोंको शांत करनेवाली क्रिया कायचिकित्सित कहाती है ॥ १५ ॥

अथ अगदं नाम।

गुदामयं बस्तिरुजं शमनं बस्तिरूहकम् ॥
आस्थापनानुवासन्तु अगदं नाम एव च ॥ १६ ॥

अथ अगदतंत्र लक्षण--गुदाके और मूत्राशयके रोगको शांत करना निरूहबस्ति--आस्थापन बस्ति--अनुवासनबस्ति ये सब अगदतन्त्रनामसे विख्यात हैं ॥ १६ ॥

अथ बालचिकित्सा।

गर्भोपक्रमविज्ञानं सूतिकोपक्रमस्तथा ॥
बालानांरोगशमनं क्रिया बालचिकित्सितम् ॥ १७ ॥

अथ बालचिकित्सितका लक्षण–गर्भकी और सूतिकाकी चिकित्साका ज्ञान और बालकोंके रोगोंको शांत करनेवाली क्रिया बालचिकिरिसत कहाती है ॥ १७ ॥

अथ विषतन्त्रं नाम।

सर्पवृश्चिकलूतानां विशोपशमनी तु या ॥
सा क्रिया विषतन्त्रञ्च नाम प्रोक्ता मनीपिभिः ॥ १८ ॥

अथ विषतन्त्रका लक्षण–सांप,–वीछू, मकडी, इन्होंके विषको शांत करनेवाली क्रिया विषतंत्र नाम कहाती है ऐसे बुद्धिमानोंने कहा है ॥ १८ ॥

अथ भूतविद्यानाम।

ग्रहभूतपिशाचाश्च शाकिनीडाकिनीग्रहाः ॥
एतेषां निग्रहः सम्यग्भूतविद्या निगद्यते ॥ १९ ॥

अथ भूतविद्याका लक्षण–ग्रह–भूत–पिशाच–डाकिनी–शाकिनी–ग्रह–इन्होंको अच्छी तरह निग्रह करना भूतविद्या कहाती है ॥ १९ ॥

अथ वाजीकरणम्।

क्षीणानां चाल्पवीर्य्याणां बृंहणं बलवर्द्धनम् ॥
तर्पणं समधातूनां वाजीकरणमुच्यते ॥ २० ॥

अथ वाजीकरणका लक्षण–क्षीणहुये और अल्पवीर्यवाले मनुष्योंको पुष्ट करना और बलको बढाना और समान धातुवालोंको तृप्त करना–यह वाजीकरण कहाता है ॥ २० ॥

१ ग्रहशब्दस्य पुनरुक्तिर्बालग्रहाणां सूर्यादीनां च ग्रहणम् ।

अथ रसायणतन्त्रम् ।

देहस्येन्द्रियदन्तानां दृढीकरणमेव च ॥ वलीपलितखालित्यवर्जने ऽपि च या क्रिया ॥ २१ ॥ पूर्वं वैद्यप्रणीतं हि तद्रसायनमुच्यते ॥ २२ ॥

अथ रसायनका लक्षण--शरीर, इंद्रिय, दंत, इन्होंको दृढ करना और शरीरकी वली, बालोंकी सफेदाई, बालोंका उडजाना, इन्होंके वर्जनेकी जो क्रियाहो ॥ २१ ॥ पहले धन्वतरी आदि वैद्योंकी रची हुई हो तिसको रसायन कहते हैं ॥ २२ ॥

अथ उपाङ्गचिकित्सा ।

छिन्नं भिन्नं तथा भग्नं क्षतं पिच्चितमेव च ॥
तेषां दग्धप्रतीकारः प्रोक्तश्चोपाङ्गसंज्ञकः ॥ २३ ॥

अथ उपांगचिकित्साका लक्षण--छिन्न अर्थात् छेदितहुआ-भिन्न अर्थात् विदारितहुआ-भग्न अर्थात् टूटा हुआ-क्षत अर्थात् घाव आदि--पिच्चित अर्थात् पिचलित हुआ-दग्ध अर्थात् जलाहुआ- इन्होंकी चिकित्साको उपांगसंज्ञक कहते हैं ॥ २३ ॥

इति वैद्यकसर्वस्वं चिकित्सागमभूषणम् ॥
पठित्वा तु सुधीः सम्यक् प्राप्स्यते सिद्धिसङ्गमम् ॥ २४ ॥
इति वैद्यकसर्वस्वे चिकित्सासंग्रहो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

ऐसे चिकित्सारूपी शास्त्रसे भूषितहुआ वैद्यकसर्वस्व इसको वैद्य अच्छीतरह पढके सिद्धिको प्राप्त होता है ॥ २४ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्रिअनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां प्रथमस्थाने चिकित्सासंग्रहो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.



वैद्यशिक्षाविधानम् ।

अथ वक्ष्यामि रोगाणामुपचारक्रमं तथा ॥
जानाति यो बुधः सम्यक् पूज्यते नृपसत्तमैः ॥ १

अथ रोगोंके चिकित्साक्रमके लक्षण-इसके अनंतर रोगोंकी चिकित्साके क्रमको कहूंगा जो पंडित इसको अच्छी तरह जानता है वह राजालोगोंसे पूजित होता है ॥ १ ॥

उपचार करनेकी योग्यता।

ज्ञात्वा रोगसमुत्पत्तिं रोगाणामप्युपक्रमम् ॥
ज्ञात्वा प्रतिक्रियां वैद्यः प्रतिकुर्य्याद्यथोचिताम् ॥ २ ॥

कुशलवैद्य रोगकी उत्पत्तिको और रोगोंके पथ्य आदिको और चिकित्साको जानकै पश्चात् यथोचित प्रतिकार करै ॥ २ ॥

देशकालआदिका ज्ञान।

देशं कालं वयो वह्निं सात्म्यप्रकृतिभेषजम् ॥
देहं सत्वं बलं व्याधेर्दृष्ट्वा कर्म समाचरेत् ॥ ३ ॥

देश, समय, अवस्था, सानुकूलता जठराग्नि प्रकृतिके योग्य औषध, देह, सत्व, रोगका बल इन्होंको देखके पीछे चिकित्साका आरंभ करै ॥ ३ ॥

उपचार करनेका फल।

धर्मार्थकामलाभःस्यात् सम्यगातुरसेवनात् ॥
यदा नाचरतस्तस्य विनाशश्चात्मनस्तदा ॥ ४ ॥

रोगीकी अच्छी तरह चिकित्सा करनेसे धर्म, अर्थ, काम, इन्होंकी प्राप्ति होती है जो वैद्य रोगीकी चिकित्सा नहीं करता तिस वैद्यके शरीरका नाश होजाताहै ॥ ४ ॥

वैद्यका वैद्यत्व।

व्याधेस्तत्त्वपरिज्ञानं वेदनायाश्च निग्रहः ॥
एतद्वैद्यस्य वैद्यत्वं न वैद्यः प्रभुरायुषः ॥ ५ ॥

रोगके तत्त्वको जानना--पीड़ाका नाश करना--वैद्यका यही वैद्यपना है और आयुका मालिक वैद्य नहीं है--अथवा इतनाही नहीं है, किंतु आयुका मालिक वैद्यही है ॥ ५ ॥

दोप्रकारका उपचारउपक्रम।

द्विविधोपक्रमश्चैव शमनः कोपनो रुजाम् ॥
तथैव ज्ञात्वा विबुधः क्रियां कुर्य्याद्विचक्षणः ॥ ६ ॥

चिकित्सा २ प्रकारकी है एक शमन दूसरी कोपन सो रोगको जानकै कुशलवैद्य क्रियाको करै ॥ ६ ॥

दो प्रकारके वैद्य।

वैद्योऽपि द्विविधो ज्ञेयो विकारेङ्गितरोगयोः ॥ उपचारापचारज्ञो द्विविधः प्रोच्यते भिषक् ॥ ७ ॥ उपचारेण शमनमपचारेण कोपनम् ॥ एवं विज्ञाय सद्वैद्यः कुर्य्यात् संशमनक्रियाम् ॥८॥

वैद्यभी २ प्रकारका है रोगके उपचार अर्थात् चिकित्साको जाननेवाला और रोगके अपचार अर्थात् दुष्परिणामको जाननेवाला ऐसे २ प्रकारका वैद्य कहा है ॥ ७ ॥ उपचारसे रोगकी शांति होती है अपचारसे रोगका कोप होता है ऐसे कुशलवैद्य जानके संशमन अर्थात् रोगको शांत करनेवाली क्रियाको करै ॥ ८ ॥

व्याधीके साध्यअसाध्यविचार ।

साध्योऽसाध्यश्च याप्यश्च कृच्छ्रसाध्यस्तथैव च ॥ व्याधिश्चतुर्विधः प्रोक्तः सद्वैद्यैः शास्त्रकोविदैः ॥ ९ ॥ उपचारेण साध्या ये रोगा गच्छन्ति याप्यताम् ॥ याप्यास्त्वसाध्यतां यान्ति साध्यकष्टेन पुत्रक ! ॥ १० ॥ सम्भवन्ति महारोगाः कष्टसाध्या म्रियंन्ति वै ॥ एवं चतुर्विधो व्याधिर्ज्ञात्वा कर्म समाचरेत् ॥ ११ ॥

साध्य--असाध्य--याप्य--कष्टसाध्य इन भेदोंसे रोगभी ४ प्रकारके कुशल वैद्योंने कहे हैं ॥ ९ ॥ हे पुत्र ! चिकित्साके नहीं करनेसे साध्यरोग याप्यपनेको प्राप्त होते हैं और याप्य रोग असाध्यपनेको प्राप्त होते हैं साध्यके कष्ट करकै ॥ १० ॥ महारोग उपजते हैं और कष्टसाध्य रोगवाले मरजाते हैं ऐसे व्याधि चारप्रकारकी हैं और तिनको जानके कर्म्मका आचरण करै ॥ ११ ॥

उपचारका फल ।

उपचारकृता दोषाः कृच्छ्रास्ते यान्ति याप्यताम् ॥ याप्याः साध्यत्वमायान्ति कष्टसाध्यं भवेद्ध्रुवम् ॥ १२ ॥ सुखसाध्यः सुखी शीघ्रं स्यात् सुधीभिरुपक्रमैः ॥ साध्यासाध्यपरिज्ञानं ज्ञात्वोपक्रमणं तथा ॥ १३ ॥

चिकित्साके करनेसे कष्टसाध्यरोग याप्यपनेको प्राप्तहोते हैं और याप्यरोग साध्यपनेको प्राप्त होते हैं ऐसे कष्टसाध्यकी व्यवस्था है ॥ १२ ॥ सुवैद्योंकी चिकित्सासे सुखसाध्य रोगी शीघ्र सुखी होजाता है ऐसे साध्य और असाध्यके परिज्ञानको जानके पीछे चिकित्साको करै ॥ १३ ॥

दोषके शेष रहजानेसे हानि ।

साध्यं गते यदा रोगे दोषशेषं न धारयेत् ॥ दोषशेषेऽपि कष्टं स्यात्तस्माद्यत्नान्निकृन्तयेत् ॥ १४ ॥ यथा हि कालदुष्टः स्यात् यथा सूक्ष्मोऽग्नितः कणः ॥ स्वल्पस्तद्वत् क्रियाप्राप्तो गदो घोर-

१ म्रियन्ति इत्यार्षम् ।

तरो भवेत् ॥ १५ ॥ तथा दोषस्य शेषे तु शमनं याति चाल्पशः ॥ दैवाद्यद्दुष्टतां याति यथाग्निः कुपितो भृशम् ॥ १६ ॥

जब साध्य रोग होवै तब वातआदि दोषके शेषको नहीं धारण करना क्योंकि दोषको बाकीरहनेमें कष्टहोजाता है तिसवास्ते दोषको नाशितकरै ॥ १४ ॥ जैसे काल दुष्ट होजाता है जैसे अग्निका सूक्ष्म किनका बढजाता है तैसे क्रियाको नहीं प्राप्तहुआ स्वल्पभी रोग अतिघोर होजाता है ॥ १५ ॥ दोषके शेषमें अतिअल्परोग शांत होजाता है परंतु दैवयोगसे फिर दूषित होजाता है जैसे दबा अग्नि प्रचंड होजाता है ॥ १६ ॥

अपथ्यसे हानि।

यथा काष्ठचयं दूरात् प्राप्य घोरतरोऽग्निकः ॥ तथापथ्यस्य संयोगाद्भवेद्घोरतरो गदः ॥ १७ ॥ कषायैश्च फलैश्चूर्णैः पिण्डलेहानुवासनैः ॥ सर्वाः क्रिया भृशं व्यर्था न शमं याति चामयः ॥ १८ ॥

जैसे काष्ठके समूहमें दूरसे प्राप्तहुआ अग्नि अतिघोररूप होजाताहै तैसे अपथ्यके संयोगसे रोगभी अतिघोररूप होजाता है ॥ १७ ॥ काढा-फल-चूरन-गोली--चटनी--अनुवासन-बस्तिकर्म—इन्हों करकै सब क्रिया व्यर्थ होजावै और रोग शांत नहीं होवै ॥ १८ ॥

एवं ज्ञात्वा सदा वैद्यै रोगशान्तिककारणम् ॥
कर्त्तव्यमतियोगेन येन रोगः प्रशाम्यति ॥ १९ ॥

ऐसे जानकै सब कालमें वैद्योंने रोगकी शांतिको करनेवाली क्रिया अतियोगसे अर्थात् पूर्वोक्तक्रिया विशेष करकै करनी चाहिये जिससे रोग शांत होजावै ॥ १९ ॥

लङ्घनकी योग्यता।

ज्ञात्वा दोषबलं धीमान् लङ्घनानि समाचरेत् ॥
दोषे सति न दोषाय लङ्घनानि बहून्यपि ॥ २० ॥

वैद्य दोषके बलको जान लंघनोंका आचरण करावै क्योंकि दोषके होनेसे बहुतसे भी लंघन दोषको करनेवाले नहीं होते हैं ॥ २० ॥

जठराग्निका कर्म।

पचेत्प्रथममाहारं दोषानाहारसंक्षये ॥
दोषक्षयेऽनलो धातून् प्राणान् धातुक्षये सति ॥ २१ ॥

जठराग्नि प्रथम भोजनको पकाता है और भोजनके नाश होनेमें वातआदि दोषोंको पकाता है और दोषोंके क्षय होनेमें धातुओंको पकाता है और धातुओंके क्षय होनेमें प्राणोंको पकाता है (अर्थात् नाशकरता है) ॥ २१ ॥

साम निराम व्याधिका उपक्रम।

ज्ञात्वा बलाबलं व्याधेः सामन्निराममेव च ॥
तदा सामे पाचनं स्यान्निरामे पथ्यसंक्रमः ॥ २२ ॥

रोगके बल और अबलको जानके और साम तथा निरामरूप रोगको जानके पीछे साम अर्थात् आमसे संयुक्तहुये रोगमें लंघनकरावै और निराम अर्थात् आमसे रहितहुये रोगमें पथ्यको दिवावै ॥ २२ ॥

वैद्यकी योग्यता।

सामं निरामं सुखसाध्यमेव सम्यग् रुजश्च परिलक्ष्य रुजो विना शम् ॥ एतद्भवेत् सकलवैद्यकशास्त्रसारं नैवायुषश्च बलदानकरो हि वैद्यः ॥ २३ ॥

साम–निराम–सुखसाध्य–इसप्रकारसे रोगको अच्छी तरह देख और रोगके नाशको देख विचारे सकल वैद्यकशास्त्रका सार यह है और आयुके बलको देनेवाला वैद्य नहीं होता ॥ २३॥

नो वैद्यो मनुजस्य सौख्यमथवा दुःखञ्च दातुं क्षमो जन्तोः कर्मविपाक एव भुवने सौख्याय दुःखाय च ॥ तस्मान्मानवदुःखकारणरुजां नाशस्य चात्र क्षमो वैद्यो बुद्धिनिधानधाम चतुरो नाम्नैव वैद्योऽपरः ॥ २४ ॥ सम्यग् रुजां परिज्ञानं ज्ञात्वा दोषविनिग्रहम् ॥ प्रत्याख्येयश्च यः साध्यं जानाति स भवेद्भिषक् ॥२५॥

मनुष्यको सुख अथवा दुःख देनेको वैद्य समर्थ नहीं है किंतु संसारमें सुख और दुःखको देनेवाला कर्मोंका विपाक है तिस कारणसे मनुष्यको दुःख करनेवाले रोगोंको नाशनेके लिये वैद्य समर्थ है और वैद्य बुद्धिभांडारका घर है चतुर है और इससे विपरीत जो दूसरा वैद्यहो वह नामसेही वैद्यहै ॥ २४ ॥ जो रोगोंको अच्छी तरह जानके और दोषोंके निग्रहको जान साध्य और असाध्य रोगीको जानता है तिसको वैद्य कहते हैं ॥ २५ ॥

पुण्यार्थ उपचार करनेयोग्य मनुष्य।

तपस्वी च ब्राह्मणश्च स्त्रियो वा बालकस्तथा ॥ दीनो वा दुर्बलो वापि प्राज्ञो वा पण्डितस्तथा ॥ २६ ॥ महात्मा श्रोत्रियः साधु-

रनाथो बन्धुवर्जितः ॥ एतान् व्याधिविनिग्रस्तान् प्रतिकुर्य्याद्वि-शेषतः ॥ २७ ॥

तपस्वी–ब्राह्मण–स्त्री–बालक–दीन–दुर्बल–बुद्धिमान्–पंडित ॥ २६ ॥ महात्मा–वेदपाठी–साधु–अनाथ–बंधुओंसे रहित–ऐसे रोगी होजावै तो विशेष करकै वैद्य शीघ्र चिकित्सा करै ॥ २७ ॥

उपचारसे धनलेनेयोग्य मनुष्य।

राजा च सुधनी चैव मण्डलीको बलाधिपः ॥
उपचार्य्योऽर्थसिद्धिः स्याद्वित्तं ग्राह्यं भयं न च ॥ २८ ॥

राजा–धनवाला साहूकार–छोटा राजा–ठाकुर–सेनाका स्वामी–इन्होंकी चिकित्सा करनेमें वैद्यको द्रव्य लेना चाहिये और वैद्य भयको नहीं करै ॥ २८ ॥

यश मिलनेयोग्य मनुष्य।

मध्यमा वणिजां पत्तिः पुरोधा ब्राह्मणादयः ॥ भट्टो वा गणिका ग्रण्यश्चिकित्स्यास्तु विशेषतः ॥ रोगग्रस्तेषु चैतेषु चिकित्सा कीर्त्तिकारिणी ॥ २९ ॥

व्यवहार करनेवाले–ब्राह्मण आदि पुरोहित–कवीश्वर–कत्थक अथवा ज्योतिषी–इन्होंकी चिकित्सा वैद्य विशेषकरकै करै क्योंकि इन्होंकी करीहुई चिकित्सा कीर्तिको करती है ॥ २९ ॥

चिकित्सा करनेको अयोग्य मनुष्य।

व्याधश्चौरस्तथा म्लेच्छो वह्निदो मत्स्यबन्धकः ॥ ३० ॥ बहुद्वेषो ग्रामकूटो वन्धको मांसविक्रयी ॥ एतेषां व्याधिग्रस्तानां नैव कुर्यात् प्रतिक्रियाम् ॥ ३१ ॥ एतेभ्यः स्वार्थसिद्धिर्नोप-कारो हितमङ्गलम् ॥ तेषां जीवाप्तसंजातो वैद्यो भवति दोषभाक् ॥ ३२ ॥

और कसाई-चोर-म्लेच्छ-अग्निलगानेवाला–मछलियोंको वींधनेवाला ॥ ३० ॥ बहुतोंका वैरी--गाममें चुगली करनेवाला मांसको बेचनेवाला–इन्होंके जो रोग उपजै तो वैद्य चिकित्सा नहीं करै ॥ ३१ ॥ क्योंकि इन्होंसे स्वार्थकी सिद्धि नहीं है न उपकार है और कल्याणभी नहीं है और मंगलभी नही है तिन्होंको जीवदान देनेसे वैद्य दोषका भागी होजाता है ॥ ३२ ॥

एवं ज्ञात्वा तु सद्वैद्यः कुर्य्यादथ प्रतिक्रियाम् ॥
धर्मार्थकामसम्पत्तिः कीर्त्तिर्लोके प्रवर्त्तते ॥ ३३ ॥

ऐसे जानके पीछे कुशल वैद्य चिकित्साको करै चिकित्सासे धर्म--अर्थ--काम -इन्होंकी प्राप्ति और लोकमें कीर्ति प्रवृत्त होती है ॥ ३३ ॥

वैद्यकर्तव्यका उपसंहार ।

इति बहुविधियुक्तो वैद्यविद्याविचारः क्षणमपि हृदये यो धारणं संकरोति ॥ स भवति गदसंघस्याथ विध्वंसशक्तो विमलविदित-कीर्त्तिः पूज्यमानो नरेन्द्रैः ॥ ३४ ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे वैद्यशिक्षाविधानो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

ऐसे बहुतसी विधिसे युक्त और वैद्यक विद्याको विचारनेवाला ऐसा वैद्य एक क्षणभरभी अपने हृदयमें धारणाको करै वह वैद्य रोगके समूहको नाशनेमें समर्थ है और स्वच्छ तथा विख्यात कीर्तिवाला और राजा लोगोंसे पूज्यमान हुआ वैद्य प्रसिद्ध होता है ॥ ३४ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्रिअनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां प्रथमस्थाने वैद्यशिक्षाविधानो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ४.

अथ देशकालबलाबलम् ।

इदानीं संप्रवक्ष्यामि देशकालबलाबलम् ॥
सात्म्यं प्रकृतिदेहश्च तथाग्नीनां विशेषणम् ॥ १ ॥

अब देश–काल–बल–अबल–सात्म्य-प्रकृति-देह-अग्निकी विशेषता-इन्होंको कहताहूं ॥ १ ॥

देशके भेद ।

देशस्तु त्रिविधो ज्ञेयो ह्यनूपो जाङ्गलस्तथा ॥
साधारणो विशेषेण ज्ञातव्यास्ते मनीषिभिः ॥ २ ॥

अनूप–जांगल–साधारण–इन नामोंसे देश तीन प्रकारका है और बुद्धिमानोंने–वे देश विशेष करके जानने चाहिये ॥ २ ॥

अथ अनूपदेशलक्षण ।

बहुतरशुभनद्यश्चारुपानीयपुष्टाः सरससरउपेता शाद्वलासारभूमिः ॥ हरितकुशजलानां शालिकेदाररम्यादिनकरकरदीप्तिं वाञ्छते यत्र लोकः ॥ ३ ॥ गुरुमधुररसाढ्या भाति चेक्षुः सदार्द्रा

विविधजनितवर्णाः शालिगोधूमयूषाः ॥ मधुररसविभुक्त्या मानवानां प्रकोपी भवति कफसमीरः स्यात्तदानूपदेशः ॥ ४ ॥

अथ अनूपदेशलक्षण—सुंदर पानीसे पुष्टहुई बहुतसी सुंदर नदी जहाँ होवै और रसवाले वृक्षोंसे व्याप्त और हरी दूब घास आदिसे व्याप्तहुई पृथिवी जहां होवै और हरीकुशा तथा पानीसे व्याप्तहुये जो चावलोंके खेत तिन्हों करकै रमणीक हुई है पृथिवी जहां और जहां सूर्य्यकी किरणोंको संसार वांछित करता है ॥ ३ ॥ और जहां भारी और मधुर रससे संयुक्त और सबकालमें गीली ऐसी ईख होती हैं और जहां अनेक वर्णोवाले चावल और गेहूं आदि उपजते हैं और जहां मधुररसको खानेसे मनुष्योंके वात और कफका कोप होता है तिसको अनूपदेश कहते हैं ॥ ४ ॥

अथ जाङ्गलदेशलक्षण ।

खरपरुषविशालाः पर्वताः कण्टकीर्णा दिशि दिशि मृगतृष्णा भूरुहाः शीर्णपर्णाः ॥ अतिखररविरश्मिपांशुसम्पूर्णभूमिः सरसि रसविहीना कूपकाम्भःप्रकर्षः ॥ ५ ॥ तदनु विरससस्याहारिणो गोमाहिष्यः प्रभवति रसमांसे रूक्षभावश्च सम्यक् ॥ पुनरपि हिमवाहं शालिशस्यं न चेक्षुर्भवति रुधिरपित्तं कोपमाशु ह्युपैति ॥६॥

अथ जांगलदेशलक्षण—तीक्ष्ण और कठोर पर्वत जहां स्थित हैं और जहां काँटोंसे व्याप्तहुई दिशामें मृगतृष्णा अर्थात् विनाहुआ जल मृगोंको प्रतीत होता है और जहां नष्टहुये पत्तोंवाले वृक्ष स्थित हैं और जहां अतितेज सूर्य्यके किरणोंसे गरमहुये रेतसे संपूर्ण पृथिवी व्याप्त होरही है और जहां रससे हीन होताहुआ कुवाका पानी घटता जाता है ॥ ५ ॥ और जहां विनारसके धान्य खानेसे हस्ती, गाय, भैंस, ये बहुत प्रसन्न नहीं होते हैं और जहां रसमें और मांसमें रूखापन उपजता है और शीतलवायु—चावलकी खेती—ईख ये नहीं उपजते हैं और जहां रक्त और पित्त शीघ्र कोपको प्राप्त होताहै तिसको जांगलदेश कहते हैं ॥ ६ ॥

अथ साधारणदेशलक्षणम् ।

उभयगुणशतं वा नातिरूक्षं न स्निग्धं न च खरबहुलं चेच्चाभितः कण्टकाढ्यम् ॥ भवति च जलकीर्णं नातिशीतं न चोष्णं समप्रकृतिसमेतं विद्धि साधारणं च ॥ ७ ॥

अथ साधारणदेश लक्षण—जहां अनूपदेशके और जांगलदेशके बहुतसे लक्षण अर्थात् गुणहों और जहां न अति रूखापनहो और न चिकनापन है और जहां तेजकी बहुलता नहींहो

और जो सब तर्फसे कांटोंसे व्याप्त होरहाहो और जहां साधारण पानीहो और न अतिशीत अर्थात् जाडाहो और न आति गर्मीहो और समानप्रकृतिसे संयुक्तहो तिसको साधारण देश कहते हैं ॥ ७ ॥

अथ कालज्ञानम्।

कालस्तु त्रिविधो ज्ञेयोऽतीतोऽनागत एव च ॥
वर्त्तमानस्तृतीयस्तु वक्ष्यामि शृणु लक्षणम् ॥ ८ ॥

अथ कालज्ञान—काल तीन प्रकारका है अतीत अर्थात् बीताहुआ—अनागत अर्थात् आनेवाला-वर्तमान अर्थात् वर्तताहुआ इन्होंके लक्षण कहताहूं तू सुन ॥ ८ ॥

कालका स्वरूप।

कालः कालयते लोकं कालः कालयते जगत् ॥ कालः कालयते विश्वं तेन कालो विधीयते ॥ ९ ॥ कालस्य वशगाः सर्वे देवर्षिसिद्धकिन्नराः ॥ कालो हि भगवान् देवः स साक्षात्परमेश्वरः ॥ १० ॥ सर्गपालनसंहर्त्ता स कालः सर्वतः समः ॥ कालेन काल्यते विश्वं तेन कालो विधीयते ॥ ११ ॥

काल लोककी संख्या करता है काल जगत्की संख्या करता है काल विश्वकी संख्या करता है तिससे काल कहाता है ॥ ९ ॥ सब देव, ऋषि, सिद्ध, किन्नर, ये सब कालके वशमें हैं और भगवान् देव साक्षात् परमेश्वर ऐसा कालही है ॥ १० ॥ सृष्टि, स्थिति, संहार, इन्होंको करनेवाला और सब जगहसे समान ऐसा कालही है कालसे विश्व संख्याको प्राप्त होता है तिस्से काल कहाता है ॥ ११ ॥

उत्पाक कालका स्वरूप।

येनोत्पत्तिश्च जायेत येन वै कल्पते कला ॥
सत्त्ववांस्तु भवेत्कालो जगदुत्पत्तिकारकः ॥ १२ ॥

जिस्से उत्पत्ति होती है और जिस्से कलाओंकी गिनती होती है इसवास्ते सत्ववाला काल जगत्की उत्पत्तिको करता है ॥ १२ ॥

प्रवर्तक कालका स्वरूप।

यः कर्माणि प्रपश्येत प्रकर्षं वर्त्तमानके ॥
सोऽपि प्रवर्त्तको ज्ञेयः कालःस्यात्प्रतिकालकः ॥ १३ ॥

वर्तमानमें जो कर्मोंको देखता है वहही प्रवर्तक कालही प्रतिपालक होताहै ॥ १३ ॥

संहारक कालका स्वरूप ।

येन मृत्युवशं याति कृतं येन लयं व्रजेत् ॥
संहर्त्ता सोऽपि विज्ञेयः कालः स्यात्कलनापरः ॥ १४ ॥

जिसकाल करकै जीव मृत्युके वशको प्राप्त होता है और जिस करकै कृत अर्थात् किया हुआ लयको प्राप्त होता है वही काल संहार करनेवाला जानना यही काल ग्रास करनेवाला है ॥ १४ ॥

कालका सनातनत्व ।

कालः सृजति भूतानि कालः संहरते प्रजाः ॥
कालः स्वपिति जागर्त्ति कालो हि दुरतिक्रमः ॥ १५ ॥

कालही जीवोंको रचता है, कालही प्रजाको हरता है, कालही शयन करता है, कालही गता है, काल दुरतिक्रम है अर्थात् उल्लंघन नहीं कियाजाता ॥ १५ ॥

कालका नाशकस्वरूप ।

काले देवा विनश्यन्ति काले चासुरपन्नगाः ॥
नरेन्द्राः सर्वजीवाश्च काले सर्वं विनश्यति ॥ १६ ॥

काल अर्थात् समयमें देवता नष्ट होजाते हैं और कालमें ही दैत्य और सर्प नष्ट होते हैं और सब जीव कालमेंही नष्ट होते हैं कालमें संपूर्ण नष्टहोता है ॥ १६ ॥

अथ अन्यकालोंकेस्वरूप

त्रिकालात् परतो ज्ञेय आगन्तुर्गतचेष्टकः ॥ सूक्ष्मोऽपि सर्वगः सर्वैर्व्यक्ताव्यक्ततरः शुभः ॥ १७ ॥ तथा वर्षाहिमोष्णाख्यास्त्रयः काला इमे मताः ॥ तथा त्रयोऽन्येऽपि ज्ञेया उदयमध्यास्तमेव च ॥ १८ ॥

आगंतुक और चेष्टासे रहित और सूक्ष्म और सबोंकरकै सर्वगत और अतिव्यक्त और अति अव्यक्तसे पर और शुभ ऐसा, ऐसा काल त्रिकालसे परे जानना चाहिये ॥ १७ ॥ वर्षा, शीत, गर्मी, ये तीन काल माने गये हैं और उदय, मध्य, अस्त, ऐसे तीन अन्यभी काल जानने ॥ १८ ॥

अथ ऋतुचर्य्या ।

वर्षा शरच्च हेमन्तः शिशिरश्च वसन्तकः ॥ ग्रीष्मोऽतिक्रमतो ज्ञेय एवं षड् ऋतवः स्मृताः ॥ १९ ॥ पृथक्पृथक् प्रवक्ष्यामि स्वर्ग-

तिविशेषणैः ॥ प्रकोपं शमनं ज्ञात्वा अयने द्वे स्मृते बुधैः ॥२०॥
दक्षिणायनमेकं स्यात् द्वितीयं चोत्तरायणम् ॥

अथ ऋतुचर्य्या–वर्षा, शरद, हेमंत, शिशिर, वसंत, ग्रीष्म ये क्रमसे छः ऋतु कहे हैं ॥ १९ ॥ इन ऋतुओंको पृथक् २ कहूंगा सूर्य्यकी गतिके विशेषसे प्रकोप और शमनको जान पंडितोंने दो अयन कहे हैं ॥ २० ॥ एक दक्षिणायन होता है दूसरा उत्तरायण होता है ॥

अयनोंका वर्णन ।

वर्षा शरच्च हेमन्तो दक्षिणायनमध्यगाः ॥ २१ ॥
शिशिरश्च वसन्तश्च ग्रीष्मः स्यादुत्तरायणे ॥

वर्षा-शरद-हेमंत-ये तीन ऋतु दक्षिणायनमें होते हैं ॥ २१ ॥ शिशिर, वसंत, ग्रीष्म, ये तीन ऋतु उत्तरायणमें होते हैं ॥

दक्षिणायनका लक्षण ।

याम्ये गतिर्यदा भानोस्तदा चान्द्रगुणा मही ॥ २२ ॥ वारि शीतलसम्भूतं शीतं तत्र प्रजायते ॥ बलिनो मधुरास्तिक्ताः कषायास्तु विशेषतः ॥ २३ ॥ जीवानां सात्म्यमतुलमोषधीनां च वीर्यता ॥ आर्द्रत्वं भूधराणाञ्च दिशश्चाप्यतिशीतलाः ॥२४॥ सक्लेदा पृथिवी सर्वा तस्मादार्द्रा सफेनिला ॥ कथं चिकित्सयेत् पित्तं कोपं याति विलीयते ॥ २५ ॥ तस्मादनुविपर्य्यासादुपचारेण शाम्यति ॥

इसमें सूर्यकी गति दक्षिणमें होती है तब चंद्रमाके गुणोंवाली पृथिवी होजाती है ॥ २२ ॥ और शीतल पानी होजाता है और शीत पडने लगता है और मधुर तिक्त कसेला ये रस विशेष करकै बलवाले हो जाते हैं ॥ २३ ॥ और औषधी अर्थात् अन्न आदिकोंकी तथा जीवोंकी प्रकृति बहुतही अच्छी रहती है और पर्वतभी गीले होजाते हैं और दिशाभी अति शीतल हो जाती हैं ॥ २४ ॥ और क्लेदभावसहित संपूर्ण पृथिवी हो जाती है और तिसी कारणसे गीली और झागोंवाली पृथिवी होजाती है इसमें कभी पित्त कोपको प्राप्त हो जाता है और लीन होजाता है ॥ २५ ॥ तिस कारणसे कि, विपर्य्यास करकै चिकित्सासे पित्त शांत होता है ॥

उत्तरायणका लक्षण ।

यदोदीच्यां गतिर्भानोस्तदा सूर्य्यो जलाधिपः ॥ २६ ॥ तस्मादुष्णगुणास्तीव्राः सम्भवन्ति विदाहिनः ॥ खरसूर्य्यांशुजालैस्तु शुष्यते वनकाननम् ॥ २७ ॥ संशुष्का मेदिनी सर्वा दिशः पानादिनीरसाः॥ बलिनोऽम्लकटुक्षाराः सम्भवन्ति विदाहिनः ॥ २८ ॥ तस्मात् संकुप्यते पित्तं रक्तेन सह मूर्च्छितम् ॥ ओषधिरसः संशुष्को गोजातीनां पयांसि च ॥ २९ ॥ अल्पं बलं च जन्तूनां कथञ्चित्कफसम्भवः ॥ दृश्यते च वसन्ते च स्वयमेव शमं व्रजेत् ॥ ३० ॥ एवं ज्ञात्वा सुधीः सम्यक्कुर्य्यात्सर्वं प्रतिक्रियाम् ॥ ३१ ॥

जब उत्तर दिशामें सूर्य्यकी गति होती है तब सूर्य्य जलोंका स्वामी हो जाता है ॥२६॥ तिस्से दारुण रूप और विशेष करकै दाहको करनेवाले ऐसे गुण उपजते हैं और सूर्य्यके तेज किरणोंके समूहसे वन बगीचे सूख जाते हैं ॥ २७ ॥ और संपूर्ण पृथिवी सूख जाती है और जलआदिसे रहित सब दिशा होजाती हैं और खट्टा, चर्चरा, खारा ये रस बलवाले और विशेष करकै दाहको करनेवाले होते हैं ॥ २८ ॥ तिससे रक्तके साथ मूर्च्छितहुआ पित्त कुपित होता है और ओषधियोंका रस और गायआदिका दूध सूख जाताहै ॥ २९ ॥ और जीवोंमें अल्प बल उपजता है और कदाचित् कफकीभी उत्पत्ति होजाती है और वहां कफकी उत्पत्ति वसंत ऋतु अर्थात् चैत्र वैशाखमें दीखती है और आपही शांत हो जाती है ॥ ३० ॥ ऐसे अच्छी तरह वैद्य जानकै सब रोगोंकी चिकित्साकों करै ॥ ३१ ॥

अथ वर्षाऋतुका लक्षण ।

सघनवारिदवारिसमाकुला अखिलवत्प्रवरोदकपूरिताः ॥ समदवातकरा विदिशो दिशः प्रमुदितक्रिमिकीटभृता मही ॥ ३२ ॥ नीलसस्यहरितोज्वला मही कुल्यका सलिलसंप्लुता नता॥ इन्द्रगोपकविराजिता वरा पङ्कभूषणविभूषिता धरा ॥ ३३ ॥ उद्भिन्नचूताङ्कुरो भूधरः स्याद्रजे वनं वा मधुरं व्यकूजन् ॥ भृङ्गा मयूरा जलदस्य घोषं सर्वेऽपि जीवा बलमाप्नुवन्ति ॥ ३४ ॥ केकी कूजति कानने च सरसी [illegible] तथा हंसा मानसमात्र-

जन्ति कमलान्युन्म्लानतां यान्ति च ॥ गर्जन्मेघमहेन्द्रकन्दर-दरी सस्यावृता श्यामला भात्येवं पवनस्य कोपनकरी वर्षाऋतुः श्रेयसी ॥ ३५ ॥ किञ्चिद्गर्भोद्भवानि स्युः सस्यानां दृढतागमः॥ बहुसस्या भवेद्धात्री वारिपूर्णा शरन्मुहुः ॥ ३६ ॥ नद्यः पूर्णाम्भसोत्खातशीर्णपातास्तटद्रुमाः ॥ कुल्याप्रस्रवणानान्तु स्रवत्यम्भो दिशो दिशः ॥ ३७॥ बहूदकधरा मेघा बहुवृक्षा घनस्वनाः॥ एवंगुणसमायुक्ता वर्षा स्यादृतुकोविदैः ॥ ३८ ॥ तस्माद्वातकफः कोपी जायते च नृणां भृशम् ॥ इति ज्ञात्वा भिषक्छ्रेष्ठः कुर्य्यात्तस्यां प्रतिक्रियाम् ॥३९॥ स्वेदनं मर्दनं पथ्यं निर्वातसेवनं तथा गौरारामारतं शस्तं व्यायामक्रमविक्रमः ॥ ४० ॥ कट्वम्लक्षारसुरसाः सेव्या वातकफापहाः ॥ निरूहवस्तिकर्मात्र कफवातरुजापहम् ॥ ४१ ॥

अथ ऋतुलक्षण–प्रथम वर्षाऋतुका लक्षण और उपचार–मोटे बादल और पानीसे अच्छी तरह आकुल हो और संपूर्ण तरहसे सुंदर पानी करकै पूरित और मदसहित वायुको करनेवाली सब विदिशा और दिशा होवैं और आनंदित हुये कीडोंको धारण करनेवाली पृथिवी होवै ॥ ३२ ॥ और नीली खेती और दूब घाससे प्रकाशित पृथिवी होवै पानीसे मग्न हुये और नयेहुये नदीके किनारे होवैं और इंद्रगोप अर्थात् तीजनामवाले कीडोंकी पंक्तियोंसे शोभित और पंक अर्थात् कीचडरूपी गहनोंसे विभूषित ऐसी पृथिवी होजावै॥ २३॥ और ऊपरको कर निकल आयेहुये आमके अंकुरोंवाले पर्वत हो जावैं और वन प्रकाशित होजावै और भौंरे तथा मोर मधुर शब्दको करैं और बादलोंका शब्द होवै और सब जीव बलको प्राप्त होजावैं ॥ ३४ ॥ वनमें मोर बोलैं और सरोवर पक्षियोंकरिकै रहित तथा पानीसे पूरितहोजावै और हंस मानससरोवरमें आकै प्राप्त होजावै और कमल म्लानपनेको प्राप्त होजावै और गर्जताहुआ मेघ और महेंद्र करकै फटीहुई कंदरावाली और खेतीसे आवृत और श्यामरूपवाली ऐसी पृथिवी प्रकाशित होजावै ऐसी वर्षाऋतु श्रेष्ठ होती है यह वायुको कोपित करती है ॥ ३५ ॥ और खेतियोंके कछुक गाभा तथा दृढपना उपजै और बहुतसी खेतीसे संयुक्त और पानीसे पूर्ण ऐसी पृथिवी होवै और वारंवार शरदऋतुकेभी कछुक लक्षण मिलैं ॥ ३६ ॥ और नदीमें नहीं पूरितहुये पानीसे उखाडे हुये और गिरेहुये पत्तोंवाले ऐसे तटके वृक्ष होवैं और नाली झरनोंके द्वारा दिशा दिशामें पानीको झिरावै ॥ ३७ ॥ और बहुत पानीको धारनेवाले और बहुत शब्दको करनेवाले ऐसे मेघ होजावैं और बहुतसे वृक्ष उपजैं ऐसे

गुणोंसे संयुक्त वर्षाऋतु होती है ऐसा ऋतुओंको जाननेवालोंने कहा है ॥ ३८ ॥ इस ऋतुमें मनुष्योंको अतिशय वात कफका कोप होता है ऐसे कुशलवैद्य जानकै तिस कोपकी चिकित्सा करै ॥ ३९ ॥ स्वेदन अर्थात् पसीनोंका लाना–मर्दन अर्थात् शरीरको दाबना–और वातको नहीं सेवना–गौर वर्णकी स्त्रीसे रति करना–कसरत करना ये सब वात कफके कोपमें श्रेष्ठ पथ्य हैं ॥ ४० ॥ चर्चरा–खट्टा–खारा ये रस सेवने वात कफको नाशते हैं निरूह और बस्तिकर्म्म कफ और वातकी पीडाको नाशते हैं ॥ ४१ ॥

अथ शरदृतुका लक्षण।

मेघाः सूर्य्यशिलासमानरुचयो ह्यल्पस्रवाल्पस्वना हंसालीजलजालिमण्डितजलं पद्माकरं शोभनम् ॥ तीव्रास्निग्धमयूखचन्द्रविमला सानन्दिनी कौमुदी चित्रा घर्मविपक्वतोयसुरसा स्यान्निर्मलं पुष्करम् ॥ ४२ ॥ तत्र शीतलगतं वयोगतं जातपित्तरुधिरस्य योग्यताम् ॥ पथ्यमत्र च नरस्य शीतलं दृश्यते कथमपि त्रयोद्भवम् ॥ ४३ ॥ शृतं क्षीरं सिता पथ्यं चन्द्रिकासेवनं निशि ॥ श्यामारामारतं शस्तं प्रभाते निर्मलं दधि ॥४४॥ कामिन्यालिङ्गनानन्दश्रान्तः शीताशिरोरुहैः ॥ चंदनादीनि सेवेत दृष्टं शरदि कोपनम् ॥ एवं प्रशमनं दृष्टं शरत्पित्तप्रकोपने ॥ ४५ ॥

अथ शरदृतुका लक्षण और उपचार–सूर्य्य और शिलाके समान रुचिवाले और अल्प झरनेवाले और अल्प शब्दको करनेवाले ऐसे मेघ होजावैं और हंसोंकी पंक्ति तथा कमलोंकी पंक्ति तिसकरकै मंडित जलवाला और शोभित कमलोंका स्थान होजावै और तीव्र तथा स्निग्धरूपी किरणोंवाले चंद्रमासे स्वच्छ और आनंदवाली और चित्ररूपवाली और घामसे पक्कहुये पानीसे सुरसरूप ऐसी चांदनी होवै और मलसे रहित पानी होवै ॥ ४२ ॥ ऐसी शरदृतुमें आकाशका पानी और पित्तरक्तके योग्य पदार्थ और शीतल पदार्थ ये सब पथ्य हैं इसऋतुमें सन्निपातका कोप कदाचित् होता है ॥ ४३ ॥ घृत–दूध–मिश्री–रात्रिमें चांदकी चांदनीको सेवना-श्यामरंगकी बाला स्त्रीसे भोग-प्रभातमें निर्मलदही ये सब शरदृतुमे पथ्य हैं ॥ ४४ ॥ स्त्रीके आलिंगनसे प्राप्तहुये आनंदसे श्रांतहुये पुरुष कमलोंकरकै अपने श्रम दूर करै, और शरदृतुमें पित्तका प्रकोप होनेसे चंदनादिकोंका लेप करै यह कमलधारण और चंदनानुलेपन शरदृतुमें पित्तके प्रकोपका शमनकारी है ऐसा देखा है ॥ ४५ ॥

अथ हेमन्तवर्णनम् ।

बहुशीतः समीरोऽल्पश्चाल्पवासरता ऋतौ॥अल्पतेजा दिवानाथो धूमाक्रांता च दिग्भवेत् ॥ ४६ ॥ विस्तीर्णशालिकेदारा नील-धान्योज्वला मही ॥ एवं गुणसमायुक्ता हैमन्ती स्म भवेदृतुः ॥ ॥ ४७ ॥ तत्र वातकफा दोषा दृश्यंते कुपिता भृशम् ॥ अग्नि-संसेवनं पथ्यं कटुक्षाराम्लसेवनम् ॥ ४८ ॥ गौरारामारतं शस्तं व्यायामश्च प्रशस्यते ॥ एवं संशाम्यंति दोषाः कफवातसमु-द्भवाः ॥ ४९ ॥ बलिनः शीतसंरोधा हेमन्ते प्रबलोऽनिलः ॥ भवत्यल्पेन्धनो धातून् स पचेद्वायुनेरितः ॥ ५० ॥ अतो हिमेऽस्मिन् सेवेत स्वाद्वम्ललवणान्रसान् ॥ दीर्घा निशाभवेत्तर्हि प्रात-रेव बुभुक्षितः ॥ ५१ ॥ भवत्यकार्य्यं संभाव्य यथोक्तं शील-येदनु ॥ ५२ ॥ अर्कन्यग्रोधखदिरकरञ्जककुभादिकम् ॥ प्रात-र्भुक्त्वा च मधुरकषायकटुतिक्तकम् ॥ ५३ ॥

अथ हेमंतऋतुका लक्षण और उपचार–बहुत शीतलवायु चले अथवा वायु अल्पचले और दिनका समय थोडा होजावै और अल्प तेजवाला सूर्यरहै और धूमसे आकुलित हुई दिशा होवै ॥ ४६ ॥ और विस्तारको प्राप्तहुये चावलोंके खेत होवैं और नील तथा अन्नसे प्रकाशित पृथिवी होवै ऐसे गुणोंसे संयुक्त हेमंतऋतु होता है ॥ ४७ ॥ इस ऋतुमें अतिशयसे कुपितहुये वात और कफ दीखते हैं इसमें अग्नि सेवना और चर्चरा–खारा–खट्टा-इन्होंको सेवना पथ्य है ॥ ४८ ॥ गौरवर्णवाली स्त्रीसे भोग करना और कसरत करना श्रेष्ठ है ऐसे कफवातसे उपजा दोष शांत होता है ॥ ४९ ॥ **कितनेक वैद्योंका मत**–बलवाले मनुष्यके शीतको रोकनेसे हेमंतऋतुमें वायु प्रबल हो जाताहै पीछे वायुसे प्रेरित किया यही वायु अल्प आहारआदिवाला होकै धातुओंको पकाता है ॥ ५० ॥ इसवास्ते शीतकालमें स्वादु--खट्टा--सलोना ऐसे रसोंको सेवै और हेमंतऋतुमें बडी रात्रियोंके होनेसे प्रभातमेंही भोजन करनेकी इच्छावाला मनुष्य हो जाता है ॥ ५१ ॥ इसवास्ते अकार्यकी संभावना करकै यथोक्त द्रव्यका अभ्यास करै ॥ ५२ ॥ आक, वड, खैर, करंजुआ, अर्जुनवृक्ष इन आदिको प्रभातमें साधन करके पीछे मधुर, कसैला, चर्चरा, कडुआ इन रसोंको सेवै ॥ ५३ ॥

अथ शिशिरवर्णनम् ।

बहुलशिशिरवातः किञ्चिदुद्भूतसस्या भवति वसुमतीयं पक्वसस्यैस्तु पीता ॥ कथमपि तु हिमं स्याल्लिङ्गवैशेषिकं वा पवनकफविकारो जायते शैशिरे च ॥ ५४ ॥ गौरारामारतमतिशयेनारुणान्यम्बराणि सेव्यं तिक्तं कटुकलवणं प्रायशो ह्यम्लमेव ॥ स्वेदोन्मर्दं प्रतिदिनमिदं कारयेद्यत्र सम्यग् नाशं यातोऽनिलकफगदौ क्वास्ति तेषां प्रकोपः ॥ ५५ ॥

अथ शिशिरऋतुका लक्षण और उपचार—बहुत शीतल वायु चलै और पृथ्वीपर कछुक धान्य उत्पन्न हो और पकी हुई खेतीसे पीली पृथिवी होवै और इन जाडा पडे कभी अधिक चिह्नकी विशेषता हो तिसको शिशिर ऋतु कहते हैं इसमें वात और कफके विकार उपजते हैं ॥ ५४ ॥ और इस ऋतुमें गौरवर्णवाली स्त्रीसे भोग करना और अतिशय करके लाल रंगके वस्त्रोंको पहनना और कडुआ, चर्चरा, सलोना ये रस सेवने चाहिये और विशेष करकै खट्टा रस सेवना चाहिये और इस ऋतुमें पसीनोंका लाना और मर्दन करना नित्यप्रति अच्छी तरह करना चाहिये ऐसे करनेसे वात और कफके रोग नाशको प्राप्त हो जाते हैं और तिनोंके प्रकोपकी कौन कथा है ॥ ५५ ॥

अथ वसंतर्तुवर्णनम् ।

मुदितकोकिलकूजितकाननं मदनसूचितकिंशुकशोभितम् ॥ कुसुमसौरभरञ्जितभूधरं क्वणितमत्तमधुव्रतलालसम् ॥ ५६ ॥ मकरकेतनबाणसमाकुलं मुदितमेव समस्तमिदं जगत् ॥ मलयमारुत उष्णगुणान्वितः कफकरो हि वसन्तऋतुर्भवेत् ॥ ५७ ॥ कफजकोपविनाशनलालनं वमननावनरूक्षनिषेवणम् ॥ ५८ ॥ विविधः सुरतानन्दः सम्भ्रमः कफवारणः ॥ व्यायामश्रमसंरोधखिन्नविश्रान्तमानसः ॥ ५९ ॥ कटुक्षाराम्लाः सेव्याश्च शोषणं कफसम्भवम् ॥ एवं क्रियासमापन्नो नरः शीघ्रं सुखी भवेत् ॥ ६० ॥

अथ वसंतऋतुका लक्षण और उपचार—जहां आनंदित हुये कोयल पक्षी वनमें बोलै और कामदेवको सूचित करते हुये टेसूके फूलोंसे शोभा हो और फूलोंके गंधसे रंजित पर्वत होवैं और जहां खेलते हुये और मदवाले भौंरोंकी शोभाहो ॥ ५६ ॥ और कामदेवके बाणसे समाकुल और आनंदित जगत् होवै तिसको वसंतऋतु कहते हैं । यह सुन्दर वायुसे

और उष्ण गुणसे अन्वितहुआ वसंतऋतु होता है यह कफको उपजाता है ॥ ५७ ॥ इस ऋतुमें वमन–नस्य–रूखापदार्थ इन्होंको–सेवना कफके कोपको नाशता है ॥ ५८ ॥ अनेक प्रकारसे कामदेवका आनन्द और अच्छी तरह चलना फिरना कफको दूर करता है और इस ऋतुमें कसरतके परिश्रमको करनेसे स्वेदित और श्रांतमनवाला मनुष्य सुखी रहता है ॥ ५९ ॥ और चर्चरा, खारा, खट्टा ये रस सेवने चाहिये ये कफको शोषते हैं ऐसी क्रियाको प्राप्तहुआ मनुष्य शीघ्र सुखी होजाता है ॥ ६० ॥

अथ ग्रीष्मवर्णन ।

दीर्घवासरसंतीक्ष्णं ज्वालामालाकुलं जगत् ॥ दिशि दिशि मृगतृष्णा चोष्णं भृशं भवेद्रजः॥६१॥नैर्ऋतो मारुतो रूक्षः शीर्णपर्णा महीरुहः ॥ दग्धतृणाकुलारण्यं दावाग्निसङ्कुला दिशः ॥६२॥ एवं तु लक्ष्म ग्रीष्मस्य पित्तरक्तमुदीर्य्यते ॥ तस्मात् क्रियाप्रतीकारं कुर्य्यात् संशमनं भिषक् ॥ ६३ ॥ जलक्रीडादिवानिद्रासेवनं सुखसाधनम् ॥ श्यामारामारतं शस्तं किञ्जल्कं कुञ्जशीतलम् ॥ ६४ ॥ नीलनालदलोपेतः श्रमघ्नो व्यजनानिलः ॥ केतक्यामोदकुसुमं चन्दनोशीरशीतलैः ॥ ६५ ॥ लेपनं शीतलं सम्यग्धारागाराशयः पुनः ॥ एवं क्रियासमापन्नो ग्रीष्मे च सुखसङ्गमः ॥ ६६ ॥ इति आत्रेयभाषिते ऋतुचर्य्यानाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ ग्रीष्मऋतुका लक्षण और उपचार–बडे दिन होवैं और तीक्ष्ण होवैं और गरमीके समूहसे जगत् व्याकुल होजावै और दिशा दिशामें मृगतृष्णा अर्थात् विनाहुआ जलसा प्रतीत होवै और अति गर्मी और धूली उडै ॥ ६१ ॥ नैर्ऋतदिशाका रूखा वायु चलै–और वृक्षोंके पत्ते उडजावैं और दग्धहुये तृणोंके समूहसे व्याप्त वन होवै और दावाग्निसे संकुलित दिशा होजावैं ॥ ६२ ॥ तिसको ग्रीष्मऋतु कहते हैं इसमें पित्त और रक्त बढता है तिसवास्ते वैद्य रक्तपित्तको शमन करनेवाली क्रियाको करै ॥ ६३ ॥ इस ऋतुमें जलकी क्रीडा दिनमें शयन करना श्यामवर्णवाली स्त्रीसे भोग करना और कछुक शीतल वस्तुको सेवना ये पथ्य हैं ॥ ६४ ॥ नीले कमलके पत्तोंसे संयुक्त हुये पंखेकी पवन ग्रीष्मके परिश्रमको हरता है और केतकीके खिले हुये फूल, सफेद चंदन, खस, शीतलचीज इन्हों करकै ॥ ६५ ॥ अच्छी तरह लेप करना और फूहाराके स्थानमें वसना ऐसे क्रियाको प्राप्तहुआ मनुष्य ग्रीष्मऋतुमें सुखी रहता है ॥ ६६ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्रिअनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां प्रथमस्थाने ऋतुचर्य्यानाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः ।

अथातो वयोज्ञानं वक्ष्यते ।

वयश्चतुर्विधं प्रोक्तमुत्तमाधममध्यमम् ॥ हीनं चातुर्थिकं प्रोक्तं तानि वक्ष्यामि साम्प्रतम् ॥ १ ॥ बालं युवानं वृद्धं च मध्यमं च तथैव च ॥ चतुर्विधं वयः सम्यक् तत्समासेन वक्ष्यते ॥ २ ॥

इसके अनंतर वय अर्थात् अवस्थाके ज्ञानको कहेंगे--अवस्था चार प्रकारसे कही है उत्तम, अधम, मध्यम, हीन ऐसे तिन्होंको अब कहताहूं ॥ १ ॥ बालक, जवान, वृद्ध, मध्यम ऐसे चार प्रकारकी अवस्था है तिसको विस्तारसे कहता हूं ॥ २ ॥

मध्यमवयोलक्षणम् ।

पथि श्रान्तं श्रमक्षीणं बालस्त्री सुकुमारकम् ॥
एतेषां मध्यमा संज्ञा प्रोच्यते वैद्यकागमे ॥ ३ ॥

रस्तेमें श्रांतहुआ और श्रमसे क्षीणहुआ, बालक, स्त्री, सुकुमार अर्थात् कोमल मनुष्य, इन्होंकी वैद्यकशास्त्रमें मध्यम संज्ञा कही है ॥ ३ ॥

आषोडशाद्भवेद्बालः पञ्चविंशो युवा नरः ॥ मध्यमं सप्ततिर्यावत्परतो वृद्ध उच्यते ॥ ४॥ तथा च सुकुमाराश्चेत्येते मध्यमसंज्ञकाः॥वयसः षोडशाधिक्यं समयश्च भवेत्तु यः ॥ ५ ॥ आविंशति समाः प्राप्तो यथा च कृशदेहवान् ॥ पूर्णं वयः स्त्रियः प्राप्ता मध्यमे चाधमं वयः ॥ ६ ॥

सोलहवर्षतक बालक अवस्था होती है पचीस वर्षतक जुवान अवस्था होती है सत्तरवर्षतक मध्य अवस्था होती है इससे पर वृद्ध अवस्था है ॥ ४ ॥ मध्यमसंज्ञकोंमें जो कोमल हैं और सोलहवर्षसे ऊपर २० वर्षसे नीचे दुर्बल शरीरवाले हैं और पूर्ण अवस्थाके प्राप्त हुएतक स्त्री ये मध्यम अवस्थामेंभी अधम वय कहाते हैं ॥ ५ ॥ ६ ॥

पञ्चविंशत्समादूर्द्ध्वमापञ्चाशद्गतः पुमान् ॥ कर्मकठोरा वनिता दृश्यतेचोत्तमं वयः ॥ ७ ॥ सप्तविंशत्समादूर्द्ध्वं पञ्चाशत्संयुताः समाः ॥ बालवृद्धिस्तथा यस्य इत्येतदुत्तमं वयः ॥ ८ ॥

१ समादूर्द्ध्वं इत्यार्षः ।

पचीसवर्षसे उपरांत और पचाशवर्षतक और क्रियामें कठोर पुरुष और स्त्री रहते हैं यह उत्तम अवस्था दीखती है ॥ ७ ॥ सत्ताईस वर्षसे उपरांत और पचाशवर्षतक जिस मनुष्यके बालोंकी वृद्धिहोवे यहभी उत्तम अवस्था है ॥ ८ ॥

स्थूलोऽतिदीर्घकठिनस्तथा स्त्री बृहदोदरा ॥
इत्युत्तमोऽवयववाञ्ज्ञातव्यश्चोत्तमोत्तमः ॥ ९ ॥

स्थूल-अतिलंबा-कठोर-ऐसा पुरुष होवै और बडे पेटवाली स्त्री होवै ऐसे उत्तम अवयवों वाला मनुष्य होता है यह उत्तमोत्तम मनुष्य जानना ॥ ९ ॥

षष्ठ्यूर्द्ध्वमशीतिसमाः प्राप्तं हीनबलं वयः ॥
तदूर्द्ध्वं हीनहीनश्च विज्ञेयो वयसः क्रमः ॥ १० ॥

साठवर्षसे उपरांत अस्सीवर्षतक हीनबल अवस्था होती है और अस्सीवर्षसे उपरांत हीनसेभी हीन अवस्था होती है ऐसे अवस्थाका क्रम जानना चाहिये ॥ १० ॥

क्षीणाध्वश्रान्तसंखिन्नस्तथा रोगानुपीडितः ॥
रूक्षश्चातिकृशो ज्ञेयो बालसात्म्यमुदाहृतम् ॥ ११ ॥

क्षीण-मार्गमें श्रांतहुआ-खेदको प्राप्तहुआ-रोगसे पीडित हुआ-रूखा-अति कृश-ये मनुष्य बालककी प्रकृतिके समान प्रकृतिवाले होते हैं ॥ ११ ॥

सुकुमारोऽतिभीरुश्च मध्यकायस्त्रियोपि वा ॥
मध्यसात्म्योऽपि विज्ञेयो मध्यमो वयसात्म्यकः ॥ १२ ॥

कोमल शरीरवाला-अति डरनेवाला-मध्य शरीरवाला-स्त्री-मध्य प्रकृतिवाला-ऐसा मनुष्य मध्य अवस्थाकी प्रकृतिवाला जानना ॥ १२ ॥

पञ्चवर्षा स्मृता बाला मुग्धा च षट्समावधिम् ॥ द्वादशाब्दं स्मृता बाला मुग्धा स्यात्सप्तमावधिम् ॥ १३ ॥ प्रौढा च नववर्षाणिप्रगल्भाच त्रयोदश ॥ चतुर्विंशद्वर्षादूर्द्ध्वं सप्तत्रिंशतिमध्यगाः ॥ पूर्णं वयः स्त्रियः प्राप्ता इत्येतदुत्तमं वयः ॥ १४ ॥

पांच वर्षकी स्त्री बालक कहाती है और पांचसे आगे छः वर्षतक स्त्री मुग्धा कहाती है अथवा बारह वर्षकी स्त्री बाला कहाती है और बारह वर्षके आगे सात वर्षतक स्त्रीमुग्धा कहाती है ॥ १३ ॥ तिसके पीछे नव वर्षतक स्त्री प्रौढा कहाती है और तिसके पीछे तेरह वर्षतककी स्त्री प्रगल्भा कहाती है.और इतनेवयके बीचमेंही चौवीसवर्षसे उपरांत सैंतीसवर्षतक मध्य अवस्थाकी स्त्री पूर्ण अवस्थाको प्राप्त होती हैं यह उन्होंकी उत्तम अवस्था है ॥ १४ ॥

अथ प्रकृतिका ज्ञान ।

मध्यसात्म्यश्च स्थूलः स्याद्बलवान् सत्त्ववान्नरः ॥
सचाऽप्युत्तमसात्म्यः स्याद्बलवत्समुपाचरेत् ॥ १५ ॥

मध्य प्रकृतिवालाहो और स्थूलहो बलवालाहो सत्ववालाहो ऐसाही मनुष्य उत्तम प्रकृतिवाला होता है पीछे यह मनुष्य अच्छे २ उपचार करै ॥ १५ ॥

अथ वातादिप्रकृतयः ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि प्रकृतिज्ञानमुत्तमम् ॥
वातिकं पैत्तिकं चैव श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् ॥ १६ ॥

इसके अनंतर उत्तम रूपी प्रकृतिज्ञानको कहताहूं वातिक अर्थात् वातकी प्रकृति पैत्तिक अर्थात् पित्तकी प्रकृति श्लैष्मिक अर्थात् कफकी प्रकृति सान्निपातिक अर्थात् सन्निपातकी प्रकृति ऐसे हैं ॥ १६ ॥

अथ वातप्रकृतिलक्षणम् ।

यः कृष्णवर्णश्चपलोऽतिसूक्ष्मः केशाल्परूक्षो बलवान् क्षमः स्यात् ॥ सूक्ष्मातिदन्तो नखवृद्धिमेति दीर्घस्वनश्चङ्क्रमणक्षमोऽसौ ॥ १७ ॥ दीर्घाक्रमो लोलुपहीनसत्त्वस्तथैव चाम्लीरसभोजनेच्छुः ॥ संस्वेदनेनातिविमर्दनेन सौख्यं समागच्छति वातलो नरः ॥ १८ ॥

अथ वातकी प्रकृतिका लक्षण—जो कृष्णवर्णवालाहो चपलहो अतिकृश शरीरवालाहो अल्पबालोंवालाहो रूखाहो बलवालाहो समर्थहो अतिसूक्ष्म दंतोंवालाहो और नखोंकी वृद्धिको प्राप्त होवै बडा और लंबा, बोलनेवालाहो चलनेफिरनेमें समर्थ हो ॥ १७ ॥ और बहुत कूदनेवालाहो लोभीहो सत्वसे वर्जितहो और खट्टे रसको खानेकी इच्छावालाहो और अच्छी तरह पसीना देनेसे तथा मर्दन करनेसे सुखको प्राप्त होवै ऐसा मनुष्य वातकी प्रकृतिवाला होता है ॥ १८ ॥

अथ पित्तप्रकृतिलक्षणम् ।

गौरातिपिङ्गः सुकुमारमूर्त्तिः प्रीतः सुशीते मधुपिंगनेत्रः ॥ तीक्ष्णोऽपि कोऽपि क्षणभङ्गुरश्च त्रासी मृदुर्गात्रमलोमकं स्यात् ॥ १९ ॥ लौल्यप्रियस्तिक्तरसानुभोजी द्वेषी च तीक्ष्णे च नवोष्णसेवी ॥ स्तुतिप्रियो दन्तविशुद्धवर्णो जातः स पित्तप्रकृतिर्मनुष्यः ॥ २० ॥

अथ पित्तकी प्रकृतिका लक्षण—गौरवर्णवालाहो अति पिंगवर्णसे संयुक्तहो और सुकुमार मूर्तिवालाहो प्रीतिवालाहो शीतल पदार्थको चाहनेवालाहो मधसरीखे तथा पिंगवर्णके नेत्रोंवालाहो तेज स्वभाववालाहो और कोईक क्षणभंगुरभीहो उद्वेगसे संयुक्तहो कोमलहो शरीरमें केश बहोत नहीं हो ॥ १९ ॥ और चंचलपनेमें प्रियता करनेवाला हो कडुआ रसको खानेवालाहो वैर करनेवालाहो तेजसे संयुक्तहो नवीन और गरम वस्तुको सेवनेवालाहो अपनी स्तुतिको चाहनेवालाहो दंतोंसे विशेष करकै शुद्धवर्णवालाहो ऐसा मनुष्य पित्तकी प्रकृतिवाला होता है ॥ २० ॥

अथ कफप्रकृतिलक्षणम्।

सुस्निग्धवर्णः सितनेत्रतृप्तः श्यामः सुकेशो नखदीर्घरोमा ॥
गम्भीरशब्दः श्रुतशास्त्रनिद्रातन्द्राप्रियस्तिक्तकटूष्णभोजी २१॥
स मांसलः स्निग्धरसप्रियश्च सगीतवाद्योऽतिसहिष्णुशीतः ॥
व्यायामशीलो रतिलालसोऽसौ भवेत् कफस्य प्रकृतिर्मनुष्यः२२॥

अथ कफकी प्रकृतिका लक्षण—सुंदर स्निग्ध वर्णवालाहो और सपेद नेत्रोंवालाहो तृप्तहो श्यामवर्णवालाहो सुंदर बालोंवालाहो लंबे नख और रोमोंसे संयुक्तहो गंभीर बोलनेवालाहो और वेद, शास्त्र, नींद, तंद्रा, इन्होंमें प्यार करनेवालाहो कडुआ और चर्चरेको भोजन करनेवालाहो ॥ २१ ॥ और मोटाहो स्निग्धरसको चाहनेवालाहो गीत और बाजेको पसंद करनेवालाहो अतिसहनेमें शीलस्वभाववालाहो कसरतको करनेवालाहो विषयभोगमें इच्छावालाहो ऐसा मनुष्य कफकी प्रकृतिवाला होता है ॥ २२ ॥

अथ समप्रकृतिलक्षणम्।

संमिश्रवर्णोऽतिसुदीप्तगात्रो गम्भीरधीरोऽतिविदीर्णरोमा ॥
रामाप्रियो भारसहोऽतिमिश्रो भोगेन युक्तः समता प्रकृत्याः॥२३॥

कई प्रकारसे मिलेहुये वर्णवाला और अतिसुंदर प्रकाशित अंगोंवाला और गंभीरपनेमें धीर और अति विदारितहुये रोमोंवाला और स्त्रीसे प्यार करनेवाला और भार अर्थात बोझेको सहनेवाला और सब लक्षणोंसे अति मिलाहुआ और भोगको भोगनेवाला ऐसा मनुष्य समप्रकृतिवाला होता है ॥ २३ ॥

अथ दिशाभेदेन वातगुणदोषाः।

(पूर्वदिशाका वायु)

अथान्तरं वच्मि मरुत्प्रवाहं पूर्वं तथा पश्चिमदक्षिणोत्तरम् ॥ तेषां

गुणान् दोषविकोपनं च पृथक्पृथङ्गं गदतः शृणु त्वम् ॥ २४ ॥

शीतोऽतिमाधुर्य्यगुणः प्रयुक्तो वातप्रकोपी बलकृद्विशेषात् ॥
वाताधिकानां व्रणशोफिनाञ्च प्राचीप्रवृत्तः पवनो न शस्तः २५

अथ आठ दिशाओमें प्रवृत्तहुए वायुके गुणदोषवर्णन–इसके अनंतर वायुके प्रवाहको कहताहूं पूर्व–पश्चिम–दक्षिण–उत्तर–इनदिशाओंके वायुके गुण–दोष–कोप–इन्होंको कहतेहुये मेरेसे पृथक् २ सुन ॥ २४ ॥ शीतल स्वभाववाला और अतिमधुरपनेके गुणोंसे युक्त और वातको कोपनेवाला और विशेष करके बलको करनेवाला ऐसा पूर्वदिशाका वायु है यह वातकी अधिकतावालोंको और घावपै शोजावालोंको श्रेष्ठ नहीं है ॥ २५ ॥

आग्नेयदिशाका वायु।

किञ्चित्सतिक्तो मधुरान्वितः स्यात् कफः समीरोद्भवरोगकारी ॥
सुशीतलः शोफवतां व्रणानां शस्तो न चाग्नेयसमीरणश्च ॥ २६ ॥

कछुक कडुआहो मधुररससे अन्वित है कफ और वातसे उपजे रोगोंको करता है सुंदर शीतल है शोजावाले घावोंको अच्छा नहीं है ऐसा आग्नेयदिशाका वायु है ॥ २६ ॥

दक्षिणदिशाका वायु।

तिक्तः कषायो मधुरातिमन्दः सुगन्धसंशीतगुणैः प्रकृष्टः॥ वद-
न्ति संज्ञां मलयानिलेति प्रकृष्टरामाजनचित्तहारी ॥ २७॥ मनो-
भवस्य प्रकरो मरुत्स्यात्कफोद्भवः सम्भवति प्रचारः ॥ न चाति
शीतो न तथोष्णको वा शुभश्च याम्यां प्रभवः समीरः ॥ २८ ॥

कडुआ हो कसैलाहो मधुररससे अतिमंद है और सुगंध तथा शीतल गुणोंकरकै संयुक्तहो और मलयानिलसंज्ञावालाहो यह स्त्रियोंके चित्तको हरता है ॥ २७ ॥ और कामदेवको जगाताहो कफके रोगोंको करताहो और अतिशीतल नहीं हो और अतिगर्म नहीं हो और शुभ हो ऐसा दक्षिणदिशाका वायु है ॥ २८ ॥

नैर्ऋत्यदिशाका वायु।

रूक्षोष्णवातः प्रथमः समीरः कट्वम्लपित्तासृजि दोषकारी ॥
प्रशोषणो देहबलस्य वायुः कफान्वितो नैर्ऋतिकः समीरः॥२९॥

रूखाहो और गर्मवायुसे संयुक्तहो और वायुको शांत करताहो और कटु, अम्ल, पित्त, रक्त, इन्होंमें दोषको करताहो और देहके बलको शोषनेवालाहो और कफसे अन्वितहो ऐसा नैर्ऋतदिशाका वायु होता है ॥ २९ ॥

पश्चिमदिशाका वायु ।

अथातिसूक्ष्मो मरुतः प्रशस्तो नूनं प्रतीच्यास्तु दिशः प्रवृत्तः ॥
वायुस्तथोदीरति रक्तपित्तं शस्तो व्रणानां कफशोफिनां वा॥३०॥

पश्चिमदिशाका अतिसूक्ष्म वायु श्रेष्ठ है और रक्तपित्तको बढाता है यह वायु घाववालोंको और कफसे उपजे शोजेवालेको श्रेष्ठ है ॥ ३० ॥

वायव्यदिशाका वायु ।

वायव्यजातो मरुतः प्रशस्तः कषायसंशुष्कगुणप्रसन्नः ॥
करोति वातस्य वशं नराणां शस्तो न निन्द्यो व्रणशोफिनाञ्च॥३१

वायव्यदिशाका वायु श्रेष्ठ है कसैला और अति सूखा गुणसे संपन्न है और मनुष्योंको हवाके वशमें करता है और घावपै शोजेवालोंको श्रेष्ठ है और निंदित नहीं है ॥ ३१ ॥

उत्तरदिशाका वायु ।

स्वादुः कषायश्च कफप्रकोपी वायुः कुबेरस्य दिशः प्रवृत्तः ॥
करोति मेघागमनं जलस्य शीतो न चोष्णो न च निन्द्य एषः३२॥

उत्तर दिशाका वायु सजल मेघको लाता है शीतल है गर्म नहीं है कसैला है स्वादु है कफको कोपता है यह निंदाके योग्य नहीं है ॥ ३२ ॥

ऐशानदिशाका वायु ।

शीतोतिगौल्यः कफवातकोपं करोति चैशानदिशः प्रवृत्तः ॥
शस्तश्च नासौ व्रणशोफकासिनां क्षमस्तथा श्वासविकारिणाञ्च३३

ईशान दिशाका वायु शीतलहै चंचल है कफ और वातके कोपको करता है और घाव-शोजा-खांसी-क्षय-श्वास रोग-इनविकारवालोंको अच्छा नहीं है ॥ ३३ ॥

अन्यपंचविधवायुगुणाः ।

वस्त्रं नानाविधं चर्म वैणवं तालव्यञ्जनम् ॥
उशीरं शिखिपिच्छन्तु प्रत्येकेन गुणोत्तमाः ॥ ३४ ॥

अथ वस्त्रआदिके वायुका गुणदोषकथन—अनेक प्रकारका वस्त्र, चाम, बांसका पंखा, ताडका पंखा, खसकी टट्टी अथवा पंखा, मोरके पंखोंका पंखा, ये सब हवाके करनेमें एक एक करके गुणोंमें उत्तम हैं ॥ ३४ ॥

वस्त्रवायुगुणः ।

वस्त्रप्रवृत्तो मरुतो न शस्तो व्रणशोफिनाम् ॥ रक्तवासःसमुत्पन्नं

विशेषेण तु वर्जयेत् ॥ ३५ ॥ करोति कफरक्तस्य कोपनं बहुरोगकृत्॥श्रमग्लानिपिपासासु तन्द्रानिद्राकरो भृशम् ॥ ३६ ॥

वस्त्रकी हवा घावपै शोजेवालेको अच्छी नहीं है और लाल वस्त्रसे उपजी हुई हवाको विशेष करकै त्यागै ॥ ३५ ॥ क्योंकि लाल वस्त्रकी हवा कफ रक्तको कुपित करती है और बहुतसे रोगोंको उपजाती है और परिश्रम-ग्लानि-पिपासा-तंद्रा-नींद इन्होंको अति करतीहै ॥ ३६॥

वेणुवायुगुणः।

वैणवं व्यजनं तन्द्रानिद्राकरणमेव च ॥
रूक्षोऽतिकषायरसो न च वातप्रकोपनः ॥ ३७ ॥

बाँसका पंखा तंद्रा और नींदको करता है रूखा है अतिकसैला रसवाला है और वातको कोपित नहीं करता है ॥ ३७ ॥

कांस्यपात्रवायुगुणः।

कांस्यपात्रमरुद्रूक्षः सोष्णो वातस्य शान्तिकृत् ॥
दाहश्रमघ्नः स्वेदघ्नो निद्रासौख्यकरो नृणाम् ॥ ३८ ॥

कांस्यपात्रकी हवा रूखी है गरम है वातको शांत करती है दाह और श्रमको हरती है और मनुष्योंके नींद और सुखको करती है ॥ ३८ ॥

तालपत्रवायुगुणः।

तालपत्रकरम्भाया दलस्य व्यजनो हिमः ॥ मधुरोऽतिश्रमघ्नः स्यादार्द्रत्वात्कफकोपनः ॥ ३९ ॥ निद्राकरः प्रीतिकरः शोकरोगविकारहा॥दाहपित्तश्रमग्लानिनाशनो भ्रमशान्तिकृत् ॥४०॥

ताडका पत्ता और केलाका पत्ताका पंखा इनकी हवा शीतल है मधुर है अतिश्रमको हरती है और गीलेपनेसे कफको कोपती है ॥ ३९ ॥ और नींदको करती है मीतिको करती है शोक, रोग, विकार इन्होंको नाशती है और दाह, पित्त, परिश्रम, ग्लानि इन्होंको नाशती है और भ्रमकी शांतिको करती है ॥ ४० ॥

व्यजनवायुगुणः।

उशीरमूलरचितं व्यजनं शिखिपिच्छकैः ॥ व्यजनेन सुगन्धः स्यान्मन्दशीतगुणात्मकः ॥ ४१ ॥ ग्लानिमूर्च्छाभ्रमशोषविसर्पविषदर्पहा ॥ इति पञ्चविधो वायुरुपायेन कृतो नृणाम् ॥ ४२॥

खसकी जडसे और मोरके पंखोंसे रचे हुवे पंखेकी हवा सुगंधको देती है कछुक शीत गुणवाली है ॥ ४१ ॥ और ग्लानि-मूर्च्छा-भ्रम-शोष-विसर्प-विष इन्होंको नाशती है ऐसे मनुष्योंके लिये उपायसे कियाहुआ वायु पांचमकारका है ॥ ४२ ॥

षड्तुओंमें वायुदिशा ।

शिशिरे पूर्वकृद्वायुराग्नेयो हेमन्ते मरुत् ॥ वसन्ते दक्षिणो वायुर्ग्रीष्मे नैर्ऋत्यकस्तथा ॥ ४३ ॥ वर्षासु पश्चिमो वायुर्वायव्यः शरदि स्मृतः ॥ शिशिरे च हेमन्ते च कथितश्चोत्तरोऽनिलः॥४४॥

शिशिर अर्थात् माघ फाल्गुनमें पूर्वका वायु अच्छा है, हेमंत अर्थात् मृगशिर पौषमें आग्नेय दिशाका वायु अच्छा है, वसंत अर्थात् चैत्रवैशाखमें दक्षिणका वायु अच्छा है, ग्रीष्म अर्थात् ज्येष्ठ आषाढमें नैर्ऋतका वायु अच्छी है ॥ ४३ ॥ वर्षा अर्थात् श्रावण भादुआमें पश्चिमका वायु अच्छा है, शरद अर्थात् आश्विन कार्तिकमें वायव्यदिशाका वायु अच्छा है शिशिर और वसंतऋतुमें उत्तरका वायुभी अच्छा है ॥ ४४ ॥

दिनमें षड्तुओंके उपचार ।

अपराह्णे वर्षा वदन्ति निपुणास्तस्मिन्निशीथे शरत् प्रोक्तः शैशिरिकस्ततो हिमऋतुः सूर्य्योदयादग्रतः ॥ मध्याह्ने च तथा वदन्ति निपुणा ग्रीष्मो ऋतुः स्यात्ततो वासन्तः कथितो ऋतुस्तु मुनिभिः पूर्वापराह्णे सदा ॥ ४५ ॥

दिनके तीसरे पहरमें वर्षाऋतु होता है अर्द्ध रात्रिमें शरदृतु होता है और आधीरातके पीछे शिशिर ऋतु होता है सूर्यके उदयके समय हेमंतऋतु होता है दुपहरके समयमें ग्रीष्म ऋतु होता है दिनके पूर्वभागमें वसंतऋतु होता है ॥ ४५ ॥

अथ सविषवायुः ।

कार्तिके मार्गशीर्षे वा माघे चाषाढसंज्ञके ॥
ऋतुसन्धौ च हेमन्ते सविषः स्यात्तु मारुतः ॥ ४६ ॥

कार्तिक, मार्गशीर्ष, माघ, आषाढ, इन्होंमें और छःऋतुओंके सन्धिमें तथा हेमंतऋतुमें वायु सविष होता है ॥ ४६ ॥

स यस्मिन्नगरे देशे ग्रामे वाऽनगरेऽपि वा ॥ संस्पृशेदुल्बणो वायुर्गोमनुष्येभवाजिनाम् ॥४७॥तिलकं गोषु जानीयाद्यक्ष्माणं मानुषेषु च ॥ गजेषु पावकं विद्याद्धयानां वेद्य उच्यते ॥ ४८ ॥

जिस नगरमें जिस देशमें अथवा जिस गाममें दारुणरूप बिगडाहुआ वायु जब गाय-मनुष्य-हस्ती-घोडा इन्होंको छुहता है ॥ ४७ ॥ तब गायोंमें तिलक नामरोग उपजता है

१ अपराह्णे वर्षा इति छन्दोभंगे: नचार्षत्वेनदोषः अन्यत्रापि यत्र यत्र छन्दोभंगो दृश्यते तत्र तत्र सर्वत्रार्षोज्ञेयः ।

और मनुष्योंमें राजरोग उपजता है और हस्तियोंमें पावक अर्थात् अग्नि उपजता है और घोडोंमें वेद्य पीडा उपजती है ॥ ४८ ॥

रक्षणीयं गजे पित्तं श्लेष्मा वाजिषु सर्वदा ॥
पवनोऽयं मनुष्याणां प्रायो रक्षेत सर्वदा ॥ ४९ ॥

कुशल वैद्यने हस्तीमें पित्तकी रक्षा करनी और घोडोंमें सबकाल कफकी रक्षा करनी और सब कालमें विशेष करके मनुष्योंमें वायुकी रक्षा करनी ॥ ४९ ॥

अथ दोषोंके वायुकोपका उपशम।

वर्षे[1] वायुः कुप्यतेऽन्तः शरत्सु लीनो वायुः कुप्यते पित्तरोगे॥लीयेत्पित्तं शैशिरे श्लेष्मकुञ्जे हेमन्ते वा चीयमानस्तथापि ॥५०॥ कोपं याति श्लेष्मरोगो वसन्ते तस्माच्छान्तिः श्लेष्मरोगस्य चोष्णे॥ पित्तं यायात्कोपतां ग्रीष्मकाले दृष्टा शान्तिः पैत्तिकी वार्षिके च ॥ ५१ ॥

वर्षाऋतुमें वायु कोपता है और शरदृऋतुमें पित्तमें वायु अन्तर्लीन होजाता है और पित्त कुपित होता है, शिशिरऋतुमें कफके समूहमें पित्त लीन होजाता है अथवा हेमंतऋतुमें संचित हुआ पित्त शिशिरऋतुमें लीन होजाता है ॥ ५० ॥ वसंतऋतुमें कफका रोग कोपको प्राप्त होता है इसवास्ते गर्मसमयमें कफके रोगकी शांति होती है और ग्रीष्मऋतुमें पित्त कोपको प्राप्त होता है और वर्षाऋतुमें पित्तकी शांति देखी है ॥ ५१ ॥

अथ वायुका कोप।

अधोवातमूत्रपुरीषस्य रोधात् कषायातिशीतान्निशाजागरेषु॥ व्यवायेऽथ वाहःश्रमाद्वातिभुक्त्या ध्वनि प्रायशो भाषणेनातिभीत्या ॥ ५२ ॥ विरूक्षैरतिक्षारातिक्तैः कटूभिस्तथा यानदोलाश्वक्रोष्ट्रे रथे वा ॥ खरे कुञ्जरे मन्दिरारोहणेनोपवासे भवेन्मारुतस्य प्रकोपः ॥ ५३ ॥ शीते दिने दुर्दिने स्नानपीतेऽपराह्णे निशाजागरे वासरे वा ॥ वर्षासु वै केवलं याति कोपं मरुत्सेवितो याति भुक्तस्य जीर्णम् ॥ ५४ ॥ मसूराः कलायाश्च निष्पावकाश्च महामाषशुभ्रा यवाश्चामलाः स्युः॥ महाचावलाः कृष्णकान्या प्रदिष्टा हिमाः कङ्गुनीवाररक्ताश्च शालयः ॥ ५५ ॥ तथा कोरदूषकः

---

1 वर्षशब्दः अकारान्तोपि वृष्टिवाचकः (श. स्तो;)

श्यामाक एतैः कृतं चौदनं वा यवागूश्शृतं वा ॥ कलिङ्गानि वास्तूकाचिल्लीकपूती पलाण्डुस्तथा गृञ्जनं कन्दशाकम् ॥ ५६ ॥ इमान् सेवितात्यर्थमेति प्रकोपं समीरस्य चोक्तः सुरासम्भवस्तु ॥ ततो यत्नतो रक्षणीयं मनुष्यैः शुभं चेहसे त्वं सदा रोगशान्तिम् ॥ ५७ ॥

अधोवात--मूत्र--विष्ठा--थूकआदिके रोकनेसे कसैला और शीतल पदार्थको सेवनेसे और रात्रिमें जागनेसे मैथुनके करनेसे नित्यप्रति श्रम करनेसे अति भोजनको खानेसे और मार्गमें अति चलनेसे ज्यादे बोलनेसे अति भयसे ॥ ५२ ॥ और रूखे पदार्थसे और अत्यंतसर--कडुआ--चर्चरा इन्होंसे और डोला अर्थात् पीनस--घोडा, ऊंट, रथ, गधा, हस्ती इन्होंपै चढनेसे अथवा स्थानमेंही रहनेसे वायुका प्रकोप होता है ॥ ५३ ॥ और शीतल दिनमें और मेघआदिसे आच्छादितहुये दुर्दिनमें और दुपहरके पीछे स्नान करनेसे तथा प्रथम पान करनेसे और रात्रिके जागनेमें और वर्षाऋतुमें दिनमें वायु कोपको प्राप्त होता है और सेवित किया वायु कियेहुये भोजनको जराता है ॥ ५४ ॥ मसूर, मटर, मोठ, चौला, जुवार, जव, मोटेचावल, कृष्णअन्न, शीतलअन्न, कांगनी, नीवार धान्य, लालअन्न, तूरीअन्न, ॥ ५५ ॥ कोदूअन्न, शामक, कियेहुये चावल अर्थात् सेंई—गुडयाणीमें बनाये चावल—इंद्रजव—वथुवा—चाकवत अर्थात् वथुवा विशेष, प्याज, गाजर, कंदशाक ॥ ५६ ॥ इन्होंको ज्यादे सेवनेसे वायुका प्रकोप होता है इसवास्ते मनुष्योंने जत्नसे वायुकी रक्षा करनी और हे पुत्र ! जो तू सब कालमें शुभ और रोगकी शांतिको चाहता है तो वायुकी रक्षा करता रह ॥ ५७ ॥

अथ पित्तप्रकोपनिदानम्।

अत्युष्णकट्वम्लरूक्षैर्विदाहे ससीधूसुरासेवनेनोपवासैः ॥ घर्मेण क्रोधेन वा स्वेदनेन व्यवायेन वा याति कोपश्च पित्तम् ॥ ५८ ॥ कुलित्थाढकीयूषमूला कशिग्रुशठीसर्षपाराजिकाशाकमेव ॥ निशाजागरेणापि युद्धे श्रमे वा घनान्ते शरत्सु प्रकोपः प्रदिष्टः ५९ ॥ अम्लेन वापि चोष्णकाले शरत्सु भृशं वासरे मध्यमे वा निशीथे ॥ जीर्णे रसे भुक्तमात्रे प्रकोपः प्रदिष्टो विदैः कोविदैः पैत्तिकः स्यात् ॥ ६० ॥

अतिगर्म, चर्चरा, खट्टा, रूखा, इन्होंको सेवनेसे और दाहमें सीधू तथा मदिराको सेवनेसे गर्मीमें और क्रोधमें पसीने और भोग करनेसे पित्त कोपको प्राप्त होता है ॥ ५८ ॥ कुलथी,

और अरहरका यूष और मूली, सहिंजना, कचूर, सरसों, राई, इन्होंका शाक अथवा इन्होंसे संयुक्त शाकको खाना और वर्षाऋतुमें रात्रिका जागना-युद्ध करना, परिश्रम करना-इन्होंसे शरदृऋतुमें पित्त कोपको प्राप्त होता है ॥ ५९ ॥ खट्टे पदार्थसे और गरमसमयमें और अतिशय करकै दिनके मध्यभागमें और अर्ध रात्रिमें और भोजनका रस जीर्ण होते समय शरदृऋतुमें पित्तका प्रकोप होता है ॥ ६० ॥

अथ कफप्रकोपनिदानम्।

निशाजागरे वासरे वातिनिद्रा सुशीतोदसंसेवने शीतले वा ॥ पयःपानपीयूषमिक्षुस्तिलैस्तु तथा गृञ्जनैः कन्दशाकैरथापि ॥ ६१ ॥ सदा सेवितैर्वास्तुकैश्चाणुमत्स्यैर्दधिपिच्छिलैर्माषमद्यै-र्गुरूभिः ॥ अतिस्निग्धसंसेवनैर्भोजनेषु प्रदिष्टः कफस्य प्रकोपो वसन्ते ॥ ६२ ॥ दिनान्ते प्रभाते निशान्ते नरस्य प्रकोपः प्रदि-ष्टोपि भुङ्क्ते न जीर्णे ॥ प्रदिष्टो बुधैः कोविदैरेव रोगः कफो-त्पत्तिं जानीहि कष्टप्रयुक्ताम् ॥ ६३ ॥ सशीतेऽथवा शीतकाले निशान्ते नरस्य प्रकोपः प्रदिष्टोऽपि भुक्तेः ॥ न जीर्णे प्रदिष्टो बुधै रोगवेगो निदानं कफस्येति चोक्तं सुधीभिः ॥ ६४ ॥

रात्रिमें जागनेसे और दिनमें अति शयन करनेसे और सुंदर शीतल पानीको तथा शीतल देशको सेवनेसे और दूध-नवीन व्याई गायका दूध-ईख-तिल-गाजर-कंदशाक इन्होंको सेवनेसे ॥ ६१ ॥ और बकराके अंडे तथा मछलीको सदा सेवनेसे और दही-कफकारा पदार्थ-उडद-मदिरा-भारी पदार्थ-अतिचिकना पदार्थ इन्होंको सेवनेसे वसंतमें दुष्टहुये कफका कोप होता है ॥ ६२ ॥ दिनके अंतमें--प्रभातमें--रात्रिके अंतमें--भोजनकिये अन्नको नहीं जीर्ण होनेमें कफका कोप होता है ऐसे कफकी उत्पत्तिको कष्टसाध्य जानो ॥ ॥ ६३ ॥ शीतल देशमें--शीतल समयमें--रात्रिके अंतमें--भोजनको नहीं जीर्ण होनेमें-मनुष्यके कफका प्रकोप बुद्धिमानोंने कहा है ॥ ६४ ॥

अथ दोदोषोंके कोपकी उत्पत्ति।

यदा विपर्य्यासगते ऋतौ च प्रकोपनं यस्य यथा प्रदिष्टम् ॥ तत्सेवमानस्य नरस्य रोगः स्याद्द्वन्द्वजो नाम विकारका-री ॥ ६५ ॥ यस्मिन्नृतौ वातविकोप उक्तस्तस्मिन्यदि श्लेष्मवि कोपनानि ॥ संसेवते वा मनुजस्तदास्य भवेत्प्रकोपः कफवात-

योश्च ॥ ६६ ॥ यस्मिन्मरुत्कुप्यति सेवते यः पित्तस्य कोपप्रकराणि यानि ॥ विपर्य्ययो वा ऋतुधान्ययोश्च स पित्तवातप्रभवस्तदा स्यात् ॥ ६७ ॥

जब विपरीतपनेको ऋतु प्राप्त हो जावै तब जिसका कोप जैसे कहा है तिसको सेवनेवाले मनुष्यके द्वंद्वज अर्थात् दोदोषोंसे उपजा रोग उत्पन्न होता है ॥ ६५ ॥ जिस ऋतुमें वायुका कोप कहा है तिसहीऋतुमें जो कफको कुपितकरनेवाले पदार्थोंको मनुष्य सेवै तब तिस मनुष्यके. कफका और पित्तका कोप होता है ॥ ६६ ॥ जिस ऋतुमें वायु कोपता है तिस ऋतुमें पित्तको कुपित करनेवाले पदार्थोंको सेवै अथवा ऋतुका और ऋतुके योग्य अन्नका विपरीतपना होवै तब पित्त वातसे उपजा रोग होता है ॥ ६७ ॥

अथ सन्निपातकी उत्पत्ति ।

विपर्य्यासागते काले रसे विपारिसेविते ॥ तदा स्यात्सान्निपातो हि रोगोपद्रवकारकः ॥ ६८ ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे दोषप्रकोपो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

जब काल विपरीतपनेसे वर्तै और रसभी विपरीतपनेसे सेवित कियाजावै तब सन्निपात उपजता है यह रोगमें उपद्रव करता है ॥ ६८ ॥ इति बुधाशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्रिअनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां प्रथमस्थाने दोषप्रकोपो नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ६.

अथ रसोंके गुणदोषका वर्णन ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि रसानाञ्च गुणागुणान् ॥
येन विज्ञानमात्रेण रसानां गुणविद्भवेत् ॥ १ ॥

इसके अनंतर रसोंके गुण और दोषको कहताहूं: जिसको जाननेसे रसोंके गुणको जाननेवाला होवै ॥ १ ॥

छः रस ।

मधुरः कषायस्तिक्तोम्लकश्च क्षारः कटुः षड्रसनामधेयम् ॥
द्वयं द्वयं वातकफप्रकोपनं द्वयं तथा पित्तकरं वदन्ति ॥ २ ॥

मधुर, कसैला, कडुआ, खट्टा, खारा, चर्चरा ऐसे छः प्रकारके रस हैं इन्होंमें दो दो रस वात और कफको कोपते हैं और दो रस पित्तको करते हैं ॥ २ ॥

षड्रसगुणदोषवर्णनम्।

क्षारः कषायपवनः प्रकोपी मधुरोऽथ तिक्तः कफकोपनश्च ॥
कट्वम्लकौ पित्तविकारकारिणौ कट्वम्लकौ वातशमौ प्रदिष्टौ ॥३॥
पित्तस्य नाशी मधुरः सतिक्तः कटूकषायौ शमनौ कफस्य ॥
अन्योन्यमेतच्छमनं वदन्ति परस्परं दोषविवृद्धिमन्तः ॥ ४ ॥

खारा और कसैला रस वायुको कोपता है मधुर और कडुआ रस कफको कोपता है चर्चरा और खट्टा रस पित्तके विकारको करता है और वातको शांत करता है ॥ ३ ॥ मधुर और कडुआ रस पित्तको नाशता है चर्चरा और कसैला रस कफको शांत करता है आपसमें दोषके विवृद्धिवाले आपसमें मिश्रितहुये शमनको कहते हैं ॥ ४ ॥

अथ रसगुणोंके गुणकर।

मधुरकटुकावन्योन्यस्य प्रकर्षविधायिनौ लवणवियुतोऽम्लीकः प्रोक्तो विशेषरसानुगः ॥ अविकृतस्तथा तिक्तैर्युक्तः कषायरसो लघुर्भवति सुतरां स्वादुः श्रेष्ठो गुणं प्रकरोति वै ॥ ५ ॥

मधुर और चर्चरा रस आपसके प्रकर्षको करते हैं नमकसे विशेष करके युक्तहुआ खट्टा रस विशेष रसके पश्चात् गमन करता है विकारको नहीं प्राप्त होता और कडुआ रससे युक्तहुआ ऐसा कसैला रस हलका होता है और अच्छीतरह स्वादु रस सेवितकिया जावै तो गुणको करता है ॥ ५ ॥

वातादिविरुद्धरस।

कटुतिक्तकषायाश्च कोपयन्ति समीरणम् ॥
कट्वम्ललवणाः पित्तं स्वाद्वम्ललवणाः कफम् ॥ ६ ॥

चर्चरा, कडुआ, कसैला ये रस वायुको कोपते हैं. चर्चरा, खट्टा, सलोना येरस पित्तको कोपते हैं. मधुर, खट्टा, सलोना ये रस कफको कोपते हैं ॥ ६ ॥

दोषोंके विरोधी रसोंका वर्णन।

समीरणे तु नो देयाः कटुतिक्तकषायकाः ॥
पित्ते कट्वम्ललवणाः स्वाद्वम्ललवणाः कफे ॥ ७ ॥

चर्चरा, कडुआ, कसैला ये रस वायुमें नहीं देने चाहिये. चर्चरा, खट्टा, सलोना ये रस पित्तमें नहीं देने चाहिये मधुर, खट्टा, सलोना ये रस कफमें नहीं देने चाहिये ॥ ७ ॥

वातादिकोंमें रसयोजना।

स्वाद्वम्ललवणान्वाते तिक्तस्वादुकषायकान् ॥
पित्ते कफे तिक्तकटुकषायान् योजयेद्रसान् ॥ ८ ॥

मधुराम्लौ क्षारकटुकौ तिक्तकषायकौ चेत्येतावन्योन्यरसविरोधिनौ न भवेताम् ॥

वायुमें मधुर, खट्टा, सलोना ये रस युक्त करने. पित्तमें कडुवा, मीठा, कसैला ये रस युक्त करने. कफमें कडुवा, चरपरा, कसैला ये रसयुक्त करने ॥ ८ ॥ मधुर रस और खट्टा रस अविरोधी हैं खारा और चर्चरा रस अविरोधी हैं कडुआ और कसैला रस अविरोधी हैं ॥

अथ मधुर रसके वीर्य्यका वर्णन।

यः स्वादुः श्रमशोषहारिबलकृद्वीर्य्यप्रदः पुष्टिदः प्रह्लादं रसने करोति तदनु श्लेष्मप्रवृद्धिं ततः ॥ पित्तानां दमनः श्रमोपशमनो वृष्यो नराणां हि तः क्षीणानां क्षतपाण्डुनेत्ररुजसंहर्त्ता भवेन्माधुरः ॥ ९ ॥

जो स्वादुहो श्रम और शोषको हरताहो बलको करताहो वीर्य्यको देनेवालाहो पुष्टिको देताहो आनंदको देताहो जीभमें कफकी वृद्धिको करताहो पित्तको हरताहो परिश्रमको शांत करताहो मनुष्योंको पुष्ट करताहो क्षीणमनुष्योंके कल्याण करनेवालाहो और घाव–पांडुरोग–नेत्ररोग इन्होंको हरताहो तिसको मधुर रस कहते हैं ॥ ९ ॥

अथ कडुआरसकेवीर्य्यका वर्णन।

यस्तिक्तः कफवायुसंहतिकरः कुष्ठादिदोषापहः शीतः सर्वरुजापहो भ्रमहरो रुच्यो न संक्लेदनः॥ जिह्वास्फोटकनाशनोऽथ भवति क्षीणक्षतानां हितो वक्त्रोल्लासकरः प्रकृष्टकथितो निम्बादिकास्वादकृत् ॥ १० ॥

कडुआ रस कफवायुका संहार करता है कुष्ठआदि दोषको नाशता है शांतस्वरूप है सब रोगोंको हरता है भ्रमको हरता है रुचिमें हित है क्लेदको अच्छी तरह करता है और जीभकी फुनसियोंको नाशता है क्षीण और घाववालोंको हित है मुखमें आनंदको करता है और नींबआदिके स्वादको करता है ॥ १० ॥

अथ चरपरे रसके वीर्य्यका वर्णन।

नेत्रं स्रावयते मुखं विदहते कर्णस्य तापं वहन्बीभत्सं तनुते मुखं विकुरुते पित्तासृजः कोपनम्॥ अग्नीनध्युषते क्षतं विदहते जीर्णो न शस्तो भवेत् वातान्नाशयते कफञ्च दहते कटुको महारौद्रकः ११

चर्चरा रस नेत्रको झिराता है मुखको विशेष करकै दग्ध करता है, कानोंमें जालको प्राप्त करता है, भयानकरूप मुखको करता है, पित्तको और रक्तको कुपित करता है, जठराग्निको जगाता है, क्षणमात्र दाहको करता है और पुराना चर्चरा रस श्रेष्ठ नहीं होता है वायुको नाशता है और कफको दग्ध करता है और अतिदारुणरूप है ॥ ११ ॥

अथ खट्टारसके वीर्य्यका वर्णन।

जिह्वाक्लेदं जनयति तथा नेत्रनिम्मीलनं च बीभत्सं वा जनयति सदा वातरोगापहारी ॥ कण्डूकुष्ठक्षतरुजकरो नो हितः शोफिनः स्यादम्लः प्रोक्तो मरुतशमनोऽसृक्प्रकोपं तनोति ॥ १२ ॥

खट्टारस जीभमें क्लेदको करता है नेत्रोंको मीचता है सब कालमें भयानकपनेको उपजाता है वातके रोगको हरता है और खाज, कुष्ठ, घाव इन्होंको उपजाता है शोजावालेको हित नहीं है वायुको शांत करता है रक्तके कोपको विस्तृत करता है, ॥ १२ ॥

अथ कसैलारसके वीर्यका वर्णन।

जिह्वां कण्ठं ग्रसति नितरां ग्राहकश्चातिसारे श्लेष्मव्याधेरुपशमकरः श्वासकासापहर्त्ता ॥ हिक्कां शूलं हरति नितरां शोधनः स्याद्व्रणानां प्रोक्तश्चायं समधिकगुणः श्रेष्ठकाषायनामा ॥ १३ ॥

कसैलारस जीभको और कंठको ग्रसता है अतीसारको बंद करता है, कफकी व्याधिको शांत करता है, श्वासरोगको और खाँसीको नाशता है, हिचकीको और शूलको हरता है और घावोंको निरंतर शोधता है यह रस अधिक गुणोंवाला कहा है ॥ १३ ॥

अथ खारारसके वीर्य्यका वर्णन।

क्षारः क्लेदं जनयति मुखेऽस्वादुरुष्णो विदाही शूलश्लेष्मारुचिहरतृषामूत्रकृच्छ्रोषणश्च ॥ आमाहारं जनयति पुनर्वह्निसन्धुक्षणः स्याच्छ्रेष्ठः प्रोक्तः स हि रसमहान्सर्वतो योग्यभूतः ॥ १४ ॥

इति षड्रसवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

खारारस मुखमें ग्लानीको उपजाता है, स्वादु नहीं है गर्म है विशेष करकै दाहको करता है और शूल, कफ, अरुचि, तृषा, मूत्र इन्होंको करता है शोषनेवाला है वारंवार अफाराको उपजाता है जठराग्निको जगाता है सब जगह योग्य नहीं है कहीं २ अच्छाभी है ॥ १४ ॥

इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां प्रथमस्थाने षड्रसवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ७.

अथ पानीका वर्ग।

अथातः संप्रवक्ष्यामि पानीयानि पृथक्पृथक् ॥
शृणुध्वं च समासेन गुणान्गुणविपर्य्ययम् ॥ १ ॥

अब पानियोंको अलग २ कहताहूं पानियोंके गुण और दोषोंको सुनो ॥ १ ॥

जलभेद।

द्विविधं चोदकं प्रोक्तमान्तरिक्षं तथौद्भिदम् ॥ आन्तरिक्षं तु द्विविधं गाङ्गं सामुद्रिकं पयः ॥ २ ॥ तद्वच्चतुर्विधं प्रोक्तमन्तरिक्षसमुद्भवम् ॥ भूमा निपतितं तच्च जातं चाष्टविधं जलम् ॥ ३ ॥ गाङ्गसामुद्रविज्ञानं कथयिष्यामि सांप्रतम् ॥ धारितं येन पात्रेण लक्ष्यते तेन तद्विधम् ॥ ४ ॥

पानी दो प्रकारका कहा है आंतरिक्ष अर्थात् आकाशका, दूसरा औद्भिद अर्थात् पृथिवीका और आंतरिक्ष पानीभी २ प्रकारका है एक गांग दूसरा सामुद्रिक ॥ २ ॥ तैसेही आकाशसें उपजा पानी चारप्रकारका कहा है और पृथिवीमें पतितहुआ वही पानी आठ प्रकारका है ॥ ३ ॥ गांग और सामुद्रपानीके विज्ञानको अब कहताहूं जिस पात्र करके धारणकियाजावै तहां तिसीप्रकारसे दीखता है ॥ ४ ॥

अथ गांगपानीकी परीक्षा।

धौतं शुद्धं सितं वस्त्रं चतुर्हस्तप्रमाणकम् ॥ दण्डास्त्रिहस्ताश्चत्वारश्चतुष्कोणेषु बन्धयेत् ॥ ५ ॥ तस्मात्परीक्ष्यं तत्तोयं शुद्धे रौप्यमयेऽथवा ॥ कांस्यपात्रे समुद्धृत्य परीक्षेत भिषग्वरः ॥ ६ ॥ शुद्धकार्पासतूलं वा श्वेतशाल्योदनस्य वा ॥ पिण्डिका तत्समाक्षिप्ता श्वेततां याति सा पुनः ॥ ७ ॥ श्वेता तु निर्म्मला पिण्डी शुद्धश्च निर्मलं पयः ॥ तद्गाङ्गं सर्वदोषघ्नं गृहीताङ्गं सुभाजने ॥ ८ ॥

धोयाहुआ शुद्ध सपेद ऐसे वस्त्रको चारहाथप्रमाणसे ले पीछे तीनतीन हाथके दंडोंके चारकोणोंमें बँधवावै ॥ ५ ॥ तिस्से शुद्धहुये रूपेके पात्रमें तिस पानीकी परीक्षा करै अथवा कांसीके पात्रमें डाळ परीक्षा करै ॥ ६ ॥ अथवा सपेद कपासके फोहको अथवा सपेद शालिचावलको पीस पिंडी बना तिस पानीमें गेरै जो फिर सपेदपनेको प्राप्त होवै ॥ ७ ॥

और सपेदहोके वह पिंडी निर्मल होजावै और वह पानीभी निर्मल होजावै तिसको गांग पानी कहतेहैं वह गांगपानी सबदोषोंको हरता है परंतु इस पानीको सुंदर पात्रमें ग्रहणकरे॥ ८॥

गंगाजलके गुण।

तद्धारयेच्च मतिमान्बल्यं मेध्यं रसायनम् ॥ श्रमक्लमपिपासाघ्नं कण्डूदोषनिवारणम् ॥ ९ ॥ लघु मूर्च्छातृषाच्छर्दिमूत्रस्तम्भविनाशनम् ॥ गङ्गोदकस्य वृष्टिः स्यादिवसे वा प्रदृश्यते ॥ १० ॥

बुद्धिमान् मनुष्य इसे धारणकरै यह बलमें हितहै पवित्र है रसायन है और ग्लानि, परिश्रम, प्यास इन्होंको हरता है खाजके दोषको दूर करता है ॥ ९ ॥ हलका है और मूर्च्छा, तृषा, छर्दि, मूत्रस्तंभ इन्होंको नाशता है अथवा सूर्य्यके दीखतेहुये जो वर्षता है वह गांगपानी है ॥ १० ॥

अथ सामुद्र पानीका लक्षण और गुण दोष वर्णन।

आविलं समलं नीलं घनं पीतमथापि च ॥ सक्षारं पिच्छिलं चैव सामुद्रं तन्निगद्यते ॥ ११ ॥ सघनं कफकृच्चैव कण्डूश्लीपदकारकम् ॥ सवातलं च विज्ञेयं रक्तदोषार्त्तिकारणम् ॥ १२ ॥

कालिसको लियेहो मलसे सहितहो नीलाहो भारीहो पीलाहो खारसे संयुक्तहो गाढाहो तिसको सामुद्रपानी कहते हैं ॥ ११ ॥ यह कफको करता है खाज और श्लीपद रोगको उपजाता है वातल है रक्तके रोगोंको करता है ॥ १२ ॥

चारप्रकारकी वृष्टि।

द्विविधमुदकं प्रोक्तं तथा वक्ष्ये चतुर्विधम् ॥
रात्रिवृष्टिर्दिवावृष्टिर्दुर्दिनावीक्षणोद्भवा ॥ १३ ॥

पानी दो प्रकारका कहा है तथा ४ प्रकारकाभी कहेंगे रात्रिमें जो वर्षता है दिनमें जो वर्षता है दुर्दिनमें जो वर्षता है अर्थात् गहरे बादलोंमें वर्षता है तथा थोडे चलते बादलसे जो वर्षता है ॥ १३ ॥

अथ रात्रिमें वर्षाहुवे पानीके गुण दोष वर्णन।

निशाजलं कफकरं घनशीतगुणात्मकम् ॥
सामुद्रतोयस्य समं विज्ञेयं वातकोपनम् ॥ १४ ॥

रात्रिमें वर्षा पानी कफको करता है भारी है शीतलगुणोंवाला है सामुद्रसंज्ञक पानीके समान है और वातको कोपता है ॥ १४ ॥

दिनको वर्षाहुवे पानीके गुण दोष वर्णन ।

दिवा सूर्य्यांशुतप्ताश्च मेघा वर्षन्ति यत्पयः ॥
तत्कफघ्नं पिपासाघ्नं लघु वातप्रकोपनम् ॥ १५ ॥

दिनमें सूर्यके किरणोंसे तप्तहुये जो मेघ पानीको वर्षाते हैं वह कफको नाशता है प्यासको हरता है हलका है वातको कोपता है ॥ १५ ॥

अथ दुर्दिनमें वर्षाहुवे पानीके गुण दोष वर्णन ।

दुर्दिने वृष्टिसम्पातं व्रातभूतं सवातलम् ॥
कफकृच्छोषहननं तर्पणं दोषकोपनम् ॥ १६ ॥

दुर्दिनमें वर्षाहुआ पानी वातल है कफको करता है शोषको हरता है तृप्तिको करता है दोषोंको कोपता है ॥ १६ ॥

क्षणवृष्टिके गुण ।

तथा वा क्षणवृष्टिश्च दोषरोगकरी नृणाम् ॥
कण्डूत्रिदोषजननं पानीयं न प्रशस्यते ॥ १७ ॥

जो क्षण २ में वृष्टि होती है वह वर्षा मनुष्योंके दोषको और रोगको करती है और इसका पानी खाजको और त्रिदोषको उपजाता है और अच्छा नहीं है ॥ १७ ॥

श्रावणवृष्टिके गुण ।

मेघा वमन्ति यत्तोयं सशैलवनकानने ॥
श्रावणे निन्द्यते भूमौ कराम्बु वर्षते रविः ॥ १८ ॥

जो श्रावणके महीनेमें सूर्य अपनी किरणोंसे पर्वत वन और उपवन और पृथ्वीमें वर्षा करता है वह निंदित जल होता है-(करांबु वर्षते रविः) इसका अर्थ हस्तनक्षत्रपर सूर्य होता और श्रावणमें मेघ वर्षता है वह निंदित है ऐसा कहते हैं ॥ १८ ॥

अथ भादुवाके वृष्टिके गुण ।

सघनं नाभसं नीरं श्लेष्मकृद्वातकोपनम् ॥
शमनं पित्तरोगाणां मधुरं रक्तदोषकृत् ॥ १९ ॥

भादुवाकी वर्षाका पानी गाढा है कफको करता है वातको कोपता है पित्तके रोगोंको शांत करता है मधुर है और रक्तदोषको करता है ॥ १९ ॥

अथ आश्विनके वृष्टिके गुण ।

रूक्षं पित्तकरं चाम्लं गुल्मरक्तविकारकृत् ॥
चित्रानक्षत्रसम्भूतं खरं शस्याविदोषकृत ॥ २० ॥

आश्विनमें हुई वर्षाका पानी रूखा है पित्तको करता है खट्टा है गुलमको और रक्तके विकारको करता है चित्रानक्षत्रमें वर्षाहुआ पानी तेज है और खेतीके दोषको करता है ॥ २० ॥

अथ कार्तिकके वृष्टिके गुण।

कार्तिकीवृष्टिसम्भूतं स्वातिसन्तापशीतलम् ॥ नाशनं च त्रिदोषाणां सर्वशस्यप्रवर्द्धनम् ॥ २१ ॥ शीतलं बलकृद्वृष्यं विदाहज्वरनाशनम् ॥

कार्तिकमें वर्षी हुई वर्षाका पानी स्वातिके संतापको शीतल करता है त्रिदोषको नाशता है सब प्रकारकी खेतीको बढाता है ॥ २१ ॥ शीतल है बलको करता है पुष्टिमें हित है दाहको और ज्वरको नाशता है ॥

स्वातीजलके गुण।

क्वचित् पुण्यतरे देशे शरद्वर्षति माधवम् ॥ २२ ॥ पित्तज्वरविनाशाय शस्यनिष्पत्तिहेतवे ॥ अम्बरस्थं सदा पथ्यममृतं स्वातिसम्भवम् ॥ २३ ॥ गगनाम्बु त्रिदोषघ्नं गृहीतं यच्च भाजने ॥ बल्यं रसायनं मेध्यं यन्त्रापेक्ष्यं ततः परम् ॥ २४ ॥

कहीं२ अति पवित्रदेशमें शरदऋतु उत्तम पानीको वर्षाता है ॥ २२ ॥ यह पित्तज्वरको हरता है और खेतीकी सिद्धिका कारण है॥२३॥ आकाशका पानी सदा पथ्य है स्वातीनक्षत्रपै सूर्य्य हो तब वर्षा हुआ पानी अमृतरूप है, सुंदरपात्रमें गृहीत किया आकाशका पानी त्रिदोषको नाशता है, बलमें हित है रसायन है पवित्र है और तिससे परे यंत्रापेक्ष्यसंज्ञक पानी जानना ॥ (अर्थात् भभकेकाखींचाहुवा जल इससे परे जानना)॥ २४ ॥

अकालवृष्टिके लक्षण और गुण।

अनार्त्तवं विमुञ्चन्ति जलं जलधरास्तु यत् ॥
पतितं तत त्रिदोषाय सर्वेषां देहिनामपि ॥ २५ ॥

जो बादल समयके विना पानीको वर्षाते हैं वह पानी सब मनुष्योंके त्रिदोषको करता है ॥ २५ ॥

अथ अकालमें वर्षाहुई वर्षाके पानीका लक्षण।

अकाले वृष्टिसन्तापसम्भूतं तद्विकारकृत् ॥
विशेषाच्छ्लेष्मरोगाणां कारणान्न प्रशस्यते ॥ २६ ॥

अकालमें वर्षा पानी संतापरूपी विकारको करता है और विशेषकरकै कफके रोगोंके कारणसे यह पानी उत्तम नहीं है ॥ २६ ॥

अथ धारसंज्ञकआदि चारप्रकारके पानीका लक्षण ।

तथा धारं च कारं च तौषारं हैममेव च ॥
चतुर्विधं समुद्दिष्टं तेषां वच्मि गुणागुणान् ॥ २७ ॥

धार, कार, तौषार, हैम इन भेदोंसे पानी चार प्रकारके हैं तिन्होंके गुण और दोषको कहताहूं (धार वृष्टिका जल, कार ओलोंका जल, तुषार ओसकापानी और हैम बर्फका जल है) ॥ २७ ॥

कारजलकी उत्पत्ति ।

धारं चतुर्विधं प्रोक्तं वक्ष्ये कारं महामते ! ॥ श्रीमतां महाप्राज्ञानां हिताय रुजशान्तये ॥ २८ ॥ स्वर्णद्याः शीतवातेन मेघविस्फूर्जसङ्कुलम् ॥ शीताम्बु कठिनं भूत्वा शिलं जातं हिमेन तु ॥ २९ ॥ पश्चात सुसूर्य्यात् सन्तापात् किञ्चिद्धै द्रवते जलम् ॥ वमन्ति मेघाः सलिलशकलं शीतलं मतम् ॥ ३० ॥

धारसंज्ञक पानीको गांगआदि चारप्रकारसे मैं कहचुकाहूं अब हे महामते ! कारसंज्ञक पानीको श्रीमान् और बडे पंडितोंके कल्याणके लिये और रोगकी शांतिके लिये मैं कहताहूं ॥ २८ ॥ गंगाआदि नदियोंका शीतलपानी मेघके शब्दसे संकुलित हुआ कठिन होकै पीछे जाडा करकै शिलारूपी अर्थात् बर्फ हो जाता है ॥ २९ ॥ पीछे सूर्य्यके संतापसे कछुक झिरता है तब मेघ पानीके किनके अर्थात् ओलोंको वर्षाते हैं तिन्होंका पानी शीतल माना है ३०

कारजलके गुण ।

कारं शीतगुणैः श्रमोपशमनं शोषार्त्तिनिर्णाशनं मूर्च्छामोहशिरोर्तिनाशनकरं हिक्कावमेर्वारणम् ॥ शोफानां व्रणिनान्तु दोषशमनं पित्तात्मिकानां हितं शंसंति प्रवरं गुणैः प्रतिदिनं तस्मान्न दूरे कृतम् ॥ ३१ ॥

यह कारसंज्ञक ओलोंकापानी शीतके गुणोंसे परिश्रमको शांत करता है और शोषरूपी पीडाको नाशता है और मूर्च्छा, मोह, शिरकी पीडा, इन्होंको नाशता है हिचकीको और छर्दिको दूर करता है शोजावालोंके और घाववालोंके दोषको हरता है और पित्तकी प्रकृतिवालोंको हित है और उसकी बहोत प्रशंसा करते हैं और नित्यप्रति गुणोंसे संयुक्त होता है इसवास्ते यह पानी वर्जना नहीं ॥ ३१ ॥

अथ तुषारपानीके गुण ।

तौषारं लघु शीतलं श्रमहरं पित्तार्त्तिशान्तिप्रदं दोषाणां शमनं

जलार्त्तिहननं सर्वामयघ्नं परम् ॥ कुष्ठश्लीपदचर्चिकाविषहरं पामा-
विसर्पापहं क्षीणानां क्षतशोषिणां हितकरं संसेव्यते मानवैः ॥
॥ ३२ ॥ हैमं घनञ्च मधुरञ्च कफात्मकञ्च मूर्च्छाश्रमार्तिशमनं
भ्रमनाशनञ्च ॥ पित्तासृजः प्रशमनं रुधिरक्षमञ्च शान्तिङ्करोति
हिमसम्भववारि सद्यः ॥ ३३ ॥ धारं पृथिव्यां पतितं पयस्तु
तत्रैव जातं गुणभेदभिन्नम् ॥ नानाविधैर्भेदगुणैश्च सम्यग् जातं
जलं चाष्टविधं वदन्ति ॥ ३४ ॥

तौषारसंज्ञक ओसका पानी हलका है शीतल है श्रमको हरता है पित्तके रोगको शांत करता है दोषोंको शांत करता है जलके रोगको हरता है सब रोगोंको नाशता है और कुष्ठ–श्लीपद रोग–मकडीका विष इन्होंको नाशता है पामाको और विसर्परोगको हरता है क्षीणपुरुषोंको और क्षतशोषियोंको हितकारी है इसवास्ते मनुष्योंने सेवना चाहिये॥ ३२॥ हैमसंज्ञक बर्फकापानी भारी है मधुर है कफकारी है मूर्च्छाको श्रमको और भ्रमको हरता है रक्तपित्तको शांत करता है रक्तको बंद करता है और शांतिको शीघ्र करनेवाला है ॥ ३३ ॥ धारसंज्ञकपानी पृथिवीमें पतित हुआ तहांही गुणोंके भेदोंसे भिन्न होजाता है पीछे अनेकप्रकारके भेद गुणोंसे अच्छीतरह संयुक्त हुआ वही पानी आठ प्रकारसे कहा है ॥ ३४ ॥

पृथ्वीऊपरके आठप्रकारका जल।

नद्यौद्भिदं प्रस्रवणं च चौंड्यं कौपं तडागं सरसोद्भवञ्च ॥
वाप्युद्भवं तत्प्रवदन्ति धीरा नीरं समासेन वदन्ति चात्र ॥३५॥

नादेय-औद्भिद-पर्वतके द्वारा झिरनेसे उपजा–चौंड्यसंज्ञक–कूवाका–तालाबका सरोवरका–बावडीका ऐसे धीरवैद्य यहां विस्तारसे कहते हैं ॥ ३५ ॥

अथ नदीके पानीका गुण।

यत् श्रीमताञ्चैव महीपतीनां सेव्यं तथा योग्यतमं प्रदिष्टम् ॥
नादेयमम्बु मधुरं तथा लघु रूक्षं तथोष्णं शमनञ्च वायोः॥३६॥
सन्दीपनं शस्यविनाशनञ्च हिमागमे वा शिशिरे निषेव्यम् ॥
बलप्रदं पथ्यकरं नराणां प्रदिष्टमेतत्तु सदा भिषग्भिः ॥ ३७ ॥

नदीका पानी लक्ष्मीवालोंको और राजालोगोंको अतियोग्य कहा है और मधुर है हलका है रूखा है गरम है वायुको शांत करता है ॥ ३६ ॥ जठराग्निको जगाता है खेतीको नाशता है शीतके आगमनमें अथवा शिशिरऋतुमें सेवना योग्य है और बलको देता है मनुष्योंको पथ्यरूप है ऐसे पंडितोंनें सबकालमे कहा है ॥ ३७ ॥

अथ औद्भिद पानीका गुण दोष।

औद्भिद्यमुष्णं लघु वातहारि सपैत्तिकं तृड्ज्वरनाशनञ्च ॥
कुष्ठव्रणानां श्रमशोषिणाञ्च शस्तं न च क्षारगुणोपपन्नम् ॥ ३८ ॥

पृथिवीको विदारितकर बडी धारासे निकसनेवाला पानी औद्भिद कहाता है यह पानी गरम है हलका है वातको हरता है पित्तसे संयुक्त है तृषाको और ज्वरको नाशता है कुष्ठ और घाव-वालोंको श्रम और शोषवालोंको खारेगुणसे उत्पन्न हुआ श्रेष्ठ नहीं है ॥ ३८ ॥

अथ झिरनाके पानीका गुण।

उष्णं कषायं स्रवणोद्भवञ्च श्लेष्मापहं गुल्महृदामयघ्नम् ॥
कण्डूविसर्पक्षयरोगकारि नानाविधं दोषचयं करोति ॥ ३९ ॥

पर्वतके द्वारा झरनासे उपजा पानी गरम है कसैला है कफको हरता है गुल्मरोगको और हृद्रोगको नाशता है और खाज--विसर्परोग--क्षयरोग इन्होंको करता है और अनेक प्रकारके दोषोंको संचित करता है ॥ ३९ ॥

अथ चौंड्यसंज्ञक पानीका गुण।

वदन्ति चौंड्यं लवणं तथा गुरु कफात्मकं वारि विकारकर्तृ ॥
हिक्काज्वरं शूलमरोचनञ्च करोति नूनं त्वचि दोषरोगम् ॥ ४० ॥

आपही शिलासे आकीर्ण हुआ छिद्रमें नील अंजनके समान पानी हो और लता वेल आदिसे आच्छादितहो तिसको चौंड्यसंज्ञकपानी कहते हैं यह पानी सलोना है भारी है कफको करता है विकारको उपजाता है और हिचकी--शूल--अरोचक इन्होंको उपजाता है और त्वचा अर्थात् खालमें दोषको और रोगको उपजाता है ॥ ४० ॥

अथ कूवाके पानीका गुण दोष।

रूक्षं कफघ्नं लवणात्मकञ्च सन्दीपनं पित्तकरं लघूष्णम् ॥
कौपं जलं वातहरं प्रदिष्टं हितं न शस्तं शरदि वदन्ति ॥ ४१ ॥

कूवेका पानी रूखा है नमकसे कछुक संयुक्त है अग्निको जगाता है पित्तको करता है हलका है गर्म है वातको हरता है और शरदृतुमें हितकारी नहीं है ॥ ४१ ॥

अथ तलावके पानीके गुण दोष।

घनं कषायश्च तडागजं स्यात्स्वादु प्रपाके मधुरं तथैव ॥
शस्तं शरत्सु कफकृत् सवातं ग्रीष्मे हितं नप्रवदन्ति धीराः ॥ ४२ ॥

सुंदर पृथिवीके भागमें जहां बहुत वर्षाका पानी इकट्ठाहो तिसको तलावका पानी कहते हैं यह गाढा है कसैला है स्वादु है पाकमें मधुर है शरदृतुमें अर्थात् आश्विन कार्तिकमें श्रेष्ठ है कफको करता है वायुसे सहित है ग्रीष्मऋतु अर्थात् ज्येष्ठ आषाढमें हित नहीं है ॥ ४२ ॥

अथ सारसपानीके गुणदोष।

क्षारं घनं वातकफानुकारि त्वग्दोषकारि कटु दीपनञ्च ॥
प्रोक्तं विपाके भ्रमशोषकारि स्यात् सारसं नो सुखकारि वारि ४३॥

पर्वतकी शिला आदिसे रुकीहुई नदीका पानी जहां झिरके इकट्ठा होवै तिसको सारसपानी कहते हैं यह पानी खारा है भारी है वातको और कफको करता है और खालमें दोषको उपजाता है कडुआ है अग्निको जगाता है पाककालमें भ्रमको और शोषको करता है और सुखको देनेवाला नहीं है ॥ ४३ ॥

अथ बावड़ीके जलके गुण।

क्षारं कवोष्णं कफवातरोगविनाशनं पित्तकरं कटु स्यात् ॥
शस्तं सदा पित्तविकारिणाञ्च शस्तं न वाप्यं शरदि वदन्ति ॥४४॥

बावडीका पानी खारा, कुछ थोडा गरम, कफ वात रोगोंको नाशकरनेवाला, पित्तकारक तीखा और पित्तविकारी मनुष्योंको सदा हितकारी है. परंतु शरदऋतुमें हितकारी नहीं है ॥४४॥

अथ नदियोंकी प्रकृति।

इति चाष्टविधं प्रोक्तं जलं भिषजसत्तमैः ॥
नादेयं संप्रवक्ष्यामि समुद्रंगामिस्त्रोतसाम् ॥ ४५ ॥

ऐसे उत्तम वैद्योंने पानी आठप्रकारसे कहा है और समुद्रमें गमन करनेवाली नदियोंको कहताहूं ॥ ४५ ॥

तथा प्राच्यांगमाश्चान्याः पश्चिमानुगमास्तथा ॥ तासां गुणागुणान् वक्ष्ये समासेन गुणोत्तम ! ॥ ४६ ॥ ससैकता सपाषाणा द्विविधा चाम्बुवाहिनी ॥ एवं चतुर्विधा नद्यो वातपित्तकफात्मिकाः ॥ ४७ ॥

पूर्वमें गमन करनेवाली और पश्चिममें गमन करनेवाली जो नदी हैं तिन्होंके गुणदोषोंको हे गुणोत्तम ! विस्तार करकै कहूंगा ॥ ४६ ॥ वालुरेतवाली और पत्थरोंवाली ऐसे नदी दो प्रकारसे हैं और पूर्वोक्त दोनोंके मिलनेसे चार प्रकारकी नदी हैं ये वात पित्त कफसे संयुक्त हैं ॥ ४७ ॥

अथ सदावहनेवाली नदीके गुण दोष।

सदावहा वा घनवारिकोष्णा मरुत्कफानां श नञ्च तस्याः ॥
नीरं वसन्ते हितकृच्छिशिरे नदीभवं नैव हिमागमे च ॥ ४८ ॥

सबकालमें बहनेवाली नदी भारी पानीवाली होती हैं कछुकगर्म होती हैं वायुको और कफको शांत करती हैं तिन्होंका पानी चैत्र और वैशाखमासमें विशेष करकै हितको करता है और जाडाके आगमनमें अच्छा नहीं है ॥ ४८ ॥

अथ पत्थरोंवाली नदीके गुण दोष ।

घनविमलशिलानां स्फालनाज्जातफेनं बहलसजलवीचीच्छन्न-संक्षोभदृत्तम् ॥ ननु लघु सुखशीतं नाति चोष्णं घनश्च हरति पवनपित्तं श्लेष्मकृद्वारि सम्यक् ॥ ४९ ॥

भारी और विशेषकरकै मलोंवाले ऐसे पत्थरोंके संयोगसे झागोंवाला और बहुतसे तरंगोंके क्षोभसे गर्मको माप्तहुआ और सुंदर शीतल और अतिगर्म नहीं और भारी ऐसा पानी वातको और पित्तको अच्छीतरह हरता है ॥ ४९ ॥

अथ वालूरेतवाली नदीके पानीके गुण दोष ।

न घनविमलतोयं सैकतायाः प्रवाहो न च भवति लघुत्वं श्लेष्म-कृद्धन्ति पित्तम् ॥ भवति मधुरमेवं किञ्चिदुष्णं कषायं भवति पवनकारि शोषमूर्च्छां निहन्ति ॥ ५० ॥

वालूरेतके मवाहमें यह पानी भारी नहीं है विशेष करकै मलसे रहित नहीं है हलकाभी नहीं है कफको करता है पित्तको हरता है मधुर है कछुक गर्म है कसैला है पवनको करता है शोषको और मूर्च्छाको नाशता है ॥ ५० ॥

अथ उत्तरसे बहनेवाली नदियोंके और पानीके गुण दोष ।

हिमवत्प्रभवा नद्यः पुण्या देवर्षिसेविताः ॥ घनपाषाणसिकतावा-हिन्यो विमलोदकाः ॥ ५१ ॥ हन्ति वातकफं तोयं श्रमशोषवि-नाशनम्॥किञ्चित् करोति वा पित्तं त्रिदोषशमनं जलम् ॥५२॥ मलयप्रभवा नद्यः शीततोयामृतोपमाः ॥ घ्नन्ति वातञ्च पितञ्च शोषभ्रमश्रमापहाः ॥ ५३ ॥ गङ्गा सरस्वती शोणो यमुना सरयू शची ॥ वेणा शरावती नीला उत्तरापूर्ववाहिनी ॥ ५४ ॥ हिम-वत्प्रभवा ह्येता हिमसम्भवशीतलाः ॥ समाः सर्वगुणैर्नद्यो वात-श्लेष्महरा नृणाम् ॥ ५५ ॥ आसां नवशतैर्युक्ता गङ्गा प्रोक्ता मनीषिभिः ॥ तथा चर्म्मण्वती वेत्रवती पारावती तथा ॥ ५६ ॥ क्षिप्रा महापदी पीता मुत्सकान्या मनास्विनी ॥ शेव्रती शैवालि-

न्यश्च सिन्धुयुक्ताः समुद्रगाः ॥ ५७॥ वातपित्तहरं नीरं त्रिदोषघ्नं मतं परम् ॥ श्रमग्लानिहरं वृष्यमुत्तराशानुगामि च ॥ ५८ ॥

हिमालय पर्वतसे उत्पन्न हुई नदी पवित्र हैं देवता और मुनियोंसे सेवित हैं मोटे पत्थर और वालूरेतको बहानेवाली हैं मलसे रहित पानीवाली हैं ॥ ५१ ॥ इन्होंका पानी वातको और कफको नाशता है श्रमको और शोषको दूर करता है अथवा कछुक पित्तको करता है और त्रिदोषको शांत करता है ॥ ५२ ॥ मलय पर्वतसे उपजी नदी शीतलपानीवाली है अमृतके समान पानीको बहती है और वात, पित्त, शोष, भ्रम, श्रम इन्होंको नाशती है ॥ ५३ ॥ गंगाजी, सरस्वती, शोण, यमुना, सरयू , शची, वेणा, शरावती, नीला, ये नदी उत्तरको और पूर्वको बहती हैं ॥ ५४ ॥ हिमालय पर्वतसे उत्पन्न हुई और बर्फके सम्भवसे शीतल हुई ऐसी ये नदी सर्वगुणोंसे समान हैं और मनुष्योंके वातको और कफको हरती हैं ॥५५॥ इन्होंमेंसे नौसौ९०० नदियोंसे युक्त हुई गंगाजी पंडितोंने कही हैं तैसेही चर्मण्वती, वेत्रवती, पारावती ॥ ५६ ॥ क्षिप्रा, महापदी, पीता, मुत्सका, मनस्विनी, शेवती, शैवलिनी, सिंधु ये सब नदी समुद्रमें गमन करती हैं ॥ ५७ ॥ इन्होंका पानी वातको और पित्तको हरता है और त्रिदोषको हरनेवाला माना है परिश्रमको और ग्लानिको हरता है वीर्यमें हित है और उत्तर दिशासे आता है ॥ ५८ ॥

अथ तापीआदिनदियोंके गुण दोष ।

तापी तापा च गोलोमी गोमती सलिला मही ॥ सरस्वतीयुता नद्यो नर्म्मदा पश्चिमानुगाः ॥ ५९ ॥ आसां जलं घनं पीतं पित्तघ्नं कफकृत्तथा ॥ वातदोषहरं हृद्यं कण्डूकुष्ठविनाशनम् ६०

तापी, तापा, गोलोमी, गोमती, सलिला, मही, सरस्वती, नर्मदा, ये पश्चिमसे बहती हैं ॥ ५९ ॥ इन्होंका पानी मोटा है पीला है पित्तको नाशता है कफको करता है बातदोषको हरता है सुन्दर है खाजको और कुष्ठको नाशता है ॥ ६० ॥

पश्चिमाद्रिसमुद्भूता गौतमी पुण्यभावना ॥ अस्याः शीतं जलं वापि कफवातविकारकृत् ॥ पित्तदं शमनं बल्यं मूत्रदोषविकारकृत् ॥ ६१ ॥ पूर्णा पयस्विनी वेत्रा प्रणीता च वरानना ॥ द्रोणा गोवर्द्धनी यान्या गौतम्यानुगता इमाः ॥ ६२ ॥ आसां जलं घनं नातिवातश्लेष्मविकारकृत् ॥ पूर्वसामुद्रगाश्चैव नद्यो नवशतैर्युताः ॥ ६३ ॥ कावेरी वीरकान्ता च भीमा चैव पयस्विनी ॥ विभावरी विशाला च गोविन्दी मदनस्वसा ॥ पार्वती

चापरा नद्यो दक्षिणादिग्गमा इमाः ॥ ६४ ॥ प्रत्येकशो न सेवेत युक्तायाश्च पृथक् पृथक् ॥ सर्वासां परिसंख्या च शतानां चैक विंशतिः ॥ ६५ ॥

पश्चिमके पर्वतसे उपजी गौतमी पवित्रहै इसका पानी शीतल है कफको और वातके विकारको करता है पित्तकारक है, दोषशामक है, बलकारक है, मूत्रदोषके विकारको करता है ॥ ॥ ६१ ॥ पूर्णा, पयस्विनी, वेत्रा, प्रणीता, वरानना, द्रोणा, गोवर्द्धनी इत्यादि नदी गौतमी नदीके अनुगमन करती हैं ॥ ६२ ॥ इन्होंका पानी अति भारी नहीं है वातके और कफके विकारको करता है और पूर्वके समुद्रमें गमन करनेवाली नौसौ ९०० नदी हैं ॥ ६३ ॥ कावेरी, वीरकांता, गोविंदी, मदनस्वसा, पार्वती, इत्यादि नदी दक्षिणदिशाको गमन करती हैं ॥ ६४ ॥ एक एक नदीको नहीं सेवै और पृथक् २ युक्त हुई सब नदियोंकी २१०० इक्कीससौ संख्या अर्थात् गिनती है ॥ ६५ ॥

क्रोशे क्रोशे भवेत् कुल्या योजने योजने नदी ॥
द्वियोजना च विज्ञेया महानीरा बुधैर्नदी ॥ ६६ ॥

कोश २ में विस्तारवाली कुल्या कहाती है और चार चार कोशमें विस्तारवाली नदी कहाती है और आठ २ कोशमें विस्तारवाली महानदी कहाती है ॥ ६६ ॥

अथ पृथिवीके भागका पानी ।

भूमिः पञ्चविधा ज्ञेया कृष्णा रक्ता तथा सिता ॥ पीता नीला भवेच्चान्या गुणास्तासां प्रकीर्त्तिताः ॥ ६७ ॥ कृष्णा च मधुरा रूक्षा कषाया पीतवर्णिनी ॥ रक्ता सा च भवेत्तिक्ता मधुराम्ला सिता स्मृता ॥ ६८ ॥ नीला सकटुका ज्ञेया भूमिभागजलं विदुः ॥ सघनं मधुरं नीरं कृष्णं भूमिपरिश्रितम् ॥ ६९ ॥ पीताश्रितं कषायञ्च रक्तायाः क्षारमाधुरम् ॥ सितायामम्लमधुरं भूमिभागेन लक्षयेत् ॥ ७० ॥ तथा चतुर्विधं तोयं वक्ष्यामि शृणु कोविद ! ॥ पापोदकं रोगोदकमंशूदकारोग्योदकौ ॥ ७१ ॥

काली–लाल–सपेद–पीली–नीली इन भेदोंसे पृथिवी पांचप्रकारकी है तिन्होंके गुण कहते हैं ॥ ६७ ॥ काली पृथिवी मधुर है कडुई है रूखी है पीली पृथिवी कसैली है लाल पृथिवी कडुवी है सपेद पृथिवी मधुर और खट्टी है ॥ ६८ ॥ नीली पृथिवी चर्चरी जाननी ऐसेही पृथिवीके भागका पानी कहा है ॥ ६९ ॥ पीली पृथिवीका कसैला पानी है लाल पृथिवीका

पानी खारा और मधुर है सपेद पृथिवीका पानी खट्टा है मधुर है ऐसे पृथिवीके भागसे पानीको लक्षित करै ॥ ७० ॥ अब पापोदक–रोगोदक–अंशूदक–आरोग्योदक इन भेदोंसे पानी–को चारप्रकारसे कहताहूं हे कोविद ! सुन ॥ ७१ ॥

अथ पापोदकका गुण दोष।

पापं पापोदकं चैव करोत्येवमरोचकम् ॥ विष्ठायुक्तं ग्राहि नीरं कृमिकीटसमाकुलम् ॥७२॥ समलं नीलशैवालं पापन्तु नर्दितञ्च यत् ॥ स्नाने पाने न तत् शस्तं नराणां वा हयेषु च॥७३॥ स्नानेन त्वग्भवान्रोगान् कण्डूकुष्ठविसर्पकृत् ॥ पानेन कफगुल्मानां कृमीणां वर[1]सम्भवान् ॥ करोति विविधान् रोगांस्तस्मात्तत् परिवर्जयेत् ॥ ७४ ॥

पापोदकसंज्ञक पानी पापरूप है और रुचिको बिगाडता है विषसे संयुक्तहुआ पानी कब्ज-को करता है और कीडे आदिसे संयुक्त ॥ ७२ ॥ और मलसे सहित और नीले शिवा-लसे संयुक्त ऐसा पानीभी पापोदक कहाता है यह मनुष्योंको और घोडोंको स्नानमें और पानमें अच्छा नहीं है ॥ ७३ ॥ यह पानी स्नानके करनेसे खालके रोग–खाज–कुष्ठ–विसर्प इन्होंको करता है और पीनेसे कफको गुल्मरोगको और कृमिरोगको त्वचाके रोगोंको उपजाता है इससे इसे त्यागनाही चाहिये ॥ ७४ ॥

अथ रोगोदकके गुणदोष।

बहुवृक्षलताकुञ्जे छायाकूपोऽथ वा सरः ॥ अव्ययश्चेदधोऽप्येवं कृमिशैवालसंयुतम् ॥७५॥ क्लिन्नं सपिच्छलं कृष्णं वृक्षमूलाश्रितं भवेत् ॥ बहुवृक्षपर्णयुक्तं दुर्गन्धं मूत्रगन्धवत् ॥ ७६ ॥ रोगोदकं विजानीयात् करोति विषमान् गदान्॥शूलं कुष्ठं च कण्डूञ्च सेवितेन करोति हि ॥ ७७ ॥ विण्मूत्रतृणनीलिकाविषयुतं तप्तं घनं फेनिलं दन्तग्राह्यमनार्त्तवं हि सजलं दुर्गन्धि शैवालजम् ॥ नानाजीवविमिश्रितं गुरुतरं पर्णौघपङ्काविलं चन्द्रार्कांशुसुगोपितं न च पिबेन्नीरं सदा दोषलम् ॥ ७८ ॥ गुल्मप्लीहार्शः पाण्डुञ्च जलं वापि जलोदरात् ॥ ७९ ॥

---

[1] वरसंभवान् त्वक्सम्भवान् वेष्टनत्वात् वरशब्दः त्वचि वर्तते।

बहुतसे वृक्ष और वेलोंके समूहमें जो छाया विषे कुवाहो अथवा तलावहो और तिसमें पानी सदा बनारहता हो कीडे और शिवालसे वह पानी संयुक्तहो ॥ ७५ ॥ और क्रेदपनेको प्राप्तहो और झागोंसे संयुक्तहो कालाहो और वृक्षोंकी जडमें आश्रितहो और बहुतसे वृक्षोंके पत्तोंसे व्याप्तहो दुर्गंधितहो और मूत्रके गंधके समान गंधवालाहो ॥ ७६ ॥ तिसको रोगोदक जानना यह विषमरोगोंको करता है और सेवनेसे शूल-कुष्ठ-खाज इन्होंको करता है ॥ ७७ ॥ अथवा विष्ठा-मूत्र-तृण-नीला शिवाल-विष इन्होंसे संयुक्तहो और गर्महो गाढाहो झागोंसे संयुक्तहो दंतोंको ग्रहण करताहो अकालमें वर्षाहो दुर्गंधसे युक्तहो शिवालसे संयुक्तहो अनेकप्रकारके जीवोंसे मिश्रितहो अत्यंत भारी हो पत्तोंके समूह और कीचड़से मैलाहो चंद्रमा और सूर्यकी किरणोंसे रक्षितहो ऐसा पानीभी रोगोदक कहाता है इसकोभी नहीं पीना यह सबकालमें दोषोंको उपजाता है ॥ ७८ ॥ और सेवनेसे गुल्मरोग, तिल्लीरोग, बवासीर, पांडु, जलोदर इन्होंको उपजाता है ॥ ७९ ॥

अथ अंशूदकके गुणदोष ।

दिवा सूर्य्यांशुसन्तप्तं रात्रौ चन्द्रांशुशीतलम् ॥ अंशूदकमिति ख्यातं सर्वरोगनिवारकम् ॥ ८० ॥ कफमेदोनिलघ्नं च दीपनं बस्तिशोधनम् ॥ श्वासकासहरं नीरं चक्षुष्यं नेत्ररोगहृत् ॥ ८१ ॥

दिनमें सूर्यके किरणोंसे तप्तहुआ और रात्रिमें चंद्रमाके किरणोंसे शीतलहुआ ऐसा पानी अंशूदक कहा है यह सब रोगोंको दूर करता है ॥ ८० ॥ कफ, मेद, वात इन्होंको नाश-करता है जठराग्निको जगाता है बस्तिको शोधता है श्वासको और खाँसीको हरता है नेत्रोंमें हित है और नेत्रके रोगोंको हरता है ॥ ८१ ॥

अथ आरोग्योदकके गुणदोष ।

पादशेषन्तु क्वथितं तच्चारोग्यजलं विदुः ॥ कासश्वासहरं पथ्यं मारुतं चापकर्षति ॥ ८२ ॥ सद्यो ज्वरं हरत्याशु समेदः कफनाशनम् ॥ प्रतिश्यायं पाचयति शूलगुल्मार्शनाशनम् ॥ ८३ ॥ दीपनश्च हुताशस्य पाण्डुशोफोदरापहम् ॥ अजीर्णञ्च जरत्याशु पीतमुष्णोदकं निशि ॥ ८४ ॥

अग्निके द्वारा पकानेसे जो चौथाईभाग शेष रहै वह आरोग्योदक कहाता है यह खाँसीको और श्वासको हरता है पथ्य है वायुको नाशताहै ॥ ८२ ॥ नये ज्वरको शीघ्र हरता है मेदको और कफको नाशता है पीनस अर्थात् खेहरको पकाता है और शूल-गुल्मरोग-बवासीर इन्होंको नाशता है ॥ ८३ ॥ अग्निको जगाता है और पांडुरोग-शोजा-उदररोग इन्होंको हरताहै और रात्रिमें पियाहुआ गर्मपानी अजीर्णको मिराता है ॥ ८४ ॥

अथ शीतपानीके गुण ।

मद्यपानसमुद्भूते रोगे पित्तान्विते पुनः ॥
सन्निपातसमुत्थे च तत्र शीतोदकं हितम् ॥ ८५ ॥

मदिराके पीनेसे उपजे रोगमें और पित्तसे अन्वितहुये रोगमें और सन्निपातसे उपजे रोगमें शीतल पानीको पीना हित है ॥ ८५ ॥

गर्मपानीके गुण ।

शारदे च तथा ग्रीष्मे क्वाथेत् पादावशेषितम् ॥ शिशिरे च वसन्ते च कुर्य्यादर्द्धावशेषितम् ॥ ८६ ॥ विपरीतमृतौ घृष्ठा प्रावृषि वार्द्धभागिकम् ॥ ८७ ॥ क्वाथ्यमानं च निर्वेगं निष्फेनं निर्मलश्च यत् ॥ अर्द्धावशिष्टं भवति तदुष्णोदकमुच्यते ॥ ८८ ॥ तत्पादहीनं वातघ्नं चार्द्धं पित्तविकारजित् ॥ कफघ्नं पादशेषन्तु पानीयं लघु पाचनम् ॥ ८९ ॥ धारापाते हि विष्टम्भि दुर्जरं पवनापहम् ॥ शृतशीतं त्रिदोषघ्नं कफान्तभ्रामि शीतलम् ॥ ९० ॥ दिवसे क्वथितं तोयं रात्रौ तद्गुरु वर्जयेत् ॥ रात्रौ शृतं तु दिवसे गुरुत्वमधिगच्छति ॥ ९१ ॥

शरदऋतुमें और ग्रीष्मऋतुमें पकानेमें चौथाई भाग शेषरहा पानी हित है शिशिरमें और वसंतऋतुमें पकानेमें आधा शेषरहा पानी हित है ॥ ८६ ॥ हेमंतऋतुमें पकानेसे तीनहिस्से शेषरहा पानी हित है और वर्षाऋतुमें पकानेमें आधा भाग शेषरहा पानी हित है ॥ ८७ ॥ अग्निपै पकानेमें वेगसे रहितहो झागोंसे वर्जितहो मलसे रहितहो पकानेमें आधा भागशेषहो तिसको उष्णोदक कहते हैं ॥ ८८ ॥ पकानेमें चौथाई भाग जलाहुआ पानी वातको हरता है आधा भाग जला हुआ पानी पित्तको हरता है तीन भाग जलाहुआ पानी कफको हरता है ऐसा पानी हलका है पाचन है ॥ ८९ ॥ धाराके पातसे लिया पानी विष्टंभको करता है मुश्किलसे जरता है वायुको हरता है अग्निपै पकाकै शीतल किया पानी त्रिदोषको नाशता है कफको हरता है शीतल है ॥ ९० ॥ दिनमें पकाये हुये पानीको रात्रिमें नहीं पीवै यह भारी हो जाता है और रात्रिमें पकाये हुये पानीको दिनमें नहीं पीवै यहभी भारी होजाताहै ॥ ९१

अथ पानीविषयकविधि ।

मदात्यये सदाहे च रक्तपित्ते तथोर्ध्वगे ॥ रक्तमेहे विशेषेण नोष्णं तोयं प्रशस्यते ॥ ९२ ॥ पार्श्वशूले प्रतिश्याये वातरोगे गलग्रहे ॥ आध्माने स्तिमिते कोष्ठे सद्यःशुद्धौ नवज्वरे ॥ ९३ ॥

अजीर्णे च तथा कासे न शीतमुदकं हितम् ॥ प्रतिश्याये प्रसेके च ज्वरे कुष्ठे व्रणेषु च ॥ ९४ ॥ शोफे नेत्रामये चैव मन्दाग्नौ च तथा क्षये ॥ सूतिजातासुतानारीरक्तस्रावेऽप्यरोचके ॥ ९५ ॥ एतेषां सिद्धिमिच्छद्भिः पानीयं मन्दमाचरेत् ॥ जीर्णे च क्षुत्प्रपन्ने च पीतं हन्त्युदरानलम् ॥ ९६ ॥

मदात्यय रोग, दाह, शरीरके ऊपरले अंगोंमें प्राप्त हुआ रक्तपित्त, रक्तप्रमेह, इन्होंमें विशेष करकै गर्मपानी श्रेष्ठ नहीं है ॥ ९२ ॥ पसलीशूल, पीनसरोग, वातरोग, गलग्रह, अफारा, स्तिमित, श्वासरोग, कोष्ठरोग, तत्कालके जुलाब, वमनआदि, नवीनज्वर ॥ ९३ ॥ और अजीर्ण, खांसी इन्होंमें शीतल पानी अच्छा नहीं है और पीनस रोग, प्रसेक (मुंहसे रालबहने), ज्वर, कुष्ठ, घाव ॥ ९४ ॥ शोजा, नेत्रके रोग, मंदाग्नि, क्षयरोग, सूतिका नारी, रक्तस्राव, अरोचक ॥ ९५ ॥ इन्होंकी सिद्धिको चाहनेवाला मनुष्य अल्पपानीको पीवै भोजनको जीर्ण होनेमें निहार जब भोजन पच चुकाहो तथा क्षुधाके समय पिया हुआ पानी पेटके अग्निको नाशता है ॥ ९६ ॥

करोति गुल्मं शूलं वा तथा श्रान्ते बहूदकम् ॥ तस्माज्जीर्णेऽनलं हन्ति अजीर्णे वारि भेषजम् ॥ ९७ ॥ भुक्तान्तः परतः शस्तं पीतं वारि गुणात्मकम् ॥ अध्वश्रान्ते क्षुधाक्रान्ते शोषक्रोधातुरेषु च ॥ ९८ ॥ विषमासनोपविष्टे च पीतं वारि रुजाकरम् ॥ तस्मात् प्रसन्ने मनसि पानीयं मन्दमाचरेत् ॥ ९९ ॥ आदौ पीत्वा दहत्यग्निर्मध्ये पीत्वा रसायनम् ॥ तदन्ते च जलं पीत्वा तज्जलं दुर्जरं भवेत् ॥ १०० ॥ भोजनादौ जलं पीत्वा चाग्निसादः कृशाङ्गता ॥ अन्ते करोति स्थूलत्वमूर्ध्वमामाशयात् कफम् ॥ १०१ ॥ इति तोयपानविधिः ॥ इति जलवर्गो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

परिश्रमसे थकाहुआ मनुष्य बहुत पानीको पीवै तो गुल्म और शूलरोगकी उत्पत्ति होती है और भोजनको जीर्ण होनेमें पियाहुआ पानी जठराग्निको हरता है और अजीर्णमें पानी ओषधरूप है ॥ ९७ ॥ भोजन करनेके मध्यमें और पीछेसे पियाहुआ पानी गुणोंको करता है और मार्गके चलनेसे श्रांतहुआ और भूखसे पीडितहुआ और शोक, क्रोध, रोग इन्होंसे पीडितहुआ ॥ ९८ ॥ और विषम आसनपै स्थितहुआ ऐसा मनुष्य पानीको पीवै तो

शीघ्र रोगकी उत्पत्ति होती है तिसकारणसे प्रसन्न हुये मनमेंभी अल्प पानीको पीवै ॥ ९९ ॥ भोजनकी आदिमें पिया पानी अग्निको नाशता है भोजनके मध्यमें पिया पानी रसायन अर्थात् अमृतके समान है भोजनके अंतमें पिया पानी दुःखसे जरता है ॥ १०० ॥ भोजनकी आदिमें पानीको पीनेसे मंदाग्नि और अंगोंका क्लेशपना होजाता है और भोजनके अंतमें पियाहुआ पानी मुटापेको करता है और आमाशयसे ऊपर कफको करता है ॥ १०१ ॥

इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां प्रथमस्थाने जलवर्गो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ८.

अथ दुग्धवर्गवर्णन।

अथातः संप्रवक्ष्यामि क्षीरवर्गन्तु वत्सक ! ॥
दधिसर्पिर्वसातक्रं तेषां सर्वगुणागुणम् ॥ १ ॥

हे पुत्र ! अब क्षीरवर्गको कहताहूं और दही, घृत, वसा, तक्र इन्होंके सब गुण और दोषको कहूंगा ॥ १ ॥

अथ दूधकी उत्पत्ति।

यद्यदाहारजातन्तु रसं क्षीरशिरानुगम् ॥ रसो जलं च भुक्तं च तथा पित्तेन संयुतम् ॥ २ ॥ पाचितं जाठरे वह्नौ पित्तेन सह मूर्च्छितम् ॥ पच्यमानं शिराप्राप्तं क्षीरतोयेन पुत्रक ! ॥ ३ ॥ तेन क्षीरमिति ख्यातमग्निसामात्मकं पयः ॥ अमृतं सर्वभूतानां जीवनं बलकृन्मतम् ॥ ४ ॥

जो जो भोजनसे रस उपजता है वही दूधकी नाडीके अनुगत होता है रस पदार्थ और पानी जो भोजन किया है वह पित्तसे संयुक्त होकै ॥ २ ॥ जठराग्निके द्वारा पच्यमान हुआ वह अन्नजलरस शिरामें दुग्धजलके साथ प्राप्त होता है ॥ ३ ॥ तिस्से दूध ऐसा कहाता है। यह दूध जठराग्निके समान स्वभाववाला होता है और यही दूध अमृत है सब जीवोंका जीवन है और बलको करनेवाला माना है ॥ ४ ॥

हारीतः संशयापन्नः पप्रच्छ पितरं पुनः ॥ कथं रसस्य सम्पत्तिः कथं संचीयते विभो ! ॥ ५ ॥ कथं रक्तस्य संस्थाने क्षीरं पाण्ड समीरितम् ॥ कथं तत्र कुमारीणां वन्ध्यानां न कथं भवेत् ॥ ६ ॥

संशयको प्राप्तहुआ हारीत फिर पिताको पूछताभया हे विभो ! रसकी सिद्धि कैसे है ? और कैसे रस संचित होता है ? ॥ ५ ॥ और कैसे रक्तके स्थानमें सपेद रंगसे प्रेरितहुआ दूध हो जाता है ? कुमारीकन्याके और वंध्यास्त्रियोंके कैसे नहीं होता ? ॥ ६ ॥

एवं पृष्टो महावीर्य्यः प्रोवाच मुनिपुंगवः ॥ शृणु पुत्र! महाप्राज्ञ ! यदुक्तं पूर्वसूरिभिः ॥ ७ ॥ क्षीरं स्निग्धं तथा रक्तं पित्तेन पाकतां गतम् ॥ रक्तं श्वेतत्वमायाति तथा क्षीरं सितं भवेत् ॥ ८ ॥

ऐसे पूछे हुये महावीर्य्यवाले आत्रेयजी कहनेलगे हे पुत्र! हे महाप्राज्ञ ! जो पहले पंडितोंने कहा है वह सुन ॥ ७ ॥ जैसे स्निग्धरूपी दूध और रक्त पित्तसे पाकभावको प्राप्त होता है और रक्त सफेदपनेको प्राप्त होता है तैसे दूधभी सफेद होजाता है ॥ ८ ॥

क्षीरनाडी कुमारीणां वन्ध्यानां च कथं भवेत् ॥ अल्पधातुबलं यस्मात्तस्मात् क्षीरं न जायते ॥ ९ ॥ वन्ध्यानां क्षीरनाडचस्तु वातेन परिपूरिताः॥ क्षीरं च न भवेत्तस्मादार्त्तवं चाधिकं यतः१०

कुमारीकन्याओंके और वंध्याओंके दूधकी नाडी कैसी होती है जिस्से अल्पधातु और अल्पबल होता है तिस्से कुमारीके और वंध्याके दूध नहीं होता है ॥ ९ ॥ वंध्यास्त्रियोंके दूधकी नाडी वायुसे पूरित होती है तिस्से दूध नहीं उपजता है किंतु आर्तव अधिक होताहै ॥ १० ॥

प्रसूतासु च नारीषु बलेन सह सूयते॥ तेन स्रोतोविशुद्धिः स्यात् क्षीरमाशु प्रवर्त्तते ॥ ११ ॥ तस्मात् सद्यःप्रसूतायां जायते श्लैष्मिकं पयः॥ तेन कठिनतां याति तस्मात्तत् परिवर्जयेत् ॥१२॥

और बालकको जन्मानेवाली नारियोंमें बल करकै बालक जन्मता है तिस्से विशेष करकै शुद्धि होती है तब दूध शीघ्र प्रवृत्त होता है ॥ ११ ॥ तिसवास्ते तत्काल प्रसूतहुई नारीमें कफकी प्रकृतिवाला दूध उपजता है तिसकरकै वह दूध कठिनपनेको प्राप्त होता है तिस्से वह वर्जदेना ॥ १२ ॥

स्रोतोविशुद्धिकरणं बलकृद्दोषनाशनम् ॥
पयस्त्रिदोषशमनं वृष्यञ्चाग्निप्रवर्द्धनम् ॥ १३ ॥

स्रोतोंके विशेष करकै शुद्धिको करनेवाला और बलको करनेवाला और दोषको नाशनेवाला ऐसा दूध त्रिदोषको शांत करता है और पुष्टिको करता है और जठराग्निको बढाता है॥ १३ ॥

पृथक् २ स्त्रियोंके दूधके गुण ।

कृष्णा वृष्या च वातघ्नी पयस्तस्या विशिष्यते ॥ श्वेतापयः श्लेष्मकृच्च वातलं रक्तिकापयः ॥ १४॥ पित्तसंशमना पीता तस्याः क्षीरं विशिष्यते ॥

काली स्त्री पुष्टिको करती है वातको नाशती है तिसका दूध अच्छा होता है सफेदरंगकी स्त्रीका दूध कफको करता है लालरंगकी स्त्रीका दुध वातको करता है ॥ १४ ॥ पीलीका दूध पित्तको शांत करता है और यह अच्छा है ॥

पृथक् २ रंगकी गायोंका दूध ।

कृष्णासृक्पित्तसंयुक्ता श्वेता श्लेष्मगुणान्विता ॥ १५ ॥ कफवाताश्रिता पीता रक्ता वातगुणान्विता ॥ यद्यद्द्रव्यगुणास्ते तु ज्ञातव्याः सुमहात्मना ॥ १६ ॥

कालीगाय रक्त आर पित्तसे संयुक्त होती है सफेद रंगवाली कफके गुणोंसे संयुक्त होती है ॥ १५ ॥ पीली कफ और वातसे संयुक्त होती है लालरंगवाली वातके गुणसे संयुक्त होती है ऐसे जो जो उत्तमगुण हैं वे सब महात्मा वैद्यको जानने चाहिये ॥ १६ ॥

धारोष्णं शस्यते गव्यं धाराशीतन्तु माहिषम् ॥
शृतोष्णमाविकं पथ्यं शृतशीतमजापयः ॥ १७ ॥

गायका दूध धारोंसे गर्महुआही हित है भैंसका दूध धारोंसे पीछे शीतलहुआ हित है भेडके दूधको गर्म करके पीछे गरमरूपही पथ्य है बकरीके दूधको गर्मकर पीछे शीतलकरा पथ्यहै १७

अथ गायके दूधके गुण ।

गव्यं पवित्रं च रसायनं च पथ्यं च हृद्यं बलपुष्टिदं स्यात् ॥
आयुष्प्रदं रक्तविकारपित्तत्रिदोषहृद्रोगविषापहं स्यात् ॥ १८ ॥

गायका दूध पवित्र है रसायन है पथ्य है मनोहर है बलको और पुष्टिको देता है आयुको देता है और रक्तविकार, पित्तरोग, त्रिदोष, हृद्रोग, विष इन्होंको नाशता है ॥ १८ ॥

अथ बकरीके दूधके गुण ।

छागं कषायं मधुरञ्च शीतं ग्राहि लघु पित्तक्षयापहारि ॥
कासज्वराणां रुधिरातिसारे हितं पयश्छागलजं त्रिदोषजित् १९

बकरीका दूध कसैला है मधुर है शीतल है कब्जको करता है हलका है पित्तको और क्षयको नाशता है खांसीसहित ज्वर, रक्तका अतीसार इन्होंमें हित है और त्रिदोषको जीतता है॥ १९॥

अथ भेडके दूधके गुण ।

औरभ्रं मधुरं रूक्षमुष्णवातकफापहम् ॥
न शस्तं रक्तपित्तानां वातिकानां हितं भवेत् ॥ २० ॥

भेडका दूध मधुर है रूखा है उष्ण है वातको और कफको नाशता है रक्तपित्तवालोंको अच्छा नहीं है और वातवालोंको अच्छा है ॥ २०

अथ भैंसके दूधके गुण।

स्निग्धं मरुच्छीतकरं च तन्द्रानिद्राकरं वृष्यतमं श्रमघ्नम् ॥
बलप्रदं पुष्टिकरं कफस्य सञ्जीवनं माहिषमुच्यते पयः ॥ २१ ॥

भैंसका दूध चिकना है वायुको और शीतको उपजाता है तन्द्राको और नींदको करता है अतिपुष्ट है परिश्रमको नाशता है बलको देता है कफको करता है और संजीवनरूप है॥ २१॥

अथ ऊँटनीके दूधके गुण।

रूक्षं तथोष्णं लवणं कफस्य निवारणं वातविकारहारि ॥
लघु प्रशस्तं कटुकं कृमीणां शोफार्शसामौष्ट्रपयोऽनुकूलम् २२॥

ऊँटनीका दूध गर्म है सलौना है रूखा है कफको दूर करता है वातके विकारको नाशता है हलका है अच्छा है चर्चरा है कीडोंको निकासता है शोजाको और बवासीरको शांत करता है ॥ २२ ॥

स्त्रियोंके दूधका गुण।

सञ्जीवनं बृंहणमेव सात्म्यं सन्तर्पणं नेत्ररुजापहं च ॥
पित्तस्य रक्तस्य च नाशनं च नारीपयः स्नेहनमेव शस्तम् २३॥

स्त्रियोंका दूध संजीवन है, पुष्टिकारक है, स्वभावसे हित है, तृप्ति करता है, नेत्रोंकी पीडा दूर करता है, दुष्टपित्तका और रक्तका नाश करता है,चिकनाई देता है ऐसा स्त्रियोंका दूध अच्छा है ॥ २३ ॥

अथ प्रभातके दूधके गुण।

निशाशीतांशुसंशीतं निद्रालस्यश्रमानुगम् ॥
सघनं शीतकफकृत्क्षीरं प्राभातिकं भवेत् ॥ २४ ॥

रात्रिके चन्द्रमाकी किरणोंसे शीतलहुआ नींद, आलस्य, परिश्रम इनके अनुसार भारी है शीतको और कफको करनेवाला ऐसा प्रभातका दूध होता है ॥ २४ ॥

अथ दिनके दूधके गुण।

वासरे सूर्य्यसन्तापात्सद्योष्णं कफवातजित् ॥

दिनमें सूर्यके सन्तापसे तत्काल गर्महुआ कफको और वातको जीतनेवाला ऐसा दिनका दूध है ॥

अथ रात्रिके दूधके गुण।

हितं तत्पित्तशमनं सुशीतं भोजने निशि ॥ २५ ॥

रात्रिमें भोजनके समय अच्छा शीतल किया दूध हित है और पित्तको शांत करता है ॥ २५॥

अथ दूधके पीनेकी विधि ।

अल्पाम्बुपानव्यायामात् कटुतिक्ताशने लघु ॥ पिण्याकाम्लाशिनीनांतु गुर्वभिष्यन्दि शीतलम् ॥ २६ ॥

थोडा पानीपीनेवाली फिरनेवाली कडवा तीषा चारा खानेवाली गौआदिका दूध हलका होता है और खली आदि तथा खट्टे पदार्थखानेवाली गौआदिका दुग्ध भारी अभिष्यंदी और शीत होता है ॥ २६ ॥

क्षीणानां दुर्बलानाञ्च तथा जीर्णज्वरार्दिते॥ दीप्ताग्नीनामतन्द्राणां श्रमशोषविकारिणाम् ॥ २७ ॥ व्यवायिनामल्परेतसां श्वासिनां विषमाग्नीनाम् ॥ तथा च राजयक्ष्मणां क्षीरपानं विधीयते ॥२८॥ न शस्तं लवणैर्युक्तं क्षीरं चाम्लेन वा पुनः ॥ करोति कुष्ठं त्वग्दोषं तस्मान्नैव हितं मतम् ॥ २९ ॥

क्षीण, दुर्बल, जीर्णज्वरसे पीडित, दीप्त अग्निवाला, तंद्रासे वर्जित, श्रम और शोषके विकारवाले ॥ २७ ॥ मैथुन करनेवाले, अल्पवीर्यवाले, श्वासवाले, विषम अग्निवाले, राजरोगवाले इन सबोंको दूधका पान कराना ॥ २८ ॥ नमकसे संयुक्त अथवा खट्टे पदार्थसे संयुक्तकिया दूध अच्छा नहीं है यह कुष्ठको और खालमें रोगको करता है इस वास्ते यह हित नहीं है ॥ २९ ॥

अथ गायके दहीके गुण ।

अम्लं स्वादुरसं ग्राहि गुरूष्णं वातरोगजित् ॥ मेदःशुक्रबलश्लेष्मरक्तपित्ताग्निशोफकृत् ॥ ३० ॥ स्निग्धं विपाके मधुरं दीपनं बलवर्द्धनम् ॥ वातापहं पवित्रं च दधि गव्यं रुजापहम् ॥ ३१ ॥

गायका दही खट्टा है स्वादुरसवाला है कब्जको करता है भारी है गर्म है वातरोगको जीतता है और मेद, बल, वीर्य्य, कफ, रक्त, पित्त, अग्नि, शोजा इन्होंको करता है ॥ ३० ॥ स्निग्ध है और विशेष करके पाककालमें मधुर है अग्निको जगाता है बलको बढाता है वायुको नाशता है पवित्र है और रोगको हरता है ॥ ३१ ॥

अथ बकरीके दहीके गुण ।

आजं दधि भवेच्चोष्णं क्षयवातविनाशनम् ॥ दुर्नामश्वासकासेषु हितमग्निप्रदीपनम् ॥ ३२ ॥ विपाके मधुरं वृष्यं रक्तपित्तप्रसादनम् ॥ शस्तं प्राभातिकं प्रोक्तं वातपित्तनिबर्हणम् ॥ ३३ ॥

बकरीका दही गर्म है क्षयको और वातको नाशता है और बवासीर, श्वास, खांसी इन्होंमें हित है अग्निको जगाता है ॥ ३२ ॥ और पाककालमें मधुर है वीर्यमें हित है रक्तपित्तको साफ करता है तिसमें भी प्रभातका दही अच्छा है वात और पित्तको दूर करता है ॥ ३३ ॥

अथ भैंसके दहीके गुण ।

घनं माहिषमुद्दिष्टं मधुरं रक्तदोषकृत् ॥
कफशोफहरं स्वस्थं पित्तकृद्वातकोपनम् ॥ ३४ ॥

भैंसका दही करडा है मधुर है रक्तदोषको करता है कफको और शोजेको हरता है स्वस्थ है पित्तको करता है वातको कोपता है ॥ ३४ ॥

अथ ऊंटनीके दहीके गुण ।

विपाके कटु सक्षारं गुरु भेद्यौष्ट्रिकं दधि ॥
वातमर्शांसि कुष्ठानि क्रिमीन्हंत्युदरं परम् ॥ ३५ ॥

ऊंटनीका दही विपाकमें तीखा, खारा, भारी, मलका भेदनेवाला, वायु, अर्श, कोढ, कृमि और उदररोगोंका नाश करता है ॥ ३५ ॥

अथ स्त्रीके दहीके गुण ।

स्निग्धं विपाके मधुरं बल्यं संतर्पणं हितम् ॥
चक्षुष्यं ग्राहि दोषघ्नं दधि नार्या गुणोत्तमम् ॥ ३६ ॥

स्त्रियोंका दही चिकना, विपाकमें मधुर, बल देनेवाला, धातुओंको तृप्त करनेवाला, ठंढा, नेत्रोंको हितकर, वातादिदोषोंको नाशनेवाला और बडागुणकारी है ॥ ३६ ॥

अथ भेडके दहीके गुण ।

कोपनं कफवातानां दुर्नाम्नां चाविकं दधि ॥ दीपनीयं तु चक्षुष्यं पांडुकृच्चापि वातुलम् ॥ ३७ ॥ रूक्षमुष्णं कषायं स्यादत्यभिष्यंदि दोषलम् ॥ रसे पाके च मधुरं कषायं कुष्ठवर्द्धनम् ॥ ३८ ॥

भेडका दही कफ और वात तथा अर्शरोग इन्होंको कोपनेवाला, जठराग्निको प्रदीप्त करनेवाला, नेत्रको हितकर पांडुरोगको उपजानेवाला, वायु उत्पन्न करनेवाला होताहै ॥ ३७ ॥ रूखा, गरम, कसैला, श्लेष्माको पैदा करनेवाला, दोषोंको उपजानेवाला, रसमें और पाकमें मधुर और कसैला, कुष्ठरोगको बढानेवाला होता है ॥ ३८ ॥

अथ वर्षाकालके दहीके गुण ।

वार्षिकं पित्तकृद्वातशमनं कफकोपनम् ॥
गुल्मार्शःकुष्ठरोगे च रक्तपित्ते न शस्यते ॥ ३९ ॥

वर्षाकालका दही पित्तकारकहै वात शांतकर्ता है और कफको कोपता है और गुल्मरोग बवासीर, कुष्ठ, रक्तपित्त, इन्होंमें अच्छा नहीं है ॥ ३९ ॥

अथ शरदृऋतुके दहीका गुण ।

शारदं दधि गुर्वम्लं रक्तपित्तविवर्द्धनम् ॥
शोफतृष्णाज्वरार्त्तानां करोति विषमज्वरम् ॥ ४० ॥

शरदऋतुका दही भारी है खट्टा है रक्तपित्तको बढाता है और शोजा, तृषा, ज्वर इन्हों-से पीडितोंके विषमज्वरको करता है ॥ ४० ॥

अथ हेमंतऋतुके दहीका गुण ।

गुरु स्निग्धं सुमधुरं कफकृद्बलवर्द्धनम् ॥
वृष्यं मेध्यं च हैमन्तं पुष्टिदं तुष्टिवृद्धिदम् ॥ ४१ ॥

हेमंतऋतुका दही भारा है मधुरहै कफको करता है बलको बढाता है वीर्यमें हित है पवित्र है पुष्टिको देता है और तुष्टिको बढाता है ॥ ४१ ॥

अथ शिशिरऋतुके दहीका गुण ।

वृष्यं बलकरं पैत्तं श्रमस्यापहरं परम् ॥
शैशिरं सघनं चाम्लं पिच्छलं गुरु चैव च ॥ ४२ ॥

शिशिरऋतुका दही करडा है खट्टा है कफकारी है भारा है वीर्यमें हित है बलको करता है पित्तमें अच्छा है श्रमको हरता है ॥ ४२ ॥

अथ वसंतऋतुके दहीका गुण ।

वातलं मधुरं स्निग्धं किञ्चिदम्लं कफात्मकम् ॥
बलकृद्वीर्य्यकृत्प्रोक्तं वसन्ते न प्रशस्यते ॥ ४३ ॥

वसंतऋतुका दही वातल है चिकना है कछुक खट्टा है कफकी प्रकृतिवाला है बलको और वीर्यको करता है कफकारक है इसवास्ते वसंतऋतुमें दही अच्छा नहीं है ॥ ४३ ॥

अथ ग्रीष्मऋतुके दहीका गुण ।

लघु चाम्लं भवेद्ग्रीष्मे चात्युष्णं रक्तपित्तकृत् ॥
शोषभ्रमापिपासाकृद्दधि प्रोक्तं न ग्रैष्मिके ॥ ४४ ॥

ग्रीष्मऋतुका दही हलका है खट्टा है अतिगर्म है रक्तपित्तको करता है और शोष, भ्रम, पिपासा इन्होंको भी करता है इसऋतुमेंभी दही अच्छा नहीं है ॥ ४४ ॥

अथ दहीका वर्जना ।

शरद्ग्रीष्मवसन्तेषु दोषकृन्न हितं भवेत् ॥ न नक्तं दधि भुञ्जीत

न चाऽप्यघृतशर्करम् ॥ ४५ ॥ लवणं दधि भुञ्जीत भुञ्जीताऽप्युदकेन च॥ तल्लवणाम्बुसंयुक्तं दधि शस्तं निशि ध्रुवम् ॥ ४६॥ ज्वरासृक्पित्तविसर्पकुष्ठिनां पाण्डुरोगिणाम् ॥ संप्राप्तकामलानाञ्च शोफिनाञ्च विशेषतः ॥ ४७ ॥ तथा च राजयक्ष्मणामपस्मारे च पीनसे॥प्रतिश्यायार्दितानाञ्च भोजने न हितं दधि॥४८॥

शरद, ग्रीष्म, वसंत, इन ऋतुओंमें दही दोषको करता है हित नहीं है रात्रिमें दहीको नहीं खाना घृत और खांडसे रहितं दहीको नहीं खाना ॥ ४५ ॥ नमकसे मिलाहुआ आर पानीसे मिलाहुआ ऐसे दहीको खाना और रात्रिमें दहीको खावै तो नमक और पानीसे संयुक्तकर खाना ॥ ४६ ॥ ज्वर, रक्तपित्त, विसर्प, कुष्ठ, पांडुरोग, कामला, शोजा ॥ ४७ ॥ राजरोग, मृगीरोग, पीनस, खेहर इनरोगवालोंको भोजनमें दही हित नहीं है ॥ ४८ ॥

अथ दहीको खानेकी विधि।

हिक्काश्वासार्शःप्लीहानामतीसारे भगन्दरे ॥
शस्तं प्रोक्तं दधि चैषां लवणेन विमूर्च्छितम् ॥ ४९ ॥

हिचकी, श्वास, बवासीर, तिलरोग, अतीसार, भगंदर इन्होंमें नमकसे संयुक्तकिया दही खाना अच्छा है ॥ ४९ ॥

अथ गायके तक्र अर्थात् छाँछके गुण।

गव्यं त्रिदोषशमनं पथ्ये श्रेष्ठं तदुच्यते ॥
दीपनं रुचिकृन्मेध्यमर्शोदराविकाराजित् ॥ ५० ॥

गायका तक्र त्रिदोषको शांत करता है पथ्यमें श्रेष्ठ है अग्निको जगाता है रुचिको करता है पवित्र है बवासीरको और अतीसारको नाशता है ॥ ५० ॥

अथ भैंसके तक्रके गुण।

माहिषं कफकृत्किञ्चिद्घ्नं शोफकरं नृणाम् ॥
शस्तं प्लीहार्शोग्रहणीदोषेऽतीसारिणामपि ॥ ५१ ॥

भैंसका तक्र कफको करता है कछुक करडा है मनुष्योंके शोजाको करता है और तिल्लीरोग, संग्रहणी, अतीसार इन रोगवालोंको श्रेष्ठ है ॥ ५१ ॥

अथ बकरीके तक्रके गुण।

छागलं लघु संदिग्धं त्रिदोषशमनं परम् ॥
गुल्मार्शोग्रहणीशूलपाण्डुामयविनाशनम् ॥ ५२ ॥

बकरीका तक्र हलका है चिकना त्रिदोषको नाशनेमें उत्तम है और गुल्म, बवासीर, संग्रहणीरोग, शूल, पांडुरोग, इन्होंको नाशता है ॥ ५२ ॥

अथ तक्रवर्णन।

तथा च त्रिविधं तक्रं कथ्यते शृणु पुत्रक! ॥ यथा योगेन तत् सम्यक् शस्यते येषु रोगिषु ॥ ५३ ॥ समुद्धृतघृतं तक्रमर्द्धोद्धृतघृतञ्च यत् ॥ अनुद्धृतघृतञ्चान्यदित्येतत्त्रिविधं मतम् ॥ ५४ ॥ सर्वं लघु च पथ्यञ्च त्रिदोषशमनं परम् ॥ ततः परं वृष्यतरं क्रमेण समुदीरितम् ॥ ५५ ॥ अनुद्धृतघृतं सान्द्रं गुरु विद्यात्कफात्मकम् ॥ बलप्रदन्तु क्षीणानामामशोफातिसारकृत् ॥ ५६ ॥

तक्र ३ प्रकारका है सो मैं कहताहूं हे पुत्र! सुन अच्छी तरह यथायोग करक वह तक्र जिनरोगोंमें अच्छा है सो दिखाता हूं ॥ ५३ ॥ जो घृतसे वर्जित तक्र है और घृतके सहित तक्र है और अनुद्धृततक्र है ऐसे ३ प्रकारसे तक्र कहा है ॥ ५४ ॥ घृतसे वर्जित तक्र हलका है पथ्य है त्रिदोषको शांत करता है घृतसहित तक्र वीर्यमें हित कहा है ॥ ५५ ॥ अनुद्धृतघृतसंज्ञक तक्र कठिन है भारी है कफकी प्रकृतिवाला है क्षीणमनुष्योंको बल देता है और आमदोष, शोजा, अतीसार इन्होंको करता है ॥ ५६ ॥

अथ साधारण तक्रके गुण।

गरोदराशोंग्रहणीपाण्डुरोगे ज्वरातुरे ॥ वर्चोमूत्रग्रहे वापि प्लीहव्यापदमेहिषु ॥ ५७ ॥ हितं संप्रीणनं बल्यं पित्तरक्तविरोधकृत् ॥ मधुरं पित्तरक्तघ्नमत्युष्णं रक्तपित्तकृत् ॥ ५८ ॥

कृत्रिमविष, उदररोग, बवासीर, ग्रहणीदोष, पांडुरोग, ज्वर, विष्ठाका बँधा, मूत्रका बँधा, तिल्लीरोग, प्रमेह–इन रोगवालोंको ॥ ५७ ॥ साधारणतक्र हित है प्रीतिको करता है बलमें हित है पित्तरक्तका विरोधी है मधुर है पित्तरक्तको नाशता है अतिगरम है और रक्त और पित्तको करता है ॥ ५८ ॥

अथ बहुतपानीवाले तक्रका गुण।

बहूदकं दीपनीयं रक्तपित्तप्रकोपनम् ॥
पीनसे श्वासकासे च न शस्तमिह कथ्यते ॥ ५९ ॥

बहुतपानीवाला तक्र अग्निको जगाता है रक्तपित्तको कुपित करता है और पीनस, खांसी, श्वास. इन रोगोंमें अच्छा नहीं है ॥ ५९ ॥

अथ विशेषवर्णन ।

अर्द्धोदकमुदश्वित्स्यात्तक्रं पादजलान्वितम् ॥
वातं कफं हरेद्घोरमुदश्विच्छ्लेष्मलं भवेत् ॥ ६० ॥

आधेपानीसे संयुक्त उदश्वित् कहते हैं और चौथाईपानीसे संयुक्तको तक्र कहते हैं घोल (निर्जलमथा तक्र) वात कफनाशक है और उदश्वित् कफकारी है ॥ ६० ॥

अथ हाथसे मर्दित किया तक्रका गुण ।

करेण मर्दितं जन्तुतर्पणं बलकृन्मतम् ॥
श्रमापहरणं स्निग्धं ग्रहण्यर्शोऽतिसारनुत् ॥ ६१ ॥

हाथसे मर्दित किया तक्र जीवोंको तृप्त करता है बलको करनेवाला है परिश्रमको हरता है और ग्रहणीदोष, बवासीर, अतीसार इन्होंको नाशता है ॥ ६१ ॥

अथ तक्रनिषेध ।

ऋते शोफे च क्षीणानां नोष्णकाले शरत्सु च ॥ न मूर्च्छाभ्रम-
तृष्णासु तथा रक्ते सपैत्तिके ॥ न शस्तं तक्रपानञ्च करोति विवि-
धान् गदान् ॥ ६२ ॥

शोजाके विना क्षीणोंको और गरमकालमें, शरदऋतुमें और मूर्च्छा, भ्रम, तृषा, इन्होंमें, और रक्तपित्तमें तक्रको पीना अच्छा नहीं है किन्तु अनेकप्रकारके रोगोंको करता है ॥ ६२ ॥

अथ तक्रपानविधि ।

शीतकालेऽग्निमान्द्ये च कफोच्छ्रायामयेषु च ॥ मार्गावरोधे दुष्टे
ऽग्नौ गुल्मार्शसि तथामये ॥६३॥ शस्तं प्रोक्तञ्च तक्रं स्यादमीषां
सर्वदा हितम् ॥ सर्वकालेषु तच्छस्तमजाजिलवणान्वितम् ६४॥

शीतकालमें, मन्दाग्निमें, कफकी अधिकतासे उपजे रोगोंमें, स्रोतोंके रुकजानेमें दुष्टहुए अग्निमें, गुल्मरोगमें बवासीरमें ॥ ६३ ॥ मनुष्योंको तक्र हित कहा है जीरा और नमकसे संयुक्तकिया तक्र सबकालमें उत्तम है ॥ ६४ ॥

अथ नौनीघृतकी विधि ।

नवनीतं नवग्राहि हृद्यं चोल्बणदीपकम् ॥ क्षयारुच्यर्दितप्लीहग्र-
हण्यर्शोविकारनुत् ॥ ६५ ॥ चक्षुष्यं शिशिरं स्निग्धं वृष्यं जी-
वनबृंहणम् ॥ क्षीणे द्रवं हिमं ग्राहि रक्तपित्ताक्षिरोगनुत् ॥६६ ॥
स्मृतिवाय्वग्निशुक्रौजःकफमेदोविवर्द्धनम् ॥ वातपित्तकफोन्मा-
दशोफालक्ष्मीज्वरापहम् ॥ सर्वदोषापहं शीतं मधुरं रसपाकयोः ६७

नौनीघृत नवीन अवस्थाको करता है, ग्राही है सुन्दर है उल्बण है अग्निको जगाता है और क्षय, अरुचि, लकुवावात, तिल्लीरोग, ग्रहणी, दोष बवासीर—इन्होंको नाशता है ॥ ६५॥ और नेत्रोंमें हितहै सुंदर शीतल है चिकना है वीर्यको करता है जीवोंको जिवानेवाला है धातुओंको पुष्ट करता है क्षीणमनुष्यको हित है द्रवरूप है शीतलस्वभाववाला है कब्जको करता है रक्तपित्त-को और नेत्ररोगको नाशता है ॥ ६६ ॥ और स्मृति, वायु, अग्नि, वीर्य, पराक्रम, कफ, मेद इन्होंको बढाता है और वात, पित्त, कफ, उन्माद, शोजा, अलक्ष्मी, ज्वर, इन्होंको नाशता है सबदोषोंको हरता है रसमें और पाकमें मधुर है ॥ ६७ ॥

अथ फेनविधि।

कृष्णगोऽश्वपयःफेनमजानां वेति शस्यते ॥ मन्दाग्नीनां कृशानाञ्च विशेषादतिसारिणाम् ॥ ६८ ॥ उत्साहदीपनं बल्यं मधुरं वातनाशनम् ॥ सद्यो बलकरश्चैव तस्य क्षीरविलोडितम् ॥६९॥ क्षीणज्वरातिसारे च सामे च विषमज्वरे ॥ मन्दाग्नौ कफमाश्रित्य पयःफेनं प्रशस्यते ॥ ७० ॥ क्षीरं गवां क्षीरफेनं तक्रं वा हितमेव च ॥ पक्काम्रभक्षणाद्वापि ग्रहणी तस्य नश्यति ॥ ७१ ॥ ताम्बूलं नैव सेवेत क्षीरं पीत्वा तु मानवः ॥ यावत्तच्च द्रवेत्क्षीरं भुक्तान्ताद्वापि शस्यते ॥ ७२ ॥

कालीगाय और घोडीके दूधका झाग अथवा बकरीके दूधका झाग मंदाग्निवालोंको और कृशमनुष्योंको और विशेष करकै अतीसारवालोंको अच्छा होता है ॥६८ ॥ दूधको विलोनेसे उपजे झाग उत्साहको करते हैं बलमें हित है मधुर है वातको नाशता है शीघ्र बलको करता है ॥ ६९ ॥ क्षीणज्वर, अतीसार, आमज्वर, विषमज्वर, मंदाग्नि, कफको आश्रितहोकै दूधके झागोंका पान श्रेष्ठ है ॥ ७० ॥ गायका दूध अथवा गायके दूधके झाग अथवा गायके दूधका तक्र हित होता है और गायके तक्रको पीनेवाला पकेहुये आंबको खावैं तो ग्रहणीदोषका नाश होता है ॥ ७१ ॥ दूधका पान करकै नागरपानको सेवै नहीं जबतक वह दूध द्रवभावको नहीं प्राप्तहोवै और अन्यभोजनके अंतमें नागरपान अच्छा है अथवा भोजनके अंतमें दूधका पीना अच्छा है ॥ ७२ ॥

अथ गायके घृतका गुण।

विपाके मधुरं वृष्यं वातापित्तकफापहम् ॥
चक्षुष्यं बलकृन्मेध्यं गव्यं सर्पिर्गुणोत्तमम् ॥ ७३ ॥

गायका घृत पाककालमें मधुर है वीर्यमें हित है और वात, पित्त, कफ, इन्होंको नाशता है नेत्रोंमें हित है बलको करता है पवित्र है गुणोंमें उत्तम है ॥ ७३ ॥

अथ बकरीके घृतका गुण ।

आज्यं सन्दीपनीयञ्च चक्षुष्यं बलवर्द्धनम् ॥
कासश्वासक्षयाणाञ्च हितं पाके कफापहम् ॥ ७४ ॥

बकरीका घृत जठराग्निको जगाता है नेत्रोंमें हित है बलको बढाता है और खाँसी, श्वास क्षय, इनरोगवालोंको हित है और पाककालमें कफको नाशता है ॥ ७४ ॥

अथ भैंसके घृतका गुण ।

सवातपित्तशमनं सुशीतं माहिषं घृतम् ॥
मधुरं गुरु विष्टम्भि बल्यं श्रेष्ठगुणात्मकम् ॥ ७५ ॥

भैंसका घृत वातको और पित्तको शांत करता है सुंदर शीतल है मधुर है भारी है विष्टंभी है बलमें हित है और श्रेष्ठगुणोंवाला है ॥ ७५ ॥

अथ ऊंटनीके घृतके गुण ।

औष्ट्रं कटु घृतं पाके शोषकृमिविषापहम् ॥
दीपनं कफवातघ्नं कुष्ठगुल्मोदरापहम् ॥ ७६ ॥

ऊंटनीका घृत पाककालमें चर्चरा है और शोष, कृमि, बिष, इन्होंको नाशता है अग्निको जगाता है कफ और वातको नाशता है और कुष्ठ, गुल्म, उदररोग, इन्होंको हरता है॥७६॥

अथ भेडके घृतका गुण ।

पाके लघ्वाविकं सर्पिः सर्वरोगविषापहम् ॥
वृद्धिं करोति चास्थ्नां वै वाश्मरीशर्करापहम् ॥ ७७ ॥

भेडका घृत पाककालमें हलका है सबतरहके रोगोंको और विषको हरता है हड्डियोंको बढाता है पथरीको और शर्कराको नाशता है ॥ ७७ ॥

अथ घोडीके घृतका गुण ।

वृद्धिं करोति देहाग्नेः पय आश्वं विषापहम् ॥
चक्षुष्यमूषणश्चाग्नेर्वातदोषनिवारणम् ॥ ७८ ॥

घोडीका घृत जठराग्निको बढाता है पाककालमें हलका है विषको हरता है नेत्रोंमें हित है जठराग्निको जगाता है और वातदोषको दूर करता है ॥ ७८ ॥

अथ दूधसेही निकाले घृतका गुण।

वृद्धिं करोति चास्थ्नां वै तत्प्रोक्तञ्च विषापहम् ॥
तर्पणं नेत्ररोगघ्नं दाहनुत्पयसो घृतम् ॥ ७९ ॥

दूधसे निकासा घृत तृप्तिको करता है नेत्ररोगको नाशता है हड्डियोंको बढाता है, विषोंको दूर करता है और दाहको हरता है ॥ ७९ ॥

अथ पुराने घृतका गुण।

सर्पिर्जीर्णं तच्च सन्धुक्षणे च मूर्च्छाकुष्ठोन्मादकर्णाक्षिशूले ॥
शोफार्शसोर्योनिदोषे व्रणेषु शस्तं सर्पिर्जीर्णमेवं नृणां स्यात् ८० ॥

पुरानाघृत जठराग्निको जगाता है और मनुष्योंके मूर्च्छा, कुष्ठ, उन्माद, कर्णशूल, नेत्रशूल, शोजा, बवासीर, योनिदोष, घाव, इन्होंमें हित है ॥ ८० ॥

अथ नारीके घृतका गुण।

कफेऽनिले योनिदोषे रोगेष्वन्येषु तद्धितम् ॥
चक्षुष्यमार्त्तं स्त्रीणाञ्च सर्पिः स्यादमृतोपमम् ॥ ८१ ॥

कफ, वात, योनिदोष, अन्यभी रोग, इन्होंमें उत्तम है नेत्रोंमें हित है और अमृतके समान है ऐसा नारीका घृत कहा है ॥ ८१ ॥

अथ घृतका विशेष वर्णन।

बलक्षये तर्पणभोजनेषु श्रमे च पित्तासृजि रेणुयुक्ते ॥ नेत्रामये कामलपाण्डुरोगे क्षये नवं सर्पिर्वदन्ति धीराः ॥ ८२ ॥ ज्वरे विबन्धेषु विषूचिकायामरोचके वा शमिते तथाग्नौ ॥ पानात्यये वापि मदात्यये वा शस्तं न सर्पिर्बहु मन्यते सुधीः ॥ ८३ ॥

इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे क्षीरवर्गो नाम अष्टमोऽध्यायः ॥८॥

बलक्षयमें, तर्पणमें, भोजनमें, परिश्रममें, पित्तरक्तमें, नेत्रके रोगमें, कामलामें, पांडुरोगमें, क्षयमें, वैद्य घृतको उत्तम कहते हैं ॥ ८२ ॥ ज्वरमें, विबंधमें, विषूचीसंज्ञक हैजामें, अरोचकमें, मंदाग्निमें, पानात्ययमें, मदात्ययमें, वैद्य घृतको अच्छा नहीं मानतेहैं ॥ ८३ ॥

इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां प्रथमस्थाने क्षीरवर्गो नाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः ९.



अथ मूत्रवर्गः ।

मूत्रं गोऽजाविमाहिष्यं गजाश्वोष्ट्रखरोद्भवम् ॥
मूत्रं मानुषजञ्चान्यत्समासेन गुणाञ्छृणु ॥ १ ॥

गाय, बकरी, भेड, भैंस, हस्ती, घोडा, ऊंट, गधा, मनुष्य, इन्होंके मूत्रोंके गुण विस्तारसे सुन॥ १॥

अथ गोमूत्रके गुण ।

तीक्ष्णञ्चोष्णं क्षारमेवं कषायं बल्यं मेध्यं श्लेष्मवातान्निहन्ति ॥
भेदि रक्तपित्तशमं करोति गुल्मानाह दर्पदोषापहञ्च॥२॥ भ्रूशङ्ख-
हनुकण्ठकमुखानाञ्च रोगान् गुल्मातिसारगुदमारुतनेत्रगदान् ॥
कासं सकुष्ठं जठरकृमिकोशजालं गोमूत्रमेकमपि पीतमहानि
हन्ति ॥ ३ ॥

गायका मूत्र तीक्ष्ण है गरम है खारा है कसैला है बलमें हित है पवित्र है कफको और वातको नाशताहै भेदित करनेवाला है रक्तपित्तको शांत करता है और गुल्म, अफारा, उन्माद दोष, इन्होंको हरता है ॥ २ ॥ और भ्रुकुटी, कनपटी, ठोडी, कंठ, मुख, इन्होंके रोगोंको और गुल्म, अतीसार, बवासीर, वातरोग, नेत्ररोग, खांसी, कुष्ठ, पेटमें कीडोंका समूह–इन्होंको कईदिन पीनेसे नाशता है ॥ ३ ॥

अथ बकरीके मूत्रका गुण ।

आजं मूत्रं तीक्ष्णमुष्णं कषायं योज्यं पाने शूलगुल्मार्त्तिनाशम् ॥
कासश्वासकामलापाण्डुरोगार्शसाञ्चैव श्रेष्ठमेतद्वदन्ति ॥ ४ ॥

बकरीका मूत्र तीक्ष्ण है गर्म है कसैला है गुल्मको और शूलको नाशता है और खांसी श्वास, कामला, पांडुरोग, बवासीर– इन्होंमें श्रेष्ठ है ॥ ४ ॥

अथ मेढाके मूत्रका गुण ।

सक्षारं कटुकं तीक्ष्णं मूत्रं वातघ्नमाविकम् ॥
दुर्नामोदरशूलघ्नं कुष्ठमेहविशोधनम् ॥ ५ ॥

मेढाका मूत्र क्षार है कडुआ है तीक्ष्ण है वातको नाशता है और कुष्ठ, बवासीर, उदररोग शूल, प्रमेह, इन्होंको नाशता है ॥ ५ ॥

अथ भैंसाके मूत्रका गुण ।

सारं सतिक्तं कटुकं कषायं प्रभेदि वातस्य शमं करोति ॥
पित्तप्रकोपं कुरुते सदा च कुष्ठार्शपाण्डूदरशूलनाशम् ॥ ६ ॥

भैंसाका मूत्र सारक है कडुआ है चर्चरा है कसैला है भेदन करता है वातको शांत करताहै सबकालमें पित्तको कुपित करता है और पांडु, बवासीर, कुष्ठ, उदररोग, शूल, इन्होंको नाशता है ॥ ६ ॥

अथ हस्तीके मूत्रका गुण ।

सुतिक्तं लवणं भेदि वातघ्नं कफकोपनम् ॥
क्षारमण्डलकुष्ठानां नाशनं गजमूत्रकम् ॥ ७ ॥

हस्तीका मूत्र सुंदर कडुआ है सलोना है भेदन करता है वातको नाशता है कफको कोपता है और क्षारसे उपजे मंडल और कुष्ठोंको नाशता है ॥ ७ ॥

अथ घोडेके मूत्रका गुण ।

कासकफहरं छर्दिक्रिमिकुष्ठविनाशनम् ॥
दीपनं कटु तीक्ष्णोष्णं वातश्लेष्मविकारनुत् ॥ ८ ॥

घोडेका मूत्र खांसीको और कफको हरता है और छर्दि, कृमि, कुष्ठ, इन्होंको नाशता है अग्निको जगाता है चर्चरा है तीक्ष्ण है गरम है वात और कफके विकारको नाशता है ॥ ८ ॥

अथ ऊंटके मूत्रका गुण ।

औष्ट्रं कफहरं रूक्षं क्रिमिदद्रूविनाशनम् ॥
श्रेष्ठं कुष्ठोदरोन्मादशोषार्शःक्रिमिवातनुत् ॥ ९ ॥

ऊंटका मूत्र कफको हरता है रूखा है कृमिरोगको और दद्रूको नाशता है श्रेष्ठ है और कुष्ठ, उदररोग, उन्माद, शोष, बवासीर, कृमि, वात, इन्होंको नाशता है ॥ ९ ॥

अथ गधाके मूत्रका गुण ।

गार्दभं नामनं मूत्रं तैलं योज्यं क्वचिद्भवेत् ॥
सक्षारं तिक्तकटुकमुन्मादकुष्ठरोगनुत् ॥ १० ॥

गधाका मूत्र निवाय देता है और कहींके तेलमें युक्त करनेके योग्य है खारा है और तिक्तहै कडुआ है चर्चरा है उन्मादको और कुष्ठको नाशता है ॥ १० ॥

अथ नरके मूत्रका गुण ।

मानुषं क्षारकटुकं मधुरं लघु चोच्यते ॥
चक्षुरोगहरं बल्यं दीपनं कफनाशनम् ॥ ११ ॥

मनुष्यका मूत्र खारा है चर्चरा है मधुर है हलका है नेत्रोंके रोगको हरता है बलमें हित है अग्निको जगाता है और कफको नाशता है ॥ ११ ॥

अथ प्रसूता और अप्रसूताके मूत्रका गुण।

अप्रसूताया घनं मूत्रं प्रसूताया द्रवं लघु ॥
न किंगुणविशेषः स्यात्समता पाकवीर्य्ययोः ॥ १२ ॥

नहीं प्रसूत अर्थात् विना व्याईहुईका मूत्र कठिन होता है व्याईहुईका मूत्र पतला होता है हलका होता है और कछुगुणमें विशेषता नहीं है पाककालमें और वीर्य्यमें भी समता है ॥ १२ ॥

अथ मूत्रविशेषः।

सौरभेयकमूत्रन्तु घनं सान्द्रं प्रशस्यते ॥ तच्च वृषणहीनानां किञ्चिल्लघुतरं मतम् ॥ १३ ॥ वृषमूत्रञ्च शोफघ्नं क्रिमिदोषविनाशनम् ॥ कामलाग्रहणीपाण्डुनाशनञ्चाग्निदीपनम् ॥ १४ ॥ अजागविगतं मूत्रं पाने शस्तं भिषग्वर! ॥ आविकं माहिषं चाश्वं तैलपाके विधीयते ॥ १५ ॥ गजमूत्रप्रलेपश्च कण्डूदद्रूविसर्पनुत् ॥ कारभं खरमूत्रं वा तैले नस्ये विधायकम् ॥ १६ ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे मूत्रवर्गो नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

वृषभका मूत्र कठिन और मोटा श्रेष्ठ होता है वधिया किये बैलका मूत्र कछुक हलका है ॥ १३ ॥ बैलका मूत्र शोजाको हरता है कृमिदोषको नाशता है और कामला, ग्रहणी, पांडुरोग, इन्होंको नाशता है और अग्निको जगाता है ॥ १४ ॥ बकरीका और गायका मूत्र पीनेमें श्रेष्ठ है हे वैद्यवर ! मेढाका मूत्र, भैंसाका मूत्र, घोडाका मूत्र, ये तीनों तेल पाकमें हित हैं ॥ १५ ॥ हस्तीके मूत्रका लेप खाज, दद्रू, विसर्प्प, इन्होंको नाशता है ऊंटका मूत्र और गधाका मूत्र तेलमें और नस्यमें उत्तम है ॥ १६ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां प्रथमस्थाने मूत्रवर्गो नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः १०.

अथ इक्षुवर्गः।

अथातः संप्रवक्ष्यामि इक्षुवर्गं गुणाधिकम् ॥
रसायनोत्तमं बल्यं रोगवारणमुत्तमम् ॥ १ ॥

अब गुणोंसे अधिक संयुक्तहुये ईखके वर्गको कहताहूं यह ईखवर्ग उत्तम रसायन है रोगों-को दूर करता है ॥ १ ॥

स्वादुईखके गुण ।

स्निग्धश्च तर्पणं वापि बृंहणश्च सजीवनम् ॥ २ ॥

स्वादु ईख चिकना है तृप्तिको करता है धातुओंको पुष्ट करता है और जीवनरूप है ॥ २ ॥

अथ सफेदईखका गुण ।

तद्वातपित्तशमनश्च तथैव वृष्य अन्तर्विदाही कफकृत्सितेक्षुः॥३॥

सफेदईख वातको और पित्तको शांत करता है वीर्यको बढाता है और शरीरके भीतर दा-हको करता है और कफकारकहै ॥ ३ ॥

अथ कालाईखके गुण ।

तद्वत् सुकृष्णो भवते गुणानां वृष्यो भवेत्तर्पणदाहहन्ता ॥
क्षारः स किञ्चिन्मधुरो रसेन शोषापहर्त्ता व्रणशोफकारी ॥ ४ ॥

कालाईख सफेदईखके गुणोंसे संयुक्त होता है वीर्यको बढाता है तृप्तिको और दाहको नाशता है खारा है और रसकरकै कछुक मधुर है शोषको हरताहै घावको और शोजाको करता है ॥ ४ ॥

अथ यंत्रसे निकासेहुये रसका गुण ।

यन्त्रेण पीडितरसः कथितो गुरुश्च वृष्यः कफञ्च कुरुतेऽथ सुशीतलश्च ॥ पाके विदाहबलकृच्च सुशोभनश्च संसेवितो रुधिरपित्तरुजं निहन्ति ॥ ५ ॥

यंत्रसे निकासाहुआ ईखका रस भारी है वीर्यको करता है कफको करता है सुंदर शीतल है पाककालमें दाहको करता है बलको उपजाता है सुंदर शोभित है और सेवितकिया रक्त और पित्तके रोगको नाशता है ॥ ५ ॥

अथ दांतोंसे पीडितकिये रसका गुण ।

दन्तैर्निष्पीडितरसो रुचिकृद्गुरुश्च सन्तर्पणो बलकरः कफकृच्छ्रमघ्नः ॥ विष्टम्भकारी रुधिरस्य तथैव पित्तदोषं निहन्ति सकलं वमनञ्च शोषम् ॥ ६ ॥

दांतोंसे पीडितकर निकासाहुआ ईखका रस रुचिको करता है भारी है तृप्तिको करता है बलको उपजाता है कफको करता है परिश्रमको नाशता है विष्टंभको करताहै रक्तको और पित्तको नाशता है वमनको और शोषको हरता है ॥ ६ ॥

अथ बासी रसका गुण।

रसपर्य्युषितोनेष्टस्तापहैकमते गुरुः ॥
कफपित्तकरः शोषी भेदनो वाऽथ मूत्रलः ॥ ७ ॥

बासीईखका रस अच्छा नहीं है और किसीके मतमें तापको हरता है भारी है कफको और पित्तको करता है शोषको करता है भेदन करता है और वातको उपजाता और मूत्रलहै॥७॥

अथ पक्करसका गुण।

पक्को गुरुतरः स्निग्धः सतीक्ष्णः कफवातहा ॥
पित्तघ्नोऽपि विशेषेण गुल्मातीसारकासहा ॥ ८ ॥

पकायाहुआ ईखका रस विशेष भारी है चिकना है तीक्ष्ण है कफको और वातको नाशता है और विशेषकरकै पित्तको शांत करता है और गुल्म, अतीसार, खांसी-इन्होंको नाशता है।॥८॥

अथ फाणितरसका गुण।

फाणितं गुर्वभिष्यन्दि बृंहणं शुक्रलञ्च तत् ॥
पित्तघ्नञ्च श्रमहरं रक्तदोषनिषूदनम् ॥ ९ ॥

फाणितरस भारी है कफको करता है धातुओंको पुष्ट करता है वीर्य्यको बढाता है पित्तको नाशता है परिश्रमको हरता है और रक्तदोषको दूर करता है ॥ ९ ॥

अथ गुडका गुण।

बल्यो वृष्यो गुरुः स्निग्धो वातघ्नो मूत्रशोधनः ॥ स पुराणोऽधिकगुणो गुल्मार्शोऽरोचकापहः ॥ १० ॥ क्षये कासे क्षतक्षीणे पाण्डुरोगेऽसृजः क्षये ॥ हितो योग्ये न संयुक्तो गुडः पथ्यतमो मतः ॥ ११ ॥

गुड बलमें हित है वीर्यको करता है भारी है चिकना है वातको नाशता है मूत्रको शोधता है और पुराना गुड अधिक गुणोंवाला है और गुल्म, बवासीर, अरोचक—इन्हेंको नाशता है ॥ १० ॥ और क्षय, खांसी, क्षत क्षीण, पांडुरोग, रक्तक्षय, इनरोगोंमें हितपदार्थसे संयुक्तकिया गुड अतिपथ्य माना है ॥ ११ ॥

अथ गुडकी खांडका गुण।

गुडखण्डश्च मधुरः सितश्च वातपित्तहा ॥
किञ्चिच्छीतगुणोपेतो बल्यो वृष्यो रुचिप्रदः ॥ १२ ॥

गुडकी खांड मधुर है सफेद है वातको और पित्तको नाशती है कछुक शीतगुणसे संयुक्त है बलमें हित है वीर्यको देती है और रुचिकोभी देती है ॥ १२ ॥

अथ साधारण खांडका गुण।

वातपित्तहरं शीतं स्निग्धं बल्यं मुखप्रियम् ॥
चक्षुष्यं श्लेष्मकृच्चोक्तं खण्डं वृष्यतमं मतम् ॥ १३ ॥

खांड साधारण वातको और पित्तको हरती है शीतल है चिकनी है बलमें हित है: मुखमें प्रिय है नेत्रोंमें हित है कफको करती है और वीर्यको अति बढाती है ॥ १३ ॥

अथ मिश्रीका गुण।

सिता सुमधुरा प्रोक्ता वृष्या शुक्रविवर्द्धनी ॥
पित्तघ्नी मधुरा बल्या शर्करा पायिनी नृणाम् ॥ १४ ॥

मिश्री सुंदर मधुर है वीर्यको बढाती है धातुओंको पुष्ट करती है पित्तको नाशती है मधुर है बलमें हित है मनुष्योंकी रक्षा करती है ॥ १४ ॥

अथ सुंदरखांडका गुण।

शर्करान्या सुशीता च कासशूलसमुद्भवा ॥
हिता पित्तासृजि शोषे मूर्च्छाभ्रममदापहा ॥ १५ ॥

सफेद खांड सुंदर शीतल है खांसीको और शूलको उपजाती है पित्तरक्तमें हित है शोषमें हित है और मूर्च्छा, मद, भ्रम, इन्होंको नाशती है ॥ १५ ॥

अथ गुडविशेषता।

गुदामये कामलशोषमेहे गुल्मामये पाण्डुहलीमके च ॥ वाते सपित्तासृजि राजरोगे रुचिप्रदो रोगहरो गुरुः स्यात् ॥ १६ ॥ कासे शोषे गुडो नेष्ट अन्यत्रापि हितो मतः ॥ योगयुक्तोऽहि सर्वत्र हितो गुणगणालयः ॥ १७ ॥ क्षामक्षामक्षतरुजाश्वासमूर्च्छानुरोगिणाम् ॥ अध्वश्रान्तिश्रममदविषमूत्रकृच्छ्राश्मरीणाम् ॥ १८ ॥ जीर्णक्षामज्वरविषमगे रक्तपित्तप्रकोपे ॥ तृष्णादाहक्षयरुधिरगे सर्वरोगान् निहन्ति ॥ १९ ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे प्रथमस्थाने इक्षुवर्गो नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

गुदारोगमें, कामलामें, शोषमें, ममेहमें, गुल्ममें, पांडु और हलीमकमें, वातमें, रक्तपित्तमें, राजरोगमें, गुड रुचिको देता है और रोगको हरता है भारी है ॥ १६ ॥ परंतु खांसीमें और शोषमें अकेला गुड अच्छा नहीं है और अन्य जगह हित है और योगोंमें युक्तकिया गुड, सब रोगोंमें हित है और गुणोंके समूहका स्थान है ॥ १७ ॥ कृश, क्षयरोग, श्वास, मूर्च्छा,

इनरोगोंको और मार्गके चलनेसे थकना, परिश्रम, मद, विष, मूत्रकृच्छ्र, पथरी, इनरोगोंको ॥ १८ ॥ बुढापा, विषमज्वर, रक्तपित्तका प्रकोप, तृषा, दाह, क्षय, रक्तरोग, इन्होंको गुड हरता है ॥ १९ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां प्रथमस्थाने इक्षुवर्गो नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः ११.

अथ कांजिकवर्गः ।

सन्धानं शीतलं स्वादु महातीसारनाशनम् ॥

कांजी शीतल है स्वादु है महातीसारको नाशती है ॥

अथ चावलोंके पानीका गुण ।

सुस्वादु शीतलञ्चैव बृंहणं तण्डुलोदकम् ॥ १ ॥

चावलोंका पानी सुंदर स्वादु है शीतल है और धातुओंको पुष्ट करता है ॥ १ ॥

अथ तुषोदकका गुण ।

तुषोदकं वातपित्तहरन्तु रक्तपित्तहरं प्रभेदकञ्च ॥
विपाचनं स्याज्जरणं क्रिमिघ्नमजीर्णहन्तृ कटुकं विपाके ॥ २ ॥

तुषोदक वातपित्तको हरता है रक्तपित्तको हरता है भेदन करता है विशेषकरकै पाचन है जराता है कीडोंको हरता है अजीर्णको हरता है और पाककालमें चर्चरा है ॥ २ ॥

अथ जव और गेहूंकी कांजीका गुण ।

जातं यवाम्लं कटुकं विपाके वातापहं श्लेष्महरं सरक्तम् ॥ पित्तप्रकोपं कुरुते सभेदि विदूषणं पित्तगदासृजश्च ॥ ३ ॥ सन्दीपनं शूलहरं रुचिप्रदं गोधूमजातं कथितं कषायम् ॥ सन्दीपनं स्याज्जरणं कफघ्नं समीरदोषं हरते ततोऽपि ॥ ४ ॥

जवोंकी कांजी पाककालमें चर्चरी है वातको और कफको हरती है रक्तको और पित्तको कोपती है भेदन करती है और रक्तपित्तको दूषित करती है ॥ ३ ॥ गेहूंकी कांजी कषैली है अग्निको जगाती है भोजनको जराती है कफको नाशती है और वायुके दोषको हरती है ॥ ४ ॥

अथ तैलयुक्तकांजीका गुण ।

पीतं जरयते वामं बाह्यदाह्यश्रमापहम् ॥

स्याच्च तत्कुष्ठकण्डूघ्नं तैलयुक्तं समीरहृत् ॥ ५ ॥

तेलसे युक्तहुई कांजी पीनेसे आमको जराती है शरीरके बाहिरके दाहकों और परिश्रमको हरती है कुष्ठको और खाजको तथा वायुको नाशती है ॥ ५ ॥

अथ युगंधरकांजीका गुण।

युगन्धराम्लं कफवातहन्तृ शूलामयानां जरणप्रकर्तृ ॥
तीक्ष्णं तथाम्लं श्रमदोषहन्तृ मेहार्शसो रक्तहितं मतञ्च ॥ ६ ॥

ये पूर्वोक्त दोनों कांजी मिलीहुई कफको और वातको हरती है शूलको दूर करती है तीक्ष्ण है खट्टी है श्रमदोषको हरती है प्रमेहमें और बवासीरमें हित है ॥ ६ ॥

अथ कांजीका परिहार।

शोषे मूर्च्छाज्वरार्त्तानां भ्रमके दुर्विषार्दिते ॥ कुष्ठानां रक्तपित्तानां काञ्जिकं न प्रशस्यते ॥ ७ ॥ पाण्डुरोगे राजयक्ष्मे तथा शोफातुरेषु च ॥ क्षतक्षीणे पथिश्रान्ते मन्दज्वरनिपीडिते ॥ नरे नैव हितं प्रोक्तं काञ्जिकं दोषकारकम् ॥ ८ ॥

शोषमें मूर्च्छा और ज्वरसे पीडितको भ्रममें दुष्ट विषकी पीडामें कुष्ठ और रक्तपित्तमें कांजी अच्छी नहीं है ॥ ७ ॥ पांडुरोगमें राजरोगमें और शोजासे पीडितरोगीको और क्षतसे क्षीण हुएको और मार्गमें थकेहुये और मंदज्वरसे पीडितको कांजी अच्छी नहीं है किंतु दोषोंको करती है ॥ ८ ॥

अथ कांजीकी प्रशंसा।

शूलवातार्दितानान्तु तथा जीर्णविबन्धिनाम् ॥ श्रेष्ठं प्रोक्तं तथाम्लञ्च गुणाधिक्यं नरेषु च ॥ ९ ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे काञ्जिकवर्गो नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

शूल और वातसे पीडितको अजीर्ण और बंधावालेको कांजी श्रेष्ठ है और मनुष्योंमें गुणोंकी अधिकता करती है ॥ ९ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां कांजिकवर्गो नाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः १२.

अथ चावलोंके मंडका गुण।

धान्यमण्डं पित्तहरं श्रमघ्नञ्चाश्मरीहरम् ॥
वातलं रक्तशमनं ग्राहि सन्दीपनं वरम् ॥ १ ॥

चावलोंका मांड पित्तको हरता है परिश्रमको हरता है पथरीको हरता है वायुको उपजाता है रक्तको शांत करता है कब्जको करता है और अग्निको अच्छीतरह जगाता है ॥ १ ॥

अथ लालचावलके मांडका गुण।

रक्तशाल्युद्भवं मण्डं मधुरं ग्राहि शीतलम् ॥
प्रमेहानश्मरीं हन्ति वातलं पित्तहृद्वरम् ॥ २ ॥

लालचावलोंका मांड मधुर है कब्जको करता है प्रमेहोंको और पथरीको हरता है वातल है पित्तको हरता है सुन्दर है ॥ २ ॥

अथ सफेद चांवलोंके मांडका गुण।

मधुरं शीतलं किञ्चिच्छ्लेष्मलं शोषनाशनम् ॥
अश्मरीमेहसंच्छर्दिवातलं श्वेततण्डुलम् ॥ ३ ॥

सपेद चावलोंका मांड मधुर है शीतल है कछुक कफको करता है शोषको नाशता है और पथरी, प्रमेह, छर्दि, वात, इन्होंको करता है ॥ ३ ॥

अथ जवोंके मांडका गुण।

यवमण्डं कषायं स्याद्ग्राहि चोष्णे विपाकि च ॥

जवोंका मांड कषैला है कब्जको करता है गरमपाकवाला है.

अथ गेहूँके मांडका गुण।

तद्वद्गोधूमसम्भूतं मधुरं पित्तवारणम् ॥ ४ ॥

गेहुंओंका मांड जवोंके मांडके समान गुण देता है परंतु मधुर है और पित्तको दूर करता है ॥ ४ ॥

अथ क्षुद्रअन्नके मांडका गुण।

अन्येषां क्षुद्रधान्यानां मण्डं वातहरं स्मृतम् ॥

क्षुद्रसंज्ञक अन्नोंका मांड वातको हरनेवाला कहा है.

अथ कोदूं अन्नके मांडका गुण।

ग्लानिमूर्च्छाकरं सद्यः कोद्रवं न हितं मतम् ॥ ५ ॥

कोदूं अन्नका मांड ग्लानिको और मूर्च्छाको शीघ्र करता है और हित नहीं माना है ॥ ५ ॥

अथ क्षुद्रअन्नके कांजीका गुण।

तद्वच्च क्षुद्रधान्याम्लं वातलं पित्तकारकम् ॥ करोति श्लीपदं गुल्मं प्रतिश्यायादिकोपनम् ॥ ६ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे मण्डवर्गो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

क्षुद्रअन्नकी कांजी ग्लानिको और मूर्च्छाको शीघ्र हरती है वातल है पित्तको भी करती है श्लीपदको और गुल्मको करती है और खेहर आदिको कोपती है ॥ ६ ॥ इति वेरीनिवासि बुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां प्रथमस्थाने मंडवर्गोनाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः १३.

अथ यूषवर्गः।

प्रथम कुलथीके यूषका लक्षण।

कुलत्थयूषो मधुरः कषाया भवेच्च रक्तस्य कफस्य हन्ता ॥
महाश्मरीपायुजमेदहन्ता सन्दीपनो मेहविशोषणश्च ॥ १ ॥

कुलथीका यूष मधुर है कसैला है रक्तसहित कफको नाशता है, और पथरी, बवासीर, मेद, इन्होंको नाशता है अग्निको जगाता है और प्रमेहको शोषता है ॥ १ ॥

अथ हरडके यूषका गुण।

भवेदाढक्या मधुरश्च यूषं विशोषणं वातनिवारणञ्च ॥
श्लेष्मापहं पित्तहरं ज्वराणां पृथक् पृथक् कृमिहृद्दारुणञ्च ॥ २ ॥

हरडका यूष मधुर है शोषता है वातको दूर करता है और दारुणरूपी कफको और पित्तको हरता है ज्वरको शांत करता है कृमिरोगको नाशता है ॥ २ ॥

अथ मूँगके यूषका गुण।

शीतलं मधुरं मौद्गयूषं पित्तविकारजित् ॥
तच्च वातहरं प्रोक्तं ज्वराणां शमनं परम् ॥ ३ ॥

मूँगका यूष शीतल है मधुर है पित्तके विकारको जीतता है वातको हरता है और ज्वरोंको निश्चय शांत करता है ॥ ३ ॥

अथ चनाके यूषका गुण।

कषायं कटुकं चोष्णं वातघ्नं कफदोषकृत् ॥
रक्तपित्तं निहन्त्याशु चणानां यूषमुच्यते ॥ ४ ॥

चनाका यूष कसैला है चर्चरा है गरम है वातको नाशता है कफको करता है और रक्तपित्तको निश्चय नाशता है ॥ ४ ॥

अथ उडदके यूषका गुण।

घनं सवातं कफकृन्माषयूषश्च पित्तकृत् ॥
अम्लं पर्य्युषितं तच्च तैलपाके च शस्यते ॥ ५ ॥

उड़दका यूष भारी है वातको और कफको करता है खट्टा है और बासीहुआ यह यूष तैलपाकमें श्रेष्ठ है ॥ ५ ॥

अथ अन्ययूषोंके गुण।

अन्यानि च प्रशस्तानि कुलत्थान्युषितानि च ॥ मसूरास्त्रिपुटा बल्याः कलायाद्याश्च वर्जिताः ॥ ६ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे यूषवर्गो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

और बासीहुये कुलथी आदिकेभी यूष अच्छे हैं और मसूरके यूष बलमें हित हैं और मठर आदिके यूष वर्जित हैं ॥ ६ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादित हारीतसंहिताभाषाटीकायां यूषवर्गो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दशोध्यायः १४.

अथ तैलवसावर्गः।

अथातः संप्रवक्ष्यामि तैलानाञ्च गुणागुणान् ॥
तच्च ज्ञेयं समासेन यथायोग्यं यथाविधि ॥ १ ॥

अब तेलोंके गुणदोषको कहताहूं वह तेल विस्तारसे यथायोग्य जानना ॥ १ ॥

अथ तिलोंके तेलका गुण।

कषायानुरसं स्वादु सूक्ष्ममुष्णं व्यवायि च ॥ पित्तकृद्वातशमनं श्लेष्मरोगादिवर्द्धनम् ॥ २ ॥ अल्पं रुचिकरं मेध्यं कण्डूकुष्ठविकारनुत् ॥ वृष्यं श्रमापहं ज्ञेयं तिलतैलं विदुर्बुधाः ॥ ३ ॥ छिन्ने भिन्ने च्युते घृष्टे भग्नाग्निदाहकेऽपि च ॥ वाताभिष्यन्दिस्फुटने चाभ्यङ्गे तिलतैलकम् ॥ ४ ॥ विषे व्यालशुनः सर्पभेकाभ्यङ्गावगाहने ॥ पाने बस्तौ बलाशे च तिलतैलं विधीयते ॥ ५ ॥ तिलतैलं विधेयं स्यात्सर्वरोगनिवारणे ॥ ६ ॥

तिलोंका तेल कसैला है स्वादु है सूक्ष्म है गरम है फैलनेवाला है पित्तको करता है वातकों शांत करता है और कफरोगआदिको बढाता है ॥ २ ॥ अल्परूपी यह तेल रुचिको करता है पवित्र है खाजको और कुष्ठको नाशता है धातुको पुष्ट करता है परिश्रमको नाशता है ऐसे तिलोंके तेलको बुद्धिमान् कहतेभये ॥ ३ ॥ और छिन्न अर्थात् तलवार आदिसे कटाहुआमें–भिन्न अर्थात बरछी आदिसे कटाहुआमें–विसनेमें–पत्थरआदिकी रगडसे छिलनेमें–हाड आदिके टूटनेमें–अग्निसे जलनेमें–वाताभिष्यंदमें–फूटनेमें–मालिस करनेमें–तिलोंका तेल उत्तम है ॥४॥ भेडिया और कुत्ताके विषमें सर्पविषैलेमींडकआदिके विषमें–मालिस–स्नान–पान बस्तिकर्म्म–इन्होंके द्वारा चिकित्सामें और कफके रोगमें तिलोंका तेल हित है ॥ ५ ॥ और सब रोगोंको दूर करनेके लिये तिलोंके तेलका विधान है ॥ ६ ॥

अथ सरसोंके तेलका गुण।

कटु तिक्तं तथा ग्राहि उष्णं स्यात् कफवातनुत् ॥ कृमिकण्डूशोधनं स्यात् पित्तकृत्सार्षपं स्मृतम् ॥ ७ ॥ कर्णरोगे कृमिरोगे तथा वातामयेषु च ॥ कण्डूकुष्ठामये चैव कफमेदोगुणेषु च ॥८॥ प्रशस्यं सार्षपञ्चैव रोगाणाञ्च विभावयेत् ॥ बस्तिकर्मणि नो शस्तं पित्तदाहकरं महत् ॥ ९ ॥

सरसोंका तेल चर्चरा है कडुआ है कब्जको करता है गरम है कफको और वातको नाशता है कीड़ोंको और खाजको शोधता है और पित्तको करता है ॥ ७ ॥ और कानरोग, कृमिरोग, वातके रोग, खाज, कुष्ठ, कफका रोग, मेद ॥ ८ ॥ इन्होंमें उत्तमहै बस्तिकर्ममें अच्छा नहीं है पित्त और दाहको करता है ॥ ९ ॥

अथ अलसीके तेलका गुण।

अलसीप्रभवं तैलं घनं मधुरपिच्छलम् ॥
विपाके चोष्णवीर्यञ्च वातश्लेष्मनिवारणम् ॥ १० ॥

अलसीका तेल भारी है मधुर है गाढाहै और पाककालमें गरमवीर्यवाला है वातको और कफको दूर करता है ॥ १० ॥

अथ अरंडके तेलका गुण।

एरण्डजं घनञ्चापि शीतमेव मृदु स्मृतम् ॥
हृद्बस्तिजङ्घाकट्यूरुशूलानाहविबन्धनुत् ॥ ११ ॥

अरंडका तेल गाढा है शीतल है कोमल है और हृदय बस्तिस्थान, जांघ, कटि, ऊरु, इन्होंमें उपजे शूलको और अफाराको और बंधाको नाशता है ॥ ११ ॥

अथ तैलविशेषता ।

आनाहाष्ठीलवातासृक्प्लीहोदावर्त्तशूलिनाम् ॥ हन्ति वातविकाराणां विदध्याच्च प्रशान्तये ॥ १२ ॥ यावन्तः स्थावराः स्नेहाः समासेन प्रकीर्तिताः ॥ सर्वे तैलगुणा ज्ञेयाः सर्वे चानिलनाशनाः ॥ १३ ॥ सर्वेभ्यस्त्विह तैलेभ्यस्तिलतैलं प्रशस्यते ॥ १४ ॥

अफारा, अष्टीला, वातरक्त, तिल्लीरोग, उदावर्त, शूल, वातरोग, इन्होंकी शांतिके लिये तेल है ॥ १२ ॥ जो स्थावरसंज्ञक स्नेह विस्तारसे कहे हैं वे सब तेलके समान गुणोंको करनेवाले हैं और वातको नाशते हैं ॥ १३ ॥ सब प्रकारके तेलोंसे तिलोंका तेल श्रेष्ठ है ॥ १४ ॥

अथ लाल अरंडके तेलका गुण ।

तैलमेरण्डजं बल्यं गुरूष्णं मधुरं तथा ॥
तीक्ष्णोष्णं पिच्छलं विस्रं रक्तमेरण्डसम्भवम् ॥ १५ ॥

लाल अरंडका तेल बलको करता है भारी है गरम है मधुर है तीक्ष्ण है गरम है कफको करता है कच्चे गंधवाला है ॥ १५ ॥

अथ कुसुंभके तेलका गुण ।

कुसुम्भतैलमुष्णन्तु विपाके कटुकं गुरु ॥
विदाहकं विशेषेण सर्वदोषप्रकोपनम् ॥ १६ ॥

कुसुंभका तेल गरम है पाककालमें चर्चरा है भारी है विशेषकरकै दाहको करता है और सबदोषोंको कोपता है ॥ १६ ॥

कफोद्घातानि तैलानि यान्युक्तानि च कानिचित् ॥
गुणं कर्म च विज्ञाय कफवातानि निर्दिशेत् ॥ १७ ॥

कफको नाशनेवाले जो तेल कहे हैं तिन्होंका गुण और कर्मको जान कफ और वातरोगमें प्रयुक्त करने ॥ १७ ॥

अथ कुरंटाके तेलका गुण ।

सहकारतैलमीषत्तिक्तमतिसुगन्धि वातकफहरं सूक्ष्मम् ॥
मधुरं कषायमेवं नातिरक्ते पित्तकरञ्च ॥ १८ ॥

कुरंटाका तेल कछुक कडुआ है अतिसुगंधित है वातको और कफको हरता है सूक्ष्म है मधुर है कसैला है रक्तको अति नहीं उपजाता है और पित्तको करता है ॥ १८ ॥

अथ तेलकी विशेषता ।

सौवर्चलेङ्गुदीपीलुशिंशपासारसम्भवम् ॥ सरलागुरुदेवादिपाद-पसम्भवन्तु यत् ॥ १९ ॥ तुम्बुरूत्थं करञ्जोत्थं ज्योतिष्मत्युद्भवं तथा ॥ अर्शः कुष्ठकृमिश्लेष्मशुक्रमेदोऽनिलापहम् ॥ २० ॥ करञ्जारिष्टके तिक्के नात्युष्णेन विनिर्दिशेत् ॥ २१ ॥

कालानमक, हींगण, पीलू, सीसपका सार इन्होंके तेल और सरलवृक्ष, अगर, देवदार-इन्होंके तेल ॥ १९ ॥ धनियांका तेल, करंजुवाका तेल, मालकांगनीका तेल, ये बवासीर, कुष्ठ, कृमिरोग, कफ, वीर्य्य, मेद, वात, इन्होंको नाशता है ॥ २० ॥ करंजुवाका तेल और नींवका तेल अतिगरम नहीं कहा है ॥ २१ ॥

अथ स्वच्छ तिवसका तेल आच्छोडका तेल नारियलका तेल तथा महुवाके तेलका गुण ।

कषायं मधुरं तिक्तं सारणं व्रणशोधनम् ॥
अच्छातिमुक्तकाच्छोडनालिकेरमधूकजम् ॥ २२ ॥

तिवसका तेल आच्छोडका तेल नारियलका और महुवाका तेल कसैला है मधुर है कडुआ है सर है घावको शोधता है ॥ २२ ॥

अथ काकडी खीरा कोहला ल्हेसवा पीलू इन्होंके तेलका गुण ।

त्रपुष्युर्वारुकूष्माण्डश्लेष्मातकपीलूद्भवम् ॥
वातपित्तहृदर्शोघ्नं श्लेष्मलं गुरु शीतलम् ॥ २३ ॥

काकडी, खीरा, कोहला, ल्हेसवा, पीलू--इन्हेंके तेल वात, पित्त, बवासीर इन्होंको नाशते हैं कफको करते हैं भारी हैं शीतल हैं ॥ २३ ॥

अथ सालपर्णी और केशूके तेलका गुण ।

पित्तश्लेष्मप्रशमनं श्रीपर्णीकिंशुकोद्भवम् ॥ २४ ॥

सालपर्णी और केशूका तेल पित्तको और शोजेको नाशता है ॥ २४ ॥

अथ वसावर्ग ।

वसा मज्जा च वातघ्नी बलपित्तकफप्रदा ॥ सौकरी माहिषी वसा वातला श्लेष्मवर्द्धनी ॥ २५ ॥ सर्पनकुलगोधेया लेपने व्रण-कुष्ठहा ॥ मत्स्यशिशुमारमकरग्राहादीनां वसाप्येवम् ॥ सा विसर्पे

हरा च हृद्या कुष्ठरोगविनाशिनी च ॥ २६ ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे प्रथमस्थाने तैलवसावर्गो नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४॥

वसा चरबी मज्जा अर्थात् हड्डियोंका स्नेह वातको नाशता है और बल, पित्त, कफ, इन्होंको देता है सूकरकी और भैंसकी वसा वातको करती है और कफको बढाती है ॥ २५ ॥ सर्प, नोला, गोह–इन्होंकी वसा लेप करनेसे घावको और कुष्ठको नाशती है और मच्छ, शिशुमार, मकरमच्छ, ग्राह इन आदिकीभी वसा लेप करनेसे घावको और कुष्ठको नाशती है परंतु यह वसा विसर्परोगको हरती है हृदयको हितहै और कुष्ठको विशेषकरके हरती है ॥ २६ ॥

इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां प्रथमस्थाने तैलवसावर्गो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पञ्चदशोऽध्यायः १५.



अथ धान्यवर्गः।

प्रथम शालिचावलका वर्णन।

रक्तशालिर्महाशालिः कलमा षष्टिकापरा ॥ खञ्जरीटापसाही च जीरकान्या कपिञ्जला ॥ १ ॥ सौगन्धी शूकला चान्या बिलवासी कचोरका॥ गरुडा रुक्मवन्ती च कलमान्या तथापरा॥ बिल्वजा मागधी पीता ता अष्टादश शालयः॥ २ ॥

रक्तशालि, महाशालि, कलमा, षष्टिका, खंजरीटा, अपसाही, जीरका, कपिञ्जला ॥ १ ॥ सौगंधी, शूकला, बिलवासी, कचोरका, गरुडा, रुक्मवती, कलमा, बिल्वजा, मागधी, पीता ऐसे अठारह प्रकारके शालिचावल कहे हैं ॥ २ ॥

अथ शालियोंके गुण दोष।

रक्तशालिस्त्रिदोषघ्नी चक्षुष्या मूत्ररोगहा ॥ महाशालिर्गुरुर्वृष्या चक्षुष्याबलवर्द्धिनी ॥ ३ ॥ शीता गुरुस्त्रिदोषघ्नी मधुरापरषष्टिका ॥ ४ ॥ जीरका वातपित्तघ्नी कलमा श्लेष्मपित्तहा ॥ कपिञ्जला श्लेष्मला स्यान्मागधीकफवातला ॥ ५ ॥ बिलवासी गुरुश्चापि पित्तघ्नी शुक्रवर्द्धिनी ॥ शूकला पित्तवातघ्नी कचोरा पित्तनाशिनी ॥ ६ ॥ गरुडान्या च पातघ्नी पित्तमूत्रगदापहा ॥ रुक्मवन्ती लघु

रुचिबलपुष्टिकरा मता ॥ ७ ॥ कलमान्या लघुः पथ्या वातश्ले-ष्मविवर्द्धिनी ॥ बिल्वजा मागधी पीता सामान्यास्ताग्गुणाग्गुणैः ॥ ८ ॥ रुचिकृद्बलकृन्मूत्रदोषघ्नी च श्रमापहा ॥ दग्धग्रामाचले जाताः शालयो लघुपाकिनः ॥ ९ ॥ सुपथ्या बद्धविण्मूत्रा रूक्षाः श्लेष्मापकर्षिणः ॥ केदारप्रभवा वृक्षा वातपित्तविनाशिनः ॥ १० ॥ रक्तपित्तविकारघ्ना वातलाः कफकारकाः ॥ देशे देशे विभिन्नानि नामानि परिलक्षयेत् ॥ ११ ॥ समान्गुणैश्च सर्वांस्तान्भूमिभागोद्भवान्विदुः ॥ १२ ॥ शालयश्छिन्नरोहाश्च मूत्रला वातलाहिमाः १३

रक्तशालिचावल त्रिदोषको नाशता है नेत्रोंमें हित है मूत्ररोगको नाशता है महाशालि भारी है धातुको पुष्ट करता है नेत्रोंमें हित है बलको बढाता है ॥ ३ ॥ षष्टिका शीतल है भारी है त्रिदोषको हरता है और मधुर है ॥ ४ ॥ जीरका वातको और पित्तको हरता है कलमा कफको और पित्तको नाशता है कापिंजला कफको करता है मागधी कफको और वातको करता है ॥ ५ ॥ बिलवासी भारी है पित्तको नाशता है वीर्यको बढाता है शूकला पित्तको और वातको नाशता है कचोरा पित्तको नाशता है ॥ ६ ॥ गरुडा वातको नाशता है पित्तको और मूत्ररोगको हरता है रुक्मवंती हलकी है और रुचि, बल, पुष्टि, इन्होंको करती है ॥ ७ ॥ अन्यप्रकारका कलमा हलका है पथ्य है वातको और कफको बढाता है और बिल्वजा, मागधी, पीता, ये तीनों गुण और दोषों करकै समान हैं ॥ ८ ॥ खंजरीटा शाली रुचिको और बलको करता है मूत्रदोषको नाशता है और परिश्रमको हरता है दग्धग्राममें और पर्वतमें उपजे शालिचावल हलके पाकवाले हैं ॥ ९ ॥ खेतमें उपजे शालिचावल सुंदर पथ्य हैं विष्ठा-को और मूत्रको बांधते हैं रूखे हैं कफको नाशते हैं वातको और पित्तको नाशते हैं ॥ १० ॥ कोईक शालि रक्तपित्तके विकारको नाशते हैं वातल हैं और कफको करते हैं इन शालियों के नाम देशदेशमें भिन्न जानने ॥ ११ ॥ पृथिवीके भागोंसे उपजे सबप्रकारके शालि गु-णोंसे समान जानने ॥ १२ ॥ रोया शालि मूत्रको उपजाते हैं वातको उपजाते हैं और शीतल हैं ॥ १३ ॥

अथ क्षुद्रधान्यवर्गः ।

श्यामाकः कोद्रवः कण्डूर्मर्कटी कपिकच्छुरा ॥
क्षुद्रधान्यमिदं प्रोक्तं शृणु पुत्र ! प्रवक्ष्यते ॥ १४ ॥

श्यामाक, कोदू, कंडू, मर्कटी, अर्थात् मकडा कपिकच्छुरा, इन नामोंसे क्षुद्रधान्य कहा है अब मैं कहताहूं हे पुत्र ! सुन ॥ १४ ॥

अथ श्यामक और कोदूके गुण दोष।

श्यामाकः शोषणो रूक्षो वातलः कफवारणः ॥ कोद्रवो रूक्षो ग्राही स्याद्रक्तपित्तविशोषणः ॥ १५ ॥ नाधिककफकृत् प्रोक्तो रुच्यः स्वादुः प्रकीर्त्तितः ॥ १६ ॥

श्यामक शोषनेवाला है रूखा है वातल है कफको दूर करता है कोदूं रूखा है कब्जको करता है और रक्तपित्तको शोषता है ॥ १५ ॥ और कफकी अधिकताको नहीं करता है रुचिमें हित है और स्वादु है ॥ १६ ॥

अथ विदलान्नका गुण।

विदलान्नानि वक्ष्यामि शृणु पुत्र ! यथाक्रमम् ॥ यवगोधूमचणका माषो मुद्गाढकी तथा ॥ १७ ॥ मकुष्टकः कुलत्थश्च मसूरस्त्रिपुटस्तथा ॥ निष्पावकःकलायश्च विदलान्नं प्रकीर्त्तितम् ॥ १८ ॥

हेपुत्र ! विदलसंज्ञक अन्नोंको कहताहूं सुन जव, गेहूं, चना, उड़द, मूँग तूरीअन्न- ॥ १७ ॥ मोठ, कुलथी, मसूर, चौला, रेवसारी, मठर, इन्होंको विदलअन्न कहते हैं ॥ १८ ॥

अथ जवोंका गुण।

रूक्षः शीतो गुरुः स्वादुः कषायो मधुरो यवः ॥
वृष्यो ग्राही कफघ्नश्च स्यात्पित्तश्वासकासनुत् ॥ १९ ॥

जव रूखा है शीतल है भारी है स्वादु है कसैला है मधुर है वीर्यमें हित है कब्जको करता है कफको नाशता है पित्तको श्वास और खाँसीको हरता है ॥ १९ ॥

अथ गेहूंका गुण।

मधुरो गुरुविष्टम्भी वृष्यो बल्योऽथ बृंहणः ॥
ईषत्कषायो मधुरो गोधूमः स्यात्त्रिदोषहा ॥ २० ॥

गेहूं मधुर है भारी है विष्टंभी है वीर्यमें हित है बलको करता है धातुओंको बढाता है कछुक कसैला मधुर है और त्रिदोषको नाशता है ॥ २० ॥

अथ तिलोंका गुण।

तिलो विपाके मधुरो बलिष्ठः स्निग्धो व्रणालेपनपथ्य उक्तः ॥
बल्योऽग्निमेधाजननो वरेण्यो मूत्रस्य दोषहरणो गुरुश्च ॥ २१ ॥
तिलेषु सर्वेष्वसितः प्रधानो मध्यः सितो हीनतरास्तथान्ये ॥ २२ ॥

तिल पाककालमें मधुर है अतिबलवाला है चिकना है घावपै लेप करनेमें पथ्य है बलमें हित है अग्निको और बुद्धिको देता है सुंदर है मूत्रके दोषको हरता है और भारी है ॥२१॥ सब प्रकारके तिलोंमें काला तिल प्रधान है और सपेद तिल मध्यम है और अन्य प्रकारके तिल हीनगुणवाले हैं ॥ २२ ॥

अथ चनाका गुण ।

रक्ते कफे पीनसके तु कण्ठे गलामये वातरुजे सपित्ते ॥ शीतः प्रतिश्यायकृमीन्निहन्ति शुष्कस्तथार्द्रश्चणकः प्रशस्तः ॥ २३॥

रक्त, कफ, पीनस, कंठरोग, गलरोग, वातरोग, पित्त इन्होंमें चना हित है शीतल है खेहरको और कीडोंको नाशता है सूखे और गीले चनेके गुण ऐसे कहे हैं ॥ २३ ॥

अथ उडदका गुण ।

स्निग्धोऽथ वृष्यो मधुरश्च बल्यो मरुत्कफानां परिबृंहणश्च ॥ पाकेऽम्लकोष्णो विदितो हिमश्च माषोऽथ हृद्यः कथितो नरैश्च॥

उडद चिकना है वीर्यमें हित है मधुरहै बलमें हित है वायुको और कफको बढाता है पाककालमें खट्टा है कछुक गरम है शीतल और सुंदर है ॥ २४ ॥

अथ मूँगका गुण ।

शीतः कषायो मधुरो लघुः स्यात्पैत्तास्रजदोषहरः सरश्च ॥ विपाकतोऽसौ कटुकप्रधानो मुद्गस्तथान्यःकथितोऽभिरम्यः२५

मूँग शीतल है मधुर है हलका है पित्त और रक्तके दोषको हरता है सर है पाककालमें चर्चरा है और रमणीक है ॥ २५ ॥

अथ तुवरका गुण ।

मृदुःकषाया च सरक्तपित्तं वातं कफं हन्ति मुखव्रणञ्च ॥ गुल्मज्वरारोचककासछर्दिहृद्रोगदुर्नामहराढकी स्यात् ॥ २६ ॥

तुवर अर्थात् अरदर कसैला है कोमल है और रक्तपित्त, वात, कफ, मुखमें घाव, गुल्म, ज्वर, अरोचक, खाँसी, छर्दि, हृद्रोग, बवासीर इन्होंको हरता है ॥ २६ ॥

अथ मोठके गुण ।

सरक्तपित्तकफवातहन्ता चोष्णः कषायो मधुरः प्रदिष्टः ॥ ग्राही सुशीतो गुदकीलगुल्मं मकुष्टकः सर्वगदान्निहन्ति ॥ २७ ॥

मोठ रक्तपित्त, कफ, वात-इन्होंको नाशता है गरम है कसैली है मधुर है कब्जको करती है जरा शीतल है और बवासीर, गुल्म-सब रोग इन्होंको हरता है ॥ २७ ॥

अथ कुलथीका गुण।

उष्णो जयेन्मारुतपीनसन्तु कासप्रतिश्यायनिबन्धगुल्मान् ॥
हिक्का सरक्तस्तु बलाशपित्तं निहन्ति मेदश्च कुलत्थकोऽयम् २८॥

कुलथी गर्म है वातको, पीनस, खांसी, खेहर, बंधा, गुल्म, हिचकी, इन्होंको नाशती है और लालकुलथी कफ पित्त, मेद, इन्होंको हरती है ॥ २८ ॥

अथ चौलाका गुण।

रूक्षो विशोषी मधुरः प्रदिष्टः स्नायुं करोत्यस्थिगतं बलिष्ठम् ॥
शूलविबन्धभ्रमशोफकर्त्ता दाहार्शहृद्रोगविकारकारी ॥ २९ ॥

चौला रूखा है विशेष करके शोषता है मधुर है हड्डीके नसको बलवाला बनाता है और शूल, बँधा, भ्रम, शोजा-इन्होंको करता है और दाह, हृद्रोग, बवासीर, इन्होंको करता है२९

अथ मटरका गुण।

किञ्चित्कषाया मधुराः प्रदिष्टा रक्तप्रशान्तिं जनयन्ति बल्याः ॥
किञ्चित्सवातं विनिघ्नन्ति पित्तं कलायका मुद्गसमानरूपाः ॥३०॥

मटर कछुक कसैला है मधुर है रक्तको शांत करता है बलमें हित है वातको और पित्तको कछुक नाशता है यह मूंगके समान रूपवाला होता है ॥ ३० ॥

अथ मसूरका गुण।

रूक्षो विशोषी मधुरः प्रदिष्टः शूलार्त्तिगुल्मग्रहणीविकारान् ॥
करोति वातामयवर्द्धनश्च पित्तासृजं ग्राहहरो मसूरः ॥ ३१ ॥

मसूर रूखा है शोषी है मधुर है और शूल, गुल्म, ग्रहणीदोष-इन्होंको करता है वातरोगको बढाता है पित्त-रक्तको उपजाता है कब्जको नाशता है ॥ ३१ ॥

अथ धान्यवर्गका उपसंहार।

इति प्रदिष्टो बहुधान्यवर्गो ग्रन्थस्य विस्तारभयाच्च किञ्चित् ॥
ये ये प्रसिद्धाः सुतरां हि लोके तेषां गुणाः श्रेष्ठतमाः प्रदिष्टाः ॥
इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे प्रथमस्थाने धान्यवर्गो नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

ऐसे धान्यवर्ग कहे ग्रंथ विस्तारके भयसे कछुक कहा है जो २ प्रसिद्ध धान्य लोकमें हैं तिन्होंके गुण अतिश्रेष्ठ माने हैं ॥३२॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां प्रथमस्थाने धान्यवर्गो नाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडशोऽध्यायः १६.

अथ शाकवर्गः ।

शाकश्चतुर्विधं प्रोक्तं पत्रं पुष्पं फलं तथा ॥ कन्दश्चापि समुद्दिष्टं वक्ष्याम्येतत्पृथक्पृथक् ॥ १ ॥ द्विविधं शाकमुद्दिष्टं गुरु विद्यात्तथोत्तरम् ॥ प्रायः सर्वाणि शाकानि विष्टम्भीनि गुरूणि च ॥२॥ रूक्षाणि बहुवर्चांसि सृष्टविण्मारुतानि च ॥

पत्र, पुष्प, फल, कंद, इन भेदोंसे शाक चार प्रकारका कहा है तिसको पृथक् २ कहताहूं ॥ १ ॥ शाक २ प्रकारका कहा हैं इनमें उत्तरोत्तर भारी है अर्थात् कन्द सबसे भारी है और विशेष करके सब शाक विष्टंभको करती हैं भारी हैं ॥ २ ॥ रूखी हैं बहुत मलवाली हैं विष्ठा और अधोवातको करती हैं ।

अथ पृथक् २ शाकोंके गुणदोष ।

जीवंतीशाकके गुण ।

चक्षुष्या सर्वरोगघ्नी जीवन्ती मधुरा हिमा ॥ ३ ॥

जीवंतीशाक नेत्रोंमें हित है सब रोगोंको नाशती है मधुर और शीतल है ॥ ३ ॥

अथ चौंलाई शाकके गुण ।

स्वादुपाकमसृक्पित्तविषघ्नं तण्डुलीयकम् ॥
विविधवातविड्हन्ता मूत्रवातकफे हितः ॥ ४ ॥

चौंलाई शाक पाककालमें स्वादु है और रक्त, पित्त, विष, इन्होंको नाशती है अनेकमकारके वात और विष्ठाको हरती है और मूत्र, वात, कफ, इन्होंमें हित है ॥ ४ ॥

अथ कासविंदाके शाकके गुण ।

मधुरः कफवातघ्नः पाचनः कण्ठशोधनः ॥
विशेषतः पित्तहर इत्युक्तः कासमर्दकः ॥ ५ ॥

कासविंदाशाक मधुर है कफको और वातको नाशता है पाचन है कंठको शोधता है और विशेष करकै पित्तको हरता है ॥ ५ ॥

अथ जयंती और मकोह शाकके गुण ।

जयंती वातकफकृत्पित्तसंशमनी तथा ॥
त्रिदोषशमनी वृष्या काकमाची रसायनी ॥ ६ ॥

जयंती शाक वातको और कफको करता है पित्तको शांत करता है मकोह विशेष शाक त्रिदोषको शांत करता है वीर्यमें हित है और रसायन है ॥ ६ ॥

अथ बथुवा और चिल्ली शाकके गुण।

वास्तुकं मधुरं हृद्यं वातपित्तार्शसां हितम् ॥
तद्वच्चिल्ली तु विज्ञेया वातपित्तविकारिणाम् ॥ ७ ॥

बथुवाशाक मधुर है हृदयका हित है वात और पित्तकी बवासीरवालोंको हित है चिल्लीशाक भी बथुवाके समान गुणोंको देता है परंतु वात पित्तके विकारवालोंको अच्छा है ॥ ७ ॥

अथ केतकी और मेथी शाकके गुण।

केतकी वातला वृष्या तन्द्रानिद्राकरी मता ॥
मेथिका वातशमनी वेजिका वातला मता ॥ ८ ॥

केतकीशाक वातल है वीर्यमें हित है तंद्राको और नींदको करता है मेथी शाक वातको शांत करता है वेजिका शाक वातको करता है ॥ ८ ॥

अथ सरसों और सौंपके शाकका गुण।

सार्षपञ्च त्रिदोषघ्नं रुचिदश्चाग्निवर्द्धनम् ॥
शतपुष्पा त्रिदोषघ्नी मेध्या पथ्या रुचिप्रदा ॥ ९ ॥

सरसोंका शाक त्रिदोषको नाशता है रुचिको देता है अग्नीको बढाता है सौंपका शाक त्रिदोषको नाशता है पवित्र है पथ्य है रुचिको देता है ॥ ९ ॥

अथ कटेली और कुसुंभा शाकके गुण।

जरात्री सिंहिका प्रोक्ता सातीसारे प्रशस्यते॥ कुसुम्भं रुचिकृद्वातं हन्ति बल्यं रुचिप्रदम् ॥ १० ॥ किञ्चिद्वातावहं स्वादु विपाके च कफापहम् ॥ किञ्चिच्चाम्लं भवेत्क्षारं प्रशस्तमग्निमान्द्यके ॥ ११ ॥ भेदनं रूक्षमधुरं कषायमतिवातलम् ॥

कटेलीका शाक वृद्धतासे रक्षाकरता है अतीसारमें श्रेष्ठ है कुसुंभाका शाक रुचिको करता है वातको हरता है और बलम हित है प्रीति बढाता है ॥ १० ॥ कछुक उदरमें वातको करता है पाककालमें चूका स्वादु है कफको हरता है कछुक खट्टा है खाराहै और मंदाग्निमें श्रेष्ठ है ॥ ११ ॥ भेदन है रूखा है मधुर है कसैला है अति वातल है।

अथ शाकके गुण।

उष्णा कषायमधुरा चाङ्गेरीवह्निदीपनी ॥ १२ ॥

चांगेरी (लोणी) शाक गरम है कसैला है मधुर है और अग्निको जगाता है ॥ १२ ॥

अथ दूसरे शाकोंके गुण।

कफादनी तथा फञ्जी तिलपर्णी तु सिंहिका ॥
चक्रमर्दन इत्यन्ये दुर्जरा वातकोपनाः ॥ १३ ॥

कफादनी, फंजी, तिलवन, सिंहिका, पुवाड, ये शाक दुर्जर है और वातको कोपतेहैं॥ १३॥

अथ कफकारक और वातल शाक।

पिण्डालुको बला भिण्डी चिञ्चुकान्या बलादनी ॥
एते श्लेष्मकराः शाका वातलाग्निप्रशान्तकाः ॥ १४ ॥

श्वेतरताल, खरैंहटी, भिंडी, चिञ्चुका, बलादनी ये शाक कफको करते हैं वातल हैं अग्निको मंद करते हैं ॥ १४ ॥

अथ शाकोंके विशेष गुण।

सर्वे शाका दृष्टिहरा वीर्य्यत्वात्तण्डुलीयकम् ॥ तथैव शतपुष्पञ्च जयन्ती कासमर्दकम् ॥ १५ ॥ आलूषकञ्च वेताग्रं गुडूची चापमर्दकम् ॥ किराततिक्तसहितास्तिलाः पित्तहरा मताः ॥ १६ ॥

सब शाक दृष्टिको हरते हैं और वीर्यपनेसे चौलाई सौंफ-जयंती-कासावंदा ॥ १५ ॥ आलू, वेंतकी कोपल, गिलोय, चापमर्दक, चिरायता, ये शाक कडुवे हैं और पित्तको हरनेवाले माने हैं ॥ १६ ॥

अथ अन्यप्रकारके शाक।

कूष्माण्डकालिङ्गकलिङ्गचिर्भटं पटोलश्च पुष्पश्च तथा च तुण्डी॥
बीजन्तु कर्कोटककारवेल्लं कोशातकीवेल्लिफलानि चैव ॥ १७ ॥

कोहला, कलिंगड, इंद्रजव, लालतूंबी, परवल, मीठीतोरी, ककोडा, करेला, कडुई तोरी, वेलिफल येभी सब शाक कहे हैं ॥ १७ ॥

अथ कोहलाका गुण।

कूष्माण्डं त्रिविधं ज्ञेयं बाल्यं मध्यं तथोत्तमम् ॥ वातघ्नं रोचकं बाल्यं मध्यमं स्यात्त्रिदोषहृत् ॥ १८॥ शोफं वातकफौ हन्ति रक्तपित्तनिबर्हणम् ॥ १९ ॥

कोहला ३ प्रकारका जानना एक बालक दूसरा मध्य तीसरा उत्तम-बालक कोहला वातको नाशता है रुचिको उपजाता है मध्यम कोहला त्रिदोषको हरता है ॥ १८ ॥ उत्तम कोहला शोजा, वात, कफ, इनोंको हरता है और रक्त पित्तको दूर करता है ॥ १९ ॥

अथ कुरुडूके शाकका गुण ।

कलिङ्गं कफकृद्वातकरणं पित्तनाशनम् ॥ २० ॥

कुरुडूका शाक (तरबूज) कफको करता है वातको करता है और पित्तको नाशता है॥ २०॥

अथ करेलाका गुण ।

कारवेल्लश्च वातघ्नः कफघ्नः पित्तकारकः ॥
उष्णो रुचिकरः प्रोक्तो रक्तदोषकरो नृणाम् ॥ २१ ॥

करेला वातको नाशता है कफको हरता है पित्तको करता है गरम है रुचिको करता है और मनुष्योंके रक्तके दोषको करता है ॥ २१ ॥

अथ लालतूरीके पुष्पका गुण ।

पुष्पश्च चिर्भटश्चैव दोषत्रयकरं स्मृतम् ॥
अपक्वं जीर्णकफकृत्पक्वं किंचिद्विशिष्यते ॥ २२ ॥

तूंबाका फूल त्रिदोषको करता है नहीं पकाहुआ अजीर्णको और कफको करता है और पकाहुआ कछुक विशेष अच्छा होजाता है ॥ २२ ॥

अथ तोरी ककोडा कडुई तोरीका गुण ।

तुण्डीरमग्निरुचिकृद्वातपित्तनिवारणम् ॥ ककोंटकं त्रिदोषघ्नं रुचिकृन्मधुरं तथा ॥ २३ ॥ कोशातकीफलं स्वादु मधुरं वातपित्तनुत् ॥ विपाके च कफं हन्ति ज्वरे शस्तं प्रदिश्यते ॥ २४ ॥

तोरीशाक अग्निको और रुचिको करता है वातको और पित्तको दूर करता है ककोडा त्रिदोषको नाशता है रुचिको उपजाता है और मधुर है ॥ २३ ॥ कडुई तोरी स्वादु है पाकमें मधुर है वातको और पित्तको नाशती है कफको हरती है और ज्वरमें श्रेष्ठ है ॥ २४ ॥

अथ परवलका गुण ।

पटोलपत्रं विनिहन्ति पित्तं नालं कफघ्नं प्रवदन्ति धीराः ॥ फलञ्च तस्यास्तु त्रिदोषशान्तिं करोति नूनं ज्वरिणो हितं स्यात् ॥ २५ ॥

परवलका पत्ता पित्तको हरता है और परवलका नाल कफको नाशता है और परवलका फल त्रिदोषको शांत करता है और ज्वरवालेको निश्चय हित है (ये सब वेलियोंके शाक कहे) ॥ २५ ॥

अथ बैंगनका गुण ।

निद्राकरं प्रीतिकरं गुरु स्यात्सवातलं कासविकारकारि ॥
श्रेष्ठंसुदीर्घं कफवर्धनञ्च सश्वासकासारुचिवर्धनञ्च ॥ २६ ॥

बैंगन नींदको और प्रीतिको करता है भारी है वातल है खांसीके विकारको करता है और सुंदर लंबा बैंगन श्रेष्ठ है कफको बढाता है और श्वास,खांसी, रुचि, इन्होंको बढाता है॥२६॥

अथ बडी कटेलीका गुण ।

तथा बृहत्याः फलमेव शस्तं सन्दीपनं स्यात्कफवातनाशनम् ॥
कण्डूविसर्पज्वरकामलानां तथारुचौ शस्तमिदं वदंति ॥ २७ ॥

बडी कटेलीका फल श्रेष्ठ है अग्निको जगाता है कफको और वातको नाशता है और खाज, विसर्प, ज्वर, कामला, अरुचि, इन्होंमें उत्तम है (ये फलशाकके गुण कहे.)॥ २७ ॥

अथ कंदशाक ।

कन्दशाकान्प्रवक्ष्यामि शृणु पुत्र! पृथक्पृथक् ॥ सूरणः पिण्डपि-ण्डालू पलाण्डुर्गृञ्जनस्तथा॥२८॥ताम्बूलवर्णः कन्दः स्याद्धस्ति-कन्दस्तथापरः ॥ वराहकन्दश्चाप्यन्यःकन्दशाका इमे स्मृताः२९

कंदशाकोंको पृथक् २ कहताहूं हे पुत्र ! सुन. जिमीकंद, पिंडशाक, आलू, प्याज, गाजर ॥ २८ ॥ रातालु, हस्तीकंद, वराहकंद, ये कंदशाक कहे हैं ॥ २९ ॥

अथ जमीकंदका गुण ।

दीपनः सुरणो रुच्यः कफघ्नो विशदो लघुः ॥
विशेषात्सर्वपथ्यः स्यात्प्लीहगुल्मविनाशनः ॥ ३० ॥

जमीकंद अग्निको जगाता है:कफको नाशता है रुचिमें हित है सुंदर है हलका है विशेष करकै पथ्य है तिल्लीरोगको और गुल्मको नाशता है ॥ ३० ॥

अथ आम्लिकाकंदका गुण ।

आम्लिकायाः स्मृतः कन्दो ग्रहण्यर्शोहितो लघुः ॥ ३१ ॥

आम्लिका कंद हलका है ग्रहणीदोष और बवासीरमें हित है ॥ ३१ ॥

अथ पिंडशाकका गुण ।

पिण्डको वातलः श्लेष्मी ग्राही वृष्यो महागुरुः ॥

पिंडशाक वातको करता है कफवाला है ग्राही है वीर्यमें हित है बहुत भारी है ॥

अथ आलूका गुण ।

पिण्डालुकः श्लेष्मकरः शुक्रवृद्धिकरो मृदुः ॥ ३२ ॥

पिंडालू कफको करता है वीर्यको बढाता है और कोमल है ॥ ३२ ॥

अथ प्याजका गुण ।

पलाण्डुर्वातकफहा शुक्रलः शूलगुल्मनुत् ॥

प्याज वातको और कफको नाशता है वीर्यको बढाता है शूलको और गुल्मको नाशता है ।

अथ रतालूका गुण ।

ताम्बूलपर्णः कन्दः स्याच्छुक्रलो विशदो लघुः ॥ ३३ ॥

रतालूकंद वीर्यको बढाता है सुंदर है और हलका है ॥ ३३ ॥

अथ हस्तिकंदका गुण ।

हस्तिकन्दो गुरुर्ग्राही शुक्रवृद्धिप्रदो मतः ॥

हस्तिकंद भारी है कब्जको करता है वीर्यको बढाता है ॥

अथ वाराहकंदका गुण ।

वराहकन्दश्चार्शोघ्नो वातगुल्मनिवारणः ॥ ३४ ॥

वाराहकंद बवासीरको नाशता है वातको और गुल्मको दूर करता है ॥ ३४ ॥

अन्ये तेऽज्ञातकन्दाश्च ते न प्रोक्ता मयाऽनघ ॥ सर्वेषां कन्दशाकानां सूरणः श्रेष्ठ उच्यते ॥ ३५ ॥ दीपनोऽर्शस्तथा गुल्मक्रिमिप्लीहविनाशनः ॥ दद्रूणां रक्तपित्तानां कुष्ठानां न प्रशस्यते ॥ ३६ ॥ एते कन्दाः समाख्याताः श्रीमन्तो हि भिषग्वर ॥ ३७ ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे प्रथमस्थाने शाकवर्गो नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

अन्यभी कंद हैं वे अप्रसिद्ध हैं इसवास्ते मैंने नहीं कहे हैं परंतु सब प्रकारके कंद शाकोंमें जमीकंद श्रेष्ठ है ॥ ३५ ॥ और अग्निको जगाता है और बवासीर, गुल्म, कृमिरोग, तिल्लीरोग, इन्होंको नाशता है परंतु दद्रू रक्त पित्त और कुष्ठको अच्छा नहीं है ॥ ३६ ॥ हे वैद्यवर ! शोभासे युक्त हुये कंद मैंने अच्छीतरह कहेहैं ॥ ३७ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां प्रथमस्थाने शाकवर्गो नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः १७.

अथ फलवर्गः ॥

आम्रं जम्बूश्च कोलश्च दाडिमामलकं तथा ॥ खर्जूरश्च परूषश्च मातुलुङ्गपियालजम् ॥ १ ॥ नागरं वालिमका चैव द्राक्षा च करमर्दकम् ॥ क्षीरिका मधुराश्चैव फलवर्गे प्रकीर्तिताः ॥ २ ॥

आंब, जामुन, बेर, अनार, आमला, छुहारा अथवा खजूरिया, फालसा, बिजौरा, चिरौंजी ॥ १ ॥ नारंगी, अमली, दाख, करौंदा, खिरनी, सुंदर खजूर फल—ये सब फलवर्गमें कहेहैं ॥ २ ॥

अथ आंबके फलका गुण ।

अपक्वमाम्रं फलमेव शस्तं संग्राहि पित्तासृजि कोपनञ्च ॥
तथा विपक्कं मधुरञ्च चाम्लं भेद्यं सपित्तामयनाशनञ्च ॥ ३ ॥

कछुक पकाहुआ आंबका फल श्रेष्ठ है कब्जको करता है पित्तको और रक्तको कोपता है और विशेष पकाहुआ आंबका फल मधुर है खट्टा है दस्तावर है और पित्तके रोगको नाशता है ॥ ३ ॥

अथ जामन बेर अनार चिरौंजीके गुण ।

जम्बूर्ग्राही मधुरकफहा रोचनो वातहारी कोलश्चाम्लं मधुरमथवा श्लेष्मलं ग्राहि शस्तम् ॥ श्रेष्ठं वातादिकरुजहरं दाडिमञ्चामयघ्नं तत्प्रोक्तञ्च मधुरमुदितं स्वादु राजादनञ्च ॥ ४ ॥

जामुनका फल कब्जको करता है मधुर है कफको नाशता है रुचिको करता है और वातको हरता है--बेर खट्टा है अथवा मधुर है कफको करता है कब्जको करता है सुंदर है अनारका फल श्रेष्ठ है वात आदिकी पीडाको हरता है और रोगको नाशता है--खिरना मधुर है और स्वादु कही है ॥ ४ ॥

अथ विशेषवर्णन ।

परूषककरहपीलुकानां पियालसिंहीकरमर्दकानाम् ॥
फलानि मेहे विनिहन्ति पित्तं हन्याच्च सर्वातुरसन्धिवातम् ॥ ५ ॥

फालसा, करहा, पीलू, चिरौंजी, कटेली—करौंदी—इन्होंके फल प्रमेहको और पित्तको हरते हैं और रोगीके संपूर्ण शरीरके वातको हरता है ॥ ५ ॥

अथ बिजोराका गुण ।

स्यान्मातुलुङ्गः कफवातहन्ता हन्ता क्रिमीणां जठरामयघ्नः ॥ संदूषितरक्तविकारपित्तसन्दीपनः शूलविकारहारी ॥ ६ ॥ श्वासकासारुचिहरं तृष्णाघ्नं कण्ठशोधनम् ॥ दीपनं लघु रुच्यञ्च मातुलुङ्गमुदाहृतम् ॥ ७ ॥ त्वक् तिक्ता दुर्जरा तिष्या क्रिमिवातकफापहा ॥ स्वादु शीतं गुरु स्निग्धं करहं वातपित्तजित् ॥ ८ ॥ मध्यं श्लेष्मातकं छर्दिकफारोचकनाशम ॥ दीपनं लघु संग्राहि

गुल्मार्शोघ्नन्तु केशरम् ॥ ९ ॥ पित्तमारुतहृद्वातपित्तलं बद्धकेश-रम् ॥ हृद्यं वर्णकरं रुच्यं रक्तमांसबलप्रदम् ॥ १० ॥ शूलाजीर्ण-विरुद्धेषु मन्दाग्नौ कफमारुते ॥ अरुचौ श्वासकासे च स्वरसोऽस्यो पदिश्यते ॥ ११ ॥ रसोऽतिमधुरो हृद्यो वीर्य्यं पित्तानिलापहम् ॥ कफकृद्दुर्जरः पाके मातुलुङ्गकटाहकः ॥ १२ ॥ चेतोहारी तेन पृथगतिकटुत्वञ्चाभिधत्ते॥हृद्रोगानाहगुल्मश्वसनकफकरो ग्रीष्म कालेऽपहन्ता ॥ १३ ॥ वीर्य्यकृच्चार्शहृत्काले स्यात्तथा क्रिमि-हृन्मतम् ॥ तिक्तं पुष्पञ्च बीजञ्च गुल्मनुत्स्यात्तथापरम् ॥ १४ ॥

विजौरा कफको और वातको नाशता है और कृमिरोगको हरता है और पेटके रोगको दूर करता है दूषित हुये रक्तविकारको और पित्तको दूर करता है अग्निको जगाता है और शूल-विकारको नाशता है ॥ ६ ॥ और विजौराका फल श्वास, खांसी, अरुचि, इन्होंको नाशता है तृषाको हरता है कंठको शोधता है अग्निको जगाता है हलका है रुचिमें हित है ॥ ७ ॥ विजौराकी छाल कडुई है दुर्जर है सुन्दर है और कृमि, वात कफ, इन्होंको नाशती है और विजौराकी कोंपल स्वादु है शीतल है भारी है चिकनी है वातको और पित्तको जीतती है ॥ ॥ ८ ॥ और विजौराका गूदा कफको नाशता है छर्दिको और कफके अरोचकको नाशता है और विजौराका केसर अग्निको जगाता है हलका है कब्जको करता है गुल्मको और बवा-सीरको नाशता है ॥ ९ ॥ पित्तको और वातको हरता है और केसरसे संयुक्तहुआ विजौराका फल पित्तको और वातको करता है सुन्दर है वर्णको करता है रुचिमें हित है और रक्त, मांस, बल, इन्होंको देता है ॥ १० ॥ और विजौराका स्वरस शूल, अजीर्ण, मंदाग्नि, कफ वात, अरुचि, श्वास, खांसी, इन्होंमें उत्तम है ॥ ११ ॥ और विजौराका रस अति मधुर है सुन्दर है वीर्य्यको देता है पित्तको और वातको नाशता है कफको करता है और पाकका-लमें दुर्जर है ॥ १२ ॥ और चित्तको हरता है तिससे पृथक् अति चर्चरापनाको धरता है और हृद्रोग, अफारा, गुल्म, श्वास, इन्होंको अन्यकालमें करता है और गरमकालमें नाशता है ॥ १३ ॥ विजौराके फूल और बीज सुन्दर कालमें वीर्यको करते हैं बवासीरको दूर करते हैं कृमिको हरते हैं कडुवे हैं और गुल्मको नाशते हैं ॥ १४ ॥

अथ नींबूका गुण ।

निम्बूकं क्रिमिसमूहनाशनं तीक्ष्णमुष्णमुदरग्रहापहम् ॥ वातपि-त्तकफशूलिनां हितं नष्टधान्यरुचिशोधनं परम् ॥ १५ ॥ त्रिदो-षसद्योज्वरपीडितानां दोषाश्रितानाञ्च स्रवज्जलानाम् ॥ मलग्रहे बद्धगुदे हितञ्च विषूचिकायां मुनयो वदन्ति ॥ १६ ॥

निंबू कीडोंके समूहको नाशता है तीक्ष्ण है गरम है पेटके कब्जको हरता है और वात पित्त, कफ, इन्होंके शूलवालोंको हित है और नष्टअन्नमें रुचिको शोधता है ॥ १५ ॥ त्रिदोष और तत्काल उपजे ज्वरसे पीडितको और दोषसे आश्रित हुयोंको और पानीको झिगातेहुयेको और विष्ठाके बन्धमें और बद्धगुदरोगमें और विषूचिका अर्थात् हैजाके भेदमें हित है ऐसे मुनिजन कहते हैं ॥ १६ ॥

अथ नारंगीका गुण।

नारङ्गजं स्वादु गुणोपपन्नं सन्दीपनं रोचकमर्शसाञ्च ॥
त्रिदोषहृच्छूलक्रिमीन्निहन्ति मन्दाग्निकासश्वसनापहारि ॥ १७ ॥

नारंगीफल स्वादु है गुणवाला है अग्निको जगाता है बवासीरमें रुचिको उपजाता है और त्रिदोष, शूल, कृमि, मंदाग्निरोग, खाँसी, श्वास—इन्होंको नाशता है ॥ १७ ॥

अथ अम्लीका गुण।

अम्ली हि चाम्लफलमविपक्वं तदस्रपित्तामकरं विदाहि ॥
वातामये शूलगदे प्रशस्तं पक्वं तथा शीतगुणोपपन्नम् ॥ १८ ॥

नहीं पकाहुआ अम्लीकाफल पित्तको और आमको करता है विशेषसे दाहको करता है पकाहुवा अमलीका फल वातरोगमें और शूलमें श्रेष्ठ है और शीतल होता है ॥ १८ ॥

अथ दाखका गुण।

द्राक्षाफलं मधुरमम्लकषाययुक्तं क्षारेण पित्तमरुतां कफहारि शीघ्रम् ॥ श्रेष्ठं निहन्ति रुधिरामयदाहशोषमूर्च्छाज्वरश्वसनकासविनाशकारि॥१९॥कषायघ्ना विपाके च द्राक्षा चैव कफे हिता॥२०

दाख मधुर है खट्टा है कसैला है खारेपनेसे पित्त—वात—कफ—इन्होंको शीघ्र हरता है श्रेष्ठ है और रक्तरोग—दाह—शोष—मूर्च्छा—ज्वर—श्वासरोग—खाँसी—इन्होंको नाशता है ॥ १९ ॥ और पाककालमें कसैलेपनेको नाशता है और कफमें हित है ॥ २० ॥

अथ नारियलका गुण।

नालिकेरं सुमधुरं गुरु स्निग्धश्च शीतलम् ॥ हृद्यं सबृंहणं बस्तिशोधनं रक्तपित्तनुत् ॥ २१ ॥ विष्टम्भि पक्वं मतिमन्नपक्वं कफवातलम् ॥ बृंहणं शीतलं वृष्यं नालिकेरफलं विदुः ॥ २२ ॥

नारियल मधुर है भारी है चिकना है शीतल है हृदयको हित है धातुओंको पुष्ट करता है बस्तिको शोधता है रक्तपित्तको नाशता है ॥ २१ ॥ विष्टंभी है ये सब पकेहुयेके गुण हैं हे बुद्धिमन् ! नहीं पकाहुआ नारियल कफको और वातको करता है धातुओंको बढाता है शीतल है और वीर्यमें हित है ॥ २२ ॥

अथ केलेके फलका गुण।

हृद्यं मनोज्ञं कफवृद्धिकारि शान्तञ्च सन्तर्पणमेव बल्यम् ॥ रक्तं सपित्तं श्वसनञ्च दाहं रम्भाफलं हन्ति सदा नराणाम् ॥ २३ ॥ अपक्वं संग्राहि च शीतलञ्च कषायकं वातकफं करोति ॥ विष्टम्भि बल्यं गुरु दुर्जरञ्च आरण्यरम्भाफलमेव तद्वत् ॥ २४ ॥

पकाहुआ केलेका फल हृदयको हित है मनोहर है कफको बढाता है शांतिको करता है तृप्तिको करता है बलमें हित है और रक्तपित्त–श्वासरोग–दाह–इन्होंको सबकालमें नाशता है॥२३॥ नहीं पकाहुआ केलेका फल कब्जको करता है शीतल है कसैला है वातको और कफको करता है विष्टंभी है बलमें हित है भारी है दुर्जर है और वनके केलेका फलभी इन्हीं गुणोंवाला है ॥ २४ ॥

अथ कैथका गुण।

कपित्थकाम्लं मधुरं कषायं विषदं गुरु ॥ कासातिसारहृद्रोगच्छर्दिकफामयापहम् ॥ २५ ॥ कपित्थं मधुरं शीतं कषायं ग्राहकं लघु ॥ २६ ॥

कैथफल का आमचूर खट्टा है मधुर है कसैला है सुंदर है भारी है और खाँसी, अतीसार, हृद्रोग, छर्दि, कफरोग, इन्होंको नाशता है ॥ २५ ॥ कैथफल मधुर है शीतल है कसैला है कब्जको करता है और हलका है ॥ २६ ॥

अथ खजूरिया अथवा छुहाराका गुण।

अपक्वं खर्जूरफलं त्रिदोषशमनं मतम् ॥
पक्वमेव हितं श्रेष्ठं त्रिदोषशमनं परम् ॥ २७ ॥

नहीं पकाहुआ खजूरिया अथवा छुहारा त्रिदोषको शांत करता है और पकाहुआ हितकर है श्रेष्ठ है और निश्चय त्रिदोषको शांत करता है ॥ २७ ॥

अथ सुपारीका गुण।

कषायमधुरं भेदि पूगं पित्तकफापहम् ॥ २८ ॥

सुपारीफल कसैला है मधुर है मलको पतला करता है पित्तको और कफको नाशता है॥२८॥

अथ नागरपानका गुण।

नागवल्लीदलं हृद्यं सुगन्धि कफवातजित् ॥ २९ ॥

नागरपान हृदयको हितकर है सुगंधवाला है कफको और वातको जीतता है ॥ २९ ॥

अथ कत्थाका गुण।

खदिरः कफपित्तघ्नः कण्ठ्यः कुष्ठनिबर्हणः ॥ ३० ॥

कत्था कफको और पित्तको नाशता है कंठमें हित है कुष्ठको दूर करता है ॥ ३० ॥

अथ चुन्नाका गुण।

चूर्णकं पित्तहृत्तीक्ष्णं ताम्बूलं कफवातजित् ॥ ३१ ॥ संयोगात्सुरसं स्वादु मुखवैरस्यनाशनम् ॥ दन्तस्थैर्य्यकरं शोषपीनसारोगशान्तिकृत् ॥ ३२ ॥

चुन्ना पित्तको हरता है तीक्ष्ण है और नागरपान कफको और वातको जीतता है परंतु संयोगसे सुंदर रसवाला है स्वादु है और मुखमें विरसपनेको हरता है ॥ ३१ ॥ और दांतोंको स्थिर करता है और शोष, पीनस इनको शांत करता है ॥ ३२ ॥

अथ कत्था कपूरसे संयुक्त नागरपानका गुण।

रोगपाटवसंशुद्धिस्वरकान्तिकरं मतम् ॥ कण्ठ्यं रुच्यमुरस्यञ्च फलकर्पूरसंयुतम् ॥ ३३ ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे प्रथमस्थाने फलवर्गो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

कत्था कपूरसे संयुक्त किया नागरपान रोगको शोधता है स्वरको और कांतिको करता है कंठमें हित है रुचिको उपजाता है और छाती[illegible]को करता है ॥ ३३ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसं[illegible]ताभाषाटीकायां प्रथमस्थाने फलवर्गो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्यायः १८.

अथ मधुवर्गः।

अतो वक्ष्यामि माक्षीकं त्रिविधं शृणु पुत्रक ! ॥
भ्रामरं सारघं क्षौद्रं तेषां वच्मि गुणागुणम् ॥ १ ॥

अब शहदको कहूंगा हेपुत्र ! वह शहद तीन प्रकारका है सुन भ्रामर १ सारघ २ क्षौद्र ३ तिन्होंके गुणोंको और दोषोंको कहता हूं ॥ १ ॥

अथ सामान्यशहदका गुण।

शीतं कषायं मधुरं लघु स्यात्सन्दीपनं लेहनमेव शस्तम्॥ संशोधनञ्च व्रणशोधनञ्च संरोपणं हृद्यतमञ्च बल्यम् ॥ २ ॥ त्रिदोष-

नाशं कुरुते च पुष्टिं कासक्षये वा क्षतजे च छर्दौ ॥ हिक्काभ्रमे शोषणपीनसानां रक्तप्रमेहे सरलातिसारे ॥ ३ ॥ रक्तातिसारे च सपित्तरक्ते तृण्मोहहृत्पार्श्वगदेऽपि शस्तः ॥ नेत्रामये वा ग्रहणी गदे वा विषे प्रशस्तं भ्रमरैश्चितं यत् ॥ ४ ॥ भ्रामरं सघनं जाड्यं भूयिष्ठं मधुरं च यत् ॥

शहद शीतल है कसैला है मधुर है हलका है अग्निको जगाता है स्वादु है सुंदर शोधता है घावको शुद्ध करता है घावपै अंकुरको लाता है हृदयको परमहितहै बलमें हित है ॥ २ ॥ त्रिदोषको नाशता है पुष्टिको करताहै खासीमें, क्षयमें, छातीके फटनेमें, छर्दीमें और हिचकी भ्रम, शोष, पीनस, रक्तप्रमेहको सींधे, अतीसार, इन्होंमें हित है ॥ ३ ॥ और रक्तातिसार, पित्तरक्त, तृषा, मोह, हृद्रोग, पसलीरोग, इन्होंमें श्रेष्ठ है भ्रामर शहद नेत्ररोगमें अथवा संग्रहणीमें और विषमें हित है ॥ ४ ॥ यह भ्रामर शहत बहुत गाढा और भारी होता है तथा अतिमधुर होता है ।

अथ शहदकी विशेषता ।

क्षौद्रं विशेषतो ज्ञेयं शीतलं लघु लेहनम् ॥ ५ ॥ तस्माल्लघुतरं रूक्षं सारघं नातिशीतलम् ॥ कासे क्षये प्रशस्तं स्यात्कामलार्शो विनाशनम् ॥ ६ ॥ नातिशीतं न च रूक्षं दीपनं बलकृन्मतम् ॥ अतीसारे नेत्ररोगे क्षते वा क्षतजे हितम् ॥ ७ ॥ भ्रामरं वृक्षसंस्थाने विटपे सारघं भवेत् ॥ रन्ध्रे तु कोटरे वापि क्षौद्रं तत्र प्रशस्यते ॥ ८ ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे मधुवर्गो नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

और क्षौद्रसंज्ञक शहद विशेषपनेसे शीतल है हलका है करता है ॥ ५ ॥ इससेभी अति हलका सारघ शहद है यह रूखा है अति शीतल नहीं है खासीमें और क्षयमें अतिश्रेष्ठ है कामलाको और बवासीरको नाशता है ॥ ६ ॥ क्षौद्रशहद अतिशीतल नहीं है रूखाभी नहीं है अग्निको जगाता है बलको करता है और अतीसार—नेत्ररोग—घाव—क्षतसे उपजारोग—इन्होंमें हित है ॥ ७ ॥ वृक्षपै भ्रामर शहद होता है तृणके गुच्छेमें सारघ शहद होता है वृक्षके छिद्रमें अथवा कोटरमें क्षौद्र शहद होता है सो अच्छा होता है ॥ ८ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां प्रथमस्थाने मधुवर्गोनाम अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

एकोनविंशोऽध्यायः १९.

अथ मद्यवर्गः।

गौडी माध्वी तथा पैष्टी निर्यासा कथितापरा ॥ इति चतुर्विधा ज्ञेयाः सुरास्तासां प्रभेदकाः ॥ १ ॥ भेदेन द्वादश प्रोक्ताः सुराः सौवीरकारसैः ॥ सीधुर्गौडी च मत्स्यण्डी• गुडेन प्रभवास्त्रयः ॥ २ ॥ माध्वीकं मधुकं माध्वं मधुना संयुताः सुराः ॥ पैष्टीष्वरिष्टजातन्तु तण्डुलप्रभवास्त्रयः ॥ ३ ॥ मृद्वीकारससम्भूता ताडमाडरसोद्भवा ॥ निर्यासा सा तु विज्ञेया तासां वच्मि गुणागुणम् ४

गौडी, माध्वी, पैष्टी, निर्यासा, इन भेदोंसे मदिरा ४ प्रकारकी हैं तिन्होंके भेद ॥ १ ॥ बारह १२ कहे हैं सीधु—गौडी—मत्स्यंडी—ये तीन मदिरा गुडसे बनती हैं ॥ २ ॥ माध्वीक, मधुक, माध्व, ये तीन मदिरा शहदसे बनती हैं पैष्टी, अरिष्ट, जात, ये तीन मदिरा चावलोंसे बनती हैं ॥ ३ ॥ और मृद्वीका दाक्षाके रससे बनती है ताडमदिरा ताडके रससे बनतीहै और माड वृक्षके रससेभी मदिरा बनती है वही निर्यासा मदिरा जाननी तिन्होंके गुण और दोषोंको कहताहूं ॥ ४ ॥

अथ सीधुमदिराका गुण।

सीधुः कषायाम्लकमाधुरो वा सन्दीपनो भेदमलापमर्दः ॥
आमातिसारानिलपित्तशूलश्लेष्मामयार्शोग्रहणीगदघ्नः ॥ ५ ॥

सीधुमदिरा कसैली है खट्टी है अग्निको जगाती है मेदको और मलको नाशती है और आमातीसार, वात, पित्त, शूल, कफका रोग, बवासीर, ग्रहणीदोष, इन्होंको नाशता है॥५॥

अथ गौडी मदिराका गुण।

गौडी कषाया मधुराम्लशीता सन्दीपनी शूलमलापहन्त्री ॥
हृद्यात्रिदोषं शमयत्यजीर्णं पाण्ड्वामथार्शःश्वसनं निहन्ति ॥ ६ ॥

गौडीमदिरा कसैली है मधुर है खट्टी है शीतल है अग्निको जगाती है शूलको और अफाराको हरती है सुंदर है और त्रिदोष, अजीर्ण, पांडुरोग, बवासीर, श्वासरोग इन्होंको शांत करती है ॥ ६ ॥

---

१ (ताडमाड रसोद्भवा) ताडनामक वृक्षरससंभूता तथा माडनामक वृक्षरसतो जाता अपि मदिरा माडनामको वृक्ष कोंकणदेशे प्रसिद्धः ॥ इति औषधकोशः।

अथ मत्स्यंडी मदिराका गुण ।

हरति मलमियञ्च दीपनी पाण्डुमेहान् लघुमधुरसुशीता रोचना पित्तहन्त्री ॥ जरयति सकलं वा पीतमम्लातिमात्रं श्वसनरुधिरकासान् हन्ति वा कामलाञ्च ॥ ७ ॥

रावकी मदिरा अग्निको जगाती है और मल, पांडुरोग, प्रमेह, इन्होंको हरती है हलकी है मधुर है सुंदर शीतल है रुचिको करती है पित्तको हरती है सब चीजोंको जराती है पीनेमें खट्टी है और श्वासरोग, रक्त, खाँसी, कामला, इन्होंको नाशती है ॥ ७ ॥

अथ माध्वीक मदिराका गुण ।

माध्वीकं शीतलं चाम्लमधुरमपि तथा सत् कषायोष्णकञ्च हन्यात्पित्तामयार्शः श्वसनमपि तथा चातिसारं प्रमेहान् ॥ शूलानाहोपमर्दं जरयति सकलं दीपयत्यग्निसात्म्यं तस्माद्वातामवातं वमनमपि तथा हन्ति सर्वांश्च रोगान् ॥ ८ ॥

माध्वीक मदिरा शीतल है खट्टी है मधुर है कसैली है गरम है और पित्तरोग-बवासीर, श्वासरोग, अतीसार, प्रमेह, शूल, अफारा, इन्होंको नाशती है सब चीजोंको जराती है अग्निको जगाती है और वात-आमवात-वमन-सब प्रकारके रोग-इन्होंको नाशती है ॥ ८ ॥

अथ मदिराका गुण ।

कषाया मधुरा चाम्ला सुरा सन्दीपनी मता ॥
कासार्शोग्रहणीस्तन्यमूत्ररोगविनाशिनी ॥ ९ ॥

मदिरा कसैली है खट्टी है अग्निको जगाती है और खाँसी-बवासीर-ग्रहणीदोष-दूधरोग-मूत्ररोग-इन्हेंको नाशती है ॥ ९ ॥

अथ पैष्टीमदिराका गुण ।

पैष्टी सन्दीपनी रुच्या कफकृद्वातनाशिनी ॥
पित्तला पाण्डुरोगाणां कारिणी बहुधा मता ॥ १० ॥

पैष्टी मदिरा अग्निको जगाती है रुचिमें हित है कफको करती है वातको नाशती है पित्तको उपजाती है और विशेष करके पांडुरोगोंको करती है ॥ १० ॥

अथ महुआ वृक्षकी मदिराका गुण ।

वातपित्तकरो रूक्षः कषायो विशदो गुरुः ॥
श्लेष्मलो भेदनो ग्राही मूत्रकृच्छ्रशिरोऽर्त्तिनुत ॥ ११ ॥

महुआकी मदिरा वातको और पित्तको करती है रूखी है कसैली है सुंदर है भारी है कफको करती है मलको पतला करती है कब्जको करती है मूत्रकृच्छ्रको और शिरके रोगको नाशती है ॥ ११ ॥

अथ ताडकी मदिराका गुण।

श्लेष्मदोषकरा वृष्या वातला श्लेष्मवर्द्धिनी ॥
कासहृल्लासविध्वंसकरणा ताडमण्डिका ॥ १२ ॥

ताडकी मदिरा कफको करती है वीर्यमें हित है वायुको उपजाती है कफको बढाती है और खाँसीको तथा थुकथुकीको नाशती है ॥ १२ ॥

अथ मदिराकी विशेषता।

पूर्णे कषायपित्ते च योगयुक्ता सुरा हिता॥बहुदोषहरा चैव श्लेष्मरोगे विशेषतः ॥१३॥ श्रमज्वरातुरे शोषे शोफपाण्ड्वामये क्षये ॥ मतेः क्लमेऽपस्मारे च यक्ष्मिणाश्च भ्रमेषु च ॥ १४ ॥ श्रान्ते वा विषपीते वा सर्पदष्टे जलोदरे ॥ रक्तपित्ते तथा श्वासे वारुणी न हिता मता ॥ १५ ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे मद्यवर्गो नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

कषायपनेसे युक्त हुआ पित्त जब पूर्ण होवै तब योगसे युक्तकरी मदिरा हित है यह बहुत दोषोंको हरती है और विशेष करकै कफके रोगमें हित है ॥ १३ ॥ परिश्रम और ज्वरसे पीडित और शोष, शोजा, पांडुरोग, क्षय, बुद्धिकी ग्लानि, मृगीरोग, यक्ष्माआदिसे उपजा भ्रम इन्होंसे पीडितको ॥ १४ ॥ और श्रांतहुयेको और विषको पीयेहुयेको और सर्पसे डसेको और जलोदर–रक्तपित्त–श्वासरोग, इन्होंसे पीडितको मदिरा हित नहीं है ॥ १५ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां प्रथमस्थाने एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

विंशोऽध्यायः २०.

अथ चौपायोंका और दुपायोंका मांसवर्ग।

शूलिनः शृङ्गिणश्चैव नखिनोऽन्ये प्रकीर्तिताः ॥ श्वापदाः पक्षिणश्चान्ये मत्स्याश्चान्याः सरीसृपाः ॥ १ ॥ जलेचरा जलाधारा

ग्रामारण्यनिवासिनः ॥ अनूपा जाङ्गला जीवास्तथा साधारणोऽपरः ॥ २ ॥ मृगरुरुचित्राङ्गास्तथा गण्डश्च वनगवयमहिषाः॥ सूकराद्याश्च येऽपि भवन्ति विविधवर्णा ग्रामवासिनश्च ॥३॥ ये ये वनगजाद्याश्च ग्रामकाद्याश्च शृङ्गिणः ॥ शूकरच्छिक्कराद्याश्च शूरिणो वा भवन्त्यमी ॥ ४ ॥

शूलवाले, शींगवाले, नखवाले, श्वापद, पक्षी, मच्छ, सर्प ये जो कहे हैं ॥ १ ॥ जलमें विचरनेवाले, जलके आश्रितहुये ग्राममें वसनेवाले, वनमें वसनेवाले, आनूपदेशमें रहनेवाले जांगलदेशमें रहनेवाले, साधारणदेशमें रहनेवाले ॥ २ ॥ मृग, रोहिषमृग, बिलावभेद, गैंडा, रोझ, भैंसा, शूकरआदि—ये सब अनेक प्रकारके वर्णवाले ग्राममें वसनेवाले हैं ॥ ३ ॥ जो जो वनमें रहनेवाले हस्तीआदि हैं और जो ग्राममें रहनेवाले शींगवाले हैं और शूकर, छिक्कर इनआदिभी ग्रामवासी हैं ॥ ४ ॥

अथ सरीसृपवर्णन।

शशकः शल्लकी गोधा मार्जाराद्या नखायुधाः ॥
सर्पमत्स्यादिका ये च ते विज्ञेयाः सरीसृपाः ॥ ५ ॥

शशा, सेह, गोह, बिलाव, इन आदि नखरूपी शस्त्रोंवाले हैं सर्प और मत्स्य आदि सरीसृप संज्ञक जानने ॥ ५ ॥

अथ आनूपवर्णन।

मत्स्यमंकुरकाद्या ये कच्छपा दुर्जरादयः ॥ हंससारसचक्राद्याः कपिञ्जलकुमूदकाः ॥ ६ ॥ आनूपास्तेषु विज्ञेयाः श्लेष्मला वातकोपनाः ॥ ७ ॥

मच्छ, मंकुरक आदि कच्छप ये दुःखसे जरनेवाले हैं और हंस, सारस, चकुवा, इन आदि और पपैय्या, पंडेरिआ पक्षी, ॥ ६ ॥ ये सब आनूपदेशमें रहनेवाले होते हैं और कफको करते हैं और वातको कोपते हैं ॥ ७ ॥

अथ जांगलवर्णन।

शशलावककवाताटा गोधाहरिणकूटकाः ॥ छिक्कराद्यास्तथान्येऽपि तित्तिराद्याश्च कूर्चकाः ॥ ८ ॥ भारद्वाजास्तथा श्येना मूषका वरवारणाः ॥ इत्येता जाङ्गला जीवा ये जलेन विना स्थिताः ॥९॥

शशा, लावा, वातार, गोह, हरिण, कूटक, छिक्कर आदि और तीतर आदि, जीवक पक्षी ॥ ८ ॥ काग अथवा मुर्गा विशेष, शिकरा, मूषा-माषीविशेष ये सब जांगलसंज्ञक हैं ये पानीके विनाभी स्थित रह सकते हैं ॥ ९ ॥

अथ जलचरजीववर्णन।

शूकरा मृगशल्लाद्याः सलिलाशयमाश्रिताः ॥ मकराद्याश्च गण्डाका गवयाश्च तथापराः ॥ १० ॥ महिषाद्याश्च ये चैव ते च साधाराणा मताः ॥ कुररबकमकराः कङ्कचटकपिकभृङ्गसारसाः ॥ ११ ॥ आडिदात्यूहहंसा जलकरटिकपिङ्गटिट्टिभाद्याश्च ॥ जलेचरा विहङ्गास्ते खञ्जरीटाश्च भासकाः ॥ १२ ॥ इत्येते जलजा जीवाः स्थलजाः स्थलचारिणः ॥ १३ ॥

शूकर, हरण, शल्ल अर्थात् सेह इन आदि जीव पानीके आशयके आश्रित रहते हैं और मकर मच्छ आदि-गैंडा-रोझ ॥ १० ॥ भैंसा आदि जीव साधारण माने हैं और पपैया-बगला-मकरा-कंक-वत्तक-कोयल-भौरा-सारस- ॥ ११ ॥ आडीपक्षी-ढौंकरपक्षी हंस-शंखका जीव-रटिक-पिंगापक्षी-टिटवीपक्षी इन आदि ॥ १२ ॥ जलमें विचरनेवाले हैं खंजरीट और भासपक्षीभी जलचारी हैं और स्थलमें विचरनेवाले स्थलचारी जीव कहाते हैं १३

अथ ग्रामचारी पशुवर्ग।

गजवाजिनस्तथोष्ट्रा माहिषा सौरभाजकाः ॥ खरशूकरमेषाश्च श्वानो मार्जारमूषकाः ॥ १४ ॥ इत्येते पशवो ज्ञेया ग्रामवासनिवासिनः ॥

हस्ती, घोडा, ऊंट, भैंसा, बैल, बकरा, गधा, सुवर, मेंढा, कुत्ता, बिलाव, मूषा ॥ १४ ॥ ये सब जीव गाममें वसनेवाले हैं ॥

ग्रामचारी पक्षी।

कुक्कुटकलविङ्कपारावतकपोतकाः ॥ १५ ॥
पक्षिणो ग्रामचाराश्च वच्मि चैषां गुणागुणम् ॥ १६ ॥

और मुर्गा, चिडापक्षी, परेवा, कबूतर, ॥ १५ ॥ ये पक्षी गाममें विचरते हैं इन्होंके गुण और दोषको कहताहूं ॥ १६ ॥

हरिणोंके मांसका गुण।

शृङ्गिणां हरिणः श्रेष्ठो बल्यो रोचनदीपनः ॥
त्रिदोषघ्नो लघुः पाके मधुरो ज्वरिणां हितः ॥ १७ ॥

शींगवालोंमें हरिण श्रेष्ठ है बलमें हित है रुचिको देता है अग्निको जगाता है त्रिदोषको हरता है हलका है पाककालमें मधुर है ज्वरवालोंको हित है ॥ १७ ॥

अथ कृष्णमृगके मांसका गुण ।

क्षते क्षयार्शसोः पाण्ड्वावरोचकनिपीडिते ॥
कासश्वासातुराणाञ्च एणमांसं सुखावहम् ॥ १८ ॥

छातीका फटजाना, क्षय, बवासीर, पांडु, अरुची, खाँसी, श्वास इन्होंसे पीडित रोगियोंको कृष्णमृगका मांस हित है ॥ १८ ॥

अथ चित्रांगके मांसका गुण ।

चित्राङ्गो वातशमनो बृंहणो बलकृन्मतः ॥
श्लेष्मलः कथितो वापि दुर्जरो मेदवर्द्धनः ॥ १९ ॥

चित्तलका मांस वातको शांत करता है धातुओंको पुष्ट करता है बलको बढाता है कफको करता है दुर्जर है और मेदको बढाता है ॥ १९ ॥

अथ छिक्करके मांसका गुण ।

छिक्करो लघु बृंही च मधुरो दोषनाशनः ॥
तुल्यो हरिणमांसस्य ज्वरेष्वापि प्रशस्यते ॥ २० ॥

छिक्करका मांस हलका है धातुओंको पुष्ट करता है मधुर है दोषको नाशता है मृगके मांसके समान है और ज्वरमें भी श्रेष्ठ है ॥ २० ॥

अथ रक्तमृगके मांसका गुण ।

रोहितो बृंहणश्चैव विबन्धी दुर्जरो घनः ॥
ज्वरिणां विषमाग्नीनामतीसारेण त्रास्यते ॥ २१ ॥

रक्त मृगका मांस धातुओंको बढाता है विशेष करके बंधाको करता है दुर्जर है कठिन है और ज्वर, विषमज्वर, अग्नि, इनरोगवालोंको अतीसार करके त्रासित करता है ॥ २१ ॥

अथ गैंडा, रोझ, भैंसा, ऊंट, घोडा-इन्होंके मांसोंके गुण ।

तथैव गण्डगवयमहिषोष्ट्रतुरङ्गमाः ॥
विबन्धिगुरवः स्निग्धा वातालस्ये प्रकीर्त्तिताः ॥ २२ ॥

गैंडा, रोझ, भैंसा, ऊंट, घोडा इन पांचोंके मांस विशेष करके बंधाको करते हैं भारी हैं चिकने हैं वातमें और आलस्यमें हित हैं ॥ २२ ॥

अथ शूकरके मांसका गुण ।

वातघ्नं रोचनं वृष्यं दुर्जरं श्रमनाशनम् ॥
सौकरं पित्तशमनं रुचिदं धातुवर्द्धनम् ॥ २३ ॥

सुअरका मांस वातको नाशता है रुचिमें हित है वीर्यमें हित है दुर्जर है परिश्रमको नाशता है पित्तको शांत करता है धातुओंको बढाता है ॥ २३ ॥

अथ शशाके मांसका गुण ।

शशको जाङ्गलश्रेष्ठो लघुर्वृष्यश्च दीपनः ॥ रुचिकृत्तर्पणो बल्यस्त्रिदोषशमनो मतः ॥ २४ ॥ ज्वरे च पाण्डुरोगे च क्षये कासे गुदामये ॥ राजयक्ष्मणि पाण्डौ च तथातीसारिणां हितः ॥ २५ ॥

शशाका मांस जांगलजीवोंके मांसोंमें श्रेष्ठ है हलका है वीर्यमें हित है अग्निको जगाता है रुचिको करता है तृप्तिको करता है बलमें हित है और त्रिदोषको शांत करता है ॥ २४ ॥ और ज्वर, पांडुरोग, क्षय, खाँसी, बवासीर, राजरोग, पांडुरोग, अतीसार, इन रोगवालोंको हित है ॥ २५ ॥

अथ शेहके मांसका गुण ।

शल्लकी बृंहणो बल्यः स्निग्धो वृष्यो रुचिप्रदः ॥
वातश्लेष्महरो हृद्यो मधुरो धातुवर्द्धनः ॥ २६ ॥

शेहका मांस धातुओंको पुष्ट करता है वीर्यमें हित है बलको करता है चिकना है रुचिको देता है वातको और कफको हरता है सुंदर है मधुर है और धातुओंको बढाता है ॥ २६ ॥

अथ गोह सरीखे शल्यकनामवाले जीवके मांसका गुण ।

शल्यको बृंहणो बल्यः स्निग्धो वृष्यो रुचिप्रदः ॥
वातलः किञ्चिद्धातूनां वर्द्धनो मधुरो घनः ॥ २७ ॥

गोहसरीखे जीवका मांस धातुओंको पुष्ट करता है बलमें हित है चिकना है वीर्यमें हित है रुचिको देता है वातको करता है धातुओंको कछुक बढाता है मधुर है और कठिन है ॥ २७ ॥

अथ गोहके मांसका गुण ।

रक्तपित्तहरा वृष्या स्निग्धा मधुरशीतला ॥
स्वासकासहरा प्रोक्ता गोधा चार्शोहिता बला ॥ २८ ॥

गोहका मांस रक्तपित्तको हरता है वीर्यमें हित है चिकना है मधुर है शीतल है श्वासको और खाँसीको हरता है और बवासीरमें हित है ॥ २८ ॥

अथ मूषाके मांसका गुण।

स्निग्धो बलकरः शुक्रवर्द्धनो मधुरो लघुः ॥ दुर्नामकृमिदोषघ्नो वातहारी च मूषकः ॥ २९ ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे चतुष्पदानां मांसवर्गो नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

मूसाका मांस चिकना है बलको करता है वीर्य्यको बढाता है मधुर है हलका है और बवासीरको और कृमिदोषको हरता है और वातकोभी नाशता है ॥ २९ ॥ इति वेरीनिवासि बुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां प्रथमस्थाने मांसवर्गो नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

एकविंशोऽध्यायः २१.

अथ स्थलमें विचरनेवाले जीवोंका मांसवर्ग।
(प्रथम लावापक्षीके मांसका गुण)

पक्षिणाञ्च महाश्रेष्ठो लावको जाङ्गलात्मजः ॥ संग्राही दीपनः प्रोक्तः कषायो मधुरो लघुः ॥ १ ॥ तथा विपाके मधुरः सन्निपातेऽतिपूजितः ॥ २ ॥

लावाका मांस सब पक्षियोंके मांससे श्रेष्ठ है परंतु जांगलदेशमें विचरनेवाला लावापक्षीका मांस हो यह कब्जको करता है अग्निको जगाता है कसैला है मधुर है और हलका है ॥ १ ॥ और पाककालमें मधुर है और सन्निपातमें अतिपूजित है ॥ २ ॥

अथ तीतरके मांसका गुण।

तथैव तित्तिरो वृष्यो मेधाग्निबलवर्द्धनः ॥ सर्वदोषहरो बल्यो बलाका समता गुणैः ॥ ३ ॥ वार्त्ताको विशदो वृष्यो यथा लावस्तथैव च ॥ कृष्णगौरप्रभेदाश्च श्रेष्ठो गौरश्च तित्तिरः ॥ ४ ॥ तृतीयतित्तिरोऽन्योऽपि सामान्यो गुणलक्षणैः ॥ सवातलोऽतिबलकृच्छनः किञ्चिद्रसायनः ॥ ५ ॥

तीतरका मांस वीर्यमें हित है और बुद्धि, अग्नि, बल, इन्होंको बढाता है सब दोषोंको हरता है बलमें हित है और बगलाका मांसके समान गुणोंवाला है ॥ ३ ॥ वार्ताकसंज्ञक तीतरका मांस सुंदर है वीर्यमें हित है और लावाके मांसके समान गुणोंवाला है कृष्ण और

गौर तीतरोंमें गौर वर्णका तीतर श्रेष्ठ है ॥ ४ ॥ गुण और लक्षणों करके समान तीसरे रंगका तीतर अन्यभी होता है परंतु वह वातल है अतिबलको करता है तिसका मांस कठिन है और कछुक रसायन है ॥ ५ ॥

अथ नीले मोरके मांसका गुण।

मेधावृद्धिं स्रोतसाञ्च करोत्युत्पाटनं शिखी ॥
सवातलोऽतिबलकृद्धनः किञ्चिद्रसायनः ॥ ६ ॥

नीले मोरका मांस बुद्धिको बढाता है और कानोंको उत्पाटित करता है वातल है अतिबलको करता है कठिन है और कछुक रसायन है ॥ ६ ॥

अथ साधारण मोरके मांसका गुण।

सुस्निग्धो श्लेष्मलो वृष्यो घनः शुक्रविवर्द्धनः ॥
मांसवृद्धिकरो बल्यो द्वितीयश्च मयूरकः ॥ ७ ॥

साधारण मोरका मांस सुन्दर चिकना है कफको करता है वीर्यमें हित है कठिन है वीर्यको बढाता है मांसको बढाताहै बलमें हित है ॥ ७ ॥

अथ मुर्गाके मांसका गुण।

तथैव कौक्कुटो ज्ञेयो मधुरश्च गुणात्मकः ॥ ८ ॥

मुर्गाका मांसभी मोरके मांसके समान गुणोंवालाहै और मधुर है ॥ ८ ॥

अथ कपोतके मांसका गुण।

कापोतो बृंहणो बल्यो वातपित्तविनाशनः ॥
तर्पणः शुक्रजननो हितो नृणां रुचिप्रदः ॥ ९ ॥

कपोतका मांस धातुओंको पुष्ट करता है बलमें हित है वातको और पित्तको नाशता है तृप्तिको करता है वीर्यको बढाता है और मनुष्योंको रुचिको देता है ॥ ९ ॥

अथ परेवाके मांसका गुण।

तथा पारावतो ज्ञेयो वातश्लेष्मकरो गुरुः ॥ बल्यो वृष्यो रुचिकृच्च तथा हारीतको मतः ॥ १० ॥ पोतकी भङ्गिका क्षुद्रा तथा च कुनटी तथा ॥ एते तुल्यगुणा ज्ञेया लघुवातापहारिणः ॥ ११ ॥

परेवाका मांस वातको और कफको करता है भारी है बलमें हित है वीर्यमें हित है रुचिको करता है और ऐसेही गुणोंवाला तिलजिरुपक्षीका मांस है ॥ १० ॥ और पीत्तक-इंद्रगोप-मधुमाखी-कुनटी इन चारोंका मांस समान गुणोंवाला है हलका है और वातको हरता है ॥ ११ ॥

अथ ककेराके मांसका गुण।

लघुश्च कुकरो ज्ञेयः कायाग्निवर्द्धनो भृशम् ॥ १२ ॥

ककेराका मांस हलका है शरीरकी अग्निको बढाता है ॥ १२ ॥

अथ खातीचिडाके मांसका गुण ।

तथा लघुर्वातहरः काष्टकूटोऽग्निवर्द्धनः ॥ वातश्लेष्माधिको ज्ञेयः शीतलः शुक्रवर्द्धनः ॥ १३ ॥ अश्मरीं हन्ति विशदो बलकृन्मांसतक्षणः ॥ १४ ॥

खातीचिडाका मांस हलका है वातको हरता है और जठराग्निको बढाता है वात और कफकी अधिकतासे संयुक्त है शीतल है और वीर्यको बढाता है ॥ १३ ॥ पथरीको हरता है सुन्दर है बलको करता है मांसको कीटता है ॥ १४ ॥

अथ चकोर, तोता, मैना इन्होंके मांसका गुण ।

चकोरोऽथ तथा शारी समदोषौ गुणागुणैः ॥ १५ ॥

चकोर, तोता, मैना, इन्होंकाभी मांस गुण और दोषोंसे समान है ॥ १५ ॥

अथ कुंजके मांसका गुण ।

क्रौंचो वृष्योऽतिरुचिकृदश्मरीं हन्ति नित्यशः ॥
शोषमूर्च्छाहरो वृष्यो हन्ति कासमरोचकम् ॥ १६ ॥

कुंजका मांस वीर्यमें हित है ज्यादे रुचिको करता है निश्चय पथरीको हरता है और शोष मूर्च्छा, खांसी, अरुचि, इन्होंको नाशता है ॥ १६ ॥

अथ कोयलके मांसका गुण ।

कोकिलः श्लेष्मलो ज्ञेयः पित्तसंशमनो मतः ॥ १७ ॥

कोयलका मांस कफको करता है बलमें हित है और वीर्यको बढाता है ॥ १७ ॥

अथ विवृताक्षके मांसका गुण ।

वैवृताक्षस्त्रिदोषघ्नो बल्यः शुक्रविवर्द्धनः ॥ १८ ॥

विवृताक्षका मांस त्रिदोषको नाशता है बलमें हित है और वीर्यको बढाता है ॥ १८ ॥

अथ घरकेचिडेके मांसका गुण ।

गृहस्य चटको वृष्यो बलशुक्रविवर्द्धनः॥सर्वदोषहरश्चापि दीपनो मांसवर्द्धनः ॥ १९ ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे स्थलचराणां मांसवर्गो नाम एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

घरके चिडेका मांस वीर्य्यमें हित है बल और वीर्यको बढाता है सब दोषोंको हरता है अग्निको जगाता है और मांसको बढाता है ॥ १९ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां प्रथमस्थाने स्थलचराणां मांसवर्गोनाम एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

द्वाविंशोऽध्यायः २२.

अथ जलचरोंका मांसवर्ग।

प्रथम हंसआदि जलके पक्षियोंके मांसका गुण।

हंसः श्लेष्मकरो बलातिरुचिदो वृष्यो गुरुः शीतलस्तद्वच्च कण्ठजाड्यशुक्रजननो वृष्योऽतिरुच्यो मृदुः ॥ ज्ञेयः सारसकः कफानिलहरो वृष्यो गुरुश्चोच्यते वृष्यो वीर्य्यविवर्द्धनः कफहरः कङ्कस्तथा भासकः ॥ १ ॥

हंसका मांस कफको करता है बलको और अतिरुचिको देता है वीर्यमें हित है भारी है और शीतल है सारसका मांस हंसका मांसके समान गुणोवाला है कंठमें जडपनेको और वीर्यको करता है वीर्यमें हित है रुचिमें हित है और कोमळ है कफको और वातको हरता है और भारी है कंक और भासपक्षीका मांसभी हित है और वीर्य्यको बढाता है ॥ १ ॥

आडी आदि पक्षीके मांसका गुण।

आडी वातविकारकासहननी बल्या वृषा दीपनी क्रौञ्ची चासुरिशुक्रदोपहननी तुल्यस्तथा कर्कटः ॥ दात्यूहो मरुतस्य नाशनकरो वृष्योबलः शुक्रदस्तथा श्रेष्ठगुणः श्रमोपशमनः शुक्रप्रदो वातहा ॥ २ ॥

आडीकामांस वातका विकार और खाँसीको हरता है बलमें और वीर्यमें हित है और अग्निको जगाता है कुंजका मांस और आसुरीका मांस वीर्यके दोषको हरता है और इसीके समान गुणोंवाला कांकडपक्षीका मांस है और करढोंक पक्षीका मांस वातको नाशता है वीर्यमें हित है बलको और वीर्य्यको देता है और श्रेष्ठ गुणोंवाला है परिश्रमको शांत करता है ॥ २ ॥

अथ मकर मच्छके मांसका गुण।

मत्स्यानां मकरः श्रेष्ठो दीपनो वातनाशनः ॥
रुचिप्रदः शुक्रकरश्चाश्मरीदोषनाशनः ॥ ३ ॥

सबप्रकारके मच्छोंके मांसोंमें मकरमच्छका मांस श्रेष्ठ है अग्निको जगाता है वातको नाशता है रुचिको देता है वीर्यको करता है और पथरी दोषको नाशताहै ॥ ३ ॥

अथ मच्छके मांसका गुण।

शृङ्गी वातविनाशनो रुचिकरो वृष्यः कफघ्नो मतस्तस्माद्रोहितको हितो बलकरो वातात्मकः श्लेष्मकः ॥ ४ ॥ श्लेष्माकरी तु शफरी नलमीनः कफात्मकः ॥ शकुली च विशाला च ज्ञेयौ वातकफात्मकौ ॥ बिलं विमत्स्यं ज्ञेयश्च वातपित्तकफाकरम् ॥५॥

शृंगीमच्छका मांस वातको नाशता है रुचिको करता है वीर्यमें हित है वात और कफकी प्रकृतिवाला है ॥ ४ ॥ शफरी मछली कफको करती है नलनामक मच्छ वातकी प्रकृतिवाला है शकुली और विशालानामवाली दोनों मछली वात और कफकी प्रकृतिवाली है बिल और विमत्स्यनामवाले मच्छ वात, पित्त, कफ, इन्होंको नाशते हैं कई विलंबिनामक मच्छ ऐसाभी अर्थ करते हैं ॥ ५ ॥

अथ कछुवाके मांसका गुण।

कच्छपो मधुरः स्वादुः शुक्रवृद्धिकरो मतः ॥
वातश्लेष्मप्रजननो बृंहणो रूक्ष एव च ॥ ६ ॥

कछुवेका मांस मधुर है स्वादु है वीर्यको बढाता है वात और कफको उपजाता है धातुओंको पुष्ट करता है और रूखा है ॥ ६ ॥

अथ खेंकडाके मांसका गुण।

कुलीरोऽतिबलो वृष्यः पाण्डुक्षयविनाशनः ॥
शोफातिसारग्रहणीस्थविराणां स्त्रियां हितः ॥ ७ ॥

खेंकडाका मांस ज्यादे बलको करता है वीर्यमें हित है धातुओंको पुष्ट करता है और रूखा है और शोजा, अतीसार, संग्रहणी दोष, इन्होंसे पीडित और बूढा और स्त्री इन्होंको हित है ॥ ७ ॥

अथ मांसविशेषता।

मकरो दीपनो हृद्यो ग्राही चोष्णविकारहा ॥
मूत्राश्मरीणां शमनो गुल्मातीसारनाशनः ॥ ८ ॥

मकर मच्छका मांस अग्निको जगाता है सुंदर है कब्जको करता है गरम विकारको नाशता है मूत्ररोग और पथरीको शांत करता है गुल्म और अतीसारको नाशता है ॥ ८ ॥

अथ वर्जनीय मांस।

बककाकारिश्येनशूकरखरोष्ट्राश्वादयो भल्लूका व्यालाः सौरभेयप्रभृतयश्च ये चान्ये जीवा मृगणाम्॥मण्डूकाश्च सरीसृपादिकगणा

यूकाः कालिङ्गाश्च ये काकसारसशारिकाः शुका इमे भक्ष्या न शस्ता इमे ॥ ९ ॥ गृहचटकचकोराः काकजात्याश्च श्येनाः पिकशुकमघशारीभृङ्गदात्यूहमाङ्गाः ॥ जलकरटकपोतपोटकी-खञ्जरीटाः कुकुरमघमलिङ्गा यूकपिङ्गादयश्च ॥ १० ॥ एते भक्ष्या नैव भक्ष्या न चेष्टा ये चान्येऽप्यज्ञातनामाण्डजाश्च ॥ अन्ये चापि श्वापदा ये च निन्द्यास्ते च खाद्ये वर्जिताश्चात्र सर्वे॥११॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे मांसवर्गो नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

काक, बाज, शिकरा, गधा, शूर, ऊंट, कुत्ता, रीछ, भेडिया, गाय, बैल, आदि और मडक, सर्प आदि समूह, जूम, धूम्याटपक्षी, सारस, मैना, तोता इन्होंके मांस खानेमें वर्जित हैं ॥ ९ ॥ और घरमें रहनेवाली बत्तक, चकोर, काककी जातीके पक्षी, शिकराकी जातीके पक्षी, कोयल, तोताकी जातीके पक्षी, मघा, शारी, भोरा, करढौंकपक्षी, मांग, शंखकाजीव, कबूतर, पोटकी, खंजना, कुत्ता, मघ, मलिंग, जूम, पिंगापक्षी ॥ १० ॥ इन्होंके मांस खानेके योग्य नहीं हैं और श्रेष्ठभी नहीं हैं तथा जो जो हिंसक तथा निंदित जीव हैं तिन्होंके भी मांस वर्जने चाहिये ॥ ११ ॥ इति बेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यर-विदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां प्रथमस्थाने मांसवर्गो नाम द्वाविंशोध्यायः॥२२॥

त्रयोविंशोऽध्यायः २३.

अथ अन्नपानवर्ग ।

प्रथम मंडका गुण ।

मण्डः परिस्रवो भक्तस्तर्पणो वातनाशनः ॥ मूत्रमेहसमीरघ्नो रुचिकृन्मूत्रलो मतः ॥ १ ॥ आशुमण्डो भवेद्ग्राही मधुरो वा कफात्मकः ॥ तर्पणः क्षयदोषघ्नः शुक्रवृद्धिकरः परः ॥ २ ॥

मंड झिरानेवाला है तृप्तिको करता है वातको नाशता है मूत्र, मेह और वातको नाशता है रुचिको करता है और मूत्रको उपजाता है ॥ १ ॥ शीघ्रकिया मंड कबजको करता है मधुर है कफकी प्रकृतिवाला है तृप्तिको करता है क्षय दोषको नाशता है और वीर्यको बढाता है ॥ २ ॥

अथ भातका गुण ।

अप्रसाधितभक्तो युगन्धराणां भक्तश्च घनो विशदमधुरश्च ॥
कफे त्रिदोषशमनश्च कथ्यते कासश्च श्वासात्मक एव स स्मृतः॥३॥

नहीं साधित किया ऐसा युगंधर चावलोंका भात कठिन है सुंदर है मधुर है कफमें हित है त्रिदोषको नाशता है खांसीको और श्वासरोगको हरता है ॥ ३ ॥

अथ यवागू अर्थात् गुडपानीका गुण ।

सन्दीपनी स्वेदकरा यवागूः सम्पाचनी दोषमलामयानाम् ॥
सन्तर्पणी धातुबलेन्द्रियाणां शस्ता भवेत्स्याज्ज्वररोगिणाञ्च॥४॥

यवागू पसीनाको लाती है अग्निको जगाती है और दोष, मल और रोग इन्होंको पकाती है और धातु, बल, इंद्रिय, इन्होंको तृप्ति करती है और ज्वररोगवालोंको श्रेष्ठ है ॥ ४ ॥

अथ यवागूका लक्षण ।

भागैकश्च भवेत् तत्र द्विभागेन जलं क्षिपेत् ॥ चित्रकं पिप्पली-मूलं पिप्पली चव्यनागरम् ॥ ५ ॥ धान्यकस्य समांशानि पिष्ट्वा श्वेतासितण्डुलान् ॥ संशुद्धा शिथिला किञ्चित् सा यवागूर्निगद्यते ॥ ६ ॥ यवागूमुपभुञ्जानो जनो नारुचिमाचरेत् ॥ शाक माषफलैर्युक्ता यवागूः स्याच्च दुर्जरा ॥ ७ ॥

एक भाग द्रव्य और दो भाग पानी मिलावै और चीता, पीपलामूल, पीपल, चव्य, सूंठ॥५॥ धनियां ये सब समभाग लेने सफेद और दूसरे रंगके चावल इन सबोंको पीस मिलाके पकावै कछुक पतली रहै तिसको यवागू कहते हैं ॥ ६ ॥ यवागूको भोजन करता हुआ मनुष्य अरुचिको नहीं प्राप्त होता और शाक, उडद, फल इन्होंसे युक्तकरी यवागू दुर्जर होती है ॥७॥

अथ मंडका गुण ।

पञ्चकोलकधान्याकैर्युक्तो रास्नान्वितः पुनः ॥
मण्डस्त्रिदोषशमनो ज्वराणां पाचनः परः ॥ ८ ॥

पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सूंठ, धनियां, रायशन, इन्होंसे युक्त किया मंड त्रिदोषको नाशता है और ज्वरोंको पकाता है ॥ ८ ॥

अथ खीरका गुण ।

पायसं गुरु विष्टम्भजननं श्लेष्मवातलम् ॥
पित्तसंशमनं बल्यं वृष्यं श्रेष्ठं रसायनम् ॥ ९ ॥

खीर भारी है विष्टंभको करती है कफ और वातको करती है पित्तको शांत करती है बलमें और वीर्यमें हित है श्रेष्ठ है और रसायन है ॥ ९ ॥

अथ खीचडीका गुण ।

गुरुर्विष्टम्भजननो वातश्लेष्मकरः स्मृतः ॥ पित्तसंशमनो बल्यो वृष्यश्चैव फलप्रदः ॥ १० ॥ मुहुस्तण्डुलसंयुक्तो माषतण्डुलवान् पुनः ॥ अन्यथा धान्यगुणवान् लक्ष्यते च भिषग्वर ॥११॥ तिलानां संयुतो हृद्यो धातुपुष्टिविवर्द्धनः ॥ गुरुर्विष्टम्भमलकृद् दुर्जरः श्लेष्मकोपनः ॥ १२ ॥

खीचडी भारी है विष्टंभको करती है वातको और कफको करती है पित्तको शांत करती है बलमें और वीर्य्यमें हित है और बलको देती है ॥ १० ॥ चावलोंसे युत हुई अथवा चावल और उडदोंसे युतहुई खीचडीके ये गुण हैं अन्यतरहकी खीचडी अन्नके गुणको देती है ॥ ११ ॥ तिलोंकी खीचडी सुंदर है धातुओंकी पुष्टिको बढाती है भारी है विष्टंभको और मलको करती है दुर्जर है कफको कोपती है ॥ १२ ॥

अथ दालका गुण ।

सूपश्चोक्तस्त्रिदोषघ्नो व्यञ्जितश्चैव सर्पिषा ॥
धातुपुष्टिकरः श्रेष्ठो बृंहणो बलवर्द्धनः ॥ १३ ॥

दाल त्रिदोषको नाशती है और घृतमें भूनी अथवा छोंकीहुई दाल धातुओंकी पुष्टिको करती है श्रेष्ठ है धातुओंको और बलको बढाती है ॥ १२ ॥

अथ खलका गुण ।

वातकफकरो हृद्यः खलको बलकारकः ॥ १४ ॥

तिलोंका खल वातको और कफको करता है सुंदर है और बलको करता है ॥ १४ ॥

अथ अनारका पन्ना ।

कफानिलहरो हृद्यो दीपनो दाडिमाम्लकः ॥ १५ ॥

अनारका पन्ना कफको और वातको हरता है सुंदर है और अग्निको जगाता है ॥ १५ ॥

अथ पापडका गुण ।

पर्पटस्तैलसंभृष्टो दोषाणाञ्च ज्वरापहः ॥
रुचिकृद्बलकृच्चैव दाहशोषतृषापहः ॥ १६ ॥

तेलमें भुनाहुआ पांपड दोषोंसे उपजे ज्वरको नाशता है रुचिको और बलको करता है और दाह, शोष, तृषा इन्होंको नाशता है ॥ १६ ॥

अथ संडाकीका गुण ।

सण्डाकी च गुरुःस्निग्धा दुर्जरा अतिशीतला ॥
पित्तश्लेष्मकरा बल्या धातूनाञ्च बलप्रदा ॥ १७ ॥

संडाकी भारी है चिकनी है दुर्जर है अति शीतल है पित्तको और कफको करती है बलमें हित है और धातुओंके बलको देती है ॥ १७ ॥

अथ उडद आदिके वडोंका गुण ।

दुर्जरा मधुरा रुच्या वटिका माषकादिभिः ॥ १८ ॥

उडद आदिके वडे दुर्जर हैं मधुर हैं रुचिमें हित हैं ॥ १८ ॥

अथ शिखरनका गुण ।

गुडदधिप्रमुदिता हिता शिखरिणी नृणाम् ॥
धातुवृद्धिकरा वृष्या वातपित्तविनाशिनी ॥ १९ ॥

गुड और दहीसे बनीहुई शिखरण मनुष्योंको हित है धातुओंको बढाती है वीर्यमें हित है वातको और पित्तको नाशती है ॥ १९ ॥

अथ घृतयुक्त दहीके पतले शिखरनके गुण ।

शीतलः पित्तशमनो भ्रममूर्च्छातृषापहः ॥
खण्डेन संयुतः श्रेष्ठो घृतयुक्तो जलाधिकः ॥ २० ॥

यह शीतल है पित्तको शांत करता है और भ्रम, मूर्च्छा, तृषा इन्होंको नाशता है और खांड तथा घृतसे संयुक्त और पानीकी अधिकतासे संयुक्त ऐसा शिखरन श्रेष्ठ है ॥ २० ॥

अथ मंथका लक्षण और गुण ।

सक्तवः सर्पिषाभ्यक्ताः शीतवारिपरिप्लुताः ॥ नातिद्रवा नातिसान्द्रा मन्थ इत्यभिधीयते ॥ २१ ॥ मन्थः सद्यो बलच्छर्दिपिपासादाहनाशनः ॥ साम्लः स्नेहश्च सगुडो मूत्रकृच्छ्रस्य साधनः २२

घृतमें भुनेहुये सत्तुओंमें पानी मिलाके ऐसा बनावै जो न अति पतला और न अति कठिन हो तिसको मंथ कहते हैं ॥ २१ ॥ तत्कालका बनाया मंथ बल, छर्दि, पिपासा, दाह इन्होंको नाशता है खटाईयुक्त और गुड घृतयुक्त मंथ मूत्रकृच्छ्रको साधता है ॥ २२ ॥

अथ मांसका गुण।

सिद्धं मांसं वेसवारेण युक्तं बल्यं श्रेष्ठं स्वादु संदीपनञ्च ॥
त्रिदोषशमनं गुरु लवणस्नेहयुक्तं दुर्जरं दीपनं स्मृतम् ॥ २३ ॥

सिद्ध किया और वेसवारसंज्ञक मसालासे संयुक्त किया मांस बलमें हित है श्रेष्ठ है स्वादु है अग्निको जगाता है त्रिदोषको शांत करता है भारी है नमक और स्नेहसे संयुक्त किया मांस दुर्जर है और अग्निको जगाता है ॥ २३ ॥

१ आर्षत्वेनात्र छन्दोभंगत्वदोषो नास्ति ।

अथ मांसकी श्रेष्ठता।

नहि मांससमं किञ्चिदन्यद्देहमहत्त्वकृत् ॥
मांसादमांसं मांसेन संभृतत्वाद्विशिष्यते ॥ २४ ॥

शरीरकूं बढानेकेवास्ते मांससरीखा दूसरा कोई पदार्थ नहीं है. तिसमांसमेंभी जो प्राणी मांस खाते हैं उनप्राणियोंका मांस मांससे भरा रहता है, इसवास्ते वह बोहुत अच्छा होता है ॥ २४ ॥

अथ भूंजेहुए मांसका गुण।

अङ्गारैः परिपक्कञ्च दीपनं श्लेष्मनाशनम् ॥
बल्यञ्च स्नेहसंयुक्तं घनं घनगुणात्मकम् ॥ २५ ॥

मांस अग्निको जगाता है हलका है श्लेष्मको नाशता है. बलमें हित है और स्नेहसे संयुक्त किया यही मांस कठिन है और कठिन गुणवाला है ॥ २५ ॥

अथ मंडका गुण।

अत्युष्णं मण्डकं पथ्यं लघु चैव यथोत्तरम् ॥ त्रिकशूलपार्श्वशू-
लपरिणामापहं तथा ॥ तृष्णामारुतछर्दिघ्नमामाशयकरं तथा ॥ २६ ॥

मंड अति गर्म, है पथ्य है, हलका है यह त्रिकशूल, पसलीशूल, परिणामशूल, इन्होंको नाशता है तृष्णा, वायु, छर्दि इन्होंको नाशता है, आमको बढाता है ॥ २६ ॥

अथ मांडाका गुण।

तप्तकर्परपक्का या रोचनी मधुरा घना ॥
कफवृद्धिकरी बल्या पित्तरक्तप्रदायिनी ॥ २७ ॥

तप्तकिये तवेपर पकाया मांडा रुचिको करता है मधुर है कठिन है कफको बढाता है बलमें हित है पित्त और रक्तको देता है ॥ २७ ॥

अथ पूरी और घेवरका गुण।

पूरिका घृतपूरन्तु त्रिदोषशमनं परम् ॥
वृष्यं संबृंहणं स्वादु क्षतक्षयनिवारणम् ॥ २८ ॥

पूरी और घेवर त्रिदोषको शांत करता है वीर्यमें हित है धातुओंको पुष्ट करता है स्वादु है क्षत और क्षयको नाशता है ॥ २८ ॥

अथ गूंझ मालपुवाका गुण।

गुरूष्णो दुर्जरो ज्ञेयो वातश्लेष्मकरो गुरुः ॥
पूपकः श्लेष्मको हृद्यो वृष्यो वातानुलोमकः ॥ २९ ॥

मालपुआ भारी है दुर्जर है वात कफको करता है और कफको करता है सुंदर है वीर्यमें हित है और वातको अनुलोमकरता है ॥ २९ ॥

अथ सोमालिकाका गुण ।

सोमालिका घना स्वादू रोचनी बलवर्द्धनी ॥
दुर्जेरा दोषशमनी वृथानुकरणी मता ॥ ३० ॥

सोमालिका पकान्न कठिन है स्वादु है रुचिको उपजाती है बलको बढाती है दुर्जर है दोषको शांत करती है और वीर्यमें हित है ॥ ३० ॥

अथ फेनीका गुण ।

बृंहणी वातपित्तघ्नी पथ्या लघुतरा मता ॥
फेनिका रोचनी बल्या सर्वधातुबलप्रदा ॥ ३१ ॥

फेनी बल वर्द्धती है वातपित्तको शांत करती है पथ्य है बहुत हलकी है रुचिको उपजाती है बलमें हित है और सब धातुओंमें बलको देती है ॥ ३१ ॥

अथ भिन्न वडाका गुण ।

विष्टम्भी मधुरो हृद्यो घनो वातकफात्मकः ॥
स सिक्तो वा त्रिदोषघ्नो दुर्जरो जायते पुनः ॥ ३२ ॥

भिन्न किया बडा विष्टंभको करता है मधुर है सुंदर है कठिन है वातकी और कफकी प्रकृतिवाला है और सेचितकिया बडा त्रिदोषको नाशता है फिर दुर्जर होजाता है ॥ ३२ ॥

अथ अभिन्नवडाका गुण ।

अभिन्नो दुर्जरो बल्यो घनतृष्णाप्रदः स्मृतः ॥
तीक्ष्णो विपाके विष्टम्भी दुर्जरो जायते पुनः ॥ ३३ ॥

नहीं भिन्न किया बडा दुर्जर है बलमें हित है ज्यादे तृषाको देता है तेज है पाककालमें विष्टंभी है फिर दुर्जर होजाता है ॥ ३३ ॥

अथ लड्डूका गुण ।

कटुकास्तर्पणा बल्या दुर्जराः शोषकारकाः ॥ मन्दाग्नौ न प्रशस्यन्ते मोदका बहुवर्णकाः ॥ द्रव्यं गुणविशेषेण सारस्वादेन वा पुनः ॥ ३४ ॥

लड्डु चर्चरे हैं, तृप्तिको करते हैं बलमें हित हैं दुर्जर हैं शोषको करते हैं और मन्दाग्निमें हित नहीं हैं बहुत वर्णवाले हैं अथवा द्रव्यका गुण विशेष करके व सारस्वाद करके लड्डुकहे हैं ॥ ३४ ॥

अथ यवपोलिकाका गुण ।

पोलिका कथिता बल्या कफदोषकरी मता ॥
वृष्या वीर्य्यप्रदा ज्ञेया दोषला वीर्य्यवर्द्धिनी ॥ ३५ ॥
विदलान्नस्य या पर्णा सिद्धा कर्परकेण तु ॥
रुच्या वान्नविशेषेण दोषान् सर्वान् विभावयेत् ॥ ३६ ॥

जवोंकी पोली बलमें हित है कफदोषको करती है वीर्य्यमें हित है वीर्यको देती है दोषोंको उपजाती है और वीर्यको बढाती है ॥ ३५ ॥ और तंदूरपर पकाई हुई रोटी रुचिमें हित है ऐसेही अन्नके दोषके अनुसार सब पदार्थोंको विचारै ॥ ३६ ॥

अथ अन्नके गुणोंका उपसंहार ।

अन्यानि चान्नपानानि नैवोक्तानि महामते ॥
ग्रन्थविस्तारभीरुश्च लोको वक्तुं न च क्षमः ॥ ३७ ॥

हे महामते ! अन्य अन्न और पान नहीं कहे हैं क्योंकि, ग्रन्थके बढजानेसे संसारके लोक विचारनेको समर्थ नहीं हो सकेंगे ॥ ३७ ॥

अथ थकेहुये मनुष्यको भोजननिषेध ।

श्रमात्तु भोजनं यस्तु पानं वा कुरुते नरः ॥
ज्वरः संजायते तस्य छर्दिर्वा तत्क्षणाद्भवेत् ॥ ३८ ॥

जो मनुष्य परिश्रमसे पीछे शीघ्र भोजनको अथवा पानीको करता है तिसके शीघ्रही ज्वर अथवा छर्दि उपजती है ॥ ३८ ॥

अथ भोजनके उपरांत मेहनत और सुरतका निषेध ॥

कृत्वा तु भोजनं सद्यो व्यायामं सुरतं तथा ॥
यः करोति विपत्तिः स्यात्तस्य गात्रस्य निश्चितम् ॥ ३९ ॥

जो मनुष्य भोजनको करकै तत्काल कसरतको अथवा मैथुनको करता है तिसके शरीरमें निश्चय दुःख होजाता है ॥ ३९ ॥

अथ थंडा और गरमभोजनका निषेध ।

न चातिशीतं भुञ्जीत नात्युष्णं भोजने हितम् ॥
कुर्य्याद्वातकफौ शीतमुष्णं भवति सारकम् ॥ ४० ॥

अतिशीतलपदार्थको खावै नहीं और अति गरम भोजनभी हित नहीं है क्योंकि, शीतल भोजन वातको और कफको करता है और गरम भोजन दस्तावर है ॥ ४० ॥

श्रमित आदिकोंके भोजनका निषेध ।

न श्रान्तो भोजनं कुर्य्यान्न व्यायामसमाकुलः ॥
विषमासने न भोक्तव्यं करोति विविधान् गदान् ॥ ४१ ॥

परिश्रमसे थकाहुआ और कसरतसे थकाहुआ मनुष्य भोजनको करै नहीं और विषम आसन बैठके भोजनको करै नहीं ये अनेक प्रकारके रोगोंको करते हैं ॥ ४१ ॥

भोजनमें फलादिकोंका नियम ।

आदौ फलानि भुञ्जीत वर्जयित्वा तु कर्कटीम् ॥
न नक्तं दधि भुञ्जीत भोजनार्द्धे न धावनम् ॥ ४२ ॥

काकडीके विना सब फलोंको आदिमें खावै रात्रिमें दहीको नहीं खावै और भोजनके बीचमें उठकर नहीं भागे (अर्थात् आधाभोजन करके उठना फिरना फिर भोजन करना उचित नहीं) ॥ ४२ ॥

भोजनके पीछे बैठनेका नियम ।

भोक्तोपविशति स्थौल्यं बलमुत्तानशायिनः ॥
आयुर्वामकटिस्थस्य मृत्युर्धावति धावतः ॥ ४३ ॥

जो भोजनको करकै बैठता है वह स्थूलपनेको प्राप्त हो जाता है और भोजन करकै सीधा शयन करनेवालेका बल बढता है और भोजन करकै वामें करवट शयन करनेसे आयु बढता है और भोजन करकै दौडनेसे मृत्यु दौडता है ॥ ४३ ॥

भोजनमें पानीका नियम ।

नवादौ सलिलं पेयं भोजने पानमाचरेत्॥अर्द्धाहारेण भुञ्जीत तृतीयं व्यञ्जनेन तु॥४४॥चतुर्थं तोयपानेन पूर्णाहारः सुजायते ४५॥

भोजनके आदिमें पानीको नहीं पीवै भोजन करतेहुये पानीको पीवै दो भागके कोष्ठको भोजनसे पूरितकरै और तीसरे भागको व्यंजनसे पूरित करै ॥ ४४ ॥ और चौथे भागको पानीसे पूरित करै ऐसे पूर्ण भोजन होता है ॥ ४५ ॥

भोजनके ऊपर व्यायाम ।

भोजनोर्ध्वं चंक्रमते शतपादं शनैः शनैः ॥
पश्चादुत्तानशयनं ततो वामे क्षणं स्वपेत् ॥ ४६ ॥

और भोजन करकै सौ १०० पैर हौले २ चलै पीछे सीधी शयनकर पीछे वामें करवट दो घडी शयन करै ॥ ४६ ॥

अथ भोजनके उपरांत नेत्रादिकोंका मार्जन ।

भुक्त्वोपरि समाचम्य मार्जयेद्दक्षिणाकरैः ॥
पुनर्दक्षिणहस्तेन मार्जयेदुदरं सुधीः ॥ ४७ ॥

भोजन करकै पीछे आचमनले दाहिने हाथसे मुखको शुद्ध करै पीछे दाहिने हाथ करकै बुद्धिमान् पेटको शोधित करै ॥ ४७ ॥

अथ अडकारका नियम।

उद्गीरयेत्समुद्धारं न चोद्धारस्य धारणा ॥ ४८ ॥

अडकारको अच्छी तरह लेवै क्योंकि अडकारको धारित करना अच्छा नहीं ॥ ४८ ॥

अथ व्यायामादिकोंका नियम।

व्यायामश्च व्यवायश्च धावनं पानमेव च ॥ युद्धं गीतञ्च पाठञ्च क्षणभुक्तो विवर्जयेत् ॥ ४९ ॥ न सद्यः पीते पठनं गमनं च न कारयेत् ॥ न वा वाहनमारोहं विवादं न च कारयेत् ॥ ५० ॥

और भोजन करकै दो घडीतक कसरत, मैथुन, दौडना आदि शुद्धि, जलआदिका पान इन्होंको और कुशती आदि युद्ध, गाना, पढाना, इन्होंको वर्जै ॥ ४९ ॥ और तत्काल पानीको पीकै पठन और गमनको न करै बोझाको उठावै नहीं और सवारी आदिपर चढै नहीं और विवादको करै नहीं ॥ ५० ॥

अथ दिनमें शयन करनेका निषेध।

दिवास्वापं न कुर्य्यात्तु भुक्त्वोपरि च विश्रमेत् ॥ अकालशयनाच्छ्लेष्मा प्रतिश्यायः प्रपीनसः ॥ ५१ ॥ क्षयशोफशिरोऽर्त्तिश्च जायते चाग्निमदन्ता ॥ ५२ ॥

और दिनमें शयनको करै नहीं किंतु भोजनकरकै विश्राम करै अकालमें शयन करनेसे कफ, खेहर, पीनसरोग ॥ ५१ ॥ क्षय, शोजा, शिरमें पीडा, मंदाग्नि ये उपजते हैं ॥ ५२ ॥

अथ दिनमें शयन कराने लायक मनुष्य।

मद्यपीते परिश्रान्ते हिक्काश्वासातुरेषु च ॥ भयशोकक्षुधार्त्तानां पठनान्मैथुनेन च ॥ ५३ ॥ तथैव वृद्धबाले च भाराक्रान्ते तथातुरे ॥ अतीसारे च शोफे च तृष्णापानात्ययेऽपि च ॥ ५४ ॥ ग्रीष्मे बाल्ये निशाहस्ते दिवास्वप्नं हितं भवेत् ॥ ५५ ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे अन्नपानवर्गो नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ प्रथमस्थानं समाप्तम् ॥ १ ॥

मद्यपान करनेमें, परिश्रमसे थकनेमें, हिचकी और श्वासकी पीडामें, भय, शोक, भूख, इन्होंमें, पठन और मैथुनमें ॥ ५३ ॥ वृद्धपना और बालकपना इनमें बोझेसे थकेहुयेमें, रोगमें, अतीसार और शोजामें, तृषा और पानात्यय रोगमें ॥ ५४ ॥ ग्रीष्मऋतुमें रात्रिके जागनेमें दिनको शयन करना हित है ॥ ५५ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां प्रथमस्थाने अन्नपानवर्गो नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

यहां प्रथमस्थान समाप्त हुआ।

अथ द्वितीयस्थानम् ।

प्रथमोऽध्यायः १.

आत्रेय उवाच ॥ अथातः संप्रवक्ष्यामि द्वितीयस्थानमुत्तमम् ॥ शुभाशुभानि स्वप्नानि स्वास्थ्यारिष्टानि मानुषे ॥ १ ॥ शृणु पुत्र समासेन यथा वत्स प्रकाश्यते ॥ २ ॥

अथ आत्रेयजी कहते हैं-अब उत्तमरूपी द्वितीयस्थानको कहताहूं मनुष्योंके शुभ, अशुभ, स्वप्न, स्वस्थपना, अरिष्ट ॥ १ ॥ इन्होंको हे पुत्र ! विस्तारसे सुन जैसे हे वत्स ! प्रकाशितकिया जाता है ॥ २ ॥

हारीत उवाच ॥ ज्ञातं मया महाप्राज्ञ अन्नपानं तथोत्तमम् ॥ इदानीं ज्ञातुमिच्छामि रोगाणां रोगविज्ञताम् ॥ ३ ॥ कर्मजा व्याधयो ये च तान्वद त्वं महामते ॥ ४ ॥

अथ हारीत पूछता है-हे महाप्राज्ञ ! अन्नपानकी विधि मैंने जानी अब रोगवालोंके रोगोंको जाननेकी इच्छा करता हूं ॥ ३ ॥ हे महामते ! कर्मसे जो व्याधि उपजती हैं तिन्होंको आप कहो ॥ ४ ॥

आत्रेय उवाच ॥ कर्मजा व्याधयः सर्वे भवन्ति हि शरीरिणाम् ॥ सर्वे नरकरूपाः स्युः साध्यासाध्या भवन्त्यमी ॥ ५ ॥ अज्ञातं यत्कृतं पापं पश्चात्कृच्छ्रं समाचरेत् ॥ प्रायश्चित्तबलेनापि साध्यरूपो भवेद्गदः ॥ ६ ॥ क्रियते ज्ञातरूपेण यत्पश्चात्कृच्छ्रमाचरेत् ॥ प्रायश्चित्तेन प्रान्ते तु कष्टसाध्यो भवेद्गदः ॥ ७ ॥ ब्रह्मघ्नगोघ्न-धरणीपतिघातकश्च आरामतोयधरनाशकपारदाराः ॥ स्वाम्यङ्गनागुरुवधूकुलजाभिगामी एते त्रयोदशविधाः प्रबाला गदाश्च ॥ ८ ॥ पाण्डुः कुष्ठं राजयक्ष्मातिसारो मेहो मूत्रं चाश्मरी मूत्रकृच्छ्रम् ॥ शूलः श्वासः कासशोफव्रणाश्च दोषाश्चैते पापरूपा

नृणां स्युः ॥ ९ ॥ ज्वरो जीर्णं तथा छर्दिभ्रममोहाग्निमान्द्यताः ॥ यकृत्प्लीहार्शःशोषाश्च एते चैवोपदूषकाः ॥ १० ॥ व्रणं शूलं शिरःशूलं रक्तपित्तं तथोर्द्धगम् ॥ एते रोगा महाप्राज्ञ अभिशापाद्भवन्ति हि ॥ ११ ॥ अन्येऽपि बहुधा रोगा जायन्ते दोषसम्भवाः ॥ अतो वक्ष्ये समासेन शृणु त्वञ्च महामते ॥ १२ ॥

अथ आत्रेयजी कहते हैं-शरीरधारियोंके कर्मसे उपजनेवाली सब व्याधि हैं और सब दुःखरूप हैं साध्य और असाध्यरूप व्याधि हैं ॥ ५ ॥ विनाजाने जो किया हुआ पाप है वह पीछे कृच्छ्र चांद्रायणको करे परंतु प्रायश्चित्तके बलसे वह पाप साध्यरूप रोग हो जाता है ॥ ६ ॥ जो जानके पाप किया जाता है पीछे कृच्छ्र चांद्रायणको करता है इस प्रायश्चित्तकरकै कष्टसाध्य रोग होजाता है ॥ ७ ॥ ब्राह्मणको मारनेवाला, गायको मारनेवाला, राजाको मारनेवाला और बाग, तथा जलके स्थानको नाशनेवाला और पराई स्त्रीको अपनी स्त्री बनानेवाला और स्वामीकी भार्य्या, गुरुकी भार्य्या, अपने कुलमें उपजी ऐसी स्त्रियोंसे भोग करनेवाला ऐसे मनुष्योंके तेरह प्रकारके रोग होते हैं ॥ ८ ॥ पांडु, कुष्ठ, राजरोग, अतीसार, प्रमेह, मूत्ररोग, पथरीरोग, मूत्रकृच्छ्र, शूल, श्वास, खांसी, शोजा, घाव ये पापरूपरोग तिन मनुष्योंके उपजते हैं ॥ ९ ॥ और ज्वर, अजीर्ण, छर्दि, भ्रम, मोह, मंदाग्नि, यकृत्रोग, तिल्लीरोग, बवासीर, शोष, ये उपरोग कहाते हैं ॥ १० ॥ घाव, शूल, शिरका शूल, शरीरके ऊपरले अंगोंमें प्राप्त हुआ रक्तपित्त-ये रोग हे महाप्राज्ञ ! अभिशापसे होते हैं ॥ ११ ॥ अन्यभी बहुतसे रोग दोषोंसे उपजते हैं इसवास्ते विस्तारसे मैं कहूंगा हे महामते ! तू सुन ॥ १२ ॥

अथ कर्मविपाक ।

ब्रह्मघ्नो जायते पाण्डुः कुष्ठी गोवधकारकः ॥ राजघ्नो राजयक्ष्मी स्यादतिसार्य्योपघातकः ॥ १३ ॥ स्वाम्यङ्गनाभिगमने मेहा रोगा भवन्ति हि ॥ गुरुजायाप्रसङ्गेन मूत्ररोगोऽश्मरीगदः ॥ १४ ॥ स्वकुलजाप्रसङ्गाच्च जायते च भगन्दरः ॥ शूली परोपतापी च पैशून्याच्छ्वासकासिनः ॥ १५ ॥ मार्गे विघ्नकरा ये तु जायन्ते पादरोगिणः ॥ अभिशापाद्व्रणोत्पत्तिर्यकृद्वापि प्रजायते ॥ १६ ॥ सुरालये जले चापि शकृद्वृष्टिं करोति यः ॥ गुदरोगा भवन्त्यस्य पापरूपातिदारुणाः ॥ १७ ॥ परतापिद्विजानाञ्च जायन्ते हि

महाज्वराः ॥ परान्नविघ्नजननादजीर्णमपि जायते ॥ १८ ॥ गरदश्छर्दिरोगी स्यात्पादाष्टविभ्रमी तथा ॥ धूर्त्तोऽपस्माररोगी स्यात्कदन्नदेऽग्निमान्द्यकं ॥ १९ ॥ यकृत्प्लीहो भवेद्रोगो भ्रूणपातकपातकात् ॥ व्रणं शूलं शिरःशूलं परतापोपकारणात् ॥ २० ॥ अपेयपानरतको रक्तपित्ती प्रजायते ॥ दावाग्निदायको यस्तु जायते च विसर्पवान् ॥ २१ ॥ बहुवृक्षोपच्छेदी च जायते च बहुव्रणः ॥ परद्रव्यापहाराच्च जायते ग्रहणीगदः ॥ २२ ॥ कुनखी स्वर्णस्तेयाच्च प्रसूतिस्तस्य जायते ॥ रौप्यस्तेयाच्चित्रकुष्ठं ताम्रचौराद्विपादिका ॥ ॥ २३ ॥ त्रपुश्चौरः सिध्मलश्च मुखरोगी च सीसहृत् ॥ वर्वरो लोहचौरः स्यात्क्षारचौरोऽतिमूत्रलः ॥ २४ ॥ घृतचौरोऽन्त्ररोगी च तैलचौरोऽतिकण्डुकः ॥ एतैश्छिद्रैस्तु काणाक्षो वक्रोक्तो वक्रलोचनः ॥ २५ ॥ दोषवान्स्याच्छयावदन्तो दुष्टवाक्कुष्ठदूषणः ॥ रसनाशाज्जिह्वारोगी गोत्रहा लूतिकाव्रणी ॥ २६ ॥ एते चैव महादोषा अतो वक्ष्यामि निष्कृतिम् ॥ कृच्छ्रेण येन सिध्यन्ति पापरूपा इमे गदाः ॥ २७ ॥

ब्राह्मणको मारनेवाला पांडुरोगी होता है गायको मारनेवाला कुष्ठी होता है राजाको मारनेवाला राजरोगी होता है मनुष्यको मारनेमें सलाह देनेवाला अतीसाररोगी होता है ॥ १३ ॥ स्वामीकी स्त्रीसे भोग करनेसे प्रमेह रोग उपजता है और गुरुकी स्त्रीसे भोग करनेमें मूत्ररोग और पथरी रोग उपजता है ॥ १४ ॥ अपने कुलसे उपजी स्त्रीके संग भोग करनेसे भगंदर रोग उपजता है, पराये सुखको देख दुःखपानेवालाको शूलरोग होता है चुगली करनेसे श्वासरोग और खांसी उपजती है ॥ १५ ॥ मार्गमें विघ्न करनेवालोंके पैरोंमें रोग उपजता है अभिशापसे घावकी उत्पत्ति अथवा यकृत् रोग उपजता है ॥ १६ ॥ देवतोंके स्थानमें और पानीमें जो विष्ठाको गेरता है तिसके पापरूपी और दारुण ऐसे गुदाके रोग उपजते हैं ॥ १७ ॥ ब्राह्मणको दुःखदेनेसे महाज्वर उपजता है और पराये भोजनमें विघ्नको करनेसे अजीर्णरोग उपजता है ॥ १८ ॥ विषको देनेवालेके छर्दिरोग उपजता है अथवा वह रोगी घुटनोंसे आठ दिशातका भ्रमनेवाला होता है धूर्त मनुष्यके मृगीरोग उपजता है और कुत्सित अन्नको देनेवाला मन्दाग्निसे पीडित होता है ॥ १९ ॥ गर्भको गिरानेवाला यकृत्रोगसे और तिल्लीरोगसे पीडित होता है दूसरेको देख दुःख पानेसे घाव, शूल, शिरका शूल ये उपजते हैं ॥ २० ॥ नहीं पीनेके योग्य चीजको पीनेवाला रक्तपित्तसे पीडित होता है और वनमें अग्निको

लगानेवाला विसर्प्परोगी होजाता है॥ २१ ॥ बहुतसे वृक्षोंको छेदनेवाला बहुत घावोंसे पीडित होता है और पराये द्रव्यको हरनेसे ग्रहणी रोग उपजता है ॥ २२ ॥ सोनाकी चोरी करनेसे कुत्सितनखोंवाला होजाता है चांदीको चोरनेसे चित्रकुष्ठ उपजता है तांबाको चुरानेसे विपादिका कुष्ठ उपजता है ॥ २३ ॥ रांगको चुरानेसे खेपरोग होता है सीसाको चुरानेसे मुखरोग उपजता है लोहाको चुरानेसे वर्वर संज्ञक रोगको प्राप्त होता है क्षारको चोरनेवालाको अतिमूत्ररोग उपजता है ॥ २४ ॥ घृतको चोरनेसे आंतरोग होता है तेलको चोरनेसे खाजरोग उपजता है दूसरोंमें छिद्रको काढनेवाला नेत्रोंसे काणा होता है और टेढा बोलनेवाला टेढे नेत्रोंवाला होता है ॥ २५ ॥ दोषवालेके काले दंत होते हैं दुष्टकर्मको करनेवाला कुष्ठरोगी होताहै रसको नाशनेवाला जीभरोगी होता है गोत्रके मनुष्योंको नाशनेवाला भूत और घावसे पीडित होता है ॥ २६ ॥ ये सब महादोष हैं इस वास्ते इन्होंकी निष्कृतिको कहताहूं जिस कृच्छ्रसे ये पापरूपी रोग सिद्ध होते हैं ॥ २७ ॥

अथ पापदोषप्रतीकार।

गोदानं भूमिदानञ्च स्वर्णदानं सुरार्चनम् ॥ कृत्वा पश्चात्प्रतीकारं कुर्य्यात्पाण्डूपशान्तये ॥ २८ ॥ महापापेषु सर्वस्वं तदर्द्धमुपदोषजे ॥ आत्रेयाद्दशषष्ठांशात्कल्प्यं व्याधिवलाबलम्॥२९॥ नवषष्ठिकृतं कर्मकुष्ठरोगोपशान्तये ॥ गोहिरण्यप्रदानञ्च तथा मिष्टान्नभोजनम् ॥ ३० ॥ चतुर्विधं दानमिदं दत्त्वा कुर्य्यात्प्रतिक्रियाम् ॥ कदाचिदपि सिध्येत आयुषश्च बलक्रियाम् ॥३१॥ मेहे सुवर्णदानञ्च शूले श्वासे भगन्दरे ॥ आश्वानडुहदानेन श्वासकासाद्विमुच्यते ॥ ३२ ॥ ज्वरे चेश्वरपूजा च रुद्रजाप्यं समाचरेत् ॥ अतिपानान्नदानञ्च शस्त्रदानं भ्रमातुरे ॥ ३३ ॥ अग्निहोमं चाग्निमान्द्ये कन्यादानञ्च गुल्मके ॥ मेहाश्मरीविनाशाय लवणञ्च प्रदीयते ॥ ३४ ॥ बहुभोजनदानेन शूलरोगाद्विमुच्यते ॥ महाज्वरे शान्तिकञ्च सहस्रं गण्डुकं शिवम् ॥ ३५ ॥ स्नापयेत्तेन सिद्धिः स्याज्ज्वररोगाद्विमुच्यते ॥ घृतमधुप्रदानेन रक्तपित्तं प्रशाम्यति ॥ ३६ ॥ वनस्पतिसिञ्चनेन विसर्पात्परिमुच्यते ॥ विटपिसिञ्चनेनाऽथ नात्र याति बहुव्रणः ॥ ३७ ॥ चतुर्विधेन दानेन साध्यः स्याद्ग्रहणीगदः ॥ सुवर्णदानात्कुनखी

श्यावदन्तः सुखी भवेत् ॥ ३८ ॥ रौप्यदानाच्चित्रकुष्टं साध्यं वापि प्रदिश्यते ॥ सिध्मले त्रपुदानञ्च बर्बरे लोहदानकम् ॥३९॥ मुखव्रणे नागदानं गोदानं बहुपुन्नके ॥ नेत्ररोगे घृतं दद्यात्सुगन्धं नासिकागदे ॥ ४० ॥ तैलदानञ्च कण्डूके रसदानञ्च जिह्वके ॥ श्यावन्दतेन देवानां सत्कृतिः प्रविधीयते ॥ ओष्ठरोगेऽपि तद्वच्च लूतारोगे ददेत गाः ॥ ४१ ॥

गोदान, पृथिवीदान, सोनादान, देवतोंकी पूजा इन्होंको करके पीछे पांडुरोगकी शांतिके लिये चिकित्साको करै ॥ २८ ॥ महापापोंमें सर्वस्वका दान करै और उपदोषमें घरके धनसे आधा दान करै आत्रेयके मतसे व्याधिके बल और अबलको देख घरके धनसे सोलहवां हिस्सा दानको करे ॥ २९ ॥ कुष्ठरोगकी शांतिके लिने उनहत्तर ६९ प्रकारका कर्म्म करना लिखा है परंतु गाय और सोनाका दान और मिष्टअन्नका भोजन ॥ ३० ॥ इन चार प्रकारके दानोंको देकर पीछे कुष्ठकी चिकित्सा करनी क्योंकि आयुकी शेषतासे कदाचित् चिकित्सा सिद्धभी हो जाती है ॥ ३१ ॥ प्रमेह, श्वासरोग, खांसी, भगंदर, इनरोगोंमें सोनाका दान करना घोडा और बैलके दानको करनेसे मनुष्य श्वासरोग और खांसीसे छुटजाता है ॥ ३२ ॥ ज्वररोगमें महादेवकी पूजा और महादेवके स्तोत्रका पाठ करावै और भ्रमरोगमें पानीका और अन्नका दान श्रेष्ठ है ॥ ३३ ॥ मदाग्निमें अग्निमें होमकरै गुल्मरोगमें कन्याका दान करै और प्रमेह–तथा पथरीरोगको दूर करनेके लिये नमकका दान करना ॥ ३४ ॥ बहुतसे भोजनका दान करनेसे मनुष्य शूलरोगसे मुक्त होता है महाज्वरमें शांतिकर्म करावै और हजारधारावाले कलशेसे शिवको स्नान करावै ॥ ३५ ॥ तिससे सिद्धि होती है और महाज्वर दूर होता है घृत और शहदके दानसे रक्तपित्त दूर होता है ॥ ३६ ॥ वनस्पतिको सींचनेंसे विसर्परोग दूर होता है वृक्षको सींचनेसे घावरोग दूर होजाता है ॥ ३७ ॥ चार प्रकारके दानसे ग्रहणीरोग साध्य होजाता है सोनाके दानसे कुनखी और काले दंतोंवाला सुखी होता है ॥ ३८ ॥ चांदीके दानसे श्वित्रकुष्ठ साध्य कहा है सींपरोगमें रांगका दान और बर्बररोगमें लोहाका दान श्रेष्ठ है ॥ ३९ ॥ मुखके घावमें हस्तीका दान हित है और पापडीरोगमें गौका दान हित है नेत्ररोगमें घृतको देवै नासिकाके रोगमें सुगंधका दान करना ॥ ४० ॥ खाजमें तेलका दान और जीभके रोगमें रसका दान करना कालेदंतोंके रोगमें देवतोंका सत्कार करना और ओष्ठरोगमेंभी यही विधि है और लूतारोगमें गौका दान देना ॥ ४१ ॥

अथ अन्य ९ रोगोंका कारण ।

अन्यांश्च कथयिष्यामि मनुष्याणां शरीरगान् ॥ लज्जितः परनिन्दायां प्रतर्कैम काणगः ॥ ४२ ॥ सुरहा स्याद्रक्तनासः पक्षा-

घातेन पक्षहा ॥ वामनः स्वप्रशंसायां परद्वेष्टातिपिङ्गलः ॥४३॥ परस्य कृत्यकर्त्ता च जायते विकृतात्मकः ॥ एते महागदाश्चान्ये जायन्ते पापसम्भवाः ॥ ४४ ॥ यदिवात्र न सिध्येत्तु परभावो भवेन्न च ॥ अतो हि प्रायश्चित्तं तु कारयेद्भिषजां वरः ॥ ४५ ॥ भूयो जन्मान्तरे यावत्पापं रोग्यथ भुञ्जति ॥ प्रायश्चित्ते कृते वापि न पुनर्जायते भवे ॥ ४६ ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे द्वितीयस्थाने पापदोषप्रतीकारो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

मनुष्योंके शरीरमें प्राप्तहुये अन्य रोगोंकोभी कहूंगा पराई निंदा करनेवाला मनुष्य लाजवाला होता है दूसरेको तर्क करनेवाला मनुष्य काणा होता है ॥ ४२ ॥ गधाको मारनेवाला टेढी नासिकासे संयुक्त होता है दूसरेके पक्षको काटनेवाला मनुष्य अर्धांगरोगसे पीडित होता है अपनी प्रशंसा करनेमें मनुष्य वामनाकी योनीको प्राप्त होता है दूसरोंसे वैर करनेवाला मनुष्य अतिपिंग शरीरवाला होता है ॥ ४३ ॥ दूसरेके कृत्यको करनेवाला मनुष्य विकृत शरीरवाला होता है ये सब औरभी अन्य महारोग पापसे उपजनेवाले हैं ॥ ४४ ॥ जो रोग सिद्ध नहीं होवै तो वैद्यवरने प्रायश्चित्त कराना उचित है ॥ ४५ ॥ किये हुये पापको दूसरे जन्ममेंभी रोगी भोगता है परंतु प्रायश्चित्तके करनेमें फिर वह पापरूपी रोग नहीं उपजता है ॥ ४६ ॥

इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां द्वितीयस्थाने पापदोषप्रतीकारोनाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः २.

अथ स्वप्नाध्यायका वर्णन ।

आत्रेय उवाच ॥ शृणु पुत्र समासेन यथा वत्स प्रकाश्यते ॥ तथारिष्टपरिज्ञानं भेषजं संप्रवक्ष्यते ॥ १ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—हे पुत्र! विस्तारसे सुन जैसे प्रकाशिताकिया जाता है और अरिष्टके परिज्ञानको और औषधको कहूंगा ॥ १ ॥

अथ वर्ज्य स्वप्न ।

वातिकः पैत्तकश्चैव भयाद्धीनबलादपि ॥
मूत्रान्विष्टे सपित्ते च षट्स्वप्नानि च वर्जयेत् ॥ २ ॥

वात, पित्त, भय, हीनबल, मूत्रकी शंका, पित्तका संयोग--इन्होंके संयोगसे उपजे ये छः स्वप्न वर्जित हैं ॥ २ ॥

अथ कालसे स्वप्नफल ।

संवत्सरेण फलदो हि भवेन्निशायां यामे तु दृष्टःप्रथमे फलदः शुभस्य ॥ स्याद्वत्सरार्द्धमतियाममथ द्वितीये मासत्रयेण फलदो भवति तृतीये ॥ ३ ॥ निशावसाने प्रवदन्ति किञ्चिद्दशाहकः स्यात्फलदो मनुष्ये ॥ वर्षादिने स्यात्तमुशान्ति शान्ताः षाण्मासिको मध्यदिने प्रदिष्टः ॥ ४ ॥

रात्रिके प्रथम पहरमें आया स्वप्न एक वर्षमें शुभफलको देता है और दूसरे पहरमें आया स्वप्न छः महीनोंमें फलको देता है और तीसरे पहरमें आया स्वप्न तीन महीनोंमें फलको देता है ॥ ३ ॥ रात्रिके अंतमें आया स्वप्न दश दिनमें फलको देता है और वर्षामें दुपहरीके समय आया स्वप्न छः महीनोंमें फलको देता है ॥ ४ ॥

अथ स्वप्नमें शुभद्रव्य ।

स्वप्नेषु शुभ्राणि शुभानि धीराः सर्वाणि चेमानि विवर्जयित्वा ॥ कार्पासभस्मास्थिकपालशूलं कुर्य्यान्नराणां विपदं रुजं वा ॥ ५ ॥

सब श्वेतपदार्थ स्वप्नमें दीखे शुभ कहेहैं इनके सिवाय कपास, भस्म, हड्डी, खोपरी, इन्होंका दर्शन स्वप्नमें होवै तो मनुष्योंको दुःख अथवा रोग उपजता है ॥ ५ ॥

अथ अशुभद्रव्य ।

सर्वाणि कृष्णानि विनिन्दितानि स्वप्ने नराणां विपदं रुजं वा ॥ कुर्वन्ति चैतानि हि वर्जयित्वा गोवाजिराजद्विजहस्तिमत्स्यान् ॥ ६ ॥

और स्वप्नमें सब प्रकारकी काली चीज निंदित है जो स्वप्नमें काली चीज दीखजावै तो मनुष्योंको दुःख अथवा रोग उपजता है सिवाय इनके काली गौं घोडा राजा ब्राह्मण हाथी और मत्स्य ये शुभ हैं ॥ ६ ॥

अथ शुभ स्वप्नोंका वर्णन ।

मुकुरकुसुमशृङ्गारातपत्रं ध्वजं वा दधि फलमथ वस्त्रं चान्नताम्बूलवस्त्रम्।कमलकलशशङ्खं भूषणं काञ्चनस्य भवति सकलसंपच्छ्रेयसे रोगिणाञ्च ॥ ७ ॥

शीशा, फूल, शृंगार, छत्र, ध्वजा, दही, फल, वस्त्र, अन्न, नागरपान, कमल, कलश शंख, सोनाका, गहना, इन्होंको स्वप्नमें देखना सब प्रकारका सुख और रोगियोंको कल्याण प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

अथ शुभस्वप्न।

दिनकरनिशिनाथं मण्डलं तारकस्य विकचकमलकुञ्जैः पूर्णपद्माकरं वा ॥ तरति सलिलराशिप्रौढनद्याश्च पारं घनसुखविभवाप्तिर्व्याधिनां रोगमुक्तिः ॥ ८ ॥ देवो द्विजो वा पितरो नृपो वा स्वप्नेषु वाक्यं वदते यथैव ॥ तथैव नान्यच्च भवेन्मनुष्ये यद्यस्य सौख्यं विपदो रुजो वा ॥ ९ ॥ गोवाजिकुञ्जरनृपाः सुमनः प्रशस्तं स्वप्नेषु पश्यति नरः सरुजः सुखाय ॥ रोगान्वितश्च रुजनाशनसम्भवाय बद्धोऽपि वै संपदि बन्धविमोचनाय ॥ ॥ १० ॥ यो भूषणं पश्यति मन्दिरं वा कन्यां दधि मीनकुमारकं वा ॥ सपुष्पवल्लीफलितं द्रुमं वा स्वस्थे धनाप्तिं रुजनाशनाय ॥ ११ ॥ स्वप्ने पयःपानमतिप्रशस्तं पानं सुराया अजभोजनं वा ॥घृतं यवागूःकृसरोदनं वा क्षैरेयिकं भोजनकं सुखाय ॥ १२ ॥ सितो भुजङ्गो दशति कराग्रे नरस्य सुप्तस्य शरीरकेषु ॥ पुत्रस्य लाभं वदते धनं वा नाशं विदध्यादचिराद्रुजां वा ॥ ॥ १३ ॥ सश्वेतवस्त्रां रमणीं सुरम्यां स्वप्ने समालिङ्गति यो मनुष्यः ॥ तस्य प्रकर्षेण सुखं श्रियः स्यात्सुपुत्रलाभश्च रुजां विनाशः ॥ १४ ॥ यो धान्यपुञ्जं तिलतण्डुलानां गोधूमसिद्धार्थयवादिकानाम् ॥ धान्याप्तिरस्यामयनाशहेतुः स्वप्नेषु शीघ्रं मनुजे सुखाय ॥१५॥ सफले धनसम्पत्तिर्दीने रोगविनाशनम् ॥ सुखञ्च पुष्पिते ज्ञेयं सम्पूर्णे वाञ्छितं फलम् ॥ १६ ॥

और सूर्य, चंद्रमा तारागण इन्होंके मंडलको देखै और खिलेहुये कमलोंके समूहसे पूरितहुवे तालाबको देखै और पानीके समूहसे भरीहुई नदीको तिरै और नदीसे पार हो तो धन तथा सुखकी प्राप्ति हो और रोगको गया जानना ॥ ८ ॥ देवता, पंडित, पितर, राजा, ये सब स्वप्नमें वाक्यको कहदेवैं तैसेही मनुष्यको होता है चाहै सुखः हो चाहै दुःख हो या रोग हो ॥ ९ ॥ गौ, घोडा, हस्ती, राजा, फूल, इन्होंको जो मनुष्य स्वप्नमें देखता है तिसरोगीको सुख होता है और इसस्वप्नको देखनेसे बंधमें प्राप्तहुआ मनुष्य शीघ्र छूट जाता है ॥ १० ॥ जो मनुष्य स्वप्नमें गहनाको और मंदिरको देखता है अथवा

कन्या, दही, मछली, बालक, इन्होंको देखता है अथवा फूल और व बेलसे फलित हुये वृक्षको देखै ये स्वप्न स्वस्थ मनुष्यको आवै तो धनकी प्राप्ति होवै और रोगीमनुष्यके रोगका नाश होवै ॥ ११ ॥ स्वप्नमें दूधका पीना अतिश्रेष्ठ है मदिराका पीना अथवा बकराके मांसका भोजन, घृत, गुडयाणी, खीचडी, चावल, दूधका भोजन इन्होंको स्वप्नमें देखै तो सुखकी प्राप्ति होवै ॥ १२ ॥ मनुष्यका दाहिने हाथके अग्रभागको अथवा शरीरको सपेद सर्प सोते-हुये डसता है ऐसे स्वप्नसे पुत्रका और धनका लाभ होता है अथवा शीघ्रही रोगका नाश होता है ॥ १३ ॥ सपेद-वस्त्रोंवाली और रमणीक और सुंदर ऐसी स्त्रीसे जो मनुष्य मिलाप करता है तिसको अत्यंत स्त्रीं सुख और धनकी प्राप्ति होती है और पुत्रका लाभ और रोगोंका नाश होता है ॥ १४ ॥ जो मनुष्य तिल, चावल, गेहूं, सरसों, जव, अन्नका समूह इन्होंको स्वप्नमें देखता है तिसको अन्नकी प्राप्ति और रोगका नाश होता है और सुखभी मिलता है ॥ १५ ॥ जो मनुष्य स्वप्नमें फलकरिकै सहित वृक्षको देखै, तो उसको धनसंपत्ति प्राप्त होती है. और जलताहुआ देखे तो रोगका नाश होता है. पुष्पकरिकै युक्त वृक्षको देखैं तो सुख होता है. और पत्र, पुष्प, फल और शाखा आदिकोंकरिकै युक्त वृक्षको देखैं तो मनवांछित फल मिलता है ॥ १६ ॥

अथ अशुभस्वप्नोंका वर्णन।

काकैः कङ्कैः करभभुजगैः सूकरोलूकगृध्रैर्जम्बूकैर्वा वृकखरमहिष्यातिरक्षैः श्वभिश्च ॥ व्याघ्रैर्ग्राहैर्मकरकपिभिर्भक्ष्यमाणं स्वकायं पश्येद्योऽसौ भजति नितरां हानिमापद्रुजं वा ॥ १७ ॥ योऽभ्यञ्जितं स्वं मनुजः प्रपश्येत्सर्पिर्वसातैलविशेषणेन ॥ शीघ्रं रुजार्तिर्भवतीह तस्य वदन्ति धीरा निपुणं विधेयम् ॥ १८ ॥ व्याघ्रोष्ट्रखरसंयुक्ते रथे सौरभसंयुते ॥ उह्यमानो दिशं याम्यां गच्छेच्च स मृतिं भजेत् ॥ १९ ॥ रक्तवस्त्रां कृष्णवस्त्रां मुक्तकेशां विसर्पिणीम् ॥ याम्यां स्थितां रुदन्तीं वा गायन्तीमथ पश्यति ॥ २० ॥ अथाह्वयति संक्रुद्धां समालिङ्गति चर्वति ॥ यः पश्यति सुखी स स्याद्व्याधितो मृत्युमृच्छति ॥ २१ ॥ यस्य स्वप्ने च निष्कुष्टदन्तपातः प्रदृश्यते ॥ शीर्य्यन्ते केशरोमाणि स सुखी चापदं व्रजेत् ॥ २२ ॥ यस्य खट्वा प्रभज्येत तोमरादिप्रहारतः ॥ रक्तश्च दृश्यते देहे सस्वस्थो व्याधिमृच्छति ॥ २३ ॥ शून्यागारं

पश्यति यो मनुष्यः प्रासादं वा देवहीनञ्च पश्येत् ॥ तापश्चान्द्रे पुष्पितानां द्रुमाणां तस्यानिष्टं मृत्युमाशु प्रपद्येत् ॥ २४ ॥ विपश्येन्नरोभिन्नदेवं घटं वाथवा भग्नशाखं तरुं मन्दिरं वा ॥ विशीर्णं विपश्येत्सुखी व्याधिपुंजं प्रपद्येद्रुजाग्रस्त आशु म्रियेत ॥२५॥ यस्याह्वयन्ति पितरो दिशि दक्षिणस्यामाश्रित्य चाशु तनुते मनुजस्य मृत्युम् ॥ यस्यास्ति शूललकुटोद्यतपाशपाणिराह्वयति स मृतिमाशु तनोति कष्टम्॥२६॥ कार्पासभस्मास्थिकपालशूलं चक्रञ्च पाशञ्च स्वप्ने प्रपश्येत् ॥ तस्यापदो रोगधनक्षयौ वा रोगी मृतिं वा तनुतेऽतिकष्टम् ॥ २७ ॥ इति प्रदिष्टानि शुभानि तानि निशासु सुप्ते मनुजे विशेषात् ॥ तथाशु विज्ञाय महामते ! त्वं गदस्य नाशाय विधेहि मन्त्रम् ॥ २८ ॥ स्नानञ्च दानञ्च सुरार्चनञ्च होमं तथा भाग्यविधानतश्च ॥ दुःस्वप्नमेतेषु विनाशमेति शुभञ्च सौख्यञ्च तनोति शीघ्रम् ॥ २९ ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे द्वितीयस्थाने स्वप्नाध्यायो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

काक, कंक, ऊंट, सर्प, सूकर, उल्लू, गीध, गीदड, भेडिया, गधा, भैंसा, तिरखू, कुत्ता, [illegible], ग्राह, मच्छ, वानर, इन्होंसे भक्षित हुये अपने शरीरको देखै तिसको हानि, दुःख, रोग, इन्होंकी प्राप्ति होती है ॥ १७ ॥ जो मनुष्य अपने शरीरको घृत, वसा, तेल, इनआदिसे भीजाहुआ देखै तिसको रोगकी प्राप्ति शीघ्र होती है ऐसे वैद्योंने कहा है वहां अरिष्टनाशकशांति वगैरह करै ॥१८॥ सिंह, ऊंट, गधा, बैल–इन्होंसे जुडेहुये रथमें बैठके जो मनुष्य दक्षिणदिशाको गमन करै तिसकी मृत्यु जानना ॥ १९ ॥ रक्तवस्त्रोंको पहननेवाली और कृष्णवस्त्रोंको पहननेवाली और छुटेहुये वालोंवाली और दौडतीहुई और दक्षिणदिशामें स्थित हुई और रोती हुई ऐसी स्त्रीको जो देखता है ॥ २० ॥ और क्रोधको प्राप्तहुई तिस स्त्रीको बुलाता है अथवा तिससे मिलता है ऐसा स्वप्ना सुखीको आवै तो रोगकी उत्पत्ति होती और रोगीको आवै तो वह रोगी मरजाता है ॥ २१ ॥ स्वप्नमें जिस सुखी मनुष्यके दंत, बाल, रोम, ये गिर पडैं तिसके रोगकी उत्पत्ति होती है ॥ २२ ॥ जिस सुखी मनुष्यकी स्वप्नमें शय्या टूटजावै और भालाआदि शस्त्रके प्रहारसे देहमें रक्त दीखै वह मनुष्य व्याधिको प्राप्त होता है ॥२३॥ शून्य हुये स्थानको और देवतासे रहित मंदिरको जो स्वप्नमें देखै और जो स्वप्नमें चंद्रमामें तापको और फूले हुये वृक्षोंमें तापको देखै तिस मनुष्यकी शीघ्र मृत्यु कही है ॥ २४ ॥ जो

मनुष्य स्वप्नमें देवतासे रहित मंदिरको और पानीसे रहित कलशको और टूटीहुई शाखाओं-वाले वृक्षको देखै अथवा स्थानके नाशको देखै तब रोगी मनुष्यकी मृत्यु होजाय और सुखी मनुष्य रोगको प्राप्त होवै ॥ २५ ॥ स्वप्नमें जिसको दक्षिणदिशामें आश्रितहुये पितर बुलातेहों तब तिस मनुष्यकी मृत्यु जानो और जिसको स्वप्नमें शूल, लाठी, फांसी, इन्होंको हाथमें धारनेवाला मनुष्य बुलाता है तब तिसकी शीघ्र मृत्यु जाननी ॥ २६ ॥ जो स्वप्नमें कपास, हड्डी, भस्म, खोपरी, शूल, चंक, फांसी, इन्होंको देखै तिस मनुष्यके रोग, दुःख, धनका नाश—ये उपजते हैं और ऐसा स्वप्न रोगीको आवै तो मृत्यु अथवा अत्यंत कष्ट होता है॥२७॥ रात्रिमें सोतेहुये मनुष्यको विशेषकरकै ऐसे अशुभ स्वप्नभी कहे है. हे महामते ! तैसेही जानकै रोगके नाशके लिये मंत्रविधिको करना उचित है ॥ २८ ॥ स्नान, दान, देवताकी पूजा, होम, इन्होंसे भाग्यके विधान करकै दुःस्वप्न नाशको प्राप्त होता है शुभ और सुख शीघ्र प्राप्त होता है ॥ २९ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिता-भाषाटीकायां द्वितीयस्थाने स्वप्नाध्यायो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

अथ स्वास्थ्यारिष्टम् ।

आत्रेय उवाच ।

शृणु पुत्र ! महाप्राज्ञ ! सर्वदेहार्थसाधकम् ॥
वैद्यशास्त्रस्य सारं यत्स्वास्थ्यारिष्टञ्च मानवे ॥ १ ॥

अथ स्वस्थमनुष्यको अरिष्टवर्णन—आत्रेयजी कहते हैं—हे महाप्राज्ञ ! हे पुत्र ! संपूर्ण देहके प्रयोजनको साधनेवाला और वैद्यकशास्त्रका सार ऐसे स्वस्थमनुष्यके अरिष्टको सुन ॥ १ ॥

अथ ध्रुवादिक न देखनेका अरिष्ट ।

यो न पश्येद् ध्रुवं सम्यक्स्वर्णं वा मनुजो बुधः ॥
तस्य षण्मासमध्ये तु मृतिश्चैवोपपद्यते ॥ २ ॥

जो मनुष्य ध्रुवताराको अथवा ध्रुव अर्थात् नासिकाके अग्रभागको और सोनाको अच्छी-तरह नहीं देखता है तिसका छः महीनोंके मध्यमें मृत्यु होता है ॥ २ ॥

अथ द्वितीयाचंद्रका अदर्शनका अरिष्ट ।

यो वै द्वितीयां हिमधामलेखां नरो न पश्येद्द्विजहानिरस्य ॥
मासत्रयं प्राप्य शरीरमाशु जीवो व्रजेत्तस्य यमस्य लोकम् ॥ ३ ॥

जो मनुष्य किरणोंसे व्याप्तहुआ द्वितीयाका चंद्र नहीं देखै और जिसके दंत गिर पडैं तिस मनुष्यका तीन महीनोंमें मृत्यु जानना ॥ ३ ॥

अथ कर्णघोष न सुननेका अरिष्ट।

यः कर्णघोषं न शृणोति हृष्टा मृताश्च यूकाः प्रपतन्ति लाभात् ॥
यो वैपरीत्यं विशृणोति शब्दं मासद्वयं प्राप्य जहाति जीवम् ॥ ४ ॥

जो मनुष्य कानमें शब्दको न सुनै और गर्वितहुई और मृतहुई जूम और लीख शरीरमें पडजावै और जो विपरीतपनेसे शब्दको विशेष करकै सुनैं वह दो महीनोंमें मृत्युको प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

अथ मुखश्वासादिकका अरिष्ट।

यः स्वस्थदेहः श्वसते मुखेन नेत्रेऽरुणे श्यावमथैव वक्त्रम् ॥
जिह्वा विशीर्णा दशनाश्च कृष्णाःस्वस्थोऽपि शीघ्रं यमलोकगन्ता५

जो स्वस्थ शरीरवाला मनुष्य मुख करकै श्वासको लेवै और लालनेत्र होजावै और काला-मुख हो जावै और फटीहुई जीभ होजावै और काले दंत होजावै ऐसा स्वस्थ मनुष्यभी मृत्युको प्राप्त होजाता है ॥ ५ ॥

अथ प्रभातमें मस्तकशूलका अरिष्ट।

यस्य प्रभाते च शिरोव्यथा स्याद्दीपे परीवेषमवेक्ष्यमाणः ॥
विपश्यते यः पटलश्च रेणोः स वै मृतिं याति न दीर्घमायुः ॥ ६ ॥

जिसके प्रभातमें शिरमें पीडाहो और जो दीपककी ज्योतिमें मंडलको देखै और जो आकाशमें धूलीके समूहको विशेष करकै देखै वह शीघ्र मरजाता है ॥ ६ ॥

अथ सूर्यबिंबादिकके दर्शनका अरिष्ट।

यः सूर्य्यबिम्बे शशिनं प्रपश्येद्विना परीवेषमवेक्ष्यमाणः ॥
धूमावृतं वा रविमण्डलञ्च प्रपश्यते शीघ्रमृतिं स गन्ता ॥ ७ ॥

जो सूर्य्यके बिंबमें चंद्रमाको देखै और विनाचंद्रहुयेही मंडलको देखै और धूमासे आच्छा-दितहुआ सूर्यका मंडल दीखै तिसकी शीघ्र मृत्यु जानना ॥ ७ ॥

अथ इंद्रधनुष्य देखनेका अरिष्ट।

स्वस्थे निरभ्रे गगने च पश्येद्यः शक्रचापं विदिशादिशासु ॥
तथैव विद्यान्नयनाग्रतो यः स शीघ्रमेव यमलोकगन्ता ॥ ८ ॥

जो स्वस्थ और वादलोंसे रहितहुये आकाशमें और दिशा तथा विदिशाओंमें इंद्रके धनु-षको देखै अथवा नेत्रोंके आगे इन्द्रके धनुषको देखै वह मृत्युको प्राप्त होता है ॥ ८ ॥

अथ विपरीत देखने सुननेका आरिष्ट ।

यो नेत्रे मीलितेऽपि द्युतिमथ चपलां पश्यते यः पुरस्तात्कर्णे रन्ध्रं निरुध्याद्ध्वनिमथ मनुजो न शृणोति कथञ्चित् ॥ ९ ॥ तिक्तादीनां रसानां कथमपि रसनास्वादमात्रं न वेत्ति रौद्रं वैवस्वतस्य प्रतिगमनमथो पश्यते मानुषश्च ॥ १० ॥

जो मीलेहुये नेत्रोंमें भी अपने आगे चपलरूपी ज्योतिको देखै और जो कानके छिद्रको रोकलेवै और जो कदाचित् ध्वनिको न सुनै और जो कडुआ आदि रसोंके स्वादमात्रको नहीं जानै वह मनुष्य मृत्युको प्राप्त होता है ॥ ९ ॥ जिस मनुष्यका शरीर अत्यंत गरम और शीतल और कोयलेसे संयुक्त ऐसा होजावै और शीतको जानै नहीं और शीतलपानीके छिडके देनेमें रोमहर्ष होवै नहीं वह मनुष्य मर जाता है ॥ १० ॥

अथ शरीरके स्पर्शसे अरिष्टकथन ।

यस्यात्युष्णं शरीरं शिशिरमथ मनूजस्य यस्याविलश्च शीतं नो चेति यस्य हिमजलसिकते रोमहर्षो न यस्य ॥ दण्डाघातेन राजा न भवति स पुनः श्राद्धदेवस्य लोके लोकानां दर्शनाय द्रुतमतिरुचिरां स्वस्थतां न प्रयाति ॥ ११ ॥

जिस मनुष्यका शरीर अतिशय गरम होय, और तुरंतही ठंढा होजाय, जो पुरुष ठंढीके और गर्मीको जानसक्ता नहीं, जिस मनुष्यके शरीरको शीतलजलके बिन्दुओंका या ठंढेवीलूरेतका स्पर्श होनेसे रोमांच नहीं खडे रहते हैं और दंड (वेत) मारनेसे रेखा न हो तौ वह मनुष्य यमराजके लोकको देखनेके वास्ते जल्दी करता है. और अत्यंत सुन्दर ऐसे स्वस्थताको वह पुरुष प्राप्त नहीं होता है ॥ ११ ॥

अथ प्रतिबिंब न देखनेसे अरिष्ट ।

तैले जले दर्पणके घृते वा परस्य नेत्रे प्रतिविम्बमात्मनः ॥ पश्येन्न योऽसौयमलोकगन्ता जानीहि तं जीवविहीनमेव ॥ १२ ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे द्वितीयस्थाने स्वास्थ्यारिष्टं नाम तृतीयोऽध्यामः ॥ ३ ॥

जो मनुष्य तेल, पानी, शीशा, दूसरोंके नेत्र, इन्होंमें अपने प्रतिबिंबको नहीं देखता है तिसकी मृत्यु जाननी ॥ १२ ॥ इतिबेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां स्वास्थ्यारिष्टं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ४.



अथ व्याध्यरिष्टका लक्षण।

आत्रेय उवाच॥ उपद्रवैश्च ये पुष्टा व्याधयो यान्ति वार्य्यताम्॥ रसायनादिना वत्स! तान्मकैकमनाः शृणु॥ १॥

उपद्रवोंसे युक्तहुये रोग रसायन आदिसे निवारण किये जाते हैं हे पुत्र! तिन रोगोंको एकमनवाला होके सुन॥ १॥

अथ अष्टमहाव्याधियोंका नाम।

वातव्याधिः प्रमेहश्च कुष्ठमर्शो भगन्दरम्॥ अश्मरी मूढगर्भश्च तथा चोदरमष्टमम्॥ २॥ अष्टावेते प्रकृत्यैव दुश्चिकित्स्या महागदाः॥ ३॥

वातव्याधि, प्रमेह, कुष्ठ, बवासीर, भगंदर, पथरी, मूढगर्भ, आठवाँ उदररोग॥ २॥ ये आठों प्रकृति करके महारोग दुश्चिकित्स्य है॥ ३॥

अथ आठमहारोगोंके उपद्रव।

प्राणमांसक्षयश्वासतृष्णाशोषवमिज्वरैः॥ मूर्च्छातिसारहिक्काभिः पुनरेतैरुपद्रुताः॥ ४॥ वर्जनीया विशेषेण भिषजा सिद्धिमिच्छता॥ ५॥

बलक्षय, मांसक्षय, श्वासरोग, तृषा, शोष, छर्दि, ज्वर, मूर्च्छा, अतीसार, हिचकी, इन उपद्रवोंसे युक्तहुये पूर्वोक्त महारोग॥ ४॥ सिद्धिकी इच्छा करनेवाले मनुष्यने वर्ज्जने चाहिये॥ ५॥

अथ ज्वररोगीके अरिष्ट।

यस्य जिह्वा भवेत्तीव्रा पीता वा नीलसम्भवा॥ श्वासो भवत्यतीवोष्णः शरीरं पुलकाङ्कितम्॥ ६॥ नीलनेत्रेऽरुणे पीते कण्ठो घुरघुरायते॥ न जीवति ज्वरार्त्तस्तु लक्षणं यस्य चेदृशम्॥ ७॥ मुखे श्वासो भवेद्यस्य श्यावा दन्तावली पुनः॥ स्तब्धनेत्रो बलाढ्यः स्याज्ज्वरार्तो नैव जीवति॥ ८॥ बहुमूत्री बहुश्वासी क्षामोऽरोचकपीडितः॥ हतप्रभेन्द्रियो यश्च ज्वरी

शीघ्रं विनश्यति ॥ ९ ॥ यस्यास्ये श्रूयते रक्तं शिरोऽर्त्तिर्यस्य दृश्यते ॥ अन्तर्दाहो बहिःशीतो ज्वरस्तु मृत्युमृच्छति ॥ १० ॥ यस्ताम्यति विसंज्ञस्तु शेते विपतितोऽपि वा ॥ शीतार्दितोऽन्त रुष्णश्च ज्वरेण म्रियते नरः ॥ ११ ॥ यो हृष्टरोमा रक्ताक्षो हृदि सञ्जातशूलवान् ॥ नित्यश्च वक्त्रेणोच्छ्वासः स ज्वरो हन्ति मानवम् ॥ १२ ॥ हिक्काश्वासपिपासार्त्तं मूढं विभ्रान्तलोचनम् ॥ सन्ततोच्छ्वासिनं क्षीणं नरं क्षपयति ज्वरः ॥ १३ ॥ आविलाक्षं प्रताम्यश्च तन्द्रायुक्तमतीव च ॥ क्षीणशोणितमांसश्च नरं नाशयति ज्वरः ॥ १४ ॥ घनं निष्ठीवनं नेत्रं प्लावारोचकपीडितम् ॥ अन्तर्दाहोऽसिता जिह्वा शीघ्रं नाशयति ज्वरः ॥ १५ ॥

जिसकी खुर्दरी और पीली और नीली ऐसी जीभ हो जावै और अत्यंत गरम श्वास आवै और हर्षित हुये रोमोंकरकै युक्त शरीर हो ॥ ६ ॥ नीले और लाल और पीले नेत्र होजावै और कंठ घुर्घुर करै ये लक्षण जिस ज्वररोगीके होवैं तिसका जीवना नहीं है ॥ ७ ॥ जिसके मुखमें शीघ्र श्वास आवै और दंतोंकी पंक्ति काली होजावै और स्तंभित नेत्र होजावै और धूलसे युक्त होजावै ऐसा ज्वरसे पीडित रोगी नहीं जीवता है ॥ ८ ॥ बहुत मूत्रको करनेवाला और बहुतश्वासको लेनेवाला और कृश और अरुचिसे पीडित और नष्ट हुई इंद्रियोंकी कांतिवाला ऐसा ज्वररोगी शीघ्र मरजाता है ॥ ९ ॥ जिसके मुखमें रक्त झिरै और जिसके शिरमें पीडा होवै और भीतर दाह और बाहिर शीत लगै ऐसे ज्वरवाला मरजाता है ॥ १० ॥ जो मोहको प्राप्त होवै और संज्ञासे रहितहुआ सोवै अथवा निरंतर पतितहुआ जावै और बाहिर शीतसे और भीतर गर्मीसे पीडितहोवै ऐसा मनुष्य ज्वरसे मरजाता है ॥ ११ ॥ जो हर्षितहुये रोमोंवाला हो और लालनेत्रोंवाला हो और हृदयमें दारुण शूलवाला हो और निरंतर मुखसे ऊंचे श्वासको लेता हो ऐसा ज्वररोगी मरजाता है ॥ १२ ॥ हिचकी और श्वाससे पीडित और मूढ और विशेष करकै भ्रमते हुये नेत्रोंवाला और निरंतर ऊंचे श्वासको लेनेवाला और क्षीण-ऐसे रोगीको ज्वर मार देता है ॥ १३ ॥ ढूंढे अथवा धूम्रवर्णवाले नेत्रोंवाला और मोहको प्राप्त हुआ और तंद्रासे अत्यंत युक्तहुआ क्षीण हुये रक्त और मांसवाला ऐसे मनुष्यको ज्वर मार देता है ॥ १४ ॥ बहुत छर्दिवाला और नेत्रोंसे पानीको झिरानेवाला और अरोचकसे पीडित और भीतर दाह तथा काली जीभसे युक्त ऐसे मनुष्यको ज्वर शीघ्र मार देता है ॥ १५ ॥

अथ दारुण उपद्रवका अरिष्ट।

यश्चैकोपद्रवस्यार्त्तैः शाम्यता नोपदृश्यते ॥ दारुणोपद्रवाश्चान्ये भूयिष्ठं बहुरूपवान् ॥ १६ ॥ तेन मृत्योर्वशं याति सिद्धिं नेच्छति दारुणः ॥ १७ ॥

जिसके एक उपद्रवभी शांत नहीं होवै किंतु अन्यभी बहुतसे उपद्रव उपजते रहैं और बहुतसे रूपोंको धारण करै ॥ १६ ॥ ऐसा मनुष्य मृत्युकों प्राप्त होजाता है ॥ १७ ॥

अथ अतीसारका अरिष्ट।

यस्यादौ दृश्यते चैवाप्यतीसारस्तथापरः ॥ श्वासः शोषश्च यस्य स्यात्सोऽपि शीघ्रं मृतिं व्रजेत् ॥ १८ ॥ श्वासशूलपिपासार्त्तं क्षीणं ज्वरनिपीडितम् ॥ विशेषेण नरं वृद्धमतीसारो विनाशयेत् ॥ १९ ॥ यस्यातिसारशोफाः स्युस्तथारोचकशूलवान् ॥ सोऽपि शीघ्रं मृतिं याति बहुभिः प्रतिकर्मभिः ॥ २० ॥

जिसके आदिमें अतीसार उपजे पीछे श्वास और शोष उपजे वह मनुष्य शीघ्र मरजाता है ॥ १८ ॥ श्वास, शूल, तृष्णा, इनकरिकै पीडित, क्षीण, ज्वरसे त्रास पायाहुआ ऐसे वृद्ध-मनुष्यकी विशेषकरकै अतीसारसे अनिष्टकर देता है ॥ १९ ॥ जिसके अतीसार, शोजा, अरुचि शूल, ये उपजैं तिस मनुष्यकी बहुतसी चिकित्सा करनेसेभी मृत्यु होजाती है ॥ २० ॥

अथ सूजनका अरिष्ट।

बालस्य चातिवृद्धस्य विकलस्य नरस्य च ॥
सर्वाङ्गे जायते शोफः शोफी स म्रियते ध्रुवम् ॥ २१ ॥

बालक, अतिवृद्ध, विकल ऐसे मनुष्योंके संपूर्ण अंगमें शोजा उपजै तो वह निश्चय मर जाता है ॥ २१ ॥

अथ शूलका अरिष्ट।

यस्याध्मानश्च शूलश्च श्वासस्तृष्णा विमूर्छना ॥
शिरोऽर्त्तिर्यस्य दृश्येत शूली मृत्युमवाप्नुयात् ॥ २२ ॥

जिसके अफारा, शूल, श्वासरोग, तृषा, मूर्च्छा, शिरमें पीडा ये उपजैं तिसकी मृत्यु हो जाती है ॥ २२ ॥

पांडुरोगीका अरिष्ट ।

पाण्डुदन्तनखो यश्च पाण्डुनेत्रश्च मानवः ॥ पाण्डुसङ्घातवांश्चैव पाण्डुरोगी विनश्यति ॥ २३ ॥ पाण्डुत्वक्पाण्डुनेत्रे च मूत्रं वा पाण्डुरं भवेत् ॥ पाण्डुसंवातवांश्चैव पाण्डुरोगी विनश्यति॥२४॥

पीले दंत और नखोंवाला और पीले नेत्रोंवाला और पीलेपनको सब जगह देखै ऐसा पांडुरोगी नष्ट होजाता है ॥ २३ ॥ पीली खाल होवै पीले नेत्रहोवैं और मूत्रभी पीलाही होवै और पीलेपनको सब जगह देखै ऐसा पांडुरोगी मरजाता है ॥ २४ ॥

अथ क्षयरोगका अरिष्ट ।

शुक्लाक्षमन्नद्वेष्टारमूर्ध्वश्वासनिपीडितम् ॥ कृच्छ्रेण बहुमेहंतं यक्ष्मा हन्तीहमानवम् ॥ २५ ॥ धातुहीनो भवेद्यस्तु शोफश्वासैर्निपीडितः॥बहुभोज्यो घृणावांश्च राजयक्ष्मी विनश्यति२६॥

सफेदनेत्रोंवाला और अन्नसे वैर करनेवाला और ऊंचे श्वाससे निरंतर पीडितहुआ और कष्टसे बहुतवार मूत्रको करताहुआ ऐसा राजरोगी मरजाता है ॥ २५ ॥ धातुओंसे हीन हुआ शोजा और श्वाससे पीडितहुआ और बहुतसे भोजनको करताहुआ और दयावाला ऐसा राजरोगी मरजाता है ॥ २६ ॥

अथ श्वासरोगका अरिष्ट ।

हुंकारः शीतलो यस्य फूत्कारस्योष्णता भवेत् ॥ शीघ्रनाडी न निर्वाहः शीघ्रं याति यमालयम् ॥ २७ ॥ अङ्गकम्पो गतेर्भङ्गो मुख वा कुङ्कुमप्रभम् ॥ उच्चारे च भवेद्वायुः स च याति यमालयम् ॥ २८ ॥

जिसके मुखसे हाके निकसनेमें शीतलता होवै और फूत्कारमें गरमाईपना होवै और नाडी शीघ्र चलै चलनेकी सामर्थ्य नहीं होवै ऐसा रोगी शीघ्र मरजाता है ॥ २७ ॥ जिसके अंग कांपैं और चलाजावैं नहीं और केसरके समान मुख होजावै और दस्तजानेके समय वायु निसरै वह मरजाता है ॥ २८ ॥

अथ बहुतदिनतकके रोगका अरिष्ट ।

चिरं प्रवृद्धरोगस्तु भोजनेऽप्यसमर्थकम् ॥ भग्नगात्रमुपेक्षेत भेषजोऽप्यरहस्यकम् ॥ एतादृशं नरं ज्ञात्वोपचारः क्रियते बुधैः ॥ २९ ॥

बहुत दिनोंसे बढेहुये रोगवाला और भोजनको नहीं करनेवाला और भग्नहुये अंगोंको देखनेवाला और औषधको नहीं लेनेवाला ऐसे रोगीके जानिके उपचार करना ॥ २९ ॥

अथ उदररोगका अरिष्ट ।

विध्वंसश्वासशोफाच्च तथा ज्वरनिपीडनात् ॥
गम्भीरं सघनं तस्य तदुरः क्षयते नरम् ॥ ३० ॥

विष्ठाके क्षयसे, श्वास और शोजासे तथा ज्वरकी पीडासे गंभीर और कठिनहुई छाती तिसको मारदेती है ॥ ३० ॥

अथ गुल्मरोगका अरिष्ट ।

श्वासशूलपिपासार्त्तिर्विद्वेषो ग्रन्थिमूढता ॥
दुर्बलत्वञ्च भवति गुल्मिनो मृत्युमेष्यतः ॥ ३१ ॥

श्वास, शूल, अत्यंततृषा ये उपजैं और अन्नमें वैर रहै और गाढ तथा मूढपनाहों और दुर्बलपनाहो ऐसा गुल्मरोगी मरजाता है ॥ ३१ ॥

अथ रक्तपित्तका अरिष्ट ।

नेत्रे जिह्वाधरौ यस्य रक्तौ वा रुधिरं वमेत् ॥ रक्तमूत्री रक्तसारी रक्तपित्ती विनश्यति ॥ ३२ ॥ लोहितं छर्दयेद्यस्तु बहुशो लोहितेक्षणः ॥ रक्तानाञ्च दिशां द्रष्टा रक्तपित्ती विनश्यति ॥ ३३ ॥

जिसके जीभ, दोनोंओष्ठ, नेत्र, ये लाल होजावैं अथवा रक्तको झिरावै ऐसा रक्तमूत्रवाला और रक्तातीसारवाला और रक्तपित्तवाला मनुष्य मरजाता है ॥ ३२ ॥ जो लोहूकी छर्दि करै और बहुत करकै लालनेत्रोंवालाहो और लालरूपसे संयुक्तहुई दिशाओंको देखै ऐसा रक्तपित्तरोगी मरजाता है ॥ ३३ ॥

अथ बवासीररोगका अरिष्ट ।

मुखशोफो भवेद्यस्य भ्रमारोचकपीडितः ॥
विबन्धोदरशूली च उदयाच्च विनश्यति ॥ ३४ ॥

जिसके मुखपर शोजाहो भ्रम और अरुचिसे पीडितहो बंधा और उदरशूलसे संयुक्तहो ऐसा रोगी मरजाता है ॥ ३४ ॥

अथ विद्रधिरोगका अरिष्ट ।

आध्मानबद्धनिष्पन्दं छर्दिहिक्कारुगन्वितम् ॥
रुजाश्वाससमाविष्टं विद्रधिर्नाशयेन्नरम् ॥ ३५ ॥

जो अफारा हो, स्राव रुकजावे, और छर्दि, हिचकी, शूळ, इन्होंसे समन्वितहो और श्वासरोगसे संयुक्तहो ऐसे मनुष्यको विद्रधिरोग नाशता है ॥ ३५ ॥

अथ भ्रमरोगका अरिष्ट।

यस्य तृष्णा भवेद्धोरा दाहो वापि वमिर्भवेत् ॥
भ्रमोपपन्नो भवति न स जीवति मानवः ॥ ३६ ॥

जिसके दारुणतृषा और दाह तथा छर्दि उपजै और भ्रमसे संपन्नहो वह रोगी जीवता नहीं है ॥ ३६ ॥

अथ आर्तवका अरिष्ट।

अपूर्णे दिवसे नारी ज्वरार्त्ता पुष्पमाप्नुयात् ॥
सा न जीवेन्महाप्राज्ञ यस्या हि सारणो भवेत् ॥ ३७ ॥

जो ज्वरसे पीडितहुई नारी नहीं पूर्णहुये दिनमें पुष्प अर्थात् योनिसे रक्तके बहनेको प्राप्त होवै हे महाप्राज्ञ ! जो वह रक्त झिरताही रहै तो वह नारी जीवै नहीं ॥ ३७ ॥

अथ कामला और पांडुरोगका अरिष्ट।

यः शोफश्वाससंयुक्तस्तृष्णायुक्तोऽथ शूलवान् ॥
कामलापाण्डुरोगार्त्तो नरश्च स विपद्यते ॥ ३८ ॥

जो शोजा और श्वाससे पीडितहो तृषा और शूलसे संयुक्तहो कामला और पांडुरोगसे संयुक्तहो वह मनुष्य जीवता नहीं है ॥ ३८ ॥

अथ भगंदरका अरिष्ट।

वातमूत्रपुरीषाणि क्रिमयः शुक्रमेव च ॥
भगन्दरात्प्रस्रवन्ति यस्य तं परिवर्जयेत् ॥ ३९ ॥

जिसके भगंदरके घावसे अधोवात, मूत्र, विष्ठा, कीडे, वीर्य्य, ये झिरतेहों तिस रोगीको असाध्य जानो ॥ ३९ ॥

अथ अश्मरीरोगका अरिष्ट।

प्रसूननाभिवृषणं रुद्धमूत्रं रुगन्वितम् ॥
अश्मरी क्षपयत्याशु सिकताशर्करान्विता ॥ ४० ॥

नाभि और पोतोंपर शोजासे संयुक्तहो मूत्र रुकजावै शूल चलै ऐसे मनुष्यको पथरी, सिकता, शर्करा-ये रोग मारदेते हैं ॥ ४० ॥

अथ मूढगर्भका अरिष्ट ।

गर्भकोपसमापन्नो मकुष्टो योनिसंगतः ॥
हन्ति स्त्रियं मूढगर्भे यथोक्ताश्चाप्युपद्रवाः ॥ ४१ ॥

गर्भकोषमें समापन्नहुआ बालक योनिके छिद्रको बंधकरै और यथोक्त सब उपद्रवभी उपजैं तब मूढगर्भ स्त्रीको मारदेता है ॥ ४१ ॥

अथ अपस्माररोगका अरिष्ट ।

पार्श्वभंगान्नविद्वेषशोफातीसारपीडितम् ॥ बहुशोऽपस्मरन्तन्तु क्षीणञ्च वलितभ्रुवम् ॥ ४२ ॥ नेत्राभ्याञ्च विकुर्वाणमपस्मारो विनाशयेत् ॥ ४३ ॥

पसलीका भंग, अन्नसे वैर, शोजा, अतीसार—इन्होंसे पीडितहुआ और बहुतवार विस्मरणको प्राप्तहुआ और क्षीण और टेढी भ्रुकुटियोंवाला ॥ ४२ ॥ और नेत्रोंसे विकारको करता हुआ ऐसे मनुष्यको मृगीरोग मारदेता है ॥ ४२ ॥

अथ वातव्याधिका अरिष्ट ।

शूलं सुप्तत्वचं भग्नमाध्मानेन निपीडितम् ॥
रुजार्त्तिमन्तञ्च नरं वातव्याधिर्विनाशयेत् ॥ ४४ ॥

शूल और सोतीहुई खालसे संयुक्तहो और भग्नहो और अफारासे निरंतर पीडितहो और दुःखसे संयुक्तहो ऐसे मनुष्यको वातव्याधि नाशता है ॥ ४४ ॥

अथ प्रमेहका अरिष्ट ।

यथोक्तोपद्रवाविष्टमतिप्रस्रुतमेव च ॥
पिडकापीडितं गाढं प्रमेहो हन्ति मानवम् ॥ ४५ ॥

यथोक्त उपद्रवोंसे व्याप्तहो और अत्यंत झिरताहुआहो और फुन्सियोंसे अत्यंत पीडितहो ऐसे मनुष्यको प्रमेहरोग नाशता है ॥ ४५ ॥

अथ कुष्ठरोगका अरिष्ट ।

प्रभिन्नं प्रस्रुतांगञ्च रक्तनेत्रं हतस्वरम् ॥
पञ्चकर्मगुणातीतं कुष्ठं हन्तीह कुष्ठिनम् ॥ ४६ ॥

प्रभिन्नहुआ और झिरतेहुये अंगोंवाला और लालनेत्रोंवाला और नष्टहुवे स्वरवाला और वमन, विरेचन, नस्य, निरूहबस्ति, अनुवासनबस्ति, इनपंचकर्मोंके गुणोंसे वर्जित ऐसे कुष्ठिको कुष्ठरोग मारदेता है ॥ ४६ ॥

अथ उन्मादरोगका अरिष्ट।

अवाङ्मुखस्तून्मुखो वा क्षीणमांसबलोत्तरः॥ जागरूकस्त्वसन्देहमुन्मादेन विनश्यति ॥ ४७ ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे द्वितीयस्थाने व्याध्यरिष्टं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

नीचेको मुख रखनेवाला अथवा ऊपरको मुख रखनेवाला और क्षीणहुये मांसवाला और बलसे युक्तहुआ अथवा उत्तरोत्तर जिसका मांस और बल क्षीण होता जावे और दिन रात जागनेवाला ऐसा उन्मादरोगी निश्चय मर जाता है ॥ ४७ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां द्वितीयस्थाने व्याध्यरिष्टं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पंचमोऽध्यायः ५.

अथ पञ्चेन्द्रियविकारवर्णन।

आत्रेय उवाच ॥ यः शीलवान्क्रोधनतामुपैति यः क्रोधवाञ्छीलगुणञ्च धत्ते ॥ द्वावेव मृत्युं तनुतो विधिज्ञ स्थूलो नरः शीघ्रतरं कृशाङ्गः ॥ १ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—जो शीलवान् मनुष्य क्रोधपनेको प्राप्त होवै और जो क्रोधी मनुष्य शीलपनेको धारण करै हे विधिज्ञ ! ये दोनों मनुष्य मृत्युको शीघ्र प्राप्त होते हैं और जो मोटा मनुष्य शीघ्र माडा होजावै और माडा मनुष्य शीघ्र मोटा होजावै येभी दोनों मृत्युको प्राप्त होजाते हैं ॥ १ ॥

यो धर्मशीलो भवतीह पापी पापात्मको धर्मरतो यदि स्यात् ।
स मृत्युभाजी भवतीह शीघ्रं यश्च प्रकृत्या विकृतिं प्रयाति ॥ २ ॥

जो धर्मशील मनुष्य पापी होजावै और जो पापी धर्मको करने लगजावै और जो प्रकृति करकै विकारको प्राप्त होजावै ये मनुष्य शीघ्र मृत्युको प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

यो गौरवर्णो विदधाति कार्ष्ण्यं कृष्णोऽतिगौरत्वमुपैति यश्च ॥
तथा मृतिं याति नरः प्रकृत्या शीघ्रं विकृत्या भजते वियोगम् ॥ ३ ॥

जो गौरवर्णवाला मनुष्य काले वर्णको प्राप्त हो जावै और जो काले वर्णका मनुष्य गौरपनेको प्राप्त होजावै और जो अपनी प्रकृतिको शीघ्र त्याग देवै ऐसे मनुष्य शीघ्र मृत्युको प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

यो वैपरीतं श्रवणेऽपि शब्दं गृह्णाति वा न शृणुते स शीघ्रम् ॥ स वै मृतिं पश्यति यो न पश्येच्छायां स्वकीयां धरणीप्रपन्नाम् ॥ ४ ॥

जो शब्दको विपरीतपनेसे ग्रहण करै अथवा शब्दको नहीं सुनै और जो पृथिवीमें प्राप्त हुई अपनी छायाको नहीं देखै वे मनुष्य मृत्युको शीघ्र प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

यो वेन्द्रियैः प्रतिहतः कृशतां प्रयाति स्थूलोऽतिनिष्प्रभवपुर्मरणं विपश्येत् ॥ यो विस्रगन्धिश्च रसश्च क्वचिन्न वेत्ति स वै मृतिं प्रियतमां भजते मनुष्यः ॥ ५ ॥

जो इन्द्रियोंसे प्रतिहतहुआ कृशपनेको प्राप्त होजावै और जो कृशमनुष्य अत्यंत मोटेपनको प्राप्त होवै वह जिसका शरीर कृशपनेको प्राप्त होवै जो दुर्गंधको और रसको कहींभी नहीं जानै वह मृत्युको प्राप्त होता है ॥ ५ ॥

यस्यास्यगन्धमाघ्राय भजन्ते नीलमक्षिकाः ॥ नासिकायां शरीरे वा स चैव यमलोकगः ॥ ६ ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे द्वितीयस्थाने पञ्चेन्द्रियविकारो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

जिसके मुखके गन्धको सूँघकै नीलमक्षिका अर्थात् भौंरे नासिकामें अथवा शरीरमें वास करनेलगजावै तिसकी मृत्यु होती है ॥ ६ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्त-शास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां द्वितीयस्थाने पंचेंद्रियविकारो नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ६.

अथ नक्षत्रज्ञानवर्णन।

आत्रेय उवाच ॥ अथ नक्षत्रयोगेन व्याधिर्यस्य प्रजायते ॥ साध्यासाध्यश्च याप्यं च वक्ष्यामि शृणु पुत्रक ॥ १ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—जिसके नक्षत्रके योगसे व्याधि उपजै तिसको साध्य, असाध्य, और याप्य इन भेदोंसे कहता हूं हे पुत्र ! सुन ॥ १ ॥

अथ मृत्युयोगोंका वर्णन।

आदित्ययोगेन मघा विशाखा चन्द्रेण युक्ता कुज आर्द्रया तु ॥ मूलं प्रबुद्धे गुरुकृत्तिका च शुक्रेण रोहिण्यसितेन हस्तः ॥ २ ॥ एतान्वदन्ति निपुणा यमघंटयोगान्व्याधिप्रपन्नमनुजो यदि

पुण्ययोगात् ॥ जीवेद्यदा कथमसौ घनदत्तयन्त्रघोरान्तरेण तपने न कथं सुखं स्यात् ॥ ३ ॥ आदित्येनानुराधा वसति हिमरुचिश्चोत्तरासंप्रयुक्तो भौमः पित्रीशयुक्तो बुध इति तुरगीयुक्त एतत्सुखं न ॥ तस्माज्जीवेन युक्तो मृगशिरस हितोऽश्लेपया भार्गसूनुः युक्तोर्किर्हस्तसंज्ञैर्न तु वदति शुभं शास्त्रविद्योगयुक्तः ॥ ४ ॥

रविवारसे युक्त मघानक्षत्र और सोमवारसे युक्त विशाखानक्षत्र और मंगलवारसे युक्त आर्द्रानक्षत्र और बुधवारसे युक्त मूलनक्षत्र और बृहस्पतिवारसे संयुक्त कृत्तिकानक्षत्र और शुक्रवारसे युक्त रोहिणी और शनिवारसे युक्त हस्तनक्षत्र ॥ २ ॥ इन्होंको पंडित यमघंटयोग कहते हैं. इन्होंमें रोगको प्राप्तहुआ मनुष्य पुण्यके योगसे कदाचित् जीवता है अन्यथा सुखकी प्राप्ति नहीं है ॥ ३ ॥ रविवारसे संयुक्त अनुराधा और चंद्रवारसे संयुक्त उत्तरानक्षत्र और मंगलवारसे युक्त मघा और बुधवारसे युक्त अश्विनी और बृहस्पतिवारसे युक्त मृगशिर और शुक्रवारसे युक्त आश्लेषा और शनिवारसे संयुक्त हस्तनक्षत्र ये मृत्युयोग हैं इन्होंमें रोगकी उत्पत्ति होवै तो शुभ नहीं होताहै ॥ ४ ॥

अथ अमृतयोगकथन ।

दिनकरकरयुक्तः सोमसौम्येन चापि तुरगसहितभौमः सोमपुत्रोऽनुराधा ॥ सुरगुरुरपि पुष्ये रेवती शुक्रवारे दिनकरसुतयुक्ता रोहिणी सौख्यहेतुः ॥ ५ ॥

रविवारसे युक्त हस्त और सोमवारसे युक्त मृगशिर और मंगलवारसे संयुक्त अश्विनी और बुधवारसे संयुक्त अनुराधा और बृहस्पतिवारसे युक्त पुष्य और शुक्रवारसे युक्त रेवती और शनिवारसे युक्त रोहिणी ये शुभयोग हैं इन्होंमें रोग उपजै तो सुख होता है ॥ ५ ॥

अथ क्रूरयोगवर्णन ।

शूले वज्रेऽतिगण्डे वा व्याघाते व्यतिपातके ॥ विष्कम्भयोगयुक्ते च नक्षत्रे क्रूरदैवते ॥ ६ ॥ एतैरसाध्या ज्वरिणस्तस्माद्योगान् परीक्षयेत् ॥ योगे ऋक्षे तथा वारे क्रूरे प्राप्ते न जीवति ॥ ७ ॥

शूल, वज्र, अतिगंड, व्याघात, व्यतीपात, विष्कंभ, इन योगोंमें जब क्रूरदेवतोंवाले अर्थात् आश्लेषा मघाआदिनक्षत्र हो वैं तिन्होंको क्रूरयोग कहते हैं ॥ ६ ॥ इन्होंमें ज्वर उपजै तो रोगी असाध्य होजाते हैं इसवास्ते योगोंकी परीक्षा करनी और यह क्रूरयोगभी हो और तिसमें क्रूरवारहो तब रोग उपजे तो रोगी जीवता नहीं ॥ ७ ॥

अथ योगविज्ञान ।

सिद्धिः शुक्लः शुभः प्रीतिरायुष्मान्सौभगश्चवै ॥
धृतिर्वृद्धिर्ध्रुवो हर्षः सुखसाध्या इमे स्मृताः ॥ ८ ॥

सिद्धि, शुक्ल, शुभ, प्रीति, आयुष्मान् , सौभाग्य, धृति, वृद्धि, ध्रुव, हर्ष ये योग सुखसाध्य कहे हैं ॥ ८ ॥

अथ विशेषवर्णन ।

मघा विशाखा भरणी तथार्द्रा मूलं तथा कृत्तिकहस्ततिष्याः ॥
एते न शस्ता मुनयो वदंति वारक्रमेणैव विचिन्तनीयाः ॥ ९ ॥

मघा, विशाखा, भरणी, आर्द्रा, मूल, कृत्तिका, हस्त, पुष्य ये रोगकी उत्पत्तिमें श्रेष्ठ नहीं हैं ये सब वारके क्रमसे चिंतवन करने चाहिये ॥ ९ ॥

अथ असाध्य नक्षत्र ।

मघाभरणिहस्तेषु मूले वा ज्वरितोऽपि वा ॥
मृत्युमापद्यते सोऽपि नात्र कार्य्या विचारणा ॥ १० ॥

मघा, भरणी, हस्त, मूल इन नक्षत्रोंमें ज्वरितहुआ मनुष्य मरजाता है इसमें विचार नहीं ॥ १० ॥

अथ साध्य नक्षत्र ।

अश्विनीरोहिणीपुष्यमृगज्येष्ठाः पुनर्वसू ॥
एते साध्याश्च विज्ञेया ज्वरिणाश्च विशेषतः ॥ ११ ॥

अश्विनी, रोहिणी, पुष्य, मृगशिर, ज्येष्ठा, पुनर्वसु, इननक्षत्रोंमें हुआ रोग साध्य कहा है और इन्होंमें उपजा ज्वर विशेषकरकै साध्य है ॥ ११ ॥

अथ कष्टसाध्य नक्षत्र ।

पूर्वात्रयं स्वातिरथापि चित्रा तथा त्रयार्द्राश्रवणाधनिष्ठाः ॥ मूलं विशाखा सह कृत्तिकाभिः सार्प्योऽनुराधा सह ज्येष्ठया च ॥ १२ ॥ एते सकाष्ठा रुजपीडितानां तिष्या सुयाप्या कुरुते नरस्य ॥ तस्मात्तु विज्ञाय बुधाश्च सम्यग्रुजां विनाशं प्रतिकर्मणा च ॥ १३ ॥

तीनों पूर्वा, स्वाती, चित्रा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, श्रवण, धनिष्ठा, मूल, विशाखा, कृत्तिका, आश्लेषा, अनुराधा, ज्येष्ठा ॥ १२ ॥ इन्होंमें उपजा रोग कष्टको देता है और इन्होंमेंसे पुष्य नक्षत्रमें उपजा रोग कष्टसाध्य कहा है तिसकारणसे ज्ञान चिकित्सासे रोगको दूर करना ॥ १३ ॥

अथ नक्षत्रोंके पीडाकी मर्यादा ।

अश्विन्याश्चैकरात्रन्तु भरण्यां मृत्युमीक्षते ॥ नवरात्रं कृत्तिकायां रोहिण्यान्तु दिनत्रयम् ॥ १४ ॥ मृगेण बहुपीडा स्यादार्द्रायां मृत्युरेव च ॥ पुनर्वसौ च पुष्ये च सप्तरात्रन्तु पीडचते ॥ १५ ॥ नवरात्रं तथाश्लेषा मघा चैति यमालयम् ॥ पूर्वा मासत्रयं ज्ञेयमुत्तरा पञ्चकत्रयम् ॥ १६ ॥ पूर्वात्रये त्रयोंऽशाश्च शुभा ज्ञेया मनीषिभिः ॥ एतेषां तुर्य्यगे चान्ते यदि रोगस्तदा मृतिः ॥ १७ ॥ हस्तेन प्राप्यते सौख्यं चित्रा पञ्चदशाहकम् ॥ स्वातिः षोडशरात्रन्तु विशाखा विंशरात्रकम् ॥ १८ ॥ अनुराधा पक्षमेकं ज्येष्ठा दशदिनानि तु ॥ मूलेन मृत्युमाप्नोति आषाढासु त्रिपञ्चकम् ॥ १९ ॥ उत्तरा विंशरात्रेण श्रवणे मासकद्वयम् ॥ मासद्वयं धनिष्ठा स्याच्छतर्क्षे दिनविंशतिः ॥ २० ॥ नवरात्रं भवेत्पूर्वा उत्तरा पञ्चकत्रयम् ॥ दशाहं रेवती पीडा मुच्यते व्याधिभिस्ततः ॥ २१ ॥

अश्विनीमें रोग उपजै तो एकरात्रिमें आरामहो, भरणीमें रोग उपजै तो रोगी मरजाता है कृत्तिकामें रोग उपजै तौ नवरात्रीमें आराम होता है रोहिणीमें रोग उपजै तो तीनदिनोंमें आराम होता है ॥ १४ ॥ मृगशिरमें रोग उपजै तो बहुतसी पीडा रहती है आर्द्रामें रोग उपजै तो रोगी मरजाता है पुनर्वसुमें और पुष्यमें रोग उपजै तो सातरात्रितक पीडा रहती है ॥ १५ ॥ आश्लेषामें रोग उपजै तो नवरात्रितक पीडा रहती है मघामें रोगहो तो रोगी मरजाता है पूर्वाफाल्गुनीमें रोगहो तो तीनमहीनोंतक पीडा रहती है उत्तराफाल्गुनीमें रोगहो तो पंदरह दिनोंतक पीडा रहती है ॥ १६ ॥ और तीनों पूर्वा अर्थात् पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ, पूर्वाभाद्रपद इन्होंके पहले तीनभाग शुभ है और अंतका एकभाग बुरा है तिसमें रोगहो तो रोगी मरजाता है ॥ १७ ॥ हस्तमें रोग हो तो शीघ्र आराम होजाता है चित्रामें रोग हो तो पंद्रह दिनोंमें आराम होजाता है स्वातीमें रोग होतो सोलहरात्रिमें सुख होजाता है विशाखामें रोग होतो बीसरात्रिमें आराम होजाता है ॥ १८ ॥ अनुराधामें रोगहो तो पंदरह, दिनमें आराम होता है ज्येष्ठामें रोगहो तो दशदिनमें आराम होजाता है मूलमें रोग होतो रोगी मरजाता है पूर्वाषाढमें रोग होतो पंदरहदिनमें आराम होता है ॥ १९ ॥ उत्तराषाढमें रोग उपजै तो बीसरात्रिमें आराम होता है श्रवणमें रोग उपजै तो दो महीनोंमें आराम होताहै

धनिष्ठामें रोग उपजै तो दो महीनोंमें आराम होता है शतभिषामें रोग उपजै तो बीसदिनोंमें आराम होता है ॥ २० ॥ पूर्वाभाद्रपदमें रोग उपजै तो नवरात्रिमें आराम होता है उत्तरा भाद्रपदमें रोग उपजै तो पंदरहदिनोंमें आराम होता है रेवतीमें रोग उपजै तो दशदिनमें आराम होता है ऐसे रोगकी निवृत्ति कही है ॥ २१ ॥

अथ नक्षत्रोंके भागानुसार रोगोंकी मर्यादा।

कृत्तिका नक्षत्र।

कृत्तिकासु ज्वरस्तीव्रो व्याधिर्भवति पैत्तिकः ॥ दिनानि दश प्रथमे चरणे च विनिर्दिशेत् ॥ २२ ॥ दशैव द्वितीये भागे तृतीये दिनपञ्चकम् ॥

कृत्तिकानक्षत्रमें दारुण ज्वर और पित्तकी व्याधि उपजती है और कृत्तिकाके प्रथम भागमें रोग उपजै तो दशदिन पीडा रहती है ॥ २२ ॥ और दूसरे भागमें रोग उपजै तोभी दशदिन पीडा रहती है और तीसरे भागमें रोग उपजै तो पांचदिन पीडा रहती है ॥

अथ रोहिणी नक्षत्र।

रोहिण्यां नवरात्रन्तु प्रथमेंऽशे प्रकीर्त्तितम् ॥ २३ ॥ द्वितीये द्विगुणं प्रोक्तं तृतीये दशरात्रकम् ॥

रोहिणीके प्रथमभागमें रोग उपजै तो नवरात्रि पीडा रहती है ॥ २३ ॥ और दूसरेभागमें अठारहदिन और तीसरे भागमें दशदिन पीडा रहती है ॥

अथ मृग नक्षत्र।

नक्षत्रे चन्द्रदैवत्ये पीडा वै जायते ध्रुवम् ॥ २४ ॥ प्रथमांशे पञ्च रात्रं मध्ये द्वादशवासरान् ॥ तृतीयांशे तथा ज्ञेयं मृत्युर्मासादनन्तरम् ॥ २५ ॥

मृगशिरके प्रथमभागमें रोग उपजै तो पांचरात्री पीडा रहती है ॥ २४ ॥ और दूसरे भागमें बारहदिन और तीसरेभागमें १ महीनातक पीडा रहकै पीछे मृत्यु होजाती है ॥ २५ ॥

अथ आर्द्रा नक्षत्र।

नक्षत्रे रुद्रदैवत्ये पक्षं स्यात्प्रथमेंऽशके ॥
द्वादशाहं द्वितीये च तृतीयांशे न जीवति ॥ २६ ॥

आर्द्रानक्षत्रके प्रथम अंशमें रोग उपजै तौ वह रोग एक पखवाडेतक रहता है, दूसरे अंशमें हुआ व्याधि बारह दिनतक रहता है. तीसरे अंशमें रोग उत्पन्न हुआ होय तौ वह मनुष्य जीता नहीं ॥ २६ ॥

अथ पुनर्वसु नक्षत्र।

पुनर्वसौ ज्वरं विद्यात्प्रथमांशे त्रिपक्षकम् ॥
मध्यमे दिवसान्सप्त तृतीये पंचविंशतिम् ॥ २७ ॥

पुनर्वसुनक्षत्रके प्रथम अंशमें आयाहुआ ज्वर तीन पखवाडेतक रहता है. दूसरे अंशमें सात-दिन रहता है. और तीसरे अंशमें आयाहुआ ज्वर पच्चीस दिनतक रहता है ॥ २७ ॥

अथ पुष्य नक्षत्र।

पुष्ये स्यात्प्रथमे सप्त द्विके विंशतिवासरान् ॥
तृतीयांशे तथा विंद्याद्दिवसानेकविंशतिम् ॥ २८ ॥

पुष्यनक्षत्रके प्रथम अंशमें आयाहुआ रोग सातदिनतक रहता है. दूसरे अंशमें वीस दिनतक रहता है. और तीसरे अंशमें इक्कीसदिनतक रहता है ॥ २८ ॥

अथ आश्लेषा नक्षत्र।

आश्लेषायां च नक्षत्रे यस्य संभवति ज्वरः ॥ मासत्रयेण प्रागंशे कष्टाज्जीवति मानवः ॥ २९ ॥ द्वितीये च तृतीये च मृत्युरेव न संशयः ॥

जिस मनुष्यको आश्लेषानक्षत्रमें ज्वर उत्पन्न होता है उसको प्रथम अंशमें ज्वर उत्पन्न होनेसे वह मनुष्य बडे कष्टसे जीता है ॥ २९ ॥ और दूसरे तथा तीसरे अंशमें ज्वर उत्पन्न होनेसे उस मनुष्यको मृत्युही प्राप्त होता है इसमें संशय नहीं ॥

अथ मघा नक्षत्र।

नक्षत्रे पितृदैवत्ये रोगो यस्य प्रवर्तते ॥ ३० ॥ प्रथमेंशे सप्तरात्रं द्वितीये धिष्ण्यतुल्यताम् ॥ विंशत्तृतीये दिवसान्पीड्यते कर्मणो बलात् ॥ ३१ ॥

मघानक्षत्रमें जिस मनुष्यको रोग उत्पन्न होता है ॥ ३० ॥ उसका रोग प्रथम अंशमें सातरात्रितक रहता है. दूसरे अंशमें उत्पन्न होवे तो दश दिन रोग बनाही रहता है. और तीसरे अंशमें होवे तो वह मनुष्य अपने कर्मके बलसे वीस दिनतक बहुत पीडाको प्राप्त होता है ॥ ३१ ॥

अथ पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र।

नक्षत्रे भगदैवत्ये यस्य संजायते ज्वरः ॥ ३२ ॥ प्रथमेंशे पंचरात्रं मध्ये द्वादशवासरान् ॥ तृतीयांशे तथा ज्ञेयं मृत्युर्मासादनंतरम् ॥ ३३ ॥

पूर्वाफाल्गुनीनक्षत्रमें जिसको ज्वर उत्पन्न होवे ॥ ३२ ॥ उस मनुष्यका ज्वर प्रथम अंशमें पांच रात्रितक रहता है. दूसरे अंशमें बारह दिनतक रहता है. और तीसरे अंशमें ज्वर उत्पन्न होवे, उस मनुष्यका एक महीनेके पीछे मृत्यु होगा ऐसा जानना ॥ ३३ ॥

अथ उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र ।

उत्तराया आद्यभागे वासराणि चतुर्दश ॥
द्वितीये सप्तरात्रन्तु तृतीये दिवसा नव ॥ ३४ ॥

उत्तराके प्रथमभागमें रोग उपजै तो चौदहदिन पीडा रहती है और दूसरे भागमें सात रात्रि और तीसरे भागमें नव दिन पीडा रहती है ॥ ३४ ॥

अथ हस्त नक्षत्र ।

यदि हस्ते भवेद्रोगः प्रथमे सप्तरात्रकम् ॥
चत्वार्य्यहानि द्वितीये तृतीये दिनपञ्चकम् ॥ ३५ ॥

हस्तके प्रथमभागमें रोग उपजै तो सात रात्री पीडा रहती है और दूसरे भागमें चार दिन और तीसरे भागमें पांच दिन पीडा रहती है ॥ ३५ ॥

अथ चित्रा नक्षत्र ।

मृत्युं विद्यात्तथा पूर्वे त्वाष्ट्रे यस्य भवेज्ज्वरः ॥ त्रिभिर्मासैर्द्वितीयांशे रोगो भवति दारुणः ॥ ३६ ॥ तृतीयांशे तथा ज्ञेयं वासराणि त्रयोदश ॥

चित्राके प्रथम भागमें जिसके ज्वर उपजै तिसका मृत्यु होजाता है और दूसरे भागमें रोग दारुणरूपी होकै तीन महीनोंमें दूर होता है ॥ ३६ ॥ और तीसरे भागमें तेरहदिन पीडा रहती है ॥

अथ स्वाती नक्षत्र ।

वायव्ये प्राक् सप्तदश द्वितीये चैकविंशतिः ॥ ३७ ॥ अस्यैव तु तृतीयांशे मृत्युमेव विनिर्दिशेत् ॥ ३८ ॥

स्वातीके प्रथम भागमें रोग उपजै तो सत्रह दिन पीडा रहती है और दूसरे भागमें रोग उपजै तो इक्कीसदिन पीडा रहती है ॥ ३७ ॥ और तीसरे भागमें रोग उपजै तो मृत्युही जानना ॥ ३८ ॥

अथ विशाखा नक्षत्र ।

प्रथमांशे विशाखायां त्रिगुणाः षोडश स्मृताः ॥
द्वितीये द्वादश प्रोक्तास्तृतीयेऽपि तथैव च ॥ ३९ ॥

विशाखाके प्रथम भागमें रोग उपजै तो अडतालीस ४८ दिन पीडा रहती है और दूसरे-भागमें रोग उपजै तो बारह दिन पीडा रहती है और तीसरे भागमें रोग उपजै तोभी बारह दिन पीडा रहती है ॥ ३९ ॥

अथ अनुराधा नक्षत्र ।

मैत्रांशे प्रथमे सप्त द्वितीये पक्षमादिशेत् ॥
तृतीयांशे चतुःषष्टिर्वासराणां महामुने ! ॥ ४० ॥

अनुराधाके प्रथमभागमें रोग उपजै तो सात दिन पीडा रहती है और दूसरेभागमें रोग उपजै तो पंद्रह दिन पीडा रहती है और तीसरेभागमें पीडा उपजै तो हे महामुने ! चौंसठ ६४ दिन पीडा रहती है ॥ ४० ॥

अथ ज्येष्ठा नक्षत्र ।

त्रिपक्षमैन्द्रे प्रथमे द्वित्रिभागे च षोडश ॥ ४१ ॥

ज्येष्ठाके प्रथम भागमें रोग उपजे तौ ४५ दिन पीडा रहती है. द्वितीय, और तृतीय इन भागोंमें रोग उपजै तो सोंलह दिन पीडा रहती है ॥ ४१ ॥

अथ मूल नक्षत्र ।

मूलेंऽशे तृतीये ज्ञेयः पक्ष एव मनीषिभिः ॥
आद्ये पूर्वत्रयो मासा मध्यमेऽहानि षोडश ॥ ४२ ॥

और मूलके तीसरेभागमें रोग उपजै तौ पंद्रहदिन पीडा रहती है और मूलके प्रथम भागमें रोग उपजै तो तीन महीने पीडा रहती है और मूलके दूसरे भागमें रोग उपजै तो सोलह दिन पीडा रहती है ॥ ४२ ॥

अथ पूर्वा नक्षत्र ।

पूर्वाऽशे द्वितये ज्ञेयः पक्ष एव मनीषिभिः ॥
तृतीयांशे पुनर्मृत्युरतीरात्रात्प्रजायते ॥ ४३ ॥

पूर्वाषाढके प्रथम और द्वितीयभागमें रोग उपजै तो पंदरह दिन पीडा रहती है और तीसरे भागमें रोग उपजै तो रोगी मरजाता है ॥ ४३ ॥

अथ उत्तराषाढा नक्षत्र ।

विश्वेशे प्रथमे पक्षे मध्ये द्वादशरात्रिकम् ॥
दिनानां विंशतिः प्रोक्ता तृतीयांशे महामुने ! ॥ ४४ ॥

उत्तराषाढके प्रथम और द्वितीयभागमें रोग उपजै तो बारह रात्रि पीडा रहती है हे महामुने ! उत्तराषाढके तीसरे भागमें रोग उपजै तो २० दिन पीडा रहती है ॥ ४४ ॥

अथ श्रवण नक्षत्र ।

सप्ताहमादौ श्रवणे विंशतिर्मध्यमे मता ॥
षोडशाहं तृतीयांशे सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ ४५ ॥

श्रवणके प्रथमभागमें रोग उपजै तो सातदिन पीडा रहती है और द्वितीयभागमें रोग उपजै तो वीसदिन पीडा रहती है और तीसरे भागमें रोग उपजै तो सोलहदिन पीडा रहती है यह मैं सत्य कहताहूं ॥ ४५ ॥

अथ धनिष्ठा नक्षत्र ।

विंशतिर्वासवे पूर्वं मध्यमे मासयुग्मकम् ॥
मासस्तृतीये विज्ञेयो दैवज्ञैश्च निवेदितम् ॥ ४६ ॥

धनिष्ठाके प्रथमभागमें रोग उपजै तो वीसदिन पीडा रहती है और दूसरेभागमें रोग उपजै तो दो महीने पीडा रहती है और तीसरे भागमें रोग उपजै तो एकमहीना पीडा रहती है ऐसा ज्योतिषिओंने कहा है ॥ ४६ ॥

अथ पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्र ।

वारुणे दारुणो रोगस्त्रिपक्षं प्रथमांशके ॥
द्वितीये मासषट्कं तु षोडशाहं तृतीयके ॥ ४७ ॥

पूर्वाभाद्रपदाके प्रथमभागमें दारुण रोग उपजै तो पैंतालीसदिन पीडा रहती है और दूसरेभागमें रोग उपजै तो छःमहीने और तीसरे भागमें रोग उपजै तो सोलहदिन पीडा रहती है ॥ ४७ ॥

अथ उत्तराभाद्रपदा नक्षत्र ।

अहिर्बुध्न्ये पक्षमादौ मध्ये मासं विनिर्दिशेत् ॥
अन्तेऽष्टाविंशतिर्ज्ञेया पीडास्यात्पापकर्मणि ॥ ४८ ॥

उत्तराभाद्रपदके प्रथमभागमें रोग उपजै तो पंद्रहदिन पीडा रहती है और दूसरेभागमें रोग उपजै तो एक महीना पीडा रहती है और तीसरे भागमें रोग उपजै तो अठाईसदिन पीडा रहती है ॥ ४८ ॥

अथ रेवती नक्षत्र ।

रेवत्याः प्रथमे चाष्टौ द्विभागे तु च षोडश ॥
अन्ते त्रिंशद्दिनान्येवं प्रोक्तानि पूर्वसूरिभिः ॥ ४९ ॥

रेवतीके प्रथमभागमें रोग उपजै तो आठदिन पीडा रहती है और दूसरेभागमें सोलहदिन पीडा रहती है और तीसरेभागमें तीसदिन पीडा रहती है ॥ ४९ ॥

अथ अश्विनीनक्षत्र।

अश्विन्याः प्रथमे भागे दिनमेकं प्रकीर्त्तितम् ॥
द्वितीये पञ्चरात्रन्तु तृतीये सप्तकं तथा ॥ ५० ॥

अश्विनीके प्रथमभागमें एक दिन पीडा रहती है और दूसरेभागमें पांचरात्रि और तीसरे भागमें सात रात्रि पीडा रहती है ॥ ५० ॥

अथ भरणी नक्षत्र।

भरण्याः प्रथमे चांशे सप्तवासरमेव च ॥
मध्ये मृत्युस्तथा चान्ते रोगो मासत्रयावधिः ॥ ५१ ॥

भरणीके प्रथमभागमें सातदिन पीडा रहती है और दूसरे भागमें मृत्यु और तीसरे भागमें तीन महीने पीडा रहती है ॥ ५१ ॥

अथ नक्षत्रारिष्टोंका उपसंहार।

एवं ज्ञात्वा सुधीः सम्यक्कुर्य्यात्प्रशमनक्रियाम् ॥ नक्षत्रस्य त्रयो भागा आत्रेयेण प्रकाशिताः ॥ ५२ ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे द्वितीयस्थाने नक्षत्रज्ञानं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

ऐसे जानकै कुशल वैद्य रोगको शांत करनेकी क्रियाको करै नक्षत्रोंके तीन भाग आत्रेयजीने प्रकाशित किये हैं ॥ ५२ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां द्वितीयस्थाने नक्षत्रज्ञानं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ७.

अथ होमकी विधि।

आत्रेय उवाच ॥ अर्कः खदिरपालाशबदर्य्यः पारिभद्रकः ॥ दूर्वा शमीकुशः काशः पिप्पलो वटभूरुहः ॥ १ ॥ जम्ब्वाम्रौ करहाटश्च सोमवृक्षः कलिद्रुमः ॥ रक्तसारश्चन्दनश्च जयन्ती गुरुवृक्षकम् ॥ २ ॥ सहचरी सितावर्षा सर्वौषधिनिशायुगम् ॥ समिद्वर्गः समस्तोऽपि समिद्धोमः प्रकाशितः ॥ ३ ॥

आत्रेयजी कहते हैं–आक, खैर, पलाश, बडबेरी, पारिभद्र, दूव, जांठी, कुशा, कास, पीपलवृक्ष, बडवृक्ष, ॥ १ ॥ जामनवृक्ष, आंबवृक्ष, पद्मकंद, श्वेतखैर, बहेडा, लालखैर, चन्दन,

अरनी, सीसमवृक्ष, ॥ २ ॥ पीलाकुरंटा, सफेदसांठी, सर्वौषधी, अर्थात् कूट, छालछलीरा, हलदी, वच, लोबान, मुरामांसी, चन्दन, कपूर, नागरमोथा और हलदी, दारुहलदी यह समिद्वर्ग है इससे समिद्धोम होता है ॥ ३ ॥

अथ शांतिप्रकार ।

चन्दनं रक्तचन्दनं गोरोचना हरिद्रा गैरिकनिम्बबिल्वं कदम्बं कुंकुममिश्रितकस्तूरिका घनसारं श्रीपर्णी सुरदारु हरिचन्दनं पद्मकं हरिद्राद्वयं कालीयकागुरुशिंशपा रक्तगोरोचना पलाश इति गन्धानि, पद्मबिल्वसुरसादूर्वांकुशजयन्तीशमीपत्रार्क-किंशुककर्णिकारगिरिकर्णिकासहचरालूषपुष्पाणि, जम्बाम्रपल्लवानि काञ्चनारपाटलावर्वरी अगस्तिः काककाह्लारी अशोकपुष्पमिति धूपदीपादिभिरलङ्कारैरलङ्कृतं वास्तुमण्डलं कृत्वा ईशानदिक्क्रमेण नक्षत्रमण्डलं चार्चयेत् ॥ तन्मण्डलकमध्ये आदित्यादीन् ग्रहान् समभ्यर्च्य क्रमेण समिद्भिर्होमं कुर्य्यात् ॥ तस्मात्पुनर्दधिमधुघृताक्ताभिः समिद्भिरश्विन्यादिक्रमेण जुहुयात् ॥ आकृष्णेति अर्कसमिद्भिरिदम् अश्विन्यै विष्णोरराटमसीति पलाशेन इदं भरण्यै मधुमाध्वीति बदरीसद्भिरिदं कृत्तिकायै काण्डात्काण्डेति पारिभद्रकपूर्वकुशसमिद्भिः रोहिणीमृगाशिरःपुनर्वस्वादीन् काण्डेति होमयेत् ॥ इदं देव इति पिप्पलसमिद्भिरिदं पुष्याय सतत्यग्निमन्त्रेण चूतसमिद्भिरिदं सार्प्यै अग्निर्मूर्द्धादिवइति जम्बूसमिद्भिर्मघां होमयेत् ॥ सद्योजाताभिः करहाटकसमित्पूर्वसमिद्भिर्होमयेत् ॥ तत्पुरुषाय विद्महे इति सोमवल्ली समिद्भिरुत्तरात्रयं, नमो घोराय विभीतकसमिद्भिर्हस्तं होमयेत्॥ नमो ज्योतिष्पतये रक्तसारसमिद्भिश्चित्रां होमयेत ॥ नमो देवाय नमो ज्येष्ठायेति चन्दनसमिद्भिः स्वात्यै होमं कुर्य्यात् ॥ उदुम्बरजयन्तीसमिद्भिर्विशाखां होमयेत् ॥ बृहते इति यदुपतये गुरुवृक्षकसमिद्भिरनुराधां होमयेत् ॥ एतज्ज्योतिःसह-

चरीसमिद्भिर्ज्येष्ठां काण्डात्काण्डेति शतावरीसमिद्भिर्मूलमिष्टं स्तौति ॥ निशायुगसमिद्भिः पूर्वाषाढामुत्तराषाढां मधुवातेति उदुम्बरसमिद्भिः श्रवणं त्र्यम्बकमिति बिल्वसमिद्भिर्वासवप्रभृतीनि होमयेत् ॥ घृतेन पूर्णाहुतिं दद्यात् ॥ नवग्रहस्थापनं चतुरस्रेण होमकुण्डे होमयेत् ॥ तस्मादभिषेकस्नानमाचरेत् ॥ शुक्लवस्त्रोपवीतं यज्ञोपवीतसहितं रोगिणं कृत्वा वेदादिभिराशिष्य गोभूवस्त्रहिरण्यादिदानं कुर्य्यात् ॥ इति विधाने कृते सम्यक् शान्तिर्भवति ॥ ४ ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे द्वितीयस्थाने होमविधिर्नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

चंदन, लालचंदन, गोरोचन, हलदी, गेरू, नीमकी छाल, बेलगिरी, कदंब, केशर, कस्तूरी, कपूर, कमल, देवदार, हरिचंदन, पद्माख, हलदी, दारुहलदी, कालाअगर, अगर, शीसम, गोरोचन, पलाश अर्थात् ढाका ये सब गंध हैं श्वेतकमल, बेलगिरी, तुलसी, दूब, कुशा, गारनी, जांटीके पत्ते, आक, केशू, अमलताश विशेष, विष्णुक्रांता, नीलाकुरंटा, शतावरी, इन्हींके फूल, जामन और आंबके पत्ते और कचनार, पाडल, रानतुलशी, अगस्तिवृक्ष, काकजंघा, अशोक इन्हींके फूल, धूपदीपआदिसे अलंकृतकिये वास्तुमंडलको कर ईशानआदिके क्रमसे नक्षत्रमंडलकी पूजा करनी तिस मंडलके मध्यमें सूर्य्यआदिग्रहोंकी अच्छीतरह पूजाकर क्रमसे पूर्वोक्त समिधोंसे होमको करै तिससे पीछे फिर दही, शहद, घृत इन्होंसे भिगोईहुई पूर्वोक्त समिध अर्थात् लकडियोंसे अश्विनीआदिनक्षत्रोंके क्रमकरकै होम करै 'आकृष्णेन रजसा' इसमंत्रसे और आककी लकडीसे अश्विनीकेलिये होम करै पीछे इदं अश्विन्यै ऐसे कहै 'विष्णोरराट' इसमंत्रसे ढाककी लकडियोंकरकै भरणीका होम करै अंतमें इदं भरण्यै ऐसे कहै 'मधुमाध्वी' इसमंत्रसे और बडबेरीकी लकडियोंसे कृत्तिकाका होम करै 'काण्डात्कांडे' इसमंत्रसे और पारिभद्र कुशा इन्होंकरकै रोहिणी, मृगशिर, पुनर्वसु, इनआदिका होम करै 'इदंदेव' इसमंत्रसे और पपिलकी लकडियोंकरकै पुष्यका होम करै 'सप्तत्यग्नि' इसमंत्रसे और आंबकी लकडियोंकरकै आश्लेषाका होम करै 'अग्निर्मूर्द्धा' इसमंत्रसे और जामुनकी लकडियोंकरकै मघाका होम करै 'सद्योजाताभि०' इसमंत्रसे और श्वेतखैरकी लकडियोंकरकै पूर्वाका होम करै 'तत्पुरुषाय विद्महे' इसमंत्रसे और लालखैरकी लकडियोंकरकै तीनों उत्तराओंका होम करै 'नमो घोराय' इसमंत्रसे और बहेडाकी लकडीकरकै हस्तका होम करै 'नमो ज्योतिष्पतये' इसमंत्रसे और लालशसिमकी लकडियोंकरकै चित्राका होम करै 'नमो देवाय नमो ज्येष्ठाय' इसमंत्रसे और चंदनकी लकडियों करकै स्वातीका होम करै और इसमिंत्रसे तथा गूलर और अरनीकी लकडियों ९ करकै विशाखाका होम करै 'बृहते

'इतियदुपतये०' इसमंत्रसे और शीसमकी लकडियोंकरकै अनुराधाका होम करै 'एतज्ज्योति०' इसमंत्रसे और पीलाकुरंटाकी लकडियोंकरकै ज्येष्ठाका होम करै 'कांडात्कांडे' इसमंत्रसे और शतावरीकी लकडियोंकरकै मूलका होम करै नामरूपमंत्रसे और हलदी तथा दारुहलदीकी लकडियोंसे पूर्वाषाढ और उत्तराषाढका होम करै 'मधुवाता' इसमंत्रसे और गूलरकी लकडियोंसे श्रवणका होम करै त्र्यंबकमंत्रसे और बेलपत्रकी लकडियोंसे धनिष्ठाआदि और रेवतितकके नक्षत्रोंका होम करै घृतकरकै पूर्णाहुतीको देवै नवग्रहोंको चौकुंडीवेदीपै स्थापनकर पीछे होमके कुंडमें होमको करै तिससे पीछे अभिषेकस्नानको करै सफेदवस्त्रोंको पहनेहुये और यज्ञोपवीत अर्थात् जनेऊको धारण किये ऐसे रोगीको बना और वेदआदिके मंत्रोंसे आशीर्वाद दे पीछे रोगी गौ, पृथिवी, सोना, इनआदि दानको करै ऐसे विधानकरनेसे अच्छीतरह शांति होती है ॥ ४ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां द्वितीयस्थाने होमविधिर्नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ८.

अथ दूतकी परीक्षाका लक्षण ।

आत्रेय उवाच ॥ अथातो गदग्रस्तानां दूतारिष्टं भिषग्वर! ॥ शुभं वाऽशुभमेवान्यत्समासेन प्रचक्ष्यते ॥ १ ॥ आतुरस्योपकारार्थं दूतो याति भिषग्गृहे ॥ तस्य परीक्षणं कार्य्यं येन संलक्ष्यते गदः ॥ २ ॥

आत्रेयजी कहते हैं-हे वैद्यवर ! अब रोगोंसे ग्रस्तहुये मनुष्योंके दूतारिष्टको विस्तारसे कहताहूं जो शुभ और अशुभ होता है ॥ १ ॥ रोगीके उपकारके लिये जो दूत वैद्यके घरको आता है तिसकी परीक्षा करनी चाहिये जिससे रोगका शुभाशुभ मालूम होवै ॥ २ ॥

अथ वर्ज्यदूतके लक्षण ।

खञ्जान्धमूकबधिरं रुजपीडितं वा बालं स्त्रियञ्च विकलं तृषितं विजीर्णम् ॥ श्रान्तं क्षुधातुरमपि भ्रमितञ्च दीनं दूतं न शस्तमिह वेदविदो वदन्ति ॥ ३ ॥ कषायकृष्णार्द्रकवाससा च तथैव वस्त्रावृतमस्तकेन ॥ अश्रुप्लुतैर्वा नयनैश्च युक्ताः केशैस्तथा मुण्डितमस्तकश्च ॥ ४ ॥ समर्कटाक्षोर्ध्वशिरोरुहश्च खर्वस्तथा

वामनकृत्तनासः ॥ एतान्न शंसन्ति विदो मुनीन्द्रा दूतान्नराणां रुजनाशनाय ॥ ५ ॥ यः कर्कशः क्रोधनपाशपाणिर्भिषग्विदूषी तमसावृतश्च ॥ एते न शस्ताः प्रवदन्ति धीरा दूता विकारञ्च प्रवर्द्धयन्ति ॥ ६ ॥ यः काष्ठहस्तोद्धतपाशपाणिस्तथातुरोदीन- वचो हि रोदिति॥ प्रक्लिन्ननेत्रो गमनोत्सुकोऽपि वर्ज्यो रुगार्त्तोऽ- शुभकारिदूतः ॥ ७ ॥ यो रज्जुहस्तोद्धतपाशपाणिर्याम्यां दिशञ्च परिभूयतूर्णम् ॥ यो वावदीति प्रबलं सरोषस्तथा समागम्य वदेच्च दूतः ॥ ८ ॥ लगुडं हस्तेऽवष्टभ्य वक्रपादेन तिष्ठति ॥ तस्मादाकुलवादी यो न शस्तो वैद्यकर्मसु ॥ ९ ॥ पथा गच्छति शीघ्रेण आविश्योत्थाय मुह्यति ॥ पादौ प्रसार्य्य विशति मस्तके विन्यसेत्करम् ॥ १० ॥ भिनत्ति लोहकाष्ठञ्च तृणं वा स्फोटते क्वचित ॥ एतानि स्पृशते नासां स्तनं वा स्पृशति पुनः ॥ ११ ॥ भूमिं लिखति पादेन रेखां वापि करोति यः॥निद्रां वा कुरुते यस्तु स दूतोऽनिष्टकारकः ॥ १२ ॥

लंगडा, अंधा, गूंगा, बहिरा, रोगसे पीडित, बालक, स्त्री, विकल, तृषावाला, अतिवृद्ध, परिश्रमको प्राप्तहुआ, भूखसे पीडित और भ्रमवाला और दीन ऐसे दूतको वैद्यश्रेष्ठ नहीं कहते हैं ॥ ३ ॥ रंगाहुआ और काला और गीला ऐसे वस्त्रसे युक्त और वस्त्रसे आवृतहुये मस्तकवाला और आँसुओंसे भीजेहुये नेत्रोंवाला और जटाजूटहुआ और मुंडायेंहुये शिरके बालोंवाला ॥ ४ ॥ और वानरकेसे नेत्रोंवाला और ऊपरको खुलेहुये बालोंवाला और ठींगना तथा कटीहुई नासिकावाला ऐसे दूतोंको मुनींद्र रोगका नाशके लिये श्रेष्ठ नहीं कहते हैं ॥५॥ जो कठोरहो, क्रोधीहो और फांसीको हाथमें लेनेवाला और वैद्यको दोष लगानेवाला और तमोगुणसे संयुक्त ऐसे दूत अच्छे नहीं है किंतु ये दूत विकारको बढाते हैं ॥ ६ ॥ जो काष्ठको हाथमें लियेहो और ऊपरको हाथकिये फांसीको ग्रहण करनेवालाहो, रोगीहो और दीनवचनको बोलकै रोताहुआ है और भीजेहुये नेत्रोंवाला हो और गमन करनेकी इच्छावाला हो ऐसा अशुभको करनेवाला दूत वर्जना चाहिये ॥ ७ ॥ जो रज्जुको हाथमें लेकै ऊपरको लियेहुये हो और फांसीको हाथमें लियेहुये हो और जो दक्षिण दिशामें प्राप्तहोकै क्रोधसे वारंवार बोलै और वैद्यसेभी दक्षिणदिशामें स्थितहोकै बोलै ऐसा दूत श्रेष्ठ नहीं है ॥ ८ ॥ जो लकडीको हाथमें लेकै टेडेपैरसे स्थितहोवै और बुरे वचनको बोलै ऐसा दूत वैद्यकर्ममें

श्रेष्ठ नहीं है ॥ ९ ॥ जो मार्गमें शीघ्र गमनको करै बैठता और उठताहुआ मोहको प्राप्त और पैरोंको पसारके प्रवेश करै और मस्तकपै हाथको स्थापित करै ॥ १० ॥ लोहा, काठ, तृण, इन्होंमेंसे एक कोईसेको भेदित करै अथवा इन्हेंको छुवै नासिका और चूंचीको छुवै ॥ ११ ॥ पृथिवीको पैरसे खोदै अथवा पृथिवीमें रेखाको करै अथवा नींदको प्राप्तहुआ हो वह दूत बुरा कहा है ॥ १२ ॥

शुभदूतके लक्षण।

यः श्वेतवस्त्रावृतपूर्णपाणिः सम्पूर्णताम्बूलमुखः प्रशस्तः ॥ द्विजस्तथा माणवकः सुशीलः प्रज्ञाधिकश्चाह्वयते सुखाय ॥ १३ ॥ कुसुममुकुरवक्रं यस्य स्यात्सर्वदापि श्रमविकचसरोजंपद्मकिञ्जल्कपुष्पम् ॥ करतलवरवस्त्रं पुष्पपूगाङ्गरागं करतलधृतमेतत्सौख्यकर्त्ता हि दूतः ॥ १४ ॥ आगत्योदीच्यपूर्वामथवरुणादिशमैशीमाश्रित्य शान्तो दृष्ट्वा वैद्यं प्रहस्य प्रवदति निपुणं नातिनीचं न चोच्चम् ॥ उत्तिष्ठ त्वं प्रसादं कुरु पवन इदं सौख्यवाक्यं तनोति प्राज्ञैः स्वार्थं प्रकृष्टं सुखमगदकरं रोगिणां वैद्यलाभः ॥ १५ ॥ पूर्वां दिशं समासाद्य प्रशान्तः शान्तया गिरा ॥ वैद्यं वदति लाभाय रोगिणाञ्च सुखावहम् ॥ १६ ॥ यश्चागत्योपविष्टोऽपि श्लोकं वाथ सुभाषितम् ॥ वदते शान्तया वाचा सोऽपि लाभाय शान्तये ॥ १७ ॥ अभिवाद्यस्य वैद्यस्य क्षेमं पृच्छति यः पुनः ॥ फलं ददाति पुष्पं वा रोगिणाञ्च सुखावहम् ॥ १८ ॥

जो सफेद वस्त्रोंको पहनेहुये और किसीचीजको हाथमें लियेहुये और नागरपानको मुखमें धारणकिये और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, इनवर्णोंमें उपजाहुआ और बालक तथा शीलस्वभाववाला और बुद्धिमान् ऐसा दूत वैद्यको बुलानेमें सुखको देता है ॥ १३ ॥ जिसका मुख फूल तथा शीसाके समान स्वच्छ सबकालमें रहै और श्रमसे खिलेहुये कमलोंकी केसर और पुष्पोंवालाहो और हस्तोंके तलुओंपरभी वस्त्रको धारणकियेहो अनेकप्रकारके फूल और सुपारी करके रंजितकिये अंगोंवालाहो अथवा फूल और सुपारीको हाथमें धारणकियेहो ऐसा दूत सुखको देनेवाला है ॥ १४ ॥ जो आकै उत्तरको, व पूर्वको, पश्चिमको, व ईशानदिशामें बैठ और वैद्यको देख हँसताहुआ न ज्यादै ऊंचेप्रकारसे और न ज्यादै नीचेप्रकारसे बोलै कि, हेवैद्यराज! उठकै प्रसन्नता करो ऐसे शुभवचनको कहै ऐसा दूत रोगियोंके रोगको नाशनेके

लिये शुभ कहा है ॥ १५ ॥ जो पूर्वदिशामें आश्रित होके प्रशांतहुवा दूत शांतवाणीसे वैद्यको बोलता है वह दूत वैद्योंको सुखका देनेवाला कहा है ॥ १६ ॥ जो आके श्लोकको अथवा सुंदर वचनको शांतवाणीसे बोलै वहभी दूत शुभ कहा है ॥ १७ ॥ जो दूत वैद्यको प्रणामकर फिर कुशलको पूँछ फलको अथवा फूलको देता है वह रोगियोंके सुखका देनेवाला है ॥ १८ ॥

अथ दूतलक्षणोंका उपसंहार।

यस्य सौख्यं सुखं सिद्धिस्तस्य दूता इदं विदुः ॥ किमत्र बहुनोक्तेन दूतो नरसुखावहः ॥ १९ ॥ न हितमस्त्रीपुरुषं तस्मात्तु परिवर्जयेत् ॥ एवं जानाति यो वैद्यस्तस्य सिद्धिः सुखं श्रियः ॥ २० ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे द्वितीयस्थाने दूतपरीक्षणलक्षणं नाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

जिसरोगीको सुख और सिद्धिकी प्राप्ति होनेवाली है तिसके दूत इस पूर्वोक्त वचनको बोलते हैं ज्यादै कहनेसे क्या है दूतही मनुष्यको सुखका देनेवाला है ॥ १९ ॥ हीजडादूत कर्ममें हित नहीं है तिससे इसको वर्ज्जै ऐसे जो वैद्य जानता है तिसको सिद्धि, सुख, लक्ष्मी इन्होंकी प्राप्ति होती है ॥ २० ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां द्वितीयस्थाने दूतपरीक्षालक्षणं नाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः ९.

अथ शकुनवर्णन।

आत्रेय उवाच ॥ इदानीं निर्गमे पुत्र ! प्रवेशे वा गृहस्य च ॥ शुभाशुभानि सर्वाणि वक्ष्यामि शकुनानि च ॥ १ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—हे पुत्र ! अब वैद्यके चलनेमें और रोगीके घरमें प्रवेश करनेमें शुभ और अशुभ जो शकुन हैं तिन्होंको कहताहूं ॥ १ ॥

अथ शुभ शकुन।

राजा गजो द्विजमयूरकखञ्जरीटाश्चाषः शकुन्तरजकः सितवस्त्रशुक्रः ॥ पुत्रान्विता च युवती गणिका च कन्या श्रेयःसुखाय यशसे प्रतिदर्शयन्ति ॥ २ ॥ लटा श्येनो भासहारीतचक्रो भार-

द्राजाश्छिक्करश्छागसंज्ञः ॥ एते श्रेष्ठा दक्षिणे सव्यवामे वैद्यावेशे निर्गमे श्रेयसे च ॥ ३ ॥

राजा, हस्ती, ब्राह्मण, मोर, खंजना, पपैय्या, सफेदवस्त्रोंवाला धोबी, पुत्रसे युक्तहुई स्त्री, वेश्या, कन्या प्रथम देखेहुये ये शकुन यशको और सुखको देते हैं ॥ २ ॥ गाममें रहनेवाली चिडियां, शिकरा, भासपक्षी, तिलगिरुपक्षी, चकुवा, मुर्गाविशेष, छिक्कर, बकरा ये सब वैद्यके चलने और प्रवेश करनेमें दाहिने और वामें श्रेष्ठ हैं ॥ ३ ॥

अथ दुष्ट शकुन।

सर्पोलूको वानरः सूकरश्च गोधा ऋक्षः कृकलासः शशश्च ॥ एतेऽरिष्टा निर्गमे वा प्रवेशे कार्य्ये निर्घातोपकारेषु शस्ताः ॥ ४ ॥

सर्प, उल्लू, वानर, शूकर, गोह, रीछ, किरलिया शशा ये सब वैद्यके गमन और प्रवेशमें अच्छे नहीं हैं और घात करनेके कार्य्यमें ये भी शकुन अच्छे हैं ॥ ४ ॥

अथ मृगादिकोंका शकुन।

मृगो वा पिङ्गलो वापि प्रशस्तो दक्षिणे सदा ॥
निर्गमे वा प्रवेशे च दक्षिणे शुभदायकः ॥ ५ ॥

मृग अथवा उल्लू सबकालमें दाहिने श्रेष्ठ है और वैद्यके गमनमें तथा प्रवेशमेंभी दाहिनेही शुभको देते हैं ॥ ५ ॥

अथ मृगोंके संख्याका शकुन।

एको वा त्रयो वा पञ्च सप्त वा नवसंख्यया ॥
भाग्यकाले नराणान्तु मृगा यान्ति प्रदक्षिणाः ॥ ६ ॥

एक अथवा तीन अथवा पांच अथवा सात अथवा नव ऐसी संख्याके मृग मनुष्योंके भाग्यकालमें दाहिने गमन करनेवाले श्रेष्ठ हैं ॥ ६ ॥

अथ मोरआदिकोंका शकुन।

शिखी च भवनगोधा रासभो भृङ्गराजः पिकभषणकपोताः पोतकी सूकरी वा ॥ तदनु विहगराजो दीर्घकण्ठादयः स्युर्वदति शकुनवेत्ता वामतो निर्गमे वा ॥ ७ ॥ तित्तिरः क्रकरः क्रौञ्चसारसाभाससूकराः ॥ खगः किरीटी वामे तु सदा शुभतरा मताः ॥ ८ ॥ भवन्ति निर्गमे चैते सर्वकार्य्येसुसिद्धये ॥ ९ ॥

मोर, घरमें रहनेवाली गोह, गधा, धूम्याटपक्षी, कोयल, कुत्ता, कबूतर, कालीचिडी, सुअरी, नीलटांच, अथवा गीध, बगला इनआदि वैद्यके गमनमें वामें श्रेष्ठ हैं ऐसे शकुनको जाननेवाले कहते हैं ॥ ७ ॥ तीतर, करढौकपक्षी, कुंज, सारस, भास, शूकर, चील, किरीटी, ये पक्षी सब कालमें वामें श्रेष्ठ हैं॥ ८॥ ये सब वैद्यके गमनमें सर्वकार्यसिद्धिकेवास्ते श्रेष्ठ हैं॥ ९॥

अथ काकशकुन ।

काको दक्षिणतः श्रेष्ठो निर्गमे शुभदायकः ॥
प्रवेशे गदितः श्रेष्ठो वामतः कृष्णवायसः ॥ १० ॥

वैद्यके गमन करनेमें काक दाहिने श्रेष्ठ और शुभदायक है और वैद्यके प्रवेशमें कालाकाग वामें श्रेष्ठ कहा है ॥ १० ॥

अथ जाहशशाआदिकोंका शकुन ।

जाहकोऽपि शशकोऽपि मर्कटः कीर्त्तनञ्च गदितं न सुखाय ॥ न वै नाम न च दर्शनमेषां सर्पगोधाकृकलासबिडालाः ॥ ११ ॥ दर्शनं हितकरं प्रवदन्ति खञ्जरीटकमरालछिक्कराः ॥ नामतः शुभकराः प्रवदान्ति दार्वघाटवरटकौ शुकश्च ॥ १२ ॥

जहा, शशा, वानर, और इन्होंका कीर्तन करना, बोलना, और सर्प, गोह, किरलिया, बिलाव, इन्होंका नाम और देखनाभी हित नहीं है ॥ ११ ॥ खंजना, राजहंस, खातीचिडा, गांधीलमाखी, तोता, इन्होंके नाम और दर्शन वैद्यको श्रेष्ठ हैं ॥ १२ ॥

अथ गमनसमयके विविधपदार्थदर्शनशकुन ।

निर्गमे विविधकार्य्यसिद्धये भृङ्गराजरजतं पयो जलम् ॥ मत्स्य-मांसरुधिरं मृतकं वा धौतवासमुकुरं पिधानकम् ॥ १३ ॥ मार्गे छिन्दन्ति मार्जाराः सर्पा वा कृकलासकाः ॥ गोधा वापि प्रवेशे च पदमेकन्तु न व्रजेत् ॥ १४ ॥ प्रस्खलन्ति पादशिरसो वसनानि स्खलन्ति वा ॥ विक्रुष्टं वचनं श्रुत्वा पदमेकन्तु न व्रजेत् ॥ १५ ॥ गृहाणां ज्वलनं दृष्ट्वा भिद्यते सजलं घटम् ॥ पतनं भूरुहाणाञ्च दृष्ट्वा कुर्य्यान्न चङ्मम् ॥ १६ ॥ आक्रोशवचनं श्रुत्वा मार्जाराणां रुतं तथा ॥ कलहं गृहलोकस्य दृष्ट्वा चङ्क्रमणं न च ॥ १७ ॥ कनककङ्कणमेव विभूषणं सफलपुष्पमथासववारुणी ॥ फलमशोककरं ज्वरिणां तदा शुभकरो हि भवति भिषक् सदा ॥ १८ ॥

वैद्यके गमनमें अनेक कार्य्योंकी सिद्धिके लिये भोरा, चांदी, दूध, पानी, मछली, मांस, रत्न, मुरदा, धोयाहुआ वस्त्र, आच्छादितहुआ शीशा, इन्होंको देखना हित है ॥ १३ ॥ वैद्यके प्रवेश करनेमें बिलाव, सर्प, किरलिया, गोह, ये मार्गको छेदितकरैं तब एकपैरभी नहीं चलना ॥ १४ ॥ पैर शिथिल होजावै अथवा कपडे ढीले होजावैं और बुरावचन, सुनाजावै तब एकडंघभी गमन नहीं करना ॥ १५ ॥ गमनकरनेमें जलताहुआ घर दीखै और पानीसे भराहुआ कलशा फूटजावै और वृक्ष गिरपडे इन्होंको देखकर गमन नहीं करना ॥ १६ ॥ क्रोधके वचनको और बिलावके रोदनको और मनुष्योंके कलह अर्थात् लडाईको देखकर गमन नहीं करना ॥ १७ ॥ सोनाका कंकणआदि गहना, फल, फूल, आसव, मदिरा, सुखको देनेवाला फल इन्होंको जो वैद्य गमनमें देखै तो ज्वररोगियोंको सुख होता है ॥ १८ ॥

अथ शकुनाध्यायका उपसंहार।

एवं ज्ञात्वा परमनिपुणं पानमन्नादिकानां वीर्य्यं चैषां गुणमपि तथा कोपनं कोपवेगम् ॥ आदानं वा पुनरपि चयं कोपनस्योपचारं वैद्यो विद्वान्भवति भवने पूजितो राजलोकैः ॥ १९ ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे द्वितीयस्थाने शकुनवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ द्वितीयं स्थानं समाप्तम् ॥ २ ॥

ऐसे परमनिपुण पानको और अन्नआदिके वीर्य तथा गुणको और कोपको और कोपके वेगको और आदान और चयको और कोपनके उपचारको जानकै वैद्य स्थानमें राजालोगोंसे पूजाके योग्य होता है ॥ १९ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां द्वितीयस्थाने शकुनकथनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

यहां द्वितीयस्थान समाप्तहुआ ॥ २ ॥

अथ तृतीयस्थानम्।

अथ प्रथमोऽध्यायः १.

अथ औषधपरिज्ञानविधान।

आत्रेय उवाच ॥ अथातः संप्रवक्ष्यामि रोगसंकरकारणम् ॥ श्रमाद्व्यायामरोधाद्वा चिन्ताशोकभयादपि ॥ १ ॥ क्रोधादौषधगन्धेन क्षयाद्धातोर्विशेषतः ॥ उदीर्य्य कोष्ठादग्निश्च रक्तपित्तं तथा बहिः ॥ त्वचाश्रितश्च सम्भूय ज्वरं तस्मात्करोति हि ॥ २ ॥

आत्रेयजी कहते हैं-अब रोगोंके मिलापके कारणको कहताहूं परिश्रमसे और कसरतको नहीं करनेसे और चिंता, शोक, भय इन्होंसे ॥ १ ॥ और क्रोधसे और औषधीके गंधसे और विशेष करकै धातुके क्षयसे कोष्ठके अग्निको बढाकै और खालके बाहिर आश्रित-हुये रक्तपित्त ज्वरको करते हैं ॥ २ ॥

अथ ज्वरसे उत्पन्न होनेवाले रोग।

उक्तहेतुर्ज्वरो वापि ज्वरान्मन्दज्वरो भवेत् ॥ ३ ॥ मन्दान्मन्दतमो ज्ञेयस्तस्मादम्लातिसेवनात् ॥ जायते कामलस्तस्मात्प्ररूढे स्याद्धलीमकम् ॥ ४ ॥ हलीमकाद्भवेत्पाण्डुस्तस्माद्यस्मात्प्रकीर्त्तिताः ॥ यक्ष्मणो जायते शोफः शोफादुदरमेव च ॥५॥ तस्माद्गुल्मश्च वाताद्यं गुल्माच्छ्वासोऽथशूलिता॥मन्दाग्नित्वं भवेत्तस्मात्स्वरभेदोऽथ रोधनः ॥ ६ ॥ एतेषां सर्वरोगाणामुत्पत्तिः स्याज्ज्वरेण तु ॥ ज्वरेण मृत्युर्विज्ञेयो न मृत्युः स्याज्ज्वरं विना ॥ ७ ॥

ऐसे कहे हुये कारणवाला ज्वर है तिस ज्वरसे मन्दज्वरभी होता है ॥ ३ ॥ और मन्दज्वरसे अतिमन्दज्वर होता है तब खट्टे पदार्थको अत्यंत सेवनेसे कामलारोग उपजता है और तिससे हलीमकरोग उपजता है ॥ ४ ॥ और हलीमकसे पांडुरोग उपजता है राजरोगसे शोजारोग उपजता है और शोजारोगसे उदररोग उपजता है ॥ ५ ॥ तिस उदररोगसे वातका गुल्मरोग उपजता है और गुल्मसे श्वासरोग और शूल उपजता है तिस शूलसे मन्दाग्निरोग और मन्दाग्निसे स्वरभेदरोग उपजता है ॥ ६ ॥ ज्वरसे सब रोगोंकी उत्पत्ति होती है ज्वरसे मृत्यु होता है विशेष करकै ज्वरके बिना मरण नहीं होता है ॥ ७ ॥

अथ ज्वरसे उत्पन्न होनेवाले अन्यप्रकारके रोग।

शृणु भेषजरोगज्ञ द्वितीयं रोगसंकरम् ॥ मन्दज्वरो भवेन्नृणामतीसारस्ततो ज्वरः ॥ ८ ॥ तेन चापि भवेद्धिक्का शोषो मोहो भ्रमोऽरुचिः ॥ एतेषां शोफतो मृत्युस्तृतीयः कथ्यतेऽधुना ॥९॥

हे औषध और रोगको जाननेवाले ! दूसरे रोगसंकरको सुन मनुष्योंके मन्दज्वर होता है तिससे अतीसार उपजता है ॥ ८ ॥ और तिससे हिचकी, शोष, मोह, भ्रम, अरुचि, ये रोग उपजते हैं इन सबोंकी शोजासे मृत्यु होती है अब तीसरा रोगसंकर कहाजाता है ॥ ९ ॥

अथ दिनमें शयनकरनेसे होनेवाले रोग।

दिवास्वप्नादिदोषैर्वा प्रतिश्यायश्च जायते ॥ तस्मात्कासः समु-

द्दिष्टः कासात्पीनस एव च ॥ १० ॥ तस्मात्क्षयः क्षयाच्छोफो शोफेनाऽपि मृतिं व्रजेत् ॥

दिनमें शयन करने आदिसे जुखाम उपजता है तिस जुखामसे खांसी और खांसीसे पीनस उपजता है ॥१०॥ और पीनससे क्षय और क्षयसे शोजा उपजता है और शोजासे मरजाता है॥

अथ महाभयंकर रोग।

ज्वरः क्षयश्च यक्ष्मा च कुष्ठगुल्मार्शसंग्रहाः ॥ ११ ॥ शर्करा मेह उन्माद अपस्मारो भगन्दरः ॥ एते महाघोरतरा याप्यं कुर्वन्ति मानवम् ॥ १२ ॥

और ज्वर, क्षय, राजरोग, कुष्ठ, गुल्म, बवासीर, ॥ ११ ॥ शर्करा, प्रमेह, उन्माद, मृगीरोग, भगंदर ये अत्यंत महाघोररोग हैं ये मनुष्यको कष्टसाध्य कर देते हैं ॥ १२ ॥

अथ सर्वव्याधियोंका हेतु।

वातपित्तादयो दोषास्तथा श्लेष्मसमुद्भवाः ॥
जायन्ते व्याधयः सर्वे तेषां वक्ष्याम्युपक्रमम् ॥ १३ ॥

वात और पित्तसे तथा कफसे उपजे सब रोग होते हैं तिन्होंके उपचारको कहताहूं॥ १३॥

अथ वातादिदोषोंका पाचनकाल।

वातः पचति सप्ताहात्त्रिरात्रात्पित्तमेव च ॥ श्लेष्मा सार्द्धदिनेनापि विपचेद्भिषजां वर ॥ १४ ॥ द्वन्द्वजं वातपित्तञ्च नवरात्रेण पच्यते ॥ श्लेष्मवातौ दशाहेन पञ्चाहात्पित्तश्लैष्मिकम् ॥ १५ ॥ शमनाय च द्वन्द्वानां तुर्य्याहात्पाचनं तथा ॥ त्रिदोषस्य च घोरस्य पाचनं द्वादशे दिने ॥ १६ ॥ सान्निपातश्च पचति चतुर्दशदिनैरपि ॥

वातदोष सातदिनमें पकता है पित्तदोष तीनदिनमें पकता है हे वैद्यवर ! कफदोष डेढदिनमें पकजाता है ॥ १४॥ मिलेहुये वात पित्त ९ नवादिनोंमें पकते हैं; मिलेहुये कफ और वात दशदिनमें पकते हैं, मिलेहुये पित्त और कफ पांचदिनमें पकते हैं ॥ १५ ॥ मिलेहुये दो दोषोंकी शांतिके लिये चार दिनमें पाचन हित है और घोररूपत्रिदोषमें बारहवेंदिन पाचन हित है ॥ १६ ॥ चौदहदिनोंकरकै भी सन्निपात पकता है ॥

अथ पाचनादिक्रियाका समय।

ज्ञात्वा दोषबलं पक्वं तस्माद्देयन्तु पाचनम् ॥ १७ ॥
युक्तं निदानलक्षैस्तु तस्मात्संशमनक्रिया ॥

सो दोषको पाकके बलको जान पीछे पाचन देना चाहिये ॥ १७ ॥ निदानके लक्षणोंसे युक्तहुयेको जान पीछे संशमनक्रिया करनी ॥

अथ धातुगतदोषोंका पाचनकाल ।

सप्ताहेनापि पच्यन्ते सप्तधातुगता मलाः ॥ १८ ॥ चिरादपि हि पच्यन्ते सन्निपातज्वरे मलाः ॥ विरामश्चाप्यतः प्रोक्तो ज्वरः प्रायोऽष्टमेऽहनि ॥ न भवेत्सप्तमेऽहानि विरामज्वरकारणम् ॥ १९ ॥

और सातधातुओंमें प्राप्तहुये दोष सातदिनोंमें पकजाते हैं ॥ १८ ॥ विशेषकरके आठमें दिन ज्वरका विराम होता है कारण सातमेंदिन ज्वरकी शांतिका कारण नहीं होता ॥ १९ ॥

अथ अपक्वदोषमें औषधका निषेध ।

विचार्य्य भेषजं दद्यादजीर्णे मतिमान्भिषक् ॥
मन्दो हि सुतरामग्निर्भेषजं न विपाचयेत् ॥ २० ॥

तब विचारकर बुद्धिमान् वैद्य औषधको नवीनज्वरमें देवै क्योंकि, अतिमंदहुआ अग्नि औषधको नहीं पकाता है अर्थात् नवीनज्वरमें औषध विना विचारे नहीं देना ॥ २० ॥

अथ लङ्घनका उपचार ।

सर्वेषु दोषशामेषु पाचनं लङ्घनं स्मृतम् ॥

इसवास्ते सबप्रकारसे दोषको शांतकरनेके लिये पाचन लंघन ही कहा है ॥

अथ लंघनप्रकरण ।

लङ्घितं मध्यलङ्घितं स्यादतिलङ्घितमेव च ॥ २१ ॥
लक्षणं वक्ष्यते चैषां मनुष्याणां शृणुष्व हि ॥ २२ ॥

मनुष्योंके लंघन, मध्यलंघन, अतिलंघन इनभेदोंसे लंघन, तीनप्रकारका है ॥ २१ ॥ इन्होंके लक्षण कहेजाते हैं वे मेरेसे सुन ॥ २२ ॥

अथ शुद्धलंघितका लक्षण ।

गतक्लमोऽरुचिम्लानिरिन्द्रियाणां प्रसन्नता ॥
लङ्घने दोषपाकस्तु शुद्धलङ्घितलक्षणम् ॥ २३ ॥

ग्लानि जातीरहै रुचि उपजै और इंद्रियोंकी प्रसन्नता रहै और लंघनमें दोष पकजावै ये शुद्धलंघनके लक्षण हैं ॥ २३ ॥

अथ मध्यमलंघितका लक्षण ।

किञ्चित्क्लमोऽरुचिम्लानिरिन्द्रियाणां विवर्णता ॥ बहुतृष्णाल्प-

क्षुच्चापि श्रमश्चैव भिषग्वर ॥ २४ ॥ किञ्चित्संस्निग्धता गात्रे रुचिबाधातिबन्धता ॥ मध्यपाकी च दोषः स्यान्मध्यलङ्घितलक्षणम् ॥ २५ ॥

कछुक ग्लानि रहै रुचिभी अल्पहो इन्द्रियोंका वर्ण बदलजावै बहुत तृषा लगै और भूख भी थोडी लगै और परिश्रम उपजै ॥ २४ ॥ और शरीरमें कछुक चिकनाईपना उपजै रुचिकी पीडा हो और बंधापडजावै और दोषभी कछुक पकै और कछुक नहीं पकै ये मध्यलंघितके लक्षण हैं ॥ २५ ॥

अथ अतिलङ्घितका लक्षण।

वैकल्यं जायते तन्द्रा विड्भेदश्च विनिद्रता॥वेपथुश्च शिरोऽर्त्तिश्च क्षुत्क्षामं शूलमेव च ॥ २६ ॥ श्यामास्यं प्लावनं नेत्रे मूर्च्छामोहश्रमातुरम् ॥ अतिलङ्घितमेतैस्तु लक्षणं संविभावयेत् ॥ २७॥

विकलपना, तंद्रा, विष्ठाका पतलापन, ये उपजैं और नींद आवै नहीं, कांपै और शिरमें दर्दहो अल्प भूख लगै और शूल उपजै ॥२६॥ कालामुख होजावै और नेत्रोंसे पानी झिरै और मूर्च्छा, मोह, परिश्रम इन्होंसे पीडितहो ये सब लक्षण अतिलंघनके हैं ॥ २७ ॥

अथ लंघितकरनेमें अयोग्य रोगी।

वेलाज्वरे भूतज्वरे तथा पित्तज्वरेऽपि च ॥ आयासे क्रोधजे वापि भयकामज्वरेऽपि च ॥ २८ ॥ एतेषां लङ्घनं नैव कारयेद्भिषगुत्तमः ॥ २९ ॥ बालं वृद्धं कृशं क्षीणमतीसारव्रणातुरम् ॥ गुर्विणीं सुकुमारञ्च लंघयेन्न कदाचन ॥ ३० ॥

वेलाज्वर, भूतज्वर, पित्तज्वर, परिश्रमका ज्वर, क्रोधज्वर, भयज्वर, कामज्वर ॥ २८ ॥ इन्होंमें वैद्य लंघन नहीं करावै ॥ २९ ॥ बालक, वृद्ध, कृश, क्षीण, अतीसाररोगी, घावरोगी, गर्भवाली स्त्री, कोमल मनुष्य इन्होंको कभी भी लंघन नहीं कराना ॥ ३० ॥

अथ लंघनकरनेयोग्य रोगी।

सामे मन्दज्वरे तीव्रे रुचिविड्बन्धकेऽपि च ॥ अजीर्णे तु प्रशस्तश्च लंघनं मात्रयान्वितम् ॥ ३१ ॥ स्निग्धत्वश्चातिगात्राणामुदरं गर्जयेद्भृशम् ॥ शिरोऽर्त्तिर्जठराध्मानः प्रततं कण्ठकूजनम् ॥ ३२ ॥ अरुचिः पीतता मूत्रे निद्रातन्द्रातुरं नरम् ॥ आमज्वरञ्च विज्ञाय लंघयेद्भिषगुत्तमः ॥ ३३ ॥

आमसहित मंदज्वर, तीक्ष्णज्वर, अरुचि, विष्ठाका बंधा, अजीर्ण इन्होंमें भी उनमानसे लंघन कराना श्रेष्ठ है ॥ ३१ ॥ शरीरके अंग अत्यंत चिकने होजावैं और पेट अत्यंत बोलै शिरमें पीडाहो और पेटपै अफारा उपजै और निरंतर कंठ बोलता रहै ॥ ३२ ॥ और अरुचि हो नेत्रोंमें पीलापन उपजै नींद और तंद्रासे रोगी पीडित होवै ये आमज्वरके लक्षण हैं इस रोगवालेको कुशल वैद्य लंघन करवावै ॥ ३३ ॥

अथ छःप्रकारके लंघन ।

अनशनवमनविरेचनरक्तस्रुतितप्ततोयपानैः ॥
स्वेदनकर्मसहितैः षड्विधं लंघनं गदितम् ॥ ३४ ॥

नहींखाना, वमन, जुलाब, रक्तका निकासना, गरमपानीको पीना, स्वेद अर्थात पसीनाका देना इनभेदोंसे लंघन छःप्रकारका कहा है ॥ ३४ ॥

अथ विरतज्वरलक्षण ।

क्षुत्क्षामं श्रमशैथिल्यं भ्रमवेगज्वरातुरम् ॥
अन्तर्दाहं रक्तमूत्रं विरामज्वरलक्षणम् ॥ ३५ ॥

भूख थोडी लगै हलकापनहो श्रमसे शिथिलपनाहो और भ्रम, वेग, ज्वर इन्होंसे रोगी पीडितहोवै और शरीरके भीतर दाह रहै और लालमूत्र उतरै ये विरामज्वरके लक्षण हैं अर्थात ये लक्षण उपजैं तब जानना कि, ज्वर उतरनेवाला है ॥ ३५ ॥

अथ दोषपरत्वसे लंघनकी मर्यादा ।

वातिको लंघनैः षड्भिः पैत्तिकस्तु दिनत्रयम् ॥ सप्तभिः पचति श्लेष्मा दृष्ट्वा लंघनमाचरेत् ॥ ३६ ॥ त्रिदोषो दशरात्राणि पचते लंघनैस्तु सः ॥ दिने पञ्चदशे प्राप्ते पचते सान्निपातिकः ॥ ३७ ॥ मुञ्चेद्वा आतुरं हन्ति भवेद्वा विषमज्वरः ॥

वातदोष छः लंघनोंसे पकता है, पित्तदोष तीनदिनमें पकता है, कफदोष सातलंघनोंसे पकता है ऐसे देखकै लंघनका आचरण करै ॥ ३६ ॥ त्रिदोष लंघनोंसे दशदिन करकै पकता है और पंदरहदिनोंकरकै सन्निपातदोष पकता है ॥ ३७ ॥ इनकालोंमें ये दोष रोगीको छोडदेते हैं अथवा मारते हैं किंवा विषमज्वरको उपजाते हैं ॥

अथ वयपरत्वसे दोषोंके कोपका प्रकार ।

बाल्ये रक्तमया दोषाः कफपित्तादनंतरम् ॥ ३८ ॥ षोडशे तु समे प्राप्ते त्रिदोषप्रभवा गदाः ॥ पञ्चविंशतिमे प्राप्ते ज्वरो वै सान्निपातिकः ॥ ३९ ॥

मनुष्यकी बालकअवस्थामें रक्तकी प्रधानतावाले दोष रहते हैं पीछे कफ और पित्तकी अधिकतावाले दोष होजाते हैं ॥ ३८ ॥ सोलहवांवर्ष प्राप्त होतेही त्रिदोषसे रोग उपजते हैं और विशेषकरकै पच्चीसवर्षतक सन्निपातसे ज्वररोग उपजता है ॥ ३९ ॥

अथ ज्वरवालेकूं क्वाथ देनेका समय।

वातपित्तकफैरेव रसरक्तसमुच्चयात् ॥
जायते यो ज्वरः सम्यक् पक्वे क्वाथं तु दापयेत् ॥ ४० ॥

वात, पित्त, कफ, रस, रक्त इन्होंके संचयसे जो ज्वर उपजै वह जब अच्छीतरह पकजावै तब क्वाथको देवै ॥ ४० ॥

अथ क्वाथका प्रकार।

क्वाथः सप्तविधः प्रोक्तः पाचनः शमनस्तथा ॥
दीपनः क्लेदनः शोषी सन्तर्पणो विशेषतः ॥ ४१ ॥

पाचन, शमन, दीपन, क्लेदन, शोषण, संतर्पण इनभेदोंसे क्वाथ सातप्रकारका कहाहै ॥ ४१ ॥

अथ सातप्रकारसे क्वाथ देनेका समय।

पाचनश्च नरे देयं निशासु प्रविजानता ॥ पूर्वाह्णे शमनो देयोऽपराह्णे दीपनः स्मृतः ॥ ४२ ॥ सन्तर्पणो भेदनश्च कल्ये पानाय दापयेत् ॥ शोषणोपि प्रभाते च क्वाथः पाने प्रकीर्त्तितः ॥ ४३ ॥

वैद्यने पाचनक्वाथ रात्रिमें देना और शमनक्वाथ दिनके प्रथमकालमें देना और दुपहरोंके पश्चात् दीपनक्वाथ देना ॥ ४२ ॥ संतर्पण और भेदनक्वाथ प्रभातमें देना और शोषनक्वाथभी प्रभातमेंही देना ॥ ४३ ॥

अथ औषधादिक देनेके समयकी संज्ञा।

रात्रौ यः प्रथमो यामो भूतवेला प्रकीर्त्तिता ॥ द्वितीयं निशि इत्याहुर्निशीथश्च ततः परम् ॥ ४४ ॥ गणरात्रं ततो ज्ञेयं कालमप्रातराशिनम् ॥ पूर्वापराह्णमध्याह्नाः परार्द्धदिनशेषकाः ॥ ४५ ॥ पूर्वे दिनावसाने च भेषजानामुपक्रमः ॥ ४६ ॥

रात्रीके प्रथम यामको भूतवेला कहते हैं और दूसरे यामको निशि कहते हैं और तिससे परे निशीथ कहाता है ॥ ४४ ॥ तिससेपरै गणरात्र कहाता है और पूर्वाह्ण, मध्याह्न, अपराह्ण, परार्द्ध, दिनशेष ऐसी संज्ञा है ॥ ४५ ॥ प्रभातमें और सायंकालमें औषधियोंका उपचार है ॥ ४६ ॥

अथ क्राथके सात प्रकार।

पाचनो दीपनीयश्च शोधनः शमनस्तथा ॥
तर्पणः क्लेदनः शोषी क्राथः सप्तविधः स्मृतः ॥ ४७ ॥

पाचन, दीपन, शोधन, शमन, तर्पण, क्लेदन, शोषण ऐसे सातप्रकारके क्राथ कहे हैं ४७॥

अथ सातप्रकारके क्राथोंका लक्षण।

पाचनोऽर्द्धावशेषी स्याच्छोधनो द्वादशांशकः ॥ क्लेदनश्चतुरङ्गश्च शमनोऽष्टावशेषितः ॥ ४८ ॥ दीपनीयो दशांशस्तु तर्पणश्च समांशकः ॥ विशोषी षोडशांशश्च क्राथभेदाः प्रकीर्त्तिताः ॥४९॥

अग्निसे उबालनेमें आधा शेष रहा पानी पाचनक्राथ कहाता है और जिसमें बारहवाँ हिस्सा पानी शेष रहै वह शोधन कहाता है जिसमें चौथा हिस्सा पानी शेष रहै वह क्लेदन कहाता है जिसमें आठमां हिस्सा पानी शेषरहै वह शमन कहाता है ॥ ४८ ॥ जिसमें दशमां हिस्सा पानी शेष रहै वह दीपन कहाता है जो उबाला मात्र जावै वह तर्पण कहाता है जिसमें सोलहवां हिस्सा पांनी शेष रहै वह शोषण कहाता है ऐसे क्राथके भेद कहे हैं॥ ४९॥

अथ सातप्रकारके क्राथोंका कार्य।

पाचनः पचते दोषान्दीपनो दीप्यतेऽनलम् ॥ शोधनो मलशोधी स्याच्छमनः शमते गदान् ॥ ५० ॥ तर्पणस्तर्पते धातून्क्लेदी हृत्क्लेदकारकः ॥ विशोषी शोषमाधत्ते तस्मात्क्राथं परीक्षयेत् ॥ ॥ ५१ ॥ क्लेदी विशोषी विज्ञाय वामनं कारयेन्नरम् ॥

पाचनक्राथ दोषोंको पकाता है, दीपनक्राथ जठराग्निको प्रज्वलित करता है, शोधनक्राथ मलको शोधता है, शमनक्राथ रोगोंको शांत करता है ॥ ५० ॥ तर्पणक्राथ धातुओंको तृप्त करता है क्लेदनक्राथ हृदयमें क्लेदको करता है शोषणक्राथ शोषको करता है तिसवास्ते क्राथकी परीक्षा करनी ॥ ५१ ॥ मनुष्यको क्लेदवाला और विशेषकरकै शोषवाला जानकै वमन कराना चाहिये।

अथ क्राथरक्षणका उपदेश।

न लङ्घयेत्क्राथकृतं नान्तराणि च चालयेत् ॥ ५२ ॥ न शोषयेत्पुनः स्थाप्यो नाशुचौ न चकासते ॥ स च क्राथो न शस्तः स्याद्रोगसङ्करकारणम् ॥ ५३ ॥ न शोषयेत्पुनः क्राथं न च भूमिगतं पुनः ॥ दोषसंशमनेनैते प्रशस्ता गदकर्मणि ॥ ५४ ॥

और बनतेहुये क्काथको त्यागै नहीं और बीचमें चलावै नहीं किंतु यथायोग्य पकावै॥ ५२॥ स्थापित किये क्काथको फिर शोषित करै नहीं और अशुद्ध जगहमें क्काथको बनावै नहीं क्योंकि अयोग्य क्काथ अच्छा नहीं होता किंतु रोगोंके मिलापका कारण होता है ॥ ५३ ॥ क्काथको फिर शोषित नहीं करै और पृथिवीमें प्राप्तहुये क्काथको फिर नहीं ग्रहण करै क्योंकि रोगके नाशमें दोषको शांत करनेमें क्काथ श्रेष्ठ हैं ॥ ५४ ॥

अथ क्काथसंबंधी अनिष्ट लक्षण।

विदीर्य्यते पततेऽपि स्फुटते क्काथतः जनः ॥
एतेऽनिष्टकराः क्काथा न दोषशमनाय च ॥ ५५॥

बुरे क्काथसे रोगी विदीर्ण होजाता है गिरजाता है और फटजाता है ये बुरे क्काथ दुःखको देते हैं और दोषको शांत नहीं करते ॥ ५५ ॥

अथ हीनक्काथके लक्षण।

एतैर्हीलक्षणैर्हीनं क्काथं दृष्ट्वा परीक्षयेत् ॥ ५६ ॥ कृष्णं नीलं घनं रक्तं पिच्छिलं शिथिलश्च यत् ॥ दग्धं कुणपगन्धश्च विस्रगन्धं विवर्जयेत् ॥५७॥ एतैरसाध्यं जानीयाद्रोगिणं नात्र संशयः ॥

इन पूर्वोक्तलक्षणोंसे हीनहुये क्काथकी परीक्षा करनी ॥ ५६ ॥ काला, नीला, कठिन, लाल झागोंवाला, शिथिल, दग्धहुआ, मुर्दाकेसी गंधवाला, कच्ची गंधवाला, ऐसे क्काथको वर्ज देवै ॥ ५७ ॥ इसतरहके क्काथोंसे रोगी असाध्य होजाता है इसमें संशय नहीं ॥

अथ उत्तमक्काथका लक्षण।

द्रव्यगुणानुवर्णेन द्रव्यगन्धं विनिर्दिशेत् ॥ ५८ ॥
तद्वद्विशुद्धं सच्छायं कषायममृतोपमम् ॥

द्रव्यके गुणके अनुबंधसे द्रव्यके गंधको कहै ॥ ५८ ॥ विशेषकरकै शुद्ध और सुंदर कांतिवाला क्काथ अमृतके समान होता है ॥

अथ वातज्वरमें पाचनका विधि।

वातज्वरे लङ्घनान्ते दत्त्वा चान्नं तथोपरि ॥
निशासु पाचनं देयं ज्ञात्वा दोषबलाबलम् ॥ ५९ ॥

वातज्वरमें लंघनके अंतमें अन्नको देवै और तिसके ऊपर रातको पाचन क्काथ देवै परंतु दोषके बल और अबलको देखै ॥ ५९ ॥

अथ पित्तज्वर और कफज्वरमें पाचनका विधि।

त्रिरात्रे पैत्तिके देयं श्लैष्मिके प्रथमेऽहनि॥

पित्तके ज्वरमें तीसरेदिन और कफज्वरमें प्रथमदिन पाचन देना॥

अथ पाचनका निषेध ।

अविज्ञाते च दोषे च पाचनं न प्रदापयेत् ॥ ६० ॥

और विनाजानेदोषमें पाचन नहीं देना ॥ ६० ॥

अथ ज्वरकी मर्यादा ।

सप्तरात्राद्धि मर्य्यादा ज्वरेणैवोपलक्ष्यते ॥
तस्मान्नवज्वरे पीतं दोषकृन्न च दोषहृत् ॥ ६१ ॥

ज्वरकी मर्यादा सातदिनकी प्रसिद्ध है तिसवास्ते नवीनज्वरमें पानाकिया पाचनरूपी औषध दोषको करता है किंतु दोषको हरता नहीं है ॥ ६१ ॥

अथ ज्वरमें पाचनादिदेनेकी मर्यादा ।

तस्मादादौ प्रदेयन्तु पाचनञ्च दिनत्रयम् ॥ शमनीयं प्रदेयन्तु पञ्चरात्रं ततः परम् ॥ ६२ ॥ शोधनं दीपनीयन्तु एकरात्रं प्रदापयेत् ॥ ६३ ॥

तिसे आदिमें तीनदिन पाचनको देवै तिसेपीछै पांचरात शमनकाथको देवै ॥ ६२ ॥ शोधन और दीपनकाथको एकदिन देवै ॥ ६३ ॥

अथ क्वाथके विपत्तिका प्रकार।

क्वाथपाने क्लमो मूर्च्छा वैक्लव्यञ्च प्रदृश्यते॥
वमनञ्च यदा प्रोक्तं शमनं पथ्यकेऽपि वा ॥ ६४ ॥

जो क्वाथके पीनेमें ग्लानि, मूर्च्छा, विकलपना ये उपजै तब वमनसंज्ञक औषध देना और पथ्यमें शमनक्वाथ देना ॥ ६४

अथ पथ्यकी आवश्यकता ।

सदा पथ्यं प्रयोक्तव्यं नापथ्येन स सिध्यति ॥ औषधेन विना पथ्यैः सिध्यते भिषगुत्तमैः ॥ ६५ ॥ विना पथ्यं न साध्यः स्यादौषधानां शतैरपि ॥

सबकालमें पथ्य देना चाहिये क्योंकि, अपथ्यसे कोईभी रोग सिद्ध नहीं होता किंतु औषधके बिनाभी पथ्योंकरकै रोग शांत होजाता है ॥ ६५ ॥ सैकडों औषधोंको सेवतेहुयेभी पथ्यके बिना रोग शांत नहीं होता ॥

अथ ज्वरितको पथ्यभोजनका उपदेश ।

ज्वरितो हितमश्नीयाद्यद्यप्यस्यारुचिर्भवेत् ॥ ६६ ॥ अन्नकाले ह्यभुञ्जानो क्षीयते म्रियतेऽपि वा ॥ स क्षीणः कृच्छ्रतां याति

यात्यसाध्यत्वमेव च ॥ ६७ ॥ तस्माद्रक्षेद्बलं पुंसां बलशान्तिर्हि जीवितम् ॥

और ज्वरवाला रोगी पथ्यको सेवै जो इसकी अरुचिभी हो तबभी ॥ ६६ ॥ अन्नकालमें नहीं भोजन करताहुआ ज्वररोगी क्षीण होजाता है अथवा मरजाता है और क्षीणहुआ वह कष्टपनेको प्राप्त होकै पीछे असाध्यपनेको प्राप्त होता है ॥ ६७ ॥ तिसकारणसे मनुष्योंके बलकी रक्षा करनी क्योंकि, बलकी शांतिही जीवन कहा है ॥

लंघिते चैव दोषे च यवागूपानमाचरेत् ॥ ६८ ॥
शालिषष्टिकमुद्गश्च यूषं शस्तं वदन्ति हि ॥ ६९ ॥

लंघनके करनेमें और दोषमें यवागूको पीता रहै ॥ ६८ ॥ शालिचावल, सांठी चावल मूंग इन्होंके यूषको लंघनमें श्रेष्ठ कहते हैं ॥ ६९ ॥

अथ मध्यलंघितको अन्नविधि ।

पञ्चकोलकसंसिद्धा यवागूर्मध्यलङ्घिते ॥
भवेत्प्रशस्ता सततं तस्य सन्तर्पणं हितम् ॥ ७० ॥

पीपल, पीपलामूल चीता, चव्य और सोंठ इन पांचों मूलको कूटकर क्काथ बनावे, इस क्काथमें तंदुलकी या मूँगकी यवागू बनावे और पकावे, फिर सिद्धहुई यह यवागू मध्यलंघितको प्रशस्त है, और रोगीको तृप्त रखती है ॥ ७० ॥

अथ क्लमशांतिकी विधि ।

आजं दुग्धं गुडोपेतं पानाय ज्वरशान्तये ॥
तेन क्लमविनाशः स्यात्सुखमाशु प्रपद्यते ॥ ७१ ॥

बकरीके दूधमें गुडमिला पीवै इसे ज्वरकी शांति होती है तब ग्लानिका नाश और तत्काल सुख उपजता है ॥ ७१ ॥

अथ क्काथपीनेका विधि ।

उदीच्यां वा पूर्वस्यां वाऽभिमुखश्चोपवेशयेत् ॥ पाययेत्क्काथपानञ्च कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् ॥ ७२ ॥ पानपात्रमधः कृत्वा शयीता ज्ञानमेव च ॥ पीत्वा चैव तृषार्त्तोऽपि न जलं पाययेत्क्षणम् ॥ ७३ ॥ गतक्लमं नरं दृष्ट्वा तदा संपद्यते सुखम् ॥ ७४ ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने भेषजपरिज्ञानविधिर्नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

उत्तरको अथवा पूर्वको मुखकरा रोगीको बैठावै पीछे ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन करा क्वाथका पान करावै ॥ ७२ ॥ पीछे पीनेके पात्रको अधोमुख स्थापित कर जागताहुआ शयन करै और क्वाथका पान करके तृषावालाभी दो घडीतक पानीको नहीं पीवै ॥ ७३ ॥ जब रोगीकी ग्लानि दूर होजावै तब रोगी सुखको प्राप्त होता है ॥ ७४ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने औषधपरिज्ञानविधिर्नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः २.

अथ ज्वरचिकित्सा ।

आत्रेय उवाच ॥ अनभिज्ञाश्चिकित्सायां शास्त्राणां पठनेन किम् ॥ यथा पलालं बीजैस्तु रहितं निष्प्रयोजकम् ॥ १ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—जो वैद्य चिकित्साकर्ममें कुशल नहींहो और वैद्यशास्त्रके पठनमें कुशलहो तिसको क्या फल होता है अर्थात् कुछ नहीं जैसे अन्नसे रहित तुष निष्फल होता है तैसे ॥ १ ॥

अथ कुवैद्यनिंदा ।

वरमाशीविषविषं क्वथितं ताम्रमेव च ॥ पीतमत्यग्निसन्तप्ता भक्षिता वाप्ययोगुडाः ॥ २ ॥ न तु श्रुतवतां वेशं बिभ्रतां शरणागतात् ॥ ग्रहीतुमन्नपानं वा वित्तं वा रोगपीडितात् ॥ ३ ॥

सर्पआदिका विष, उबालाहुआ तांबा, अत्यंत अग्निमें तप्त किये लोहाके गोले इनसबोंको सेवनाभी हित है ॥ २ ॥ परंतु वैद्योंके वेशको धारण करनेवाले और रोगियोंसे अन्न, पान, धन, इन्होंको हरनेवाले ऐसे वैद्योंकी औषधको नहीं खावै ॥ ३ ॥

अथ वैद्यका लक्षण ।

तदेव युक्तं भैषज्यं यदारोग्याय जायते ॥ स चैव भिषजां श्रेष्ठो रोगेभ्यो यो विमोक्षयेत् ॥ ४ ॥

जो आरोग्यको करता है वही योग्य औषध है और जो रोगोंसे छुडावै वह ही उत्तम वैद्य कहाता है ॥ ४ ॥

अथ वैद्यकशास्त्रपठनकी आवश्यकता ।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन रोगवारणहेतुना ॥ युक्ता निदानलक्षैस्तु संदि

तोपायसंयुता ॥ ५ ॥ पठितव्या समासेन संहिताज्ञानहेतवे ॥
ज्ञात्वा रोगप्रतीकारं ततः कुर्य्यात्प्रतिक्रियाम् ॥ ६ ॥

तिसकारणसे रोगको निवारण करनेवाले कारणसे संयुक्त सब जतन करकै निदानके लक्षण और रोगोंसे तथा रोगप्रतीकारकी चिकित्सासे अन्वित हुई वैद्यकसंहिता ॥ ५ ॥ विस्तार करकै पठितकरनी योग्य है संहिताके ज्ञानके लिये और रोगको दूर करनेके उपायको जान पीछे चिकित्साको करै ॥ ६ ॥

रोग नहीं जाननेसे हानि।

अविज्ञाय रुजं सम्यङ्मोहादारभते क्रियाः ॥
विधानज्ञोऽथ शास्त्रज्ञो न तत्सिद्धिः प्रजायते ॥ ७ ॥

जो वैद्य रोगको नहीं जानकै क्रियाका आरंभ करता है वह विधानको और शास्त्रको जाननेवालाभी सिद्धिको प्राप्त नहीं होता ॥ ७ ॥

अथ वैद्यशास्त्रज्ञाताको फल।

निदानं रोगविज्ञानं भेषजानां गुणागुणम् ॥
विज्ञाय कुरुते यस्तु तस्य सिद्धिर्न दूरतः ॥ ८ ॥

निदान और रोगका जानना, औषधियोंके गुण और दोष इन्होंको जानकै जो वैद्य क्रियाको करता है तिसको शीघ्र सिद्धि होती है ॥ ८ ॥

रोगादिक जाननेकी आवश्यकता।

आदावेव रुजां ज्ञानं साध्यासाध्यं विचक्षणः ॥
याप्यं सर्वरुजाश्चैव ततः कुर्य्यात्प्रतिक्रियाम् ॥ ९ ॥

आदिमें वैद्य रोगके ज्ञानको और साध्य और असाध्यरूपको तथा कष्टसाध्यपनेको जानै पीछे क्रियाको करै ॥ ९ ॥

अथ देशकालआदिक जाननेकी आवश्यकता।

देशं कालं वयो वह्निसात्म्यं प्रकृतिभेषजम् ॥
एवं विज्ञाय सद्वैद्यस्ततः कुर्य्यात्प्रतिक्रियाम् ॥ १० ॥

देश, काल, अवस्था, अग्नि, स्वभाव, प्रकृति इन्होंको जानकै कुशल वैद्य चिकित्साको करै ॥ १० ॥

अथ रोगहेतुवातादि दोष।

नास्ति रोगो विना दोषैर्दोषा वातादयः स्मृताः ॥
ज्वरादयः स्मृता रोगास्तान्सम्यक्परिलक्षयेत् ॥ ११ ॥

दोषोंके विना रोग नहीं होता और वे दोष वातआदि कहाते हैं और ज्वरआदि रोग हैं तिनसबोंकी अच्छीतरह परीक्षा करै ॥ ११ ॥

अथ रोगपरीक्षाके प्रकार ।

आप्तानाञ्चोपदेशेन प्रत्यक्षीकरणेन च ॥ आतुरादिदृशा स्पर्शाच्छीतादिप्रश्नतः परम् ॥ १२ ॥ दर्शनस्पर्शनप्रश्नै रोगज्ञानं त्रिधा मतम् ॥ मुखाक्षिदर्शनात्स्पर्शाच्छीतादिप्रश्नतः परम् ॥ १३ ॥

वैद्योंके उपदेशसे और प्रत्यक्षीकरणसे और वैद्य आदिकी दृष्टिसे और स्पर्शसे और शीतआदिके पूछनेसे रोगका ज्ञान करै ॥ १२ ॥ दर्शन, स्पर्श और प्रश्न इनभेदोंसे रोगोंका तीन प्रकारका ज्ञान होता है तहां मुख और नेत्र इन्होंके दर्शनसे, अंगके शीत उष्ण आदिक स्पर्शसे और कैसा है क्या क्या होता है इत्यादिक प्रश्नसे तीन प्रकारका रोग ज्ञान होता है ॥ १३ ॥

अथ साध्याऽसाध्यका लक्षण ।

कृच्छ्रयाप्यसुखोपायो द्विविधः साध्य उच्यते ॥
असाध्यो द्विविधो ज्ञेयः कृच्छ्रः कृच्छ्रतमोऽपरः ॥ १४ ॥

कष्टसाध्य और सुखसाध्य इनभेदोंसे साध्य दो प्रकारका है और कष्टसाध्य और अतिकष्टसाध्य इनभेदोंसे असाध्यभी दो प्रकारका है ॥ १४ ॥

अथ साध्यादिकहोनेका कारण ।

याप्याः केचित्प्रकृत्यैव याप्याः साध्या उपेक्षया ॥ स्वभावाद्व्याधयः साध्याः केचित्साध्या उपेक्षिताः ॥ १५ ॥ साध्या याप्यत्वमायान्ति याप्याश्चासाध्यतां तथा॥ घ्नन्ति प्राणांश्च साध्यास्तु नराणामक्रियावताम् ॥ १६ ॥

कितनेक रोग स्वभावसेही कष्टसाध्य होते हैं और कितनेक साध्यरोग चिकित्साके अभावसे कष्टसाध्य होते हैं और कितनेक रोग स्वभावसे साध्य होते हैं और कितनेक नहीं चिकित्सित किये रोग साध्य होते हैं ॥ १५ ॥ साध्यरोग कष्टसाध्यपनेको प्राप्त होते हैं और कष्टसाध्यरोग असाध्यपनेको प्राप्त होते हैं इससे क्रियाको नहीं करनेवाले मनुष्योंको साध्यरोगभी मारदेते हैं ॥ १६ ॥

उपद्रवका लक्षण ।

व्याधेरुपरि यो व्याधिः सोपद्रव उदाहृतः ॥ सोपद्रवां न जीवन्ति

१—प्रत्यक्षीकरणेन च इत्यत्र प्रत्यक्षादनुमानतः इति वा पाठान्तरम् ।

जीवन्ति निरुपद्रवाः ॥ १७ ॥ ज्ञात्वाल्पकोऽपि भिषजाः परिचिन्तनीयो नोपेक्षणीय इति रोगगणो ह्यसाध्यः ॥ स्वल्पोऽप्यरिर्गरल वह्निसमानरूप आप्तोबलं न शमतामुपयाति काले॥१८॥ शत्रुः स्थानबलं प्राप्य विक्रमं कुरुते बली॥तथा धात्वन्तरं प्राप्य विक्रमं कुरुते गदः ॥ १९ ॥

रोगके ऊपर जो रोग उपजै वह उपद्रवसहित रोग कहाता है उपद्रवसहित रोगवाले नहीं जीवते हैं और उपद्रवसे रहित रोगवाले जीवते हैं ॥ १७ ॥ अल्परोगभी वैद्योंने चिंतवन करना चाहिये किंतु असाध्य रोग छोडना नहीं चाहिये छोटासाभी वैरी विष और अग्निके समानहोके और बलको प्राप्तहो समयमें शांतिको नहीं प्राप्त होता है ॥ १८ ॥ जैसे बली शत्रु स्थानको और बलको प्राप्तहो पराक्रमको करता है तैसे धातुओंके अंतरमें प्राप्तहुआ. रोग पराक्रमको करता है ॥ १९ ॥

रोग निर्मूल करनेकी आज्ञा।

बहुविधपरिकार्य्येणापि नीतं शमं यत्कृशमपि हि न धार्य्यं रोगमूलं विधिज्ञ ॥ कथमपि बहुपथ्यैर्व्यावृतो वा बलिष्ठो न शमयति हि रोगं बाल्यमात्रेण सम्यक् ॥ २० ॥

हे विधिज्ञ ! बहुतसे कर्मोंसे शांतकियेभी रोगके स्वल्पभागकोभी धारण नहीं करना और बहुतसे अपथ्योंकरके व्यावृतहुआ अत्यंत बलवान् रोग शांतिको प्राप्त नहीं होता ॥ २० ॥

सूक्ष्मभी रोग शत्रुसमान है।

यथा स्वल्पं विषं तीव्रं यथा स्वल्पो भुजङ्गमः ॥
यथा स्वल्पतरश्चाग्निस्तथा सूक्ष्मोऽपि रुग्रिपुः ॥ २१ ॥

जैसे स्वल्प विष तीक्ष्ण होता है जैसे छोटासा सर्प बुरा होता है जैसे अत्यंत स्वल्पभी अग्नि बढाता है तैसे सूक्ष्म रोगभी वैरी होता है ॥ २१ ॥

रोगके फैलनेके प्रथमही प्रतीकार करना।

यावत्स्थानं समाश्रित्य विकारं कुरुते गदः ॥
तावत्तस्य प्रतीकारः स्थानत्यागाद्बलीयसः ॥ २२ ॥

जबतक स्थानमें आश्रित होके रोग विकारको करता है जबतक वह तिसस्थानको नहीं त्यागै तबतक तिस बलवाले रोगकी क्रिया करता रहै ॥ २२ ॥

व्याधियोंका प्रकार।

कर्मजा व्याधयः केचिद्दोषजाः सन्ति चापरे ॥
सहजाः कथिताश्चान्ये व्याधयस्त्रिविधा मताः ॥ २३ ॥

कितनेंक रोग कर्मसे उपजते हैं और कितनेंक रोग दोषसे उपजते हैं और कितनेक रोग शरीरके साथ उपजते हैं ऐसे तीनप्रकारके रोग कहे हैं ॥ २३ ॥

तीनप्रकारके व्याधियोंका लक्षण।

बहुभिरुपचारैस्तु ये नं यान्ति शमं ततः ॥ ते कर्मजाः समुद्दिष्टा व्याधयो दारुणाः पुनः ॥ २४ ॥ दोषजा वातपित्ताद्याः सहजाः क्षुत्तृषादयः ॥ २५ ॥

जो बहुतसी चिकित्साके करनेसे शांतिको प्राप्त नहीं होते तिन्होंको कर्मसे उपजे रोग जानना ये दारुण हैं ॥ २४ ॥ वातपित्तआदिसे उपजे रोग दोषज कहाते हैं भूख और तृषा-आदि शरीरके साथ उपजते हैं ॥ २५ ॥

ज्वरकी व्यापकता।

तस्माद्वक्ष्यामि चादौ ज्वरमतुलगदं वाजिनां कुञ्जराणां मानुष्याणां पशूनां मृगमहिषखरोष्ट्रादिवानस्पतीनाम् ॥ वल्लीनामोषधीनां क्षितिधरफणिनां पत्रिणां मूषिकाणामेष प्राणापहारी ज्वर इति गदितो दुर्निवारो हि लोके ॥ २६ ॥

तिस्से आदिमें घोडा, हस्ती, मनुष्य, गाय आदि पशु मृग, भैंसा, ऊंट आदि जीव, वनस्पति, बैल, औषधी, सर्प, पक्षी, मूषा इन्होंके ज्वरको मैं कहताहूं यह ज्वर प्राणोंको हरता है और संसारमें दुःखसे दूर होता है ॥ २६ ॥

अथ जातिपरत्वमें ज्वरकी असाध्यता।

असाध्योऽयं ज्वरो व्याधिर्गोमहिष्यश्वकुञ्जरे ॥
किञ्चित्कृच्छ्रतमो नृणामन्येषां जीवघातकः ॥ २७ ॥

गाय, भैंसा, हस्ती, इन्होंमें ज्वर असाध्य कहा है और मनुष्योंका ज्वर कष्टसाध्य कहा है और शेषरहे जीवोंको ज्वर मारता है ॥ २७ ॥

अथ ज्वरकी बलिष्ठता।

यथा मृगाणां मृगयुर्बलिष्ठस्तथा गदानां प्रबलो ज्वरोऽयम् ॥
नान्योऽपि शक्तो मनुजं विहाय सोढुं भुवि प्राणभृतः सुराद्याः ॥ २८ ॥

जैसे मृगोंमें भगेरा अत्यंत बलवान् होता है तैसे रोगोंमें ज्वररोग बलवान् कहा है मनुष्यके विना ज्वरको सहनेकेलिये कोईभी जीव समर्थ नहीं है ॥ २८ ॥

अथ मनुष्य ज्वर सहसक्ताहै तिस्का कारण।

कर्मणा लभते यस्माद्देवत्वं मानुषो दिवि ॥ ततश्चैवच्युतः स्वर्गान्मानुष्यमपि वर्त्तते ॥ २९ ॥ तस्मात्स देवभावात्तु सहते मानुषो ज्वरम् ॥ शेषाः सर्वे विपद्यन्ते पशुवर्गा ज्वरार्दिताः ॥ ३० ॥

कर्मसे मनुष्य स्वर्गमें जाके देवताके शरीरको प्राप्त होता है पीछे स्वर्गसे भ्रष्टहुआ मनुष्य शरीरको प्राप्त होता है ॥ २९ ॥ इसकारणसे देवभावकरके मनुष्य ज्वरको सहते हैं शेषरहे पशुओंके समूह ज्वरसे मरजाते हैं ॥ ३० ॥

अथ सर्वरोगोंमें ज्वरकी श्रेष्ठता।

रोगाणां रोगराजोऽयं यथा मृगपतिर्मृगे ॥ दाहात्मसु यथा वह्निस्तथा रोगो ज्वरोऽधिकः॥रुद्रक्रोधाग्निसम्भूतःसर्वभूतप्रतापनः ३१

जैसे वनमें पशुओंका राजा सिंह है तैसे शरीरमें रोगोंका राजा ज्वर है जैसे दाह करनेवालोंमें अग्नि अधिक है तैसेही ज्वरभी अधिक है महादेवके क्रोधरूपी अग्निसे उपजनेवाला और सब जीवोंको तपानेवाला ऐसा ज्वर है ॥ ३१ ॥

अथ पृथक् प्राणिभेदसे ज्वरके नामांतर।

पातकः स तु नागानामभितापस्तु वाजिनाम् ॥ गवामीश्वरसंज्ञस्तु मानवानां ज्वरो मतः ॥ ३२ ॥ दारिद्रो महिषीणान्तु मृगरोगो मृगेषु च ॥ अजावीनां प्रलापाख्यः करभेष्वलसो भवेत् ॥ ३३ ॥ शुनोऽलर्कः समाख्यातो मत्स्येष्विन्द्रमतो मतः॥ पक्षिणामभिघातस्तु व्यालेष्वैक्षितसंज्ञितः ॥ ३४ ॥ जलस्य नीलिका प्रायो भूमिषूषरनामतः ॥ वृक्षस्य कोटराक्षस्तु ज्वरः सर्वत्र दृश्यते ॥ ३५ ॥

हस्तियोंके पातकनामवाला ज्वर होता है घोडोंके अभितापनामवाला ज्वर होता है गायोंके ईश्वरनामवाला ज्वर होता है मनुष्योंके ज्वरनामसेही प्रसिद्ध है ॥ ३२ ॥ भैंसोंके दारिद्र नामसे ज्वर होता है मृगोंमें ज्वर मृगरोगनामसे प्रसिद्ध है बकरी और भेडोंके ज्वर प्रलापाख्यनामसे होता है ऊंटोंमें ज्वर अलसनामसे होता है ॥ ३३ ॥ कुत्ताके ज्वर अलर्क नामसे और मछलियोंमें ज्वर इंद्रमतनामसे उपजता है पक्षियोंके ज्वर अभिघातनामसे, सर्पोंमें

कांचलीनामसे ज्वर उपजता है ॥ ३४ ॥ और जलमें ज्वर सिवालनामसे उपजता है पृथिवी में ऊषरनामसे ज्वर उपजता है वृक्षमें कोटराक्षनामसे ज्वर उपजता है ऐसे सब जगह ज्वर दीखता है ॥ ३५ ॥

अथ ज्वरके स्वरूपका लक्षण ।

त्रिपाद्भस्मप्रहरणस्त्रिशिराः सुमहोदरः ॥ वैयाघ्रचर्मवसनः कपिलोज्ज्वलविग्रहः ॥ ३६ ॥ पिङ्गेक्षणो ह्रस्वजङ्घो विमत्स्यो बलवानयम्॥पुरुषो लोकनाशाय चासौ ज्वर इतिस्मृतः ॥ ३७ ॥ दग्धेन्धनो यथा वह्निर्धातून्हत्वा यथा विषम् ॥ कृतकृत्यो व्रजेच्छान्तिं देहं हत्वा तथा ज्वरः ॥ ३८॥

तीनपैरोंवाला, भस्मको धारण करनेवाला, तीनशिरोंवाला, सुंदर बडापेटवाला, सिंहका चामके वस्त्रोंको पहननेवाला, कपिलवर्णवाला और प्रकाशित शरीरवाला ॥ ३६ ॥ पीलेनेत्रोंवाला, ठींगनी जांघोंवाला और बलवान् ऐसा पुरुष लोकका नाशके लिये उपजा है वह ज्वर कहाता है ॥ ३७ ॥ जैसे इंधनको दग्ध करकै अग्नि और धातुओंको दग्ध करकै विष कृतकृत्य होकै शांत होजाता है तैसे देहका नाशकर ज्वर शांत होजाता है ॥ ३८ ॥

अथ ज्वरकी उत्पत्ति ।

तस्मात्तस्य समुत्पत्तिं वक्ष्यामि शृणु पुत्रक ! ॥ चतुर्विधो महाघोरो जातो येन तु चाष्टधा ॥ ३९ ॥ दक्षाध्वरप्रशमनः कुपितो हि महेश्वरः ॥ श्वासं मुमोच दयिताविधुरश्च तीव्रं तेन ज्वरोऽष्टविधसम्भवतोऽष्टधास्यात् ॥ ४० ॥

तिसकारणसे हे पुत्र ! तिसकी उत्पत्तिको कहता हूं सुन—चारप्रकारका महाघोररूपी ज्वर है, फिर जिसकरकै आठ प्रकारका हुआ है ॥ ३९ ॥ सो दक्षप्रजापतिसे कुपितहुआ महेश्वर सतीजीके वास्ते आठवार श्वासको छोडता भया है तिससे ज्वर आठप्रकारका हुआ है ॥ ४० ॥

अथ ज्वरकी निदानसहित संप्राप्ति ।

वातादिपित्तकफशोणितसन्निधानात्स्वेच्छान्नपाननिरताहतुवैपरीत्यात् ॥ दोषा मलाशयगता जठराग्निबाह्याः संप्रेरयन्ति रुधिराश्रितवह्निपातम् ॥ ४१ ॥ तेषां ततो हि दधते ज्वरनाम सिद्धं—

—वात, पित्त, कफ, रक्त, इन्होंके सन्निधानसे और अपनी इच्छापूर्वक अन्न और पानके सेवनेसे और ऋतुके विपरीतपनेसे मलाशयमें प्राप्तहुये पेटके अग्निको बाहिरहुये दोष रक्तसे आश्रितहुये अग्निके पातको प्रेरते हैं ॥ ४१ ॥ तिसको ज्वर कहते हैं—

अथ ज्वरके हेतु ।

व्यायामक्रोधभुक्त्यादिजननाच्छीतसम्भवत्वात्॥४२॥ विरुद्धान्न विशेषेण पाननिर्झरवारिणा ॥ कूपोदकेन सन्तुष्टस्तिग्मतीव्रांशुर श्मिभिः ॥ ४३ ॥ गन्धवातेन दोषाणामभिघाताभिशापतः ॥ ज्वरोनाम महाघोरो जायते मनुजे भृशम् ॥ ४४ ॥

और कसरत, भोजनके ऊपर भोजन, क्रोध, इनके उपजनेसे और शीतके सम्भवपनेसे भी ज्वर उपजता है ॥ ४२ ॥ विरुद्ध अन्नआदिके खानेसे झिरते हुए अथवा कुवाके पानीसे और तेज सूर्य्यके किरणोंकी गरमाईसे ॥ ४३ ॥ बुरे गन्धसे, वात आदि दोषोंसे, चोटके लगनेसे और ब्राह्मणके शापसे मनुष्यके देहमें महाघोररूपी ज्वरनाम उत्पन्न होता है ॥ ४४ ॥

अथ प्रकटहुये ज्वरका लक्षण ।

श्रमो जडत्वं नयनप्लुवः स्याद्रोमोद्गमो घुर्घुरकश्च जृम्भा ॥ वैवर्णता द्वेषसशोषतास्ये ज्वरस्य च व्यक्तकलक्षणानि ॥ ४५ ॥

शरीरमें थकाव और जडपना नेत्रोंमेंसे पानी झिरै रोमावली खडी होवै कंठमें घुर्घुरपना और जँभाई आवै, वर्ण बदलजावै, अन्नसे वैर होवै, मुखमें शोष उपजै ये प्रकट हुये ज्वरके लक्षण हैं ॥ ४५ ॥

अथ ज्वरकी विशेषता ।

समीरणे च वै जृम्भा कफाद्दैन्यं निषीदति ॥ पित्तान्नयनसन्तापः सर्वं वै सान्निपातिके ॥ तस्माद्वक्ष्ये प्रतीकारं येन सम्पद्यते सुखम् ॥ ४६ ॥

वातकी अधिकतासे जंभाई आवै, कफसे दीनपना उपजे और शिथिल होजावै, पित्तसे नेत्रोंमें संतापहो, सन्निपातमें सब लक्षण मिलैं तिस वास्ते जिस करिकै सुख उत्पन्न होय, ऐसा उपाय करना सो कहूंगा ॥ ४६ ॥

अथ वातज्वरमें पाचन ।

वचा यवानी धनिका सविश्वा पिबेत्कषायं निशि सोष्णमेवम् ॥ स वातिके वातरुजे ज्वराणां सम्पाचके स्यान्मनुजे सुखाय ४७

वच, अजवायन, धनियाँ, सोंठ इन्होंके गरम काथको रात्रिमें पीवै यह पाचन वातज्वरमें और वातकी पीडामें मनुष्यको सुख देता है ॥ ४७ ॥

अथ पित्तज्वरका पाचन।

निशा सनिम्बा मृतवल्लिका च धान्यं च विश्वा सगुडः कषायः॥
निशासु च क्षीरसकोलमिश्रं पानं सपित्तज्वरपाचनाय ॥ ४८ ॥

हलदी, नींबकी छाल, गिलोय, धनियाँ, सोंठ, इन्होंका क्काथ बना तिसमें गुड मिला पीवै अथवा दूधमें गजपीपलके चूर्णको मिला रातको पीवै यह पाचन पित्तज्वरमें मनुष्यको सुख देता है ॥ ४८ ॥

अथ कफज्वरमें पाचन।

वचा यवानी त्रिफला सविश्वा क्काथो निशायां कफजे ज्वरे वा ॥
सपाचनं स्यान्मनुजस्य दोषे शूले प्रतिश्यायकपीनसेषु ॥ ४९ ॥

वच, अजवायन, हरडे, बहेडा, आंवला, सोंठ इन्होंका क्काथ कफसे उपजे ज्वरमें और शूल, खेहर, पीनस, इन्होंमें रातको देना ॥ ४९ ॥

अथ सन्निपातज्वरमें पाचन।

शठीवचानागरकाफलानां वत्सादनीधन्वयवासकानाम् ॥
क्काथोहितः सर्वभवे ज्वरे च सम्पाचनं स्यान्मनुजत्रिदोषे ॥ ५० ॥

कचूर, वच, सोंठ, हरडै, बहेडा, आंवला, गिलोय, जवासा इन्होंका क्काथ सब प्रकारके ज्वरमें और मनुष्योंके त्रिदोषज ज्वरमें यह पाचन हित है ॥ ५० ॥

अथ ज्वरमें पथ्य।

रात्रौ सुखोष्णतोयेन प्रचुरेण च धीमताम् ॥
अङ्गसंमर्दनं पथ्यं निद्राव्यायामवर्जितम् ॥ ५१ ॥

रात्रिमें सुखपूर्वक गरम पानी करकै अतिशयसे मनुष्योंके अंगोंका मर्दन पथ्य है परंतु नींद और कसरतको वर्जना ॥ ५१ ॥

अथ वातज्वरका निदान और चिकित्सा।

वेपथुर्विषमवेगशोषणं कण्ठतालुवदने विरस्यता ॥ रूक्षता वपुषि बन्धकुक्षयोर्जृम्भणं शिरसि रुग्विनिद्रता ॥ ५२ ॥ कृष्णता-कररुहां प्रलापको गात्रभङ्गबलवान् बिभत्स्याति ॥ भीतवत्स्व-पिति जाग्रतो नरो लक्षणैर्भवति वातकृज्ज्वरः ॥ ५३ ॥

शरीर कांपै, ज्वरका विषमवेगहो, कंठ, तालु, मुख, इन्होंमें शोष उपजै, मुखमें विरसपनाहो, नेत्रोंमें रूखापनहो, कुक्षिबन्ध होजावै, जंभाई आवै और शिरमें शूल उपजै और नींद आवै नहीं ॥ ५२ ॥ नख काले हो जावै, बकवाद करै, शरीरका भंग होवै और बल-

वान् रहै और भयकी इच्छा करै और भयभीत-हुआकी तरह सोवै परन्तु जागताही रहै ये लक्षण वातज्वरके हैं ॥ ५३ ॥

अथ वातज्वरका पाचन।

नागरं सुरतरुश्च धान्यकं कुण्डली बृहतिका युगंनिशम् ॥
सप्तमे निशि प्रशस्यते ज्वरे चाष्टमांशगतको हि अष्टवान् ॥५४॥

सर्वज्वरेषु नागरादिपाचनं देयम् ॥

सोंठ, देवदारु, धनियां, गिलोय, दोनों कटेली, हलदी, दारुहलदी इन आठ औषधोंका अष्टमावशेष पाचनसंज्ञक काथ बना ज्वरमें सातवींरात्रीको देना ॥ ५४ ॥ यह शुंठ्यादि पाचन सब प्रकारके ज्वरोंमें देना चाहिये ॥

अथ अन्नहीन औषधका गुण।

वीर्य्याधिकं भवति भेषजमन्नहीनं हन्यात्तदामयमसंशयमाशु चैव

अन्नसे हीनहुआ औषध अधिक वीर्यवाला होजाता है और रोगको निश्चय नाशता है ॥

तद्बालवृद्धयुवती मृदुभिश्च पीतं ग्लानिं परां नयति चाशु बलक्षयञ्च ॥ ५५ ॥

परंतु बालक, वृद्ध, युवतीस्त्री, कोमल, इन्होंकरके पीयाहुआ वह अन्नरहित औषध परमग्लानिको और बलक्षयको प्राप्त होता है ॥ ५५ ॥

अथ पाचनहुये औषधका लक्षण।

इन्द्रियाणां लघुत्वञ्च नेत्रास्यस्य प्रसादता ॥
सोद्गारमुष्णता कोष्ठे जीर्णभेषजलक्षणम् ॥ ५६ ॥

इंद्रियोंका हलकापनहो नेत्र और मुखकी प्रसन्नता रहै, डकार आवै, कोष्ठमें गर्माई रहै ये जीर्णहुये ओषधके लक्षण हैं ॥ ५६ ॥

अथ उछलनेवाले औषधका गुण।

क्लमहृल्लाससदनं शिरोरुग्भ्रंशमेव च ॥
उत्क्लेदो जायते यस्य विद्यादुत्क्राममौषधम् ॥ ५७ ॥

ग्लानि और थुकथुकी हो, शरीर शिथिल होजावै शिरमें भूल और फूटन उपजै और वमनसा आनेकी तरह होवै ये नहीं जीर्ण हुवे ओषधके लक्षण हैं ॥ ५७ ॥

अथ पाचनहोनेमें शेषरहे औषधका लक्षण।

दाहाङ्गसदनं मूर्च्छा शिरोरुक्क्लमदीनता ॥ भ्रमो रतिविशेषेण सविशेषौषधाकृतिः ॥ ५८ ॥ तस्मादौषधशेषे तु न दोषशमनं क्वचित् ॥ कोपन्त्यनेकधा दोषा न देयं पाचनं विना ॥ ५९ ॥

दाहहो, अंग शिथिलहोजावै, मूर्च्छा, शिरमें शूल, ग्लानि, दीनपना ये उपजै, भ्रमहो और विशेषकरकै अरतीहो ये लक्षण ज्यादै लिये औषधके हैं ॥ ५८ ॥ तिसकारणसे औषधिके शेषमें कहींभी दोषका शमन नहीं है क्योंकि पाचनके विना दोष अनेकप्रकारसे कुपित होते हैं ॥ ५९ ॥

अथ भोजनके उपरांत देनेके औषधके गुण ।

शीघ्रं विपाकमुपयाति बलं न हन्यादन्नावृतं न च मुहुर्वदनान्निरेति ॥ प्राग्भुक्तसेवितमहौषधमेतदेव दद्याच्च वृद्धशिशुभीरुवराङ्गनाभ्यः ॥ ६० ॥

अन्नसे आवृतहुआ औषध शीघ्र पकजाता है और बलको नाशता है और वारंवार मुखसे नहीं निकसता है इसलिये प्रभातका भोजनके साथ सेवित किया औषध वृद्ध. बालक, डरपोक, स्त्री इन्होंको सुख देता है ॥ ६० ॥

अथ वातज्वरमें पंचमूलका क्वाथ ।

बिल्वाग्निमन्थशुकनासकपाटलीनां कुम्भारिकाप्रयुतकं क्वथितं कषायम् ॥ दन्तान्विशोधयाति वारयते समीरं नाशं करोति मरुतज्वरमाशु पुंसाम् ॥ ६१ ॥ किरातमुस्तमृतवल्लिकणासविन्यो गोकण्टको बृहतियुग्ममुदीच्यतिक्ताः ॥ स्याच्छालिपार्णिकलशीक्वथितः समन्तात्क्वाथः समीरणभवं ज्वरमाशु हन्ति ॥ ६२ ॥ गुडूची शतपुष्पा च प्लक्षी रास्ना पुनर्नवा ॥ त्रायमाणकक्वाथश्च गुडैर्वातज्वरापहः ॥ ६३ ॥

बेलगिरी, अरनी, श्योनापाठा, पाडल, कोहला, कुंभेरन, इन्होंका क्वाथ बना पीवै यह दंतोंको शोधता है और वातको दूर करता है मनुष्योंके वातज्वरको शीघ्र नाशता है ॥ ६१ ॥ चिरायता, नागरमोथा, गिलोय, पीपल, लाळआक, गोखरू, दोनोंकटेली, नेत्रवाला, कुटकी, पिठवन, चौंलाई, इन्होंका क्वाथ वातज्वरको अच्छीतरह नाशता है ॥ ६२ ॥ गिलोय, सौंफ, पिठवन, रायसन, साँठी, त्रायमाण इन्होंके क्वाथमें गुड मिला पीवै यह वातज्वरको हरता है ॥ ६३ ॥

अथ पित्तज्वरके निदान और चिकित्सा ।

मूर्च्छा दाहो भ्रममदतृषावेगतीक्ष्णोऽतिसारस्तन्द्रालस्यं प्रलयन वमीपाकतापश्च वक्त्रे ॥ स्वेदः श्वासो भवति कटुकं विह्वलत्वं क्षुधा वा एतैर्लिङ्गैर्भवति मनुज पैत्तिको वै ज्वरस्तु ॥ ६४ ॥

मूर्च्छा और दाह उपजै भ्रम, मद, तृषा येभी होवैं और ज्वरका तीक्ष्णवेगहो अतीसारहो तंद्रा और आलस्यहो और बकवादकरै और छर्दि आवै और मुखमें पाक और दाहहो पसीना और श्वास उपजै मुख कडुआ होजावै विह्वलपना और भूखभी होवै ये सब लक्षण होवैं तब पित्तज्वर जानना ॥ ६४ ॥

अथ रोध्रादि क्काथ ।

रोध्रोत्पलामृतलताकमलं सिताढ्यं तत्सारिवासहितमेव हि पाचनेषु ॥ निष्क्काथ्य क्काथमति चाशु निहन्ति पित्तं पित्तज्वरप्रशमनं प्रकरोति पुंसाम् ॥ ६५ ॥

लोध, नीलाकमल, गिलोय, श्वेतकमल, अनंतमूल, सारिवा इन्होंका पाचन काथ बना तिसमें मिश्री डाल पीवै यह पित्तको शीघ्र शांत करता है और मनुष्योंके पित्तज्वरकोभी नाशता है ॥ ६५ ॥

अथ शक्राह्वादि काथ ।

क्कथितं तण्डुलपयसा शक्राह्वं कटुरोहिणीसहितम् ॥
क्काथं यष्टीमधुना विनाशनं पित्तज्वराणान्तु ॥ ६६ ॥

इंद्रयव, कुटकी, मुलहटी इन्होंका काथ चावलोंके पानीमें बना पीवै यह पित्तज्वरको नाशता है ॥ ६६ ॥

दुरालभादि क्काथ ।

दुरालभावासकपर्पटानां प्रियङ्गुनिम्बंकटुरोहिणीनाम् ॥ किराततिक्तं क्कथितं कषायं सशर्कराढ्यं कथितञ्च पाचनम् ॥ ६७॥
सदाहपित्तज्वरमाशु हन्ति तृष्णाभ्रमं शोषविकारयुक्तम् ॥ ६८ ॥

जवासा, वांसा, पित्तपापडा, प्रियंगु, नींबकी छाल, कटुकी, चिरायता, इन्होंका काथ बना खांडसे संयुक्तकर पीवै ॥ ६७ ॥ यह दाह, पित्तज्वर, तृषा, भ्रम, शोषरोग, इन्होंको नाशता है ॥ ६८ ॥

अथ पित्तपापडाका क्काथ ।

एकोऽपि वै पर्पटको वरिष्ठः पित्तज्वराणां शमनाय योग्यः ॥
तस्मात्पुनर्नागरवालकाढ्यः सिंहो यथा कङ्कटकप्रवृत्तः ॥ ६९ ॥

१-प्रियंगु गोंदीके समान फल है जिसे मालवेमें गेहुला कहते हैं इसमें सुगंधीभी होती है यह गंध प्रियंगु है और प्रियंगु गोंदी फलही समझिये ।

अकेला पित्तपापडाका क्वाथ भी पित्तज्वरको शांत करनेके लिये योग्य और अति उत्तम है फिर सोंठ और नेत्रवालासे युक्तकिये पित्तपापडाका क्वाथ पित्तज्वरको ऐसे नाशता है जैसे हींसके विडेमें प्राप्तहुआ सिंह वनके पशुको नाशता है ॥ ६९ ॥

अथ शुंठ्यादि क्वाथ।

नागरोशीरमुस्ता च चन्दनं कटुरोहिणी ॥
धान्यकानां तु क्वाथश्च पित्तज्वरविनाशनः ॥ ७० ॥

सोंठ, खस, नागरमोथा, रक्तचंदन, कुटकी, धनियां इन्होंका क्वाथ पित्तज्वरको नाशता है ॥ ७० ॥

अथ गुडूच्यादि क्वाथ।

अमृतं पर्पटो धात्री क्वाथः पित्तज्वरं हरेत् ॥ ७१ ॥

गिलोय, पित्तपापडा, आंवला, इन्होंका क्वाथ पित्तज्वरको नाशता है ॥ ७१ ॥

अथ द्राक्षादि क्वाथ।

द्राक्षापर्पटकतिक्तापथ्यारग्वधमुस्तकैः ॥
क्वाथस्तृषाभ्रमदाहयुक्तपित्तज्वरापहः ॥ ७२ ॥

दाख, पित्तपापडा, कुटकी, हरडै, अमलतास, नागरमोथा, इन्होंका क्वाथ तृषा, भ्रम, दाह, इन्होंसे युक्तहुये पित्तज्वरको नाशता है ॥ ७२ ॥

अथ दाहतृषामूर्च्छाके ऊपर विदार्यादिकोंका उपचार।

विदारिकारोध्रदधित्थकानां स्यान्मातुलुङ्गस्य च दाडिमानाम् ॥
यथानुलाभेन च तालुलेपो निहन्ति दाहं तृषमूर्च्छनञ्च ॥ ७३ ॥

विदारीकंद, लोध, कैथ, बिजौरा, अनार, इन्होंमेंसे जितने मिलैं तिन्होंका लेप बना तालुके ऊपर लगावे यह दाह, तृषा, मूर्च्छा, इन्होंको नाशता है ॥ ७३ ॥

अथ दाहज्वरका उपाय।

उत्तानस्य प्रसुप्तस्य कांस्ये वा ताम्रभाजने ॥
नाभौ निधाय धारां तु शीतांदाहं निवारयेत् ॥ ७४ ॥

रोगीको सीधा शयन कराके तिसकी नाभीपर कांसीके अथवा तांबाके पात्रमें पानीकी धारा देनी यह दाहको नाशती है ॥ ७४ ॥

रम्यारामाकुचभरनतालिङ्गनं चेष्टसङ्गाद्द्राक्षापानं निगदितमथो शीतलं सेवनं स्यात् ॥ शुभ्राम्भोजश्च मलयजलासिक्तसंशीत-

वासो मुक्ताहारो विशदतुहिनं कौमुदीयासुखाय ॥ ७५ ॥ एभिर्हन्ति द्रुततरनिभं मानुषाणां तु पित्तं दाहं शोषं क्लममपि तथा तृड्भ्रमं मूर्च्छनाश्च ॥ एतैर्योगैर्भवति नितरां पित्तदाहस्य शान्तिर्योग्या चैवं भवति सततंतत्क्रियाश्रीमताञ्च ॥ ७६ ॥

सुंदर और रमणीक चूँचियोंके भारसे नम्रहुई स्त्रीका आलिंगन करै परंतु मैथुनको नहीं करै और दाखके रस सेवनकरै. शीतलपदार्थको सेवता रहै सफेद कमल और मलयागिरि चंदनके पानीसे भिगोयाहुआ शीतलवस्त्रको धारै और मोतियोंकी मालाको पहनै और सुंदर शीतळ हवा और चांदनी ये सब पित्तज्वरीको सुख देते हैं ॥ ७५ ॥ इन्होंसे मनुष्योंके पित्त, दाह, शोश, ग्लानि, तृषा, भ्रम, मूर्च्छा, ये शांत होजाते हैं और पित्तका दाह दूर होजाता है धनवान् मनुष्योंके वास्ते यह क्रिया निरंतर योग्य है ॥ ७६ ॥

अथ ज्वरशोषका उपाय ।

यदि जिह्वागलतालुशोषश्चेन्मनुजस्य च ॥ केसरं मातुलुङ्गस्य मधुसैन्धवसंयुतम् ॥ पेष्यमाणं तालुलेपे सद्यः पित्तज्वरापहम् ॥ ७७ ॥

और जो मनुष्यके जीभ, गल, तालु, इन्होंमें शोष उपजै तो बिजौराका केसर ले तिसमें शहद और सैंधानमक मिला पीसकर तालूपै लेप करै यह शीघ्र पित्तज्वरको नाशता है ॥ ७७ ॥

अथ कफज्वरका निदान और चिकित्सा ।

स्तैमित्यं मधुरास्यता च जडता तन्द्रा भृशञ्च तथा गात्राणां गुरुतारुचिर्विरमता रोमोद्गमः शीतता ॥ प्रस्वेदाः श्रुतिरोधनञ्च कुरुते नेत्रे च पाण्डुच्छवी विष्टब्धं मलवृत्तिकासवमनं श्लेष्मज्वरे ते विदुः ॥ ७८ ॥

शरीरका गीलापन हो, मुख मीठा रहै, जडपना, अत्यंत तंद्रा, शरीरका भारीपन, अरुचि, ग्लानि रोमोंका खडा होना, शीतलपना ये उपजैं और पसीना आवै और कानोंका छिद्र रुक जावै और आधा पीला और आधा सफेद ऐसे वर्णकी कांतिसे संयुक्त नेत्र होजावैं मलकी प्रवृत्ति बँधी हो खांसी और छर्दि आवै ये सब लक्षण हों तब कफज्वर जानना ॥ ७८ ॥

अथ कफज्वरका पाचन पिप्पल्यादिकल्क ।

पिप्पलादिककल्कं तु कफजे पाचनं हितम् ॥ ७९ ॥

पिप्पलादि गणके औषधोंका कल्क कफके ज्वरमें सुंदर पाचन है ॥ ७९ ॥

अथ व्याघ्यादिकल्क ।

तद्वद्व्याघ्री च सिंही च रोध्रं कुष्ठपटोलकम् ॥
ज्वरे कफात्मजे चैतत्पाचनं स्यात्तदुत्तमम् ॥ ८० ॥

कटेली, वांसा, लोध, कूट, परवल, इन्होंका पाचन कफज्वरमें हित है ॥ ८० ॥

अथ वासादिक्काथ ।

वासा गुडूची त्रिफला पटोली शठी च तिक्ता मधुनीकषायम् ॥
श्लेष्मप्रभूतेषु रुजेषु सम्यग् ज्वरं निहन्यात्कफजञ्च शीघ्रम् ॥८१॥

वांसा, गिलोय, हरडै, बहेडा,आंवला, परवल, कचूर, कुटकी, इन्होंके क्काथमें शहद मिला पीवै यह कफके ज्वरको शीघ्र नाशता है ॥ ८१ ॥

अथ आमलक्यादिक्काथ ।

आमलक्यभया कृष्णा षड्ग्रन्था त्रित्रिकन्तथा ॥
मलभेदी कफान्तको ज्वरनाशनदीपनः ॥ ८२ ॥

आंवला, हरडै, पीपल, वच, सोंठ, मिर्च, पीपल, हरडे, बहेडा, आंवला, दालचिनी,इलायची, तेजपात, इन्होंका क्काथ मलको पतला करता है कफको हरता है ज्वरको नाशता है और अग्निको जगाता है ॥ ८२ ॥

अथ पिप्पल्यादिक्काथ ।

पिप्पली शृङ्गवेरञ्च षड्ग्रन्था वत्सकं फलम् ॥
क्काथा मधुप्रगाढः स्याच्छ्लेष्मज्वरविनाशनः ॥ ८३ ॥

पीपल, अदरख, वच, इंद्रयव, इन्होंका क्काथ बना तिसमें शहद मिला पीनेसे कफज्वरका नाश होता है ॥ ८३ ॥

अथ पिप्पलीका अवलेह ।

क्षौद्रेण पिप्पलीचूर्णं लिह्याच्छ्लेष्मज्वरापहम् ॥
प्लीहानाहविषं हन्ति.कासश्वासाममर्दनम् ॥ ८४ ॥

पीपलके चूर्णको शहदमें मिला चाटनेसे कफज्वर, तिल्लीरोग, अफारा, विष, खांसी, श्वासरोग, आम, इन्होंका नाश होता है ॥ ८४ ॥

अथ वातपित्तज्वरका निदान और चिकित्सा ।

तृष्णा मूर्च्छा वमिरथ कटुता चानने रूक्षता स्यादन्तर्दाहो वपुषि नयने रक्तता कण्ठशोषः ॥ निद्रानाशः श्वसनशिरसो रुक्प्रभेदोऽङ्गभङ्गारामाद्वेषस्तमकमिति चेद्वातपित्तज्वरः स्यात् ॥ ८५ ॥

तृषा, मूर्च्छा, छर्दि ये उपजैं और मुखमें कडुआपन हो और शरीर रूखा होजावै, शरीर-के भीतर दाहहो और लालनेत्र होजावैं और कंठमें शोष होवै और नींदका नाशहो श्वास और शिरमें शूलहो और अँगडाई टूटै रोमावली खडीहो और अँधेरी आवै ये सब लक्षण हों तब वातपित्तज्वर जानना ॥ ८५ ॥

अथ वातपित्तज्वरका पाचन त्रिफलादि क्वाथ ।

संसृष्टदोषैर्विहितश्च सम्यग्विपाचनं पित्तमरुज्ज्वरे च ॥
फलत्रिकं शाल्मलिसंप्रयुक्तं रास्नाकिरातस्य पिबेत्कषायम् ॥८६॥

मिलेहुये दोषोंसे युक्तज्वरमें योग्यपाचनको वातपित्तज्वरमें देवै और हरडै, बहेडा, आंवला, शंभलकी छाल, रायसन, चिरायता, इन्होंके क्वाथको पीवै ॥ ८६ ॥

अथ शालिपर्ण्यादिकल्क ।

द्विपञ्चमूली सह नागरेण गुडूचिभूनिम्बघनैः समेता ॥
कल्कः प्रशस्तः सगुडो मरुत्सु स पित्तवातज्वरनाशहेतुः ॥ ८७ ॥

दशमूल, सोंठ, गिलोय, चिरायता, नागरमोथा इन्होंके कल्कमें गुड मिला खावै यह वात-पित्तज्वरको नाशता है ॥ ८७ ॥

अथ किरातादि क्वाथ ।

किराततिक्तामलकीशठीनां द्राक्षोषणानागरकामृतानाम् ॥
क्वाथः सुशीतो गुडसंयुतः स्यात्स पित्तवातज्वरनाशहेतुः ॥ ८८ ॥

चिरायता, आंवला, कचूर, मुनक्का दाख, मिर्च, सोंठ, गिलोय, इन्होंके क्वाथमें गुड मिला पीवै यह वातपित्तज्वरको नाशता है ॥ ८८ ॥

अथ पंचभद्रक्वाथ ।

अमृतमुस्तकवासापर्पटविश्वाजलेन क्वाथः ॥
पानं पित्तमरुत्सु ज्वरं निहन्याच्च भद्रभुजः ॥ ८९ ॥

गिलोय, नागरमोथा, वांसा, पित्तपापडा, सोंठ, इन्होंका पानीमें क्वाथ बनावै यह पंचभद्र-क्वाथ वातपित्तज्वरको नाशता है ॥ ८९ ॥

अथ पित्तकफज्वरका निदान और चिकित्सा ।

निद्रागौरवकात्ससन्धिशिररुक्चार्त्तिस्तथा पर्वणां भेदो मध्यमवे-गमत्र नयने वातान्विते श्लेष्मणि ॥ सन्तापः श्वसनं रुचिः श्रुति-पथे कण्ठे च शुष्कावृतिस्तन्द्रामोहमरोचकभ्रममथ श्लेष्मज्वरे पित्तले ॥ ९० ॥

नींद बहुत आवै संधि और शिरमें शूल, चलै और संधि टूटै और स्वरका वेग मध्यहोवै नेत्रोंमें संतापहो श्वासहो सुननेमें रुचिहो और कंठमें सूखापनहो और तंद्रा, मोह, अरोचक, श्रम, येभी उपजैं, ये सब लक्षण होवैं तब पित्तकफज्वर जानना ॥ ९० ॥

अथ पित्तकफज्वरका पाचन शुंठ्यादि क्वाथ ।

नागरं भद्रमुस्ता वा गुडूच्यामलकाह्वयम् ॥ पाठामृणालोदीच्याश्च क्वाथः पित्तज्वरे कफे ॥ ९१ ॥ पाचनो दीपनीयः स्याद्रक्तशोषनिवारणः ॥ ९२ ॥

सोंठ, नागरमोथा, गिलोय, आंवला, पाठा, कमलकी डंडी, नेत्रवाला, इन्होंका क्वाथ पित्तकफज्वरमें हित है ॥ ९१ ॥ और पाचन है अग्निको जगाता है रक्तको और शोषको दूर करता है ॥ ९२ ॥

अथ द्राक्षादि क्वाथ ।

द्राक्षामृतावासकरिष्टकाश्च भूनिम्बतिक्तेन्द्रयवाः पटोलम् ॥
मुस्तासभार्गी क्वथितः कषायः पित्तकफस्य ज्वरनाशनाय ॥९३॥

मुनक्का दाख, गिलोय, वांसा, नींबकी छाल, चिरायता, कुटकी, इंद्रयव, परवल, नागरमोथा, भारंगी, इन्होंका क्वाथ पित्तकफज्वरको नाशता है ॥ ९३ ॥

गुडूच्यादि क्वाथ ।

गुडूचिका निम्बदलानि शुण्ठी मुस्तश्च कुस्तुम्बुरुचन्दनानि ॥
क्वाथं विदध्यात्कफपित्तवातज्वरं निहन्याच्च गुडूचिकाद्यः ॥९४॥
एष सर्वज्वरान्हन्ति हल्लासाद्यानरोचकान् ॥ प्रतिश्यायपिपासाघ्नः शोषदाहनिवारणः ॥ ९५ ॥

गिलोय, नींबके कोंपल, सोंठ, नागरमोथा, धनियां, रक्तचंदन, यह गुडूच्यादि क्वाथ पित्तकफज्वरको हरता है ॥ ९४ ॥ और यही क्वाथ सब प्रकारके ज्वर, थुकथुकी, अरोचक, सेहर, पिपासा, शोष, दाह, इन्होंको नाशता है ॥ ९५ ॥

अथ अन्यगुडूच्यादि क्वाथ ।

गुडूचीनिम्बचक्रवासकश्च शठी किरातं मगधाष्टहल्यौ ॥
दार्वीपटोलं क्वथितं कषायं पिबेन्नरः पित्तकफे ज्वरे च ॥ ९६ ॥

गिलोय, नींबकी छाल, तगर, वांसा, कचूर, चिरायता, पीपल, अष्टहली, दारुहलदी, परवल, इन्होंके क्वाथको पीवै यह पित्तकफज्वरमें हित है ॥ ९६ ॥

अथ पटोलादि क्काथ ।

पटोली चन्दनं तिक्ता मूर्वा पाठामृतागणः ॥
पित्तश्लेष्मज्वरच्छर्द्दिदाहकण्डूनिवारणः ॥ ९७ ॥

परवल, रक्तचंदन, कुटकी, मरोडफली, पाठा, गिलोय आदि गणके औषध, इन्होंका क्काथ पित्तकफज्वर, छर्दि, दाह, खाज, इन्होंको दूर करता है ॥ ९७ ॥

अथ अन्यपटोलादि क्काथ ।

पटोलवासापिचुमन्दकस्य मूलानि यष्टीमधुकं धना च ॥ कषायमेतत्प्रतिसाधितन्तु ज्वरे कफे पित्तभवे प्रशस्तः ॥ ९८ ॥ सन्दीपनो पित्तकफात्मके च तथैव पित्तासृजसंभवे च ॥ ज्वरे मलानां प्रतिभेदनः स्यात्पटोलधान्याश्रितकः प्रशस्तः ॥ ९९ ॥

परवल, वांसा, नींबकी छाल, मुलहटी, धनियां, इन्होंका क्काथ पित्तकफज्वरमें श्रेष्ठ है ॥ ९८ ॥ यह क्काथ अग्निको जगाता है पित्त कफज्वरमें हित है पित्तरक्तके ज्वरमें हित है और मलोंको पतला करता है ॥ ९९ ॥

अथ वातकफज्वरका निदान और चिकित्सा ।

शीतं वेपथुपर्वभङ्गवमथुर्गात्रे जडत्वं रुजां मन्दोष्मारुचिबन्धनं परुषता कासस्तमः शूलवान् ॥ तन्द्रा कूजनमात्मलौल्यमथवा स्तैमित्यजृम्भारुचिः प्रस्वेदोमलमूत्ररोधसहितः स्याच्छ्लेष्मवात ज्वरः ॥ १०० ॥

शीत लगै और शरीर कांपै—और संधियें टूटैं—और शरीरमें जडपना, शूल, मंदाग्नि, अरुचि, बंधना, कठोरपना, खांसी, शूल, ये उपजैं तंद्राहो शब्दको करै और शरीरमें चंचलपनाहो और शरीरका गीलापन, जंभाई, अरुचि, ये उपजैं और पसीना आवै मल और मूत्र रुकजावै ये सब लक्षण होवैं तब वातकफज्वर जानना ॥ १०० ॥

अथ आरग्वधपंचक ।

आरग्वधस्तिक्तकरोहिणी च हरीतकी पिप्पलिमूलमुस्ता ॥
निष्क्वाथ्य कल्कः कफवातयुक्ते ज्वरे सशूले हितपाचनोऽयम् १०१

आरग्वध, कुटकी, हरडा, पीपलामूल, नागरमोथा, इन्होंका क्काथकरकै कल्क करै, यह कल्क कफवातमें उत्पन्न शूलकारिके युक्त ज्वरमें हितकारक और पाचन है ॥ १०१ ॥

अथ क्षुद्रादिपाचन।

क्षुद्रा गुडूची सह नागरेण वासाजलं पर्पटकञ्च पथ्याः ॥ मुस्ता च दुःस्पर्शयुतः कषायः पानो हितो वातकफज्वरस्य ॥ १०२॥

कटैली, गिलोय, सोंठ, वांसा, नेत्रवाला, पित्तपापडा, हरडै, नागरमोथा, जवासा इन्होंका क्वाथ वातकफज्वरको नाशता है ॥ १०२ ॥

अथ पर्पटादि क्वाथ।

पर्पटनागाख्यवचातन्तुककट्फलैलाभयाविश्वभूतिके ॥ क्वाथो हिङ्गुमधुयुतः कफवाते सहिक्कारोगे सगलग्रहे च ॥ १०३ ॥

पित्तपापडा, नागकेसर, वच, रोहिषतृण, कायफल, इलायची, हरडै, सोंठ, करंजुवा, इन्होंके क्वाथमें हींग और शहद मिला पीवै यह कफ वातज्वर, हिचकी रोग, गलग्रह इन्होंमें हित है ॥ १०३ ॥

अथ दशमूल क्वाथ।

द्विपञ्चमूलकः क्वाथः कणाचूर्णेन भावितः ॥
देयो वातकफे शूले ज्वरे श्वासे च पीनसे ॥ १०४ ॥

दशमूलके क्वाथमें पीपलका चूर्ण मिला पीवै यह वातकफज्वर, शूल, श्वास, पीनस, इन्होंमें हित है ॥ १०४ ॥

अथ त्रिदोषजज्वरका निदान और चिकित्सा।

तन्द्रालस्यं मुखमधुरता ष्ठीवनं कण्ठशोषो निद्रानाशः श्वसनविकलो मूर्च्छना शोचना च ॥ जिह्वाजाड्यं परुषमथ वा पृष्ठशीर्षे व्यथा स्यादन्तर्दाहो भवति यदि वा विद्धि दोषं त्रिदोषम् १०५

तंद्रा और आलस्य आवै मुखमें मधुरपना रहै और वारंवार थूकै कंठमें शोष उपजै नींदका नाशहो श्वाससे विकल होजावै मूर्च्छा और शोचहो जीभमें जडपनाहो अथवा करडी जीभ होजावै पृष्ठभागमें और शिरमें पीडाहो और शरीरके भीतर दाहहो ये सब लक्षणहों तब त्रिदोषजज्वर जानना ॥ १०५ ॥

त्रिदोषजज्वरकी यशः प्रापक चिकित्सा।

दृष्ट्वा त्रिदोषजं घोरं ज्वरं प्राणापहारकम् ॥ तस्मादादौ कफस्यास्य शोषणं परिकीर्त्तितम् ॥ १०६ ॥ न कुर्य्यात्पित्तशमनं यदीच्छेदात्मनो यशः ॥ कफवातैर्बलवतः सद्यो हन्ति रुजातुरम् ॥ ॥ १०७॥ लङ्घनं दमनं वापि ष्ठीवनं स्यात्रिदोषजे ॥ त्रिरात्रं

पचरात्रं वा सतरात्रमथापि वा ॥ १०८ ॥ लङ्घनञ्च समुद्दिष्टं ज्ञात्वा दोषबलाबलम् ॥ कफं विशोषितं ज्ञात्वा ततो वातनिवारणम् ॥१०९॥ पित्तसंशमनं कार्य्यं ज्ञात्वा पित्तस्य कोपनम् ॥ शोषणीयौ वातकफौ न तु पित्तं विनाशयेत् ॥ ११० ॥

प्राणोंके हरनेवाला और घोररूप ऐसे त्रिदोषजज्वरको देखकर प्रथम कफको शोषनेका उपाय कहा है ॥ १०६ ॥ जो वैद्य अपने यशकी इच्छा चाहै तो त्रिदोषजज्वरमें पित्तको शांत नहीं करै, क्योंकि कफ और वातकी अधिकतावाले त्रिदोषजरोगीको ज्वर मारदेता है॥१०७॥ त्रिदोषजज्वरमें लंघन, वमन, ष्ठीवन ये हित हैं और इस रोगमें तीनरात्रि, पांचरात्रि, सातरात्रितक ॥ १०८ ॥ दोषके बल और अबलको जान लंघन करना चाहिये जब कफके शोषको जानले तब वातको निवारण करै ॥ १०९ ॥ पित्तके कोपको जानकर पित्तकीभी शांति करनी और वात तथा कफको जरूर शोषै और पित्तको कभीभी नहीं नष्टकरै ॥ ११० ॥

अथ सन्निपातज्वरका लक्षण और चिकित्सा ।

तृष्णा च शूलशोषः श्वसनमथ निशाजागरो वासरैस्तु तन्द्रा मोहश्च शोषो भवति च वदने घ्राणजिह्वाधराणाम् ॥ पाकं निष्ठीवते यः कृशतनुश्च भवेन्मण्डलानाञ्च देहे सम्भूतिः श्यावनेत्राधरवदनमदस्वेद आध्मानशोषः ॥ १११ ॥ क्षुन्नाशो वा भ्रमणमपि तथा शिरसो लोडनं वा शिरोऽर्त्तिः स्रोतोरोधो वमिर्वा गलकघुरघुराशूलकैर्वा वृतस्तु ॥ एतैर्लिङ्गैः प्रयुक्तः प्रभवति च नृणां सन्निपातेतिसंज्ञा रोगाणामाशुकारी ज्वर अतिदुःखदो वाजिनां वा द्विपानाम् ॥ ११२ ॥

तृषा, शूल, शोष, श्वास, रात्रिका जागना दिनमें तंद्रा, मोह, मुखमें शोष ये उपजैं और नासिका, जीभ, ओष्ठ, इन्होंका पाक होवै और वारंवार थूकै और कृशशरीर होजावै और शरीरमें मंडलोंकी उत्पत्तिहो और कालेनेत्र होजावै होठ काले होजावै मद और पसीना उपजै अफारा और शोषभीहो ॥ १११ ॥ भूख जाती रहै शिर भ्रमै अथवा शिरको हिलावै और शिरमें पीडाहो स्रोत रुक जावै अथवा छर्दिहो और गलेमें घुर्घुरशब्द और शूल उपजै ये सब लक्षणहोवै तब मनुष्यके सन्निपातज्वर जानना यह रोगोंको शीघ्र करता है घोडोंको तथा हाथियोंको भी अतिदुःख देता है ॥ ११२ ॥

अथ सन्निपातज्वरकी चिकित्सा ।

सन्निपातज्वरे पूर्वं कुर्य्याद्वातकफापहम् ॥ पश्चाच्छ्लेष्मणि संक्षीणे

निरामे पित्तमारुतौ ॥ ११३ ॥ सन्निपातज्वरे यत्नं कृत्वा तन्द्रां जयेत्पराम् ॥ उपद्रवः कष्टतमो ज्वराणाञ्च विशेषतः ॥ ११४ ॥ पथ्ये कारयते यस्तु रोगिणां कफपूरितम् ॥ स एवास्य शत्रुः स्यान्न पथ्यं न च भेषजम् ॥ ११५ ॥

सन्निपातज्वरमें प्रथम वातकफको नाशनेवाली क्रियाको करै जब कफका क्षय होजावै तब वात और पित्त आपही शांत होजाते हैं ॥ ११३ ॥ सन्निपातज्वरमें यत्नसे तंद्राको दूर करै यह सन्निपातमें अत्यंत उपद्रव है और ज्वरोंके मध्यमें विशेष करके सन्निपात बुराहै ॥ ॥ ११४ ॥ सन्निपातज्वरमें जो वैद्य कफसे पूरितहुये रोगीको पथ्यदेवै वही वैद्य तिसरोगीका वैरी जानना इसवास्ते पथ्यको और ऐसे तैसे औषधकोभी नहीं देना ॥ ११५ ॥

अथ दशाङ्ग क्काथ ।

शठी द्विपञ्चमूलकं दुरालभा च कोटजम् ॥ पटोलं पौष्करं वाथ युक्ता भार्गवी पिप्पली ॥ ११६ ॥ निहन्ति सान्निपातिकज्वराग्निमाद्यन्दशाङ्गः ॥ ११७ ॥

कचूर, दशमूल, जवासा, पिस्ते, परवल, पोहकरमूल, श्वेतदूब, पीपल, इन्होंका काथ ॥ ॥ ११६ ॥ सन्निपातज्वर और मन्दाग्निका नाश करता है ॥ ११७ ॥

अथ भूनिंबादि क्काथ ।

भूनिम्बदारुदशमूलमहौषधाब्दतिक्तेन्द्रबीजधनिकभद्रकण्टकण्ट-कषायः ॥ तन्द्राप्रलापभ्रमतृषारुचिदाहमोहश्वासाग्निमान्द्ययुक्त-मथज्वरमाशु हन्ति ॥ ११८ ॥

चिरायता, देवदार, दशमूल, सोंठ, कुटकी, इन्द्रजव, धनियां, गोखरू, पीपल, इन्होंका क्काथ तंद्रा, प्रलाप, भ्रम, तृषा, अरुचि, दाह, मोह, श्वासरोग, मन्दाग्निज्वर इन्होंको नाशता है ॥ ११८ ॥

अथ शुंठ्यादि क्काथ ।

शुण्ठीघनागजकणासुरदारुधान्यातिक्ताकलिङ्गदशमूलसमोऽपि कल्कः ॥ श्रेष्ठस्त्रिदोषजनितज्वरनाशनाय श्वासभ्रमारुचिविब-न्धहृदामयघ्नः ॥ ११९ ॥

सोंठ, नागरमोथा, देवदारु, गजपीपल, धनियां, कुटकी, इंद्रयव, दशमूल, ये सब समान भागले कल्क बनावै यह त्रिदोषजज्वरको नाशता है और श्वासरोग, भ्रम, अरुचि, विबंध, हृदोग इन्होंको नाशता है ॥ ११९ ॥

अथ मुस्तादि क्राथ ।

मुस्तोशीरनिशाविशालमधुकं पाठा बला रोहिणी नीली धन्वयवास कट्वरशठी शुण्ठी समङ्गा त्रिवृत् ॥ यष्टीपिप्पलिमूलपर्पटफला पिप्पल्यकं दारु च श्यामाहेमगुडूचिकासमपयः क्राथो ज्वरान्तः स्मृतः ॥ १२० ॥

नागरमोथा, खस, हलदी, सुन्दरमुलहटी, श्योनापाठा, खरैंटी, हरडै, नीलजवासा, टेंभुर्नी, कचूर, सोंठ, मजीठ, निशोत, अथवा मुलहटी, पीपलामूल, पित्तपापडा, पीपल, देवदार, काली निशोत, कचनार, गिलोय इन्होंका समान पानीमें क्राथ बनावै यह ज्वरको नाशता है॥ १२०॥

अथ बृहत्यादि क्राथ ।

द्वे बृहत्यौ शठी शृङ्गी किरातं कटुरोहिणी ॥ पटोलं पौष्करं भार्ङ्गी वत्सकश्च दुरालभा ॥ १२१ ॥ एतद्बृहत्यादिकपाचनं स्यात्कासादिकोपद्रवनाशनश्च ॥ शीघ्रं निहन्ति ज्वरसन्निपातं शूलार्त्तितन्द्राशमने प्रशस्तम् ॥ १२२ ॥

दोनों कटेहली, कचूर, काकडासींगी, चिरायता, कुटकी, परवल, पोहरकमूल, भारंगी, इन्द्रयव जवासा इन्होंका काथ बनावै ॥ १२१ ॥ यह कटेलीआदि पाचन है खांसी आदि उपद्रवको और सन्निपातज्वरको शीघ्र नाशता है शूल और तंद्राको शांत करनेमें अतिश्रेष्ठ है ॥ १२२ ॥

अथ शठ्यादि पाचन ।

शठी किरातं कटुका विशाला गुडूचिभृङ्गी बृहतीद्वयश्च ॥ महौषधं पौष्करधन्वयासरास्नासुराह्वा गजपिप्पली च ॥ १२३ ॥ पीतन्तु निष्काथ्य हितं नराणां शठ्यादिचातुर्दशकं प्रशस्तम् ॥ जघान तन्द्राश्वसनं शिरोऽर्त्तिजाड्यं सशूलं ज्वरमाशु हन्ति १२४

कचूर, चिरायता, कुटकी, इंद्रायण, गिलोय, अतीस, दोनोंकटेली, सोंठी, पोहकरमूल, जवासा, रायशन, देवदारु, गजपीपल ॥ १२३ ॥ इन्होंका काथ बना पीवै यह चौदह औषधोंका काथ हितकर है और तंद्रा, श्वास, शिरका रोग, जडपना, शूल, ज्वर इन्होंको शीघ्र नाशता है ॥ १२४ ॥

अथ भूनिंबादि क्राथ ।

भूनिम्बसुरदारुनागरघनातिक्ताकलिङ्गानि च तद्वद्धस्तिकणाद्विपञ्चकगणैर्युक्तः कषायो हितः ॥ पीतः सर्वरुजां विनाशन

करः स्यात्सन्निपातज्वरं हन्ति श्वासविशोषवक्षसिरुजं तन्द्रां जघान द्रुतम् ॥ १२५ ॥

चिरायता, देवदारु, सोंठ, नागरमोथा, कुटकी, इंद्रयव, गजपीपल, दशमूल, इन्होंका क्वाथ बना पीना यह सब प्रकारके रोगोंको और सन्निपातज्वरको नाशता है और श्वासरोग, शोषरोग छातीकी पीडा, तंद्रा इन्होंको शीघ्र नाशता है ॥ १२५ ॥

अथ बृहद्रास्नादि क्वाथ ।

रास्ना गुडूचिघनपर्पटकं पटोली भूनिम्बवत्सकशठीयुतनागराणाम् ॥ तिक्तासुराह्वगजमागधिकायवासावासाबलागजबलाक्वथितः समांशः ॥ १२६ ॥ क्वाथो निहन्ति मरुतप्रभवामयानां सश्वासकासजठरार्तीविषूचिकानाम् ॥ श्रेष्ठो नृणां भुवि च पाचनसन्निपाते रोगेऽथवा कफसमीरणके प्रदेयः ॥ १२७ ॥

रायशन, गिलोय, नागरमोथा, पित्तपापडा, परवल, चिरायता, इंद्रयव, कचूर, सोंठ, कुटकी, देवदारु, गजपीपल, जवासा, वांसा, खरैंहटी, बडीखरैंहटी ये सब समानभागले क्वाथ बनावै ॥ १२६ ॥ यह क्वाथ वातसे उपजे रोग, श्वासरोग, खांसी, पेटरोग, विषूचिका, इन्होंको नाशता है यह पाचन मनुष्योंको संसारमें श्रेष्ठ है अथवा कफवातके रोगमें देना चाहिये ॥ १२७ ॥

अथ लघुरास्नादि ।

रास्नात्रिकण्टशतमौषधीनान्तथाचभार्ङ्गी सपुष्करघना सुरदारुधान्याः ॥ क्वाथो हितः सकलमारुतजिज्ज्वरेषु स्यात्सान्निपातप्रभवेष्वतिदारुणेषु ॥ १२८ ॥

रायशन, गोखरू, शतावरी, भारंगी, पोहकरमूल, नागरमोथा, देवदारु, धनियां इन्होंका क्वाथ दारुणरूपी सन्निपातज्वरोंमें हित है ॥ १२८ ॥

अथ त्रिवृतादि मलभेदन ।

त्रिवृद्विशाला च तथा सुराह्वमारग्वधस्तिक्तकरोहिणी च ॥
क्वाथो भवेद्भेदनको मलानां स्याद्वातशूले नयतो भयघ्नः ॥ १२९ ॥

निशोत, इंद्रायणकी जड, देवदारु, अमलतास, कुटकी इन्होंका क्वाथ मलको पतला करता है और वातशूलको करता है ॥ १२९ ॥

अथ सन्निपातस्वेदहर ।

वचा यवानी च महौषधञ्च शुष्कञ्च चूर्णं तनुलेपनाय ॥ शस्तं

वदन्ति ज्वरघर्मशान्तिं करोति नूनं परिमर्दनश्च ॥ १३० ॥ मागधी च सुरदारु तथा च विश्वकं तिक्ता च दीप्यकयुतं तनुलेपनाय ॥ चूर्णं प्रशस्तमपि वारयते शरीरे स्वेदश्च शीतलतनुर्भवेदाशु नूनम् ॥ १३१ ॥

वच, अजमान, सोंठ इन्होंका सूखा चूर्ण बना शरीरपै मालिसकरै यह ज्वरको और पसीनाको शांत करता है ॥ १३० ॥ पीपल, देवदारु, सोंठ, कुटकी, अजमान इन्होंका चूर्ण बना शरीरपै मालिस करनेसे पसीने दूर होते हैं और शीतल शरीर होजाता है ॥ १३१ ॥

अथ नस्यविधान।

मधूकसारं समहौषधेन वचोषणा सैन्धवसंयुता च ॥ मूत्रेण वा चोष्ण जलेन पिष्टं प्रनष्टज्ञानप्रतिबोधनाय ॥ १३२ ॥ शोभाञ्जनकमूलस्य रसं समरिचान्वितम् ॥ विसंगितानां नस्यं स्याद्बोधनं चाशु रोगिणाम् ॥ १३३ ॥

महुआका सार, सोंठ, वच, मिर्च, सैंधानमक इन्होंको गोमूत्रमें अथवा गरमपानीमें पीस नाकमें चढावै यह नस्य मूर्च्छाको प्राप्तहुयेको जगाता है ॥ १३२ ॥ सहिंजनाकी जडके रसमें मिरचोंका चूर्ण मिला नासिकामें चढानेसे संज्ञासे रहित मनुष्योंको शीघ्र ज्ञान होजाता है ॥ १३३ ॥

अथ प्रधमनविधि।

एकं बृहत्याः फलपिप्पलीकं शुण्ठीयुतं चूर्णमिदं प्रशस्तम् ॥ प्रधामयेद्घ्राणपुटे तु संज्ञाचेष्टां करोति क्षवथुप्रबोधः ॥ १३४ ॥

बडीकटेलीका एक फल, पीपल, सोंठ इन्होंका चूर्ण बना पुटलीके द्वारा नासिकामें चढानेसे छींक आती है और चेष्टा होजाती है ॥ १३४ ॥

अथ अंजनविधि।

शिरीषबीजं मरिचोपकुल्या मूत्रेण घृष्टं सह सैन्धवेन ॥ नेत्राञ्जनं स्यान्नयने नराणां प्रनष्टसंज्ञां प्रकरोति बोधः ॥ १३५ ॥ त्रिकटु तथा च करञ्जबीजं त्रिफला सुरदारु सैन्धवम् ॥ तुलसी वर्त्ति नयनाञ्जनकं तन्द्रा नाशं करोति नयनानाम् ॥ १३६ ॥

शिरसके बीज, मिर्च, पीपल, सैंधानमक इन्होंको गोमूत्रमें पीस नेत्रोंमें आंजै यह अंजन नष्टहुई संज्ञाको फिर उपजाता है ॥ १३५ ॥ सोंठ, मिर्च, पीपल, करंजुवाके बीज, हरडै,

बहेडा, आँवला, देवदार, सैंधानकम, तुलसी, इन्होंको पीस बत्ती बना नेत्रोंमें आंजै यह आंजन तंद्राको नाशता है ॥ १३६ ॥

अथ निष्ठीवनविधि।

केसरं मातुलुङ्गस्य शृङ्गवेरं ससैन्धवम् ॥ त्रिकटुसंयुतं कृत्वा आकण्ठाद्धारयेन्मुखे ॥ १३७ ॥ दन्तजिह्वामुखं तालुघर्षणं कारयेद्बुधः ॥ कुर्य्यान्निष्ठीवनं सर्वं वारंवारं विधानतः ॥ १३८ ॥ तेन कण्ठविशुद्धिः स्याच्छ्लेष्माणं चापकर्षति ॥ जिह्वापटुत्वरुचिकृत्कासः श्वासश्च शाम्यति ॥ १३९ ॥ त्रिकटुचव्यकापथ्या चूर्णं सैन्धवसंयुतम्। तेन दन्तांस्तथा जिह्वां घर्षयेत्तालुकामलम् ॥ १४० ॥ निष्ठीवनं गलशुद्धिरुचिकृत्कफसूदनम् ॥ हृल्लासो नाशमाप्नोति पटुत्वं कुरुते भृशम् ॥ १४१ ॥

बिजौराकी केसर, अदरख, सैंधानमक, सूंठ, मिरच, पीपल इन्होंको मिला मुखमें धारै ॥ १३७ ॥ पीछे दंत, जीभ, मुख, तालु इन्होंको घिसै पीछे विधानसे वारंवार थूकताजावै॥ ॥ १३८ ॥ इस्से कंठकी शुद्धि होतीहै और कफ दूर होजाता है और जीभ साफ होजाती है और रुचि उपजती है खांसी और श्वास शांत होजाता है ॥ १३९ ॥ सूंठ, मिरच, पीपल, चव्य, हरडै, सेंधानमक इन्होंके चूर्णसे दंत, जीभ, तालु, इन्होंको घिसै ॥ १४० ॥ यह निष्ठीवनकर्म गलकी शुद्धि और रुचिको करता है कफको दूर करता है थुकथुकीको नाशता है और अत्यंत स्वादको उपजाता है ॥ १४१ ॥

अथ सन्निपातमें विशेषता।

यदि वा शीतगात्रे च तदा स्वेदो विधीयते ॥ स्वेदास्त्रयोदश ज्ञेयाः स्वेदवारणकारणाः ॥ १४२ ॥ सङ्करः प्रस्तुतो नाडीपरिषेकोऽपगाहनः ॥ आतङ्कोऽस्मयनः कर्षः कूटी भूकुम्भिरेव च ॥ १४३ ॥ कूपो होलाक इत्येते स्वेदयन्ति त्रयोदश ॥ १४४ ॥ कालस्वेदं घटीस्वेदं वालुकास्वेदमेव च ॥ कारयेद्धस्तपादाभ्यां तथा शिरसि चातुरे ॥ एवं नो शान्तिर्यदि वा दहेल्लोहशलाकया ॥ १४५ ॥ पादौ दग्धे न चेच्छैत्यं दहेद्द्राङ्गुष्ठमूलके ॥ तथा च मणिबन्धे च हृदि मूर्ध्नि तथापि वा ॥ १४६ ॥ स्वेदो ललाटे

हिमो वा नरस्य शीतार्दितस्यापि सपिच्छलस्य ॥ कण्ठस्थितो यस्य न याति वक्षो नूनं समभ्येति गृहं हि मृत्योः ॥ १४७ ॥ सप्ताहे वा दशाहे वा द्वादशाहेऽथवा पुनः ॥ त्रयोदशे पञ्चदशे प्रशमं याति हन्ति वा ॥ १४८ ॥ अथ पञ्चादशाहे वा हन्ति रक्षति मानवम् ॥ सन्निपातो महाघोरो ज्वरः कालाग्निसन्निभः ॥१४९॥ एषा त्रिदोषमर्य्यादा मोक्षाय च वधाय च॥ सन्निपातस्य दोषस्य नरस्यास्य भिषग्वर ॥१५०॥ सन्निपातेऽन्तर्दाहे मनुजं यः शीतवारिणा सिञ्चेत् ॥ आतुरः कथमपि जीवेद्वैद्यश्चासौ कथं पूज्यः ॥ १५१ ॥ यः सन्निपातजलधौ पतितं मनुष्यं वैद्यः समुद्धरति किन्न कृतं नु तेन ॥ धर्मेण वाथ यशसा विनयेन युक्तः पूजां च कां भुवितले न लभेत्तु वैद्यः ॥ १५२ ॥

जो शीतल शरीरहो तब पसीनादेना चाहिये दुःखको दूर करनेके कारणरूपी स्वेद अर्थात् पसीने तेरह जानने ॥ १४२ ॥ संकर, नाडीपरिषेक, अपगाहन, आतंक, अस्मयन, कर्ष, कूटी, भूकुंभि ॥ १४३ ॥ कूप, होलाक, कालस्वेद, घटीस्वेद, वालुकास्वेद ये तेरह प्रकारके स्वेद मनुष्यके पसीनाको लाते हैं ॥ १४४ ॥ इन्होंसे रोगीका हाथ, पैर, शिर इन्होंपै पसीनाको देवै जो ऐसे शांति नहींहो तब लोहाकी शलाईसे दागदेवै ॥ १४५ ॥ जो पैरपै दागदियेसेभी शीतलता नहीं उपजै तब अँगूठाके मूलमें दग्धकरै अथवा मणिबंध अर्थात् पहुँचा, हृदय, मस्तक, इन्होंमें दग्धकरै ॥ १४६ ॥ जिसके मस्तकपै ठंढा पसीना आवै और सब शरीर शीतल होवै शीतसे पीडित और कफकी अधिकतावाला ऐसे मनुष्यके कंठतक पसीना आवे छातीमें नहीं प्राप्तहोवै वह मनुष्य निश्चय मृत्युको प्राप्त होता है ॥ १४७ ॥ सातमा, अथवा दशमां अथवा बारमां, तेरमां, पंदरमां, इनदिनोंमें सन्निपातज्वर शांत होजाता है अथवा रोगीको मारदेता है ॥१४८॥ और पंद्रहमें दिन निश्चय सन्निपातज्वर शांत होता है अथवा रोगीको मारता है यह सन्निपातज्वर महाघोररूप है काल और अग्निके समान कांतिवाला है ॥ १४९ ॥ सन्निपातकी शांत होनेकी अथवा मारनेकी यह मर्यादा है॥१५०॥ सन्निपातमें जो शरीरमें दाह उपजै तब वैद्य शीतलपानीके छिडके दिवाता है तब रोगी नहीं जीवता और वह वैद्य पूजाको प्राप्त नहीं होसक्ता ॥ १५१ ॥ सन्निपातरूपी समुद्रमें पडे-हुये रोगीमनुष्यको जो वैद्य उद्धार करता है उस मनुष्यने क्या नहीं किया, और धर्म, यश, तथा विनय करकै युक्त वह वैद्य इस भूतलमें कौनसी पूजाको नहीं पाता है ? अर्थात् सर्वत्र पूज्य होता है ॥ १५२ ॥

अथ कर्णमूल (शोजा) का निदान और चिकित्सा ।

वातपित्तकफैस्त्रिभिर्युक्तस्तथा त्रिदोषजः ॥ स च रक्तेन संयुक्तो ज्वरः स्यात्सान्निपातिकः ॥ १५३ ॥ न रक्तेन विना विद्धि ज्वरं वै सान्निपातिकम् ॥ क्काथैः पाचनकैर्दोषाः प्रशमं यान्ति मानवे ॥ १५४ ॥ तस्मात्प्रशमिते दोषे रक्तं नैव विलीयते ॥ तेनैव जायते शोफः कर्णमूले तु दारुणः ॥ १५५ ॥ तस्मात्तस्य प्रतीकारं कुर्य्याद्रक्तविरेचनम् ॥ जलौकालाबुभृङ्गैस्तु ततश्च लेपनं हितम् ॥ १५६ ॥

वात, पित्त, कफ इन तीनोंसे युक्त त्रिदोषज्वर होता है और रक्तसें संयुक्तहुआ यही ज्वर सन्निपात कहाता है ॥ १५३ ॥ रक्तके विना सन्निपातज्वरको नहीं जानना क्काथ और पाचनसंज्ञक क्काथोंसे मनुष्यके तीनों दोष शांत होजाते हैं ॥ १५४ ॥ तिसकारणसे दोष शांतभी होजाते हैं परंतु रक्त नहीं शांत होता तिसकरकै कानके जडमें भयंकर शोजा उपजता है ॥ १५५ ॥ तिस्से तिसकी चिकित्सा रक्तका निकासना है जोंक, तुबी, शींगी, इन्होंसे रक्तको निकासे पीछे लेप कराना ॥ १५६ ॥

अथ कर्णशोथ ऊपर लेप ।

बीजपूरकमूलानि अग्निमन्थस्तथैव च ॥
आलेपनमिदं चास्य कर्णमूलस्य नाशनम् ॥ १५७ ॥

बिजौराकी जड,अरनी इन्होंको पानीमें पीस लेप करना यहलेप कर्णमूलको नाशता है१५७

अथ दूसरा लेप ।

आगारधूपरजनीसुमहौषधेन सिद्धार्थसैन्धववचापयसा विमर्द्य ॥
लेपोहितोरक्तविनाशकारी शोफव्रणस्य शमनो मनुजस्य कर्णे १५८

घरका धुवा (श्रीवेष्टधूप), हलदी, सूंठ, सरसों, सेंधानमक, वच, इन्होंको दूधसें पीस कर्णमूलपर लेप करना यह लेप रक्तके विकारको नाशता है शोजा और घावको शांत करता है ॥ १५८ ॥

अथ व्रणरोपण औषध ।

यदा पाको भवेत्तस्य कार्य्या तत्र प्रतिक्रिया ॥ धवार्जुनकदम्बत्वग्लेपनं व्रणरोहणम् ॥ १५९ ॥ निम्बारग्वधमूलानां निशायुक्तं प्रलेपनम् ॥ स्रावणं पूयगन्धानां रोहणं स्याद्व्रणषु च ॥१६०॥

जो कानकी जडमें शोजा पकजावै तहां जो क्रिया करनी चाहिये वह कहीजाती है धवकी छाल, अर्ज्जुनवृक्षकी छाल, कदंबकी छाल, इन्होंको पीस लेप करनेसे घावपै अंकुर आजाता है ॥ १५९ ॥ नींबकी छाल, अमलतासकी छाल, हलदी, इन्होंका लेप राद और दुर्गधको झिराता है और घावोंपर अंकुरको लाता है ॥ १६० ॥

अथ कर्णशोथवालेकूं पथ्य ।

वर्जयेच्च दिवास्वप्नं योषित्सङ्गं बहूदकम् ॥ शीतांबु जागृतिं रात्रौ व्यायामं शोचनं तथा॥१६१॥माषांश्च यवगोधूमतिलपर्णीकमेव च ॥ मसूरत्रिपुटांश्चैतांस्तैलञ्च दूरतस्त्यजेत् ॥ १६२ ॥ मासमेकं व्यवायं च पक्षैकं चातिभोजनम् ॥ वर्जयेत्कर्णमूलञ्च सुखं तेनोपपद्यते ॥ १६३ ॥ षष्टिकान्नं पुराणं वा बाल्यं सूपस्तथाढकी ॥ कुलत्थामुद्गयूषं वा भोजने च प्रशस्यते ॥ १६४ ॥ वार्त्ताकञ्च पलाण्डुं च कन्दशाकान्परित्यजेत् ॥ एतेन सुखमाप्नोति शीघ्रं रोगाद्विमुच्यते ॥ १६५ ॥

इस कर्णमूलमें दिनका सोना, स्त्रीसंग बहुतपानीका पीना, शीतलपानी, रात्रिका जागना कसरत, शोच, ॥ १६१ ॥ उडद, यव, गेहूं, तिलका पदार्थ, मसूर, मटर, तेल इन्होंको दूरसे वर्ज्जै ॥ १६२ ॥ और एक महीनातक मैथुनको और पंद्रहदिनोंतक अत्यंत भोजनको वर्जै तब सुख होता है ॥ १६३ ॥ साठीचावल, पुरानाअन्न, अरहरकी दाल, कुलथी और मूंगोंका यूष ये सब भोजनमें श्रेष्ठ हैं ॥ १६४ ॥ वार्ताकु, (बैंगन) प्याज, कंदशाक इन्होंको त्यागै ऐसे करनेसे सुखको प्राप्त होता है और शीघ्र रोगसे छुटता है ॥ १६५ ॥

अथ अंतर्दाहका कारण ।

अन्ते पित्तं यदा तिष्ठेद्वाह्ये श्लेष्मसमीरणौ ॥
तदान्तर्दाहशोषः स्याद्वाह्ये सस्वेदशीतता ॥ १६६ ॥

जब शरीरके भीतर पित्त स्थित होजाता है और शरीरके बाहर कफ और वात स्थित होता है तब शरीरके भीतर दाह और शोष उपजाता है और शरीरके बाहर पसीना और शीतलता होती है ॥ १६६ ॥

अथ अंतर्दाहकी चिकित्सा ।

तस्यामृतापयः क्काथं मधुपिप्पलिसंयुतम् ॥ पाययेदाशु मुच्येत ज्वराद्वै सान्निपातिकात् ॥ १६७ ॥ अथवातिविषा वालं नागरं घनपर्पटम् ॥ क्काथो वा शर्करायुक्त अन्तर्दाहोपशान्तये ॥१६८॥

तिसको गिलोयके क्वाथमें शहद और पीपलका चूर्ण मिला पानकरावै तब शीघ्रही सन्निपातज्वरसे छुटजाता है ॥ १६७ ॥ अथवा अतीश, नेत्रवाला, सूंठ, नागरमोथा, पित्तपापडा इन्होंका क्वाथ बना तिसमें खांड मिला पीवै तब शरीरके भीतरकी दाह शांत होती है ॥ १६८ ॥

बाह्यदाहका कारण और चिकित्सा ।

बाह्ये पित्तं यदा तिष्ठेदन्ते वा कफमारुतौ ॥ तेनोष्णत्वं शरीरस्य अन्ते शैत्यं च जायते ॥ १६९ ॥ तस्य शठ्यादिकं क्वाथं प्रयुञ्जीयात्कफापहम् ॥ १७० ॥

जब शरीरके बाहिर पित्त स्थितहो और शरीरके भीतर कफ और वात स्थित होवै तब शरीर गरम होताहै हाथ और पैरोंमें शीतलता होतीहै ॥ १६९ ॥ तिसको कचूरआदि पूर्वोक्त क्वाथका पान कराना यह शांत करता है ॥ १७० ॥

अथ शरीर शीतल और अर्ध गर्म होय तहां कारण और चिकित्सा ।

यस्योर्ध्वाङ्गे वातकफावधोगं पित्तमेव च ॥ तेनार्द्धं शीतलं गात्रमर्द्धं चोष्णं च जायते ॥ १७१ ॥ तस्य रास्नादिकं क्वाथं प्रयुञ्जीयात्तथोष्णकम् ॥ १७२ ॥ यस्योर्ध्वे रक्तपित्तश्च मध्ये वातकफावुभौ ॥ तेनोर्ध्वं जायते चोष्णमधः शीतं प्रजायते ॥ १७३ ॥ तस्य नागरादिक्वाथं युञ्जीयाद्भिषगुत्तमः ॥ १७४ ॥

जिसके ऊपरके अंगोंमें वात और कफकी स्थितिहो और नीचेके अंगमें पित्तकी स्थितिहो तिसकरकै आधा शरीर गरम रहता है और आधा शरीर शीतल रहता है॥ १७१॥ तिसको पूर्वोक्त गर्मगर्म रास्नादि क्वाथका पान कराना ॥ १७२ ॥ जिसके ऊपरले अंगोंमें रक्त और पित्तहो और मध्यमें वात और कफहो तिस्से ऊपरका शरीर गर्म रहता है और नीचेका शरीर शीतल रहता है ॥ १७३ ॥ तिसको पूर्वोक्त सूंठआदि क्वाथका पान करना ॥ १७४ ॥

यस्योष्मा दृश्यते चापि मन्दस्पष्टा च जायते ॥ बाह्यवेगं विजानीयाज्ज्वरः साध्यो विजानता ॥ १७५ ॥ यस्यान्ते जायते चोष्मा तृष्णा दाहः शिरोव्यथा ॥ गम्भीरवेगं जानीयात्कृच्छ्रसाध्यो नृणामपि ॥ १७६ ॥ तस्य कुर्य्यात्प्रतीकारं योगोऽष्टादशको नृणाम् ॥ १७७ ॥

जिसके गरमाईहो और ज्वरका मंदवेगहो तिसको बाह्यवेगज्वर कहते हैं यह ज्वर साध्य होता है ॥ १७५ ॥ जिसके हाथ और पैरमें गर्माईहो और तृषा, दाह, शिरमें पीडा ये उपजैं तिसको गंभीरवेगज्वर कहते हैं यह मनुष्योंके कष्टसाध्य होताहै ॥ १७६ ॥ तिसके लिये अष्टादशांग काथ काफी है ॥ १७७ ॥

अथ शीतलअंगमें गरमकरनेकी चिकित्सा।

अन्ते पित्तं यदा तिष्ठेद्देहे वातकफावुभौ ॥ तेन शैत्यं शरीरस्य उष्णत्वं करपादयोः ॥ १७८ ॥ तस्य रास्नादिकः क्वाथः प्रदेयः पिप्पलीयुतः ॥ १७९ ॥

जब हाथ और पैरमें पित्तकी स्थितिहो और शरीरमें वात और कफकी स्थितिहो तिसकरकै शरीर शीतल रहता है हाथ और पैरोंमें गर्माई जाननी ॥ १७८ ॥ तिसको रास्नादि क्वाथमें पीपलका चूर्ण मिला पान कराना ॥ १७९ ॥

अथ गर्मीका उपचार।

देहे पित्तं यदा तिष्ठेदंते वातकफावुभौ ॥ तस्योष्मा जायते देहे शीतत्वं करपादयोः ॥ १८० ॥ तस्य द्राक्षादिकः क्वाथः प्रदेयो गुडकान्वितः ॥ १८१ ॥

जिसके देहमें पित्त स्थितहो हाथ और पैरोंमें वात कफ स्थितहोवे तिसका देह गर्म रहताहै हाथ और पैर शीतल रहतेहैं ॥ १८० ॥ तिसको द्राक्षादिकाथमें गुडमिला पानकराना ॥ १८१ ॥

अथ शीतत्वका उपचार।

यत्र यत्र भवेच्छैत्यं तत्र स्वेदो विधीयते ॥
नात्युष्णे स्वेदनं कार्यं ज्वरस्यास्य विजानता ॥ १८२ ॥

और जहां जहां शीतलता होवै तहां २ पसीना देना चाहिये इस सन्निपात ज्वरको जाननेवालेने अत्यंत गर्माईमें पसीना नहीं देना ॥ १८२ ॥

ज्वरादिकोंका कारण वायु है।

कफपित्तेन निश्चेष्टो भवत्येवानिलः सदा ॥
तस्मादेवानिलाद्रोगाः सम्भवन्ति ज्वरादयः ॥ १८३ ॥

कफ और पित्तसे चेष्टा करकै रहितहुआ वात सब कालमें रहता है तिस कारण करकै वातसेही ज्वरआदि सब रोग उपजते हैं ॥ १८३ ॥

अथ ज्वरमुक्तिका लक्षण।

भ्रमः शैत्यं विह्वलता कम्पो विड्भेदनं क्लमः ॥
श्रमः स्वेदो जल्पनश्च ज्वरमोक्षे भवन्ति च ॥ १८४ ॥

भ्रम, शीतलता, विह्वलपना, कंप, विष्ठाका पतलापन, थकानसी, परिश्रम, पसीना, बोलना ये सब ज्वरके दूर होनेके समय होते हैं ॥ १८४ ॥

अथ ज्वर उतरनेका लक्षण।

प्रस्वेदकण्डू च शिरा च पुष्टा तथा मुखेषु क्षवथुर्लघुत्वम् ॥
अन्नाभिलाषो विपुलेन्द्रियश्च गतक्लमो गतरुजो मनुष्यः ॥१८५॥

पसीना आवै खा चलै और नाडी पुष्ट होजावै और मुखमें छींक आवै और शरीरका हलकापनहो और अन्नकी इच्छाहो और इंद्रियें प्रसन्न होजावैं ग्लानि और पीडा जाती रहै तब जानों ज्वर उतरा ॥ १८५ ॥

अथ ज्वर नहीं उतरनेका और लौटआनेका लक्षण।

विमुक्तस्यापि हि शिरोगुरुत्वं नैव मुञ्चति ॥
अविमुक्तं विजानीयाज्ज्वरः पुनरुपैति तम् ॥ १८६ ॥

ज्वरसे मुक्तहुआ मनुष्य शिरके भारीपनको नहीं छोडै तब जानो कि, तिस मनुष्यके फिर ज्वर उपजैगा ॥ १८६ ॥

अथ विषमज्वरका लक्षण और चिकित्सा।

यदि धातुगतश्चैव ज्वरो देहे प्रपद्यते ॥ विषमज्वरं जानीयात्स च ज्ञेयश्चतुर्विधः ॥ १८७ ॥ एकाहिको द्व्याहिकश्च त्र्याहिकश्च तथापरः ॥ वेलाज्वरश्चतुर्थोऽपि विजानीयाद्विचक्षणः ॥ १८८ ॥

जो देहके धातुओंमें ज्वरप्राप्त होवै तिसको विषमज्वर जानना वह चार प्रकारका है ॥ ॥ १८७ ॥ एकाहिक अर्थात् दिनमें एक बार आनेवाला द्व्याहिक अर्थात् दूसरे दिन आनेवाला त्र्याहिक अर्थात् तीसरे दिन आनेवाला और समयपै चौथे दिन आनेवाला ऐसे ज्वर वैद्योंको जानना चाहिये॥ १८८ ॥

अथ एकाहिकज्वरका लक्षण।

शीतश्च पूर्वं भवति पश्चादुष्णश्च जायते ॥ स साध्यो मनुजे प्रोक्तः शीघ्रं सिध्यति भेषजैः ॥ १८९ ॥ पश्चाच्च दाहमाप्नोति ज्वरो भवति दारुणः ॥ सोऽपि न मुच्यते शीघ्रं ज्वरो धातुक्षयङ्करः ॥ १९० ॥

जिसमें प्रथम शीत उपजै और पीछे गरमाई उपजै वह साध्यज्वर जानना यह औषधोंसे शीघ्र जाता रहता है ॥ १८९ ॥ भयंकर ज्वर होकै पीछे दाहसे संयुक्त हो वह शीघ्र नहीं जाता है यह ज्वर धातुओंको क्षय करता है ॥ १९० ॥

अथ तृतीय ज्वर लक्षण।

त्रिकोरुकटचां रुजवातपित्तं स्याच्च पित्तं मस्तके रुग्भ्रमश्च ॥ पृष्ठे तनुश्लेष्मरुजाकरं स्यात्त्रिधा तृतीयज्वरलक्षणं तत् ॥१९१॥ कफपित्तात्त्रिकग्राहीपृष्ठाद्वातकफात्मकः ॥ वातपित्ताच्छिरोग्राही त्रिविधः स्यात्तृतीयकः ॥ १९२ ॥

कटिप्रांत, जांघ, कटि इन्होंसे वात और पित्तसे पीडा हो और मस्तकमें पित्तसे पीडा हो और भ्रम उपजै और पृष्ठभागमें सूक्ष्म कफ पीडाको करताहो ऐसे तृतीय ज्वरका लक्षण तीन प्रकारका है ॥ १९१ ॥ वात और कफसे उपजा तृतीयकज्वर प्रथम कटिप्रांतमें पीडाको उपजा पीछे आप उपजता है वात और कफसे उपजा तृतीयकज्वर प्रथम पृष्ठ नितंब स्थानमें पीडाको उपजा पीछे आप उपजता है। वात और पित्तसे प्रथम शिरमें पीडाको उपजा पीछे आप उपजता है ऐसे तृतीयकज्वर तीन प्रकारका है ॥ १९२ ॥

अथ चातुर्थिक ज्वरलक्षण।

चतुर्थो द्विविधो ज्ञेयो वातश्लेष्मात्मको ज्वरः ॥ जङ्घाभ्यां श्लेष्मकोज्ञेयः शिरसोऽनिलसम्भवः ॥ १९३ ॥ एवं विज्ञाय सद्वैद्यःकुर्य्यात्तत्र प्रतिक्रियाम् ॥ १९४ ॥

वात और कफसे उपजा चातुर्थिकज्वर दो प्रकारका है कफका चातुर्थिकज्वर प्रथम जंघाओंसे उपजता है और वातका चातुर्थिकज्वर प्रथम शिरसे उपजता है ॥ १९३ ॥ ऐसे जानकै कुशल वैद्य तहां क्रियाको करै ॥ १९४ ॥

अथ वेलाज्वरादिकका लक्षण।

वेलाज्वरो रसगते रक्ते चैकाहिकस्तथा ॥ मांसगोऽपि तृतीयः स्याच्चतुर्थोऽस्थिसमाश्रितः ॥ सर्वधातुगतो ज्ञेयो जीर्णो धातुक्षयंकरः ॥ १९५ ॥

वेलाज्वरका स्थान रसमें होता है, एकाहिकज्वरका स्थान रक्तमें होता है, तृतीयज्वरका स्थान मांसमें होता है और हड्डियोंमें चातुर्थिक ज्वरका स्थान होता है सब धातुओंमें गमन करनेवाला जीर्णज्वर धातुओंको नष्ट करता है ॥ १९५ ॥

अथ भूतादिकसे उपजे रोग ।

भूतजे भूतविद्या स्याद्धाति शमताडनम् ॥ अभिशापाज्वरो यस्य तस्य शान्तिः प्रतिक्रिया ॥ १९६ ॥ कामजे कामला पित्तैर्नयेच्च श्वसनं हितम् ॥ १९७ ॥ क्रोधजे पित्तजे वापि सद्वाक्यैरुपशामयेत् ॥ ओषधी गन्धजैर्मूर्च्छा कारयेत्सेवनं हितम् ॥ १९८ ॥

भूतजज्वरमें भूतविद्यासे शांतकरना, ताडनादेनी ये हित हैं और ब्राह्मणके शापसे उपजे-ज्वरमें शांतिकरानी हित है ॥ १९६ ॥ कामजज्वरमें कामला और पित्तकी चिकित्साकरके आश्वासन करना हितहै ॥ १९७ ॥ क्रोधसे और पित्तसे उपजे ज्वरमें श्रेष्ठवाक्योंसे शांति करना हित है। औषधीके गंधसे उपजे ज्वरमें मूर्च्छा होती है इसको दूरकरनेके लिये हित पदार्थको सेवै ॥ १९८ ॥

अथ निदिग्धिकादि क्काथ ।

निदिग्धिकानागरिकामृतानां क्काथं पिबेन्मिश्रितपिप्पलीकम् ॥
जीर्णज्वरारोचनकासशूलश्वासाग्निमान्द्यार्दितपीनसेषु ॥ १९९ ॥

कटेली, सूंठ, गिलोय, इन्होंके क्काथमें पीपलका चूर्ण मिला पीवै यह जीर्णज्वर, अरोचक, खांसी, शूल, श्वासरोग, मंदाग्नि, अर्दितरोग, पीनस इन्होंको नाशता है ॥ १९९ ॥

अथ गुडपिप्पली ।

कासाजीर्णे श्वासहृत्पाण्डुरोगे मन्दे वाग्नौ कामलारोचके च ॥
तेषां शस्ता पिप्पली स्याद्गुडेन हन्ति नृणां जीर्णमाशु ज्वरञ्च ॥ २०० ॥

गुडमें संयुक्तकरी पीपली, खांसी, अजीर्ण, श्वासरोग, पांडुरोग, मंदाग्नि, कमला, अरोचक जीर्णज्वर इन्होंको शीघ्र हरती है ॥ २०० ॥

अथ लघुपंचमूलक्काथ ।

लघुपञ्चमूलीक्कथितः कषायश्छिन्नोद्भवायाः सह पिप्पलीभिः ॥
जीर्णज्वरे श्वासकफामयघ्नो मन्दाग्निशूलारुचिपीनसानाम् ॥ २०१ ॥

शालपर्णी, पिठवन, छोटी कटेली, बडीकटेली, गोखरू इन्होंके क्काथको अथवा गिलोयके क्काथमें पीपलका चूर्ण मिलापीवै तौ जीर्णज्वर, श्वास, कफका रोग, मंदाग्नि शूल, अरुची, पीनस इन्होंका नाश होता है ॥ २०१ ॥

अथ जीर्णज्वरपर पटोलादि क्काथ ।

पटोलपाठाकटुरोहिणीनां फलत्रयं वत्सकनिम्बमोक्षाः ॥
द्राक्षामृताचन्दननागराणां क्काथः पुराणज्वरनाशनाय ॥ २०२ ॥

परवल, श्योनापाठा, कुटकी, हरडै, बहेडा, आंवला, इंद्रजव, नींबकी छाल, मोखावृक्ष, दाख, गिलोय, चंदन, सूंठ, इन्होंका क्वाथ पुरानेज्वरको नाशता है ॥ २०२ ॥

अथ विषमज्वरका औषध।

सजीरकं गुडं भक्षेत्सगुडां वा हरीतकीम् ॥ सगुडान्वा तिलान्भक्षेज्ज्वरे च विषमानुगे ॥२०३॥ गुडार्द्रकं वा संभक्षेत्सगुडं त्रिफलाक्काथम् ॥ क्काथोऽपि विषमाणान्तु ज्वराणां नाशकारकः२०४

गुडसहित जीराको अथवा गुडसहित हरडैको अथवा गुडसहित तिलोंको खावै यह विषमज्वरको नाशता है ॥ २०३ ॥ गुडसहित अदरख अथवा गुडसहित त्रिफलाके क्वाथको पीवै यह विषमज्वरोंको नाशता है ॥ २०४ ॥

अथ चातुर्थीकज्वरका उपाय।

वासाधात्रीफलदारुपथ्यानागरसाधितः ॥
मधुना संयुतः क्वाथश्चातुर्थिकनिवारणः ॥ २०५ ॥

वांसा, आंवला, देवदार, हरडै, सूंठ, इन्होंके क्वाथमें शहद डाल पीवै यह चातुर्थिकज्वरको नाशता है ॥ २०५ ॥

अथ चातुर्थिकपर नस्य।

अगस्तिपत्रं स्वरसैर्निहन्ति नस्ये च चातुर्थिकरोगमुग्रम् ॥
कासं भ्रमं चापि शिरोरुजाञ्च नाशञ्च नस्यं च हितं नराणाम् २०६

अगस्तिवृक्षके स्वरसको नाकमें चढानेसे भयंकरभी चातुर्थिकज्वर नाशको प्राप्त होता है और खांसी, भ्रम, शिरकी पीडा इन्होंकाभी नाश होता है ॥ २०६ ॥

अथ विषमज्वरपर लशुनकल्क।

रसोनकल्कं तिलतैलमिश्रं योऽश्नाति नित्यं विषमज्वरार्त्तः ॥
विमुच्यतेऽसौ विषमज्वरेभ्यो वातामयैश्चाप्यतिघोररूपैः ॥२०७॥

जो विषमज्वरसे पीडितहुआ मनुष्य तिलोंके तेलसे युक्तकिये ल्हसनके कल्कको नित्य खातारहता है वह विषमज्वर और अत्यंत भयंकर वातके रोगोंसे मुक्तहोताहै ॥ २०७ ॥

अथ विषमज्वरपर अष्टांगधूप।

पलङ्कषा निम्बस्य दलानि कुष्ठं वचा गुडं गुग्गुलुसर्षपानाम् ॥
हरीतकी सर्पियुतं च धूपं विनाशनं वै विषमज्वराणाम् ॥ २०८ ॥

नींबके पत्ते ४ तोले और कूट, वच, गुड, सरसों, हरडै, गूगल ये सब उनमानसे मिला महीनपीस घृतसे युक्तकर धूप देनेसे विषमज्वरोंका नाश होता है ॥ २०८ ॥

अथ वेलाज्वरआदिकोंका उपाय।

सुरसा मूलमावृत्य हस्ते बद्धः शुभे दिने ॥ वेलाज्वरादिकान् हन्ति भूतज्वरनिवारणः ॥ २०९ ॥ मुस्तामृतामलक्यश्च नागरं कण्टकारिका ॥ कणाचूर्णान्वितः क्काथस्तथा मधुसमन्वितः ॥ ॥ २१० ॥ एकाहिकं वा वेलाद्यं ज्वरं जातं व्यपोहति ॥ २११ ॥ रसोनबीजं विहाय खण्डं कृत्वा निशासु च ॥ तक्रमध्ये विनिक्षिप्य प्रभाते घृतसंयुतम् ॥ २१२ ॥ सेवितश्च ज्वरान्हन्ति वेलाद्यान्देहधातुगान् ॥ २१३ ॥ पिप्पलीवर्द्धमानञ्च पिबेत्क्षीरं रसायनम् ॥ महौषधं नागरञ्च धान्यं चन्दनवालुकम्॥२१४॥ गुडूचिकापयः पिबेत्तृतीयकज्वरापहम् ॥ अपामार्गस्य मूलञ्च नीलीमूलमथापि वा ॥ २१५ ॥ लोहितेन तु सूत्रेण आमस्तकप्रमाणतः॥ वामकर्णे कटीं बद्धा ज्वरं हन्ति तृतीयकम्॥२१६॥ वानरेन्द्रमुखं दिव्यं तरुणादित्यतेजसम् ॥ ज्वरमेकाहिकं घोरं तत्क्षणादेव नश्यति ॥ २१७ ॥

तुलसीकी जडको शुभदिनमें लाकै हाथपर बांधै तब वेलाज्वर और भूतज्वरआदि नाशको प्राप्त होते हैं ॥ २०९ ॥ नागरमोथा, गिलोय, आंवला, सूंठ, कटेली इन्होंके काथमें पीपलका चूर्ण और शहद मिला पीवै ॥ २१० ॥ इससे एकाहिकज्वर, वेलाआदिज्वर दूर होता है ॥ २११ ॥ लस्सनके बीजोंको निकास और रात्रिमें टुकडे बना तक्रके बीचमें स्थापितकर पीछे प्रभातमें घृतसे संयुक्तकर ॥ २१२ ॥ सेवै यह वेलाआदि और देहके धातुगत आदि ज्वरोंको नाशता है ॥ २१३ ॥ वर्द्धमान पीपल, दूध, रसायन औषध, इन्होंको पीवै और सूंठ, सफेद लस्सन, धनियां, चंदन, नेत्रवाला, इन्होंको अलग २ सेवै ये विषमज्वरको नाशते हैं ॥ २१४ ॥ गिलोयका रस तृतीयज्वरको नाशता है ऊंगाकी जडको अथवा नीलकी जडको ॥ २१५ ॥ शिरके प्रमाण लालसूत्रमें बांध पीछे वामेकानमें और कटीपर बांधनेसे तृतीयकज्वरका नाश होता है ॥ २१६ ॥ तरुणसूर्यके तेजके समान तेजवाला सुग्रीवनामक वानरोंका राजा उसके दिव्यमुखको देख घोररूपी एकाहिकज्वर शीघ्र नष्ट होजाता है ॥ २१७ ॥

अथ ज्वरनाशकहनुमान्का पूजन।

वानराकृतिमालिख्य खटिकायाः पुनः शृणु ॥ गन्धपुष्पादिनैवेद्यैर्पूजयन्ति भिषग्वराः ॥ २१८ ॥

खडियासे वानरकी आकृतिको लिख गंध, पुष्प, चावलोंके अक्षत इन्होंसे वैद्यवर पूजा करते हैं ॥ २१८ ॥

अथ ज्वरनाशक मन्त्र ।

ओं ह्रां ह्रीं क्लीं सुग्रीवाय महाबलपराक्रमाय सूर्य्यपुत्रायामिततेजसे एकाहिकद्व्याहिकत्र्याहिकचातुर्थिकमहाज्वरभूतज्वरभयज्वरक्रोधज्वरवेलाज्वरप्रभृतिज्वराणां दह दह पच पच अवत अवत वानरराज ज्वराणां बन्ध बन्ध ह्रां ह्रीं ह्रूं फट् स्वाहा । नास्ति ज्वरः । ज्वरापगमनसमर्थज्वरस्त्रास्यते ॥ २१९ ॥

(मंत्र) "ओंह्रांह्रींक्लीं सुग्रीवाय महाबलपराक्रमाय सूर्यपुत्रायामिततेजसे एकाहिकद्व्याहिकत्र्याहिक चातुर्थिक महाज्वर भूतज्वर भयज्वर क्रोधज्वरवेलाप्रभृतिज्वराणां दहदह पचपच अवत अवत वानरराज ज्वराणां बंधबंध ह्रांह्रींह्रूं फट्स्वाहा । नास्तिज्वरः । ज्वरापगमनसमर्थ ज्वर स्त्रास्यते" इसमंत्रसे विषमज्वर दूर होजाता है ॥ २१९ ॥

अथ चारवर्णवाले ज्वरोंके चिह्न ।

पुनश्चात्र प्रवक्ष्यामि ज्वराणां रूपलक्षणम् ॥ २२० ॥

ज्वरोंके रूप और लक्षणको फिर कहताहूं ॥ २२० ॥

अथ ब्राह्मणज्वर ।

संततकाञ्चनाभासो हुताशनसमप्रभः ॥
उड्डीनयज्ञोपवीती च रौद्रो ब्राह्मणरूपकः ॥ २२१ ॥

अच्छी तरह तपाया हुआ सोनाके समान कांतिवाला और अग्निके समान प्रकाशित और भयंकर यज्ञोपवीत अर्थात् जनेउवाला ऐसा रौद्रसंज्ञक ब्राह्मणवर्णवाला ज्वर होता है २२१

अथ क्षत्रियज्वर ।

जपाकुसुमसङ्काशो रौद्रदंष्ट्रान्वितस्तथा ॥
खड्गहस्तो महारौद्रो माहेन्द्रः क्षत्रियो मतः ॥ २२२ ॥

जास्वंदके फूलके समान प्रकाशवाला और भयंकर डाढोंसे अन्वित और तलवारको हाथमें लियेहुये और महादारुण ऐसा माहेंद्रसंज्ञक ज्वर क्षत्रियवर्णवाला होता है ॥ २२२ ॥

अथ वैश्य ज्वर ।

पञ्चकप्रसवाभासततकाञ्चनभूषितः ॥
दण्डहस्तो मध्यवेगी वैश्यो ज्वरेश्वरो मतः ॥ २२३ ॥

पांच प्रकारके फूलोंके समान आकृतिवाला और तपायेहुये सोनासे भूषित हुआ दंडको हाथमें लेनेवाला और मध्यमवेगवाला ऐसा ज्वरेश्वरसंज्ञक ज्वर वैश्यवर्णवाला कहाता है ॥ २२३ ॥

अथ शूद्र ज्वर।

कृष्णमेघाञ्जनाकारस्तीक्ष्णदंष्ट्रोज्ज्वलाननः ॥
त्रिनेत्रो ज्वलनप्रभः कालः शूद्रो मतस्तथा ॥ २२४ ॥

कालामेघ और पर्वतके समान आकृतिवाला और तीक्ष्णडाढोंसे प्रकाशित मुखवाला और तीन नेत्रोंवाला और अग्निके समान कांतिवाला और कालरूप ऐसा ज्वर शूद्रवर्णवाला होताहै ॥ २२४ ॥

अथ ब्राह्मणज्वरका लक्षण और शांति।

तीक्ष्णवेगः क्षुधायुक्तः शुचिर्द्वेष्टा व्रतप्रियः ॥ मूत्रञ्च किंशुकाभासं पाठशीलोऽतिजल्पकः ॥ २२५ ॥ बहुश्वासी तृषाक्रान्तो रौद्रब्राह्मणपीडितः ॥ तस्य स्नानं जपं होमं कृत्वा शान्तिः प्रपद्यते ॥ २२६ ॥

तीक्ष्णवेगवाला और भूखसे युक्त और पवित्र और वैरको करनेवाला और व्रतमें प्यार करनेवाला और केशूका रंगके समान मूत्रको उतारनेवाला और पाठमें अभ्यासवाला और अत्यंत बोलनेवाला ॥ २२५ ॥ बहुत श्वासोंको लेनेवाला और तृषासे आक्रांतहुआ ऐसा मनुष्य रौद्रसंज्ञक ब्राह्मणवर्णवाले ज्वरसे पीडित जानना तिसकी शांति स्नानजप होमादिसे करें ॥ २२६ ॥

अथ क्षत्रियज्वरका लक्षण और शांति।

तीक्ष्णज्वरोऽतितृष्णश्च रक्तमूत्रञ्च मूत्र्यते ॥ कुरुते युद्धवार्त्तांश्च उत्तिष्ठति बलातुरः ॥ २२७ ॥ तप्तनेत्रो महाश्वासः क्षुधया पीडितस्तथा ॥ मधुगन्धो मुखे स्वेदो माहेन्द्रक्षत्रियार्दितः॥२२८॥ तस्यादौ ग्रहहोमं तु देवतास्तवनं शुचिः ॥ दानजपादिभिः कार्य्यैः प्राप्यते सिद्धिसङ्गमः ॥ २२९ ॥

तीक्ष्णज्वरहो, अत्यंत तृषा लगै और लालमूत्र उतरै और युद्धकी बातको करै और बलसे पीडितहुआभी उठखडाहो ॥ २२७ ॥ गर्वितनेत्रोंवालाहो और महाश्वाससे संयुक्तहो सबकालमें क्षुधासे पीडितहो और मधुसरीखे गंधसे युक्तहो और मुखपर पसीनेसे संयुक्तहो ऐसा मनुष्य माहेंद्रसंज्ञक क्षत्रियवर्णवाले ज्वरसे पीडित जानना ॥ २२८ ॥ इसकी शांतिके लिये आदिमें ग्रहोंका होम, देवताकी स्तुति, दान, जप इन्होंका होनाजरूर है ॥ २२९ ॥

अथ वैश्यज्वरका लक्षण और शांति।

मध्यवेगः पीतगात्रः स्वप्नशीलोऽरुचिस्तथा॥ शीतपवनहृद्दुष्णः कण्ठस्वेदोऽतिविह्वलः॥ २३०॥ बहुमूत्री भक्तियुक्तो मौनी पीतान्तलोचनः॥ नातितृष्णातुरः स्निग्धः स विज्ञेयो ज्वरेश्वरः॥ २३१॥ तत्र स्वस्त्ययनातिथ्यं द्विजदैवतपूजनम्॥ जपहोमादिकं सर्वं कर्त्तव्यं शान्तिहेतुना॥ २३२॥

मध्यमवेगवाला, पीले शरीरवाला और शयनको करनेवाला और अरुचिसे युतहुआ, शीतलपवनको वर्ज्जनेवाला, गरमस्वभाववाला, कंठमें पसीनासे संयुक्तहुआ और अत्यंत विह्वलहुआ॥ २३०॥ बहुतसे मूत्रको उतारनेवाला, भक्तिसे युक्त और मौनी और नेत्रोंके अंतमें पीलेपनसे संयुक्त और अत्यंत तृषासे नहीं पीडितहुआ और चिकना शरीरवाला ऐसा मनुष्य ज्वरेश्वरसंज्ञक वैश्यवर्णवाले ज्वरसे पीडित जानना॥ २३१॥ इसमें शांतिके लिये कल्याणके कर्म, अतिथिकी सेवा, ब्राह्मण और देवतोंकी पूजा, जप, होम, इन सबोंका करना जरूरी है॥ २३२॥

अथ शूद्रज्वरका लक्षण और शांति।

हृच्छूलश्चातिसारी वा मत्स्यगन्धाङ्गलेपनः॥ उन्मादी चातितृप्ताक्षो रतेषु विकलेन्द्रियः॥ २३३॥ प्रणयी त्वध्वनो भीरुर्ग्रासं नैवाभिकाङ्क्षया॥ कालभृङ्गारकेणापि शूद्रे सिद्धिर्न जायते॥ २३४॥

हृदयमें शूलवाला, अतीसारसे संयुक्तहुआ और मछलीके गंधके समान गंधवाला और अंगोंपर लेप करनेवाला, उन्मादसे संयुक्त और अतितृप्तहुये नेत्रोंवाला और भोगमें विकलहुई इंद्रियोंवाला॥ २३३॥ नम्रतासे युक्तहुआ और रस्तेमें चलनेसे डरनेवाला और इच्छासे ग्रासको नहीं लेनेवाला और भंगरा सरीखे रूपवाला ऐसा मनुष्य शूद्रज्वरसे पीडित होताहै इसमें सिद्धि होती नहीं॥ २३४॥

अथ सर्वरोगोंपर उपचार।

स्नानं दानजपं सुरार्चनविधिर्होमादयः प्रीतता भूतानाञ्च विशेषणेन बहुधा तृप्तिं च कुर्य्यात्ततः॥ गोभूमिं कनकान्नपानविधिना दानेन शान्तिर्भवेत्सर्वेषां च रुजां विनाशनमिदं शंसन्ति सत्यव्रताः॥ २३५॥

इस ज्वरकी शांतिके लिये स्नान, दान, जप, देवतोंकी पूजा, होम आदिको करना और मनुष्योंको प्रसन्नता और भोजनसे तृप्त करना, गाय, पृथिवी, सोना, अन्न, पानी इन्होंका दान करना, ऐसे करनेसे सबरोगोंकी शांति होती है ऐसे सत्यव्रतवाले मुनि कहते हैं २३५

अथ ज्वरवालेकूं पथ्यआहारादि।

वेगं कृत्वा विषं यद्वदाशये लीयते बलम् ॥ कुप्यते प्रबलं भूयः काले दोषो विषं तथा ॥ २३६ ॥ शालिषष्टिकभक्तानां यूषं मुद्गाढकीषु च ॥ पूर्वोक्तानि च शाकानि वातघ्नानि भवन्ति हि ॥ ॥ २३७ ॥ शतपुष्पा च जीवन्ती तण्डुलीयकवास्तुकम् ॥ घृतेन भाजिका सिद्धा शाकपत्राणीमानि च ॥ २३८ ॥ लावतित्तिरमांसादिवार्त्ताकानां तथातुरे ॥ मृगछिक्करिकाद्यानि जाङ्गलानि प्रयोजयेत् ॥ २३९ ॥ कोशातकी पटोलं च शुण्ठीकं च हितं भवेत् ॥

जैसे विषवेगको करके आशयमें लीन होके फिर समयपर अत्यंत कुपित होता है तैसेही दोषभी समयपर फिर कुपित होता है ॥ २३६ ॥ शालिचावल, सांठीचावल, मूंग और अरहरका यूष और पूर्वोक्त शाक ये सब वातको नाशते हैं ॥२३७॥ सौंफ, जीवंती, चौंलाई, बथुवा, इन्होंकी भाजीको घृतमें सिद्धकर प्रयुक्त करै ॥ २३८ ॥ लावा, तीतर, बत्तक, मृग, छिक्कर इन आदि जांगलदेशके जीवोंके मांसोंकोभी रोगीको देवै ॥ २३९ ॥ तोरी, परवल, सूंठ, ये भी हितहैं ॥

अथ ज्वरवालेकूं अपथ्य।

वर्जयेद्विदलान्नानि विदाहीनि गुरूणि च ॥ २४० ॥ न पिच्छलानि तैलानि तथाम्लानि च वर्जयेत् ॥ दधिमस्तुविशालानि क्षुद्रान्नानि भिषग्वरः ॥ २४१ ॥ बहूदकञ्च ताम्बूलं घृतं वापि सुरामपि ॥ २४२ ॥ क्रोधं शोकञ्च त्यक्त्वा वै सदा सौख्यं विभुञ्जते ॥ न कुर्य्याज्जागरं रात्रौ दिवास्वप्नञ्च वर्जयेत् ॥ २४३ ॥ शकटवाजिकरिद्विपिवाहनं प्रबलं परिवर्जयेत्तु सततम् ॥ ज्वरिणमाशु सुखं बुभुजे सुधीः शुभविधाननिधान उपस्थितः ॥ २४४ ॥

विदलसंज्ञक और दाहको करनेवाले और भारी ऐसे अन्नोंको त्यागै ॥ २४० ॥ कफकारी तेल सेवने हुये और खट्टे ऐसे शाकोंकोभी वर्जै. दही, दहीका पानी, रसाला, क्षुद्रअन्न ॥ २४१ ॥

बहुत पानी, नागरपान, घृत, मदिरा ॥ २४२ ॥ क्रोध, शोक इन्होंको त्यागकै रोगी सब-कालमें सुखको प्राप्त होता है रात्रिमें जागै नहीं और दिनमें सोवै नहीं ॥ २४३ ॥ गाडी, घोडा, हस्ती, गेंडा इन्होंकी सवारीको रोगी निरंतर त्यागै ऐसे त्यागनेसे ज्वरवालेको सुख उपजता है ॥ २४४ ॥

अथ ज्वरमुक्तोंका वर्तना।

व्यायामं च व्यवायं च अशनं रात्रिजागरम् ॥ ज्वरमुक्तो न सेवेत तदा सम्पद्यते सुखम् ॥२४५॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने ज्वरचिकित्सानाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

ज्वरसे मुक्त हुआ मनुष्य कसरत, स्त्रीसंग, अतिभोजन रात्रिको जागना इन्होंको नहीं सेवै तब सुखको प्राप्त होता है ॥ २४५ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने ज्वरचिकित्सानाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

अथातीसारचिकित्सा।

आत्रेय उवाच ॥ अथातीसार विज्ञानं भेषजं शृणु पुत्रक ॥ ज्वरजो वातिसारश्च भेषजं चोपदिश्यते ॥ १ ॥ दोषसंशमनं किंचित् किञ्चिच्च धातुदूषणम्॥स्वस्थवृत्तौ मतं किञ्चिद्द्रव्यं त्रिविधमुच्यते ॥ २ ॥ तच्च दैवपथाश्रयं युक्तिपथाश्रयं सत्त्वावजयश्च ॥ मन्त्रौषधमणिमंगलबल्युपहारहोमनियमप्रायश्चित्तोपवासस्वस्त्ययनप्रणिधानादीति दैवपथाश्रयम् ॥ आहारव्यवहारौषधद्रव्याणां योजनेति युक्तिपथाश्रयम् ॥ अहितेभ्योऽर्थेभ्यो मनोनिग्रह इति सत्त्वावजयश्च ॥ ३ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—हे पुत्र ! अतीसारविज्ञाननामक ओषधको सुन—ज्वरातिसारहो अथवा अतीसारहो तहां ओषधका उपदेश कियाजाता है ॥ १ ॥ दोषको शमन करनेवाला कोईक औषध है और धातुको दूषित करनेवाला कोईक ओषध है और स्वस्थवृत्तिमें कोईक ओषध माना है ऐसे ओषध तीन प्रकारके हैं ॥ २ ॥ और दैवपथाश्रय, युक्तिपथाश्रय, सत्वावजय ऐसे भी ओषध तीन प्रकारके हैं, मंत्र, ओषध, मणि, मंगल, बलि, भेट, होम, नियम,

प्रायश्चित्त, वृत्त, स्वस्त्ययन, मणिधान, इन आदि दैवपथाश्रय अर्थात् दैवके मार्गसे आश्रित हुआ ओषध कहाता है. आहार, व्यवहार, ओषध, इन्होंकी योजना की जावै वह युक्तिपथाश्रय अर्थात् युक्तिके मार्गसे आश्रितहुआ ओषध कहाता है. अहित अर्थोंसे मनका निग्रह होना यह सत्वावजय ओषध कहाता है ॥ ३ ॥

अथ अतिसारका लक्षण ।

स्निग्धातिशीतगुरुशीतलपिच्छलान्नं दुष्टाशनातिविषमाशनपान भक्ष्यम् ॥ अद्यादजीर्णमथ शोकविषैर्भयैर्वा शोकार्त्तिदुष्टपयसा तु विपर्य्ययेषु ॥ ४ ॥ दौर्बल्यतां विषमभोजनकेन चाप्सु संभिद्यते मलमजीर्णं निहन्ति चाग्निः ॥ सञ्जायते हि मनुजस्य तदातिसारो हत्वोदराग्निं मनुजस्य तदातिसारः ॥ ५ ॥ सञ्जायते स तु पुनर्बहलो मलेन स्यात्पञ्चधा निगदितो मुनिभिर्विधिज्ञैः॥ रक्ष्ये समासत उदीर्णरुजस्य नाशः क्वाथादिकैर्भवति पाचनकैश्च पूर्वम् ॥ ६ ॥

चिकना, अत्यंत शीतल, भारी, शीतल कफकारी, दुष्ट ऐसे भोजन और अत्यत भोजन विषम भोजन और विषमपान और अजीर्णमें भोजन इन्होंसे और शोक, विष, भय, इन्होंसे और शोककरिकै दुष्टहुये दूधसे अथवा शयनआदिके विपरीतपनेसे ॥ ४ ॥ मनुष्योंके शरीरमें विषमभोजनसे दुर्बल हुवा पेटका अग्नि बढेहुये जलमें विभक्त होकर अजीर्ण मल जठराग्निको नष्टकरकै विष्ठासे मिल गुदाके मार्गसे पतला होकर नीचे अधिक उतरै उसको अतिसार कहते हैं ॥ ५ ॥ वह मलसे अत्यंत बढा होता है और विधिको जाननेवाले मुनियोंने वह पांच प्रकारका कहा है बढेहुये रोगके नाशको प्रथम क्काथ आदि और पाचनकरकै रक्षित करना ॥ ६ ॥

अथ ज्वरातिसार ।

युगपज्जायते यस्य ज्वरश्चैवातिसारकैः ॥ ज्वरातिसारो घोरोऽसौ कष्टसाध्यो मनीषिणाम् ॥ ७ ॥ न पित्तेन विना सोपि जायते शृणु पुत्रक ॥ तस्य नो लंघनं प्रोक्तं ज्वरे चैवातिसारके ॥ ८ ॥

जिसरोगीके एककालमें ज्वर और अतीसार उपजै वह घोररूप ज्वरातीसार कहाता है यह बुद्धिमानोंकोभी कष्टसाध्य है ॥ ७ ॥ हे पुत्र ! सुन पित्तके विना ज्वरातीसार नहीं होता है इसवास्ते ज्वरातीसारमें लंघन नहीं कहा है ॥ ८ ॥

अथ अतीसारकी चिकित्सा।

सुवर्चलमतिविषाहिंगुपथ्याकलिङ्गकैः ॥ शुण्ठी वामातिसारघ्नी शूलघ्नी ग्राहिपाचनी ॥ ९ ॥ पथ्यादारुवचामुस्तानागरातिविषायुतैः ॥ आमातिसारनाशाय क्वाथमेभिः पिबेन्नरः ॥ १० ॥

कालानमक, अतीस, हींग, हरडै, इंद्रजव, सोंठ इन्होंकी गोली आमातीसार, शूल, इनको नाशती है पाचन है और कब्जको करती है ॥ ९ ॥ हरडै, देवदार, वच, नागरमोथा, सूंठ, अतीस इन्होंका काथ आमातीसारको नाशता है ॥ १० ॥

अथ ज्वरातिसारके ऊपर उत्पलषट्क।

उत्पलं धान्यकं शुण्ठी पृश्निपर्णी बलायुतम् ॥ बालबिल्वं गवां तक्रेणात्युष्णेन च पेशयेत् ॥ ११ ॥ तेन लाजाकृतं मण्डं देयमानीय शीतलम् ॥ ज्वरातिसारशमनं हुताशनबलप्रदम् ॥ १२ ॥

नीलाकमल, धनियां, सूंठ, पिठवन, खरैंहटी, बेलगिरीका गूदा इन्होंको गायके तक्रसे पीसै ॥ ११ ॥ पीछे तिसमें धानकी खीलोंका मंड बना शीतलकर पीवै यह ज्वरातीसारको शांत करता है और जठराग्निको बल देता है ॥ १२ ॥

अथ शुण्ठयादि काथ।

शुण्ठीविषातलधरामृतवत्सकानां तिक्ताह्वयं कनकशीतलकः कषायः ॥ पाने विधेयमधुना प्रतिसाधितस्तु ज्वरातिसारशमनाय सदा प्रदेयः ॥ १३ ॥

सूंठ, अतीस, कलौंजी, जीरा, गिलोय, इंद्रजव, कुटकी, पीलाकमल, चंदन इन्होंका काथ पीना यह सब कालमें ज्वरातीसारको नाशता है ॥ १३ ॥

अथ पाठादि काथ।

पाठेन्द्रभूनिम्बघनामृतानां सपर्प्पटः क्वाथ इह प्रशस्तः ॥ आमातिसारञ्च जयेद्द्रुतं वा ज्वरेण युक्तं सहजञ्च तीव्रम् ॥ १४ ॥

श्योनापाठा, इंद्रजव, चिरायता, नागरमोथा, गिलोय, पित्तपापडा, इन्होंका काथ आमातीसारको और ज्वरातीसारको जीतता है इसवास्ते श्रेष्ठ है ॥ १४ ॥

अथ शुंठ्यादि पाचन।

शुण्ठी बालकमुस्ता बिल्वं पाठा विषा च धान्यानि ॥ पाचनमरुचौ छर्दिज्वरातिसारं विनाशयति ॥ १५ ॥

सूंठ, नेत्रवाला, नागरमोथा, बेलगिरी, श्योनापाठा, अतीस, धनियां इन्होंका पाचनरूपी काथ अरुचि, छर्दि, ज्वरातीसार इन्होंको नाशता है ॥ १५ ॥

अथ वत्सकादि काथ।

वत्सकश्च सुरदारुरोहिणी धान्यबिल्वमगधात्रिकण्टकम् ॥ निम्बबीजगजपिप्पलीवृकीकाथ एवमतिसारस्यौषधम् ॥ १६ ॥

इन्द्रजव, देवदार, हरडै, धनियां, बेलगिरी, पीपल, निंबोली, गजपीपल, काश्मीरीपाठा इन्होंका काथ अतिसारमें अति उत्तम औषध है ॥ १६ ॥

अथ पञ्चमूली काथ।

पञ्चमूलीबलाबिल्वगुडूचीमुस्तनागरैः ॥ पाठाभूनिम्बह्रीबेरकुटजत्वक्फलैर्भृतः ॥ १७ ॥ इति सर्वानतीसारान्वमिश्वासज्वरार्दितान् ॥ सशूलोपद्रवांश्चासौ हन्याच्चासुरदारुणम् ॥ १८ ॥ पञ्चमूल्यतिसामान्या योज्या पित्ते कनीयसी ॥ महती पञ्चमूली तु वातश्लेष्मज्वरे हिता ॥ १९ ॥

पञ्चमूल, खरैंहटी, बेलगिरी, गिलोय, नागरमोथा, सूंठ, श्योनापाठा, चिरायता, नेत्रवाला, कूडाकी छाल, इन्द्रजव, इन्होंका काथ ॥ १७ ॥ सबप्रकारके अतीसार, छर्दि, श्वासरोग, ज्वर, शूल, इन्होंको नाशताहै ॥ १८ ॥ पित्तदोषमें लघुपञ्चमूल वर्तना वात और कफदोषमें बृहत्पञ्चमूल वर्तना ॥ १९ ॥

अथ उत्पलादिपाचन।

उत्पलं दाडिमत्वक्च केशरं तथा मधु पद्मकम् ॥ धात्री पिष्टा तण्डुलतोयैः पाचनं ज्वरातिसारघ्नम् ॥ २० ॥

नीलाकमल, अनारकी छाल, केशर, कमल, आंवला इन्होंको चावलोंके पानीसे पीस शहद मिला पीवै यह पाचन ज्वरातीसारको नाशता है ॥ २० ॥

अथ उशीरादि काथ।

उशीरं धान्यकं मुस्तं सबिल्वं बालकं बला ॥ तथा च धातकीपुष्पं कषायस्य प्रशस्यते ॥ २१ ॥ ज्वरातिसारशमनं सहशोणितपैत्तिकम् ॥ निहन्ति शोफं सकलं रुचिप्रदविपाचनम् ॥ २२ ॥

खश, धनियां, नागरमोथा, बेलगिरी, नेत्रवाला, खरैंहटी, धवके फूल इन्होंका काथ श्रेष्ठ है ॥ २१ ॥ ज्वरातिसार, रक्तातिसार, पित्तातिसार, सबप्रकारका शोजा, इन्होंको शांत करता है और रुचिको देता है और पाचन है ॥ २२ ॥

विगतामातिसारं चिरोत्थितं रक्तसहितमतिवृद्धम् ॥
मधुना सहितः शमयत्यरलुः पुटपाकनिर्य्यासितः ॥२३॥

श्योनापाठाको पुटपाककी विधिसे पकाके रसको निचोड तिसमें शहद मिला पीवै यह पक्कातिसार और पुराना अतीसार और बढाहुआ रक्तातिसारकोभी नाशता है ॥ २३ ॥

जंम्ब्वादिस्वरस ।

जम्बूवटोदुम्बरप्लक्षको हि नागश्च प्रपौण्डरिकं शमी च ॥ गुन्द्रः
सचूतोऽम्बुदजीविकाया आसां हि पुञ्जश्च सदा विदध्यात् ॥२४॥
प्रस्थद्वयेनप्रपिवेद्धि तावद्यावद्विशेषांशमिदं प्रजायते ॥ पुनः
कटाहे विपचेच्च सम्यग्दार्वीप्रलेपः स्वरसश्च यावत् ॥ २५ ॥
उत्तार्य्य नूनं भिषगुत्तमेन क्षौद्रेण मिश्रं हरतेऽतिसारम् ॥ २६ ॥

जामनवड, गूलर, पिलखन, नागकेशर, कमल, जाटी, मोथा तृण, आंब, नागरमोथा जीवंती इन्होंके फूलोंको सबकालमें लेवै ॥ २४ ॥ पीछे १२८ तोले पानीमें पकावै जब चौथाईभाग शेष रहै तब छानके फिर कढाईमें घालि फिर पकावै जब कडछीपर चेपनेलगै ॥ ॥ २५ ॥ तब उतार उत्तमवैद्यने निश्चय शहद मिला रोगीको देना चाहिये यह अतीसारको हरता है ॥ २६ ॥

काकमाचीका प्रयोग ।

हारीतेन तथा प्रोक्ता काकमाची सुपूजिता ॥
आलोक्यानेकशास्त्राणिआत्रेयेणापि पूजिता ॥ २७ ॥

जैसे अनेक शास्त्रोंको देख आत्रेयजीने काकमाची अर्थात् भोलणीनामसे प्रसिद्ध मकोह-विशेष ओषधी पूजित कीहै तैसेही हारीतनेभी यही ओषधी पूजी है अर्थात् अतिसारमें श्रेष्ठ समझीहै ॥ २७ ॥

जंबूत्वगादिका अवलेह ।

जम्बूत्वचं वत्सकवल्कलं च निष्क्काथ्य नूनं सलिले समीरणम् ॥
चतुर्विभागेष्वपि शेषितेषु उत्तार्य्य वस्त्रेष्वथ गालयेच्च ॥ २८ ॥
पुनः कटाहे विपचेच्च सम्यग्दार्वीप्रलेपः स्वरसस्तु यावत् ॥
उत्तार्य्य शीते मधुना विमिश्रं लीढं हरेदप्यतिसारमुग्रम् ॥२९॥

जामनकी छाल, कुडाकी छाल, इन्होंका पानीमें क्काथ बना जब चौथाई भाग शेष रहै तब उतारि वस्त्रसे ॥ २८ ॥ छान फिर कडाहीमें घाल अच्छीतरह पकावै जब कडछीपै चिपने लगै और स्वरसरूप रहै तबतक अग्निसे उतार शीतळकर शहद मिला चाटै यह दारुण अतीसारको हरता है ॥ २९ ॥

अतिसारका पूर्वरूप।

कुक्षो दरे वक्षसि नाभिदेशे प्रायुप्रदेशे सततं निरुद्धे ॥
वातस्य रोधश्च शकृद्विभङ्गो भवन्ति सर्वेष्वतिसारकेषु ॥ ३० ॥

अतीसाररोगमें कुक्षि, उदर, छाति, नाभिदेश, गुदामंडल, ये सब स्थान रुककर अधोवायुका रोध और विष्ठाका भंग होता है ॥ ३० ॥

अथ वातातिसारका लक्षण और चिकित्सा।

सफेनिलं पिच्छलमेव रूक्षमल्पं सकृदामसशब्दशूलम् ॥ कृष्णं भवेद्गात्रविचेष्टनञ्च वातातिसारे प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥ ३१ ॥
तस्यादौ लङ्घनं चैकमल्पे वा नैव लङ्घनम् ॥ तस्माद्देयं कषायं तु पानभोजनमेव च ॥ ३२ ॥

झागोंसे मिलाहुआ गाढा और रूखा मल उतरै और थोडा वारंवार आमसहित आवै और दिशाजानेके समग शब्द और शूलको उपजावै और शरीरआदि कृष्णवर्ण होजावे तिसको वातातीसार कहते हैं ॥ ३१ ॥ तिसके आदिमें एक लंघन करना और अल्परूप वातातिसारमें लंघन नहीं करना तिस्से क्काथ, पान, भोजन, ये देने चाहिये ॥ ३२ ॥

अतिसारका पाचक कल्क।

उदीच्यधान्यस्य जलेन कल्कं पाने हितं पाचयतेऽतिसारम् ॥
तृष्णापहं दाहविनाशनञ्च सशूलहिक्कासुविनाशनं स्यात् ॥ ३३ ॥

नेत्रवाला, धनियां, इन्होंको पानीमें पीस कल्क बना खानेसे अतीसारको पकाता है और तृषा, दाह, शूल, हिचकी इन्होंको नाशता है ॥ ३३ ॥

वालकादि कल्क।

बालकद्वयमोचहरीतकीपर्पटेन सहितं जलेन च ॥ क्काथपानमिदमेवातिसारे नाशमाशु कुरुते च विट्छान्तिम् ॥ ३४ ॥

नेत्रवाला, खश, मोचरस, हरडै, पित्तपापडा, इन्होंका पानीमें क्काथ बना अतीसार रोगी पीवै यह विष्ठाको शांत करता है ॥ ३४ ॥

शालिपर्ण्यादिपानक।

शालिपर्णी पृश्निपर्णी बृहती कण्टकारिका॥ बालाश्वदंष्ट्रा बिल्वानि प्राठा नागरधान्यकम् ॥ ३५ ॥ एतदाहारसंयोगे हितं सर्वातिसारिणाम् ॥

शालवन, पिठवन, बडीकटेहली, छोटीकटेहली, नेत्रवाला, गोखरू, बेलगिरी, श्योनापाठा, सूंठ, धनियां ॥ ३५ ॥ यह द्रव्य भोजनके संयोगमें अतीसार रोगियोंको हित हैं ॥

तिंदुकादिरसपानक ।

तिन्दुकत्वचमाहृत्य काश्मरीपत्रवेष्टितम् ॥ ३६ ॥ मृदा विलिप्य विधिवद्दहेन्मृद्वग्निना भिषक् ॥ रसं गृहीत्वा मधुसंयुतं पानं सर्वातिसारघ्नश्च ॥ ३७ ॥

और तेंदुआवृक्षकी छालको ले कंभारीके पत्तोंसे वेष्टितकरै ॥ ३६ ॥ पीछे माटीसे विधिपूर्वक लीपा कोमल अग्निसे दग्धकरै पीछे रस निकाल शहदसे संयुक्तकर पीवै यह सबप्रकारके अतीसारोंको नाशता है ॥ ३७ ॥

कुटजपुटपाक ।

तुलामथार्द्रांगिरिमल्लिकायाः संकुट्य कर्षश्च समादधीत ॥ तस्मिन्सपूते पलसंसितश्च देयश्च पिष्ट्वा सह शाल्मलेन ॥ ३८ ॥ पाठा समङ्गातिविषा समुस्ता बिल्वश्च पुष्पाणि च धातकीनाम् ॥ प्रक्षिप्य भूयो विपचेच्च तावद्दार्वीप्रलेपः स्वरसस्तु यावत् ॥ ३९ ॥ पीतस्त्वसौ कालविदा जलेन मण्डेन वाजापयसाऽथवापि ॥ निहन्ति सर्वमतिसारमुग्रं कृष्णं सितं लोहितपीतकञ्च ॥ ४० ॥ दोषं ग्रहण्यां विविधं च रक्तपित्तं तथार्शांसि सशोणितानि ॥ असृग्दरं चैवमसाध्यरूपं निहन्त्यवश्यं कुटजाष्टकोऽयम् ॥ ४१ ॥

कूँडाकी गीली छालको ४०० तोले भरले और कूट पानीमें अग्निपै पकावै जब चौथाई-भाग शेष रहै तब वस्त्रमें छान फिर अग्निपै धर मोचरस ॥ ३८ ॥ श्योनापाठा, मँजीठ, अतीश, नागरमोथा, बेलगिरी, धवके फूल, ये सब चारचार तोले भरले पूर्वोक्तमें मिलाके पकावै जब कडछीपै चिपने लगे और स्वरसही हो तब उतारै ॥ ३९ ॥ पीछे कालको जाननेवाले रोगीने पीनी. मंड, बकरीका दूध, इन्होंके संग पीना यह कृष्ण, सफेद, लाल, पीला, ऐसे वर्णके सब अतिसारोंको नाशता है ॥ ४० ॥ और ग्रहणी दोष अनेक प्रकारकी रक्तकी बवासीर और असाध्यरूप प्रदररोग इन्होंको निश्चय हरता है इसको 'कुटजाष्टक' कहते हैं ॥ ४१ ॥

अथ पित्तातिसारका लक्षण और चिकित्सा ।

घर्मेण चोष्णान्नविभोजनेन घर्मेण तप्तोदकसेवनेन ॥ शोकेन तापेन रुषा कटुत्वे क्षारेण पित्तासृक्सारकः स्यात् ॥ ४२ ॥ तेनारुणं

पीतमथातिनीलं दुर्गन्धशोषज्वरपाण्डुयुक्तम् ॥ भ्रमार्त्तिमूर्च्छा च तृषाङ्गदाहः पित्तातिसारस्य च लक्षणानि ॥ ४३ ॥

घामसे और गरम अन्नके भोजनसे और घामसे तप्तहुवे जलके सेवनेसे शोक और तापसे क्रोधसे कडुआ और खारारस सेवनेसे पित्तातीसार उपजता है ॥ ४२ ॥ लाल, पीळा, अत्यंतनीळा, ऐसा मळ उतरै और दुर्गंध, शोष, ज्वर, पांडुरोग, भ्रम, मूर्च्छा, तृषा, ये उपजैं और अंगोंमें दाहहो तिसको पित्तातीसार जानिये ॥ ४३ ॥

अथ शालिपर्ण्यादिपान ।

शालिपर्णीपृश्निपर्णीबलाबिल्वैस्तु साधितः ॥
दाडिमाम्लो हितः पेयः पित्तातीसारशान्तये ॥ ४४ ॥

शाळवन, पिठवन, खरैंहटी, बेलगिरी, इन्होंसे साधितकरी अनारकी कांजीको पीना यह पित्तातीसारकी शांतिमें हित है ॥ ४४ ॥

अथ तृणमूलका क्राथ ।

कुशकाशेक्षुमूलानां शालीनलभवैर्जलैः ॥
मूलानां क्राथमाहृत्य शस्तं पित्तातिसारिणाम् ॥ ४५ ॥

डाभ, कांस, ईख, इन्होंकी जडोंका चावल और कमलके पानीमें क्राथ बना पीवै यह पित्तातीसारियोंको श्रेष्ठ है ॥ ४५ ॥

अथ धान्यपञ्चकादिक्राथ ।

धान्यपञ्चकमूलानां क्राथः पित्तातिसारिणाम् ॥ ४६ ॥

धनियां और पंचमूलका क्राथ पित्तातिसारियोंको हित है ॥ ४६ ॥

अथ शाल्मलीमूलकल्क ।

शाल्मलीमूलत्वग्गुडदुग्धपेषितं च ॥
पानं पित्तातिशमनं सरक्तदाहशोषहरम् ॥ ४७ ॥

संभलकी जड और छाल, गुड इन्होंको दूधमें पीस पीवै यह पित्तातिसार, रक्त, दाह, शोष इन्होंको हरता है ॥ ४७ ॥

अथ कफातिसारलक्षण ।

दुःस्वप्नादिश्रमाद्वै सहजजडतया शीतसंसेवनेन स्निग्धाहारातिभोज्यात्सतिलपललगुडैश्चेक्षुरसावैर्गुरूणाम् ॥ शीतातिस्नानलौ-

ल्यात्पयसि दधियुताहारसंसेवनाच्च जातः श्लेष्मातिसारो जठरहुतभुजंहंतिपुंसामपाकः ॥ ४८ ॥ तेन श्लेष्मा शुष्कभेदारुचिः स्यात्सान्द्रं विस्रं जाड्यता रोमहर्षः ॥ मन्दाग्नित्वं मन्दवेगो विशिष्टः सालस्योऽपि विद्धि सारः कफोत्थः ॥ ४९ ॥

दुःस्वप्न अर्थात् बुरीतरह शयन करना आदिसे परिश्रमसे, जडपनेसे, शीतलपदार्थके सेवनेसे चिकने भोजनको और अत्यंतभोजनके करनेसे और तिल, गुड, मांस, ईखका अन्न भारीपदार्थ इन्होंके सेवनेसे और शीतलपानीमें अत्यंत स्नान और चंचलता करनेसे, और दहीसे युक्तहुये भोजनको दूधमें मिलाके सेवनेसे, कफातीसार उपजता है और जो आप नहीं पक्ता है वह पेटकी अग्निको नाशता है ॥ ४८ ॥ जिसका मल चिकना और सफेद गाढा दुर्गंधिलिये शीतल थोडी पीडासहित उतरै और शरीर भारी रहे और भोजनमें अरुचिहो तिसको कफातिसार कहते हैं ॥ ४९ ॥

अथ कफातिसारकी चिकित्सा ।

तस्यादौ लङ्घनं प्रोक्तं ज्ञात्वा देहबलाबलम् ॥
पाचनं च विधातव्यं त्र्यूषणाद्यं भिषग्वर ! ॥ ५० ॥

तिसकी आदिमें देहके बल और अबलको जानकै वक्ष्यमाण पाचनको देवै ॥ ५० ॥

अथ त्र्यूषणादिक पाचन ।

त्र्यूषणमभया हिङ्गु चातिविषा रुचकं वचायुक्तम् ॥
मधुसहितं लेहनं नृणां गङ्गामपि वाहिनीं रुन्ध्यात् ॥ ५१ ॥

सूंठ, मिर्च, पीपल, हरडैं, हींग, अतीश, कालानमक, वच इन्होंके चूर्णमें शहद मिलाचाटै यह मनुष्योंके गंगाके समान बहतेहुये अतीसारको रोकता है ॥ ५१ ॥

अथ कालिंगादि कल्क ।

कालिङ्गपाठातिविषा बला च सोदीच्यमुस्तामरिचानि शुण्ठी ॥
गुडेन क्षौद्रेण प्रशस्तकल्को रक्तातिसारे कफजे शमाय ॥ ५२ ॥

इन्द्रयव, श्योनापाठा, अतीश, खरैंहटी, नेत्रवाला, नागरमोथा, मिर्च, सूंठ इन्होंके कल्कमें गुड और शहद मिला खावै यह रक्तातिसारमें और कफातिसारमें हित है ॥ ५२ ॥

अथ वत्सकादि क्वाथ ।

वत्सकातिविषबिल्वमुस्तकं वालकेन सहितं जले न तु ॥
क्वाथपानमतिशूलरक्तपूयनाशं ज्वरयुतेऽतिसारके ॥ ५३ ॥

कूडा, अतीश, बेलगिरी, नागरमोथा, नेत्रवाला, इन्होंका पानीमें क्वाथ बना पीवै यह अत्यंतशूल, राद, ज्वर, कफ, इन्होंसे युक्त हुये अतिसारमें हित है ॥ ५३ ॥

अथ रक्तातिसारका लक्षण।

यस्तु रक्तं च शुद्धं विरेचने शोषदाहमतिरिञ्चेत् ॥
रक्तातिसार इति ज्ञेयो वैद्यैर्महामतिभिः ॥ ५४ ॥

जो मल उतरनेके समय शोष और दाहसे युक्त हुआ शुद्ध रक्त गुदाके द्वारा अत्यंत पडै तिसको कुशल वैद्य रक्तातिसार कहते हैं ॥ ५४ ॥

अथ धान्यादि क्वाथ।

धान्यनागरमुस्ता च वालकं बालबिल्वकम् ॥
बला नागबला चेति क्वाथो रक्तातिसारिणाम् ॥ ५५ ॥

धनियां, सूंठ, नागरमोथा, नेत्रवाला, कच्चिबेलगिरी, खरैंहटी, बडी खरैंहटी इन्होंका क्वाथ रक्तातिसारवालोंको हित है ॥ ५५ ॥

अथ दाडिमादिक्वाथ।

दाडिमं च कपित्थं च पथ्याजंब्वाम्रपल्लवान् ॥
पिष्ट्वा देया मस्तुयुक्ता रक्तातीसारवारणाः ॥ ५६ ॥

अनार, कैथ, हरडैं, जामुन और आंबके पत्ते, इन्होंको दहीके पानीमें पीस देवै यह रक्तातिसारको नाशता है ॥ ५६ ॥

अथ गुडबिल्वादियोग।

गुडेन पक्वं दातव्यं बिल्वं रक्तातिसारिणे ॥
मनुजे पथ्या वा मधुयुक्ता वा दध्ना रक्तातिसारघ्ना ॥ ५७ ॥

पकाहुआ बेलगिरीका फल गुडके साथ रक्तातिसारवालेको देना अथवा सूंठ शहदके अथवा दहीके साथ देना इससे रक्तातिसारका नाश होता है ॥ ५७ ॥

अथ वत्सकावलेह।

वत्सकातिविषानागराभया पिषितं च मस्तुसंयुतम् ॥
लेहस्तु शस्तो मधुनापि मानुजे रक्तवाहमतिवारयत्यपि ॥ ५८ ॥

कूडा, अतीश, सूंठ, हरडैं, इन्होंको पीस शहद और दहीके पानीमें मिलापीवै यह रक्तातिसारको दूर करता है ॥ ५८ ॥

अथ कुटजादिचूर्ण।

कुटजत्वक्च पाठा च विश्वं बिल्वं च धातकी ॥
मधुना सहितं चूर्णं देयं रक्तातिसारघ्नम् ॥ ५९ ॥

कूडाकी छाल, पाठा, सूंठ, बेलगिरी धवके फूल, इन्होंके चूर्णको शहदमें मिला देवै यह रक्तातिसारको हरता है ॥ ५९ ॥

अथ सन्निपातके अतिसारका लक्षण और चिकित्सा।

वराहवासासदृशं तिलाभं मांसधावनाभासम् ॥
पक्वजम्बूफलसदृशं सन्निपातः प्रवहताम् ॥ ६० ॥

शूकरकी वसाके समान और तिलोंके समान कांतिवाला और मांसके धोवनके समान प्रकाशित और पके हुवे जामनके फलके समान ऐसा मल उतरै तिसको सन्निपातका अतीसार जानिये ॥ ६० ॥

अथ कुटजाष्टक।

तुलामथार्द्रांगिरिमल्लिकायाः संकुट्य पक्का रसमाददीत ॥ तस्मिन्सुपूते पलसांमिते च देयं च पिष्ट्वा सह शाल्मलेन ॥६१॥ पाठा समंगातिविषासमुस्ता बिल्वं च पुष्पाणि च धातकीनाम् ॥ प्रक्षिप्य भूयो विपचेच्च तावद्दार्वीप्रलेपः सरसस्तु यावत् ॥ ६२ ॥ पीतस्ततः कालविदा जलेन मण्डेन च क्षौद्रयुतेन वापि ॥ निहन्ति सर्वमतिसारमुग्रं कृष्णं सितं लोहितपीतकं च ॥ ६३ ॥ दोषं ग्रहण्यां विविधं च रक्तं पित्तस्य चार्शांसि स शोणितानि ॥ असृग्दरं चैवमसाध्यरूपं निहन्त्यवश्यं कुटजाष्टकोऽयम् ॥ ६४ ॥

सपेद कूडाका गीला फूल अथवा छाल, एक तुलाभर ले कूटकर उसका रस निकालकर छान ले फिर उसमें मोचरस ॥ ६१ ॥ सोनापाठा, मँजीठ, अतीश, नागरमोथा, बेलगिरी, धायका फूल, इन औषधोंको डारके चुल्हेपर पकावे, जब कडछाको लेपहोनेलगे, तब उतार रक्खे ॥६२॥ जब पीनेका समय आवे, तब पानीके साथ अथवा मंडके साथ, किंवा शहदके साथ पिलावे यह कुटजावलेह भयंकर काला, सपेद, लाल, पीला ऐसे अतिसारको नष्ट करता है ॥ ६३ ॥ तथा ग्रहणीके अनेक दोष, रक्त, पित्त, रक्तके बवासीर, और असाध्य असृग्दर इन रोगोंकू अवश्य नष्ट करदेता है ॥ ६४ ॥

अथ अमृतवटक।

पथ्यापञ्चमूलक्वाथश्चतुर्भागावशेषतः ॥ तत्र क्वाथे पुनश्चूर्णमिमानि वौषधानि तु ॥ ६५ ॥ शृङ्गवेरं तथा लाक्षा पिप्पली कटुरोहिणी ॥ दाडिमफलत्वक्चूर्णं दार्वी सवत्सकं विषम् ॥ ६६ ॥ आटरूषकचूर्णानि संक्षिप्यात्र निघट्टयेत् ॥ आजं दुग्धं तदर्द्धेन घृतं चाष्टांशकं क्षिपेत् ॥ ६७ ॥ दार्व्या विलेपितं ज्ञात्वा गुडस्य षोडशानि तु ॥ पलानि मिश्रितं तत्र देयमप्रातराशने ॥ ६८ ॥ त्रिदोषसन्निपातोत्थ अतिसारश्च दारुणः ॥ शूलमूर्च्छाभ्रमानाहकामलानां विपाचनः ॥ ६९ ॥ क्षतक्षीणक्षयाणां तु हितोऽयममृतो वटः ॥ ७० ॥

हरडै, शालवन, पिठवन, छोटी कटेहली, बडीकटेहली, गोखरू इन्हींको पानीमें उबाल चौथा हिस्सा शेष रहै ऐसा क्वाथ बनावै ॥ ६५ ॥ पीछे अदरख, लाख, पीपल, कुटकी, अनारदाना, अनारकी छाल, दारुहलदी, कूडाकी छाल, अतीश ॥ ६६ ॥ वांसा, इन सबोंका चूर्ण बना पूर्वोक्तमें मिलावै और क्वाथसे आधा हिस्सा बकरीका दूध और आठवां हिस्सा घृतको मिला पकावै ॥ ६७ ॥ जब कडछीपै चिपनेलगे तब जान १६ तोले गुड मिलाय सायंकालके भोजनमें देवै ॥ ६८ ॥ इससे सन्निपातका दारुण अतिसार, शूल, मूर्च्छा, भ्रम अफारा, कामला, ये शांत होतेहैं ॥ ६९ ॥ क्षतक्षीण और क्षयरोगी इन्हींको यह अमृतवटक हित है ॥ ७० ॥

अथ बिल्वादिचूर्ण।

एकबिल्वागुरुरोध्रचूर्णं मध्वादियोजितम् ॥
रक्तातिसारशमनं बालानां क्षीणधातुकम् ॥ ७१ ॥

एक १ बेलगिरी, अगर लोध, इन्होंके चूर्णमें शहदमिला बालकको चटावै यह धातुओंको क्षीण करनेवाले रक्तातिसारको नाशता है ॥ ७१ ॥

अथ गुदाके निकसनेको बंधकरनेकी चिकित्सा।

यदा गुह्यं निरस्येत्तु तदा कुर्य्यात्क्रियामिमाम् ॥ सहचर्य्या बलानां च रसो ग्राह्यो घृतं पुनः ॥ ७२ ॥ पक्वघृतेन लेपः स्यात्तस्य चेदं प्रशस्यते ॥ अरणीपल्लवक्वाथो वाप्यं लोष्टं सचन्दनम् ॥ ७३ ॥ प्रतप्तमथवाग्निनिभं तथा नरस्य निर्वाप्य काञ्जि-

कमथ विदधीत तद्वत् ॥ सौख्यं च सम्यग्गुदसेचनकं प्रशस्तं संवेश्य मध्यतो गुदं दृढबन्धनं स्यात् ॥ ७४ ॥

जब गुदाकी कांच निकसै तब यह क्रिया करनी पीला कुरंटा और खरैंहटीके रसमें घृतको पका लेप करना श्रेष्ठ है ॥ ७२ ॥ अरनीके पत्तोंके क्वाथमें चुल्हाकी माटी और चंदनको गरमकर बुझावै अथवा इसीरीतिसे कांजीको बनावै इन्होंसे अच्छीतरह गुदाको सेचै ॥ ७३ ॥ और कांचको गुदाके बीचमें प्रवेशकर दृढबंधन करना ॥ ७४ ॥

अथ अतिसारविशेषता ।

लशुनकुणपगन्धं पूयगन्धं घनं वा पललजलसमानं पक्वजम्बूनिभं वा ॥ घृतमधुपयसाभं तैलशैवालनीलं सघनदधिसवर्णं वर्जयित्वातिसारम् ॥ ७५ ॥ भ्रममदनमकार्शं शूलमूर्च्छाविदाहं श्वसनमतिविवर्णं छर्दिमूर्च्छातृडार्त्तम् ॥ विकलमतिशयेन सौख्यशोफज्वरार्त्तिः स परिहरतु दूरं सद्विधाता न दृष्टः ॥ ७६ ॥ शोफं शूलं ज्वरं तृष्णां श्वासं कासमरोचकम् ॥ छर्दिमूर्च्छां च हिक्कां च दृष्ट्वातीसारिणं त्यजेत् ॥ ७७ ॥ दृष्ट्वा शोफं तथाध्मानं हिक्कां छर्दिमरोचकम् ॥ तथा च पाण्डुरोगार्त्तमतिसारयुतं त्यजेत् ॥ ७८ ॥

लस्सनकी गंधके समान गंधवाला और मुरदाके समान गंधवाला और रादके गंधकी समान गंधवाला कठिन, और मांसके पानीके समान तेल और शिवालके समान नीला और करडी दहीके समान वर्णवाला ऐसे अतिसारको वर्जै ॥ ७५ ॥ भ्रम, उन्माद, बवासीर, शूल, मूर्च्छा, दाह, श्वास, इन्होंसे संयुक्त छर्दि और तृषासे पीडित अतिशय करके विकल शोजा और ज्वरसे पीडित ऐसा अतिसार वर्जदेना ॥ ७६ ॥ शोजा, शूल, ज्वर, तृषा, श्वास, खांसी, अरुचि, छर्दि, मूर्च्छा, हिचकी इन्होंसे संयुक्त हुये अतिसाररोगीको त्यागै ॥ ७७ ॥ और शोजा, अफारा, हिचकी, छर्दि, अरुचि, पांडुरोग, इन्होंसे पीडितहुये अतिसाररोगीको त्यागै ॥ ७८ ॥

अथ अतिसारके भेद संग्रहणीरोगका निदान और चिकित्सा ।

यदल्पमल्पं क्रमशो निषेवितं मलं भगाधारगतं च नित्यम् ॥ हत्वान्तराग्निं कुरुते नरस्य विकारमाहुर्ग्रहणीति संज्ञाम् ॥ ७९ ॥ निर्वृत्ते चातिसारे शमयति दहनं भूयसा दोषितोऽपि भुक्त्वा

नाश्यंमलांशं बहुदिनमनिशं सञ्चयित्वा निसर्त्ति ॥ वारं वारं विगृह्य सहजमसरलं पक्वमानं घनं वा दुर्व्याधिर्घोररूपो मनुज रुजकरः स्यात्तथा ग्रहणीति ॥ ८० ॥

जो अल्प अल्प मल नीचेकी अंत्रावोंमें प्राप्तहो नित्यमति उतरै और दोष शरीरकी अग्निको नष्टकर विकारको उपजावै तिसको ग्रहणीरोग कहते हैं ॥ ७९ ॥ अतिसारके निवृत्तहोनेके पश्चात् दोषोंसे युक्तहुई ग्रहणी पेटकी अग्निको शांत करै और भोजन करके संचितहुआ मलका अंश बहुत दिनोंतक नित्यमति निसरै और वारंवार कब्ज करकै पकाहुआ और कठिन मल उतरै तिसको ग्रहणीदोष कहते हैं यह घोररूप दुष्ट रोग है मनुष्योंको पीडा देता है ॥ ८० ॥

अथ ग्रहणीके प्रकार ।

लक्षयेच्चातिसारे च विज्ञेयं ग्रहणीगदम् ॥ वातिकं पैत्तिकं चैव श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् ॥ ८१ ॥ नैव चैकेन दोषेण जायते ग्रहणीगदः ॥ तेन संक्षीयते देहमन्तर्दाहो विपाकता ॥ ८२ ॥

अतिसारमें ग्रहणीरोगको जानना, वातज, पित्तज, कफज, सान्निपातज, ऐसे ग्रहणीरोग होता है ॥ ८१ ॥ एक दोष करके ग्रहणीरोग नहीं उपजता तिसकरके मनुष्यका शरीर छीजता है और शरीरके भीतर दाह होती है और अन्न नहीं पकता ॥ ८२ ॥

अथ ग्रहणीका उपद्रव तथा गुल्मादिकोंकी संप्राप्ति ।

तिक्तः कषायः कटुकाम्लविदाहिरूक्षः शीताल्पभोजनपरैः श्रम मैथुनैश्च ॥ भाराध्वहस्तिरथवाहनधावनेन संक्रुद्धवायुहननेऽनल वेगमेनम् ॥ ८३ ॥

कडुआ, कसैला, चर्चरा, खट्टा, दाह करनेवाला, रूखा, शीतल, थोडा, ऐसे भोजनोंको नित्यमति सेवनेसे परिश्रम और मैथुनको अत्यंत सेवनेसे और बोझ, मार्गमें ज्यादै चलनेसे, हस्ती, रथ, घोडा इन्होंमें बैठके भगानेसे क्रुद्धहुआ वायु अधोवातके वेगको नाशता है ॥ ८३ ॥

तस्मात्तदग्रमनिलेन च छिद्यमानं रक्तेन युक्तमनिले परिपाकमेति ॥ संजायतेऽपि मनुजस्य तथा तृतीयं गुल्मेति नाम स च पञ्चविधो बभूव ॥ ८४ ॥ प्लीहा यकृज्जठरकण्डुमलस्य बन्धोऽष्ठीला क्रिमिर्जठररोगभवोऽथ षष्ठः ॥ एते भवंति ग्रहणीपरिवर्त्तमाना घोरास्तथा दुःखदाश्च मनुजस्य चित्ते ॥ ८५ ॥

तिससे रुकेहुवे वायु करके छिद्यमान हुआ रक्त परिपाकको प्राप्त होता है तब मनुष्यके एक गोला उपजता है ऐसे पांच प्रकारका ग्रहणीदोष जानना ॥ ८४ ॥ तिल्लीरोग, यकृद्रोग उदररोग, खाज, मल, बंधा, कृमिरोग इन्होंसे संयुक्त ग्रहणीरोग छठाभी होता है ये सब घोररूप रोग मनुष्यको दुःखके देनेवाले ग्रहणीहीके विकारसे होते हैं ॥ ८५ ॥

अथ गुल्मसंज्ञकग्रहणीरोगका लक्षण।

कण्ठस्य शोषस्तिमिरं तथा पार्श्वशूलं नाभौ तथातिकृशतातिविषूचिका च॥ कर्णे स्वनोऽतिवमनं क्लमशूलमोहः श्वासेन गुल्ममिति लक्षणमेव विद्धि ॥ ८६ ॥ यस्यैतानि च लिङ्गानि गुल्मिनं तं विदुर्बुधाः॥ ग्रहणी नाम साध्यो यस्तस्य वक्ष्यामि लक्षणम् ८७

कंठका शोषहो अंधेरी आवै पशली और नाभिमें शूलहो शरीर अत्यंत कृश होजावै और अत्यंत विषूचिका रोग उपजैं कानमें शब्दहो अत्यंत छर्दि आवै और ग्लानि, शूल, मोह, श्वास, गुल्मरोग ये उपजै ॥ ८६ ॥ ये जिसके लक्षणहों तिसके गुल्मसंज्ञक ग्रहणीरोग जानना ग्रहणीरोग साध्य है तिसके लक्षण कहताहूं ॥ ८७ ॥

अथ वातकी संग्रहणीका लक्षण।

चित्रं सशब्दं सृजतेऽत्र वर्चः शोफोऽनिलो वर्चमतीव रूक्षम् ॥ श्वासार्त्तियुक्तं तनुशैथिलं च स्रावो ग्रहण्यानिलकोपतः स्यात् ८८

चित्र और शब्दसे सहित मल उतरै और वह मल अत्यंत रूखाहो और वातसे शोजा उपजै श्वासरोग और शरीरमें शिथिलपनाहो और स्रावहो ये लक्षण उपजैं तब वातकी संग्रहणी जानिये ॥ ८८ ॥

अथ पित्तकी संग्रहणीका लक्षण।

विदाहि शीर्णं सरुजं तृषार्त्तं दुर्गन्धपीतारुणनीलकालम् ॥ संसृज्यते यस्य मलो विमिश्रःपित्तोद्भवा सा ग्रहणीति संज्ञा॥८९॥

दाह, शूल, तृषा, दुःख, इन्होंसे युक्त रोगी होवै दुर्गंधसे मिला हुआ और पीला, लाल, नीला, काला इन रंगोंसे मिलाहुआ मल उतरै ये लक्षण होवैं तब पित्तकी संग्रहणी जाननी ८९

अथ कफकी संग्रहणीका लक्षण।

हृल्लासश्छर्दिः श्वसनं च शोफः कासो जडत्वं च सशीतता च ॥ वैरस्यमास्ये गुरुगात्रता स्यादरोचकं शङ्खशकृद्ग्रहस्तु ॥ ९० ॥

थुकुथुकीहो छर्दि आवै और श्वास, शोजा, खांसी, जडपना, शीतलता ये उपजैं और मुखमें विरसपनाहो शरीरका भारीपनाहो अरुचिहो और गुदाकी आंठीमें मलकी कब्जहो तिसको कफकी संग्रहणी जानना ॥ ९० ॥

अथ सन्निपातकी संग्रहणीका लक्षण।

त्रिभिः समेतं गदितं च चिह्नमेतस्य कोपो मधुरास्यता वा ॥
दाहोऽथ मूर्च्छा श्वसनं जडत्वं स सन्निपातग्रहणीगदः स्यात्॥९१॥

ये पूर्वोक्त तीनों प्रकारकी संग्रहणियोंके लक्षण मिलें और मुखमें मधुर स्वाद आवै और दाह, मूर्च्छा, श्वास, जडपना ये उपजैं तिसको सन्निपातकी ग्रहणी जानिये ॥ ९१ ॥

अथ वातग्रहणीका पाचन।

दारुनागरनिशा सवासंका कुण्डली मगधजा शठी घनम् ॥
रास्ना सभांर्गी सरलाह्वपुष्करं पाचनं भवति वातिकग्रहे ॥ ९२ ॥

देवदारु, सूंठ, हलदी, वांसा, गिलोय, पीपल, कचूर, नागरमोथा, रास्ना, भारंगी, सालवृक्ष, पोहकरमूल, इन्होंका पाचन वातकी संग्रहणीमें हित है ॥ ९२ ॥

अथ पित्तग्रहणीका पाचन।

नलवेणुकुशानां च काशेक्षूणां च मूलकम् ॥
क्वाथपानं हितं वास्य पाचनं पैत्तिके ग्रहे ॥ ९३ ॥

नरशल, वांस, डाभ, कांश, ईख इन्होंकी जडको पानीमें औटावै यह पाचन पित्तकी संग्रहणीमें हित है ॥ ९३ ॥

अथ कफ ग्रहणीकी औषध।

व्याघ्रीग्रन्थिकचव्यसुरसा शुण्ठी दाडिमम् ॥
रजनी घनचित्रकमेवं हिक्कामथकफग्रहणीं हन्ति ॥ ९४ ॥

कटेहली, पीपलामूल, चव्य, तुलसी, सूंठ, अनारकी छाल, हलदी, नागरमोथा, चीता, इन्होंका क्काथ हिचकी और कफकी संग्रहणीको हरता है ॥ ९४ ॥

अथ शुण्ठ्याद्यमृतप्राशन।

शुण्ठी कणा द्विरजनी च घनं तथा च योज्यः पुनः प्रतिविषं त्रिफला विडङ्गः ॥ सिन्धूत्थवह्नित्रिकटुं त्रिसुगन्धियुक्तं चूर्णं पुनर्गुडयुतं घृतमिश्रितं च ॥ ९५ ॥ कृत्वा बिडालपदमात्रकमोदकांश्च भक्षेद्यथा जलमपि ग्रहणीगदे च ॥ अर्शोभगन्दरमरोचकगुल्ममेहाञ्छूलाश्मरीकृमिजरोगहरं च पाण्डु ॥ ९६ ॥ श्रेष्ठं रसायनमिदं बलिनाशनं स्याद्वृष्यं बलं विदधतेऽतिकृशत्वदोषम्॥ वर्णेन्द्रियसकलदीप्तिकरं रुजोघ्नं कुष्ठभ्रमापहरणं कुरुतेसदैव॥९७॥

सूंठ, पीपल, हलदी, दारुहलदी, नागरमोथा, अतीश, हरडै, बहेडा, आंवला, वायविडंग, सेंधानमक, चीता, सूंठ, मिर्च, पीपल, दालचीनी, इलायची, तेजपात इन्होंके चूर्णमें घृत और गुड मिला ॥ ९५ ॥ एक एक तोलेभरकी गोलियां बनाके पानीके साथ खावै ये गोली ग्रहणीरोग, बवासीर, भगंदर, अरोचक, गुल्मरोग, प्रमेह, शूल, पथरी, कृमिरोग, पांडुरोग, इन्होंको हरती हैं ॥ ९६ ॥ श्रेष्ठ और रसायन हैं वलियोंको नाशती हैं वीर्य और बलको देती हैं वर्ण और इंद्रियोंको प्रकाशित करती हैं दुःखको नाशती हैं और सबकालमें कुष्ठको और भ्रमको नाशती हैं ॥ ९७ ॥

अथ अभयाद्यवलेह।

हरीतकीपञ्चशतानि धीमान् द्रोणेन गोमूत्रशतेन पाच्यम्॥ मृद्वग्निना यावदशेषमेव मूत्रं विजीर्णे विधिवद्विधिज्ञः ॥ ९८ ॥ निर्वाप्य चूर्णे प्रतिशोष्य शीतं छायाविशुष्कान् प्रविदार्य्य चाष्टीः॥ चूर्णं च शुण्ठीमगधाविषाश्च सुगन्धिमूर्वाचविकान्विताश्च ॥ ९९॥ निष्क्राथ्य कल्कः कुटजस्य तावद्दर्व्योपलेपी भवतीति यावत् ॥ तस्यार्द्धभागेन गुडं विमथ्यात्क्षीरं तदर्द्धेन गवाजकं वा ॥ १००॥ निर्वापितं तं घृतभाजने च संस्थापितं प्राङ्मुदितेन तेन ॥ सिन्धूत्थवह्नित्रिकटुं त्रिसुगन्धियुक्तं चूर्णं पुनर्गुडयुतं घृतमिश्रितं च॥ १०१ ॥ चूर्णेन तेन सकलग्रहणीयपाण्डुशोषाश्मरीं कृमिजगुल्ममथातिसारान् ॥ प्लीहायकृच्छ्वासिषु मानवेषु विषूचिका पीनसमस्तकार्त्तिम् ॥ १०२ ॥ विनाशनः सद्यस्तथा ज्वराणामध्वश्रमक्षीणबलोदराणाम् ॥ एकाहिकादिज्वरनाशनःस्याल्लेहोऽभयाद्योऽमृतवन्नराणाम् ॥ १०३ ॥ इत्यभयाद्योऽवलेहः ॥

५०० बडीहरडोंको १०० द्रोण गोमूत्रमें पकावै कोमल अग्निसे पकनेमें जब चौथाईभाग शेष रहै ॥ ९८ ॥ तब अग्निसे उतार तिन हरडोंको छायामें सुखाके चीर गुठलियोंको दूरकरै पीछे सूंठ, पीपल, अतीश, सफेद चंदन, मरोडफली, चव्य इन्होंके चूर्णको यथायोग्य मिला ॥ ९९ ॥ फिर अग्निपै पकावै और कडछीसे चलावै जब कडछीपै चिपनेलगे तब तिस संपूर्ण औषधके समान गायका अथवा बकरीका दूध मिला ॥ १०० ॥ अग्निसे उतार घीके चिकने बर्तनमें स्थापन करै फिर सेंधानमक, चीता सूंठ, मिर्च, पीपल, दालचिनी, इलायची, तेजपात, गुड, घृत, इन्होंको, मिलाके खावै ॥ १०१ ॥ यह सब प्रकारकी संग्रहणी, पांडुरोग, शोषरोग, पथरीरोग, कृमिरोग, पेटका गोला, सबप्रकारके अतिसार, तिलीरोग, जिगर-

रोग, श्वास, हैजा, जुखाम, पीनस, मस्तकरोग इन्होंको नाशता है ॥ १०२ ॥ और सबप्रकारके ज्वर मार्गमें गमन करनेसे क्षीण बलवाले और उदररोगियोंको हित है और एकाहिकआदि ज्वरोंको नाशता है यह अभयाद्यवलेह मनुष्योंको अमृतके समान है ॥ १०३ ॥

अथ द्राक्षादिपिंडी।

द्राक्षाक्षीरेण पक्त्वा यावद्धनं दर्व्युपलेपि च ॥ दृष्ट्वा पश्चात्तैः समालोड्य चेमान्यौषधानि मतिमान् ॥ १०४ ॥ पर्पटातिविषा मूर्वा पटोलं घनवालकम् ॥ तथाभयानां चूर्णं तु समशर्करया युतम् ॥ १०५ ॥ तेन क्षीरेण संयोज्य विदार्य्याः कन्दमेव च ॥ घृतेन नवनीतेन पिण्डं कृत्वाऽथ भक्षयेत् ॥१०६॥ सपित्तग्रहणीपाण्डुकामलार्त्तितृषापहम् ॥ भ्रम मूर्च्छां तथा हिक्कां तमकोन्मादमश्मरीम् ॥ १०७ ॥ मेहपित्तासृजं कुष्ठं नाशयत्याशु निश्चितम् ॥ १०८ ॥ इति द्राक्षादिक्षीरम् ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने अतीसारचिकित्सानामतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

दाखोंको दूधमें मिला पकावै जब करडा होकै कडछीपै चिपने लगै तब बुद्धिमान् वैद्य इन औषधोंको डालै ॥ १०४ ॥ पित्तपापडा, अतीश, मरोडफली, परवल, नागरमोथा, नेत्रवाला, हरडैं इन्होंके चूर्णको और बराबरकी खांडको मिलावै ॥ १०५ ॥ पीछे तिस दूधमें विदारीकंद और नौनीघृत मिला गोली बनाके खावै ॥ १०६ ॥ यह पित्तकी संग्रहणी पांडुरोग, कामला, तृषारोग, भ्रम, मूर्च्छा, हिचकी, तमक, श्वास, उन्माद, पथरी ॥१०७॥ प्रमेह, रक्तपित्त, कुष्ठ इन्होंको शीघ्र नाशता है ॥ १०८ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने अतीसारचिकित्सानामतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ४.

अथ गुल्मचिकित्सा।

आत्रेय उवाच ॥ शृणु पुत्र प्रवक्ष्यामि गुल्मानां चैव लक्षणम् ॥ तस्मात्तेषां प्रतीकारमौषधानि विशेषतः ॥ १ ॥

आत्रेयजी कहते हैं-हे पुत्र ! सुन गुल्मोंके लक्षणको कहताहूं और तिन्होंकी चिकित्सा और औषधको भी विशेषकर कहताहूं ॥ १ ॥

अथ गुल्मके भेद।

पञ्चधा संभवंत्येते गुल्मा जठरसंभृताः ॥ हृत्कुक्षौ नाभिबस्तौ च मध्ये च पञ्चमः स्मृतः ॥ २ ॥ हृदयस्थो यकृन्नाम कुक्षौ साष्ठीलकोच्यते ॥ मध्ये प्लीहा समाख्यातो बस्तौ चण्डविवृद्धकः॥३॥ नाभौ संलक्ष्यते ग्रन्थी नामान्येषां पृथक् पृथक् ॥

उदरमें फैलेहुये गुल्म पांच प्रकारके हैं हृदयमें एक,कुक्षिमें दूसरा, नाभिमें तीसरा,बस्तिस्थानमें चौथा, मध्यभागमें पांचवाँ ऐसे गुल्म होते हैं ॥ २ ॥ हृदयमें उपजनेवाले गुल्मका यकृत् नाम है कुक्षिमें होनेवाले गुल्मका अष्ठीला नाम है मध्यभागमें प्लीहानामसे विख्यात है बस्तिस्थानमें चंडविवृद्धकनामवाला होता है ॥ ३ ॥ नाभिमें ग्रंथिनामसे लक्षित है ॥

अथ गुल्मके निदान ।

अतः प्रकोपं वक्ष्यामि येन कुर्वन्ति बाधकम् ॥ ४ ॥ स्वभावात्पित्तरक्तोत्थे सेविताम्लविदाहिनम् ॥ उष्णं च क्षारमद्यं वा चोष्णपानातिसेवनात् ॥ ५ ॥ तथा शोकः श्रमोऽध्वानां शोषात्संक्षोभनादपि ॥ उच्चभाषण गानेन धनुर्ज्याकरणेन च ॥ ६ ॥ पृष्ठे मुष्ट्यभिघातेन हृदयात्ताडनेन वा ॥ भारणोद्धारणाद्वापि रक्तं शोषयते हृदि ॥ ७ ॥ तेन गुल्मेति नाम तु जायते रक्तपित्तकम् ॥ कदाचित्त्रिषु दोषेषु सम्भवश्चास्य दृश्यते ॥ ८ ॥ वातेनोदीरितश्चैव कफेन च घनीकृतम् ॥ पित्तेन पाकतां प्राप्तं त्रिदोषसंसृतं यकृत् ॥ ९ ॥

इन्होंके ऐसे पृथक् २ नाम हैं अब इन्होंके प्रकोपको कहताहूं जिसकरकै पीडाको करते हैं ॥ ४ ॥ रक्तपित्तके स्वभावसे, आम्ल और विदाही पदार्थको सेवनेसे और गरम पदार्थ खारा, मदिरा, इन्होंको सेवनेसे और गर्मपानको अतिसेवनेसे ॥ ५ ॥ शोक, श्रम, मार्गमें, अत्यंत चलना, शोष, क्षोभ, ऊंचा बोलना, ऊंचे प्रकारसे गाना और धनुषकी टंकारको करनेसे ॥ ६ ॥ पृष्ठभागमें मुक्केके लगनेसे और हृदयमें चोट आदिके लगनेसे बोझको उठानेसे मनुष्यके हृदयमें रक्त सूख जाता है ॥ ७ ॥ तिस्से रक्तपित्त करकै गुल्मरोग उपजता है और कभी तीनों दोषोंसेभी गुल्म उपजता है ॥ ८ ॥ वातसे बढाहुआ और कफसे कठिन हुआ और पित्तसे पाकभावको प्राप्तहुआ यकृत् त्रिदोषसे फैलता है ॥ ९ ॥

अथ यकृद्गुल्मका लक्षण।

लक्षणं तस्य वक्ष्यामि येन तच्चापि लक्ष्यते ॥ क्षीयते येन मनुजो मृत्युमाशु प्रपद्यते ॥१०॥ वमिः क्लमस्तथोद्गारो हृल्लासः श्वसनं भ्रमः ॥ दाहोऽरुचिस्तृषा मूर्च्छा कण्ठे दाहः शिरोव्यथा ॥ ११ ॥ हृच्छूलं च प्रतिश्यायष्ठीवनं कटुकैः सह ॥ सशल्यं हृदि शूलं च निद्रानाशः प्रलापतः ॥ १२ ॥ हृदये मन्यते दार्ढ्यमुदरं गर्जति भृशम् ॥ एतैर्लिङ्गैर्विजानीयाद्यकृत्कोष्ठान्तवक्षसि ॥ १३॥

तिस गुल्मके लक्षणको कहूंगा जिस करकै वहभी लक्षित हो सक्ता है इस रोगसे मनुष्य सूखजाता है और शीघ्रही मृत्युको प्राप्त होजाता है ॥ १० ॥ छर्दि आवै, ग्लानि उपजै अडकार आवै थुकथुकीहो श्वास और भ्रम उपजै और दाह, अरुचि, तृषा, मूर्च्छा, येभी उपजैं कंठमें दाहहो और शिरमें पीडाहो ॥ ११ ॥ हृदयमें शूलहो जुखाम होजावै कडुआ थूकै शल्यसहित शूल हृदयमें होवै नींदका नाशहोवै बकवादको करै ॥ १२ ॥ और हृदयमें दाहको मानै और उदर अत्यंत गर्जै इन लक्षणोंसे कोष्ठके समीप छातीमें यकृत्संज्ञक गुल्म जानना ॥ १३ ॥

अथ शुण्ठ्यादिचूर्ण।

यदि साक्षात्त्रिकटुकं कुष्ठं तथा पञ्चमकं यवानीम् ॥ षष्ठं च सिन्धुत्थविमिश्रितं च सूक्ष्मं च चूर्णं सह रामठेन ॥ भक्षेच्च तस्योपरि तक्रपानं निष्क्वाथ्य तोयं च पिबेच्च वाम्लम् ॥ १४ ॥ सौवीरकं वा विनिहन्ति शीघ्रं यकृद्विधानुदरशूलकासान् ॥ विषूचिकाजीर्णकफामयघ्नं पाण्ड्वामयार्त्तिग्रहणीं सगुल्माम् ॥ १५ ॥ शुण्ठ्यादिचूर्णं त्वरितं निहन्ति ॥

सूंठ, मिर्च, पीपल, कूठ, अजवायन, सेंधानमक हींग, इन्होंका महीन चूर्ण बना खावै ऊपर तक्र गर्मपानी, खट्टारस, इन्हों मांहसे एककोईसेका अनुपान करै ॥ १४ ॥ अथवा कांजीका अनुपान करै यह शुंठयादि चूर्ण यकृत्रोग, उदरशूल, खांसी, विषूचिका, (हैजा) अजीर्ण, कफरोग, पांडु, संग्रहणी, गुल्मरोग इन्होंको शीघ्र नाशता है ॥ १५ ॥

अथ क्षारामृत।

क्षारं मुष्ककर्किंशुकार्जुनधवापामार्गरम्भातिला जीवन्तीकनकाह्वयश्चरजनी कूष्माण्डवल्ली तथा ॥ वासामूरणमेव तीव्रदहनं प्रज्वाल्य भस्मीकृतं तोयेन प्रतिसेव्य निभृतपयःपानं विधेयं

यकृत् ॥ १६ ॥ तथा शूलानाहविबन्धकफजान्रोगाञ्जयेत्काम लान्विद्रधीन् हृदिशूलपाण्डुग्रहणीशोफार्शसां पीनसान् ॥ मंदाग्नीनामजीर्णकृम्यलसगुदभ्रंशमोहांस्तथा क्षतजवृद्धिस्तेन सदाह-शूलकास्युद्गारता वमिः ॥१७॥ पूयाभः पततेश्लेष्मा पूतिगन्धोऽ-तिविस्रकः ॥ रक्ताभस्तत्र सङ्काशष्ष्ठीवते स मुहुर्मुहुः ॥ तथाति सार्य्यते रक्तं श्रमः संक्षीयते वपुः ॥ १८ ॥ क्षतजाः संसृता गात्रे यकृद्वक्षासि संसृतः ॥ १९ ॥

"असाध्ययकृद्रोगलक्षणम्"

श्वासस्तृषा वमिर्मोहः शोफः स्यात्करपादयोः ॥ रुचिबन्धोऽति-सारश्च यकृद्दुरे परित्यजेत् ॥ २० ॥ अतो वक्ष्यामि भैषज्यं येन संपद्यते सुखम् ॥

यकृद्रोगपर पाचन।

तस्यादौ लङ्घनं चैकं पाचनं तदनन्तरम् ॥२१॥ शुण्ठ्योपकुल्या तिमिरं शठीनां यवानिकाभीरुहरीतकीनाम् ॥ क्काथोथकल्क प्राचनके प्रशस्त आनाहगुल्मार्त्तिविषूचिकानाम् ॥ २२ ॥ भद्रोपकुल्याभयशृङ्गवेरं पथ्या त्रिभागा च कणाचतुर्था ॥२३॥

तालमखानों, मोखावृक्ष, केशू, अर्जुनवृक्ष, धव, ऊंगा, केला, तिल, महुआ, धतूरा, हलदी, लालतुंबी, वांसा, जमीकंद, इन्होंको तेजअग्निसे जला भस्म बना पानीमें मिला खारबनावै तिसको लेनेसे यकृत्रोग ॥ १६ ॥ शूल, अफारा, बंधा, कफका रोग, कामला, विद्रधि, हृदयशूल पांडु. संग्रहणी शोजा, बवासीर, पीनस, मंदाग्नि, अजीर्ण, कृमि, आलस्य, गुदभ्रंश, मोह क्षतजरोग, वृद्धिरोग, दाह, शूल, खांसी, अडकार, छर्दि इन्होंका नाश होता है॥ १७॥ रादके समान कफ पडैं दुर्गंधसे और कच्चे गंधसे संयुक्त और रक्तके समान वारंवार थूकै और रक्तकाही अतीसार जावै शरीरमें परीश्रम होवै शरीर सूखता जावै ॥ १८ ॥ और क्षतसे उपजैं रोग होवैं ये लक्षण होवैं तब छातीमें फैलाहुआ यकृत्रोग जानना ॥ १९ ॥ श्वास, तृषा, छर्दि, मोह, ये उपजै हाथ और पैरोंमें शोजा होवै, रुचिबंध होवै और अत्यंत मकाश होवै ऐसे यकृत्रोगको दूरसे त्यागै ॥ २० ॥ अब औषधको कहता हूं-जिसकरकै सुखकी मामिहो इसरोगकी आदिमें एक लंघन कर पीछे पाचन देना हित है ॥ २१ ॥ सूंठ, पीपल, लोहाका मैल, कचूर, अजवायन, शतावरी, हरड़ै इन्होंका क्वाथ अथवा कल्करूपी

पाचन हित है यह अफारा, गुल्म, विषूचिका, हैजा इन्होंको नाशता है ॥ २२ ॥ नागरमोथा, पीपल, हरडै, अदरख, ये लेने परंतु इन्होंमें तीनभाग हरडैंके लेनें और पीपल इन्होंका पाचन इसरोगको नाशता है ॥ २३ ॥

अथ यकृद्गुल्मपथ्य।

क्षतक्षयं यकृत्पूर्वं चोपवासं च पाचनम् ॥
न देयं-हिङ्गुसंयुक्तं चूर्णं हितं तद्गदातुरे ॥ २४ ॥

जो क्षतक्षय रोगसे संयुक्त हुये यकृत् रोगहो उसमें लंघन और पाचन हित नहीं है और इस रोगवालेको हींगसे संयुक्त किया चूरन नहीं देना ॥ २४ ॥

अथ निंबादि क्वाथ।

निम्बनीपधरवेतसं निशा काश्मरी च तुलसी च सिंहिका ॥
क्वाथ एव हृदयामयापहः शूलमाशु यकृदास्यनाशकृत् ॥२५॥

नींबकी छाल, कदंबकी छाल, बिनोलाकी गिरी, मन नामक वनकी औषधि विशेष, हलदी, कंभारी, तुलसी, कटेहली, इन्होंका क्वाथ हृदयरोग, कफ, शूल, मुखका रोग इन्होंको नाशता है ॥ २५ ॥

अथ सौराष्ट्रिकादि क्वाथ।

सौराष्ट्रिकासीसमहौषधानि दुरालभाजातिप्रवालकं च ॥
दार्वी यवानी ककुभं समङ्गा क्वाथः ससर्पिर्यकृदाशु हन्ति ॥२६॥

फटकडी, कसीस, सूंठ, जवांसा, चमेलीकी कोंपल, दारूहलदी, अजवायन, अर्जुनवृक्षकी छाल, मंजीठ इन्होंके काथमें घृत मिला पीनेसे यकृत्रोगका नाश होता है ॥ २६ ॥

अथ धवादि क्वाथ।

धवार्जुनकदम्बानां शिरीषबदरीषु च ॥
निष्क्वाथ्य पानमामघ्नं विषूच्या शूलवारणम् ॥ २७ ॥

धवके फूल, अर्जुन और कदंबवृक्षकी छाल, शिरस और वडवेरकी छाल, इन्होंका क्वाथ बना पीवै यह आमदोष, विषूचिका, हैजा, शूल इन्होंको दूर करता है ॥ २७ ॥

अथ कदलीजलपानक।

कदलीक्षारमादाय शंखक्षारमथापि वा ॥ प्रस्राव्य जलपानं तु हिङ्गुसौवर्चलान्वितम् ॥ २८ ॥ आमं हरति विसृष्टं शूलं चाशु नियच्छति ॥ विषूचिकानां शमनमजीर्णं जरयत्यपि ॥ २९ ॥

केलाका खार, शंखका खार, हींग, कालानमक इन्होंको पानीमें मिला पीवै ॥ २८ ॥ यह आमको हरता है और शूलको हरता है और विषूचिका हैजाको शांत करता है और अजीर्णको जराता है ॥ २९ ॥

अथ विजोरा आदिकपान।

मातुलुङ्गरसं ग्राह्यं द्विगुणं तत्र काञ्जिकम् ॥
हिङ्गुसौवर्चलयुतं पानं हन्ति विषूचिकाम् ॥ ३० ॥

विजौराके रसमें दूनी कांजी मिलावै हींग और कालानमकसे संयुक्तकर पीवै यह विषूचिकाको हरता है ॥ ३० ॥

अथ खारका सेवन।

क्षारं तोयं च पानाय दाहस्योपरि पाचयेत् ॥
शूलाध्मानं निहन्त्याशु कुरुते चाग्निदीपनम् ॥ ३१ ॥

खारके पानीको अग्निपै पकाके पीवै यह शूल और अफाराको हरता है और अग्निको शीघ्र जगाता है ॥ ३१ ॥

अथ आमाजीर्णका उपाय।

आमेषु वमनं कुर्य्याद्विपक्के चैव लङ्घनम् ॥
विशिष्टस्वेदनं निद्रा रसशेषे विरेचनम् ॥ ३२ ॥

आमसंज्ञक अजीर्णमें वमन कराना और पकेहुये अजीर्णमें लंघन, पसीना, नींद, इन्होंको सेवै और रसशेष अजीर्णमें विरेचन हित है ॥ ३२ ॥

अथ दिवास्वापविधान।

उन्मत्ते चातिसारे च वमिक्रोधातुरेषु च ॥ अजीर्णे तु विषूच्यां च दिवास्वप्नं हितं भवेत् ॥ ३३ ॥ न हितं श्लेष्मणि चैव हृद्रोगे तु शिरोरुजि ॥ हृल्लासे च प्रतिश्याये दिवास्वप्नं च वर्जयेत् ॥ ३४ ॥

उन्माद, अतीसार, छर्दि, क्रोध, अजीर्ण, विषूचिका, हैजा इन्होंमें दिनका सोना हित है ॥ ३३ ॥ कफरोग, हृद्रोग, शिरकी पीडा, थुकथुकी, जुखाम, इन रोगोंमें दिनके शयनको वर्जै ॥ ३४ ॥

अथ विषूचिकापरं हरीतक्यादि अंजन।

फलत्रयं त्र्यूषकरञ्जबीजं रसं तथा दाडिममातुलुंग्यः ॥
निशायुतं पेष्यकृता च वर्त्तिस्तदञ्जने हन्ति विषूचिकाञ्च ॥ ३५ ॥

हरडैं, बहेडा, आंवला, सूंठ, मिर्च, पीपल, करंजुआके बीज, अनार, और विजौराका रस, और हलदी, इन्होंको पीस बत्ती बना नेत्रोंमें आंजै यह विषूचिका हैजाको हरती है ३५

अथ रास्नादि भक्षण।

रास्ना विशाला च सुरब्दकुष्ठं शिग्रु वचा नागरकं शताह्वम् ॥
आग्नेय पिष्टाहपुषाविदार्य्यः खल्लीं विषूचीषु निवारयन्ति ॥ ३६ ॥

रास्ना, इन्द्रायण, देवदार, नागरमोथा, कूट, सहीजना, वच, सूंठ, शतावरी, हाउवेर, विदारीकंद इनसबोंको चीताके रसमें पीस खानेसे खल्लीरोग और विषूचिका हैजा दूर होता है ॥ ३६ ॥

अथ स्वेदका उपयोग।

स्वेदो विधेयो घटकस्य बाष्पमेकैर्घटाभिर्वसनेन चोष्णः ॥
तथोष्णपाणिं प्रतिसेक एवं जयेद्विषूचीं जठरामयानाम् ॥३७॥

कलशेमें अग्निको घालि तिसकी भापोंसे अथवा गरमकिये वस्त्रसे अथवा गरमकिये हाथसे पसीना देवै तो विषूचिका हैजा और पेटका रोग दूर होता है ॥ ३७ ॥

अथ गंधकादिभक्षण।

गन्धकं सैन्धवं त्र्यूषं निम्बूरसविमर्दितम् ॥ आतुरो भक्षयेच्छीघ्रं विषूचीनां निवारणम् ॥ ३८ ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने गुल्मचिकित्सा नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

गंधक, सेंधानमक, सूंठ, मिर्च, पीपल इन्होंको नींबूके रसमें खरलकर प्रमाणसे रोगी खावै यह विषूचिका हैजाको जलदी दूर करता है ॥ ३८ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसुनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने गुल्मचिकित्सा नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः ५.

अथ कृमिरोगके प्रकार और तिन्होंके भेद।

आत्रेय उवाच ॥ क्रिमयो द्विविधाः प्रोक्ता बाह्याभ्यन्तरसम्भवाः ॥ बाह्यायूकाः प्रसिद्धाः स्युरभ्यन्तराश्च किञ्चकाः ॥ १ ॥ सप्तविधो भवेद्बाह्यः षड्विधोऽन्तःसमुद्भवः ॥ तेषां वक्ष्यामि सम्भूतिं बाह्यानाम्यन्तरं नृणाम् ॥ २ ॥

आत्रेयजी कहते हैं-बाह्य और आभ्यंतरभेदसे कृमि दोप्रकारके कहे हैं जूमआदि बाह्यकृमि कहाते हैं चूरनेआदि आभ्यंतर कृमि कहाते हैं ॥ १ ॥ बाह्यकृमि सात प्रकारके हैं आभ्यंतर कृमि छः प्रकारके हैं अब तिन्होंके उत्पत्तिको कहताहूं ॥ २ ॥

अथ जूमकी उत्पत्ति।

रौक्ष्यादतिमलात्स्वेदाच्चिन्तया शोचनादपि ॥ कफाधातुसमुद्भूतास्तीक्ष्णा यूका भवन्ति हि ॥ ३ ॥ यूकाः कृष्णाः पराः श्वेतास्तृतीया चर्मणि स्थिता ॥ सूक्ष्मातिविकटा रूक्षा चर्मभा चर्म यूकिका ॥ ४ ॥ चतुर्थी बिन्दुकी नाम वर्त्तुला मूत्रसम्भवा ॥ मत्कुणा स्याच्च पञ्चमी बाह्योपद्रवकारिणी ॥ ५ ॥ यूका मस्तकसंस्थाने श्वेता शिरोनिवासिनी ॥ चर्मयूका नेत्रचर्मे सूक्ष्मे रोमणि याष्टिका ॥ ६ ॥

रौक्षसे, अत्यंत मलसे, पसीनासे, चिंता और शोचसे कफ और धातु करके उपजेहुये तीक्ष्ण जूम होते हैं ॥ ३ ॥ पहली कृष्णा, दूसरी श्वेता, और, चर्ममें स्थित होनेवाली और सूक्ष्म अतिविकट, रूखी, ऐसी ऐसी चर्मसरीखी कांतिवाली तीसरी है ॥ ४ ॥ और चर्मयूकिकानामवाली चौथी और बिंदुकी नामवाली पांचमी है और मूत्रसे उपजी वर्तुलानामवाली छठी है और शरीरके बाहर उपद्रव करनेवाली मत्कुणा सातमी है ॥ ५ ॥ मस्तकके स्थानमें यूका जूम होती है और सूक्ष्मरोगोंमें भी जूम होती है और नेत्रके चाममें चर्मयूका जूम होती है और सूक्ष्मरोगोंमें चर्ममेंभी जूम होती है ॥ ६ ॥

अथ कृमि उत्पन्न होनेका कारण।

रूक्षान्नयवान्नगोधूमपिष्टैर्गुडेन वा क्षीरविपर्य्ययेण ॥ दिवाशयानेन सपिच्छलेन घर्मेण तापोदकसेवनेन ॥ ७ ॥ संजायते तेन मलाशयेषु क्रिमिव्रजं कोष्ठविकारकारि ॥ ८ ॥

रूखाअन्न, जव, गेहूं, पीठी, गुड, दूधका पदार्थ, दिनका सोना, कफकारी पदार्थ, घाम, गरमपानी, इन्होंके सेवनेसे ॥ ७ ॥ मलाशयमें कृमियोंका समूह उपजता है यह कोष्ठमें विकारको करता है ॥ ८ ॥

अथ छः प्रकारके अंतर्गतकृमि।

षड्विधास्ते समुद्दिष्टास्तेषां वक्ष्यामि लक्षणम् ॥ कफकोष्ठं मलाधारं कोष्ठे सर्पन्ति सर्पवत् ॥ ९ ॥ पृथुमुण्डा भवंत्येके केचित्कि-

ञ्चुकसन्निभाः ॥ धान्याङ्कुरनिभाः केचित्केचित्सूक्ष्मास्तथाणवः ॥ १० ॥ सूचीमुखाः परिज्ञेयाश्चान्त्राणि सीदयन्ति ते ॥ वक्ष्यामि लक्षणं तेषां चिकित्साञ्च शृणष्व मे ॥ ११ ॥

जो छः मकारके बाह्यकृमि कहेहैं तिन्होंके लक्षणोंको कहताहूं मलके आधारवाले कफके कोष्ठमें आभ्यंतर कृमि सर्पकी तरह चलते हैं ॥ ९ ॥ कितनेक पृथुमुंडनामसे विख्यात हैं और कितनेक केचुवोंके समान कांतिवाले होते हैं, कितनेक अन्नके अंकुरके समान कांतिवाले होते हैं, कितनेक सूक्ष्म होते हैं कितनेक अत्यंत सूक्ष्म होते हैं ॥ १० ॥ कितनेक सूंचीमुख नामसे विख्यात हैं ये आंत्रोंको शिथिल करते हैं, तिन्होंके लक्षण और चिकित्साको कहताहूं मेरेसे सुन ॥ ११ ॥

अथ कृमिरोगका लक्षण ।

ज्वरो हृद्रोगशूलं वा वमिहृत्क्लेदनं भ्रमः ॥ रुचिबन्धो विवर्णत्वमतीसारः सफेनिलः ॥ १२ ॥ गर्जनं जठरे चैव मन्दाग्नित्वं च जायते ॥ पिपासा पीतता नेत्रे किञ्चुकैः पीडितस्य च ॥ १३ ॥

ज्वरहो हृदयरोग और शूल उपजै और छर्दि हृदामें ग्लानि भ्रम ये उपजैं और रुचिबंध होजावे वर्ण बदलजावे झागोंवाले मलसे सहित अतिसार उपजै ॥ १२ ॥ पेटमें शब्द होवै और मंदाग्नि उपजै और अत्यंत तृषा होवै और नेत्रोंमें पीलापनहो ये सब लक्षण हों तब आभ्यंतर कृमिरोग जानना ये गंडुपद कृमिरोगके लक्षण हैं ॥ १३ ॥

अथ सूचीमुखकृमिका लक्षण ।

सूचीवत्तुद्यतेऽन्त्राणि रक्तं चेवातिसार्य्यते ॥ यकृद्वा भक्षयन्त्यन्ये रक्तं वा वमते भृशम् ॥ १४ ॥ क्लेदो मुखेऽरुचिर्जाड्यं मन्दाग्नित्वं च वेपथुः ॥ क्षुत्तृष्णा च ज्वरो ज्ञेयाः सूचीमुखक्रिमीरुजः ॥ १५ ॥

सूईकी तरह आंत्रोंको पीडितकरै और रक्तको अत्यंत गुदाके द्वारा निकासै और यकृत स्थानको भक्षणकरै और रक्तकी अत्यंत छर्दि आवै ॥ १४ ॥ मुखमें ग्लानिहो अरुची और जडपना उपजै मंदाग्नि और कंप उपजै और भूख तृषा ज्वर येभी उपजैं ये सब लक्षणहों तब सूचीमुखकृमिरोगके लक्षण जानिये ॥ १५ ॥

अथ धान्यांकुरकृमिका लक्षण ।

ये च धान्याङ्कुरास्तेषां वक्ष्याम्यथ च लक्षणम् ॥ मलाशयस्थाः क्रिमयो मलं जनयन्ति ते भृशम् ॥ १६ ॥ तैस्तु संपीडयते देहे

कृशत्वविद्रधिभेदपरुषताः ॥ तेन गात्रे रुजत्वश्च हृत्क्लेदो यवक्रिमयो मताः ॥ १७ ॥

धान्यके अंकुरके समान कृमिके लक्षणको कहता— मलाशयमें स्थितहुये ये कृमि मलक खाते हैं ॥ १६ ॥ तिन्होंसे संपीडितहुये देहमें कृशपना, विद्रधि, हडफोड, कठोरपना, शूल ये उपजते हैं ॥ १७ ॥

हारीतका प्रश्न ।

हारीतः संशयापन्नः पादौ संगृह्य पृच्छति ॥ कथं देहे मनुष्यस्य मलमूत्ररसाशये ॥ १८ ॥ संभवन्ति कथं चादौ वर्द्धयन्ति कथं पुनः ॥ कथं च शीर्णेऽन्नरसे नानाहारविभक्षणे ॥ १९ ॥ जायन्ते केन क्रिमयः सूक्ष्मा वाप्यधोगामिनः ॥ नानामपक्वभक्ष्यान्नं दहते वा हुताशनः ॥ २० ॥ कथं ते क्रिमयश्चान्ते न दह्यन्तेंऽन्तराग्निना ॥ एवं पृष्टो महाचार्य्यः प्रोवाच मुनिपुङ्गवः ॥ २१ ॥

संशयको प्राप्तहुआ हारीतमुनि आत्रेयजीके पैरोंको ग्रहणकर पूछता है हे भगवन् ! मनुष्यके मल मूत्र रस इन्होंके स्थानोंसे संयुक्त हुये देहमें कैसे ॥ १८ ॥ आदिमें कृमि उपजते हैं और फिर कैसे बढजाते हैं और अनेक प्रकारके आहारसे उपजेहुये अन्नरसके क्षय होनेपै कृमि कैसे होते हैं ॥ १९ ॥ सूक्ष्म और नीचेको गमनकरनेवाले कृमि कैसे उपजते हैं और अनेक प्रकारके कच्चे और पक्के भोजनकिये अन्न आदिको उदरका अग्नि दग्ध करता है ॥ २० ॥ परंतु वे कृमि समीपमें स्थितहुयेभी तिसी अग्निसे क्यों नहीं दग्ध होते ऐसे पूछेहुये महा आचार्य्य और मुनियोंमें श्रेष्ठ आत्रेयजी कहने लगे ॥ २१ ॥

अथ आत्रेयजीका उत्तर ।

आत्रेय उवाच ॥ शृणु पुत्र महाबाहो क्रिमिसम्भवकारणम् ॥ विरुद्धान्नरसैः पुत्र रक्तं चैवास्य कुप्यति ॥ २२ ॥ कफेनैकदिनं याति शुक्रेण कारणं व्रजेत् ॥ पञ्चभूतात्मके काये ते तु जाताः सचेतनाः ॥२३॥ कोष्ठाग्निना न दह्यन्तेन जीर्य्यन्ते रसानिति ॥ विषे जातो यथा कीटो न विषेण मृतिं व्रजेत् ॥ २४ ॥ तथा हुताशनोद्भूतं न हुताशेन जीर्य्यते ॥ २५ ॥ भेषजं संप्रवक्ष्यामि येन तेऽपि तरन्ति वै ॥ पतन्ति वा शमं यान्ति भेषजानि शृणुष्व मे ॥ २६ ॥

आत्रेयजी कहते हैं–हे पुत्र ! हे महाबाहो ! कृमिकी उत्पत्तिके कारणको सुन हे पुत्र ! विरुद्धअन्न और रसोंकरकै मनुष्यके रक्त कुपित होता है ॥ २२ ॥ कफकरके एक दिनको प्राप्त होते हैं वीर्यसे कारणको प्राप्त होते हैं फिर पृथ्वी जल तेज वायु आकाश इन्होंसे संयुक्तहुये शरीरमें चैतन्यरूप होकै उपजते हैं ॥ २३ ॥ कोष्ठकी अग्निसे नहीं दग्ध होते हैं और रसोंके साथ जीर्ण नहीं होते जैसे विषसे उपजा कीडा विषकरकै मृत्युको प्राप्त नहीं होता ॥ २४ ॥ तैसे अग्नि करकै उपजे कृमि अग्निसे दग्ध नहीं होतेहैं ॥ २५ ॥ अब औषधको मैं कहताहूं जिसकरकै वे कीडे नहीं उंपजते हैं अथवा गिर पडते हैं अथवा शांत होजाते हैं मुझसे सो सुन ॥ २६ ॥

अथ कृमिपातनका औषध ।

वचाजमोदा क्रिमिजित्पलाशबीजं शठी रामठकं त्रिविश्याः ॥
उष्णोदके तत्परिपिष्य पेयं पतन्ति शीघ्रं शतधार्त्तमलम्॥२७॥

वच, अजमोद, वायविडंग, केशूके बीज, कचूर, हींग, ये सब एक एक भाग और सूंठ ३ भाग इन्होंको गर्मपानीसे पीस पीवै यह सौ१०० प्रकारसे कृमियोंको निकासता है ॥ २७॥

अथ कृमिनष्टकरनेके औषध ।

शठीयवानीपिचुमन्दपुत्रान् विडङ्गकृष्णाति विषारसानाम् ॥ संपिष्य मूत्रेण त्रिवृत्प्रयुक्तं विनाशनं सर्वकृमीरुजानाम् ॥ २८ ॥ मरिचं पिप्पलिमूलं विडङ्गशिग्रुजवानिकात्रिवृतः ॥ गोमूत्रेण तु पेष्यं पानं शीघ्रं क्रिमीन् हन्ति ॥ २९ ॥ मुस्ताविशालात्रिफलासुपर्णशिग्रूसुराह्वं सलिलेन कल्कः ॥ पानं सकृष्णाक्रिमिशत्रुचूर्णं विनाशनं सर्वकृमीरुजां च ॥ ३० ॥ सुरसा च सुरदारु मागधी विडङ्गकम्पिल्लविडङ्गदन्तिनी ॥ त्रिवृत्ताडकरसोनकं क्रिमिहृद्रोगहत्सलिलेन सेवितम् ॥ ३१ ॥ मातुलुङ्गस्य मूलानि रसोनः क्रिमिजित्त्रिवृत् ॥ अजमोदानिम्बपत्रं गोमूत्रेण तु पेषयेत् ॥ ३२ ॥ पानमेतत्प्रशंसन्ति क्रिमिदोषनिवारणम् ॥ ज्वरप्रोक्तानि पथ्यानि क्रिमिदोषे प्रदापयेत् ॥ ३३ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने क्रिमिचिकित्सा नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

कचूर, अजवाय, निंबोली, वायविडंग, पीपल, अतीश, शोधापारा, निशोत, इन्होंको गोमूत्रमें पीस सेवनेसे, सबप्रकारके कृमिरोग नष्ट होजाते हैं ॥ २८ ॥ मिर्च, पीपलामूल, वायविडंग, सहींजना, अजमान, निशोत, इन्होंको गोमूत्रमें पीस पीवै यह कृमिरोगको शीघ्र नाशता है ॥ २९ ॥ नागरमोथा, इंद्रायन, हरडैं, बहेडा, आंवला, सांतविण, सहींजना, देवदार इन्होंका कल्क अथवा पीपल, और वायविडंगका चूर्ण खानेसे सबप्रकारके कृमिरोगको नाशता है ॥ ३० ॥ वनतुलसी, देवदार, पीपल, वायविडंग, कपिला ओषध, जमालगोटाकी जड, निशोत, ताड, ल्हस्सन, इन्होंके चूर्णको पानीके साथ सेवै यह कृमिरोगको और हृद्रोगको नाशता है ॥ ३१ ॥ बिजोराकी जड, ल्हस्सन, निशोत, अजमोद, नींबके पत्ते इन्होंको गोमूत्रसे पीसै ॥ ३२ ॥ कृमिदोषको दूर करनेवाले इस पानको वैद्य सराहते हैं ज्वरमें कहेहुये पथ्योंको कृमिदोषमें प्रयुक्त करैं ॥ ३३ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने कृमिचिकित्सानाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ६.

अथ मंदाग्निआदि अग्नियोंके निदान और चिकित्सा।

आत्रेय उवाच ॥ अग्निश्चतुर्विधः प्रोक्तः समो विषमतीक्ष्णकः ॥ मन्दस्तदापरः प्रोक्तः शृणु चिह्नानि साम्प्रतम् ॥ १ ॥ वातपित्तकफसाम्यात्समः संजायतेऽनलः ॥ तैरेवं विषमं प्राप्ते विषमो जायतेऽनलः ॥२॥ तीक्ष्णपित्ताधिकत्वेन जायते जठराग्निकः ॥

आत्रेयजी कहते हैं—सम विषम तीक्ष्ण मंद इन भेदोंसे अग्नि चारप्रकारका कहाहै अब तिन्होंके लक्षणोंको सुन ॥ १ ॥ वात, पित्त, कफ, ये समान होवैं तब सम अग्नि होता है और येही वातआदिक दोष विषम होजावै तब विषम अग्नि होता है ॥ २ ॥ पित्त अधिक होवे तब तीक्ष्ण अग्नि होता है ॥

अथ चारप्रकारके अग्निका लक्षण।

वातश्लेष्माधिकत्वेन जायते मन्दसंज्ञकः ॥ ३ ॥ यद्भुक्तं प्रकृतिस्थं तु पाचयत्यन्नसंचयम् ॥ स समो नाम निर्दोषः सर्वधातुविवर्द्धनः ॥ ४ ॥ किञ्चित्पाचयते भक्ष्यं कदाचिदविपक्वकः ॥ वातेन वा न विषमं करोत्यपि विषूचिकाम् ॥ ५ ॥ प्रकृत्या

चाधिकं स्नाति तृप्तिं न लभतेऽपि च ॥ सदाहपीतता नेत्रे तीक्ष्णो वै क्षयकृद्बले ॥६॥ यद्भोक्तुन्नैव शक्नोति यत्तु श्लेष्मबलाधिकात् ॥ सोऽपि मन्दानलो नाम गुल्मोदरपरो मतः ॥ ७ ॥

बात कफ ये अधिक होजावें तब मंदाग्नि होता है ॥ २ ॥ और जो स्वभावके योग्य अन्नका भोजन कियेहुएको पकादेता है वह सम अग्नि कहाता है, सबदोषोंसे रहित है और सब धातुओंको बढ़ाता है ॥ ४ ॥ विषमअग्नि भोजन कियेहुएको कछुक पकाता है और कभी नहीं पकाता है और वातसे विषमहुआ अग्नि विषूचिका अर्थात् हैजाविशेषको करता है ॥ ५ ॥ अपनी प्रकृतिसे अधिक भोजन करै तबभी तृप्ति नहीं होवै और सदा पीले नेत्ररहैं दाहहो बलका नाशहो वह तीक्ष्ण अग्नि कहाता है ॥ ६ ॥ कफके अधिक बल होनेसे जो भोजन करनेको समर्थ न रहे वह मंदाग्नि कहाता है और गुल्मोदररोगको करता है ॥ ७ ॥

अथ चारप्रकारके अग्निका परिणामविशेष।

समेन समता देहे देहधातुबलेन्द्रियैः ॥ हृष्टः संपूर्णगात्रस्तु सचेष्टो वर्त्तते नरः ॥ ८ ॥ विषमे वानिलाद्याश्च ग्रहणी चातिसारकाः ॥ प्लीहा गुल्मो विषूची च शूलोदावर्त्तसंज्ञकः ॥ ९ ॥ आनाहो मन्दचेष्टत्वं जायते विषमाग्निना ॥ वातकफावुभौ क्षीणौ तीव्रो भवति पित्तकः ॥ १० ॥ भोजने लभते प्रीतिं भुक्त्वा चैव च जीर्य्यते ॥ तेन भस्मकसंज्ञस्तु जायते जठरानलः ॥ ११ ॥ पाण्डुः पित्तातिसारस्तु राजयक्ष्मा हलीमकः ॥ भ्रमः क्लमोऽतिवैकल्यं यकृद्वापि प्रमेहकाः ॥ १२ ॥ शूलमूर्च्छा रक्तपित्तं पित्ताम्लं मूत्रकृच्छ्रकम् ॥ तेन संक्षीयते गात्रं जायतेऽन्नस्य लौल्यता ॥ १३ ॥ भक्षिताः काष्ठपाषाणाः जीर्य्यन्ते तस्य देहिनः ॥ इति प्रोक्तं निदानं च नरस्याग्निप्रकोपनम् ॥ १४ ॥ बहुधापि न वोक्तं तु ग्रन्थविस्तारशङ्कया ॥ १५ ॥

समान अग्नि होवे तब शरीरमें धातु बल इंद्रिय इन्होंकी समानता रहै और सदा प्रसन्न रहै और शरीर हृष्टपुष्टहो ऐसा मनुष्य श्रेष्ठ होता है अथवा सचेष्टा चेष्टा युक्त होता है ॥ ॥ ८ ॥ विषमअग्नि होवे तो वातआदिकरोग और ग्रहणीरोग, अतीसार, प्लीहा, गुल्मरोग, विषूचिका, शूल, उदावर्त ॥ ९ ॥ अफारा, ये रोग होते हैं और मन्द चेष्टा रहती है, और वात कफ ये दोनों क्षीणहों पित्त तीक्ष्णहो ॥ १० ॥ और भोजनमें प्रीति रहै भोजन

किया हुआ जरजावे वह भस्माग्नि अर्थात् भस्मक रोग कहाता है ॥ ११ ॥ तिस भस्मक-रोगसे, पांडुरोग, पित्तका अतिसार, राजयक्ष्मा, हलीमक, भ्रम, ग्लानि, अतिविकलपना, यकृतरोग, प्रमेह ॥ १२ ॥ शूल, मूर्च्छा, रक्तपित्त, अम्लपित्त, मूत्रकृच्छ्र ये उपद्रव हो जाते हैं और शरीर क्षीण हो जावे अन्नमें अत्यंत इच्छा रहै ॥ १३ ॥ और तिस भस्मरोगवाले मनुष्यके भक्षण कियेहुये काष्ठ, पत्थरभी जर जाते हैं इसप्रकार मनुष्यके अग्निकोप होनेके लक्षण कहे हैं ॥ १४ ॥ ग्रन्थके विस्तार होनेकी शंकासे यहां बहुतसा विस्तार नहीं कहा है ॥ १५ ॥

अथ जठराग्निकी चिकित्सा।

अतो वक्ष्ये समासेन भेषजानि पृथक्पृथक् ॥
पाचनं शमनं चैव दीपनञ्च तथोपरि ॥ १६ ॥

अब विस्तारसे जुदी २ औषधोंको कहते हैं पाचन, अर्थात् पकानेवाली शमन दीपन अर्थात् अग्निको दीप्त करनेवाली ऐसी औषधोंको कहते हैं ॥ १६ ॥

अथ विषमाग्निकी चिकित्सा।

रास्ना शठी प्रतिविषा सुरसा च शुण्ठी सिन्धूत्थहिङ्गु मगधा च सुवर्चलं च ॥ चूर्णं कृतं सगुडमोदकभक्ष्यमाणं वातात्मकन्तु विषमाग्निं समीकरोति ॥१७॥ शूलानजीर्णविषमाग्निविषूचिकासु वाताद्यदयः सकलगुल्मविनाशनं स्यात् ॥ भुक्तोपरि क्वथितमेव पिवेत्सुखोष्णं श्रेष्ठं तथोपरि समस्तरसानुभोज्यम् ॥ १८ ॥

रास्ना, कचूर, कालाअतीश, सौंफ, सूंठ, सेंधानमक कालानमक, हींग, पीपल इन्हों-का चूर्ण बना तिसमें गुड मिला गोली बना खानेसे वातसे उपजा हुआ विषमाग्निरोग दूर होता है ॥ १७ ॥ और शूल, अजीर्ण, विषमाग्नि, विषूचिका, इन रोगोंको तथा वातसे उपजे हुए रोगोंको और गुल्म रोगको नाशती है और इसके खानेके ऊपर औटाया हुआ सुखसे सुहाता हुआ गरम गरम जलको पीवै औरइसके ऊपर सब प्रकारके रस खाने श्रेष्ठ हैं ॥१८॥

अथ तीक्ष्णाग्निकी चिकित्सा।

द्राक्षाभया तिक्तकरोहिणी च विदारिका चन्दनवासकं च ॥ मुस्ता पटोलं च किरातकानां कृष्णा वला च विकचाविषाणा ॥ १९ ॥ पलालवङ्गालसपद्मकं च योज्या च भृंगी धनिका समांशा ॥ चूर्णं सखर्जूरसितासमेतं घृतेन तद्वार्द्धबल-

प्रमाणम् ॥ २० ॥ भक्षेत्प्रभाते पयसा मनुष्यो निष्काथ्य पानं सघृतं विधेयम् ॥ करोति तीव्राग्निसमं प्रकृष्टं कृशस्यपुष्टिं तनुतेऽपे नूनम् ॥ २१ ॥ क्लमभ्रमशोषविनाशनं स्यात्तृष्णातिलौल्यशमनं करोति ॥ सरक्तपित्तं क्षयपाण्डुरोगं हलीमकं कामलमाशु नश्येत् ॥ २२ ॥

दाख, हरडैं, कुटकी, विदारीकंद, चन्दन, वासा, नागरमोथा, परवल, चिरायता पीपल, खैरंहटी, गोरखमुंडी, अतीश ॥ १९ ॥ वालछड, लौंग, पद्माक, भंगरा, धनियाँ, खजूरिया इन्होंको समान भागसे चूर्ण बना तिसमें मिश्री मिला पीछे घृतके संग इस चूर्णको आधी मात्रा प्रमाण ॥ २० ॥ प्रातःकालमें खावे और इसके ऊपर औटाया हुआ दूधको घृतके संग पीवे. यह तीक्ष्ण अग्निको समान करता है और कृश शरीरको अत्यंत पुष्ट करता है ॥ २१ ॥ और ग्लानि भ्रम शोष इन्होंको दूर करता है और अत्यंत दाहको शांत करता है रक्तपित्त, क्षयरोग, पांडुरोग, हलीमक, कामला इन्होंको शीघ्रही नाशता है ॥ २२ ॥

तण्डुलारक्तशालीनां भागद्वयेन धीमताम् ॥ भृष्ट्वा तिलांश्च संकुट्य तदर्द्धेन विमिश्रितान् ॥२३ ॥ भृष्ट्वा तत्समसुद्गांश्च चैकीकृत्य तु साधयेत् ॥ सिद्धां च कृशरां सम्यग्घृतेन सह भोजयेत् ॥२४॥ एकाहान्तरितो यस्तु तीव्राग्निस्तस्य नश्यति ॥ २५ ॥

लाल चावल २ भाग, भूनेहुये तिल १ भाग इन्होंको कुटि फिर इनके बरावर भूनेहुए मूँग मिला ॥ २३ ॥ इन्होंको पकाके खिचडी बनावे पीछे तिसको घृतके संग भोजन करे ॥ ॥ २४ ॥ इसको एकदिन खावै और एकदिन नहीं खावे इस क्रमसे खानेसे तीक्ष्ण अग्नि शांत होती है ॥ २५ ॥

अथ हरीतक्यादिवटी।

हरितकी हरिहरतुल्यषड्गुणा चतुर्गुणा चतुर्विशालपिप्पली ॥ हुताशनं हिङ्गुसैन्धवसंयुतं रसायनं कुरुनृपवह्निदीपनम् ॥ २६ ॥

हरडैं ६ भाग, चारभाग पीपल, चारभाग गजपीपल, चीता, हींग, सेंधानमक इन्होंको एक जगह पानीमें खरलकर गोली बांधलेवे यह अग्निको दीप्त करनेमें रसायन कहाता है ॥२६॥

अथ यवानीखांडवचूर्ण।

दीप्यकाग्निर्हरीतकी विडङ्गो भागवृद्धि विनियोज्य चूर्णितम् ॥ अत्यम्लवेतश्च तथा च कोलं दाडिमं तथा च तिन्तिडीकम् ॥

॥ २७ ॥ समानि चेमानि च कर्षमात्रं कर्षाद्विभागेष्वितरे बलानि ॥ जाजी वराङ्गं च सुवर्चलं च कणाशतैकं मरिचं तदर्द्धं ॥ ॥ २८ ॥ पलानि चत्वार्य्यपि शर्करायाः समं विचूर्ण्याथोदरान् प्रमार्ष्टि ॥ भक्षेद्यदेदं रुचिकृद्विबन्धं सप्लीहशूलं जयते सकासम् ॥ २९ ॥ श्वासं विनश्येद्धृदयामयघ्नं जिह्वाकण्ठामयशोधनं भवेत् ॥ ग्राहग्रहण्यार्शविकारमन्दानलस्य सन्दीपनमेव चूर्णम् ॥ ३० ॥ यवानिकाखंडविकाभिधानमरोचकानां शमनं प्रशस्तम् ॥ ३१ ॥

अजवायन १ भाग, चीता २ भाग हरडैं ३ भाग, ऐसे इन्होंको यथोत्तर वृद्धि भाग लेके चूर्ण बनावे और अम्लवेत, बेर, अनारदाना, अमली, ॥ २७ ॥ इन सब औषधोंको समान भाग एक एक तोला प्रमाण लेवे और जीरा, दालचीनी, कालानमक, ये सब दो तोला प्रमाण लेवें और पीपल १०० सौ काली मिर्च ५० ले ॥ २८ ॥ मिश्री १६ तोले ऐसे इन सब औषधोंको ले एक जगह चूर्ण बनावे इस चूर्णके खानेसे उदररोगोंका नाश होता है और यह रुचिको करनेवाला है मलका बंधा, तिल्ली, शूल, खांसी ॥ २९ ॥ श्वासरोग, हृदयरोग, जिह्वारोग, कंठरोग इन्होंको दूर करता है और संग्रहणी, बवासीर इन्होंको दूर करता है मंदाग्निको दीप्त करता है ॥ ३० ॥ यह यवानीखांडवनामवाला चूर्ण अरोचकरोगको दूर करनेमें श्रेष्ठ कहा है ॥ ३१ ॥

अथ अरोचक चिकित्सा ।

यवागूः पञ्चकोलस्य कुलत्थाढक्ययूषकम् ॥ मुद्गयूषेण वा सम्यग्भक्तानां भोजनं हितम् ॥ ३२ ॥ सहिङ्गु त्र्यूषणाढ्यं च व्यञ्जनं संप्रशस्यते ॥ अगस्तिघृतवच्छ्रेष्ठं भोजनारोचकेष्वपि ॥ ३३ ॥ कारवेल्लं पटोलश्च पलाण्डुः सूरणं शठी ॥ लवणं धान्यकं श्रेष्ठं प्रलेहश्च कटुत्रिकम् ॥ ३४॥ शठी सर्षपवास्तुकं शतपुष्पा काञ्चनमाचिका ॥ तुण्डीरकस्य मूलानां शाकं श्रेष्ठं प्रशस्यते ॥ ॥ ३५ ॥ गोधूमपोलिकाः श्रेष्ठा भृष्टाङ्गारैररोचके ॥ जाङ्गलानि च मांसानि भोजयेद्भिषगुत्तमः ॥ ३६ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने मन्दाग्निचिकित्सा नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

पंचकोल अर्थात् पीपली, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ इन्होंकी यवागूको तथा कुलथी अरहरकी दाल इन्होंके यूषको भोजन करे, अथवा मूंगोंके यूषकेसंग चावलोंका भोजन करना हित है ॥ ३२ ॥ हींग, सोंठ, मिर्च, पीपल इन्होंसे संयुक्त कियाहुआ शाक भोजनकी अरुचिमें अगस्तिसंज्ञक घृतकी तरह श्रेष्ठ कहा है ॥ ३३ ॥ और करेला परवल, प्याज, जमीकंद, कचूर, इन्होंका शाक श्रेष्ठ है और नमक धनियां सूंठ, मिर्च, पीपल, इन्होंकी चटनी श्रेष्ठ है ॥ ३४ ॥ और कचूर, सिरसम, वथुवा, सौंफ, मकोह, मीठीतोरी मूली, इन्होंका शाक अरोचक रोगमें श्रेष्ठ कहा है ॥ ३५ ॥ और अंगारोपै सेकीहुई गेहूंकी रोटी जांगलदेशके जीवोंका मांस इन्होंको वैद्यजन अरोचकरोगवालेको भोजन करवावै ॥ ३६ ॥ इति बेरीनिवासीबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने-मंदाग्निचिकित्सानाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ७.

अथ शूलनिदान।

आत्रेय उवाच॥ व्यायामपाननिशिजागरणव्यवायशोकातिभारगतिधावनकश्रमेण ॥ वैषम्यपानशयनेन च भोजनेन शीतेन वायुः कुपितः प्रकरोति वलम् ॥ १ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—कसरत, पान, रात्रिमें जागना, मैथुन, करना, शोक, अतिबोझ उठाना, गमन, करना, भागना इन्होंके श्रमसे और विषमपान, विपरीतशयन, विपरीत भोजन शीतल, वस्तुका सेवन इन्होंसे कुपितहुआ वायु शूलको करता है ॥ १ ॥

अथ वातशूलकी उत्पत्ति।

विष्टम्भिरूक्षयवमाषकलायमुद्गनिष्पावकास्त्रिपुटकोद्रवका मसूरः॥ गोधूमक्षुद्रकफरूक्षविभोजनेन चैतच्च पानमलरोधनमूत्ररोधैः २॥ वायुस्त्वधोगतपथं प्रविरुद्ध्य मूलं वातात्मको भवति चान्तरवह्निमांश्च ॥ तस्मादिति प्रबलताकुपितः प्रकोष्ठे शूलं करोति गुदमार्गनिरोधितेऽपि ॥ ३ ॥ गात्रेऽपि तोदविरतिर्मलिनातिदीना वातार्त्तिपीडितनरस्य महामते स्यात् ॥ ४ ॥

और विष्टंभी अर्थात् मलको बंद करनेवाला, सूखा भोजन, जव, उडद, मोठ, मूंग, मटर, कोदूधान्य, चौला, मसूर, गेहूं, कफको पैदा करनेवाला अन्न ऐसे भोजनोंसे और

जलपान, मल, मूत्र, इन्होंके रोकनेसे ॥ २ ॥ वायु अधोमार्गके मूलमार्गको रोक देता है यह वातसे उत्पन्नहुआ शूल कहाता है और उदरके भीतर अग्नि दाह करदेता है कोष्ठस्थानमें प्रबलहोके कुपितहुआ, शूलको उपजाता है और गुदाके मार्गको रोक देता है ॥ ३ ॥ और शरीरमें चमका, ग्लानि, मलीनता, दीनपना ये उपद्रव वातसे पीडितहुए मनुष्यके उत्पन्न होते हैं ॥ ४ ॥

अथ पित्तशूलनिदान ।

क्रोधातपादनलसेवनहेतुना च शोकाद्भयार्त्तिगतिधावनधर्मयोगात् ॥ क्षाराम्लमद्यकटुकोष्णविदाहिरूक्षसौवीरशुष्कपललेखनराजिकाभिः ॥ ५ ॥ संकुप्यतेऽनिलसमीरितं तत्तु पित्तं शूलं करोति जठरे मनुजस्य तीव्रम् ॥ तेनाङ्गदाहारतिघर्मतृषार्तिमूर्च्छा नाभ्यन्तरे दहति दोषः सपीततास्ये ॥ ६ ॥

क्रोधसे, घाम और अग्निके सेवनेसे शोक, भय, पीडा, गमनकरना, भाजना, पसीना, इन्होंके योगसे, खारा, खट्टा, मदिरा, चर्चरा, कछुकगरम, विदाही, रूषा, पदार्थ, कांजी; सूखा पदार्थ, मांस, लेखन पदार्थ, राई ॥ ५ ॥ इन्होंके खानेसे वायु कुपितहोके पित्तको कुपित करता है फिर वह पित्त मनुष्यके उदरमें दारुणशूल उत्पन्न करता है तिस्से अंगमें दाह ग्लानि, पसीना, तृषा, मूर्च्छा ये उपद्रव होते हैं और नाभिके समीपमें दाहहो शोषहो और मुख पीला रहे ॥ ६ ॥

अथ कफशूलकी उत्पत्ति ।

अव्यायामेऽस्निग्धसंसेवनेन लौल्याहारे चेक्षुतैलपयोभिः ॥ अल्पाहारे निद्रया सेवनैस्तु योगैरेतैः कोपयेच्छ्लेष्मकस्तु ॥ ७ ॥ माषातिशीतलपयोदधिभिःसुशीतैर्मत्स्यैस्त्वनूपपललैरतिसेवितैस्तु ॥ श्लेष्मा भृशं शमयतेऽनलमाशु शूलं कोष्ठे करोति मनुजस्य विकारमुग्रम् ॥ ८ ॥ हृल्लासकासवमिजाड्यशिरोगुरुत्वं स्तैमित्य शीतलतनूरुचिबन्धनं च ॥ भुक्तप्रसेकमधुरास्यं तथाभिरामं स्निग्धं मुखं भवति यस्य कफात्मकोऽसौ ॥ ९ ॥ श्लेष्मा भवत्येव भवन्ति यस्य चिह्नानि स भवति च सशूलः ॥ सपैत्ति कानीव भवन्ति यस्य तमाहुरजीर्णेऽपि नराः सशूलम् १०

कसरत नहीं करना, चिकना नहीं खाना, पिच्छल भोजन करना, ईखका रस, तेल, दूध, इन्होंका भोजन करना, अल्प भोजन करना, निद्राका सेवन करना, इन योगों: करके कफ कुपित होता है ॥ ७ ॥ और उडद अत्यंत शीतल पदार्थ, शीतल: दूध, दही, मच्छी और अनूपदेशके जीवोंका मांस इन्होंके सेवन करनेसे कफ हो जठराग्निको शांत करदेता है और शीघ्रही शूलको उत्पन्न करदेता है मनुष्यके कोष्ठस्थानमें अतिउग्र विकार करता है ॥ ८ ॥ और हृल्लास अर्थात् थुकथुकी, खांसी, वमन, जडता, शिरभारी, गीलापन, शीतलशरीर होना, रुचिबंधहोनी, भोजन करेपीछे थूकआना, मीठामुख रहै, आलस्य रहे, चिकना मुख रहै, जिसके ये उपद्रवहों वह कफसे उपजा शूल जानना ॥ ९ ॥ जिसके ये लक्षणहों वह कफका शूल होता है और जिसके पित्तके लक्षण मिलतेहो उसको वैद्यजन अजीर्णसे उपजा हुआभी शूल कहते हैं ॥ १० ॥

अथ द्विदोषजशूलकी उत्पत्ति।

हृत्कण्ठपार्श्वे कफः पैत्तिकस्तु हृन्नाभिमध्ये कफपित्तशूलः ॥
बस्तौ च नाभौ दधतःप्रदेशे विलोलमानः स तु वातपित्तात् ११

कफसे उपजा शूल, हृदय, कंठ, पसली, इन्होंमें पीडा करता है और पित्तसे उपजा शूल, हृदा नाभि इन्होंमें पीडा करता है और कफपित्तसे उपजा शूल बस्तिस्थान, नाभि इन्होंमें पीडा करता है और जो सब शरीरमें पीडाहो वह वातपित्तसे उपजा शूल जानना ॥ ११ ॥

अथ दशप्रकारके शूल।

अथ शूलोंकी साध्यासाध्य परीक्षा।

एकोऽपि सुखसाध्योऽसौ द्वन्द्वः कष्टेन सिध्यति ॥
त्रिदोषजस्त्वसाध्यस्तु बहूपद्रवसंयुतः ॥ १२ ॥

एक दोषसे उत्पन्न हुआ शूल सुखसाध्य होता है, दो दोषोंसे उपजाहुआ शूल कष्टसाध्य कहाता है, त्रिदोषसे उपजाशूल असाध्य कहाता है और बहुतसे उपद्रवोंसे संयुक्त होता है १२

अथ शूलोंकी संख्या और पृथक्करण।

निदानैः कुपितो वायुर्वर्त्तते जठरान्तरे ॥ तेनेति संज्ञा दश स्युः शूलस्य परिगीयते ॥ १३ ॥ त्रयो वातादिका ज्ञेया द्वन्द्वजास्तु पुनस्त्रयः ॥ सामनिरामकौ द्वौ च शूलाश्चाष्टाविमे स्मृताः ॥ १४ ॥ अजीर्णान्नवमः प्रोक्तो दशमः परिणामजः ॥ एवं दशप्रकारेण शूलं संभवते नृणाम् ॥ १५ ॥ भुक्तोपरि भवेद्यस्तु सोऽपि ज्ञेयः कफात्मकः ॥ जीर्णेऽन्ने च भवेद्यस्तु स ज्ञेयः परिणामजः ॥ १६ ॥

कारणोंसे कुपितहुआ वायु उदरके भीतर वर्त्तता है फिर तिसके किये हुये दश प्रकारके शूल उत्पन्न होजाते हैं ॥ १३ ॥ तीन शूल वात आदिक दोषोंके और दो २ दोषोंसे मिले हुए शूल और १ साम अर्थात् आमसहित शूल, और १ निरामशूल ऐसे आठ प्रकारके तो ये हैं ॥ १४ ॥ और नवमा ९ अजीर्णसे उपजाशूल और १० मा परिणामजशूल ऐसे मनुष्योंके दश प्रकारके शूल कहे हैं ॥ १५ ॥ जो भोजन करनेसे पीछे शूल होता है वह कफका शूल कहाता है और भोजन कियाहुआ अन्न जरजावे तब शूल उपजै वह परिणाम शूल कहाता है ॥ १६ ॥

अथ वातशूलका लक्षण ।

आध्मानमूर्ध्वं च विबन्धनं च जृम्भा तथा वेपथुमार्जनं च ॥
उद्गीरणं स्निग्धमुखातिजिह्वा वातेन शूलं भजते विधिज्ञः ॥ १७ ॥

ऊपरले अंगोंमें अफाराहो, और मलका बंधाहो जंभाई आवे अत्यंत कांपै वमन आवे, मुख और जिह्वा चिकनीहो, ये लक्षण वातकी शूलके हैं ॥ १७ ॥

अथ पित्तशूलका लक्षण ।

दाहो रतिर्मोहस्तथैव तृष्णा कृच्छ्रेण मूत्रं कटुकास्यता च ॥
स्वेदाति शोषो वदनं च पीतं पित्तात्मकोऽसौ प्रवदन्ति धीराः १८

और दाह हो, ग्लानिहो, मोहहो, तृषाहो, कष्टसे मूत्र उतरै, मुख कडुआ रहै, पसीना आवै, अत्यंत शोषहो, मुख पीला रहै ये लक्षणहों उसको वैद्यजन पित्तका शूल कहते हैं ॥ १८ ॥

अथ कफशूलका लक्षण ।

छर्दिस्तथा कासबलासमोह आलस्यतन्द्रा जडतातिशैत्यम् ॥

छर्दिहो, खांसी, कफ, मोह, आलस्य, तंद्रा, जडपना, अत्यंत शीतलता, ये हैं इसको कफसे उपजा शूल कहते हैं ॥

अथ द्वन्द्वजशूलका लक्षण ।

कफात्मकं तद्भिषजां वरिष्ठ शूलं भवेद्वन्द्वजरोगसंज्ञम् ॥ १९ ॥
त्रिभिस्तु दोषैस्तु त्रिदोषजः स्याद्रक्तेन चैकादश एवमुक्तः ॥
पित्तात्मकानि प्रभवन्ति यस्य चिह्नानि यस्यासृगछर्दनं च॥२०॥
शोषस्तृषा दाहस्तथैव कासः श्वासेन रक्तप्रभवोऽतिशूलः॥२१॥
विना वातेन नो शूलं विना पित्तेन नो भ्रमः ॥ न कफेन विना छर्दिर्न रक्तेन विना तमः ॥ २२ ॥

और जो दो दोषोंसे उपजाहो वह द्वंद्वजशूल कहाता है ॥ १९ ॥ तीन दोषोंसे उपजा हुआ त्रिदोषजशूल कहाता है और रक्तसे उत्पन्नहुआ ग्यारहवां शूल होता है, जिसके पित्तके लक्षणहों और रुधिरकी छर्दि करै ॥ २० ॥ शोषहो, तृषाहो, दाहहो, खांसीहो श्वासहो, वह रक्तसे उपजाहुआ शूल कहाता है ॥ २१ ॥ वातके विना शूल नहीं होता है और पित्तके विना भ्रम नहीं होता है, कफके विना छर्दि नहीं होती है और रक्तके विना अंधेरी नहीं होती है ॥ २२ ॥

अथ सब प्रकारके शूलोंकी चिकित्सा।

इति शूलपरिज्ञानमतो वक्ष्यामि भेषजम् ॥ येन शूलार्त्तिशमनं शूली संपद्यते सुखम् ॥ २३ ॥ दृष्ट्वा शूलं लङ्घनं पाचनं च विरेचनं वान्तिसंस्वेदनं वा ॥ क्षारं चूर्णं चार्पयेच्छूलशान्त्यै पानाभ्यङ्गान्कासमाने मनुष्ये ॥ २४ ॥

इसप्रकार शूलका निदान तो कहदिया है अब इन्होंकी औषधोंको कहैंगे जिससे शूलकी पीडा शांत होती है और शूलरोगवाला पुरुष सुखी होता है ॥ २३ ॥ वैद्यजन शूलको देखि लंघन, पाचन, विरेचन, वमन, संस्वेदन इन कर्मोंको करवावै और शूलकी शांतिके वास्ते क्षारचूर्णको देवै और जो मनुष्यके खांसीसहित शूलहोवे तो पान, अभ्यंग अर्थात् मालिस, इन्होंको करवावै ॥ २४ ॥

अथ शूल तथा गुल्मपर हिंग्वादि क्वाथ।

हिङ्गु नागरशठीसुवर्चलं दारुपौष्करघनापुनर्नवाः ॥ क्वाथपानमिति शूलिनां हितं पाचनं जठरगुल्मिनामपि ॥ २५ ॥

और हींग, सूंठ, कचूर, कालानमक, देवदार, पोहकरमूल, नागरमोथा, सांठी, इन्होंका क्वाथ बनाके पानः कराना शूलरोगवालोंको हित है और उदरगुल्मरोगवालोंको यह क्वाथ पाचन है ॥ २५ ॥

अथ वातशूलपर हिंग्वादिक्वाथ।

हिङ्गु पौष्करशठीसुवर्चलं क्वाथमेवमपि शूलिनां हितम् ॥ वातशूलशमनाय शस्यते पाचनं निगदितं च वर्त्तते ॥ २६ ॥

हींग, पोहकरमूल, कचूर, कालानमक, इन्होंका क्वाथभी शूलरोगवालोंको हित है यह क्वाथ वातशूलको शांत करनेकेवास्ते श्रेष्ठ कहा है और यही क्वाथ पाचनभी कहा है ॥ २६ ॥

अथ सैंधवादिचूर्ण ।

सिन्धूत्थहिङ्गु रुचकं च शठी यवानी पथ्यायवक्षारसमं विचूर्णम् ॥ देयं सुखोष्णेन निहन्ति शूलं वातात्मकं वाप्यचिरेण शूलम् ॥ २७ ॥

और सेंधानमक, हींग, कालानमक, कचूर, अजवायन, हरडैं, जवाखार, इन्होंको समान भागले चूर्णबना सुखसे सुहाते हुवे गरम २ जलके संग देनेसे वातसे उपजाहुआ शूल शीघ्रही नष्ट होजाता है ॥ २७ ॥

अथ हिंग्वादिचूर्ण ।

हिङ्गु सौवर्चलं पथ्या यवानी सपुनर्नवा ॥ वालैरण्डो बृहत्यौ द्वे तुवरं त्र्यूषणान्वितम् ॥ २८ ॥ क्षारसौवर्चलोपेतं क्काथो वा चूर्णितस्तथा॥सद्यो वातात्मकं शूलं हन्ति सद्यो विषूचिकाम्॥२९॥

हींग, कालानमक, हरडैं, अजवायन, सांठी, नेत्रवाला अरंड, दोनों कटेहली, सफेद शिरस, सूंठ, मिर्च, पीपल, ॥ २८ ॥ जवाखार, कालानमक इन्होंका क्काथ अथवा चूर्ण वातसे उपजे शूलको और विषूचिकाको शीघ्रही नाश देता है ॥ २९ ॥

अथ तुंबुरुआदि चूर्ण ।

तुम्बुरुपौष्करहिङ्गु यवानी त्र्यूषश्च वा त्रिबृहतीगुणेन ॥
युक्तमिदं लवणाष्टकचूर्णं भवति शूलनिवारणक्षमम् ॥ ३० ॥

और धनियां, पोहकरमूल, हींग. अजवायन, सूंठ, मिर्च, पीपल, तीनोंप्रकारकी कटेहली, नमक, इनसबोंको युक्तकर चूर्ण बनावे यह लवणाष्टकचूर्ण कहाता है, शूलको शीघ्रही निवारण करदेता है ॥ ३० ॥

अथ एरंडादिक्काथ ।

क्काथो निहन्ति मरुतोद्भवशूलसंघानेरण्डनागरसुवर्चलरामठेन ॥ पथ्यावचेन्द्रयवनागरतोययुक्तं हिङ्गु सुवर्चलयुतं च निहन्ति शूलम् ॥ ३१ ॥

अरंड, सूंठ, कालानमक, हींग, अथवा हरडैं, वच, इंद्रजव, सूंठ, हींग, कालानमक इन्होंका क्काथ बना देनेसे वातसे उपजेशूलोंके समूहोंका नाश होता है ॥ ३१ ॥

अथ बृहद्धिंगुचूर्ण ।

हिङ्गु नागरषड्ग्रन्था यवानी अभया त्रिवृत् ॥ विडङ्गं दारु चव्यञ्च तुम्बुरुकुष्ठमुस्तकाः ॥ ३२ ॥ हपुषा कलशी रास्ना वत्स-

का सदुरालभा ॥ सितारवी बृहत्यौ च लांगली पञ्चजीरकम् ॥ ३३ ॥ पुष्करं तिन्तिडीकं च वृक्षाम्लं चाम्लवेतसम् ॥ द्वौ क्षारौ पञ्चलवणं समं चैकत्र मिश्रयेत् ॥ ३४ ॥ मूत्रेण भावनाश्चैकां दत्वा छायाविशोषिताम् ॥ बीजपूरक तोयेन भावयेच्च दिनत्रयम् ॥ ३५ ॥ विडालपदिकां मात्रां युञ्जीत शूलशान्तये ॥ वातेनोष्णोदकेनापि सितशर्करयान्वितः ॥ ३६ ॥ त्रिफला क्काथो मद्येन श्लेष्मरोगे प्रशस्यते ॥ शूलानाहविबन्धानां मन्दाग्नौ गुल्मविद्रधीन् ॥ ३७ ॥ प्लीहोदराणाञ्च पाण्डुज्वरिणां च विशेषतः ॥ निहन्ति देहसङ्घातं मेघवृन्दं मरुद्यथा ॥ ३८ ॥

हींग, सूंठ, वच, अजवायन, हरड़ैं, निशोत, वायविडंग, देवदार, चव्य, धनियां, कूट, नागरमोथा ॥ ३२ ॥ हाउबेर, पिठवण, रास्ना, कूडा, जवासा सफेदगोकर्णी, दोनोंकटेहली, कलहारी, पांचोंजीरे ॥ ३३ ॥ पोहकरमूल, विजौरा, अम्लवेत, जवाखार, सज्जीखार, पांचोंनमक इनसबोंको समानभाग ले एक जगह चूर्ण बना ॥ ३४ ॥ गोमूत्रमें भावनादे छायामें सुखालेवे पीछे विजौराके रसमें तीन दिनतक भावना देवै ॥ ३५ ॥ पीछे एक तोला प्रमाण इस चूर्णको देनेसे शूलरोग शांत होता है वातसे उपजे शूलमें गरमजलके संग देवै ॥३६॥ और कफसे उपजे शूलमें सफेद खांडमें अथवा त्रिफलाके क्वाथके संग अथवा मदिराके संग देना हित है और शूल, अफारा, मलका बंधा, मंदाग्नि, गुल्मरोग, विद्रधि ॥ ३७॥ तिल्ली, उदररोग, पांडुरोग, ज्वर, देहकामुटाया इनसब रोगोंको यह चूर्ण नाशता है जैसे मेघोंके समूहको वायु तैसे ॥ ३८ ॥

अथ पित्तशूलचिकित्सा ।

धात्रीफलं लोहरजश्च पथ्या त्र्यूषं समांशेन विभाव्य तं तु ॥
रसेन वा दाडिममातुलुङ्गयाश्चूर्णं सिताढ्यं च सपित्तशूले ॥३९॥

धात्रीफलादि-चूर्ण आंवला, लोहका चूर्ण, हरड़ैं, व्योष, सूंठ, मिर्च, पीपली इन सबोंको समानभागले अनारके रसमें अथवा विजौराके रसमें भावना देवै पीछेइसचूर्णमें मिसरी मिलादेनेसे पित्तशूल शांत होताहै ॥ ३९ ॥

अथ दाडिमादिचूर्ण ।

विडालकं दाडिमपूतनां च धात्रीसमेतं विदधीत चूर्णम् ॥
तन्मातुलुङ्गस्य रसेन भावितं सपित्तशूलशमनाय भक्षेत् ॥४०॥

अनारदाना, हरडै, आंवला, इनसबोंका एक २ तोला प्रमाणले चूर्ण बना फिर बिजौराके रसमें भावना देवै यह चूर्ण पित्तशूलको शांत करता है ॥ ४० ॥

अथ जीवंत्यादि घृत।

जीवन्त्याद्यं घृतं पाने क्षीरं वापि सितान्वितम् ॥
कर्त्तव्यं रेचनं नित्यं पित्तशूलनिवारणम् ॥ ४१ ॥

जीवंतीआदि औषधगणमें सिद्धकियाहुआ घृत अथवा मिश्रीसे युक्त दुध इन्होंका पान करके जुलाब लेनेसे निश्चय पित्तशूलका निवारण होता है ॥ ४१ ॥

अथ पित्तशूलका दूसरा उपचार।

शिशिरसरसतोयागाहनं चन्दनानि विशदपुटितमध्ये स्वापनं वै निशासु ॥ कनकरजतकांस्याम्भोजहैमं तुषारं कृतमिति विधिना वै पैत्तिके शूलहेतोः ॥ ४२ ॥

और सरोवरके ठंढाजलसे स्नान करना, चंदन लगाना, उत्तम चौगरदे घेरवाले मकानमें रात्रिमें शयन करना, और सुवर्ण, चांदी, कांशी, कमल, इन्होंकी ठंढकसे शीतलता करनी ये विधि पित्तशूलमें करनी चाहिये ॥ ४२ ॥

अथ पित्तशूलमें भोजन।

सितशाल्योद्भवा लाजाः सितामधुयुतं पयः ॥ दाहं पित्तज्वरं छर्दिं सद्यः शूलं निहन्ति च ॥ ४३ ॥ जाङ्गलानि च मांसानि भोजनार्थे प्रशस्यते ॥ घृतं क्षीरं समधुरं प्रशस्तं पित्तशूलिनाम् ४४

सपेद सांठी चावलोंकी खील, मिश्री, शहद इन्होंसे युक्त दूध ये दाहको और पित्तज्वरको छर्दिको और पित्तशूलको नाशती हैं ॥ ४३ ॥ और जांगलदेशके जीवोंका मांस भोजनके वास्ते श्रेष्ठ कहा है और घृत, दूध, शहद ये पित्तशूलवालोंको हित हैं ॥ ४४ ॥

अथ कफशूलचिकित्सा।

लङ्घनं वमनं चैव पाचनं श्लेष्मशूलिनाम् ॥
न घनातिमधुराणि शयनं च विधेयकम् ॥ ४५ ॥

कफशूलवालोंको लंघन कराना, वमन कराना,पाचन औषध देना हित है, और करडापदार्थ, अत्यंतमीठा पदार्थ नहीं देवै और शयन नहीं करावे ॥ ४५ ॥

अथ बिल्वादिक्काथ।

बिल्वाग्निमन्थवृषचित्रकनागराश्च एरण्डहिङ्गुसहसैन्धवकं समाशम् ॥ क्काथो निहन्ति कफजोद्भवसद्यः शूलं सद्यो निहन्ति जठरानलवर्द्धनं च ॥ ४६ ॥

और बेलगिरी, अरणी, वांसा, चीता, सूंठ, अरंड, हींग, सैंधानमक इन्होंको समान भागले काथ बना देनेसे शीघ्रही कफसे उपजे शूलको दूर करता है और जठराग्निको बढाता है ॥ ४६ ॥

अथ मातुलुंगादिरस।

मातुलुङ्गरसं धात्रीरसं सैन्धवसंयुतम् ॥ शोभाञ्जनकमूलस्य रसं च मरिचान्वितम् ॥ ४७ ॥ सक्षारमधुनोपेतं श्लेष्मशूलनिवारणम् ॥ कृतक्षयोद्भवं कासं नाशयत्याश्वसंशयम् ॥ ४८ ॥

विजौरेका रस आंवलेका रस इन्होंमें सैंधानमक मिला और सहींजनेकी जडके रसमें कालीमिर्च मिला ॥ ४७ ॥ फिर जवाखार शहद इन्होंसे युक्तकर इनके देनेसे कफका शूल दूर होता है और क्षयरोगसे उपजीहुई खांसीको शीघ्रही नाशता है ॥ ४८ ॥

अथ तुवरादिचूर्ण।

तुवरं ग्रन्थिकैरण्डा व्योषं पथ्याजमोदकम् ॥
सक्षारलवणोपेतं चूर्णं शूले कफात्मके ॥ ४९ ॥

सफेद शिरस, पीपलमूल, अरंड, सूंठ, मिर्च, पीपल, हरडै, अजमोद, जवाखार, नमक. इन्होंका चूर्ण कफसे उपजे शूलको दूर करता है ॥ ४९ ॥

अथ एरंडादि काथ।

एरण्डबिल्वबृहतीद्वयमातुलुङ्गं पाषाणभित्त्रिकटुमूलकृतः कषायः ॥ सक्षारहिङ्गुलवणोपेततैलमिश्रं श्रोण्यंसमेढ्रहृदयस्तनकुक्षिदेयम् ॥ ५० ॥

अरंड, बेलगिरी, दोनोंकटेहली, विजौरा, पाषाणभेद, त्रिकटु, सूंठ, मिर्च, पीपल, इन्होंसे कियेहुवे काथमें जवाखार, हींग, नमक, तेल इन्होंको मिला फिर, कटि, कंधे, लिंग, हृदाय, कुक्षि, चूंची, इन स्थानोंमें इसकी मालिस करनी चाहिये ॥ ५० ॥

अथ वातपित्तशूलचिकित्सा।

पटोलारिष्टपत्राणि त्रिफलासंयुतानि च ॥ क्काथमधुयुतं पानं शूले पैत्ते समीरणे ॥ ५१ ॥ पित्तज्वरतृषादाहरक्तपित्तानिवारणम् ॥ ५२ ॥

(पटोलादि काथ) परवल, नींब, इन्होंके पत्ते त्रिफला इन्होंका काथ बना तिसमें शहद मिला पान कराना वातपित्तशूलको शांत करता है ॥ ५१ ॥ और पित्तज्वर, तृषा, दाह, रक्तपित्त इन्होंको निवारण करता है ॥ ५२ ॥

अथ दुरालभादिकल्क ।

दुरालभा पर्पटकं च विश्वा पटोलनिम्बाम्बुदतिन्तिडीकम् ॥
सशर्करं कल्कमिदं प्रयोज्यं सपित्तवातोद्भवशूलशान्त्यै ॥५३॥

और जवासा, पित्तपापडा, सूंठ, परवल, नींब, नागरमोथा, अमली इन्होंका कल्क बना तिसमें खांड मिला देनेसे पित्तवातसे उपजा शूल शांत होता है ॥ ५३ ॥

अथ वातकफशूलचिकित्सा ।

सौवर्चलं समशठी सहनागरा च शुण्ठीयुतेन क्वथितेन जलेन चूर्णम् ॥ पीतं निहन्ति मरुतायुतश्लैष्मिकाणां पार्श्वातिशूलजठरानलहृत्प्रशस्तम् ॥ ५४ ॥

"सौवर्चलादि चूर्ण" कालानमक, कचूर, नागरमोथा, सूंठ, इन्होंका चूर्ण बना औटायाहुआ जलके संग लेनेसे वात कफसे उपजाहुआ शूल शांत होता है और पसली, शूल, मंदाग्नि इन रोगोंके हरनेमें श्रेष्ठ कहा है ॥ ५४ ॥

अथ दार्वादिक्वाथ ।

दारु नागरकं वासा हिङ्गु सौवर्चलान्वितम् ॥
क्वाथो वातकफे शूले आमे जीर्णे विबन्धके ॥ ५५ ॥

देवदार, सूंठ, वांसा, हींग, कालानमक, इन्होंसे उपजाहुआ क्वाथ, वातकफसे उपजा शूल, आमरोग, अजीर्ण, मलका बंध इन्होंमें देना श्रेष्ठ है ॥ ५५ ॥

अथ त्रिदोषशूल चिकित्सा ।

पलाशकदलीवासापामार्गकोकिलाह्वयम् ॥ गोमूत्रेण श्रितं तत्तु हिङ्गुनागरसंयुतम् ॥ ५६ ॥ हितं त्रिदोषजे शूले कामलाविड्विबन्धके ॥ गुल्मोदराणां शमनं मंदाग्नीनां नियच्छति ॥ ५७ ॥

"पलाशादिघृत" टेशू, केला, वांसा, ऊंगा, तालमखाना, हींग, सूंठ, इन्होंको गोमूत्रमें पका क्वाथ बना देनेसे ॥ ५६ ॥ त्रिदोषसे उपजा शूल, कामला, मलका बंधा, गुल्मरोग, उदररोग, मंदाग्नि, इन्होंको दूर करता है ॥ ५७ ॥

अथ सर्वशूलपर उपाय ।

एक एव कुबेराक्षः सर्व शूलापहारकः ॥
किं पुनः स त्रिभिर्युक्तः पथ्यारुचिकरामठैः ॥ ५८ ॥

एक अकेला सागरगोटाही सर्वशूलोंको दूर करता है, फिर उसके साथ हरडै, संचलखार और हींग होवै तौ क्या कहना अर्थात् अवश्यही शूलको दूर करता है ॥ ५८ ॥

अथ शंखक्षार ।

शङ्खक्षारं च लवणं हिङ्गुव्योषसमन्वितम् ॥
उष्णोदकेन तत्पीतं हन्ति शूलं त्रिदोषजम् ॥ ५९ ॥

और शंखका खार, नमक, हींग्र, व्योष, (सूंठ, मिर्च, पीपल,) इन्होंका चूर्ण गरमजलके संग पीनेसे त्रिदोषसे उपजा शूल नाश होता है ॥ ५९ ॥

अथ सामान्यसे सबशूलोंकी चिकित्सा ।

लङ्घनं वमनं चैव विरेकश्चानुवासनम् ॥
निरूहो बस्तिकर्माणि परिणामे त्रिदोषजे ॥ ६० ॥

त्रिदोषसे उपजे परिणामशूलमें लंघन, वमन, जुलाब अनुवासनबस्ति, निरूहबस्ति, इन कर्मोंको करवावै ॥ ६० ॥

अथ चित्रकादिमोदक ।

चित्रकं त्रिवृता दन्ती विडङ्गं कटुकत्रयम् ॥ समं चूर्णं गुडेनाथ कारयेन्मोदकान्सुधीः ॥ ६१ ॥ भक्षयेत्प्रातरुत्थाय पश्चादुष्णोदकं पिबेत् ॥ परिणामोद्भवं शूलं हन्ति शूलं नरस्य च ॥ ६२ ॥

और चीता, निशोत, जमालगोटाकी जड, वायविडंग, सूंठ, मिर्च, पीपल, इन्होंको समान भागले चूर्ण बना फिर वैद्यजन तिसकी गुडमें गोली बांधलेवे ॥ ६१ ॥ प्रातःकाल उठके इसका भक्षणकरै और ऊपरसे गरमजल पीवे यह परिणामशूलको नाशता है ॥ ६२ ॥

अथ यवान्यादिचूर्ण ।

यवानी हिङ्गु सिन्धूत्थक्षारं सौवर्चलाभया ॥
सुराभाण्डेन पातव्या परिणामे त्रिदोषजे ॥ ६३ ॥

और अजवायन, हींग, सैंधानमक, जवाखार, कालानमक, हरडे, इन्होंको मदिराके संग पीनेसे त्रिदोषसे उपजा परिणामशूल, शांत होता है ॥ ६३ ॥

अथ हिंग्वादिगुटी ।

हिङ्गुव्योषवचाजमोदहपुषा पथ्या यवानी शठी जाजीपिप्पलिमूलदाडिमवृकीचव्याग्निकं तिन्तिडी ॥ तस्माच्चाम्लसुवर्चलेपि च यवक्षारं तथा सर्जिका सिन्धूत्थं विडचूर्णकं समकृतं स्याद्धी-

जपूरे रसे ॥ ६४ ॥ कुर्य्याच्चूर्णगुटीं समक्षफलदामक्षप्रमाणामिमां कल्को वातविकारिणां प्रददतः शूलार्शसत्प्लीहकान् ॥ कासानाहविबन्धमेहहृदयशूलं निहन्त्याशुवै ॥ ६५ ॥ एष हिंग्वादिको नाम सर्वशूलार्त्तिनाशनः ॥ सर्ववातविकारघ्नः सर्वक्षयनिवारणः ॥ ६६ ॥

और हींग, सूंठ मिर्च, पीपल, वच, अजमोद, हाउबेर, हरडे, अजवायन, कचूर, जीरा, पीपलामूल, अनारदाना, कश्मीरीपाठा, चव्य, चीता, आमलकी, बूका, ब्राह्मी, जवाखार, साजी, सैंधानमक, मनियारीनमक इन्होंको समान भागले चूर्ण बना विजौराके रसमें इस चूर्णकी तोला प्रमाण गोली बनावे अथवा इन्होंका कल्क बना देनेसे ॥ ६४ ॥ वातके विकार, शूल, बवासीर, तिल्ली, खांसी, अफारा, मलका बंधा, प्रमेह, हृदयशूल इन्होंको शीघ्रही नाशता है ॥ ६५ ॥ यह हिंगु आदिक नामवाला औषध सम्पूर्ण शूलकी पीडाओंका नाश करता है और सब प्रकारके वातविकारोंको नाशता है सब प्रकारके क्षयरोगोंको निवारण करता है ॥ ६६ ॥

अथ शूलरोगके उपद्रव ।

अतीसाररतृषा मूर्च्छा अनाहो गौरवोऽरुचिः ॥ श्वासकासौ वमिर्हिक्का शूलस्योपद्रवा दश ॥ ६७ ॥ शूलं सोपद्रवं तृष्णां भिषग्दूरे परित्यजेत् ॥ अनुपद्रवे क्रिया प्रोक्ता भिषजां सिद्धिमिच्छता ॥ ६८ ॥

और अतीसार, तृषा, मूर्च्छा, अफारा, भारापन, ~~अरुचि~~, श्वास, खांसी, वमन, हिचकी, ये दश शूलके उपद्रव हैं ॥ ६७ ॥ उपद्रवोंसे युक्त और तृषासे संयुक्त शूलको वैद्यजन दूरसे त्याग देवे और उपद्रव रहित शूलमें सिद्धिकी इच्छा करनेवाले वैद्यने चिकित्सा करनी कही है ॥ ६८ ॥

शूलमें पथ्यापथ्य ।

वर्जयेद्द्विदलं शूली तथा सघनशीतलम् ॥ पिच्छलं च दधि चैव दिवानिद्रां च वर्जयेत् ॥ ६९ ॥ शालिषष्टिकसिन्धूत्थहिङ्गुसौवीरकं तथा ॥ सुरा वा गुडशुण्ठी वा पाने श्रेष्ठा भिषग्वर ॥७०॥ शतपुष्पावास्तुकं च हितं प्रोक्तं प्रशस्यते ॥ ७१ ॥

१ इतःपरमेकचरणोनास्ति ।

एणतित्तिरिलावाश्च क्रौञ्चशशकसारसाः॥ एषां मांसानि शस्तानि कथितानि भिषग्वर ॥ ७२ ॥ इति आत्रेय भाषितेहारीतोत्तरे तृतीयस्थाने शूलचिकित्सानाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

शूलरोगवाला पुरुष दालको वर्जे देवै और करडा शीतल झागोंवाला ऐसा दही त्यागदेवै और दिनमें सोना नर्जदेवै ॥ ६९ ॥ और शालीसंज्ञक चावल, साठी चावल, सैंधानमक हींग, कांजी, इन्होंका सेवना हित है और मदिरा, अथवा गुड, सूंठ, इन्होंका पान करना वैद्यजनोंने हित कहा है ॥ ७० ॥ और सौंफ, वथुवेका शाक, ये शूलरोगमें हित कहे हैं ॥ ॥ ७१ ॥ और मृग, तीतर, लावापक्षी, कूंजीपक्षी, शूशा, सारसपक्षी, इन्होंके मांस श्रेष्ठ कहे हैं ॥ ७२ ॥ इति वेरीनिवासिवुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने शूलचिकित्सानाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ८.



अथ पांडरोगचिकित्सा ।

आत्रेय उवाच ॥ शृणु पुत्र प्रवक्ष्यामि पांडुरोग महागदम् ॥ पञ्चैव पाण्डुरोगास्ते सम्भवन्तीह मानुषे ॥ १ ॥ वातिकः पैत्तिकश्चैव श्लैष्मिकः सान्निपातिकः ॥ पञ्चमो रूक्षणः प्रोक्तो वक्ष्ये चैषां तु सम्भवम् ॥ २ ॥

आत्रेयजी कहते हैं-हे पुत्र ! सुन पांडुरोगकी चिकित्साको कहते हैं मनुष्यकूं पांच प्रकारके पांडुरोग होते हैं ॥ १ ॥ वातसे उपजा १ पित्तसे उपजा २ कफसे उपजा ३ सन्निपातसे उपजा ४ रूक्षणसंज्ञक ५ पांचवां ऐसे ५ हैं इन्होंकी उत्पत्तिको कहते हैं ॥ २ ॥

अथ पांडुरोगका निदान ।

दीर्घाध्वन्ये पीडितो वा ज्वरेण रक्तस्रावेपीडितो वा व्रणेन ॥ चिन्तायासाद्रोधनाद्धे मनुष्य अयं पाण्डुर्जायते सेवते यः ॥ ॥३ ॥ क्षारं चाम्लं कल्यमैरेयसेवा अव्यायामान्मैथुनातिश्रमेण-निद्राणाशेनातिनिद्रादिवापियोगैश्चैतैर्मृत्तिकाभक्षणेन ॥ ४ ॥ पथि शिथिलशरीरे रोगसंपीडिते वा लवणकटुकषायासेवनाम्लेन मृद्भिः ॥ अतिसुरसमजस्रं सेवनातिक्रमेण नयाति रुधिरशोषं तेन वै॥पाण्डुरोगम् ॥ ५ ॥

अत्यंत मार्गके चलनेसे अथवा ज्वरसे पीडित होनेसे रक्तस्रावसे और व्रणसे पीडित होनेसे, चिंता होनेसे और परिश्रम होनेसे मलआदिकके रोकनेसे मनुष्यके यह पांडुरोग हो जाता है ॥ ३ ॥ और क्षार अम्ल अर्थात् खट्टा पदार्थ, और प्रभातमें मैरेयसंज्ञक मदिराके सेवन करनेसे कसरत नहीं करनेसे मैथुन करनेसे और अत्यंत परिश्रम करनेसे और निद्राके नाश होनेसे दिनमें अत्यंत सोनेसे इनयोगोंकरके और मृत्तिकाके भक्षण करनेसे ॥ ४ ॥ रोग पीडित शिथिल शरीर होनेपर मार्ग चलनेसे नमक, चर्चरा, कसैला, खट्टा, मृत्तिका इन्होंके सेवनेसे और निरंतर मैथुनके सेवनेका अतिक्रम होनेसे रुधिरका शोष होजाता है तिससे पांडुरोग उत्पन्न होजाता है ॥ ५ ॥

अथ पांडुरोगका पूर्वरूप।

तेनाक्षकूटे श्वयथुः शरीरे पाण्डुत्वमायाति च पीतमूत्रः ॥
निष्ठीवते त्वक् प्रविदीर्य्यते च संजायते तस्य पुरःसराणि ॥६॥

तिस पांडुरोगसे आंखोंके कोणमें सोजाहो शरीर पीलाहो थुकथुकीहो त्वचा फटी जावे ये पांडुरोगके पूर्व होनेलगते हैं ॥ ६ ॥

अथ वातपांडुका लक्षण।

तोदः परुषत्वशिरोगुरुत्वं त्वङ्मूत्रनेत्रे नखे पीतता स्यात् ॥
वातात्मकं तं मनुजस्य विद्धि लिङ्गैरुपेतोऽनिलपाण्डुरोगः॥७॥

और चभकाहो कठोरपनाहो शिर भारीहो त्वचा, मूत्र, नेत्र, नख ये पीले रहैं ये लक्षणहों जिसके वातसे उपजाहुआ पांडुरोग जानना ॥ ७ ॥

अथ पित्तपांडका लक्षण।

आमत्वपीतत्वकरो हि लोके बिभर्त्ति शोषं कटुतास्यतां च ॥
मन्दज्वरो वै तृषामोहशोफः पीतच्छविः पित्तभवो हि पाण्डः॥८॥

आमपना और शरीरका पीलापन, शोष, कडुआमुख रहना, मंदज्वर, तृषा, मोह, शोफ, पीलीछबि रहै ये लक्षणहों वह पित्तसे उपजा पांडुरोग जानना ॥ ८ ॥

अथ कफपांडुका लक्षण।

तन्द्रालुशोफकफकासयुक्त आलस्यप्रस्वेदगुरुत्वमेवम् ॥
संजायते तस्य कफात्मकोऽसौ नरस्य पाण्डुत्वभवो विकारः ॥९॥

तंद्राहो, कफ, खांसी, शोजा, ये हों आलस्यहो, पसीनाहो, भारीपनहो, तिसमनुष्यके कफसे उपजा पांडुरोग जानना ॥ ९ ॥

अथ त्रिदोषजपांडुका लक्षण ।

तन्द्रालस्यं श्वयथुवमथू कासहृल्लासशोषा विड्भेदालस्यं परुष नयने सज्वरो वै क्षुधार्त्तः ॥ मोहतृष्णाक्लममथ नरस्याशु पश्येत्सुदूरं त्याज्यो वैद्यैर्निपुणमातिभिः सन्निपातोत्थपाण्डुः ॥ १० ॥

और तंद्रा आलस्यहो, शोजा, वमन, खांसी, थुकथुकी, शोष, मल पतलाहो, आलस्य कठोर नेत्रहों, ज्वरहो, क्षुधाकी पीडाहो, मोहहो, तृषाहो, ग्लानिहो, जिसमनुष्यके ये लक्षण हों वह सन्निपातसे उपजा पांडुरोगवाला मनुष्य उत्तमबुद्धिवाले मनुष्योंको दूरसेही त्यागदेना चाहिये ॥ १० ॥

अथ मट्टीखानेसे हुआ पांडका लक्षण ।

मृत्तिकाभक्षणेनाथ शृणु पुत्र गदो महान् ॥ पाण्डुरोगो गरिष्ठोऽपि भवेद्धातुक्षयङ्करः ॥ ११ ॥ मृद्भक्षणाच्चैव मलं प्रकीर्य्य स्रोतांसि तुष्यान्ति तु मृत्तिकायाः ॥ तेनैव नासृक् परिवर्त्तयन्ति न तर्पयन्ति वपुषं रसेन ॥ १२॥ क्षारात्कषायान्मधुरस्य पानात्स कोपत्याशु नरस्य मृत्सा ॥ श्लेष्मप्रकोपान्मधुरान्करोति मृत्सा न जग्धा हितकारिणी स्यात् ॥ १३ ॥ विकृता एव बलिष्ठा मारुताद्यास्त्रयस्तु द्युतिबलजीवनाशां नाशयन्त्याशु दोषाः ॥ भवति विकलमेवं पाण्डुरोगे शरीरं हरति जठरवह्निं मृत्तिकाभक्षणेन ॥ १४ ॥

हे पुत्र ! मृत्तिकाके भक्षण करनेसे महान् पांडुरोग होता है तिसको सुन यह बडा क्लिष्टरोग है और धातुओंका क्षय करनेवाला है ॥ ११ ॥ मृत्तिकाके भक्षण करनेसे मल विखर जाता है और तिस मृत्तिकासे श्रोत भरजाते हैं फिर तिसकारणसे रुधिर नहीं प्रवृत्त होता है और रससे शरीर पुष्ट नहीं होता है ॥ १२ ॥ और खारा, कसैला, मीठा, इन्होंका पान करनेसे मनुष्यके भक्षणकीहुई मृत्तिका शीघ्रही कोप होजाती है मधुरपदार्थ सेवनेसे वह मृत्तिका कफको कोप करती है इसवास्ते भक्षण कीहुई मृत्तिका हितको करनेवाली नहीं है ॥ १३ ॥ वात आदिक दोष विकारको प्राप्तहुए अत्यंत बलवाले कहाते हैं. कांति, बल, जीवनेकी आशा इन्होंको शीघ्रही नाशदेते हैं और मट्टीखानेसे हुआ पांडुरोग जठराग्निका नाश करता है ॥ १४ ॥

अथ लोहचूर्णवटी ।

गोमूत्रे लोहं मतिमान्स्थापयेत्सप्तरात्रकम् ॥
तस्माच्चूर्णं तु मधुना देयं पाण्ड्वामयापहम् ॥ १५ ॥

बुद्धिमान् वैद्य लोहाको सातदिनतक गोमूत्रमें स्थापितकरावैं फिर तिसका चूर्ण बना शहदके संग देनेसे पांडुरोगका नाश होता है ॥ १५ ॥

शुण्ठ्यादिमिश्रितलोहचूर्ण ।

त्र्यूषणं त्रिफला मुस्ता विडङ्गं चित्रकं समम् ॥ १६ ॥ भागमेकं लोहचूर्णमपि चेक्षुरसेन भावयेत् ॥ सप्तकाहमलोपि खल्वितं पुनरपि प्रवरं स्यात् ॥ १७ ॥ शीलितं तु मधुनापि घृतेन पाण्डुरोगहृदयामयापहम् ॥ कामलार्शोहलीमकहारि कथितं सुमतिभिश्चपण्डितैः ॥ १८ ॥

सूंठ, मिर्च, पीपल, त्रिफला, नागरमोथा, वायविडंग, चीता, इन्होंको समान भागले ॥ १६ ॥ एकभाग लोहाका चूर्ण इन्होंको ईखके रसमें भावना देवै अथवा इसमें लोहेके मैलको सातदिनतक खरलकर मिलावे तो अतिश्रेष्ठ है ॥ १७ ॥ इस चूर्णको शहदमें अथवा घृतमें मिला खानेसे पांडुरोग, हृदयरोग, कामला, बवासीर, हलीमक रोगोंको नाशता है ऐसे उत्तमबुद्धिवाले पंडितजनोंने कहा है ॥ १८ ॥

अथ मण्डूकवटी ।

त्र्यूषणं त्रिफलया सह चित्रकं मेघचव्यसुरदारुमाक्षिकम् ॥ ग्रन्थिकं च शिखिभृङ्गराजकं योजयेत्पलिकभागिकानिमान् ॥ १९ ॥ चूर्णिताद्द्विगुणमेव योजयेल्लोहचूर्णमपि कज्जलप्रभम् ॥ अष्टभागसममूत्रकल्पितं पाचितं पुनरहो बलप्रदम् ॥ २० ॥ सेवयेद्बलमुपक्रमं तथा तत्र संयुतमिहास्ति शोभनम् ॥ नाशयेच्च कफकामलान्कृमीन्पाण्डुकुष्ठगुदजान्हलीमकम् ॥ २१ ॥

सूंठ, मिर्च, पीपल, त्रिफला, चीता, नागरमोथा, देवदारु, सोनामाखी, पीपलामूल, मेथी भंगरा इन्होंको चार चार तोला प्रमाण लेवे ॥ १९ ॥ और इस चूर्णसे दूना २ भाग कज्जलके समान बारीक लोहेका चूर्ण मिलावे इस सब चुर्णसे आठ ८ भाग गोमूत्रमें इसचूर्णको पकावे फिर पकायाहुआ यह चूर्ण बलको देनेवाला है ॥ २० ॥ पांडुरोगमें बलके अनुसार सेवन कियाहुआ यह चूर्ण उत्तम है और कफरोग, कामला, क्रिमिरोग, पांडु, कुष्ठ, गुदाके रोग, हलीमक इन्होंको नाशता है ॥ २१ ॥

अथ वज्रमंडूकवटक।

पुनर्नवाव्योषत्रिवृत्सुराह्वयं निशाह्वयं चव्यफलत्रयं तथा ॥ घना यवा तिक्तकरोहिणी समा द्विभागिकं लोहरजो विमिश्रयेत् ॥ २२ ॥ गवां पयो वा द्विगुणं वियोज्यं दार्व्या प्रलेपं प्रणिधाय धीमान् ॥ छायाविशुष्का गुटिका विधेया क्षौद्रेण मूत्रेण गवां च भक्षयेत् ॥ २३ ॥ ज्ञात्वा बलं रोगबलं नरस्य पाण्ड्वामये कामलसर्वमेहे ॥ गुल्मोदराजीर्णविषूचिकानां शोफातिसारग्रहणीविबन्धान् ॥ शूलक्रिमीनर्शविकारहेतोः ॥ २४ ॥

सांठी, सूंठ, मिर्च, पीपल, निशोत, देवदार, हलदी, चव्य, त्रिफला, नागरमोथा, इंद्रजव, कुटकी, इन्होंको समानभागले और दोभाग लोहेका चूर्णमिला ॥ २२ ॥ फिर इस सबचूर्णसे दूने गौके दूधमें इसचूर्णको पकावे जब चलानेकी कडछीमें चपकने लगजावे तब उतार छायामें सुखा गोली बनालेवे फिर शहदके संग अथवा गोमूत्रके संग भक्षणकरै॥२३॥ मनुष्यके बलको और रोगके बलको जानके पांडुरोगमें कामलामें संपूर्ण प्रमेहरोगोंमें इसको भक्षण करै और गुल्मोदर, अजीर्ण, विषूचिका, शोजा, अतीसार, ग्रहणी, मलका बंधा, शूल, क्रिमिरोग, बवासीरके विकार, इन्होंको नाशता है ॥ २४ ॥

अथ दूसरा वज्रमंडूकवटक।

पञ्चकोलककटुत्रिकं घना देवदारुकृमिशत्रुकोलकम् ॥ एष भागसहितो वियोजितो मिश्रयेत्तदनु चायसं रजः ॥ २५ ॥ तत्र चाष्टगुणमूत्रमध्यतः पाचयेद्दवाति येन लेपिका ॥ कारयेद्बदरमात्रया पुनश्छाययापि पिषितञ्च शोषणम् ॥ २६ ॥ कारयेत्सुरभिमथितेन च पानकञ्च शमयेत्सकामलम् ॥ पाण्डुमर्शमतिसारमन्दभुक् शोषमेहगुदजान् क्रिमीनपि ॥ २७ ॥

(पंचकोल) पीपल १ पीपलामूल २ चव्य ३ चीता ४ सूंठ ५ कटुत्रिक अर्थात् सूंठ, मिर्च, पीपल, नागरमोथा, देवदार, वायविडंग, कंकोल, इन्होंको समानभागले मिलावे पीछे इन्होंके समान लोहेका चूर्ण मिलावे ॥ २५ ॥ फिर सबचूर्णसे आठगुने गोमूत्रमें इसचूर्णको पकावे जब पकजावे कडछीमें चपके तबतक उतार बेरकेसमान गुटी बना छायामें सुखा फिर पीसलेवे ॥ २६ ॥ पीछे गायके मथेतक्रमें इसका पन्ना बना सेवनकरनेसे कामला, पांडुरोग बवासीर, अतीसार, मंदाग्नि, शोष, प्रमेह, गुदाके रोग, कृमि इन्होंको नाशता है ॥ २७ ॥

१ अयमेकश्चरणोऽधिकोऽस्ति.

अथ अमृतवटक।

धात्रीफलानां रसप्रस्थमेकं प्रस्थं तथा चेक्षुरसं विदध्यात् ॥ प्रस्थं तु कूष्माण्डरसप्रदिष्टमार्कं रसं प्रस्थविमिश्रमेकम् ॥२८॥ एकीकृतं मन्दहुताशनेन पाच्यं भवेद्यावदशेषमेति ॥ विमिश्रयेदौषधसंघमेतत्पलैकमात्रं विपचेच्च पश्चात् ॥ २९ ॥ भृङ्गी सुराह्वं शतपुष्पधान्यं सुगन्धशुण्ठी मधुकं विशाला॥सपिप्पलीकं सकटुत्रयं च विडङ्गमुस्ता हपुषादलानि॥ ३० ॥ भूरिहरिद्राकटुरोहिणीनां दुरालभापौष्करवत्सकानाम् ॥ कुष्ठाजमोदासुरसा दलानि चूर्णं त्वमीषां विनियोजनीयम् ॥ ३१ ॥ गुडं पुराणं द्विगुणं तु मध्ये गोघृतेन वटिकां विबन्धयेत् ॥ भक्षणाज्जयतिकामलार्शसं पाण्डुरोगमतिदारुणज्वरान् ॥ ३२ ॥ शोफशोषग्रहणीं विनिघ्नति वातातिसारक्षयकासगुल्मान् ॥ ३३ ॥

आंवलोंका रस ६४ तोले और ईखका रस ६४ तोले कोहलाका रस ६४ तोले आकका रस ६४ तोले ॥ २८ ॥ इन्होंको एक जगह मिला मंद २ अग्निसे पकावे जब चतुर्थांश बाकी रहे तब इन आगे कहीहुई औषधोंको चार २ तोले प्रमाण मिलाके फिर पकावे॥२९॥ भंगरा, देवदार, सौंफ, धनियां, रोहिसतृण, सूंठ, मुलहटी, इंद्रायण, पीपली, कटुत्रय, अर्थात सूंठ, मिर्च, पीपल, वायविडंग, नागरमोथा, हाऊबेर ॥ ३० ॥ और दारुहलदी, कुटकी, जवासा, पोहकरमूल, कूडा, इन्होंके पत्ते इनसबोंको पहले कहेहुये प्रमाणके अनुसार ले चूर्ण बना मिलादेवै ॥ ३१ ॥ और इस चूर्णसे दूना पुराना गुड मिलावे, फिर घृतमें गोली बांधलेवे इसके भक्षण करनेसे कामला, बवासीर, पांडुरोग, अतिदारुणज्वर ॥ ३२ ॥ शोफ, शोष संग्रहणी इन रोगोंका नाश होता है और वातरोग अतीसार, क्षयी, खांसी, गुल्मरोग इन्होंको नाशता है ॥ ३३ ॥

अथ पांडुरोगका पथ्यापथ्य।

गोधूमशालियवषष्टिकमुद्गकानां श्यामाढकीघृतयुतं पयसा सतक्रम् ॥ गाण्डीववास्तुकमथो शतपुष्पवर्त्तापथ्यं हितं निगदितं मनुजस्य पाण्डौ ॥ ३४ ॥ जाङ्गलानि च मांसानि भोजने च प्रशस्यते ॥ ३५ ॥ तिक्तानि रूक्षाणि च कटुकानि तीव्राणि

दाहान्यपि काञ्जिकानि ॥ सुराम्लसौवीरकबीजपूरान् तैलानि वर्ज्यानि च पाण्डुरोगे ॥ ३६ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने पाण्डुरोगचिकित्सा नाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

और गेहूं, शालीसंज्ञक चावल, जव, सांठी चावल, मूंग, शामक, अरहड इन अन्नोंको घृतके संग, अथवा दूधके संग अथवा तक्रके संग भोजन करना हित है और अर्जुनवृक्षके पत्ते, वथुवा, शौंफा, वार्त्ताकु इन्हींका शाक पांडुरोगवाले मनुष्यको हित है पथ्य है ॥ ३४ ॥ जांगलदेशके जीवोंका मांस भोजनमें हित है ॥ ३५ ॥ और पांडुरोगमें, कडुए, रूखे, चर्चरे दाहकरनेवाले ऐसे कांजीके भेद, मदिरा, खटाई, कांजी, विजौरा, तेल इन पदार्थोंको वर्जि-देवै ॥ ३६ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषा-टीकायां तृतीयस्थाने पांडुरोगचिकित्सानाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः ९.

अथ क्षयरोगकी चिकित्सा ।

आत्रेय उवाच ॥ शृणु च भिषग्वरिष्ठ ! व्याधिर्घोरो नराणां भवति विहितचेष्टो वातलप्राणिनां वै ॥ चिरनिचयकरोऽयं प्राकृतैः कर्मपाकैरिह परिभवकारी मानुषस्य क्षयोऽयम् ॥ १ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—हे वैद्योंमें उत्तम ! यह क्षयरोग मनुष्योंके घोर व्याधि होता है तिसको सुन वातके स्वभाववाले प्राणियोंके यह रोग होता है चेष्टाको हत करदेता है और पूर्वजन्मके कर्मविपाकसे नरकको करनेवालाहै और इससंसारमें दुःखको करनेवाला है॥ १॥

अथ क्षयरोगमें पापरूपी कारण ।

देवानां प्रकरोति भङ्गमथवा भ्रूणस्य सन्तापनं गोपृथ्वीधरविप्र बालहननमारामविध्वंसनम् ॥ सोऽयं स्थानविनाशनं च कुरुते स्त्रीणां वधं यो नरस्तस्यैतैर्गुरुकर्मभिः क्षयगदो देहार्थहारी महान् ॥ २ ॥ देवानां दहतो धनं च दहतो भ्रूणप्रपातेऽपि च देवत्वं हरतो विषं च ददत आरामकं निघ्नतः ॥ तेनासौ नियमेन सम्भवति वै नृणां च तीव्रा रुजा धातूनां क्षयकारिणी च मनुज-

स्यात्मापहा दारुणा ॥ ३ ॥ क्षयो दशविधश्चैव विज्ञातव्यो भिषग्वरैः ॥ ४ ॥

जो पुरुष देवताओंकी मूर्तिको तोडदेता है और गर्भगत जीवको संतापदेता है गौ, राजा, ब्राह्मण, बालक, इन्होंकी हत्या करता है, और बगीचाका विध्वंस करता है किसीके स्थानका विनाश करता है और जो स्त्रियोंका वध करता है तिसके इनकर्मोंसे देहको नाशकरनेवाला महान् क्षयीरोग होता है ॥ २ ॥ जो पुरुष देवताओंको दग्धकरै किसीके धनको दग्धकरै और गर्भको गिरावै देवताके द्रव्यको हरै, विषदेवै बाग बगीचेका नाशकरै इन विपरीतकर्मोंसे मनुष्यके अतितीव्र पीडाहोती है धातुओंको क्षय करनेवाली और आत्माको नाश करनेवाली दारुणक्षयव्याधि होजाती है ॥ ३ ॥ वैद्यजनोंने दशप्रकारका क्षयरोग जानना ॥ ४ ॥

अथ क्षयरोगके हेतु।

श्रमाद्वाभाराद्वाविषमशयनैर्दीर्घचलनैरजीर्णे भोज्याद्वा सुरतरतिसेवापरतया ॥ ज्वरेणातिक्रान्ताद्विषमशयनाच्छीतलतरैः क्षयं याति श्लेष्मा पवनमथ पितश्च तनुषु ॥ ५ ॥ रोगाक्रान्ताद्विषमशयनात्तस्य मन्दज्वराद्वा श्लेष्मापित्तश्च मरुदथवा याति देहक्षयं वा ॥

श्रम, भार, विषमशयन, दीर्घमार्गमें गमन करना, अजीर्णमें भोजम करना, मैथुनमें अतिरमण करना, ज्वरसे आक्रांतहोना, विषमशयन करना, अतिशीतल पदार्थका सेवन करना, इन्होंसे कफ कोपको प्राप्तहोता है फिर शरीरमें वायुको और पित्तको भी कुपित कर देता है ॥ ५ ॥ और रोगसे आक्रांत होनेसे अथवा विषमशयन करनेमें अथवा मन्द ज्वरसे यह क्षयरोग होजाता है और कफसे पित्तसे अथवा वायुसे इन तीन प्रकारोंसे देहमें क्षयरोग होता है ॥

अथ क्षयरोगके प्रकार।

रसरक्तमांसमेदश्चास्थि मज्जा च शुक्रमिति सप्त ॥ एवं दशविधा ज्ञेयाः क्षया भवन्ति नृणां शरीरेषु ॥ ६ ॥ पुनरपि लक्षणमेषां वक्ष्यते ते शृणु त्वम् ॥ ७ ॥

---

१ विषमशयन दोवारहै इससे एक जगह कालपरत्व विषमशयन अर्थात् दिनको सोना रातको जागना समझे और दूसरी जगह रूपपरत्वसे अर्थात् औंधासोना आदि समझें।

और रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, वीर्य इन सात धातुओंमें होता है ऐसे मनुष्यके शरीरमें दश प्रकारके क्षयरोग कहे हैं ॥ ६ ॥ अब फिरभी इन्होंके लक्षणोंको कहते हैं सुनो ॥ ७ ॥

अथ वातक्षयका निदान।

अतिस्वेदातिघर्मेण चिन्ताशोषभयादिना ॥
वाताद्यैः सेवितैश्चापि जायते मारुतक्षयः ॥ ८ ॥

अत्यंत पसीना, अति घाम, चिंता, शोष, भय इत्यादिकोंसे और वायुको करनेवाले पदार्थोंको सेवनसे वायुका क्षय होजाता है ॥ ८ ॥

अथ वातक्षयका लक्षण।

तेन तन्द्राङ्गदाहश्च पिपासारुचिवेपथुः ॥
तमः क्लमो भ्रमश्चैव भवेच्च मारुतक्षये ॥ ९ ॥

तिससे तंद्रा, अंगमें दाह, तृषा, अरुचि, कंपना, अंधेरी, ग्लानि, भ्रम, ये उपद्रव वातके क्षयरोगमें होते हैं ॥ ९ ॥

वातक्षयमें सेव्यपदार्थ।

तस्मादनूपानि सेव्यानि रसानि पललानि च ॥
रसोनादिककल्कश्च सेवयेद्वातनाशने ॥ १० ॥

तहां वातको नाश करने वाले रस और अनूपदेशके मांसोंका सेवन करै और लस्सनआदिक औषधोंके कल्कके सेवनसे भी वातका नाश होता है ॥ १० ॥

अथ पित्तक्षयके हेतु।

पित्तक्षयेऽग्निमान्द्यं च जायतेऽरुचिजाड्यता ॥
कासहृल्लासशोफश्च जायते मन्दचेष्टता ॥ ११ ॥

पित्तके क्षयरोगमें मंदाग्नि, अरुचि, जडता, ये रोग होते हैं और खांसी, श्वास, थुकथुकी, शोफ, मन्दचेष्टा, ये उपद्रव होते हैं ॥ ११ ॥

अथ पित्तक्षयकी चिकित्सा।

स्वेदाभ्यङ्गान्नपानानि दीपनानि प्रयोजयेत् ॥
जाङ्गलानि रसान्नानि सेवयेत्पित्तकृत्क्षये ॥ १२ ॥

तहां स्वेद, मालिस, दीपन अर्थात् जठराग्निको दीप्त करनेवाले अन्नपान, इन्होंको प्रयुक्त करै और पित्तसे उपजे क्षयरोगमें जांगल देशके जीवोंके मांसका रस हित है ॥ १२ ॥

अथ कफक्षयका लक्षण ।

व्यायामे च व्यवाये च रूक्षान्नाहारसेवनैः ॥
सन्तापक्रोधनैश्चैव जायते कफसम्भवः ॥ १३ ॥

और कसरत करना, मैथुन, रूषा अन्नका भोजन, संताप क्रोध, इन्होंके सेवनेसे कफका क्षयरोग बढता है ॥ १३ ॥

अथ कफक्षयका लक्षण ।

तेन दाहोऽथवा पाण्डुः शोफो निःश्वसनं भ्रमः ॥
विनिद्रता क्षुत्तृषा च स्त्रीसङ्गेनापि नन्दति ॥ १४ ॥

तिससे दाह अथवा पांडुरोग, शोजा, श्वासरोग, भ्रम, निद्राका नाश, क्षुधा, स्त्रीसंगसे प्रसन्नता ये लक्षण होते हैं ॥ १४ ॥

अथ कफक्षयकी चिकित्सा ।

तस्य शीतान्नपानानि कन्दशाकादिकै रसैः ॥
अनूपैर्दधिदुग्धैर्वा सेवनं च समीहितम् ॥ १५ ॥

तिसको शीतल अन्नपान, कंदशाकआदिकोंके रस, अनूपदेशके जीवोंका मांस, दही दूध, इन्होंका सेवन हित है ॥ १५ ॥

अथ त्रिदोषजक्षयकी चिकित्सा ।

त्रिभिर्दोषैः क्षयं प्राप्तैस्तदा हि मरणं ध्रुवम् ॥
तस्य क्रिया प्रयोक्तव्या साधारणा महामते ! ॥ १६ ॥

और जब त्रिदोषसे उपजाहुआ क्षयरोग होता है तब निश्चय मरण होजाता है हे हारीत ! महामते ! तिसकी साधारण चिकित्सा कही है ॥ १६ ॥

अथ धातु--रस-आदिसात ७ प्रकारके क्षयरोगके लक्षण ।

अथ धातुक्षयं वक्ष्ये हारीत शृणु साम्प्रतम् ॥
रसरक्तमांसमेदाः प्रत्येकं क्षयलक्षणम् ॥ १७ ॥

हे हारीत ! अब धातुके क्षयरोगको कहते हैं सुन. रस, रक्त, मांस मेद, इनसबोंके एक२ के लक्षणको कहते हैं ॥ १७ ॥

अथ रसक्षयका लक्षण ।

रसक्षयेऽतिशोषश्च मन्दाग्नित्वं च वेपथुः ॥ शिरोरुग्मन्दचेष्टत्वं जायते च क्लमभ्रमौ ॥ १८ ॥ रक्तक्षये क्षयः पाण्डुर्मन्दचेष्टो भवेन्नरः ॥ श्वासो निष्ठीवनं शोषो मन्दाग्नित्वं च जायते ॥ १९ ॥

रसके क्षय होनेमें अत्यंत शोषहो, मंद अग्निहो, कंपनाहो, शिरमें पीडाहो, मंदचेष्टाहो, ग्लानिहो, भ्रमहो ॥ १८ ॥ और रक्तक्षय होनेमें क्षयरोग होवे तो पांडुरोग होजावे, मंद-चेष्टा होजावे, श्वासहो, थुकथुकीहो, शोषहो, मंदाग्निहो ॥ १९ ॥

मांसक्षयका लक्षण ।

मांसक्षयेऽतिकृशता चेष्टनं चाङ्गभङ्गता ॥
निद्रानाशोऽतिनिद्रास्य विसंज्ञो लघुविक्रमः ॥ २० ॥

मांसके क्षय होनेमें माडापनहो, चेष्टा नहींहो, अंगभंगहो, निद्राका नाशहो अथवा इसको अत्यंत निद्रा आवे और संज्ञा नहीं रहै अल्पबल रहै ॥ २० ॥

अथ मेदःक्षयका लक्षण ।

मेदःक्षये मन्दवलो विसंज्ञता चाङ्गभङ्गो गमनं परुषता ॥
श्वासातिकासारुचिताग्निमान्द्यं विशोषस्तेन तनुशोषो जायते २१

मेदके क्षय होनेमें मंदबल रहै संज्ञा नहीं रहै अंगभंगहो गमनहो कठोरता रहै और श्वास अत्यंत खांसी, अरुचि, मंदाग्नि, शरीरमें शोषहो, ये उपद्रव होते हैं ॥ २१ ॥

अथ अस्थिक्षयका लक्षण ।

अस्थिक्षये स्यादतिमन्दचेष्टता मन्दवीर्य्यं इति मेदसः क्षये ॥
विसंज्ञता कृशता च कम्पना अङ्गभङ्गवमनं परुषता ॥ २२ ॥
शोषदोषसदनं च शोफिता विकम्पनं शोषरुषश्च जायते ॥ भि-
षग्वर त्वं परिवेद लक्षणं मज्जाक्षये कम्पनमेव वास्ति ॥ २३ ॥

अस्थिक्षयमें अतिमंद चेष्टाहो, वीर्यमंद हो[illegible] मुटापा नाश होजावे, संज्ञा नहीं रहे माडापनहो, कंपना रहै, अंगभंगहो, वमनहो, कठोरताहो ॥ २२ ॥ और शोषहो वातआदिक दोषोंकी शिथिलताहो, शोजाहो, कंपनाहो, रूक्षताहो हे वैद्योंमें श्रेष्ठ हारीत ! तू इन लक्षणोंको जान और मज्जाके क्षयमें कंपनाहो ॥ २३ ॥

अथ वीर्यक्षयका लक्षण ।

भ्रमः क्लमः स्यादतिमन्दचेष्टः शोफो निशाजागरणं च तन्द्रा ॥
मन्दज्वरः शोषसमो मनुष्ये शुक्रक्षये चाङ्गविचेष्टितानि ॥२४॥
रूक्षभ्रमकम्पनशोषरोषस्त्रीद्वेषितादीनि ॥ विरूपता च वैकल्यं
सन्धिषु जातशोषः ॥ २५ ॥

भ्रमहो, ग्लानिहो, मंदचेष्टाहो, शोजाहो, रात्रिमें निद्रा नहींआवे, तंद्रारहै, मंदज्वरहो, शोषहो, ये लक्षण हैं, और मनुष्यके वीर्यक्षय होनेमें अंगमें चेष्टा नहीं रहै ॥ २४ ॥ रूखा-

पनहो, भ्रमहो, कंपना, शोष, रोष क्रोध बढजावे स्त्रियोंसे वैरभाव, विरूपता, विकलताहो संधियोंमें शोषहो ॥ २५ ॥

अथ रसरक्तवृद्धिकारक औषध।

इदानीं संप्रवक्ष्यामि भेपजानि यथाक्रमम् ॥ स्नेहनं रूक्षणं चैव तथा विम्लापनं हितम् ॥ २६ ॥ जाङ्गलानि च मांसानि भोजनानि च सेवयेत् ॥ गुडूची शृङ्गवेरञ्च यवानीक्वथितं जलम् ॥ २७ ॥ मरिचैः क्वथितं दुग्धं पाने रात्रौ प्रशस्यते ॥ तेन रसानां वृद्धिः स्याच्छीघ्रं तस्माद्विमुच्यते ॥ २८ ॥ रसानां वृद्धिकरणं गोधूमयवशालीनाम् ॥ कथितानि भिषक्श्रेष्ठैर्जाङ्गलानि विशेषतः ॥ २९ ॥

अब यथाक्रमसे औषधोंको कहते हैं स्नेहन, रूक्षण, विम्लापन ये कर्म करने हित हैं ॥ २६ ॥ और जांगलदेशके जीवोंका मांस भोजनमें हित है और गिलोय, अदरख, अजमान, इन्होंके क्वाथका जल हित है ॥ २७ ॥ और मिरचोंमें पकायाहुआ दूध रात्रिमें पीना हित है तिस्से रसोंकी वृद्धि होती है शीघ्रही तिसके क्षयरोग छुटजाते हैं ॥ २८ ॥ और गेहूं, जव, शालीसंज्ञक चावल, जांगलदेशके जीवोंका मांस, ये वैद्यजनोंने श्रेष्ठ कहे हैं॥२९॥

अथ रक्तवृद्धिकारक औषध।

घृतदुग्धसिताक्षौद्रमरीचानि च पिप्पली ॥
पानं शस्तं मनुष्याणां रक्तवृद्धिकरं परम् ॥ ३० ॥

और [illegible], दूध, मिश्री, शहद, मि[illegible] [illegible]ोंका पना बना पीना हित है मनुष्योंके रक्तकी वृद्धि करनेवाला है ॥ ३० ॥

अथ मेदोवृद्धिकारक औषध।

अनूपानि च धान्यानि लघुनामानि कल्पयेत् ॥ कल्यांश्च घृतदुग्धादीन्सेवयेन्मधुराणि च ॥ ३१ ॥ रसाश्च जाङ्गलानि स्युः सेवनार्थे भिषग्वर ॥ ३२ ॥ सितोपलादिकं चूर्णमजाक्षीरं सकोलकम् ॥ हितं पानं क्षये चैव कल्यंमप्रातराशनम् ॥ ३३ ॥

अनूपदेशके जीवोंका मांस, हलकेअन्न, घृत, दूध, कल्यसंज्ञक मदिरा, मधुरपदार्थ इन्होंका सेवन हित है ॥ ३१ ॥ और हे वैद्योंमें श्रेष्ठ ! जांगलदेशके जीवोंका रस सेवना हित है

१ कल्यमप्रातराशनं कल्यं मधु अप्रातराशने प्रातःकालातिरिक्तसमये अशनं भोजनमित्यर्थ आङ् पूर्वकमशनं आशनम्।

॥ ३२ ॥ और सितोपला आदि चूर्ण, पीपलीसे संयुक्त कियाहुआ बकरीका दूध पीना हित है सायंकालमें भोजनके समय और कल्यकहिये प्रभातकालमें करै ॥ ३३ ॥

अथ अस्थिवृद्धिकारक औषध ।

पक्वानि घृतशस्तानि क्षीराणि विविधानि च ॥ चन्दनानि च द्राक्षादिचूर्णानि च भिषग्वर ॥ ३४ ॥ जांगलानि च सर्वाणि सेवनीयानि पुत्रक ॥ अन्नानि च मधुराणि सर्वाणि च प्रयोजयेत् ॥ ३५ ॥

पकेहुए घृत और अनेकप्रकारके दूध ये श्रेष्ठ हैं और हे उत्तम वैद्य ! चदन, और द्राक्षादिक चूर्ण हित हैं ॥ ३४ ॥ और हे पुत्र ! सबप्रकारके जांगलदेशके जीवोंके मांस सेवने हित हैं और सबप्रकारके मीठे अन्न सेवने हित हैं ॥ ३५ ॥

अथ शुक्रवृद्धिकारक औषध ।

शुक्रक्षये प्रपाकानि रसानि च विशेषतः ॥ नवनीतं तथा क्षीरं मधुराणि च सेवयेत् ॥ ३६ ॥ कर्कटीमूलपयसा विदारीकन्दशाल्मली ॥ सिताढ्यपानं च हितं शस्यन्ते मधुराणि च ॥ ३७॥ शुक्रक्षयवृद्धिकरणमिदानीं चूर्णानि वक्ष्यंते ॥ ३८ ॥

शुक्रके क्षयमें अच्छीतरह पकायेहुए रस देने हित हैं और नौंनीघृत, दूध, मधुरपदार्थ, इन्होंका सेवन करै ॥ ३६ ॥ और काकडीकी जड विदारीकंद, शाळवन, इन्होंकों दूधके संग मिश्री मिला पान करना हित है और मीठे पदार्थ हित हैं ॥ ३७ ॥ अब आगे वीर्यकी वृद्धिको करनेवाले चूर्णोंको कहै हैं ॥ ३८ ॥

अथ बलवृद्धि चूर्ण ।

बला विदारी लघुपञ्चमूली पञ्चैव क्षीरद्रुमत्वक् प्रयोज्या ॥ पुनर्नवामेघतुगायुतं स्यात्सञ्जीवनीयैर्मधुकैः समांशैः ॥ ३९ ॥ अक्षप्रमाणानि समानि तानि सर्वाणि चैतानि विचूर्णयित्वा ॥ विमिश्रयेत्तत्र कणाशतानि यवान्न गोधूमयवांश्च पिष्ट्वा ॥ ४० ॥ तुगासमांशं सिततण्डुलानां सेयं सुभृङ्गारकमिश्रितं तु ॥ प्राकर्णकार्द्धेन वियोजनीयं सर्वांशकेनापि सिता प्रयोज्या ॥ ४१ ॥ विभावयेच्चामलकीरसेन वारत्रयं गोपयसा विभाव्य ॥ ततोऽस्य सर्वैश्च सशर्करैर्वा घृतेन चैव पुनरेव भाव्यम् ॥ ४२ ॥ तं भक्षये-

त्क्षौद्रयुतं पलार्द्धं जीर्णे च भोज्यं कटुकाम्लवर्जम् ॥ क्षीरं घृतं वा सितशर्करां वा यवान्नगोधूमकशालिभक्ष्यान् ॥ ४३ ॥ ज्ञात्वाग्निपाकं जठरे नरस्य देयो विधिज्ञैः क्षयरोगशान्त्यै ॥ पथ्यक्षये श्रान्तचिराभितापसंपीडितानां च तथा शिरोऽर्त्तौ ॥ ४४ ॥ पित्तातुराणां रुधिरक्षयाणां श्रमाध्वसंपीडितकामलानाम् ॥ श्वासातुराणां मधुमेहिनां च क्षीणेन्द्रियाणां बलकारि शस्तम् ॥ ४५ ॥ गर्भो गृहीतश्च यया स्त्रिया च तस्याः प्रशस्तं तु बलादिचूर्णम् ॥ ४६ ॥ इति बलादिचूर्णम् ॥

खरैंहटी, विदारीकंद, लघुपंचमूल अर्थात् सालवन, पिठवन, कटेहली, बडीकटेहली, गोखरू और पीपल, वड, गूलर, पिलखन, आंब इन पांचवृक्षोंकी छाल प्रयुक्त करनी चाहिये और सूंठ, नागरमोथा, वंशलोचन, और जीवनीआदिक गण औषध मुलहटी इन सबोंको समान भाग ॥ ३९ ॥ एक २ तोला प्रमाणले फिर इन सबोंका चूर्ण बना तिसमें सौ १०० पीपली मिला और जव, गेहूं, ॥ ४० ॥ उत्तम सफेद चावल, इन्होंको वंशलोचनके समान भागले पीसके मिलादेवै और पीछे कहीहुई प्रकरणकी सब औषधोंसे आधाभाग भंगरा और इनसबोंके समान मिश्री मिला ॥ ४१ ॥ फिर इसचूर्णको आंवलेके रसमें भावनादे पीछे तीनवार गौके दूधमें भावनादे फिर इस सबचूर्णके समान खांड मिला फिर घृतमें भावनादे ॥ ४२ ॥ फिर २ तोला प्रमाण तिसचूर्णको शहदके संग खावै और यह चूर्ण जरजावै तब भोजनकरै और चर्चरा तथा खट्टा भोजन नहींकरै और दूध, घृत, सफेदखांड, जव, गेहूं, शालिसाठीचावल इन्होंका भोजनकरै ॥ ४३ ॥ और मनुष्यके जठराग्निपाकको जानके विधिके जाननेवाले वैद्योंने क्षयरोगकी शांतिके वास्ते ॥ यह कहा है और मार्गमें क्षीणहुआ, हाराहुआ, बहुतकालसे संतापवाला इन्होंसे पीडितहुए पुरुषोंको और शिरकी पीडामें ॥ ४४ ॥ और पित्तसे आतुर, रुधिर क्षयवाले, श्रम, मार्ग, इन्होंसे पीडित, कामलारोगवाले, श्वासरोगवाले, मधुप्रमेहवाले, क्षीणइंद्रियवाले इन पुरुषोंको यह चूर्ण श्रेष्ठ कहा है ॥ ४५ ॥ और जिस स्त्रीके गर्भ ठहररहाहो तिसको यह बलादिचूर्ण श्रेष्ठ कहा है ॥ ४६ ॥

अथ च्यवनप्राशननामक अवलेह।

बिल्वाग्निमन्थशोणाकाः काश्मरी पाटली तथा ॥ शालिपर्णी पृश्निपर्णी श्वदंष्ट्रा बृहतीद्वयम् ॥ ४७ ॥ भृङ्गी शीता चामलकी जयन्ती पुष्कराह्वयम् ॥ द्राक्षाभयामृता मेदा चन्दनागुरुपद्मकम् ॥ ४८ ॥ बलाद्वयास्तु कर्णे द्वे जीवकर्षभावुभौ ॥

काकोली क्षीरकाकोली विदार्य्याः कन्दमांसकम् ॥ ४९ ॥ सर्वेषां पलिका मात्रा योजयेद्भिषजां वरः ॥ धात्री फलं पञ्चशतं सुपक्वरससंयुतम् ॥ ५० ॥ जलद्रोणे विपक्तव्यं चतुर्भागे च शोषितम् ॥ तथा निर्वाप्य मतिमान् कल्कानि समुद्धरेत् ॥ ५१॥ तत्क्वाथं कल्कयेत्तावद्यावद्दर्वीप्रलेपकः ॥ पुनस्तैलेन वाज्येन पक्त्वा चामलकीफलान् ॥ ५२ ॥ पाचिताश्चूर्णितान्सर्वान्समशर्करयायुतान् ॥ चतुष्पलातुगाक्षीरैर्योजयेद्भिषजांवरः ॥ ५३ ॥ पिप्पलीनां सहस्रैकं त्वगेलापत्रकं तथा ॥ एषां द्विपलिकां मात्रां विदध्यात्तत्रसत्तमः ॥ ५४ ॥ सर्वं प्राक्कथिते लेहे योजयेच्च विचूर्णितम् ॥ आदरेण समं लिह्यान्नराणां च रसायनम् ॥ ५५ ॥ श्वासकासक्षयपाण्डुकामलानां विशोषणम् ॥ क्षीणक्षतानां बालानां वृद्धानां देहरक्षणम् ॥ ५६ ॥ स्वरभङ्गपिपासानां हृद्रोगे पित्तशोणितम् ॥ शुक्रदोषं शिरोरोगं पीनसं चापकर्षति ॥ ५७ ॥ जीर्णज्वरञ्च मन्दाग्निं कुष्ठं दुष्टं भगन्दरम् ॥ मेहं कृच्छ्राश्मरीं हन्ति तथा रोचनवारणम् ॥ ५८ ॥हृद्रोगशूलमानाहं नाशयत्य-विसंशयम् ॥ वन्ध्यानां पुत्रजननं वृद्धा[illegible]रेतसाम् ॥ ५९ ॥ षण्ढोऽपि जायते चैवं सदा [illegible] परः ॥ मेधा स्मृता तथा तेजो वर्द्धयत्याशु निश्चितम् ॥ [illegible]० ॥ सौख्यसौभाग्यदर्शी च वृद्धोऽपि तरुणायते ॥ क्षयरोगविनाशाय कथितं चात्रिणा महत् ॥ ६१ ॥ च्यवनप्राशनं नाम कृष्णात्रेयविभाषितम् ॥६२॥ इति च्यवनप्राशनं नामावलेहः ॥

बेलगिरी, अरणी, सोनापाठा, खंबारी, शालवन, पिठवन, गोखरू, छोटी कटेहली, बडी कटेहली ॥ ४७ ॥ भांग, गंगेरन, भूमि आंवला, जयंती अर्थात् अरणीभेद, बडीअरणी पोहकरमूल, दाख, हरडैं, गिलोय, मैदा, चंदन, अगर, पद्माक, ॥ ४८ ॥ खरैंहटी, दोभाग दालचीनी, जीवक, ऋषभक, काकोली, क्षीरकाकोली, विदारीकंद ॥ ४९ ॥ इनसबोंको वैद्यजन चार २ तोला प्रमाणलेवे और पकेहुए रसके आंवले पांचसौ लेवे ॥ ५० ॥ पीछे इनसब औषधोंको एकहजार चौसठ १०६४ तोले जलमें पकावे फिर चतुर्थांश बाकी रहे

तब बुद्धिमान् पुरुष तिन औषधोंको निकाल आँवलोंकी गुठली निकालके उनकी कली करलेवे और पीसके पिठीसी करले ॥ ५१ ॥ फिर पूर्वोक्त काथ डालके पकावे फिर कडछी चपकनेमें लग तब उतारै और तेलमें अथवा घृतमें तिन आंवलोंकी पाठीको सेकले ॥ ५२ ॥ पीछे पकाये हुए तिस चूर्णमें बराबरकी खांड मिलावे और १६ सोलह तोले वंशलोचन मिलावे ॥ ५३ ॥ और उत्तम वैद्य इसीकहेहुए अवलेहमें हजारपीपली, दालचीनी ८ तोले, तेजपात ८ तोले, इन्होंका चूर्ण मिलादेवै ॥ ५४ ॥ पीछे यह लेह मनुष्योंको आदरसे चाटना चाहिये यह मनुष्योंको रसायन कहा है ॥ ५५ ॥ और श्वास, खांसी, पांडुरोग, कामला, इन रोगोंको नाशता है और क्षीणरोगसे क्षतहुए बालक, वृद्धजन, इन्होंके देहकी रक्षा करने वाला है ॥ ५६ ॥ स्वरभंग, पिपासा, हृदयरोग, पित्तरक्त, शुक्रदोष, शिरोरोग, पीनस इनरोगोंको दूर करता है ॥ ५७ ॥ जीर्णज्वर, मंदाग्नि, दुष्टकुष्ठ, भगंदर, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, पथरी, अरुचि, इनरोगोंको दूर करता है ॥ ५८ ॥ और हृदयरोग, शूल, अफारा, इन्होंको नाशता है इसमें संदेह नहीं यह चूर्ण वंध्यास्त्रियोंको पुत्रको देनेवाला है और अल्पवीर्यवाले वृद्ध ॥ ५९ ॥ नपुंसक इन्होंके वीर्यको बढानेवाला है और बुद्धि,स्मृति तेज, इन्होंको शीघ्रही निश्चय बढाता है ॥ ६० ॥ इसके खानेसे वृद्धपुरुषभी सुख सौभाग्यको देखता है और जवानकीतरह आचरण करता है यह महान् चूर्ण क्षयरोगोंके विनाशके वास्ते कृष्णात्रेयजी महाराजने कहा है ॥ ६१ ॥ यह कृष्णात्रेयमुनिने च्यवनप्राशननामक अवलेह कहा है॥ ६२॥

अथ अगस्तिहरीतकीपाक।

भार्ङ्गीपुष्करमूलचित्रककणामूलं गजाह्वा शठी शङ्खाह्वादशमूल चित्रकबलायासात्मगुप्तास्तथा ॥ एतेषां द्विपलांशकी भिषग्वर ! प्रोक्ता [illegible] द्वाढके पथ्या[illegible]कं विपाच्य बहुधा मन्दाग्निना संततम् ॥ ६३ ॥ निर्वाप्य पुनर॥ पूतसरसं चोद्धृत्य पथ्याशतं संशुष्यामतिशीतले सुभवनक्काथः प्रशस्तः पुनः ॥ दत्वा जीर्ण गुडस्य चैकतुलया कुडवश्च क्षौद्रं घृतं स्नेहस्यार्द्धमथाक्षकेण मगधा योज्यं शतं पञ्चकम् ॥ ६४ ॥ चूर्णं तत्र निधापयेत्पुनरपि संघट्टयेदुच्चकं पथ्ये द्वे मधुना सहातिहितकृत्सर्वामयच्छेदनः ॥ पाण्डुकासहलीमकगुदरुजो हृद्रोगहिक्काभ्रमान् हन्यात्पीनसमेहपित्तरक्तकुष्ठं च ग्रहण्यामयम् ॥ ६५ ॥ पुष्पं चैव तनोति शोफमरुचिगुल्मार्त्तिराजक्षयमेहानाहविबंधरोगशमनं क्षीणेन्द्रियाणां हितम् ॥ मन्दाग्नेः प्रशमं करोति वडवातुल्योऽरुचिबन्धको नाशं वा विदधाति देहसुखदागस्तिप्रणीतामया ॥ ६६ ॥

भारंगी, पोहकरमूळ, चीता, पीपलामूळ, गजपीपली, कचूर, शंखपुष्पी, दशमूल, चीता, खरैंहटी, जवांसा, कौंच, इन्होंको आठ आठ तोळा प्रमाण लेवे और सौ १०० हरडैं लेवे पीछे इन्होंको १२८० तोले जलमें मंद २ अग्निसे अच्छे प्रकारसे पकावे ॥ ६३ ॥ फिर पकजावे तब पूर्णरसवाळी पहले कहीहुई सौ १०० हरडोंको निकासलेवे और शीतलहुआ काथमाहसे तिनहरडोंको निकाळ फिर ४०० चारसौ तोळे पुराना गुड १६ तोळे शहद और १६ तोळे अथवा ८ तोळे घृत मिलावै और चतुरवैद्यको पांचसौ ५०० पीपली मिलानी चाहिये ॥ ६४ ॥ इन सबऔषधोंके चूर्णको एकजगह कूटके मिलादेवै फिर शहदके संग दोहरडै खानेसे सबरोगोंका नाशहोताहै, पांडुरोग, खांसी, हलीमक, गुदाका रोग, हृदयरोग, हिचकी, भ्रम इनरोगोंका नाश होता है और पीनस, प्रमेह, रक्तपित्त, कुष्ठ, संग्रहणी, इनरोगोंको नाशता है ॥ ६५ ॥ और स्त्रीके पुष्पको बढाता है, शोजा, अरुचि, गुल्म, राजयक्ष्मा, मूत्ररोग, आनाह, मलका, बंधा इनरोगोंको नाशता है और क्षीणइंद्रियवालोंको यह हरीतकीपाक हित है और मंदाग्निको शांत करता है और अरुचिरोगके नाशके वास्ते अग्निके समान कहा है और अगस्तिऋषिसे कहाहुआ यह हरीतकीपाक देहको सुख देनेवाला है ॥ ६६ ॥

अथ बलाक्वाथ।

बलाद्वयं गोक्षुरको बृहत्यौ निष्क्वाथ्य दुग्धेन कणासमेतम् ॥ पानं हितं स्यान्मधुना सिताढ्यं विनाशनं कामलकं क्षयं वा ॥ मेहस्य तृष्णाशय नाशकारि क्षीणेन्द्रियाणां बलमातनोति॥६७॥

और खरैंहटी, गोखरू, छोटी कटेहली, बडीकटेहली, पीपली, इन्होंको दुग्धमें क्वाथबना फिर शहद और मिश्री मिला पीना पथ्य है कामला, क्षयरोग, प्रमेह, तृषा, इनरोगोंका नाश होता है और क्षीणइंद्रियवाले पुरुषोंके बलको [illegible] वाला है ॥ [illegible] ॥

अथ पिप्पली[illegible]र्द्धमानम्।

पिप्पलीं वर्द्धमानं वा कारयेद्[illegible]सर्पिषा ॥ आद्यः पञ्च पुनः सप्त पुनरेव नव क्रमात् ॥ ६८ ॥ एकादशस्त्रयोदशः पञ्चदशस्तथा सप्तदशः स्मृतः ॥ एकोनविंश एकविंशः पृथक्पृथग्यथाक्रमम् ॥ ॥ ६९ ॥ एवं क्रमेण वृद्धिः स्यात्कारयेच्छतमात्रया ॥ ततः क्रमेण पुनः पश्चाद्यावच्छेषं च पञ्चकम् ॥ ७० ॥ भोजयेत्षाष्टिकान्नं तु मुद्गेन सर्पिषा युतम् ॥ एवं बालश्च वृद्धश्च नरो नागबलो भवेत् ॥ ७१ ॥ पिप्पली वर्द्धमाना तु ज्वरे जीर्णे प्रशस्यते ॥ मन्दाग्नौ पीतमेवाथ गुदजे वा तथा पुनः ॥ ७२ ॥ ॥ इति पिप्पलीवर्द्धमानम् ॥

दुग्ध और घृतके संग पिप्पली वर्द्धमान बनाया जाता है तिसको कहते हैं क्रमसे पहले पांच फिर सात फिर नव पीपलोंको दूधमें पका घृत मिला पानकरना चाहिये ॥ ६८ ॥ और पीछले दिन ग्यारह फिर १३ पीछे १५ पीछे १७ पीछे १९ पीछे २१ ऐसे बढतीहुई ॥ ६९ ॥ ऐसे दिन २ प्रति दो बढतीहुई सौ पीपलोंतक बढालेनी चाहिये ॥ ६९ ॥ पीछे क्रमसे घटतीहुई जबतक पांच शेष रहें तबतक सेवनकरै ॥ ७० ॥ और इसपै सांठी चावलों को मूंग और घृतके संग भोजन करै बालक अथवा वृद्धजन इसप्रकार इसका पान करताहुआ हस्तीके समान पराक्रमवाला होजाता है ॥ ७१ ॥ और यह पीपली वर्द्धमान जीर्णज्वरमें श्रेष्ठ कहा है और मंदाग्निमें तथा गुदाके रोगमें पीना हित है ॥ ७२ ॥

अथ शिलाजतुचूर्ण ।

द्वे पले मार्कवं धातुःमाक्षिकं च पुनर्नवा ॥ तुगा पृक्का शालिपर्णी वासकं च दुरालभा ॥ ७३ ॥ चूर्णार्द्धेन समं योज्यं त्रिगन्धं मरिचानि च ॥ तालीसं मगधा चैव तदर्द्धेन शिलोद्भवम् ॥ ७४ ॥ शिलाभेदं तदर्द्धेन सर्वं चैकत्र मिश्रयेत् ॥ समेन तिलचूर्णं तु शर्करायाः समायुतम् ॥ ७५ ॥ भक्षयेत्क्षीरपानं वा शस्यते घृतसंयुतम् ॥ तेन क्षयो राजयक्ष्मा कामला च विनश्यति ॥ ॥ ७६ ॥ अपस्मारं जयत्याशु बलवीर्य्याधिको भवेत् ॥ शाम्यन्ति च महारोगाः शुक्राढ्यो जायते नरः ॥ ७७ ॥ इति शिलाजतुचूर्णम् ॥

भंगरा [illegible]ले, सोनामाखी ५ तोले, [illegible] ५ तोले, वंशलोचन ५ तोले, पृक्कासंज्ञकवृक्षकी छाल ८ तोले, वांसा ८ तोले, शालप[illegible] ८ तोले, जवासा ८ तोले ॥ ७३ ॥ और ४ तोले त्रिगंध अर्थात् इलायची, दालचीनी, तेजपात, मिरच ४ तोले और तालीसपत्र, पीपली, शिलाजीत ये दोदो तोले ॥ ७४ ॥ पाषाणभेद १ तोला ऐसे इन औषधोंको मिला चूर्ण बनालेवे और इसचूर्णके समान तिलोंका चूर्ण और खांड मिलावे ॥ ७५ ॥ पीछे इसचूर्णको घृतके संग भोजन करै अथवा इसके ऊपर दूधको पीवे इसचूर्णसे क्षयीका रोग, राजयक्ष्मा, कामला इन रोगोंका नाश होता है ॥ ७६ ॥ और मृगीरोगको शीघ्रही दूर करता है बल, वीर्य, इन्होंको बढाता है और महारोग शांत होजाते हैं और इसके खानेसे मनुष्य वीर्यसे युक्त होजाता है ॥ ७७ ॥

अथ जीवंत्यादि घृत ।

जीवन्तिकावत्सकयष्टिकानां सपौष्करं गोक्षुरकं बले द्वे ॥ नीलोत्पलं चामलकी यवासं [illegible] मगधा च कुष्ठम् ॥ ७८ ॥

द्राक्षामलक्या रसप्रस्थमेकं प्रस्थद्वयं छागलकं पयश्च ॥ प्रस्थं दधिषु पचेद्घृतं वह्निवातं पाने प्रशस्तमेव भोज्ये ॥ ७९ ॥ नस्ये च बस्तावपि योजयेत्तद्विनाशमेत्याशु च राजयक्ष्मा ॥ हलीमकः कामलपांडुरोगो मूर्च्छा भ्रमः कम्पशिरोऽर्त्तिशूलम् ॥ ८० ॥ महाश्मरी वा गुदकीलकुष्टं शिरोगतो नाशमुपैति रोगः ॥ तस्य प्रदानेन वियोजितेन पानेन पाण्ड्वामयराजयक्ष्मा ॥ ८१ ॥ नाशं शमं याति हलीमको वा बस्तिप्रदानेन गुदोद्भवाश्च ॥ रोगो विनाशं समुपैति पुंसां विसर्पविस्फोटकप्रोक्षणेन ॥ ८२ ॥

गिलोय, कूडाकी छाल, मुलहटी, पोहकरमूल, गोखरू, छोटी कटेहली, बडीकटेहली, नीला कमल, भूमिआंवला, जवासा, त्रायमाण, पीपली, कूट ॥ ७८ ॥ दाख, इन्होंको समान भाग ले फिर आंवलोंका रस ६४ तोले, बकरीका दूध १२८ तोले, दही ६४ तोले, घृत ६४ तोले इन्होंमें मिला अग्निसे पकावे यह घृत पानमें और भोजनमें हित कहा है ॥ ७९ ॥ और नस्यमें तथा बस्तिकर्ममें भी युक्त करना हित कहा है और राजयक्ष्मा, हलीमक, कामला, पांडुरोग, मूर्च्छा, भ्रम, कंपरोग, शिरकी पीडा, शूल इन रोगोंको नाशता है ॥ ८० ॥ महा पथरी, गुदकील, कुष्ठ, शिरका रोग इन्होंका नाश होता है और इस घृतका पान करनेसे पांडुरोग, राजयक्ष्मा ॥ ८१ ॥ हलीमक, इन रोगोंका नाश होता है और इस घृतको बस्तिकर्ममें वर्त्तनेसे गुदाके रोग दूर होते हैं और इस घृतके मोक्षण अर्थात् शरीरपै छिडकनेसे विसर्प, विस्फोटक इनरोगोंका नाश होता है ॥ ८२ ॥

अथ पिप्पली [illegible] घृत।

कणा पलाशः पञ्चगुणं पयश्च [illegible] घृतं वै विपचेत्समांशम् ॥ पानेऽथवा भोजनके प्रशस्तं देयं च राजक्षयनाशहेतोः ॥ ८३ ॥

पीपली, केशू, इन्होंको समान भागले इन्होंसे पांचगुना, दूधमें इन औषधोंके समानभाग गौके घृतको और इन औषधोंको पकावे यह घृत पानमें और भोजनमें श्रेष्ठ है और राजयक्ष्मा, क्षयरोग, इन्होंका नाश करता है ॥ ८३ ॥

अथ पंचकोलआदि घृत।

पञ्चकोलं यवाग्रश्च क्षीरं दध्ना घृतं पुनः ॥ समांशेन तु योज्यानि भार्ङ्गी कुष्ठं तु पौष्करम् ॥ ८४ ॥ शतं तत्र हरीतक्या जले चैव चतुर्गुणे [illegible] योज्यं [illegible]म्मृदुवह्निना ॥ ८५ ॥

मृदुपाकं घृतं सिद्धं पाने नस्ये च वस्तिषु ॥ गुणाधिक्यं भवेन्नृणां पाण्डुरोगे हलीमके ॥ ८६ ॥ राजयक्ष्मणि क्षये चैव शस्तं चोक्तं भिषग्वर ! ॥ ८७ ॥

पञ्चकोल अर्थात् पीपळ, पीपलामूल, चव्य, चीता, सूंठ, जवाखार, दूध, दही, घृत, भारंगी कूठ, पोहकरमूल ॥ ८४ ॥ इन सबोंको समान भागले और सौ १०० हरडैंले फिर इन औषधोंसे चौगुने जलमें मन्द २ अग्निसे क्काथ बनावे मन्द २ अग्निसे पकायाहुआ ॥ ८५ ॥ यह घृत पानमें, नस्यमें, और बस्तिकर्ममें युक्त करना श्रेष्ठ है और पांडुरोग, हलीमक ॥ ८६ ॥ इनरोगोंमें मनुष्योंके अधिक गुण करनेवाला है और हे उत्तम वैद्य ! राजयक्ष्मारोगमें यह घृत श्रेष्ठ है ॥ ८७ ॥

अथ पाराशर घृत ।

यष्टी बला गुडूची च पञ्चमूलं समांशकम् ॥ क्काथेन सदृशं धात्रीरसं चेक्षुरसं तथा ॥ ८८ ॥ विदार्य्याश्च रसं चैव घृतं च समभागिकम् ॥ क्षीरं दधिसमं चात्र नवनीतं तु तत्समम् ॥ ८९ ॥ द्राक्षातालीससंयुक्तं यथालाभेन योजयेत् ॥ सिद्धं घृतं च पानाय नस्ये वस्तौ प्रदापयेत् ॥ ९९ ॥ जयति राजयक्ष्माणं पाण्डुरोगं सुदारुणम् ॥ हलीमकं चार्शसं च रक्तपित्तनिवारणम् ॥ ९१ ॥ लेपेन दुष्टवैसर्पपित्तदग्धव्रणापहम् ॥ ९२ ॥

मुलहटी, सरहटी, गिलोय, पंचमूल, [illegible]ंको समानभागले क्काथ बनावे और क्काथके समान आंवलाका रस, और ईखका रस ॥ ८८ ॥ और विदारीकंदका रस मिलावे इन औषधोंके समानभाग घृत और दूध, दही, नौंनी घृत इन सबोंको समानभाग ले ॥ ८९ ॥ और दाख, तालीसपत्र इन्होंको अनुमानमुवाफिक मिला फिर इस घृतको सिद्धकरि पानमें और नस्यमें बस्तिकर्ममें देना श्रेष्ठ है ॥ ९० ॥ और राजयक्ष्मा, पांडुरोग, हलीमक, बवासीर, रक्तपित्त, इन्होंका नाश होता है ॥ ९१ ॥ और इस घृतका लेप करनेसे दुष्टविसर्परोग, पित्तरोग, दग्ध, व्रण, इन्होंका नाश होता है ॥ ९२ ॥

अथ बलाआदि घृत ।

बला श्वदंष्ट्रा बृहतीद्वयं च पर्णीद्वयं गोक्षुरकं स्थिरा च ॥ पटोलनिम्बस्य दलानि मुस्तं सत्रायमाणा च दुरालभा च ॥ ९३ ॥ कृत्वा कषायं च यदावशेषं पूतीकृते चूर्णमिदं प्रयुंज्यात् ॥ द्राक्षा

शठी पुष्करमूलधात्री तमालकी दुग्धसमं कषायम् ॥ ९४ ॥ सर्पिःप्रयुक्तं नवनीतकं च सर्पिस्तदर्द्धेन नियोजनीयम् ॥ सिद्धं घृतं पानमथैव बस्तौ नस्ये तथाभ्यञ्जनभोजनेन ॥ ९५ ॥ जघन्यकासक्षयकामलानां राजक्षये क्षीणबलेन्द्रियाणाम् ॥ क्षतेषु शोफेषु व्रणेषु शस्तं शिरोऽर्त्तिपार्श्वार्त्तिगुदामयघ्नम् ॥ ९६ ॥

खरैंहटी, बडा गोखरू, छोटी कँटेहली, बडी कटेहली, माषपर्णी, मूंगपर्णी, छोटा गोखरू, शालपर्णी, परवल, नींबके पत्ते, नागरमोथा, त्रायमाण, जवासा ॥ ९३ ॥ इन्होंका क्वाथ बना जब चतुर्थांश बाकी रहै तब उतारि वस्त्रमांहके छानि पीछे दाख, कचूर, पोहकरमूल, आंवला, भूमिआंवला, इन्होंका चूर्ण मिलावे और इस क्वाथके समान दूध मिला ॥ ९४ ॥ और नूनीघृत नूनीघृतसे आधा और घृत मिला पीछे इस घृतको तिस क्वाथमें पकावे फिर यह घृत पीनेमें बस्तिकर्ममें नस्यमें मालिसमें भोजनमें वर्त्तना श्रेष्ठ कहा है ॥ ९५ ॥ अत्यंत खांसी, क्षयरोग, कामला, राजयक्ष्मा, इन रोगोंको नाशता है और क्षीण इंद्रियोंवाले तथा क्षीण बलवाले पुरुषोंको हित कहाहै क्षतरोग, शोजा, व्रण, शिरकी पीडा, पशलीपीडा, गुदाका रोग इन्होंका नाश करता है (इस जगह गोखरू दोवार लिखा है सो दो भागलेना इसी तरह अन्य जगह भी जानलेना) ॥ ९६ ॥

अथ चन्दनादि तैल ।

चन्दनं सरलं दारु यष्टयेला वालकं शठी ॥ नलशैलेयकं पृक्का पद्मकं वनकेसरम् ॥ ९७ ॥ कङ्कोलकं मुरामांसी शैरियं द्विहरीतकी ॥ रेणुकात्वक्कुङ्कुमञ्च सारिवा तक्काशुरुः ॥ ९८ ॥ नलिकाबले तथा द्राक्षा कषायं सुपरिस्रुतम् ॥ तैलमस्तु तथा लाजारसेन समभागिकम् ॥ ९९ ॥ मन्दाग्निना पचेत्तैलं सिद्धं पाने च बस्तिषु ॥ नस्ये चाभ्यञ्जने चैव योजयेत्ताद्भिषग्वरः ॥ १०० ॥ हन्ति पांडुक्षयं कासं ग्रहघ्नं बलवर्णकृत् ॥ मन्दज्वरमपस्मारकुष्ठपामाहरं पुनः ॥ १०१ ॥ करोति बलपुष्टयोजो मेधाप्रज्ञायुर्वर्द्धनम् ॥ रूपसौभाग्यदं प्रोक्तं सर्वभूतयशस्करम् ॥ १०२ ॥

चन्दन, सरळ, देवदार, मूलहटी, इलायची, नेत्रवाला, कचूर, नड, शिलारस, पृक्कासंज्ञक वृक्ष, पद्माक, वनकेशर, ॥ ९७ ॥ कंकोल, मुरामांसी, लोबान, दोनों प्रकारकी हरडै, रेणुका, दालचीनी, केशर, दोनों प्रकारकी सारिवा, अनंतमूल, कुटकी, अगर ॥ ९८ ॥ नाडीशाक,

खरेहटी, दाख, इन्होंका क्वाथ बनावे और पीछे तिस क्वाथमें तेल, दहीका मस्तु, धानकी खीलोंका रस, इन्होंको समान भागले मिलावे ॥ ९९ ॥ इस तैलको मन्द २ अग्निसे पकावे सिद्ध किया हुआ यह तैल वैद्यजनोंको पीनेमें, बस्तिकर्ममें, नस्यमें तथा मालिसमें वर्तना चाहिये ॥ १०० ॥ यह तैल पांडुरोग, क्षयरोग, खांसी ग्रहदोष इन्होंको नाशता है और बल वर्ण इन्होंको करता है मन्दज्वर, अपस्मार, कुष्ठ, पामा, इन रोगोंको नाशता है ॥ १०१ ॥ और बल, पुष्टि, पराक्रम, मेधा, बुद्धि, वायु इन्होंको बढाता है रूप सौभाग्य इन्होंको करता है सम्पूर्ण भूतपीडाको दूर करता है ॥ १०२ ॥

अथ राजयक्ष्मारोगका निदान ।

स्वामिभार्य्याभिगमने गुरुपत्न्यभिलाषणात् ॥ राजस्वहेमचौर्य्याद्वा राजयक्ष्मा भवेद्ध्रुवः ॥ १०३ ॥ अथवा दुष्टरोगेण जायते शृणु पुत्रक॥ चतुर्भिर्हेतुभिर्यक्ष्मा जायते शृणु साम्प्रतम्॥१०४॥ व्यायामयानसुरतागतिपीडिताङ्गरोगेण वा व्रणनिपीडितक्षीणदेहात् ॥ क्रोधातिशोकानशनादिभयोपवासैः सञ्जायते च मनुजस्य महागदोऽयम् ॥ १०५ ॥ वार्द्धक्याद्वा भवति नितरां ज्याधनुःकर्षणेन भारात्यर्थं भवति हननोत्पातबन्धेन युद्धात् ॥ दूराध्मानात्कदशनवशाच्चिन्तयातिव्यवायात्सम्भूतिः स्यान्मनुजबलहृद्राजयक्ष्मेतिसंज्ञः ॥ १०६ ॥

[illegible] करनेसे [illegible] की स्त्रीकी अभिलाषा करनेसे राजाका द्रव्य और सुवर्णकी चोरी करनेसे राजयक्ष्मा रोग हो[illegible] है ॥ १०३ ॥ अथवा दुष्टरोगसे होता है सो हे पुत्र ! चारहेतुओंकरके यह राजयक्ष्मा रोग हो[illegible] है सो सुन ॥ १०४ ॥ कसरत, असवारी, मैथुन, गमन, इन्होंसे पीडित अंग होनेसे रोगसे व्रणसे पीडित होनेसे क्षीण देह होनेसे क्रोध, अतिशोक, लंघन करना, भय, व्रत, इन्होंसे मनुष्यके यह महान् रोग होता है ॥ १०५॥ निरंतर धनुष्यके खींचनेसे बुढापा होजाता है तिस्से और अत्यंत भार उठानेसे चोर आदिके उत्पातसे युद्धसे दूरसे अग्निको धमानेसे बुरा भोजन करनेसे चिंता करनेसे अति मैथुनसे मनुष्यके बलको हरनेवाला राजयक्ष्मासंज्ञकरोग होजाता है ॥ १०६ ॥

अथ राजयक्ष्माके लक्षण ।

क्षतक्षयाच्छ्रमाद्वापि सहसोपप्लवादपि ॥ व्यवायातिप्रसङ्गेन तथा रूक्षातिसेवनात् ॥१०७॥ तेन संक्षीयते गात्रं ज्वरो मन्दश्च जायते ॥ ज्वरान्ते जायते शोफो मलविट् चातिमूत्रता॥१०८॥अति-

सारश्च भवति भक्षणेनातिशेपते ॥ कासते ष्ठीवतेऽत्यर्थं शोपश्च कुरुते भृशम् ॥ १०९ ॥ स्त्रियोऽभिलाषतात्यर्थं वार्त्तायाद्विपता पुनः ॥ राजयक्ष्मेति विज्ञेयो गदः साध्यो न विद्यते ॥ ११० ॥ सुप्तौ पादौ भवेतां तु ग्रासश्च बहु मन्यते ॥ शब्दे च पटुता यस्य राजयक्ष्मा न जीर्य्यति ॥ १११ ॥

और उरःक्षतसे, क्षयहोनेसे अथवा श्रमसे एकवार जोरसे कूदनेसे अत्यंत स्त्रीसंग करनेसे रूखा भोजन सेवनेसे ॥ १०७ ॥ शरीर क्षीण होजाता है और मंदज्वर होजाता है और ज्वरके अंतमें शोजा होजाता है मैल और विष्ठा मूत्र अत्यंत उतरता है ॥ १०८ ॥ और अतिसार होता है भोजन कियाहुआ जरता नहीं है अत्यंत खांसता है और अत्यंत थूकता है बहुतसा शोष होजाता है ॥ १०९ ॥ स्त्रीकी अभिलाषा अत्यंत रहती है और वार्ता नहीं सुनी जाती है ऐसा यह राजयक्ष्मा रोग कहाता है यह साध्य नहीं कहा है ॥ ११० ॥ जिसके पैर शून्य होजावे और एकग्रास भोजनकोभी बहुत माने और जिसकी बोली नम्रहो ऐसे पुरुषका राजयक्ष्मा रोग शांत नहीं होता है ॥ १११ ॥

अथ राजयक्ष्माका इलाज ।

यदन्नं यत्समाहारं यादृशं प्रतियाचते ॥ तत्तस्य च प्रदातव्यं मधुरं घनमेव च ॥ ११२ ॥ यद्यदाहारमिच्छेद्वा नरं वा राजयक्ष्मिणम् ॥ तस्य तस्यास्य लाभेन क्षीयन्ते नास्य धातवः ॥ ११३ ॥ यदा सरक्ताः शोफाः स्युः पाकवंद[illegible] मानव ॥ तदा पुनर्नवाक्वाथः सलेशः प्रविधीयते ॥ ११४ ॥

और जो अन्न अथवा जो पदार्थ राजयक्ष्मारोगवालेको देवै वही उसको मधुर और करडा देना चाहिये ॥ ११२ ॥ और राजयक्ष्मारोगवालेको जिस २ भोजनकी इच्छा होती है उसी २ भोजनसे इसकी धातु क्षीण होती है ॥ ११३ ॥ जो यदि राजयक्ष्मारोगवाले पुरुषके रक्तसहित शोजा होवे और पकजावे तो सांठीका क्वाथ किंचित्मात्र देना चाहिये ॥ ११४ ॥

अथ राजयक्ष्मावालेकी आयुष्यमर्यादा ।

सञ्जीवेच्चतुरो मासान्षण्मासं वा बलाधिकः ॥ उत्कृष्टैश्च प्रतीकारैः सहस्राहं तु जीवति ॥ ११५ ॥ सहस्रात्परतो नास्ति जीवितं राजयक्ष्मिणः ॥ गतप्राणौजोवीर्य्यश्च क्षीणश्च विकलेन्द्रियः ॥ ११६ ॥ न भवेत्पुनरुच्छ्रायो याप्यरोगश्च मुञ्चति ॥ यस्तदाया-

ससम्पन्नो भूयोऽपि कासना भवेत् ॥ ११७ ॥ तस्य प्राणापहारी स्याद्राजयक्ष्मातिदारुणः ॥ त्रिभिर्मासैश्च षण्मासैर्वर्षैश्चापि त्रिभिः पुनः ॥ ११८ ॥

राजयक्ष्मारोगवाला पुरुष चारमहीनोंतक जीवता है और बल अधिकहोवे तो छमहीनोंतक जीवता है और अत्यंत इलाज होतेरहैं तो हजारदिनोंतक जीवता है ॥ ११५ ॥ राजयक्ष्मारोगवाले पुरुषका जीवना हजारदिनोंसे उपरांत नहीं होता है और माण बल वीर्य इन्होंसे हीन होजाता है क्षीण होजाता है इंद्रियविकल होजाती हैं ॥ ११६ ॥ और जो रोग फिर नहीं बढाता है वह याप्यरोग छुटजाता है और जो तिसरोगके परिश्रमसे युक्तहुआ फिर खांसीसे युक्त होजाता है ॥ ११७ ॥ तिसपुरुषका तीन महीनोंमें अथवा छमहीनोंमें माणोंका नाश होता है ॥ ११८ ॥

अथ अमृतप्राशनघृत ।

शतमूलीरसे प्रस्थं गुडूचीकल्कप्रस्थकम् ॥ हरीतकीशतानां च कुटजस्य त्वचा तुलाम् ॥ ११९ ॥ निष्क्वाथ्य च पृथक्त्वेन पूतनाश्चैकत्र मिश्रयेत् ॥ दार्वीप्रलेपनं कृत्वा गुडानां शतपञ्चकम् ॥ १२० ॥ सिता चामलकीचूर्णं त्वगेला चित्रकं शठी ॥ द्राक्षा कुष्ठं शिलाजिच्च शिलाभेदस्तु तालकम् ॥ १२१ ॥ योज्यं तत्राक्षमानेन [illegible]सर्पिषा ॥ तस्योपरि पिबेत्क्षीरं भोजनञ्च ततः परम् ॥ [illegible]२२ ॥ राजयक्ष्मी लभेत्सौख्यं पाण्डुकामलकाञ्जयेत् ॥ अती[illegible]सारं विनश्यति बले नागबलो भवेत् ॥ १२३ ॥

शतावरीका रस ६४ तोले गिलोयका कल्क ६४ तोले, बडी सौ १०० हरडोंकी छाल और कुडाकी छाल ४०० तोले ॥ ११९ ॥ इन्होंका जुदा २ काढा बना फिर छानिके एक जगह मिलालेवे पीछे अग्निपर पकावे जब कडछीके चपकने लगजावै तब ५०० पानसौ मुनक्का दाख ॥ १२० ॥ मिसरी, आंवलाका चूर्ण, दालचीनी, इलायची, चीता, कचूर, दाख, कूट शिलाजीत शिलाभेद, शुद्धमारित हरताल॥ १२१ ॥ इन्होंको एक २ तोला प्रमाण गेरै पीछे इसको अच्छे घृतके संग खावे इसके ऊपर दूध पीवे पीछे भोजनकरै ॥ १२२ ॥ इसके खानेसे राजयक्ष्मारोगवाला पुरुष सुखको प्राप्त होताहै और पांडुरोग ,कामला, अतीसार इन्होंका नाश होता है हस्तीके समान बल होजाता है ॥ १२३ ॥

अथ तालकाम्रातक।

तालकं च शिलाभेदस्तथा चैव शिलाजतुः ॥ क्षीरके द्वे समङ्गा च कुष्ठं नागबला बला ॥ १२४ ॥ एलापत्रकतालीसं तमालं हरिचन्दनम् ॥ मुस्ता द्राक्षा च रास्ना च मुण्डी शैलेयकं पुरः ॥ १२५ ॥ सुरसा चैव संयोज्या तिलाः कृष्णा द्विभागिकाः ॥ चूर्णं सूक्ष्मं प्रयुञ्जीत गुडेन मधुना युतम् ॥ १२६ ॥ पश्चाद्गोक्षीरपानं स्यात्क्षीरेण सह भोजनम् ॥ राजयक्ष्मादिभिः क्षीणा ग्रहणीपीडिताश्च ये ॥ १२७ ॥ धातुक्षीणबला ये च तेषां संयोजयेद्भृशम्॥वृद्धोपि तरुणो भूत्वा नरो नार्य्याभिनन्दाति॥१२८॥ वन्ध्यापि लभते पुत्रं षण्ढोऽपि पुरुषायते ॥ तालकाम्रातकं नाम कृष्णात्रेयविभाषितम् ॥ १२९ ॥

शुद्ध और मारित हरताल, पाषाणभेद, शिलाजीत, काकोली, क्षीरकाकोली, मंजीठ, कूठ, बडीखरैंहटी, खरैंहटी ॥ १२४ ॥ इलायची, तेजपात, तालीसपत्र, तमालपत्र, लालचंदन, नागरमोथा, दाख, रास्ना, गोरखमुंडी, लोबान, गूगल ॥ १२५ ॥ तुलसी, और कालेतिल दो भाग, इन्होंका सूक्ष्म चूर्ण बना तिसमें गुड और शहद मिला भक्षण करे ॥ १२६ ॥ और पीछे गौके दूधको पीवे और दूधके संगही भोजन करे, जो पुरुष राजयक्ष्माआदि रोगोंसे पीडित है और जो ग्रहणी रोगसे पीडित है ॥१२७॥ और धातुक्षीणरोगवाले इन्होंको यह चूर्ण देना चाहिये और इसके खानेसे वृद्धपुरुषभी जवान होके स्त्रीके संग रमण करता है ॥१२८॥ वंध्या स्त्री पुत्रको प्राप्त होजाती है और नपुंसकभी पुरुषकी तरह आचरण करता है यह तालकाम्रातकनामवाला औषध कृष्णात्रेयजीने कहा है ॥ १२९ ॥

अथ गुडूच्यादिचूर्ण।

गुडूची च बले द्वे च धात्री च मरिचानि च ॥
चूर्णं गुडेन संयुक्तं राजयक्ष्मापहं नृणाम् ॥ १३० ॥

और गिलोय दोनों प्रकारकी खरैंहटी, आंवला, मिरच इन्होंका, चूर्ण गुडमें मिला खानेसे राजयक्ष्मारोगका नाश होता है ॥ १३० ॥

अथ क्षयरोगपर पथ्यापथ्य।

शालिषष्टिकगोधूमवास्तुकं जाङ्गलानि च ॥ मुद्गांश्च गोपयश्चैव शशकैणकुरङ्गिणाम् ॥ १३१ ॥ तित्तिरक्रौञ्चलावानां वार्त्ताक-

पिच्छकच्छागलानां हि ॥ कथितानि मांसादीनि प्रलेपकानि जगति च ॥१३२॥ विभोजयेत्क्षीरसर्पिः क्षये वा राजयक्ष्मिणः॥ क्षाराम्लकटुकं तीक्ष्णं तैलं सौवीरकं सुरा ॥ राजिकावर्जिताश्चैते क्षये वा राजयक्ष्मिणः ॥ १३३ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने क्षयरोगचिकित्सा नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

और शालीसंज्ञक तथा सांठीचावल, गेहूं, वथुवाका शाक, जांगलदेशके जीवोंका मांस, मूंग, गौका दूध, और शूसा, कालाहिरन, हिरन ॥ १३१ ॥ तीतर, कुंजि, लावा, वत्तक, मोर, बकरा इन्होंका मांस, इनसबोंका भोजन करना श्रेष्ठ कहा है ॥ १३२ ॥ और राजयक्ष्मा रोगमें तथा क्षयरोगमें दूध और घृतका भोजन करना श्रेष्ठ कहा है और खारा, खट्टा, चर्चरा, तीक्ष्ण, ऐसा पदार्थ, तैल, कांजी, मदिरा, राई ये क्षयमें तथा राजयक्ष्मा रोगमें वर्जदेने चाहिये ॥ १३३ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने क्षयरोगचिकित्सानाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अथ दशमोऽध्यायः १०.

अथ रक्तपित्तका निदान और चिकित्सा।

अतिघर्मतया [illegible] तीक्ष्णकटुसेवनात्॥क्षाराम्लसेवनाद्वापि मद्यपानादिसेवनात् ॥ १ ॥ अतिव्यवायाच्छीतेन शुष्कशाकादिसेवनात् ॥ एतैस्तु कुपितं पित्तं रक्तेन सह मूर्च्छितम् ॥ २ ॥ पुत्रस्तु संशयापन्नः पप्रच्छ पितरं पुनः ॥ ३ ॥

आत्रेयजी कहते हैं–अत्यंत घामसे और तीक्ष्ण तथा गरमवस्तुके सेवनेसे और खारे खट्टे पदार्थके सेवनेसे तथा मदिराके सेवनेसे ॥ १ ॥ अत्यंत मैथुनके सेवनेसे, शीतलपदार्थके सेवनेसे सूखेशाकादिके सेवनेसे कुपित हुआ पित्त रक्तके संग मूर्च्छाको प्राप्तहोजाता है ॥२ ॥ ऐसे सुन संशयमें युक्तहुआ हारीत आत्रेयजीसे पूछता है ॥ ३ ॥

हारीत उवाच ॥ कथं पित्तं प्रकुपितं केन वापि प्रचाल्यते ॥ तद्वद्रक्तं प्रकुपितं जायते केन हेतुना ॥ ४ ॥ युगपद्दृश्यते केन कथं वापि प्रवर्त्तते ॥ एवं पृष्टो महाचार्य्यः प्रोवाच मुनिपुङ्गवः ५

हारीत कहते हैं-पित्त कैसे कुपित होता है और किस्से चलायमान होता है और तैसे रक्तका कोप किस कारणसे होता है ॥ ४ ॥ एकवार दोनोंमिले किसहेतुसे दीखते हैं और कैसे प्रवृत्त होते हैं ऐसे पूछेहुए महाचार्य उत्तममुनि कहते भये ॥ ५ ॥

आत्रेय उवाच ॥ शृणु प्राज्ञ महातेजश्चिकित्सागमपारग ॥ येनैव कुप्यते पित्तं रक्तं तेनैव कुप्यते ॥ ६ ॥ तावत्प्रकुपिते कोष्ठे वायुर्दारयते भृशम् ॥ ऊर्ध्वं च नयते प्राणश्चापानोऽपानमीरति ॥ ७ ॥ मध्ये समानः कुरुते रक्तपित्तस्य कोपनम् ॥ एवं युगपत्पित्तश्च रक्तेन सह कुप्यति ॥ ८ ॥ चतुर्द्धा दृश्यते कोपो गतिश्चास्य द्विधा मता ॥ ऊर्ध्वश्लेष्मणि संसृष्टं नासास्ये कर्णरन्ध्रयोः ॥ ९ ॥ रक्तं प्रवर्त्तते यस्य साध्यास्तु विजिगीषुणा ॥ अधोयातेन संसृष्टं गुदेनापि प्रवर्त्तते ॥ १० ॥ स ज्ञेयो रक्तपित्तस्तु कृच्छ्रेण सिद्धिमिच्छति ॥ उभाभ्यामधऊर्ध्वाभ्यां वातश्लेष्मणि वर्त्तते ॥ ११ ॥ तमसाध्यं विजानीयात्कृच्छ्रेण यदि सिध्यति ॥ १२ ॥ एकमार्गबलतो वा नाभिवेगेन चोत्थितः ॥ रक्तपित्तः सुखेनापि साध्यः स्यान्निरुपद्रवः ॥ १३ ॥ एकदोषानुगः साध्यो द्विदोषो याप्य उच्यते ॥ असाध्यस्तु त्रिदोषेषु रक्तपित्तः प्रवर्त्तते ॥ १[illegible] ॥ ऊर्ध्वगरक्तपित्तेषु विरेकं कारयेत्सुधीः ॥ अधोभागगते र[illegible] तदास्य वमनं हितम् ॥ १५ ॥

आत्रेयजी कहते हैं-हे प्राज्ञ ! महातेजवाले ! वैद्यकशास्त्रके पारको जाननेवाले ! तू सुन जिसकारणसे पित्त कुपित होता है तिसीकारणसे रक्त कुपित होता है ॥ ६ ॥ पहले कोष्ठस्थानमें पित्त कुपितहोके वायुको अत्यंत फाडदेता है प्राण वायु ऊपरको प्राप्त होजाता है और अपानवायु गुदाके स्थानमें कुपित होजाता है ॥ ७ ॥ और मध्यनाभिमें स्थितहुआ समान वायु रक्तपित्तको कोपकरदेता है इसीतरह एकहीवार पित्त रक्तके संग कुपित होजाता है ॥ ८ ॥ रक्तपित्तका कोप चारप्रकारसे दीखता है और इसकी गति दोप्रकारकी कही है जिसके कफ मुखके ऊर्ध्वभागमें प्राप्तहो और नासिकाके तथा कानोंके छिद्रोंमें ॥ ९ ॥ रक्त प्रवृत्त होजावे वह साध्य कहा है, और जिसके अधोमार्गमें रक्तकोप होजाता है उसके गुदाके द्वारा रक्त निकसता है ॥ १० ॥ वह रक्तपित्त कष्टसाध्य कहा है और जो ऊर्ध्वमार्गमें प्राप्तहो तथा अधोमार्गमें प्राप्तहो और वात कफ अधिक वर्तते हों ॥ ११ ॥ वह

असाध्य जानना अथवा कष्टसे सिद्ध होता है ॥ १२ ॥ एक मार्गसे उठाहुआ अथवा नाभिके देशसे उठाहुआ रक्त पित्त साध्य है और उपद्रवोंसे रहित है ॥ १३ ॥ और एकदोषसे उत्पन्नहुआ साध्य होता है दोदोषोंसे उत्पन्नहुआ याप्यरोग होता है और तीनदोषोंसे उत्पन्न हुआ रक्तपित्त असाध्य कहाता है ॥ १४ ॥ और जब रक्तपित्त ऊर्ध्वभागमें प्राप्तहोवे तब जुलाब दिवावै और जब रक्त अधोभागमें स्थितहो तब वमन कराना चाहिये ॥ १५ ॥

अथ रक्तपित्तके उपद्रव।

रोगक्षीणे छविरविकले हीनदौर्बल्यकाये मन्दाग्निर्वा क्षवथुरथवा पाण्डुता दाहशोषः ॥ तृष्णा छर्दिः श्वसनमधृतिर्भक्तविद्वेषमोहो हृत्पीडा स्याद्भ्रममथ भवेद्रक्तपित्तोपसर्गात् ॥ १६ ॥ अष्टादश इमे प्रोक्ता रक्तपित्तउपद्रवाः ॥ उपद्रवैर्विना साध्योऽसाध्यः सोपद्रवस्तथा ॥ १७ ॥ रक्तनिष्ठीवनोपेतो रक्तनेत्रो भ्रमातुरः॥ रक्तमूत्रश्च वमते रक्तमूत्री न जीवति ॥ १८ ॥

रोगसे क्षीण होजावे और कांतिसे रहित होजावे, शरीर हीन होजावे और दुर्बल होजावे, मंद अग्नि होजावे, छीकहो, पांडुरोगहो, दाहहो, शोषहो, तृषाहो, छर्दिहो, श्वासहो, धीरज नहीं रहै, भोजनसे वैर रहै, मोह रहै, हृदयमें पीडा रहै भ्रमहो, ऐसे ये ॥ १६ ॥ अठारह रक्तपित्तके उपद्रव कहे हैं उपद्रवोंसे रहित रक्तपित्त रोग साध्य कहा है और उपद्रवोंसे संयुक्त रक्तपित्त असाध्य कहा है ॥ [illegible] ॥ और रक्तके थूकनेसे युक्तहो रक्तनेत्रहो भ्रमसे आतुरहो और रक्तमूत्रवाला पुरुष वमन करता है, वह जीवता नहीं है ॥ १८ ॥

अथ रक्तपित्तका लक्षण।

एवं प्रोक्तो निदानार्थस्ततो वक्ष्यामि भेषजम् ॥ सुलक्षणसमायुक्तं रक्तपित्तं सुखावहम् ॥१९॥ यस्यारुणं पवनफेनयुतं च तावत्पित्तातिकृष्णमथ पीतकुसुम्भकाभम् ॥ पित्तेन पित्तमिति तं प्रवदन्ति धीराः सान्द्रं सपाण्डुरतिजं सघनं कफेन ॥ २० ॥

इस प्रकार निदान तो कहदिया है अब औषध कहेंगे सुंदरलक्षणोंसे युक्त रक्तपित्त सुखसाध्य कहा है ॥ १९ ॥ जो झागों सहित थूकै वह वातसे उपजा रक्तपित्त जानना और पित्त अधिक होवे तो काला और कसुंभाके डहलके समान थूकै, तिसको पित्तसे उपजा रक्तपित्त कहते हैं और कफसे होवे तो गाढा और पीला सफेद चिकना ऐसा थूकै ॥ २० ॥

अथ रक्तपित्तकी चिकित्सा ।

क्षीणमांसं कृशं वृद्धं बालं वा ज्वरपीडितम् ॥
शोषमूर्च्छाभ्रमापन्नं नातिरेचनमाचरेत् ॥ २१ ॥

क्षीणमांसवाला, कृश, वृद्ध, बालक, ज्वरसे पीडित शोष, मूर्छा, भ्रम इन्होंसे पीडित पुरुषको जुलाब अधिक नहीं दिवावे ॥ २१ ॥

अथ ऊर्ध्वरक्तका उपाय ।

निष्पीड्य वासारसमाददीत क्षौद्रेण खण्डेन युतं च पानम् ॥
नासास्यकर्णे नयनप्रवृत्तं रक्तं तु शीघ्रं शमतां प्रयाति ॥ २२ ॥

अथवा वांसेके पत्तोंके रसको निचाडे तिसमें शहद और खांड मिला पीना चाहिये तिस्से नासिका, मुख कान इन्होंमें प्रवृत्तहुआ रक्त शीघ्रही शांत होजाता है ॥ २२ ॥

अथ वासादि क्वाथ ।

वासाकषायोत्पलमृत्प्रियङ्गुरोध्राञ्जनाम्भोरुहकेसराणि ॥ पीत्वा समध्वा ससिता प्रयोज्या पित्ताश्रयं चैवमुदीर्णमाशु ॥ २३ ॥

और वांसाका काथ, कमलकी जडकी मांटी, गोंदी, लोध, रसांजन, कमलकेशर, इन्होंमें शहद और मिसरी मिला पीनेसे रक्तपित्त शांत होताहै ॥ २३ ॥

अथ निंबकाथ अथवा अडूसाका काथ ।

प्रविद्यमानं पिचुवासकेन कथं नरः सीदति रक्तपित्ते ॥
क्षये च कासे श्वसनेऽपि यक्ष्मे [illegible] चातुरमाद्रवित् ॥ २४ ॥

अथवा नींब और वांसाका काथ देनेसे रक्तपित्तवाला मनुष्य दुःख नहीं पाता है और क्षयरोग, खांसी, श्वास, राजयक्ष्मा, इनरोगोंमेंभी वैद्यजनोंको यही काथ देना चाहिये ॥२४॥

अथ वासाकी प्रशंसा ।

भिषग्भिषजां माता वा पुरा कृत्य क्रिया यदि ॥ क्रियायत्ते रक्तपित्ते क्षये कासे च सिद्धिदा ॥ २५ ॥ वासायां विद्यमानायामाशायां जीवितस्य च ॥ रक्तपित्ती क्षयी कासी किमर्थमवसीदति ॥ २६ ॥

जो यह पहले कहीहुई चिकित्सा है यह सबवैद्योंकी माता है रक्तपित्तमें क्षयीरोगमें खांसीमें यह चिकित्सा सिद्धिको देनेवाली है ॥ २५ ॥ जबतक वांसा औषध है तबतक इस रोगवालेकी जीवनेकी आशा है सो रक्तपित्तरोगवाला और क्षयरोगवाला तथा खांसीवाला पुरुष किसवास्ते दुःख पाता है ॥ २६ ॥

अथ तालीसचूर्ण ।

तालीसचूर्णं वृषपत्ररसेन युक्तं पेयं समारभ्य पुनः कफपित्त-कासे ॥ हन्ति भ्रमं श्वसनकासतासङ्करोत्थं भङ्गस्वरे त्वरितमाशु सुखं ददाति ॥ २७ ॥

और कफपित्तसे उपजीहुई खांसीमें वांसके पत्तोंके रसमें तालीसपत्रका चूर्ण मिला पीना चाहिये, भ्रम, श्वास, खांसी इन्होंसे उत्पन्नहुआ श्रम, स्वरभंग इनरोगोंमें शीघ्रही सुख होता है ॥ २७ ॥

अथ अडूसाका क्वाथ और कल्क ।

आटरूषकमृद्वीकापथ्याक्वाथः सशर्करः ॥ क्षौद्राढ्यः श्वसनका-सरक्तपित्तनिवारणः ॥ २८ ॥ छागं पयो वा सुरभीपयो वा चतुर्गुणश्चापि जलेन कल्कः ॥ सशर्करं पानमिदं प्रशस्तं सर-क्तपित्तं विनिहन्ति चाशु ॥ २९ ॥

और वांसा, मुनक्कादाख इन्होंके काथमें खांड मिला और शहद मिलादेनेसे श्वास, खांसी रक्तपित्त इन्होंका निवारण होताहै ॥ २८ ॥ और बकरीका दूध अथवा गौका दूध और चौ-गुना जल इन्होंमें वांसाका कल्कमिला सिद्धकर फिर खांडके संग इसका पीना श्रेष्ठ है यह रक्तपित्तको नाशता है ॥ २९ ॥

बलाश्वदंष्ट्रामलकीफलानि द्राक्षा मधूकं मधुयष्टिकानाम् ॥ सिद्धं पयःपानमिदं हितं [illegible]त्पित्ते सरक्ते मनुजस्य शान्त्यै ॥ ॥ ३० ॥ खदिरस्य प्रियङ्गूनां कोविदारस्य शाल्मलेः ॥ पुष्प-चूर्णं तु मधुना लिह्यादारोग्यमस्तुते ॥ ३१ ॥ आटरूषकरसेन सप्तधा भाविता च पुनरेव शोषिता ॥ पिप्पलीमधुसमन्विताभया रक्तपित्तमतिदुर्जयं जयेत् ॥३२॥ एलाफलानि सपद्मकनागके-शरं द्राक्षा घना मधुकपिप्पलिका समांशा॥एषांसमांशसितशर्क-रयुक्तलेहःखर्जूरिका समभिहन्ति च रक्तपित्तम् ॥३३॥दाहज्वरा-र्त्तिश्वसनं च विमोहतृष्णां मूर्च्छांनिहन्ति रुधिरवमिजित्तथैव॥३४॥

और खरैंहटी, गोखरू, आंवला, दाख, महुआवृक्षकी छाल, मुलहटी, इन्होंको दूधमें मि-ला पकाके पीनेसे रक्तपित्तकी शांति होती है ॥ ३० ॥ और खैर, कचनाल, गोंदी, शाल्मली

इन्होंके पुष्पोंका चूर्ण शहदके संग चाटनेसे इसरोगसे छुटजाताहै ॥ ३१ ॥ पीपली और हरडैको सातदिनतक वांसाके रसमें भावनादे फिर सुखाके शहदमें युक्तकर खानेसे अत्यंत दुर्जेय रक्तपित्तका नाश होता है ॥ ३२ ॥ इलायची, पद्माक, नागकेशर, दाख, रुद्रजटा, मुलहटी, पीपली, इन्होंको समानभागले और इनसबोंके समान मिसरी मिला फिर लेह बनालेवे इसके खानेसे शरीरकी खाज, रक्तपित्त ॥ ३३ ॥ दाह, ज्वरकी पीडा, श्वास, मोह, तृषा, मूर्च्छा, वमन इन्होंका नाश होता है ॥ ३४ ॥

अथ नासाप्रवृत्तरुधिरचिकित्सा ।

घ्राणे प्रवृत्तं रुधिरं यदि स्यात्तदा घृतेनामलकीफलानि ॥
तोयेन पिष्ट्वा शिरसि प्रलेपः स रक्तपित्तं सहसा रुणद्धि ॥३५॥

जो नासिकामें रुधिर प्रवृत्त होजावे तो घृत और जलमें आंवलोंको पीस शिरपै लेप करना चाहिये यह रक्तपित्तको शीघ्रही दूर करता है ॥ ३५ ॥

द्राक्षारसं वा घृतशर्कराढ्यं जलं सिताढ्यं च सरक्तपित्ते ॥
यवान्न चैवेक्षुरसं सिताढ्यं क्षयं च कासं क्षतजं निहन्ति ॥ ३६ ॥

और दाखोंके रसमें घृत और खांड मिला देनेसे और मिसरी जलके संग पीनेसे रक्तपित्त दूर होता है और जवका अन्न ईखके रस तथा मिसरीके संग खानेसे क्षय क्षतरोगसे उत्पन्नहुई खांसी इन्होंका नाश होता है ॥ ३६ ॥

अथ हरितालिकादिनस्य ।

नस्यं विदध्याद्धरितालिकाया रसेन वालक्तरसेन वापि ॥
स्याद्दाडिमस्य प्रसवोद्भवेन रसेन न[illegible] रुधिरस्रुतेऽपि ॥ ३७ ॥

और कानमें रक्त प्राप्त होजावे तब आलेके रसमें अथवा अनारके रसमें हरताल मिला तिसकी नस्य बनाके देनी चाहिये ॥ ३७ ॥

अथ आम्रादि नस्य ।

आम्रास्थिजम्बूद्भवशर्कराढ्यं नस्यं सिताढ्यं हितकृज्ज्वराणाम् ॥
नासाप्रवृत्तं रुधिरं निहन्ति हिक्कासच्छर्दिश्वसनं विमर्दि ॥ ३८ ॥

और आंबकी गुठली जामनकी गुठली इन्होंको पीस खांडमें मिला अथवा मिसरीमें मिला नस्य देनेसे ज्वरोंका नाश होता है और नासिकामें प्रवृत्तहुआ रुधिरका नाश होता है और हिचकी, वमन, श्वास इन्होंका नाश होता है ॥ ३८ ॥

अथ पलांड्वादि नस्य ।

पलाण्डुपत्रनिर्यासनस्यं नासाग्रजावहम् ॥
यष्टीमधूकसंयुतं पश्चान्नस्येऽस्रजं जयेत् ॥ ३९ ॥

और प्याजके पत्तोंकी नस्य देनेसे रक्तपित्तरोग दूर होताहै और मुलहटी, शहद, इन्होंकी नस्य देनेसेभी शीघ्रही इसरोगका नाश होता है ॥ ३९ ॥

अथ वासादिपानक।

वासापत्ररसं विधाय मतिमान्योज्यानि चेमानि तु रोध्रं चोत्पलमृत्तिकासमधुकं कुष्ठं प्रियङ्ग्वन्वितम् ॥ चूर्णं पुष्परसेन पाचकमिदं पित्ताश्रयाणां हितं कासकामलपाण्डुरोगक्षतजश्वासापमर्दि भवेत् ॥ ४० ॥

और वांसाके पत्तोंके रसको निचोड तिसमें लोध, कमलकी जडकी मृत्तिका, मुलहटी, गोंदी इन्होंका चूर्ण मिला और वांसाके पत्तोंका रस मिला फिर इसको खावै यह पाचक है और पित्ताशयवालोंको हित है और खांसी, कामला, पांडुरोग, चोटसे उपजाहुआ श्वासरोग, इन्होंको नाशता है ॥ ४० ॥

अथ दाडिमादि रस।

रसो हितो दाडिमपुष्पकस्य तथैव किञ्जल्करसोत्पलस्य ॥ लाक्षारसो वा पयसा च नस्याद् घ्राणप्रवृत्तं रुधिरं रुणद्धि ॥ ४१॥

और अनारकी कलीका रस तथा कमलकी केशर और लाखका रस इन्होंका दूधके संग नस्य देनेसे नासिकामें प्रवृत्तहुआ रुधिर रुकजाता है ॥ ४१ ॥

अथ मुखमें प्रवृत्तहुए रुधिरकी चिकित्सा।

दाडिमपुष्पादिनस्य।

यदि वदनपथेऽसृक्प्रवृत्ते तस्य कुर्य्यात्प्रतिविधिर्विहितः स्याद्रक्ष्यते मानुपस्य ॥ भवति न सुखसाध्यं लोहितं मानुषेषु तदनु युवतियोन्यां रक्तवाहस्त्वसाध्यः ॥ ४२ ॥ मधु मधुकसुशीरं कञ्जकिञ्जल्कदूर्वारसमिह परिपीतं दाडिमस्य प्रसूतम् ॥ मलयजासितकुष्ठं पद्मकं चैव बालं मधु मधुकबालकौ कोद्रवौ द्रौ समन्तात् ॥ ४३ ॥ समसुरभिपयो वा धावनं तण्डुलानां परिकलितसमग्रं तुर्य्यभागेन योज्यम् ॥ लघुतरमपि वह्नौ धावितं सिद्धमेव भवति वदनवृत्ते लोहिते पानमस्य ॥ ४४ ॥ श्रुतिपथमपि रक्ते वा प्रवृत्ते तु नासं विहितमपि तदा स्यात्पूरणं कर्णनासे ॥ रुधिरमाभिरुणद्धि श्वासमाशु क्षतं वा श्वसितरुधिरच्छ-

र्दि मेहमुन्मादरोगम् ॥ ४५ ॥ नासाप्रवृत्ते नस्यं स्यान्मुखे पानं विधेयकम् ॥ कर्णे नेत्रे पूरणं च गुदमार्गे निरूहणम् ॥ ४६ ॥ दाडिमफलत्वचं वा चूर्णं लिह्यात्सितायुतम् ॥ पद्मकिञ्जल्कचूर्णं वा लिह्याद्वा सितया पुनः ॥ ४७ ॥ मुखप्रवृत्तरुधिरं रुणद्ध्याशु वामिं क्लमम् ॥ श्वासशोषौ भ्रमं तृष्णां नाशयत्याशु निश्चयः ॥ ४८ ॥ जम्ब्वाम्रपल्लवानि स्युर्हरीतक्या युतानि तु ॥ मधुशर्करया युक्तमास्यलोहितवारणम् ॥ ४९ ॥ वटप्रबालार्जुनवृक्षकदम्बजम्ब्वाम्रकाणां खदिरस्य वापि ॥ यथाप्रपन्नो मधुनावलेह आस्यस्रजं वारयते क्षणेन ॥ ५० ॥

जो यदि मनुष्यके मुखमें रुधिर प्रवृत्त होजावे तब उसकी विधिको कहते हैं मनुष्योंके रुधिरका विकार सुखसाध्य नहीं है और तैसेही जवान स्त्रीकी योनिमेंभी प्रवृत्त हुआ बहता हुआ रुधिर असाध्य कहा है ॥ ४२ ॥ और शहद, मुलहटी, खश, कमलकेशर, दूब, अनारदाना इन्होंका रस पीना श्रेष्ठ कहा है और चंदन, कूठ, पद्माख, नेत्रवाला, शहद, मुलहटी, नेत्रवाला, दोनों प्रकारके कोदू धान्य ॥ ४३ ॥ गौका दूध इन्होंको समान भागले और चतुर्थांश चावलोंके धोवनका पानी लेवे फिर इन औषधोंका कल्क बना तिसमें मिला मंद अग्निसे पकावे पीछे मुखमें प्रवृत्तहुए रुधिरमें इसका पीना श्रेष्ठ है ॥ ४४ ॥ और कानमें प्रवृत्तहुवे रुधिरमें अथवा नासिकामें प्रवृत्तहुए रुधिरमें कानमें तथा नासिकामें इसको पूरण करै यह रुधिरको शीघ्रही नाशता है और श्वास, चोट, श्वासमें प्रवृत्तहुआ रुधिर, प्रमेह, उन्माद, इनरोगोंका नाश होता है ॥ ४५ ॥ जो नासिकमें रुधिर प्रवृत्त होजावे तो नस्य देनी चाहिये मुखमें प्रवृत्तहोवे तो पीना चाहिये और कानमें तथा नासिकामें प्रवृत्तहोवे तो पूरण कर गुदामें प्रवृत्तहो तो निरूहबस्ति देनी चाहिये ॥ ४६ ॥ अथवा अनारके फलकी छालके चूर्णको मिसरीमें युक्तकर भक्षण करना चाहिये तथा कमलकेशरके चूर्णको मिसरीमें मिला भक्षणकरै ॥ ४७ ॥ इस्से मुखमें प्रवृत्तहुआ रुधिर और वमन, ग्लानि इन्होंका नाश होता है और श्वास, शोष, भ्रम, तृषा इन्होंको शीघ्रही नाशता है ॥ ४८ ॥ और जामन, आंब, इन्होंके पत्ते हरडै इन्होंको खांड और शहदमें मिला खानेसे मुखके रक्तरोगका निवारण होता है ॥ ४९ ॥ वड, अर्जुनवृक्ष, कदंब, जामन, आंब, खैर इन्होंमेंसे कोईसे वृक्षकी पीपली और शहद मिला अवलेह बना चाटनेसे मुखमें प्राप्तहुआ रक्तका निवारण होता है ॥ ५० ॥

अथ शतावरीघृत ।

शतावरी मधुकं बला च ससिता काकोलिका दाडिमा मेदः क्षीरविदारिका च फलिनी स्यात्तिन्तिडीकं बला ॥ सिद्धा गोपयसाज्यकं हितमिदं पाने तथा बस्तिषु योनौ मेढ्रगुदप्रवृत्तरुधिरं हन्यात्सकासक्षयम् ॥ ५१ ॥

शतावरी, मुलहटी, खरैहटी, मिसरी, काकोली, अनारदाना, मेदा, विदारीकंद, गोंदी, अमली, खरैहटी, इन औषधोंको गौके दूधमें पकावे फिर तिसमें घृत मिला तिसको सिद्ध करै यह घृत पीनेमें तथा बस्तिकर्ममें हित है और योनि, लिंग, गुदा, इन्होंमें प्रवृत्तहुआ रक्तको नाशता है और खांसीको दूर करता है ॥ ५१ ॥

अथ मृद्वीकाआदिघृत ।

मृद्वीका मधुकं विदारिवसुधा नीली समङ्गाफला काकोल्यो बृहती युगं वृषमहामेदासितं चन्दनम् ॥ जातीपल्लवपटोलश्यामामृतासञ्जीवकाः साभया मेदे द्वे च कुचन्दनं मधुरसाः श्यामाः समांशास्त्वमी ॥ ५२ ॥ पक्का गोपयसा विशुद्धाविधिना सिद्धं चतुर्थांशकं मत्स्यण्डी मधुकं च सिद्धमिति चेत्पानं प्रशस्तं नृणाम् ॥ स्त्रीणां चापि हितं निहन्ति रुधिरं पित्ताद्गुदे वा भवेन्मेढ्रे चापि च रोमकूपकपथे वृत्तं निहन्यात्स्रजम् * ॥ ५३ ॥ एतद्द्राक्षाभिधानं घृतमपि विहितं रक्तपित्ते ज्वरे वा वातास्रे योनिशूले भ्रममदशिरसोन्मादरक्तप्रमेहे ॥ पित्ताम्लेऽतिकुष्ठे क्षयक्षतरुधिरे राजयक्ष्मेऽथ पाण्डौ पाने बस्तौ च नस्ये हितमपि मनुजां भाषितं चात्रिणा च ॥ ५४ ॥

मुनक्कादाख, मुलहटी, विदारीकंद, लघुखजूरी, नील, मँजीठ, त्रिफला, काकोली, दोनों प्रकारकी कटेहली, वांसा, महामेदा, सफेद चंदन, जावित्री, परवल, निशोत, गिलोय, जीवक, हरडै, मेदा, महामेदा, लालचंदन, मूर्वा, पीपल, इनसबोंको समान भाग ले ॥ ५२ ॥ फिर गौके दूधमें पकावे फिर चतुर्थांश बाकी रहे तब उतारि राव, मुलहटीका चूर्ण इन्होंको मिलावे इसका पीना मनुष्योंको तथा स्त्रियोंकोभी हित है और रक्तरोगको नाशता है और पित्तसे प्राप्त हुआ गुदाका रक्त और लिंग, रोम इन्होंमें प्राप्त हुआ रक्त, इन्होंका नाश होता है ॥ ५३ ॥

* अत्र घृतं दत्वा साधयेदिति भावार्थः ।

यह द्राक्षा आदि नामक घृत रक्तपित्तमें और ज्वरमें हित है और वातरक्त, योनिशूल, भ्रम, मद, शिरोरोग, उन्माद, रक्तप्रमेह, पित्ताम्ल, अतिकुष्ठरोग, क्षयी, क्षतरक्त, राजयक्ष्मा, पांडु रोग इन सब रोगोंको नाशता है और अत्रिऋषिसे कहाहुआ यह घृत पानमें तथा बस्तिकर्ममें मनुष्योंको हित कहा है ॥ ५४ ॥

अथ कूष्मांडावलेह ।

छल्लिं निष्कृष्य कूष्माण्डखण्डानि प्रतिकल्पयेत् ॥ काञ्जिकेनाशु धौतानि पुनरेव जलेन तु॥५५॥पश्चात्क्षीररसप्रस्थे कल्कयेत्पुनरेव च ॥ घृतेन पुनरेवैतत्पाचयेत्सुविधानतः ॥ ५६॥ यदा मधुनिभानि स्युस्तदा शर्करया सह॥ निधाय तत्र चेमानि भेषजानि प्रकल्पयेत्॥५७॥ पिप्पलीशृङ्गवेराभ्यां द्वे पले मरिचानि च ॥ जीरके द्वे तथा धात्री त्वगेलापत्रकं तथा ॥ ५८ ॥ पलार्द्धेन वियुञ्जीयाच्चूर्णं तत्र विनिक्षिपेत् ॥ दार्व्या विघट्टयेत्तावल्लेहीभूतं यदा भवेत् ॥ ५९ ॥ तदा मधुघृतेनापि लिह्याज्ज्ञात्वा बलाबलम् ॥ रक्तपित्तं क्षयं कासं कामलं नैमिकं भ्रमम् ॥६०॥ छर्दितृष्णाज्वरश्वासपाण्डुरोगान् क्षतक्षयम् ॥ अपस्मारं शिरोर्त्तिंश्च योनिशूलं च दारुणम् ॥ ६१ ॥ चिरं योनौ रक्तवाहं मन्दज्वरनिपीडनम् ॥ वृद्धोऽपि च युवा कामी वन्ध्या भवति पुत्रिणी ॥ ६२ ॥ अवीर्य्यो वीर्य्यमाप्नोति भवेत्स्त्रीणां प्रियो नरः ॥ एष कूष्माण्डको लेहः सर्वरोगनिवारणः ॥ ६३ ॥

कोहलेको छील तिसको टुकडे बनाके कांजीसे धोवै पीछे जलसे धोवै ॥ ५५ ॥ फिर तिसका कल्क बना ६४ तोले दूध मिला पीछे ६४ तोले घृत मिला अच्छे विधानसें पकालेवे ॥ ५६ ॥ जब वे कोहलाके टुकडे शहदके समान वर्णवाले होजावें तब खांड मिला इन आगे कही हुई औषधोंको मिलावे ॥ ५७ ॥ पीपल, अदरक, मिरच ये आठ २ तोले और दोनों जीरे, दालचीनी, इलायची, तेजपात ॥ ५८ ॥ ये दो २ तोला मिला चूर्ण बनाके गेरै फिर कडछीसे चलावे जब लेह बन जावे ॥ ५९ ॥ तब बलाबलको विचार शहद और घृतके संग इसको खावे यह अवलेह रक्तपित्त, क्षयी, खांसी, कामला, चक्करकी तरह भ्रम इन रोगोंको नाशता है ॥ ६० ॥ और छर्दि, तृषा, ज्वर, श्वास पांडुरोग, क्षतक्षय, मृगीरोग, शिरकी पीडा, दारुण योनिशूल ॥ ६१ ॥ और बहुतसा बहताहुआ योनिका रक्त,

मन्दज्वरकी पीडा, इन्होंका नाश होता है और वृद्ध पुरुष भी जवान और कामी होता है वंध्या स्त्री पुत्रवाली होजाती है ॥ ६२ ॥ और जिसके वीर्य नहीं हो वह वीर्यवाला हो जाता है और स्त्रियोंको प्रिय होता है यह कूष्मांडकावलेह सम्पूर्ण रोगोंको निवारण करता है ॥ ६३ ॥

अथ अन्यकूष्मांडका अवलेह ।

सुस्निग्धकूष्माण्डकखण्डकानि पलानि पञ्चाशदथो सितायाः ॥ युञ्ज्यात्सतोयं प्रणिधाय धीमान् घृतेन प्रस्थं परिपक्कमेव ॥ ॥ ६४ ॥ विज्ञाय पक्कं पुनरेव तत्र वासाकषायञ्च विमिश्रयेच्च ॥ पश्चात्पचेद्यावत्तु दर्वीलेपो ज्ञात्वा तु चेमानि पुनर्वियुञ्ज्यात् ॥ ॥ ६५ ॥ धात्री घना च भार्ङ्गी च सुगन्धत्रयं च युञ्ज्यात्समस्तानि तानि कर्षमात्राम् ॥ तस्मात्पुनर्नवा च नागरधान्यकानि एषां पलस्य तुलिता कथितानुमात्रा ॥ ६६ ॥ श्यामापलाष्टकमिदं विदधीत चूर्णं संघट्टयेत्सकलमेव पुनस्तु दर्व्या ॥ युञ्ज्यात्समं मधुयुतं सकलामयघ्नं कासं ज्वरं क्षतजमाशु निहन्ति हिक्काम् ॥ ६७ ॥ हृद्रोगपित्तरुधिरं क्षयपीनसं च पित्ताम्लकं विजयते श्वसनं च मूर्च्छाम् ॥ स्त्रीणां हितं भवति बालकवृद्धकेषु श्रेष्ठं समस्तरुजनाशबलप्रदं च ॥ ६८ ॥

अच्छे सुन्दर कोहलाके चिकने २ टुकडे बना फिर तिसमें २०० तोले मिसरी मिलावे पीछे तिसमें जल मिला और ६४ तोले घृत मिला तिसको पकावे ॥ ६४ ॥ जब पकजावे तब उतारि तिसमें वांसाका काथ मिलाके फिर पकावे जब कडछीके चपकने लगजावे तब इन औषधोंको गेरै ॥ ६५ ॥ आंवला, रुद्रजटा, भारंगी, सुगंधत्रय, दालचीनी, तेजपात, इलायची, इन्होंको एक २ तोला प्रमाण लेवे सांठी, सोंठ, धनियां इन्होंको चार २ तोले गेरै और निशोतका चूर्ण ३२ तोले मिलावे पीछे इन सबोंको मिला ॥ ६६ ॥ कडछीसे घोटै फिर इसको बराबरके शहदमें मिलाके खावे यह अवलेह, खांसी, ज्वर, क्षतरोग, हिचकी ॥ ६७ ॥ हृदय रोग, पित्तरक्त, क्षयी, पीनस, पित्ताम्ल, श्वास, मूर्च्छा इनरोगोंको नाशता है और स्त्री, बालक, वृद्ध, इन्होंको श्रेष्ठ है बलको देनेवाला है ॥ ६८ ॥

अथ खंडकाद्यरसायन ।

शतावरी मुण्डितिकामृता च फलात्वक्च पुष्करमूलभार्ङ्गी ॥ वृषो बृहत्या खदिरं च मांशली पृथक्पृथक् पञ्चपलैकमात्रया ॥ ६९ ॥

उत्तार्य पक्कं जलमाशु पश्चाद्यावद्भवेच्छेषमथैव पूतम् ॥ विमूर्च्छितं तत्र निधाय धीमान्पलं तथा द्वादशमाक्षिकस्य ॥ ७० ॥
तथाशु चूर्णस्य च लोहकस्य विघट्टितं खण्डघृतेन तुल्यम् ॥
देयं पलं षोडशकं विधिज्ञो विपाचयेल्लोहमये च पात्रे ॥ ७१ ॥
गुडेन तुल्योऽपि विभाति यावत्तुगा विडंगं मगधा च शुण्ठी ॥
द्वे जीरके कण्टकं त्रिफलानां भृंगं धान्यमरिचं सकेसरम् ॥७२॥
पलेन मात्रां विदधीत पृथक्‌ सुघट्टितं चूर्णमिदं घृतस्य ॥ स्निग्धे कटाहे प्रणिधाय युञ्ज्यात्कर्षप्रमाणं विदधीत चूर्णम् ॥ ७३ ॥
प्रभातकाले सरोवारिपानं गुरूणि चाम्लानि च वातलानि ॥
भगन्दरादिश्वयथून्निहन्ति रक्ताम्लकं वा श्वसनश्च यक्ष्मिणम् ॥ ७४ ॥ विशोषणं कुष्ठरुजां च गुल्मान्बलप्रदं वृष्यतमं प्रदिष्टम् ॥ स रक्तपित्तं सहसा निहन्ति योनिप्रभावं च सरक्तशूलम्॥७५॥रक्तातिसारं रुधिरप्रमेहं समेढ्रबस्तौ निहितं नराणाम् ॥ सौभाग्यदं कान्तिकरं प्रदिष्टं तेजौजःपुष्टिं बलमातनोति॥७६॥

शतावरी, गोरखमुंडी, गिलोय, त्रिफला, दालचीनी, पौहकरमूल, भारंगी, वांसा, कटेहली, खैर, मूसली, इन्होंको जुदे २ वीस वीस तोला प्रमाण लेवे ॥ ६९ ॥ फिर इन्होंको जलमें पकावे जब चतुर्थांश काथ बाकी रहे तब उतारि तिसको वस्त्रमांहके छानी पीछे इन आगे कहीहुई औषधोंको गेरै ४८ तोले प्रमाण शहद मिलावे ॥ ७० ॥ और ४८ तोले प्रमाण लोहाका चूर्ण गेरै और खांड तथा घृत इन्होंको समानभाग ६४ तोले प्रमाण गेरै फिर लोहेके पात्रमें पकावे ॥ ७१ ॥ पीछे पकके गुडके समान होजावें तब वंशलोचन, वायविडंग, पीपली, सोंठ, दोनोंजीरे, गोखरू, त्रिफला, भंगरा, धनियां, मिरच, केशर ॥ ७२ ॥ इनसबोंको चार २ तोला प्रमाण लेवे पीछे इनसबोंका चूर्ण मिला अच्छीतरह घोटि घृतके चीकने कडाहेमें घाल धरे पीछे इसको एक तोला प्रमाण हमेशै खावै ॥ ७३ ॥ और प्रातःकाल सरोवरके जलका अनुपान करै और भारे तथा खट्टे और वातवाले पदार्थ खाने चाहियें यह भगंदर, शोजा, रक्ताम्ल, श्वास, राजयक्ष्मा ॥ ७४ ॥ विशोष, कुष्ठरोग, गुल्म, इनरोगोंका नाश करता है और बलको देनेवाला है, और वीर्यमें हित है और रक्तपित्तरोगको शीघ्रही नाशता है और योनिमें वहताहुआ रक्त, योनिका शूल, ॥ ७५ ॥ रक्तातिसार, रुधिरमेह, लिंगका रोग, और बास्तिस्थानका रोग इन्होंको नाशता है और कांतिको करनेवाला है और तेज, पुष्टि, बल इन्होंको बढाता है ॥ ७६ ॥

अथ रक्तातिसारचिकित्सा ।

रक्तातिसारे च प्रयोजनीयं रक्तप्रवाहे सरुजे सदाहे ॥ फलत्रिकञ्च सविषा समङ्गा सपर्पटं दाडिमधातकीनाम् ॥ ७७ ॥ चूर्णं मधुशर्करया समेतं तथैव दध्ना सघृतं सलेहम् ॥ रक्तातिसारं रुधिरप्रवाहं योनिप्रवाहं सततं स्त्रियश्च ॥ ७८ ॥ निवारयत्याशु हितं नराणां बालेऽतिसारे प्रशमाय योग्यम् ॥ ७९ ॥

और रक्तातिसार तथा पीडासहित और दाहसहित रक्तप्रवाह, इन रोगोंमें त्रिफला, अतीश, मंजीठ, पित्तपापडा, अनारदाना, धवके फूल, ॥ ७७ ॥ इन्होंका चूर्ण बना तिसमें खांड और शहद मिला और दही, घृत ये मिला फिर अवलेह बनाके देना चाहिये यह अवलेह रक्तातिसार, रुधिरप्रवाह, स्त्रीके निरंतर योनिका प्रवाह ॥७८॥ इन्होंका निवारण करता है और मनुष्योंको हित है बालकके अतिसारको शांत करता है ॥ ७९ ॥

योनिप्रवाहचिकित्सा ।

योनिप्रवाहे मधुकं समङ्गा एलादलं निम्बदलानि पथ्या ॥ मुस्ता विशाला कटुरोहिणी च कल्को हितः शर्करया युतोऽयम् ॥ ८० ॥ योनिप्रवाहं विनिवारयेच्च सयोनिशूलं सरुजां तृषार्त्तिम् ॥ एला समङ्गा सहशाल्मलीनां हरीतकी मागधिका समांशा ॥ ८१ ॥ क्वाथोदितः शर्करया समाध्व्या योनिप्रवाहं विनिवारयेच्च ॥ ८२ ॥

योनिके प्रवाहमें मुलहटी, मंजीठ,इलायचीके पत्ते, नींबके पत्ते, हरडै,नागरमोथा, इंद्रायण, कुटकी, इन औषधोंका कल्क बना तिसमें खांड मिला खाना चाहिये ॥ ८० ॥ यह विशेष करिके योनिके प्रवाहको दूर करता है और पीडासहित योनिशूल तृषाकी पीडा इन्होंको दूर करता है और इलायची, मंजीठ, सेमर, हरडै, पीपली, इन्होंको समान भागले ॥ ८१ ॥ क्वाथ बना तिसमें खांड और शहद मिला पीनेसे रक्तप्रवाह दूर होता है ॥ ८२ ॥

घर्मातपान्ते च विदाहि चाम्लं सौवीरकं वा कटुकं कषायम् ॥
क्षारं सुरा वा परिवर्जनीयं सरक्तपित्ते मनुजे हिताय ॥ ८३ ॥
वास्तूकचिल्ली सुनिषण्णकञ्च जीवन्तिका वा शतपुष्पिका वा ॥
शाका हिता रक्तभवे च पित्ते मुद्गास्तथा लोहिततण्डुलाश्च
॥ ८४ ॥ यवगोधूमचणकाः कोशातक्यः पटोलकम् ॥

मुद्गा माषा हिताश्चैव रक्तपित्तनिवारणे॥८५॥ हरिणशशकलावास्तित्तिरास्ते कुलिङ्गाः ककेरा अपि मयूराः क्रौञ्चपारावतानाम् ॥ पललमनिलपित्तबर्हणं वै हितश्चेद्भवति बलममोघं सत्त्वतेजश्च कान्तिः ॥८६॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने रक्तपित्तचिकित्सा नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

और रक्तपित्तरोगमें मनुष्यके हितके वास्ते घाम, अग्निकी गरमाई, विदाही, खट्टा पदार्थ, कांजी, चर्चरा कसैला पदार्थ, खारा और मदिरा इन्होंको वर्ज देवै ॥ ८३ ॥ और वथुआ, चिल्ली, चौपतिया, कुरडू, जीवंतिकाशाक, सौंफ, इन्होंके शाक ये सब रक्तपित्तमें हित कहे हैं और मूंग लाल चावल ये हित कहे हैं ॥ ८४ ॥ और जव, गेहूं, चणे, तूरीधान्य, परवल, मूंग, उडद, ये अन्न रक्तपित्तको निवारण करनेमें हित कहे हैं ॥ ८५ ॥ और हिरन, शूशा, लावा, तीतर, चिमणापक्षी, ककेरा, मयूर, कूंजि, परेवापक्षी, इन्होंका मांस खानेसे और वातपित्तके नाशक मांसके खानेसे अमोघ बल होता है और सत्वगुण, तेज, कांति, इन्होंको बढाता है॥८६॥

इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसुनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने रक्तपित्तचिकित्सानाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अथ एकादशोऽध्यायः ११.

अथ अर्शचिकित्सा।

आत्रेय उवाच ॥ अथातो वक्ष्यते पुत्र ! अर्शस्य च चिकित्सितम् ॥ षट्प्रकारेण ये प्रोक्तास्तेषां च शृणु लक्षणम् ॥ १ ॥

आत्रेयजी कहते हैं–हे पुत्र ! अब अर्श अर्थात् बवासीर रोगकी चिकित्साको कहते हैं जो छह प्रकारके बवासीररोग कहते हैं तिन्होंके लक्षणको सुन ॥ १ ॥

अथ अर्शके प्रकार।

जाता दोषैस्त्रिभिरपि वातपित्तकफादिकैः ॥ सन्निपाते चतुर्थः स्यात्पञ्चमो रक्तसम्भवः ॥ २ ॥ षष्ठकः सहजो ज्ञेयश्चार्शसां षड्विधो भवः ॥ एवं च षट्प्रकारेण जायन्ते गुदजा रुजः ॥३॥

वात आदिक तीनदोषोंसे होता है वातसे १ पित्तसे २ कफसे ३ और सन्निपातसे उपजा चौथा होता है और पांचवा रक्तसे उपजाहुआ बवासीर रोग होता है ॥२॥ और छठा सहज अर्थात् स्वभावसेही उपजाहुआ होता है इसप्रकारसे गुदाके रोग छःतरहसे होते हैं ॥ ३ ॥

अथ वातार्शके हेतु और संप्राप्ति।

अनशनलघुरूक्षाहारसंसेवनेन कटुलवणविदाहिसेवया वातरोधात् ॥ भवति सततवीप्सा विष्टरेणैव हीना कुपितमरुतवेगादर्शसां भूतिरासीत् ॥ ४ ॥ अनशनोपविष्टस्य मलमूत्रावधारणे ॥ शीतसंसेवनेनापि गुदजः संप्रकुप्यति ॥ ५ ॥ लवणकटुकषाया तिक्तसंसेवनेन अमितलघुतरभोज्याच्छीतलेनातिरोधात् ॥ कुपितमलिननामापानमार्गेष्वपाने सृजति रुधिरवातोपानमार्गे मरुत्सु ॥ ६ ॥

अनशन अर्थात् भोजन नहीं करनेसे हलका और रूषाभोजन करनेसे और चर्चरा, नमक, विदाही, ऐसे पदार्थके खानेसे और वातके रोकनेसे और आसनपै निरंतर नहीं बैठनेसे वायु कुपित होजाता है तिस्से बवासीर रोग होजाता है ॥ ४ ॥ जो भोजनकिये विना बैठारहे और मलमूत्रके वेगको रोकै और शीतल वस्तुका सेवन करै उसके गुदाका वायु कुपित होजाता है ॥ ५ ॥ और नमक, चर्चरा, कसैला, कडुआ, इनवस्तुओंके सेवनेसे अत्यंत ज्यादै हलके भोजनसे वायुकुपित होके मलिननामवाले अपानवायुको गुदामें रहनेवालेको बिगाडदेता है फिर वह अपानवायु गुदामें रक्तका रोग होजाता है ॥ ६ ॥

अथ पित्तार्शका हेतु।

कट्वम्ललवणोष्णानि विदाहीनि गुरूणि च ॥ सेवनानिलतोयेन श्रमाद्व्यायामपीडया॥ यानव्यवायदोषाद्वा दुर्नामा पित्तसम्भवः ७

और चर्चरा, खट्टा, नमक, गरम, विदाही, भारा, ऐसे पदार्थके सेवनेसे वायु, जल, इन्होंके सेवनेसे श्रमसे, कसरतकी पीडासे, असवारी और मैथुनके दोषसे पित्तसे उपजा बवासीर होता है ॥ ७ ॥

अथ कफार्शका हेतु।

अव्यायामात्तस्य शीलादजस्रं शीताद्वान्याद्वातसंसेवनाच्च ॥ लौल्यात्यम्लात्तैलसंपिच्छलेन दुर्नामा संजायते श्लेष्मरोगात् ८

और कसरत नहीं करनेसे अथवा निरंतर कसरत करनेसे शीतल वस्तुके सेवनेसे और वायुके सेवनेसे और जिसकी गुल्ली बंधतीहो ऐसे पदार्थसे तथा अत्यंत खट्टा पदार्थके सेवनेसे कफसे उपजाहुआ बवासीर होजाता है ॥ ८ ॥

अथ वातार्शका लक्षण ।

शीतत्वतोदं परुषं विनिद्रा गुल्मोदराष्ठीलविषूचिकावा ॥
शोफावुभौ कृष्णनखस्य नेत्रे लिङ्गानि वातप्रभवार्शसानाम् ॥९॥

और शीतलता रहै चभकाहो कठोरताहो निद्रा नहीं आवे और गुल्मोदर, अष्ठीला, विषूचिका, शोजा, ये उपद्रवहों और नख मुख नेत्र ये काले रहैं ये वायुसे उपजे हुए बवासीररोगके लक्षण हैं ॥ ९ ॥

अथ पित्तार्शका लक्षण ।

दाहभ्रमौ ज्वरपिपासिशरीरतो वा मूर्च्छारुचिर्नयनदन्तमुखानि यस्य ॥ पीतच्छविर्भवति वा विटभेदनं च पित्तेन जातगुदजस्य च लक्षणानि ॥ १० ॥

दाहहो भ्रमहो ज्वरहो तृषाहो, शरीरमें मूर्च्छाहो अरुचिहो और नेत्र, दांत, मुख, ये जिसके पीले होजावें विष्ठा ढीला होजावे ये पित्तसे उपजे बवासीरके लक्षण हैं ॥ १० ॥

अथ कफार्शका लक्षण ।

निद्रा च जाड्यघनमन्दरुजा च शोफा शूलातिगुल्मगुदभङ्गुरकास्तथा स्युः ॥ विड्बन्धतोदमरुचिर्गतिमन्दता च श्लेष्मोद्भवा गुदरुजः खलु भेषजज्ञ ! ॥ ११ ॥

निद्राहो, जडताहो, भारापनहो, मंद पीडाहो, शोजाहो, शूल, अत्यन्त गुल्म, गुदाका भंग विड्बंध, चभका, अरुचि, मंदगति, ये लक्षणहों वह कफसे उपजा बवासीर जानना ॥११॥

अथ त्रिदोषार्शका लक्षण ।

शूलानाहारुचिः कासो हृल्लासो रुचिनोदता ॥
स्कन्धयोर्जाड्यता सर्वाश्चार्शांसि संभवन्ति हि ॥ १२ ॥

शूलहो, आफाराहो, अरुचिहो, खांसीहो, थुकथुकीहो, अरुचिकी पीडाहो, कंधोंमें जडता ये सब दोषोंसे उपजे बवासीरके लक्षण हैं ॥ १२ ॥

अथ गुदरोगलक्षण ।

गुदजलक्षणं वक्ष्ये गदे कण्डूरसृक्स्रवः ॥ परुषा विषमा दीर्घा वातेन गुदजा मताः ॥ १३ ॥ सदाहाश्च विचित्राश्च पीता नीलावभासिकाः ॥ लोहितं स्रवते सोष्णं पित्तेन गुदजा मताः ॥१४॥ सदाहाः कठिना ये तु तव पाको विबन्धता ॥ शीतकण्डूसम-

स्थूलाः कफेन गुदजा मताः ॥ १५ ॥ सदाहाः सरुजः श्यावाः कण्डूः शोषश्च जायते ॥ स्रवते सततं रक्तं ते कण्ड्वासृग्भवार्शसाः ॥ १६ ॥ धान्याङ्कुरसमाकाराः क्रिमयः संभवन्ति च ॥ वातवर्चे समा लिङ्गा गुदजाः संभवन्ति हि ॥ १७ ॥ वक्रास्तीक्ष्णाः स्फुटितवदना दीर्घबिम्बीफलाभाः केचित्सिद्धार्थककणनिभाः कालखर्जूरकाभाः ॥ कर्कन्ध्वाभाः कलम्बकसमाः केचिदम्भोजबीजा वायोश्चासौ मनुज! विहितः सम्भवश्चार्शसां च॥ १८॥

अब गुदाके रोगके लक्षणको कहते हैं गुदामें खाजिहो, रक्त मवृत्तहो, कठोरहो, विषमहो, दीर्घहो ये वातसे उपजे गुदाके बवासीरोंके मसोंके लक्षण हैं ॥ १३॥ दाहवालीहों विचित्रहों, नीलावर्णवालीहों, गरम रुधिर गिरताहो ये पित्तसे उपजे बवासिरके मसोंके लक्षण हैं ॥ १४॥ और दाहवालीहों कठिणहों पकी हुईहों विष्ठाबंधहों शीलीहों, और खाजिहों, समानहों, और स्थूलहों ये कफसे उपजी बवासीरकी गुमडियोंके लक्षण हैं ॥ १५ ॥ और जो दाहसहितहो, पीडासहितहों कपिशवर्णवालीहो, खाजिहो, शोषहो और निरंतर रक्त झिरै ये खाजिसहित रक्तसे उपजे बवासीरके लक्षण हैं ॥ १६ ॥ और धान्यके अंकुरके समान चिह्नवाले क्रिमि होजाते हैं और वायुके विष्ठाके समान लिंगवाले होते हैं ॥ १७ ॥ और टेढे, खुलेहुए मुखवाले, तीक्ष्ण, बडे गूलरके फलके समान तेजवाले, कईक सिरसमके समान आकारवाले और कईक काली खजूरीके समान आकारवाले और कईक बेरके समान आकारवाले अथवा सिरसमके फलके समान आकारवाले तथा कमलगट्टाके समान आकारवाले ऐसे मस्से वायुसे उत्पन्न हुए बवासीरके होते हैं ॥ १८ ॥

अथ अर्शके स्थान।

गुदे नासाकर्णरन्ध्रे मुखे वा तथावर्त्तनेत्रान्तरयोनिमध्ये ॥ नराणां सकाशे भवन्ति रोगा न साध्याः सुखेन क्रिया यत्नतः स्यात् ॥ १९ ॥

और गुदा, नासिका, कान, मुख, नेत्रोंके कोणमें, योनिका मध्य, इन्होंमें मनुष्योंके अर्श रोग होते हैं सो साध्य नहीं हैं तहां यत्नसे क्रिया करनी चाहिये ॥ १९ ॥

अथ गुदामें अर्शका स्थान।

त्रिवलीगुदमध्ये तु बाह्यतोऽभ्यन्तरेषु च ॥ अर्शसां तु विजानीयात्रीणि स्थानानि चैव हि ॥ २० ॥ बाह्यतः सुखसाध्यः

स्यान्मध्ये कष्टेन सिध्यति ॥ असाध्योऽन्तर्वलीजातो गुदजो भिषजां वर ! ॥ २१ ॥

गुदाके बाहिर और भीतर त्रिवली होती हैं सो बवासीरोंके तीन स्थान हैं ॥ २० ॥ बाहिरके स्थानकी बवासीर सुखसाध्य है और जो मध्यमें हो वह कष्टसाध्य होता है और जो गुदाके अंतर्वलीमें हो वह असाध्य रोग कहा है ॥ २१ ॥

अथ अर्शकी चिकित्साका प्रकार।

प्रलेपवर्त्तीभिः स्वेदैर्बाह्याः सिध्यन्ति चोत्तमाः ॥ यन्त्रशस्त्रेण मध्यास्तु अन्तर्जाश्चान्तरौषधैः ॥ २२ ॥ तस्मात्पुत्र ! प्रयत्नेन क्रिया कार्या विजानता ॥ येनातुरस्य रक्षा स्याद्येन रोगो निवर्त्तते ॥ २३ ॥

और प्रलेप, बत्ती लगाना, स्वेद, इन्होंसे बाहिरकी पिंडिका सिद्ध होती है और गुदाके मध्यके मस्सोंको यंत्र शस्त्रसे सिद्ध करै और अंतर भीतरकी बवासीरको औषधोंसे सिद्ध करै ॥ २२ ॥ हे पुत्र ! इसवास्ते जानते हुये वैद्यको ऐसी क्रिया करनी चाहिये कि, जिससे रोगीकी रक्षा होजावे और रोग निवृत्त होवे ॥ २३ ॥

अथ अर्शरोगके उपद्रव।

करचरणमुखे वा नाभिमेढ्रे गुदे वा भवति हि यदि पुंसां शोफशोषो ज्वरश्च ॥ श्वसनतमकच्छर्दिमोहहृत्पार्श्वशूलं कृशमरुचिविबन्धश्चातिसारोपसर्गाः ॥ २४ ॥ इत्येवं द्वादशार्शसां संभवन्ति ह्युपद्रवाः ॥ उपद्रवैर्विना साध्या न साध्या बहूपद्रवाः॥२५॥

जो यदि मनुष्योंके हाथ, पैर, मुख, नाभि, लिंग, गुदा इन्होंमें शोजा और शोषहो तथा ज्वरहो श्वासहो अंधेरी आवै छर्दिहो मोहहो हृदामें पशलीमें शूलहो माडाहोना, अरुचि, मलका बंधा अतिसार ये होवें तो ॥ २४ ॥ ये बारह प्रकारके बवासीरके उपद्रव जानने उपद्रवोंके विना तो बवासीर रोग साध्य है और उपद्रवों सहित बवासीर असाध्य है ॥२५॥

अथ असाध्यअर्श।

शूलारोचकतृष्णार्त्तश्चातिरक्तप्रवाहवान् ॥
शूलशोफातिसारार्त्तो ध्रुवं न जीवतेऽर्शसः ॥ २६ ॥

शूल, अरुचि, तृषा, इन्होंकी पीडावाला और रक्तके प्रवाहवाला, शोजा अतिसार इन्हों की पीडासे युक्त ऐसा अर्श रोगवाला पुरुष नहीं जीवता है ॥ २६ ॥

अथ पाचनक्काथ।

अतोर्शसां प्रवक्ष्यामि क्रियां चैव भिषग्वर! ॥ वटकाक्षारशस्त्राणि येन संपद्यते सुखम् ॥ २७ ॥ अशसां च क्रियाः प्रोक्ताश्चार्शघ्ना बलवर्द्धनाः ॥ पित्तशोणितशमना न च वातप्रकोपनाः॥ २८ ॥ तस्यादौ पचनं श्रेष्ठं ततो भेषजमाहरेत् ॥ पथ्यामृता च धनिका पाने क्काथो गुडान्वितः ॥ २९ ॥

हे उत्तम वैद्य ! अब बवासीररोगोंकी क्रियाको कहते हैं गोली, क्षार, शस्त्रक्रिया इन इलाजोंसे सुख होता है ॥ २७ ॥ अर्शरोगोंको नाशनेवाली और बलको बढानेवाली अर्श रोगकी क्रिया कही है जो क्रिया रक्तपित्तको शांत करनेवाली और वातको कोप नहीं करनेवालीहो सो करनी चाहिये ॥ २८ ॥ बवासीरकी आदिमें पाचन औषध करै पीछे अन्य औषध करै और हरडै, गिलोय, धनियां इन्होंका क्काथ बना तिसमें गुड मिला पीना चाहिये यह पाचन औषध कहा है ॥ २९ ॥

अथ कल्कयोग।

दन्ती विडङ्गमगधा धान्या भल्लातकगुडं तिलकुष्ठयुक्तम् ॥
संसिच्य पयसातिकल्को निहन्ति पाने गुदजांश्च रोगान् ॥ ३० ॥

जमालगोटाकी जड, वायविडंग, पीपली, धनियां, भिलावा, गुड, तिल, कूठ इन्होंका कल्कबना दूधसे युक्तकर तिसके भक्षण करनेसे गुदाके रोगोंका नाशहोता है ॥ ३० ॥

नागरपिप्पलीबिल्वविडङ्गं दन्ती च शठ्यभया त्रिवृता च ॥
कल्कमिदं सगुडं प्रतिपाने वार्शांसि नाशनकारि नराणाम् ॥३१॥

और सोंठ, पीपली, बेलगिरी, वायविडंग,जमालगोटाकी जड, कचूर, हरडै, निशोत, इन्होंका कल्क बना गुडमिला खानेसे मनुष्योंके बवासीररोगोंका नाश होता है ॥ ३१ ॥

अथ पत्रकादिक्काथ।

पत्रककेसरशुण्ठीसमैलातुम्बुरुधान्यविडङ्गतिलानाम् ॥
क्काथो हरीतकीसर्पिर्गुडेन पीतो निहन्ति गुदे गदजानि ॥ ३२ ॥

और तेजपात, नागकेशर, सोंठ, इलायची, धनियां, वायविडंग, तिल, हरडै इन्होंको समानले और धनियांको दो भागले फिर क्काथ बना गुड मिलाके पीनेसे गुदाके रोगोंका नाशहोता है ॥ ३२ ॥

अथ पिप्पल्यादियोग।

पिप्पलिकामभयां गुडयुक्तां प्रातर्भवे नरो भक्षति चैताम् ॥
तस्य गुदकीलकमाशु हन्ति सकामलपाण्डुजरोगवर्गान् ॥ ३३ ॥

और पीपल, हरडै इन्होंको गुडमें मिला प्रातःकाल जो मनुष्य भक्षण करता है उसका गुदकीलकरोग शीघ्रही नष्ट होताहै और कामला, पांडु इनरोगोंके समूहोंका नाश होता है॥ ३३ ॥

अथ वार्ताकयोग।

सुस्विन्नवार्ताकफलस्य तोयं दध्ना सिताढ्या सलिलामृतेन॥
पाने विधेयं गुदकीलकानां क्रिमीन्निहन्यात्क्रिमिजांश्च रोगान् ३४

और बैंगने स्वेदित करके इन्होंके जलमें दही और मिसरी मिलाके और अन्य जल मिलावे पीछे इसके पीनेसे गुदकीलकरोगका नाश होता है ॥ ३४ ॥

अथ भल्लातकचतुष्टय।

भल्लातकाः कृष्णतिलाश्च पथ्या चूर्णं गुडेनापि नरस्य सेव्यम्॥
हन्याच्च पाने गुदकीलमेहशूलार्शकासान् विनिहन्ति तस्य॥३५॥

भिलावे, कालेतिल, हरडै, इन्होंके चूर्णको गुडके संग खानेसे गुदकीलक रोग दूर होता है और प्रमेह, शूल, बवासीर, खांसी इन्होंका नाश होता है ॥ ३५ ॥

सूरणकन्दकमर्कदलैस्तु वेष्टितमेव हि कर्दमलिप्तम्॥ तप्तमनलवर्णकसमानं तत्पयःसैन्धवतैलविमिश्रम्॥ ३६ ॥ भक्षति चार्शविनाशहेतोर्वातविकारहितोऽपि नरस्य ॥ ३७ ॥

और जमीकंदको आकके पत्तोंसे लपेट तिसपै गारा लीप फिर अग्निमें स्थापित कर देवै जब तपके अग्निके समान होजावे तब तैल और सैंधानमक मिला और दूध मिला ॥ ३६ ॥ भक्षण करनेसे बवासीर दूर होती है और वायुके विकारभी दूर होजाते हैं ॥ ३७ ॥

अथ कल्याणनामकलवण।

चित्रकपुष्करमूलशठीनां तेषु समांशास्तिला विनियोज्याः॥ सूरणकन्दकखण्डसमेतं तेषु समोऽग्निकफलानि दध्यात्॥ ॥ ३८ ॥ सैन्धवं तस्य चतुर्गुणकञ्च भावितमर्कदलेन समस्तम्॥ तच्च घृतस्य घटे विनिधाय अरण्यगोमयवह्निविपक्वम्॥ ३९ ॥ क्षीरमिदं लवणघृतपक्वं तक्रयुतं प्रतिपानमतोऽपि॥ नाशयति गुदकीलककीलान्हन्ति विषूचिभगन्दरानपि॥ ४० ॥ कामलपाण्डवानाहविबन्धान्गुल्ममरोचकनाशनकारी॥ मूत्रगदगलकण्डुक्रिमीणां नाशनभद्रकसैन्धवो नाम॥ ४१ ॥

और चीता, पोहकरमूल, कचूर, इन्होंके समान तिळ और जमीकंदके टुकडे और इन्होंके समान माळकांगनी ॥ ३८ ॥ और इन सबोंसे चारभाग सैंधानमक इन सबोंको आकके पत्तोंके रसमें भावनादे पीछे इसको घृतके चीकने घडेमें घालके आरनोंकी अग्निमें पकावे ॥ ॥ ३९ ॥ पीछे इसको दूधमें पकावे फिर नमक, घृत इन्होंमें पका तक्रके संग पीनेसे गुदकीलकरोगोंका नाश होता है और विषूचिका, भगंदर ॥ ४० ॥ कामला, पांडुरोग, आनाह, मलका बंधा, गुल्म, अरुचि इन्होंका नाश होता है और मूत्ररोग, गलरोग, क्रिमिरोग, इन्होंको यह कल्याणलवण सैंधव औषध नाशता है ॥ ४१ ॥

अथ भल्लातकवटकं।

त्रिकटुकमगधानां मूलचित्रं त्रिगन्धं समतुलितममीषां तुल्यभल्लातकानि ॥ सकलमिह समन्तादेकतः सम्प्रचूर्ण्य द्विगुणतुलितमात्रं योजनीयोगुडस्तु ॥ ४२ ॥ सकलमपि विकुट्य स्निग्धभाण्डे निधाय प्रतिदिनमपि सेव्यं चाक्षमात्रं सुधीरैः ॥ गुदजजठररोगं शूलगुल्मान्क्रिमींस्तु जनयति वडवाग्निं हन्ति पांडु क्षयं वा ॥ ४३ ॥

त्रिकटु अर्थात् सोंठ, मिर्च, पीपल, पिप्पलामूल, चीता, त्रिगंध अर्थात् दालचीनी, तेजपात, इलायची इन्होंको समान भागलेवे और इन सबोंके समान भिलावे लेवे पीछे इन सबोंका एक जगह चूर्ण बना इन्होंसे दूनी मात्रा गुड गेरै ॥ ४२ ॥ पीछे इन सबोंको कूटि चिकने बरतनमें घाल धरै फिर धीर पुरुषोंको दिन २ प्रति एक २ तोला प्रमाण खाना चाहिये यह गुदाके रोग, उदररोग, शूल, गुल्मरोग, क्रिमि, पांडु, क्षयरोग, इन्होंको नाशता है और जठराग्निको दीप्त करता है ॥ ४३ ॥

अथ प्राण देनेवाला मोदक।

नागरं त्रिफलां चैव पलांस्त्रींश्च प्रयोजयेत् ॥ चतुष्पलानि मरिचानां पिप्पलीनां पलद्वयम् ॥ ४४ ॥ पलमेकं तु चव्यस्य योज्यं तत्र भिषग्वरैः ॥ तालीसार्द्धं पलं देयं पलार्द्धं पद्मकस्य च ॥ ४५ ॥ जीरकस्य समं मात्रा समेन तुलितो गुडः ॥ सुपक्का सुघना श्यामा पिप्पलीनां शतत्रयम् ॥ ४६ ॥ उलूखले क्षोदयित्वा स्निग्धभाण्डेन धारयेत् ॥ ४७ ॥ अक्षप्रमाणा गुटिका नराणां प्रातः प्रदेया सकलामयघ्नी ॥ निहन्ति चार्शांसि

च पाण्डुरोगं हलीमकं कामलकं भ्रमं वा ॥ ४८ ॥ गुल्मातिसारं च सरक्तपित्तं क्षयं क्षतं चाक्षयमस्य यक्ष्मा ॥ जीर्णज्वरारोचक-पीनसानां हितो भवेत्प्राणदमोदकोऽयम् ॥ ४९ ॥

सोंठ, त्रिफला, इन्होंको बारह २ तोले प्रमाण लेवे मिर्च १६ तोले लेवे, पीपल ८ तोल ॥४४॥ चव्य. ४ तोले ऐसे वैद्यजन लेवे और तालीसपत्र दो तोले पत्राक २ तोले ॥४५॥ इन सबोंके समान जीरा और जीराके समान गुड लेवे और सुंदर पकीहुई सुंदर करडी और श्यामवर्णवाली ऐसी ३०० पीपलि ॥ ४६ ॥ इन सबोंको ऊखलमें कूट फिर चिकने बरतनमें घाल धरै ॥ ४७ ॥ यह एक तोला प्रमाणकी गोली मनुष्योंको प्रातःकाल देनी चाहिये यह सब रोगोंको नाशनेवाली है और बवासीर, पांडुरोग, हलीमक, कामला, भ्रम, इनरोगोंका नाश होता है ॥ ४८॥ और गुल्म, अतिसार, रक्तपित्त, दारुण राजयक्ष्मा, जीर्णज्वर, अरुचि, पीनस, इनरोगोंमें यह प्राणद मोदक हित है ॥ ४९ ॥

अथ कांकायनगुटिका।

जाजीपिप्पलिमूलकोलमगधापथ्याग्निकं नागराः सूक्ष्मैला च पलद्वयेऽपि क्रमशः कृत्वा पलैः सैन्धवम् ॥ भल्लातक्यफलानि पञ्चशतकं तेन समस्तेन तु द्वैगुण्येपि पुराणसूरणस्ततः सर्वस्य तुल्यो गुडः ॥ ५० ॥ क्षोदित्वा वटकाक्षमात्रमुपरि जातो विशेषो गुणः कुर्वत्यर्शनिवारणं क्षयमपि पुष्टं तथा सुप्रभम् ॥ मन्दाग्निर्वडवासमो भ्रमहरो हृद्रोगपाण्ड्वामयं शूलानाहभगन्दरो भयहरो दुष्टार्त्तिनिर्वासनः ॥ ५१ ॥ कृतोऽप्यर्थं विकारोऽपि ऋषिणा योगयुक्तिना ॥ काङ्कायनेन मतिमान् तेन सौख्यमभीप्सति ॥ ५२ ॥

जीरा, पीपलामूल, बेर, पीपल, हरडै, चीता, सोंठ,छोटी इलायची इन्होंको आठ २ तोला प्रमाण लेवे और इन्होंके समान सैंधानमक लेवे और पांचसौ भिलावे लेवे और पीछे कही इन सब औषधोंसे दूनाप्रमाण पुराना जमींकंद लेवे और इन सब औषधोंके समान गुड लेवें ॥ ५० ॥ फिर इन सबोंको कूटके मिलालेवे पीछे १ तोला प्रमाण गोली बांधलेवे यह गोली अतिविशेष गुण युक्त है बवासीररोगोंको निवारण करती है और क्षयरोगवाला सुंदर कांतिसे युक्त पुष्ट होजाता है मंदाग्नि अत्यंत तेज होती है भ्रमका नाश होता है और हृदयरोग, पांडु, शूल, अफारा, भगंदर इन्होंके भयको हरनेवाली है दुष्ट पीडा, बवासीरको नाशती है॥ ५१॥ योगकी युक्तिवाले कांकायनमुनिने उत्तम औषध कहा है बुद्धिमान् पुरुष इससे सुखको प्राप्त होता है ॥ ५२ ॥

अथ लवणोत्तमादि ।

लवणोत्तमं वह्निकलिङ्गवचा चिरबिल्वमहापिचुमन्दयुतम् ॥
पिब सप्तदिनं समस्तु लुलितं यदि मर्दितुमिच्छसि पायुरुजाम्॥

सैंधानमक, चीता, इंद्रजव, वच, करंजुवा, वंकायन, इन्होंको सातदिनतक दहीके जलसे पीवे जो यदि वायुके रोगोंको अर्थात् गुदरोगोंको नाशनेकी इच्छा हो तो ॥ ५३ ॥

अथ एलादिगुटिका ।

विश्वोपकुल्यामरिचानि केसरं पत्रं लवङ्गैलकवृद्धिमाह्वयाः ॥
चूर्णं हितञ्च शर्करयुक्तमेतद्गुदामयानामुदरार्त्तिशान्तये ॥ ५४ ॥

सोंठ, १ भाग पीपल, २ भाग मिरच, ३ भाग नागकेशर, ४ तेजपात, ५ लोंग, ६ इलायची, ७ इन्होंको एकोत्तरवृद्धिभागसे लेवे पीछे इन्होंका चूर्णमें खांड मिला खाना गुदाके रोग और उदरके रोगकी शांतिकेवास्ते हित है ॥ ५४ ॥

अथ अर्शनाशक चतुःसममोदक ।

सनागरं पुष्करवृद्धदारुकं गुडो नवो मोदकमम्बुदारुकम् ॥
अर्शेषु दुर्नामकरोगदारकं करोति वृद्धं सहसैव दारकम् ॥ ५५ ॥

सोंठ, पोहकरमूल, भिदारा, नवीनगुड, नेत्रवाला देवदार, इन्होंका मोदक खानेसे बवासीर रोगोंको नाश होता है और वृद्ध पुरुष तत्काल बालकसरीखा निरोग होता है ॥ ५५ ॥

अथ त्रिकटुकाद्यमोदक ।

त्रिकटुकमभयानां पुष्करं चित्रकाणां कृमिरिपुतिलचूर्णं कारयेत्तत्संगुडेन ॥ उषसि वटकमेकं भक्षयेद्यो मनुष्यो विनिहितगुदरोगश्चाग्निवृद्धिं करोति ॥ ५६ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, हरडे, पोहकरमूल, चीता, वायविडंग, तिल इन्होंका चूर्ण बना तिसमें गुड मिला जो मनुष्य प्रातःकाल इस मोदकको भक्षण करता है उसके गुदाके रोग दूर होते हैं और जठराग्निकी वृद्धि होती है ॥ ५६ ॥

अथ मरिचाद्यमोदक ।

मरिचं नागरचित्रं सूरणभागोत्तरेण संकुट्य ॥ सर्वसमो गुडयुक्तो मोदको बिल्वप्रमाणं सेवेत् ॥ विनिहितपित्तविकारं क्षयति मनुजानां करोति तनुपुष्टिम् ॥ ५७ ॥

मिरच, १ भाग सोंठ, २ चीता, ३ जमीकंद, ४ इन्होंको एकोत्तरवृद्धिभागसे लेवै फिर कूटके इनसबोंके समान गुड मिला मोदक बांध लेवै फिर चार तोला इस मोदकको भक्षण करै यह मोदक मनुष्योंके पित्तके विकारको नाशता है और मनुष्योंके शरीरकी पुष्टि होती है ॥ ५७ ॥

अथ सूरणपिंड ।

त्रिसमगतसूरणकन्दो लोहितवर्णेन यो भवेन्मतिमान् ॥ षट्खण्डीकृतवानपि संशुष्कान्षोडशान्भागान् ॥ ५८ ॥ तस्यार्द्धेन तुलितश्चित्रकशुण्ठ्यौ च तत्र संयोज्या ॥ मरिचस्य चैकभागो गुडेन बद्धस्तु मोदको मनुजैः ॥ ५९ ॥ भक्षित एव हि गुणवान्निहन्ति सकलान्गुदामयान् ॥ त्वरितमग्नेर्दीपनमुक्तं गुल्मानां जठररुजाम् ॥ ६० ॥

तीनोंतर्फसे समान और लाल वर्णवाला ऐसे जमीकंदको लेके तिसके छह टुकडे बना तिन्होंको सुखालेवे यह जमीकंद सोलहभाग लेना चाहिये ॥ ५८ ॥ और चीता, सोंठ, इन्होंको आठ भाग लेवे मिरच १ भाग लेवे पीछे इन्होंको गुडमें मिला मोदक बांधलेवे यह मोदक गुणवाला है ॥ ५९ ॥ और भक्षण कियाहुआ गुदाके सब रोगोंको नाशता है जठराग्निको शीघ्रही दीप्त करता है और गुल्मरोग, जठररोग, इन्होंको शीघ्रही नाशता है॥ ६० ॥

अथ भीमवटक ।

त्रिफलमगधजानां मूलतालीसपत्रं क्रिमिरिपुमगधानां पुष्करं चेत्समांशः ॥ मरिचदहनभागश्चैकभागेन शुण्ठी सकलतुलिततुल्यः सूरणस्यैकभागः ॥ ६१ ॥ मदनचपलयुक्तं वृद्धदारैलभृङ्गं कृतमिह परिचूर्णं द्विगुणो शीर्णखण्डः ॥ कृतवटकमुखस्तु प्राश्नुते यो मनुष्यो हरति जठररोगं तस्य चाशु प्रकर्षम् ॥ ६२॥ गुदजरुधिरपित्तं कासमन्दाग्निशूलान् क्षयतमकहलीमान् कामलांश्च क्रिमींश्च ॥ विदधाति बलपुष्टिं दापयेच्चाशु मार्गे प्रबलयति हुताशं योगराजः प्रसिद्धः ॥ ६३ ॥ योगराजेन युञ्जीत स्मरणेनाप्यगस्त्यतः ॥ अस्य योगस्य योगेन भीमोऽपि बहुभक्षकः ॥ ६४ ॥

त्रिफला, पीपलामूल, तालीसपत्र, वायविडंग, पीपल, पोहकरमूल, इन्होंको समानभाग लेवे और मिरच, चीता ये दोनों एक भाग, सोंठ १ भाग और इन सबोंके समान जमीकंद ॥ ६१ ॥ और मैनफल, गठोना, भिदारा, इलायची, भंगरा, इन्होंका चूर्ण और दूनी पुरानीखांड इन्होंका वटक अर्थात् गोली बना जो मनुष्य खाता है तिसके जठररोग शीघ्रही दूर

होजाता है ॥ ६२ ॥ और गुदाका रक्तपित्त, खांसी, मंदाग्नि, शूल, क्षयरोग, तमक, श्वास, हलीनक, कामला, क्रिमि, इनरोगोंको नाशता है और बल पुष्टि इन्होंको बढाता है जठराग्निको तेज करता है यह सब योगोंका मसिद्ध राजा है ॥ ६३ ॥ इस योगराजको अगस्त्यमुनिका स्मरण करके प्रयुक्तकरै इस योगके प्रतापसे भीमभी बहुतसे भोजनको भक्षण किया करता ॥ ६४ ॥

अथ चव्याद्यघृत।

चव्यं पाठा त्रिकटु मगधा मूलकस्तुम्बुरूणां विल्वाजाजीरजनि-सुरसा पथ्यया सैन्धवं च ॥ पिष्ट्वा चैतत्समगविघृतं पाचयेत्सु-प्रयुक्तं पानाभ्यङ्गे हरति गुदजान्वातरोगाश्मरीं च ॥ ६५ ॥

चव्य, पाठा, त्रिकटु "सोंठ, मिर्च, पीपल" पीपलामूल, धनियां, बेलगिरी, जीरा, हलदी, तुलसी, हरडै, सैंधानमक, इन्होंको पीसके बराबरके गौके घृतमें पकावे यह घृत पीनेसे और मालिस करनेसे गुदाके रोग, वातरोग, पथरी, इन्होंको नाशता है ॥ ६५ ॥

अथ पिप्पल्याद्य तैल।

श्यामा कुष्ठं मधुकमदनं पुष्पकं चित्रकश्च बिल्वं दारु प्रतिविष-शताह्वाकलिङ्गाशठीनाम्॥पिष्ट्वा तैलं द्विगुणपयसा पाचितं चानु-वासे चाभ्यङ्गे वा हितमपि गुदव्याधिनिर्णाशहेतोः ॥ ६६ ॥वात-व्याधिश्रवणरुधिरे कर्णशूलेऽश्मरीणां जङ्घापृष्ठे कटिशिरःशिरा-वेक्षणे वाततोदे ॥ विष्टाबन्धग्रहनिग्रहनिःसारके मूढगर्भे श्रेष्ठं तैलं सकलनिचयव्याधिसंधारणेन ॥ ६७ ॥

पीपली, कूठ, मुलहटी, मैनफल, मैनफलका पुष्प, चीता, बेलगिरी, देवदार, अतीश, शतावरी, इंद्रजव, कचूर, इन्होंको तैलमें पीस फिर दूनें दूधमें पका इसको अनुवासन बस्तिमें और मालिसमें बरतै यह गुदाकी व्याधिके नाशके हेतुमें हित है ॥ ६६ ॥ और वातव्याधि, कानका रुधिररोग, कर्णशूल, पथरी, जांघ, पीठ, कटि, शिर, इन्होंका रोग नाडियोंका फुरणा, वातका चभका, मलका बंधा, इन्होंको नाशता है ग्रहदोषको दूर करता है मूढगर्भको दूर करता है यह तैल संपूर्णव्याधियोंको नाशता है ॥ ६७ ॥

अथ मुस्ताद्यवटक।

मुस्ता विश्वविडंगचव्यकशठी पथ्या च तेजोवती दन्तीन्द्रात्रि-वृता समांशकपली मात्रा च प्रत्येकशः ॥ तस्माचाष्टपलान् पुरु ष्करमपि षड् वृद्धदारोपलान् युञ्ज्यात्षोडशसूरणारुयसलिल

द्रोणेऽखिलं कल्कितम्॥६८॥भूतं भूयः पचेद्गुडत्रिगुणितं युञ्ज्याद्भवेद्वादिनमुद्धृत्य पुनरेव चित्रकत्रिवृत्तेजोवती सूरणम् ॥ एलापत्रकनागकेशरलवंगानां समं चूर्णितमेषां षोडशभागयोग्यविहितं सर्वञ्च तं चैकतः ॥ ६९ ॥ स्थाप्यं स्निग्धघटे प्रभातसमये भक्षेदक्षमात्रं वटं जीर्णे क्षीरमपि प्रभूतमतिमान् पाने तथा भोजने ॥ अर्शोगुल्मभगन्दरान् ग्रहणीपाण्डुरोगं च कामलां शूलञ्चाथ विबन्धकासक्षतजराजयक्ष्मान्निहन्ति ॥ ७० ॥

नागरमोथा, सोंठ, वायविडंग, चव्य, कचूर, हरडै, तेजबल, जमालगोटाकी जड, इंद्रायण, निशोत, इनसबोंको समान भाग चार २ तोला प्रमाण लेवे और पौहकरमूल ३२ तोले लेवे भिदारा २४ तोले प्रमाण लेवे जमीकंद ६४ तोला प्रमाण लेवै फिर इन्होंका कल्क बना १०२४ तोले प्रमाण जलमें पकावे ॥ ६८ ॥ पीछे करडा होजावे तब तिगुना जल मिला फिर पकावे पीछे इसको नीचे उतारि इलायची, तेजपात, नागकेशर, लौंग, इन्होंको समान भागले चूर्ण बनाके तिसमें मिलादेवै और इन्होंका चूर्ण इन औषधोंसे सोलहमा भाग मिलाना चाहिये ॥ ६९ ॥ पीछे इसको चीकने बरतनमें घाल धरै फिर इसको प्रातःकाल एक तोला प्रमाण भक्षण करै पीछे यह चूर्ण जरजावे तब दूध पीवे और भोजनमेंभी दूधको वरतै तौ बवासीर, गुल्म, भगंदर, संग्रहणी, पांडुरोग, कामला, शूल, मलका बंधा, खांसी, क्षतजरोग, राजयक्ष्मा, इनरोगोंको नाशता है ॥ ७० ॥

अथ भल्लातकगुड।

भल्लातकानां द्विसहस्रकाणां द्रोणे जले पाच्यपदावशेषम् ॥ क्वाथे तु तस्मिन् विपचेद्गुडस्य तुलाप्रमाणं पुनरेव तत्र ॥ ७१ ॥ भल्लातकानां शतपञ्चकानि तत्रैव संयोज्य पलत्रिकं वा ॥ व्योषं जवानीघनसैन्धवानामेलालवङ्गं दलनागकेशरम् ॥ प्रत्येककर्षं तुलितं नियोज्यम् ॥ ७२ ॥ संकुट्य तैले घृतभाजने वा स्थाप्यं प्रभाते वटकप्रमाणम् ॥ भक्षेद्गुडं स तु निहन्ति रोगान्भगन्दरार्शःक्रिमियक्ष्मपाण्डून् ॥ ७३ ॥ गुल्माश्मरी मेहहलीमकं वा सरक्तपित्तं ग्रहणीं निहन्ति ॥ करोति पुष्टिं बलमातनोति वर्णप्रकर्षं सुखमादधाति ॥ ७४ ॥

दोहजार भिलावोंको १०२४ तोले जलमें पकावे जब चतुर्थांश बाकी रहे तब उतारि तिसकाथमें ४०० तोले गुडको पकावे ॥ ७१ ॥ पीछे तिसमें पांचसौ भिलावे मिलावे और त्रिफला, सोंठ, मिरच, पीपल अजवायन, नागरमोथा, सैंधानमक, इलायची, लौंग, तेजपात, नागकेशर, इन्होंको एक २ तोला प्रमाण गेरै ॥ ७२ ॥ पीछे इन्होंको अच्छी तरह कूटके मिला तेलके अथवा घृतके चीकने पात्रमें घाल धरै पीछे प्रभातसमय इसको वडाके प्रमाण भक्षण करै यह गुड भगंदर, बवासीर, क्रिमि, राजयक्ष्मा, पांडु ॥ ७३ ॥ गुल्म, पथरा, हलीमक, रक्तपित्त, संग्रहणी, इनरोगोंको नाशता है और पुष्टि करता है बलको बढाता है वर्णको सुंदर करता है सुख करता है ॥ ७४ ॥

अथ अन्यभल्लातकगुड ।

दशमूलकगुडूचिसठीक्षुरकं सहचित्रकभार्ङ्गीफलासहितम् ॥ भल्लातकपंचशतं प्रदिशेद्विपचेज्जलद्रोणमितेन च तत् ॥ ७५ ॥ गुडजीर्णशतं प्रददेत्क्कथितमवतार्य्य सुशीतलमेलसमम्॥ दलकेसरभृङ्गलवङ्गयुतं कृतचूर्णमिदं सकलैकमिति ॥ ७६ ॥ घृतभावितमेकदिनं विदधीद्घृतभाजनके दिनसप्तमिदम् ॥ स्निग्धघटे विदधीत मनुष्यो दत्तमिदं गुदजामयसङ्घे ॥ ७७ ॥ मोदकमेकमुषस्सु ग्रसेद्विनिहन्ति गुदामयमेहरुजः ॥ हन्ति कासहलीमककामलकं हितमेव हुताशनदीप्तिकरम् ॥ ७८॥ यस्तु शीतजले क्षिप्तो जलेनैव विलीयते ॥ लोहितो लोहितां याति चैकपाको गुडस्य च ॥ ७९ ॥

दशमूल, गिलोय, कचूर, गोखरू, चीता, भारंगी, त्रिफला, पांचसौ, भिलावे, इन्होंको १०२४ तोले जलमें पकावे ॥७५॥ पछि इस क्वाथमें बराबर पुरानागुड मिला पकाके नीचे उतारि शीतलहो जावे तब तेजपात, नागकेशर, भंगरा, लौंग, इन्होंका चूर्ण बना तिसमें मिला ॥ ७६ ॥ फिर एकदिनतक घृतमें भावनादे पीछे सातदिनतक घृतके पात्रमें घाल रक्खे पीछे चीकने पात्रमें इसको घालधरै इसमोदकको गुदाके रोगोंके समूहोंमें खावै ॥ ७७ ॥ एक मोदक प्रातःकाल खावै गुदाके रोग, प्रमेह, खांसी, हलीमक, कामला, इन रोगोंको नाशता है और जठराग्निको दीप्त करता है ॥ ७८ ॥ और जो जलमें गेरा हुआ डूब जावे और लाल लाल वर्णवाला हो जावे यह गुडके पाकका लक्षण है ॥ ७९ ॥

अथ भल्लातकावलेह ।

ग्रन्थिकं चित्रकं मुस्तं चविकं त्रिफलामृता ॥ सहदेवी गजकर्णा पामार्गश्च कुठेरकम् ॥ ८० ॥ प्रत्येकं चतुष्पालिकं कल्के द्रोणाम्भसा सुधीः ॥ द्वे सहस्रे समे पिष्टे भल्लातक्याः फलानि तु ॥ ८१ ॥ पादावशेषे कल्के च लोहचूर्णं तुलार्द्धकम् ॥ क्षिपेत्कुडद्वयं सर्पिः सर्वं चैकत्र घट्टयेत् ॥ ८२ ॥ फलत्रिकं तथा व्योषं चित्रकं लवणाष्टकम् ॥ विडङ्गानि समांशानि सर्वाणि पलमात्रया ॥ ८३ ॥ चतुष्पलं वृद्धदारोर्मूर्वाख्या तु चतुष्पला ॥ संशुष्कसूरणं कन्दं चूर्णं चाष्टपलोन्मितम् ॥ ८४ ॥ संक्षिप्य स्वादयेच्चूर्णमवतार्य्य सुशीतले ॥ स्थापितं मधु संयोज्यं कुडवद्वयमात्रया ॥ ८५ ॥ देयं गुदामये चादौ कल्कमप्रातराशने ॥ अर्शांसि ग्रहणीरोगं कामलाराजयक्ष्मणः ॥ ८६ ॥ गुल्मक्रिमीनश्मरीं च मन्दाग्निमेहशोणितम् ॥ नाशयत्याशु यक्ष्माणं करोति बलमाकृतेः ॥ ८७ ॥ आशु वृद्धिं प्रकुरुते वलीपलितनाशनम् ॥ रसायनस्य योगेन नरो नागवलो भवेत् ॥ ८८ ॥

गठोना, चीता, नागरमोथा, चव्य, त्रिफला, गिलोय, सहदेवी, गजपीपली ऊंगा, आजवला ॥ ८० ॥ इन सबोंको १६ सोलह २ तोला प्रमाणलेवे पीछे कल्क बना एक हजार चौवीस १०२४ तोले प्रमाण जलमें पकावे और दो हजार भिलावोंका कल्क बना तिसका क्वाथ बनावे ॥ ८१ ॥ जब चतुर्थांश बाकी रहे तब उतारि २०० तोले प्रमाण लोहाका चूर्ण मिलावे और ३२ तोला प्रमाण घृत मिला पीछे एक जगह घोटि ॥ ८२ ॥ पीछे त्रिफला, सोंठ, मिरच, पीपल, चीता, आठ प्रकारके नमक, वायविडंग, इन सबोंको चार २ तोला प्रमाण लेवे ॥ ८३ ॥ और भिदारा १६ तोले, मूर्वा १६ तोले और सूखा हुआ जमीकन्द ३२ तोले प्रमाण लेवे इन्होंका चूर्ण बना तिस पाकमें गेरदेवै ॥ ८४ ॥ पीछे शीतल होजावे तब ३२ तोला प्रमाण शहद मिलावे ॥ ८५ ॥ पीछे गुदाके रोगकी निवृत्तिके वास्ते इस कल्कको प्रातःकाल खावै बवासीर, संग्रहणी, कामला, राजयक्ष्मा इनरोगोंको नाशता हैं ॥ ८६ ॥ और गुल्म, क्रिमि, पथरी, मन्दाग्नि, प्रमेह, रक्तरोग, इन रोगोंको नाशता है और बल, आकृति, इन्होंको बढाता है ॥ ८७ ॥ धातुओंकी वृद्धि करता है बुढापाके सफेद वालोंको दूर करता है इस रसायनके योगसे मनुष्य हस्तीके समान बलवाला होता है ॥ ८८ ॥

अथ रक्तबवासीरकी चिकित्सा।

रक्तार्शसामुपचारं वक्ष्यामि शृणु पुत्रक ! ॥ प्रातस्तिलान्भक्षये-च्च नवनीतविमिश्रितान् ॥ ८९ ॥ सितानागरकयुक्तं नव-नीतं सशर्करम् ॥ केशरं मातुलुङ्गस्य विडंगशर्करायुतम् ॥ ॥ ९० ॥ भक्षेत्कूष्माण्डकालेहं नवनीतेन शर्कराम् ॥ एतेन रक्तगुदजाञ्छमयन्ति विचक्षणाः ॥ ९१ ॥ समङ्गाशाल्मली-पुष्पं चन्दनं ककुभत्वचम् ॥ नीलोत्पलमंजाक्षीरं पिष्ट्वा पानम सृग्गदान् ॥ ९२ ॥ कुटजमूलसकेसरमुत्पलं खदिरधातुकि-मूलशृतं पयः ॥ पिबति ग्रक्षणयोगमसृग्भवं गुदजनाशनकारि-विकारणम् ॥ ९३ ॥

अब रक्तके बवासीरकी चिकित्साको कहते हैं पुत्र ! सुन तिलोंको नौनी घृतमें मिला प्रातः भक्षण करै ॥ ८९ ॥ और मिसरी, सोंठ, नौनीघृत, खांड, इन्होंको मिला खावै और विजौराकी केशर, वायविडंग, खांड, इन्होंको खावे ॥ ९० ॥ अथवा कोहलेके अवलेहको नौनी घृत और खांडके संग खावे, इन इलाजोंसे वैद्यजन रक्तकी बवासीरोंको शांत करैं ॥ ९१ ॥ और मंजीठ, साल्वणका पुष्प, चन्दन, अर्जुनवृक्षकी छाल,नीलाकमल, इन्होंको बकरीके दूधमें पीस पीनेसे रक्तके रोगोंका नाश होता है ॥ ९२ ॥ कूडाकी छाल, और जड, कमल केशर, खैरकी जड, धवकी जड़, इन्होंमें दूधको पका क्काथ बना जो मनुष्य पीता है तिसकी गुदाके रक्तके रोगोंका नाश होता है ॥ ९३ ॥

अथ वर्त्तियोग।

कुक्कुटस्य पुरीषञ्च तथा पारावतस्य च ॥ ग्रहधूमं च सिद्धार्थं धत्तूरकदलानि च ॥ काञ्जिकेन च संपिष्य वर्त्तिं सञ्चारये-द्गुदे ॥ ९४ ॥ सूरणं कन्दकवर्त्तिर्विधेया मह्लीरसेन घृतेन च लिप्त्वा ॥ रोगगुदे गुदकीलकमाशु नाशयते गुदजांश्च क्रिमींश्च ॥ ९५ ॥ हरिद्रा मार्कवं कुष्ठं गृहधूमं सुवर्चलम् ॥ सिद्धार्थकरसश्चैव काञ्जिकेन च पिष्यते ॥ ९६ ॥ मधुना सह वर्त्तिः स्याद्गुदे सञ्चारिता यदि ॥ अर्शसां नाशनं चैव करोति सहसा नृणाम् ॥ ९७ ॥

मुरगाकी बींट, कबूरकी बींट, घरका धूवां, शिरसम, धतूराके पत्ते, इन्होंको कांजीमें पीस गुदामें बत्ती चढानीं चाहिये ॥ ९४ ॥ और जमीकंदकी बत्ती बना मोगरीके रससे और घृतसे लीपि गुदामें चढानेसे गुदकीलक, गुदाके क्रिमि, इन रोगोंका नाश होता है ॥ ९५ ॥ और हलदी, भंगरा, कूट, घरका धूवां, कालानमक, इन्होंको शिरसमके रसमें और कांजीमें पीस ॥ ९६ ॥ पीछे शहद मिला बत्ती बना गुदामें चढानेसे शीघ्रही बवासीररोगोंका नाश होता है ॥ ९७ ॥

अथ देवदाल्यादि लेप।

देवदालीपलसम्मितञ्च हुतभुग्व्योषै रसानां गणान्षड्ग्रन्थापिचुमन्दवारिककणाभार्ङ्गीशिलातैलकम् ॥ पिष्ट्वा श्लक्ष्णसमस्तकाञ्जिकयुतं दत्वा शिलालेपनं दुर्नामानि हन्ति तथैव गुदजान्सर्वातिसारामयान् ॥ ९८ ॥

सोनापाठा, चीता, व्योष अर्थात् सोंठ, मिर्च, पीपल, इन्होंको चार २ तोला प्रमाण लेवे पीछे इन्होंका रस निकाल लेवे और वच, नींबां नेत्रवाला, पीपली, भारंगी, शिलाजीत, इन्होंको समान भागले पीछे, तैलमें और कांजीमें तथा पूर्वोक्त औषधोंके रसमें इन्होंको बारीक पीस शिलापै लीप देवे पीछे शिला ऊपरसे उतार गुदापै लगानेसे बवासीर, सब प्रकारके अतिसार इन्होंका नाश होता है ॥ ९८ ॥

अथ अर्शरोगपरशस्त्रादिकर्म।

यन्त्रं शस्त्राग्निकार्यञ्च कथितं तत्तु शल्यके ॥ यथा यन्त्रेण छिद्यन्ते दाहस्तत्र विधेयकः ॥ ९९ ॥ चर्मकीलं तथा छित्त्वा दग्धं क्षारेण धीमता ॥ पक्कजम्बूसमो वर्णो क्षारदग्धे प्रशस्यते ॥ १०० ॥ दग्धं वा सूरणक्षारं कदलीजीवसुद्गकैः ॥ पलाशकोकिलाक्षारमपामार्गघृतान्वितम् ॥ १०१ ॥ क्षारदाहे प्रशस्येत नवनीतघृतेन वा ॥ कुष्ठं पथ्या तथा निम्बपत्राणि च मनःशिला १०२ तस्मान्मधुघृतमिश्रं निर्धूमाङ्गारके क्षिपेत्॥धूपयेद्गुदजांतेन यथा सम्पद्यते सुखम् ॥ १०३ ॥ मनःशिलानागरकं सगुग्गुलं ससार्षपम् ॥ देवदारु सपौष्करं विशल्यासर्जिकारसम् ॥ १०४ ॥ घृतेन धूपयेद्गुदजं गुदामयं भगन्दरम् ॥ निहन्ति दुष्टपीनसं व्रणं सपूयगन्धिकम् ॥ १०५ ॥ निर्गुण्डीदलपत्रहरितालं तथा सार्ष-

पचूर्णकं देवाह्वं घृतशर्करामधुयुतं धूपं गुदजादिके ॥ दुर्नामे सरुजे व्रणे च विषमे दुष्टे विसर्पेषु च पामापीनसकासनाशनकरो धूपो ग्रहोच्छेदनः ॥ १०६ ॥

और यंत्र, शस्त्र, तथा अग्निकर्म कहा है वह शल्यतंत्रमें कहा है और जो यंत्रसे छेदन कियाजावे तहां दाह करना चाहिये ॥ ९९ ॥ और चर्मकीलको छेदन करके क्षारसे दग्ध करै और जो पकाहुआ जामनके फलके समान वर्णवालाहो वह क्षारसे दग्ध करना श्रेष्ठ कहा है ॥ १०० ॥ और जमीकंदका खार, केला, जीवक, मूंग इन्होंके खारसे दग्ध करना श्रेष्ठ कहा है और केशू, तालमखाना, ऊंगा, इन्होंको खारके घृतमें युक्तकर अथवा नौंनी-घृतमें युक्तकर ॥ १०१ ॥ क्षारदाह करना श्रेष्ठ कहा है और कूठ, हरडै, नींबके पत्ते, मनसिल ॥ १०२ ॥ इन्होंको शहदमें मिला धूवोंसे रहितहुए अंगारपै गेरै पीछे तिससे गुदाके मस्सोंके धूमनी देवै तब रोगीको सुख प्राप्त होता है ॥ १०३ ॥ और मनसिल, सोंठ, गूगल, सिरसम, देवदार, पौहकरमूल, कलहारी, साजीखार ॥ १०४ ॥ इन्होंको घृतमें मिला धूप देनेसे बवासीरका मस्सा, गुदाके रोग, भगंदर, दुष्टपीनस, राधिकी गंधसे युक्त व्रण, इन्होंको नाशता है ॥ १०५ ॥ संभालूके पत्ते, तेजपात, हरताल, सिरसमका चूर्ण, देवदार, इन्होंको घृत, खांड, शहद, इन्होंमें मिला धूप देनेसे गुदाके रोग दूर होते हैं पीडा-सहित बवासीर, विषम और दुष्ट विसर्परोग, पामा, पीनस, खांसी, इनरोगोंको नाशता है और यह धूप ग्रहदोषको दूर करता है ॥ १०६ ॥

अथ अर्शरोगमें पथ्य।

एवं क्रियाविधिः प्रोक्तश्चातः पथ्यानि मे शृणु ॥ शालिषष्टिकमुद्गाश्चकुलत्थाढक्यवास्तुकम् ॥ १०७ ॥ चिल्ली च शतपुष्पा च कूष्माण्डकपटोलकम् ॥ कारवेल्लं च तुण्डीरं सूरणो राजिकार्जकम् ॥ १०८ ॥ गुडस्तक्रं घृतं चैतत्प्रशस्यन्तेऽर्शसां सदा ॥ सूकरः शल्लकी गोधा मूषको वा सरीसृपः ॥ १०९ ॥ लावतित्तिरवार्त्ताकमांसानि कथितानि च ॥ ११० ॥ वल्लूरमत्स्यदधिपिच्छलतैलबिल्ववार्त्ताकभोजनमतिप्रतिवर्जनीयम् ॥ निप्राकृति निशि दिवा शयनश्च शीतं शीतान्तमेव परिवर्जितमादरेण ११ १

इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने अर्शश्चिकित्सा नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

इस प्रकारसे क्रियाओंकी विधि कही है अब पथ्यवस्तुओंको कहते हैं शालिसंज्ञक चावल, सांठी चावल, मूंग, कुलथी, तुरीधान्य, बथुवा ॥ १०७ ॥ चिल्लीशाक अर्थात् बथुवाके भेद, सौंफ, कोहला, परवल, करेला, तोरी, जमीकंद, सिरसमकी डांकल, इन्होंका भोजन और शाक हित कहा है ॥ १०८ ॥ और गुड, तक्र, घृत, ये बवासीरवालोंको हित हैं और शूकर, शेह, गोह, मूंसा, सर्प, आदि ॥ १०९ ॥ लावा, तीतर, वत्तक, इन्होंके मांस पथ्य कहे हैं ॥ ११० ॥ और सूखामांस, मत्स्यका मांस, दही, झागोंवाला पदार्थ, तैल, बेलगिरी, वत्तकका मांस, इन्होंका भोजन नहीं करै और रात्रीमें प्रकृतिके अनुसार शयन करै दिनमें नहीं सोवै और शीतल पदार्थोंको वर्ज देवै ॥ १११ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः १२.

अथ खांसीकी चिकित्सा।

आत्रेय उवाच ॥ अथ वक्ष्यामि कासानां निदानं सचिकित्सितम् ॥ कासांश्चाष्टविधांश्चैव शृणु पुत्र ! महामते ! ॥ १ ॥

आत्रेयजी कहते हैं–इससे अनंतर कास अर्थात् खांसीरोगोंका चिकित्सासहित निदान कहते हैं खांसी आठ ८ प्रकारसे होती है सो हे पुत्र ! हे महामते ! सुन ॥ १ ॥

अथ कासरोगके हेतु।

हास्यात्प्रहास्यरजसानिलसंनिरोधाद्विमार्गगत्वाच्च हि भोजनस्य ॥ वेगावरोधात्क्षवथोस्तथैव संजायतेऽपि मनुजां प्रतिधाम कासः ॥ २ ॥ संसेवनान्मधुरपिच्छलजागरेण स्वप्नैर्दिवातिदधिगौल्यहिमाशनेन ॥ संजायते मदनतैलमंथाल्पकन्दी मद्येन वा भावि जन्तुः कफस्य ॥ ३ ॥

हास्यसे हँसीके और वायुके रोकनेसे मार्गमें विशेष गमन करनेसे भोजनका वेग रोकनेसे छींकके रोकनेसे, मनुष्योंको खांसी रोग होता है ॥ २ ॥ और मधुर तथा झागोंवाले पदार्थके सेवनेसे जागनेसे दिनमें सोनेसे और अत्यंत दही, गुल्ली बंधनेवाला पदार्थ, ठंढा पदार्थ इन्होंके भोजन करनेसे तथा मैनफल, तैल, अल्प कंद, इन्होंके भक्षण करनेसे मदिरा पीनेसे खांसीमें कफ उत्पन्न होता है ॥ ३ ॥

अथ कासरोगकी संप्राप्ति।

उदान ऊर्ध्वगतिवैपरीत्यात्कफेन प्राणानुगतेन दीर्घः ॥ हृदं निरेत्य कफकासकण्ठे करोति तेनापि च कासंसंज्ञाम् ॥ ४ ॥

कंठमें रहनेवाला उदानवायु ऊपरको विपरीत होजानेसे कफके संग प्राणवायुके दीर्घ संग होनेसे हृदामें प्राप्त हुआ कफ खांसीके संग कंठमें प्राप्त होजाता है तिससे खांसी रोग होता है ॥ ४ ॥

अथ कासरोगके प्रकार।

कासाश्चाष्टौ समुद्दिष्टाः क्षतजाऽन्यः प्रकीर्त्तितः ॥ वातिकः पैत्तिकश्चैव श्लैष्मिकः सान्निपातिकः ॥ ५ ॥ वातपित्तसमुद्भूतः श्लेष्मपित्तसमुद्भवः ॥ सप्तमो लोहितेनात्र चाष्टमो जायते क्षयात् ॥ ६ ॥ न वातेन विनाश्वासः कासो न श्लेष्मणा विना ॥ न रक्तेन विना पित्तं न पित्तरहितः क्षयः ॥ ७ ॥ कथितः सम्भवश्वासश्चातो वक्ष्यामि लक्षणम् ॥ येन संलक्ष्यते नृणां कासश्चाष्टविधः परः ॥ ८ ॥

खांसी आठ प्रकारसेभी होती है एक खांसी क्षतज होती है वातसे १ पित्तसे २ कफसे ३ सन्निपातसे ४ वातपित्तसे ५ कफपित्तसे ६ और सातमी रक्तसे और आठमी क्षयसे होती है ॥ ५ ॥ ६ ॥ वातके विना श्वास नहीं होता कफके विना खांसी नहीं होती रक्तके विना पित्त नहीं होता पित्तके विना क्षयरोग नहीं होता यह सिद्धांत है ॥ ७ ॥ श्वासकी उत्पत्ति तो कह दी है अब लक्षण कहते हैं. जिससे मनुष्योंकी आठ प्रकारकी खांसी जानी जावेगी ॥ ८ ॥

अथ वातसे उपजी खांसीके लक्षण।

क्षीणेन्द्रियः पार्श्वरुजोऽतिवेगः शूलावृतो वा गलके च बद्धः ॥ निद्राकृतिर्भिन्नरवो मनुष्यो वातेन कासस्य भवेत्प्रकाशः ॥ ९ ॥

इंद्रिय क्षीणहों पशलीमें पीडाहो अत्यंत वेगहो शूलहो गलबंधा रहै निद्रासी आवे स्वर फटा रहै तो वातसे उपजी खांसी जाननी ॥ ९ ॥

अथ पित्तसे उपजी खांसीके लक्षण।

कण्ठे विदाहो ज्वरशोषमूर्च्छातृष्णाभ्रमः पित्तभवे च कासे ॥ आस्ये कटुत्वं च शिरोऽर्त्तिपित्तं निष्ठीवते पीतनखानि नेत्रे ॥ १० ॥

कंठमें दाहहो ज्वर, शोष, मूर्च्छा, तृषा, भ्रम ये हों तब पित्तसे उपजी खांसी जाननी और मुखमें कडुआपनहो पित्त थूकै शिरमें पीडाहो नख, नेत्र, ये पीले रहैं ॥ १० ॥

अथ कफकी खांसीके लक्षण।

जाड्यं वमिः पाण्डुभवं च कासं निष्ठीवते यः सघनं कफं वा ॥ भक्तारुचिर्वा कफपूर्णदेहे घनः स्वरः श्लेष्मभवे च कासे ॥ ११ ॥

जडताहो वमनहो पिळासळिये सुपेद और चीकना करडा कफ थूकै भोजनमें अरुचिहो कफसे पूर्ण शरीरहो भारा स्वरहो ये कफसे उत्पन्न हुई खांसीके लक्षण हैं ॥ ११ ॥

अथ त्रिदोषकी खांसीके लक्षण।

कण्डूदाहश्वासच्छर्दिशोषारोचकपीडिताः ॥ शिरोऽर्त्तिशोफहृल्लासः कासे त्रिदोषसम्भवे ॥१२॥ कासः कण्डूः पिपासा च कुक्षिशूलो विनिद्रता ॥ शुष्ककासः पिपासा च वातपित्तोद्भवः कफः ॥ १३ ॥ धूमगन्धः पीतवर्णोऽक्षिप्रपाकी सरक्तकः ॥ रक्तनेत्रः पिपासाढ्यः पित्तश्लेष्मान्वितः कफः ॥ १४ ॥

खाजिहो, दाहहो, श्वासहो, छर्दिहो, शोषहो, अरुचिकी पीडाहो, शिरमें पीडाहो, शोजाहो, थुकथुकीहो, ये त्रिदोषसे उपजी खांसीके लक्षण हैं ॥१२॥ और खांसीकी धसकहो, खाजिहो, तृषाहो, कुक्षिमें शूलहो, निद्रा नहीं आवे, सूखी खांसीहो, तो वातपित्तसे उपजा कफ अर्थात खांसी जाननी ॥ १३ ॥ धूवां सरीखी गंधहो, पीला वर्णहो, आंखि पकजावें, कफमें रक्त, अति लाल नेत्रहो तो पित्तकफसे उपजी खांसी जाननी ॥ १४ ॥

अथ क्षतजखांसीके लक्षण।

व्यवायातिप्रसङ्गेन वेगरुद्धाभिघातकः ॥ भारोद्धरणयातेन जायते क्षतजः कफः ॥ १५ ॥ तेन हृदि व्यथा रूक्षं कासते च सशोणितम् ॥ श्वासः संक्षीयते गात्रं दीनो मन्दज्वरातुरः ॥१६॥ वेपते पर्वभेदश्च मोहभ्रमनिपीडितः ॥ एवं क्षतजनिर्दिष्टो नृणां प्राणापहारकः॥ १७ ॥

मैथुनके अत्यंत प्रसंगसे वेगके रोकनेसे अभिघातसे और बोझाके उठानेसे क्षतसे उपजा-हुआ कफ जानना ॥ १५ ॥ तिस करके हृदामें पीडाहो रूखी खांसी आवे अथवा खांसीमें रक्त आवे श्वासहो गात्र क्षीण हुआजावे गरीब रहै मंदज्वरकी पीडा रहै कंपना रहै हडफूटणीहो मोह, भ्रम, इन्होंकी पीडाहो ऐसे मनुष्योंके क्षतज अर्थात् चोटसे उपजीहुई खांसी जाननी यह प्राणको हरनेवाली खांसी है ॥ १६ ॥ १७ ॥

अथ रक्तकी खांसीके लक्षण ।

अल्पायासात्क्षतात्क्षीणात्संपातात्क्षणभोजनात् ॥ पातनाघातयोगेन जायते रक्तजः कफः ॥ १८ ॥ विस्रगन्धास्यहृच्छूलदीनो वै विकलेन्द्रियः ॥ रक्तनिष्ठीवनोपेतः श्वासो वापि मदातुरः ॥ १९ ॥ क्षीयते सततं गात्रं मोहस्तृष्णा च जायते ॥ इत्येतैर्लक्षणैर्युक्तं रक्तकासं विनिर्दिशेत् ॥ २० ॥

कछुक परिश्रम करनेसे चोटसे क्षीण होनेसे गिरनेसे और दुष्टभोजनसे गिरनेके घातके योगसे रक्तसे उपजाहुआ कफ होजाता है ॥ १८ ॥ मुखमें बुरी गंधआवे हृदामें शूलहो गरीब रहै इंद्रिय विकल रहैं रक्तके थूकनेसे युक्तहो श्वासहो मदसे पीडितहो ॥ १९ ॥ शरीर निरंतर क्षीणहुआ जावे मोहहो, तृषाहो, इन लक्षणोंसे युक्त जो हो वह रक्तसे उपजी खांसी जाननी ॥ २० ॥

अथ सबप्रकारकी खांसियोंके लक्षण ।

अथ क्षयानुमानेन लक्ष्यते कासलक्षणम् ॥ पाण्डुरोगे तथा यक्ष्मे गुल्मे वापि क्षतक्षये ॥ २१ ॥ शोफार्शसां प्रतिश्याये चावश्यं काससम्भवः ॥ एतेषां चानुमानेन कासं संलक्षयेद्भृशम् ॥ २२ ॥ स्थविराणां रक्तकासः सोऽपि याप्यः प्रकीर्त्तितः ॥ बालानां जायते कासो धात्रीवैकल्ययोगतः ॥ २३ ॥ एते कासाः समुद्दिष्टा दशभिर्भिषगुत्तमैः ॥ तेषां क्रियाप्रतीकारः पथ्यभेषजमेव च ॥ २४ ॥

इससे अनंतर क्षयके अनुमान करके खांसीका लक्षण कहते हैं पांडुरोग, राजयक्ष्मा, गुल्म, क्षतक्षय, शोजा, बवासीर, पीनस इन्होंमें अवश्य खांसी होजाती है इन्होंके और अनुमानसे अत्यंत खांसीका लक्षण जानना ॥ २१ ॥ २२ ॥ और वृद्ध पुरुषोंका जो रक्तसहित खांसी होती है वह याप्यरोग कहाता है और धायके विकलताके योगसे बालकोंको खांसी उत्पन्न होती है इन दशप्रकारके लक्षणोंकरके वैद्यजनोंने खांसी कही है सो तिन्होंको बंध करनेवाली क्रियाओंको कहते हैं और पथ्य औषधोंको कहते हैं ॥ २३ ॥ २४ ॥

अथ वातकी खांसीकी चिकित्सा ।

शतमूलिकाक्कथितः कषायः पीतः कणाचूर्णयुतः सुखोष्णः ॥ नृणां निहन्यान्मरुतोद्भवं तु कासं सशूलं च विपाचनं स्यात् २५

भार्ङ्गी शठीगोस्तनीशृङ्गवेरशृंङ्गीकणाचूर्णयुतोऽवलेहः ॥ गुडेन तैलेन हितो नराणां मरुद्भवकासविकारनाशनः ॥ २६ ॥ विश्वा दुःस्पर्शशृङ्गी शठी पुष्करं दारु भार्ङ्गी कणा मुस्तं रास्नायुतम् ॥ शर्करायुक्तमनुदिनश्च चूर्णं कासं निःश्वासवातोद्भवं हन्ति वै ॥ २७ ॥

महाशतावरीका क्वाथ बना तिसमें पीपलीका चूर्ण मिला सुखसे सुहाता हुआ गरम २ पीनेसे मनुष्योंके वातसे उपजी हुई शूलसहित खांसी दूर होती है और पकजाती है ॥ २५ ॥ और भारंगी, कचूर, दाख, अदरक, काकडासींगी, पीपल, इन्होंका चूर्ण बना गुडमें और तेलमें अवलेह बना चाटनेसे वातसे उपजी हुई खांसी दूर होती है ॥ २६ ॥ और सोंठ, धमांसा, काकडासींगी, कचूर, पौहकरमूल, देवदार, भारंगी, पीपल, नागरमोथा, रास्ना, इन्होंका चूर्ण बना खांड मिला खानेसे श्वाससहित वातकी खांसी दूर होती है ॥ २७ ॥

अथ कट्फलआदि औषध ।

कट्फलं कटुतृणं भार्ङ्गी मुस्ता वचा धान्यकम् ॥ पर्पटं देवदारुस्तथादार्वी विश्वायुतकर्कटम् ॥ २८ ॥ कल्कयेत्पानमेतन्मधुसंयुतं मानवम् ॥ कासिनां कासप्रतीकारकासीत्तथा श्लेष्मसम्भूताय ॥ २९ ॥ क्षयं पीनसं कण्ठग्रहं शोपवातात्मकम् ॥ कफं नाशयत्याशुहिक्काज्वरं श्लेष्मकम् ॥ ३० ॥

कायफल, रोहिषतृण, भारंगी, नागरमोथा, वच, धनिया, पित्तपापडा, देवदार, दारुहलदी सोंठ, काकडासींगी ॥ २८ ॥ इन्होंका कलक बना शहद मिला पीना हित है इस औषधसे खांसी रोगवालोंकी खांसी दूर होती है और कफ दूर होताहै ॥ २९ ॥ क्षय, पीनस, कंठग्रह, वातसे उपजा शोष, कफ, हिचकी, कफसे उपजा ज्वर इन्होंको नाशता है ॥ ३० ॥

अथ द्राक्षादि औषध ।

द्राक्षामलक्याः फलपिप्पलीनां कोलं सखर्जूरयुतोऽवलेहः ॥ रक्तपित्तकासक्षयनाशकारी सकामलं पाण्डु हलीमकञ्च ॥ ३१ ॥

और दाख, आवला, पीपल, चव्य, खजूर इन्होंका अवलेह बना चाटनेसे रक्तपित्त, खांसी, क्षयरोग, इन्होंका नाश होताहै कामला, पांडुरोग, हलीमक, इन्होंको नाशता है ॥ ३१ ॥

अथ वालकादि कल्क ।

वालाबृहत्यौ मधुकं वृषं च तथैव कुष्ठं पिचुमन्दकञ्च ॥ गवास्तनीसंयुतकल्कमेतत्पानं हितं पित्तकफात्मके च ॥ ३२ ॥

और नेत्रवाला, छोटी कटेहली, बडी कटेहली, मुलहठी, वांसा, कूट, नींब, दाख इन्होंका कल्क बना पित्तकफसे उपजी हुई खांसीमें पीना हित है ॥ ३२ ॥

अथ मुस्तादि चूर्ण ।

मुस्ताटरूषकफलत्रिकदारुभार्ङ्गी व्याघ्रीसपुष्पफलमूलदलैरुपेता। रास्नाविषा च मधुरसालानि चूर्णं निहन्ति क्वथितेन जलेन कासम् ॥ ३३ ॥ बद्धाथवा च गुटिका मधुना गुडेन सिन्धूद्भवेन मगधासमहौषधेन ॥ आस्ये धृता निशि विशालगुणा भवन्ति श्वासं क्षयं क्षतजकासमिदं निहन्ति ॥ ३४ ॥

नागरमोथा, वांसा, त्रिफला, देवदार, भारंगी और पुष्प, फल, मूल, पत्ते इन पंचांगोंसहित कटेहली, रास्ना, अतीश, श्रेष्ठ तुलसीके पत्ते, इन्होंका चूर्ण बना, जलमें क्वाथ बना पीनेसे खांसी दूर होती है ॥ ३३ ॥ अथवा इस चूर्णको शहद तथा गुडमें मिला और सैंधानमक, पीपल, सोंठ ये मिला गोली बांध मुखमें धरै रात्रीकी समयमें यह उत्तम गुणवाली कही है और श्वास, क्षय, क्षतसे उपजी खांसी इन्होंको नाशती है ॥ ३४ ॥

अथ पित्तकी खांसीकी चिकित्सा ।

शर्करा चैव खर्जूरं द्राक्षा लाजा कणा मधु॥ सर्पिर्युतो हितो लेहः पित्तकासनिवारणः ॥३५॥ आटरूपकपत्राणि पिचुमन्ददलानि च ॥ तुलसीस्वरसश्चैव शठी शृङ्गी मरीचकम् ॥३६॥ शुण्ठीचूर्णं गुडे युक्तं लिह्यात्कासे कफात्मके ॥ भार्ङ्ग्याश्च नागपिप्पल्याः पिबेत्क्वाथं सुखोष्णकम् ॥ ३७ ॥ आर्द्रकस्य रसं नीत्वा मधुना च पिबेत्सुधीः ॥ कासे श्वासे प्रतिश्याये ज्वरे श्लेष्मसमुद्भवे ॥ ३८ ॥ कट्फलं भूतृणं भार्ङ्गी शुण्ठी पर्पटकं वचा ॥ सुराह्वं च जलशृतमुक्तश्च पण्डितैस्तथा ॥ ३९ ॥ मधुना संयुतं पानं कासे वातकफात्मके ॥ श्वासे हिक्काज्वरे शोषे महाकासे च दारुणे ॥ ४० ॥

खांड, खिजूर, दाख, धानकी खील, पीपल, शहद, इनऔषधोंके चूर्णमें घृत मिला लेह बना चाटनेसे पित्तकी खासी दूर होती है ॥ ३५ ॥ वांसाके पत्ते, नींवके पत्ते, तुलसीका रस और कचूर, काकडासींगी, मिरच॥ ३६॥ सोंठ, इन्होंका चूर्ण बना गुडमें मिला चाटनेसे कफसे उपजी खांसी दूर होतीहै और भारंगी, गजपीपली, इन्होंका क्वाथ सुखसे सुहाता हुआ

गरम २ पीवे ॥ ३७ ॥ और अदरकका रस निकाल शहदके संग पीना खांसी, श्वास, पीनस कफसे उपजा ज्वर इन्होंमें श्रेष्ठ है ॥ ३८ ॥ और कायफल, रोहिषतृण, भारंगी, सोंठ, पित्तपापडा, वच, देवदार इन्होंको जलमें पकावे ऐसे पंडितोंनें कहाहै ॥ ३९ ॥ पीछे शहद मिला पीनेसे वात कफसे उपजी खांसी दूर होती है और श्वास, हिचकी, ज्वर, शोष, महादारुण खांसी इन्होंमें श्रेष्ठ हैं ॥ ४० ॥

अथ लघुतालीसआदि औषध ।

तालीसपत्रं मरिचञ्च विश्वाश्यामायुतं चोत्तरभागवृद्ध्या ॥ त्वक्पत्रकेणापि लवङ्गमेलां पिप्पल्याचाष्टौ गुणितां सिताञ्च ॥ ॥ ४१ ॥ लिह्यात्प्रभाते श्वसने च कासे प्लीहारुचौ पीनसच्छर्दिहिक्काम्॥शोफातिसारं ग्रहणीं च पाण्डुं क्षयं निहन्यात्क्षतजञ्च यक्ष्मम् ॥ ४२ ॥

तालीसपत्र, १ मिरच, २ सोंठ, ३ पीपल, ४ इन्होंको यथोत्तर वृद्धिभागसे ले और दालचीनी, तेजपात, लौंग, इलायची, इन्होंको मिला और पीपलसे आठगुनीमिसरी मिला ॥ ॥४१॥ फिर प्रभातसमयमें खानेसे श्वास, खांसी, प्लीह अर्थात् तिल्ली, अरुचि, पीनस, छर्दि, हिचकी, शोजा, अतिसार, संग्रहणी, पांडु रोग इन रोगोंको नाश होता है और चोटसे उपजा क्षय, राजयक्ष्मा इन्होंका नाशता है ॥ ४२ ॥

अथ बृहत्तालीसाद्य औषध ।

तालीसं त्रिफलाप्रियङ्गुमगधामूलञ्च मुस्ता शठी दार्व्येलादलनागकेसरलवङ्गानां तथा नागराः ॥ कृष्णाकोलकवालकं सचविला मूर्वा विषा कर्कटं द्राक्षा कुष्ठनिशाग्निवत्सकवृषं गोकण्टतिक्ता तथा ॥ ४३ ॥ वृक्षाम्लं च सदाडिमाम्लकरसं पक्वबदराणि च एतेषां समभागचूर्णविहितं योज्या समा शर्करा ॥ योज्यं चार्द्धपलं निहन्ति क्षतजं कासं तथा श्वासकं पाण्डूकामलमेदशोषगुदजे शस्तं सदा यक्ष्मिणाम् ॥ ४४ ॥

तालीसपत्र, त्रिफला, भांदी, पीपलामूल, नागरमोथा, कचूर, देवदार, इलायची, तेजपात, नागकेशर, लौंग, सोंठ, पीपली, कंकोल, नेत्रवाला, चव्य, मूर्वा, अतीश, काकडासींगी, दाख, कूठ, दारुहलदी, चीता, कूडाकी छाल, वांसा, गोखरू, कुटकी ॥ ॥ ४३ ॥ बिजौरा, अनारदाना, पके हुए बेर, इन्होंको समान भाग ले चूर्ण बनावे

और सब चूर्णके समान खांड मिलावे, इस चूर्णको आधा तोला प्रमाण खावे यह क्षतसे उपजी खांसी, श्वास, पांडुरोग, कामला, भेद, शोष, गुदाके रोग, राजयक्ष्मा इन रोगोंको नाशता है ॥ ४४ ॥

क्षयकासे मधुयष्टिकया त्रिदोषजाः ॥

क्षयसे उपजी हुई खांसीमें और त्रिदोषसे उपजी हुई खांसीमें मुलहटीका सेवन करना हित है ॥

आमजे शूलरोगार्त्तिः पर्वभेदो भ्रमः क्लमः ॥
शोषः शिरोऽव्यथा क्लेदो नेत्रे गम्भीरमिच्छति ॥ ४५ ॥

और आमसे उपजी हुई खांसीमें शूलरोगकी पीडा, संधियोंका भेद, भ्रम, ग्लानि ये होते हैं और शोषहो, शिरमें पीडाहो, ग्लानिहो, नेत्र गंभीरहों ये लक्षण होजाते हैं ॥ ४५ ॥

अथ छर्दिलक्षण ।

खल्ली वा चेतनं वापि अजीर्णाज्जायते वमिः ॥ सापि स्निग्धा च रूक्षा च द्विविधा जायते वमिः ॥ ४६ ॥ गम्भीरनेत्रो वमते विड्बन्धो वाति सार्य्यते ॥ गात्रे खल्लीकरं शूलं तथा शोथातिमूर्च्छना ॥ ४७ ॥ विकलाङ्गो भ्रमार्त्तश्च भ्रमन्तं पश्यते जगत् ॥ शिरोऽर्त्तिर्वेपतेऽत्यर्थं करपादौ हिमोपमौ ॥ ४८ ॥ एतैर्लिङ्गैस्तु संयुक्तां छर्दिं दूरे परित्यजेत् ॥ असाध्या सर्वयोगैस्तु साप्यजी र्णा सुधीमता ॥ ४९ ॥

अजीर्णसे, वमन होनेसे खल्लीरोग होजावे मूर्च्छा होजावे और वमनभी स्निग्ध, रूक्ष ऐसे दो प्रकारकी होती है ॥ ४६ ॥ जिसके गंभीर नेत्रहों और वमन करै विष्ठा बन्धहो अतिसार हो और शरीरमें खल्ली रोगहो शूलहो शोजाहो अतिमूर्च्छा हो ॥ ४७ ॥ अंग विकलहो भ्रमकी पीडाहो जगतको भ्रमताहुआ देखै शिरमें पीडाहो कांपनाहो हाथ पैर ठंढेहों ॥ ४८ ॥ इन लक्षणोंसे युक्त जो वमनहो तिसको दूरसेही त्याग देवै और सब योगों करके यह असाध्य है अजीर्णसे उपजी कहाती है ॥ ४९ ॥

अथ वातच्छर्दिकी चिकित्सा ।

सपञ्चमूलीक्वथितः कषायःससैन्धवं चामलकञ्च कल्कः ॥
क्वाथं पिबेन्मिश्रितापिप्पलीकं सवातच्छर्दिविनिवारणं च ॥ ५० ॥
दद्यात्क्षीरं शर्करया नरस्य पित्तोद्भूतां वातिशीघ्रं निहन्ति ॥

द्राक्षा वापि क्षीरदार्व्यो विचूर्णं लेहो हन्ति सारघाणां पिबन्ति ॥ ॥ ५१ ॥ फलत्रिकं पुष्करकं वचां च तथाभयासैन्धवकं गुडेन ॥ चूर्णं विलिह्यात्कफवान्ति हन्ति नरस्य मूत्रेण युतस्य पानम् ॥ ॥ ५२ ॥ शठी दार्व्याभया शुण्ठी मागधी घृतसंयुता ॥ चूर्णं तक्रेण संयुक्तं हन्ति छर्दिं त्रिदोषजाम् ॥ ५३ ॥ रक्तशाल्युद्भवा लाजा मधुशर्करयान्विता ॥ ज्वरार्त्तिं युवतेः शीघ्रं नाशयंत्येव मे मतम् ॥ ५४ ॥ आमलक्या रसेनाथ घृष्टं चन्दनकं मधु ॥ गुटिका पलमानेन लेहो हन्ति वमिं ध्रुवम् ॥ ५५ ॥ आर्द्रदाडिमनिर्य्यासश्चाजाजी शर्करान्विता ॥ सतैलमाक्षिकं वापि चत्वारः कवलग्रहाः ॥ ५६ ॥ चतुररोचकान्हंति वाताद्यान्द्वन्द्वजांस्त्रियः ॥ ५७ ॥ त्रिकटुकरजनीद्वयं च फलत्रिकं मध्वा च यावशूकश्च ॥ समकृतमिति चूर्णमेतन्मधुना युतं वमिं निवारयति ॥ ५८ ॥ सगुडं दाडिमं द्राक्षा पथ्या वा नागरगुडयुक्ता ॥ त्रिवृता नागरमथवा गुडेन युक्तं वमिं दधाति ॥ ५९ ॥

लघुपंचमूलका काथ बना तिसमें सैंधानमक, आंवला, इन्होंका कल्क बना और पीपल मिला इस काथके पीनेसे वातसे उपजी छर्दि दूर होती है ॥ ५० ॥ और दूधमें खांड मिला पीनेसे पित्तसे उपजी छर्दि शीघ्रही नष्ट होती है और दाख क्षीरविदारी इन्होंके चूर्णका सारव शहतमें लेह बना पीनेसे पित्तछर्दिका नाश होता है ॥ ५१ ॥ और त्रिफला, पोहकरमूल, वच, हरडै, सैंधानमक इन्होंका चूर्ण बना गुडमें मिला चाटनेसे कफकी छर्दि दूर होती है और जिसके ज्यादै मूत्र उतारताहो उसको भी इसीका पीना श्रेष्ठ है ॥ ५२ ॥ और कचूर, देवदार, हरडै, सोंठ, पीपल, इन्होंके चूर्णको घृतमें अथवा तक्रमें मिला खानेसे त्रिदोषसे उपजी छर्दि दूर होती है ॥ ५३ ॥ और शालीचावलोंकी खीलोंमें शहद और खांड मिला खानेसे शीघ्रही ज्वरकी पीडाका नाश होता है ॥५४॥ और आंवलाके रसमें चंदनको घिस तिसमें शहद मिला आंवलाके प्रमाण गोली बांधलेवे यह लेहः वमनको निश्चय नाशता है ॥ ५५ ॥ अदरखका रस, अनारदानाका रस, जीरा, खांड, तैल, शहद इन्होंके कवलग्रह अर्थात ग्रास बनाके मुखमें धारण करै ॥५६॥ इन ग्रासोंके धारण करनेसे वात आदिक दोषोंसे उपजीहुई तथा दोदोषोंसे उपजी हुई और तीन दोषोंसे उपजीहुई वमन दूर होती है ॥५७॥ और सोंठ, मिरच, पीपल, हलदी, दारुहलदी, त्रिफला, मदिरा, जवाखार, इन्होंको समान

भागले चूर्ण बना शहद खानेसे छर्दिका निवारण होता है ॥ ५८ ॥ और अनारदाना, दाख, इन्होंको मिला अथवा हरडै, सूंठ, इन्होंको गुड मिला अथवा निशोथ, सूंठ, इन्होंको गुडमें मिला खानेसे वमन दूर होती है ॥ ५९ ॥

अथ पित्तकी छर्दिकी चिकित्सा।

पर्पटं सगुडं क्वाथं शीतलं पाययेन्नृणाम् ॥ हन्ति वमिं महाघोरां सपित्तां भ्रमसंयुताम् ॥ ६० ॥ काकोली काकमाची च क्वाथं शर्करया युतम् ॥ लाजाशर्करसंयुक्तं हन्ति पित्तवमिं नृणाम् ६१ मातुलुङ्गरसश्चैव पथ्या शर्करया युतः ॥ हन्ति कासं पित्तभवं वमिं शीघ्रं नियच्छति ॥ ६२ ॥ दृष्ट्वा पित्तवमिं घोरां सदाहभ्रम दायिनीम् ॥ तस्यारग्वधपत्राणि मधुशर्करयान्वितम् ॥ ६३ ॥ क्षीरपानं प्रशस्तं वा मुस्ताशर्करयान्वितम् ॥ ६४ ॥

पित्तपापडा गुड इन्होंका क्काथ बना शीतलकर मनुष्योंको पीनेसे पित्तसहित और भ्रमसहित महाघोर वमन दूर होती है ॥ ६० ॥ और काकोली, मकोह, इन्होंका काथ बना तिसमें खांड मिला पीनेसे अथवा धानकी खीलोंके रसमें खांड मिला पीनेसे पित्तकी छर्दि दूर होती है ॥ ६१ ॥ और बिजौराके रसमें हरडैका चूर्ण और खांड मिला पीनेसे पित्तसे उपजी खांसी और वमन दूर होती है ॥ ६२ ॥ और दाह तथा भ्रमवाली घोर पित्तकी छर्दिकों देखि तहां अमलतासके पत्तोंके रसमें शहद और खांड मिला पीना ॥ ६३ ॥ तथा नागरमोथा, खांड, ये मिला दूधका पीना श्रेष्ठ कहा है ॥ ६४ ॥

अथ कफकी छर्दिकी चिकित्सा।

जम्ब्वाम्रकप्रवालानि दाडिमामलकं तथा ॥ मस्तुनोपोषितं पानं हन्याच्छ्लेष्मवमिं नृणाम् ॥ ६५ ॥ सर्जार्जुनधवकदम्बकलोलचूर्णं शुण्ठीधान्याकसहितं सगुडं प्रदद्यात् ॥ श्लेष्मोद्भवं वमनमाशु निहन्ति पुंसां शठीकणामधुविडङ्गयुतोऽपि लेहः ॥ ६६ ॥

जामुन, आंब, इन्होंके कोमल पत्ते, अनारदाना, आंवला, इन्होंको दहीके मस्तुमें पीस पीनेसे मनुष्योंको कफसे उत्पन्न हुई छर्दि दूर होती है ॥ ६५ ॥ और रालवृक्ष, अर्जुनवृक्ष, धव, कदंब, कंकोल, सूंठ, धनियां इन्होंका काथ बना गुड मिला पीनेसे कफसे उपजी छर्दि दूर होती है और कचूर, पीपल, शहद, वायविडंग, इन्होंका अवलेह बना चाटना हित है॥ ६६॥

अथ एलादिचूर्ण।

एलालवङ्गगजकेसरकोलसर्जालाजाप्रियङ्गुघनचन्दनपिप्पली नाम् ॥ चूर्णानि मार्कवसितासहितानि लीढा छर्दिं निहन्ति कफ

मारुतपित्तजाश्च ॥ ६७ ॥ एलादलानि गजकेसरकत्वगेलालामज्जकं च दहनं च घनं प्रियङ्गुम्॥ सचन्दनं मगधजासमचर्णितश्च लीढ्वा सितासमत्रिदोषवमिं जघान ॥ ६८ ॥

इलायची, लौंग, नागकेसर, चव्य, रालवृक्ष, धानकी खील, गोंदी, नागरमोथा, चंदन, पीपल, भांगरा, इन्होंके चूर्णमें मिसरी मिला चाटनेसे कफ वात पित्त इनदोषोंसे उपजीहुई छर्दि दूर होती है ॥ ६७ ॥ और इलायचीके पत्ते, नागकेशर, दालचीनी, इलायची, रोहिषतृण, चीता, नागरमोथा, गोंदी, चंदन, पीपल, इन्होंको समान भागले चूर्ण बना मिश्री मिला खानेसे त्रिदोषसे उपजी छर्दिका निवारण होता है ॥ ६८ ॥

अथ छर्दीकी शमनक्रिया।

ऊर्ध्वभागगते दोषे विरेचनं प्रशस्यते ॥ तस्मिञ्जातेऽप्यधोभागं वमनं शाम्यति ध्रुवम् ॥ ६९ ॥ अथवा द्विभागगते तदा देया भया मधु ॥ क्रिमिजं वमनं ज्ञात्वा क्रिमीणां शमनक्रिया॥७०॥

और वमन व खांसीमें जो दोष ऊर्ध्वभागोंमें स्थितहो तो जुलाब दिवानी चाहिये और जो अधोभागमें अर्थात् नीचेके स्थानोंमें दोष प्राप्तहोवें तो वमन कराना श्रेष्ठ हैं ॥ ६९ ॥ और जो नीचे तथा ऊपर दोनों भागोंमें दोष स्थित हों तो हरडै, शहद, देने चाहिये और क्रिमियोंसे उपजे वमनको जानके क्रिमियोंको शांत करनेवाली क्रिया करनी चाहिये ॥ ७० ॥

अथ छर्दिरोगमें पथ्यापथ्य।

न चोष्णं नातिचाम्लं च न तीक्ष्णं न तथा लघु॥ तन्दुलीयकशाकं वा न मद्यं काञ्जिकं न तु ॥ ७१ ॥ वमिदोषे च कथितं पथ्यं चात्र शृणुष्व मे ॥ अनूपं शालिभक्तं च शतपुष्पा च वास्तुकम् ॥ ७२ ॥ आढकी मुद्गयूषश्च दधि गुडघृतान्वितम् ॥ अङ्गारमण्डका चाथ वमौ पथ्यं प्रशस्यते ॥ ७३ ॥ यथाबलं यथाकालं यथारोगं यथानलम् ॥ तथा दृष्ट्वा प्रकुर्वन्ति पथ्यानां समुपक्रमम् ॥ ७४ ॥ दिवा निद्रां प्रयुञ्जीयाद्वमौ श्वासेऽतिसारके ॥ हिक्काशोषे तथाजीर्णे वमिक्लेदेऽथवा पुनः ॥ ७५ ॥ न चोष्णतोयपानञ्च नातिभोजनमेव च ॥ न धावनं न कर्त्तव्यं वर्जयेद्वमनार्दिते ॥ ७६ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने छर्दिचिकित्सा नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

और गरम, अत्यंत खट्टा, तीक्ष्ण तथा हलका, चौंलाईका शाक, मदिरा, कांजी, इन्होंको वमन रोगमें नहीं खावे ॥ ७१ ॥ अब वमनमें पथ्य कहते हैं सुन; अनूपदेशके जीवोंका मांस, शालिसंज्ञक चावल, सौंफ, वथुवा ॥ ७२ ॥ तुरीधान्य, मूँगोंका यूष, दही, गुड, घृत, अंगारोंमें सेके हुए मांडे ये वमनमें भोजन करने श्रेष्ठ हैं ॥ ७३ ॥ और जैसा बलहो जैसा समयहो जैसा रोगहो जैसी जठराग्निहो तैसेही पथ्य भोजनोंको विचारके देवै ॥ ७४ ॥ और वमन, श्वास, अतिसार इनरोगोंवाळे पुरुषोंको दिनमें सुवावै और हिचकी, शोष, अजीर्ण, वमन, ग्लानि इनरोगोंमेंभी दिनमें सोना श्रेष्ठ है ॥ ७५ ॥ और गरमजल नहीं पीवे ज्यादै भोजन नहीं करै और वमनसे पीडित पुरुषको दांतून नहीं करनी चाहिये ॥ ७६ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थानेछर्दिचिकित्सानाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः १३.

अथ तृषा और तालुशोषकी संप्राप्ति।

आत्रेय उवाच ॥ भयश्रमाद्बलहीनाद्विदलरूक्षसेवनात् ॥ आतपे वा ज्वरे जीर्णे क्षयाच्च क्षतजात्तथा ॥ १ ॥ एतैः संकुपिता दोषा वातपित्तकफास्त्रयः ॥ चतुर्थीक्षतजा प्रोक्ता पञ्चमी क्षयजा स्मृता ॥ २ ॥ अजीर्णात्षष्ठी संप्रोक्ता सप्तमी रूक्षसेवनात् ॥ अष्टमी स्याज्ज्वरोत्पन्ना लक्षणानि शृणुष्व मे ॥ ३ ॥

आत्रेयजी कहते हैं–भय, श्रम, बलकी हीनता, इन्होंसे विदलसंज्ञक अर्थात् कुलथी आदि अन्नको सेवनेसे घामसे और ज्वरसे अजीर्ण और क्षतसे तथा क्षयसे ॥ १ ॥ इन्होंसे कुपित हुये वातपित्त कफ़से तीन प्रकारकी तृषा होती है और घावके होनेसे चौथी और क्षयसे उपजी पांचवीं तृषा होती है ॥ २ ॥ अजीर्णसे छठी और रूक्षपदार्थको सेवनेसे सातवीं और ज्वरसे उपजी आठवीं ऐसे तृषा कही हैं तिन्होंके लक्षणोंको मुझसे सुन ॥ ३ ॥

अथ वातआदिदोषोंसे उपजी तृषाके क्रमसे लक्षण।

क्षामः श्यावास्यता चाथ वैरस्यं वेवपथुस्तथा ॥ वातेन सा भवेत्तृष्णा विज्ञेया भिषजां वरैः ॥ ४ ॥ शीततोयाभिलाषश्च भ्रमदाहप्रलापतः ॥ मूर्च्छा च लोहिते नेत्रे तृष्णा पित्तोद्भवा मता ॥ ५ ॥ निद्रा श्यावास्यतालस्यं बलासोष्णाभिलाषता ॥ घन श्यावांगशैत्यं च श्लेष्मणो जायते तृषा ॥ ६ ॥

कृश शरीर होजावै और मुख काला होजावै मुखमें स्वाद आवै नहीं और कंप उपजै ये लक्षण होवे तब वातकी तृषा जाननी ॥ ४ ॥ शीतल पानीकी इच्छा रहै भ्रम, दाह, मलाप, ये उपजैं मूर्च्छाहो नेत्र लाल होजावैं तब पित्तकी तृषा जाननी ॥ ५ ॥ नींदहो मुख कालाहो कफ पडै गमरचीजकी इच्छा रहै कठिन और काला और शीतल ऐसा अंग होजावै तब कफकी तृषा जाननी ॥ ६ ॥

अथ त्रिदोषकी तृषाका लक्षण ।

हृक्शूलं वमते दाहो भ्रमो वा शिरसो व्यथा ॥
वेपथुश्चाङ्गशैत्यञ्च त्रिदोषप्रभवा तृषा ॥ ७ ॥

नेत्रोंमें शूल चलै छर्दि आवै दाह और भ्रमहो शिरमें पीडा रहै कंपहो अंगोंमें शीतलताहो तब त्रिदोषकी तृषा जाननी ॥ ७ ॥

अथ अन्यतृषाओंके लक्षण ।

वक्रशोषो भवेज्जृम्भा शिरोऽर्त्तिर्गुरुतोदरे ॥ अजीर्णेनाथ मनुजे तृष्णा संलक्ष्यते गदः ॥ ८ ॥ रसक्षये यदा तृष्णा तथाक्षमक्षुधातुरः ॥ ग्लानिः शोषो भ्रमः श्वासो दैन्यमाशु प्रवर्त्तते ॥ ९ ॥ क्षतक्षयेषु या तृष्णा तस्यां नान्नाभिनन्दनम् ॥ अन्या ज्वरातुरे प्रोक्ता तृष्णा सा ज्वरवेगजा ॥ १० ॥ अन्यातिसारे शूले वा तृष्णा ज्ञेया भिषग्वरैः ॥ ११ ॥

मुखमें शोष हो और जँभाई आवै शिरमें पीडाहो पेट भारीरहै तब अजीर्णकी तृषा जाननी ॥ ८ ॥ शरीर कृशहो भूखसे पीडित रहै ग्लानि, शोष, भ्रम, श्वास, दीनपना ये शीघ्र उपजैं तब रसके क्षयसे उपजी तृषा जाननी ॥ ९ ॥ घावसे उपजी तृषामें अन्नमें रुचिनहो ज्वररोगवालेके ज्वरके वेगसे उपजी तृषा होती है ॥ १० ॥ अतिसारसे और शूलसेभी उपजी तृषा जाननी ॥ ११ ॥

अथ असाध्यतृष्णाका लक्षण ।

तृष्णातिसारवमनदाहमूर्च्छाभ्रमशोषोद्भवा ॥
तोयेन न याति तृप्तिमसाध्यां तां विजानीहि ॥ १२ ॥

अतीसार, छर्दि, दाह, मूर्च्छा, भ्रम, शोष, इन्होंसे उपजी जो तृषा पानीसे शांत नहीं होवै तब वह असाध्य जाननी ॥ १२ ॥

अथ वातकी तृषाकी चिकित्सा ।

तृष्णां वातोद्भवां दृष्ट्वा शस्यते सगुडं दधि ॥ सगुडं वामृताक्वाथं पीतं वाततृषापहम् ॥ १३ ॥ शुण्ठी नागाह्वया सह शृङ्गवेरं

जलेन सौवर्चलयुक्तकल्कः ॥ पिबेत्कषायं च सुशीतलं वा वातोद्भवां चाशु निहन्ति तृष्णाम् ॥ १४ ॥

वातकी तृषाको देख गुडसहित दही हित है अथवा गिलोयके क्वाथमें गुड मिला पीवै यह वातकी तृषा शांत होती है ॥ १३ ॥ सूंठ, जीरा, अदरख, कालानमक इन्होंको पानीसें पीसे कल्क बनावे अथवा क्वाथ बनावे इन्होंमांहसे एक कोईसेको पीनेसे वातकी तृषा शांत होजाती है ॥ १४ ॥

अथ पित्तकी तृषाकी चिकित्सा ।

काश्मर्य्यं पद्मकोशीरं द्राक्षा मधुकचन्दनम् ॥ वालकं शर्करायुक्तं क्वाथं पित्ततृषापहम् ॥ १५ ॥ वटद्रुमो रोध्रसिता च चन्दनं सदाडिमं तण्डुलधावनेन ॥ पिष्टञ्च शीतेन जलेन वापि पीतं च पित्तोत्थतृषापहञ्च ॥ १६ ॥ कुष्ठमुत्पललाजां च न्यग्रोधस्य प्ररोहकान् ॥ संचूर्ण्य शर्करायुक्ता गुटिका तृष्णावारणी ॥ १७ ॥ द्राक्षोत्पलं सयष्टीकं शस्तं चेक्षुरससेवनात् ॥ पीतं पित्तोद्भवां तृष्णां हन्ति दाहञ्च पित्तजम् ॥ १८ ॥ आकण्ठं शर्करायुक्तं क्षीरं तथा पिबेन्नरः ॥ वमनञ्च तदा कुर्य्याद्धन्ति तृष्णां सपैत्तिकीम् ॥ १९ ॥ लोष्टमतप्ततोयञ्च निर्य्याप्य शीतलं कृतम् ॥ पिबेत्तृष्णाविनाशाय जलं वा चन्दनान्वितम् ॥ २० ॥

कंभारी, कमल, खस, दाख, मुलहटी, चंदन, नेत्रवाला, इन्होंके क्वाथमें खांड मिला पीवै यह पित्तकी तृषाको हरता है ॥ १५ ॥ वडके कोंपल, लोध, मिश्री, चंदन, अनारदाना, इन्होंको चावलोंके पानीसे अथवा शीतल पानीसे पीस पीवै यह पित्तकी तृषाको हरता है ॥ १६ ॥ कूठ, नीलाकमल, धानकी खील, वडकी कोंपल इन्होंके चूर्णमें खांडमिला गोली बांधै ये गोली पित्तकी तृषाको हरती है ॥ १७ ॥ दाख, नीलाकमल, इन्होंका चूर्ण अथवा ईखका रस सेवनेसे पित्तकी तृषा और पित्तका दाह शांत होता है ॥ १८ ॥ खांडसे युक्त किये दूधको कंठतक पीवै पीछे वमन करै तब पित्तकी तृषा शांत होती है ॥ १९ ॥ जलीहुई माटीको या राखको, लोहको या वालूरेतको गरम कर पानीमें बुझावै पीछे शीतल कर पीवै अथवा चंदनसे युक्तकिये पानीको पीवै तब पित्तकी तृषा शांत होती है ॥ २० ॥

अथ कफकी तृषाकी चिकित्सा ।

जम्ब्वाम्रकप्रवालानि तथा लाजा च चन्दनम् ॥ धातकीकुसुमानि स्युः पिष्टवासारसंयुतः ॥ २१ ॥ श्लेष्मतृष्णापहो लेहो

दाहमूर्च्छाभ्रमापहः ॥ पिबेच्चाढकीयूपञ्च लाजाशर्करयान्वितम् ॥ २२ ॥ क्षीरपानं समरिचं जलं वा मरिचान्वितम् ॥ श्लेष्मतृष्णाविनाशाय पिवेद्वा कोलकं पयः ॥ २३ ॥

जामुन और आंबकी कोंपल, धानकी खील, चंदन, धवके फूल इन्होंको वांसाके रसमें पीस चाटै यह अवलेह कफकी तृषा, दाह, मूर्च्छा, भ्रम, इन्होंको नाशता है ॥ २१ ॥ धानकी खीलोंसे संयुक्त लिये अरहरके यूषमें खांड मिला पीवै अथवा मिरचोंसहित दूधको पीवै ॥ २२ ॥ अथवा मिरचोंसहित पानीको पीवै अथवा वडवेरीके पत्तोंके रसको पीवै तब कफकी तृषा नष्ट होजाती है ॥ २३ ॥

अथ त्रिदोषकी तृषाकी चिकित्सा।

दुरालभा पर्पटकं प्रियङ्गु लोध्रद्रुमं त्र्यूषणकं सकुष्ठम् ॥ क्वाथः सुशीतो मधुशर्करायास्तृष्णां त्रिदोषप्रभवां निहन्ति ॥ २४ ॥ कालदाडिमवृक्षाम्लाः सारिवा समशर्करा ॥ पथ्या दाडिमचूर्णं वा मातुलुङ्गरसान्वितम् ॥ २५ ॥

जवासा, पित्तपापड़ा, कांगनी, लोध, सूंठ, मिर्च, पीपल, कूठ इन्होंके क्वाथको शीतल बना तिसमें शहद और खांड मिला पीवै यह त्रिदोषकी तृषाको नष्ट करता है ॥ २४ ॥ काला अनार, वृक्षाम्ल और सारिवा इन्होंके समान भाग शर्करा इन्होंका चूर्ण खावै अथवा सूंठ और अनारका चूर्ण विजौराके रसके साथ खावै ॥ २५ ॥

अथ तालुशोषकी चिकित्सा।

काष्ठपात्रे शृतं सम्यक्छीतलं सलिलं तथा ॥ मर्दितं बहुवेलां तु तत्पानीयं च पाययेत् ॥ २६ ॥ तालुशोषे घृतं तच्च दापयेच्च भिषग्वरः ॥ तृष्णादाहभ्रमच्छर्दिशोषमूर्च्छां व्यपोहति ॥ २७ ॥ क्षतजां क्षयजां तृष्णां वारयत्याशु निश्चितम् ॥ २८ ॥

गरम किये पानीको काष्ठके पात्रमें घाल बहुत देरतक मर्दितकर पीवै ॥ २६ ॥ और तिसीपानीमें घृतको सिद्धकर वैद्य तालुशोषमें देवै यह तृषा, दाह, भ्रम, छर्दि, शोष, मूर्च्छा, इन्होंको नाशता है ॥ २७ ॥ क्षतसे और क्षयसे उपजी तृषाको शीघ्र दूर करता है ॥ २८ ॥

अथ दाडिमकोल।

दाडिमं कोलचुक्रीका वृक्षाम्लं चाम्लवेतसम् ॥
रसं चैव तथा पथ्यायुक्तं तालुप्रलेपनम् ॥ २९ ॥

अनार, बेर, चूका, विजौरा, अम्लवेतस इन्होंके रसमें हरडैका चूर्ण मिला तालूपर लेप करे ॥ २९ ॥

अथ तृष्णाआदिकोंकी साधारण चिकित्सा।

वारयत्याशु शोषं च तृष्णां हन्ति च सज्वराम् ॥ केसरं मातुलुङ्गस्य पिष्टं तण्डुलवारिणा ॥ ३० ॥ प्रततमधुना तालुलेपो मुखशोषापहः ॥ मधुशर्करया तालुलेपो शोषनिवारणः ॥ ३१ ॥ पद्मकन्दशृतालेपः शीतः शीतलवारिणा ॥ तालुशोषं निहन्त्याशु जम्ब्वाम्रपल्लवानिच ॥ ३२ ॥ निम्बान् वा मातुलुङ्गान् वा सौवीरं नागराणि च ॥ तृषार्त्तः पुरतो भक्षेन्न देयं तस्य धीमता ॥३३॥ दर्शनात्तस्य चास्ये च लाला प्रस्रवते भृशम् ॥ तेनास्य शोषं हरति तृष्णामपि नियच्छति ॥३४॥ रक्तशाल्योदनं शस्तं दधिशर्करयान्वितम् ॥ भोजनञ्च प्रशस्तं च न क्षारं कटुकं पुनः ॥ ३५ ॥ शोषे च छर्दितृष्णायां श्रमे पानात्ययेऽपि च ॥ अतीसारे च शोषे च दिवा निद्रा सुखावहा ॥३६॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने तृष्णातालुशोषाचिकित्सा नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

विजौराकी केशरको चावलोंके पानीसे पीस पीनेसे तालुशोष और ज्वरसहित तृषा शांत होतीहै ॥३०॥ गरम किये शहदसे तालुपर लेप करे यह मुखशोषको नाशता है शहद और खांडसे तालूपर लेप करै यह मुखके शोषको दूर करता है ॥ ३१ ॥ कमलकंदको शीतल पानीसे पीस लेप करै अथवा जामन और आंबके पत्तोंको पीस लेप करै तब तालुशोष शांत होता है ॥ ३२ ॥ नींबू , विजौरा, कांजी, सूंठ, इन्होंको इसरोगवालेके आगे खावै परंतु तिसरोगीकों नहीं देना ॥ ३३ ॥ इन्होंके देखनेसे रोगीके मुखमें अत्यंत लाल झिरने लगती है तिससे तृषा और शोष दूर होताहै ॥ ३४ ॥ दही और खांड़से संयुक्त किये लाल शालिचावल इसरोगमें भोजन करने श्रेष्ठ हैं खारा और चर्चरेको फिर नहीं खावै ॥ ३५ ॥ शोष, छर्दि, तृषा, परिश्रम, पानात्यय इन रोगोंमें दिनकी नींद सुखको देती है ॥ ३६ ॥

इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने तृषातालुशोषचिकित्सानाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः १४.

अथ मूर्च्छाकी संप्राप्ति ।

आत्रेय उवाच ॥ वेगाभिघातातिनिरोधकेन क्षीणक्षताच्च तृषितेन वापि॥विरुद्धयुक्तान्नविभक्षणेन दोषः प्रदुष्टः प्रकरोति मूर्च्छाम् ॥ १ ॥ पञ्चेन्द्रियाणां संलग्नाः प्रत्येके द्वादशादयः ॥ पञ्चेन्द्रियाणां सहिता नाडिकाः षष्टिसंख्यया ॥ २ ॥ रुन्धंति नाडिकाद्वारं तेन चेतो विमूर्च्छति ॥ संज्ञानाशाद्भवेच्छीघ्रं निश्चेताश्च सदा नरः ॥ ३ ॥ पतति काष्ठवत्तूर्णं मोहमूर्च्छा निगद्यते ॥ सा षड्विधा समुद्दिष्टा वातपित्तकफात्तथा ॥ ४ ॥ शोणितादभिघातेन मद्येनाथ विषेण वा ॥ एतेषां कोपयेत्पित्तं मरुद्रक्तं समीरितम् ॥ ५ ॥ संख्यादौर्बल्यकं तेन मूर्च्छा मोहः प्रकथ्यते ॥ कथयामि समासेन लक्षणानि पृथक्पृथक् ॥ ६ ॥

आत्रेयजी कहते हैं-विषयआदि वेगके अभिघातसे मूत्रआदिको रोकनेसे क्षीण क्षतसे तृषाकी पीडासे विरुद्ध अन्नको सेवनेसे दुष्टहुआ वातआदि दोष मूर्च्छाको करता है ॥ १ ॥ अलग २ बारहनाडी पांचों इंद्रियोंमें लगीहुई हैं ऐसे साठ नाडी जाननी ॥ २ ॥ जब दुष्ट हुए दोष नडियोंके द्वारको रोकते हैं तब मनुष्य मूर्च्छाको प्राप्त होते हैं संज्ञाके नाश होनेसे शीघ्रही जडरूप मनुष्य होजाता है ॥ ३ ॥ और काष्ठकी तरह मनुष्य शीघ्र गिर पडता है तिसको मोहमूर्च्छा कहते हैं वह छःप्रकारकी कही हैं ॥ ४ ॥ वातकी, पित्तकी, कफकी, रक्तकी, चोटकी, मदिराकी अथवा विषकी, ऐसे मूर्च्छा हैं वायु और रक्तसे प्रेरित किया पित्त इन मूर्च्छाओंको कोपित करता है ॥ ५ ॥ ऐसे गिनती है अब इस मोहमूर्च्छाके लक्षणोंको विस्तारसे पृथक् २ कहताहूं ॥ ६ ॥

अथ मूर्च्छाका लक्षण ।

नीलं कृष्णारुणं पश्येत्तमः प्रविशति क्षणात् ॥
कम्पो मार्दवमेतासां क्षणेन प्रतिबुध्यति ॥ ७ ॥

नीला काला लाल ऐसे रंगको देखै और क्षणभरमें अंधेरीको प्राप्त होवै कंपहो और शरीर शिथिल होजावै और क्षणभरमें जागै ये मूर्च्छाके लक्षण हैं ॥ ७ ॥

अथ वातजआदिमूर्च्छालक्षण।

वातेन मूर्च्छा भवति कृशता विकृतास्यता ॥
नेत्रप्लावश्च मृष्टिश्च आध्मानश्च भवेत्क्षणम् ॥ ८ ॥

शरीर कृश होवै मुख विकारको प्राप्तहो नेत्रोंमें पानी झिरै और शरीरमें हडफुटन होवै और क्षणभरमें पेटपर अफाराहो तब वातकी मूर्च्छा जाननी ॥ ८ ॥

अथ पित्तजमूर्च्छा।

पीतश्च नीलहरितं तमः प्रविशते भृशम् ॥ सन्तापश्च पिपासा च रक्ते पीते च लोचने ॥ ९ ॥ सस्वेदं शरीरं चापि श्रमः संभिन्नवर्चसाम् ॥ पित्ताद्भवति मूर्च्छात्वं जायते च शिरोव्यथा ॥ १० ॥

पीला नीला हरा ऐसे अंधेरेमें प्राप्त होवै संताप और पिपासाहो लाल और पीले नेत्र होजावैं ॥ ९ ॥ और पसीना आवै श्रमहो पतला मल उतरै और शिरमें पीडाहो तब पित्तकी मूर्च्छा जाननी ॥ १० ॥

अथ कफजमूर्च्छा।

धूमाकुलां दिशं पश्येत्तमः पश्यति यः पुरः ॥ नेत्राकुलत्वं मन्दाग्निस्तमोऽङ्गेषु च शीतता ॥ ११ ॥ चिरात्प्रबुध्यतेऽत्यर्थं कण्ठश्च घुर्घुरायते ॥ हृल्लासमूर्च्छा भवति कफजा च विलक्षणैः ॥ १२ ॥

धूमासे व्याप्त हुई दिशाको देखै और आगे अंधेरीको देखै नेत्र व्याकुल होवैं मन्दाग्निहो अंगोंमें भी मन्दपना और शीतलपनाहो ॥ ११ ॥ बहुत देरमें जागै कंठमें घुर्घुर शब्द होवै थुक्थुकी होवै तब कफकी मूर्च्छा जाननी ॥ १२ ॥

अथ सन्निपातजमूर्च्छा।

सन्निपातादपस्मारो दृश्यते भिषजांवर ॥
स प्राणिनां घातयति रक्तेन सहितो यदि ॥ १३ ॥

हे वैद्यवर ! सन्निपातसे मृगी रोग दीखता है वह रक्तसे मिलकै जीवोंको नाशताहै ॥ १३ ॥

अथ रक्तगन्धजमूर्च्छा।

रक्तगन्धेन मूर्च्छन्ति तेन मूर्च्छा शिरोव्यथा ॥
कम्पते नष्टचेष्टत्वं जल्पते वमते पुनः ॥ १४ ॥

रक्तकी गन्धसे उपजी मूर्च्छामें शिरविषै पीडा होती है रोगी कांपता है चेष्टा नष्ट होजाती है ज्यादै बोलता है और वमन करता है ॥ १४ ॥

अथ मद्यादिजन्यमूर्च्छा।

विभ्रान्तचेता रक्ताक्षः स्वप्नशीलः सुरावशः ॥ १५ ॥ क्षतक्षयाद्भवेच्चान्या कोद्रवान्ननिषेवणात् ॥ जायते मोहमूर्च्छा च तेन निद्राति दुर्मनाः ॥ १६ ॥

मदिरासे उपजी मूर्च्छामें भ्रमते हुये चित्तवाला और लाल नेत्रोंवाला और शयन करनेको चाहनेवाला ऐसा मनुष्य होजाता है ॥ १५ ॥ क्षतक्षयसे और कोदूआदि अन्नसे उपजी मूर्च्छामें अत्यंत नींद आती है और मन बिगड जाता है ॥ १६ ॥

मूर्च्छा, भ्रम, निद्रा और तंद्रा इन्होंका हेतु।

पित्तोत्तमाद्भवति वै मनुजस्य मूर्च्छा पित्तप्रभञ्जनभवं भ्रममेव पुंसाम् ॥ वातात्कफात्तमयुता मनुजस्य तन्द्रा निद्रा कफानिलतमा भजते नरस्य ॥ १७ ॥

मनुष्यको पित्तके अत्यंतपनेसे मूर्च्छा होती है और मनुष्योंके पित्त और वातसे उपजा भ्रम होता है वात और कफसे अंधेरी करकै युक्तहुई तंद्रा होती है और कफ वात और तम इन्हों-सेही नींद होती है ॥ १७ ॥

अथ मूर्च्छाकी चिकित्सा।

स्वेदाभिषङ्गविधिमर्दनवातशान्त्यै शीतान्नपानव्यजनानिलपित्तशान्त्यै॥ कषायपानमवितथैव सदा प्रशस्तं श्लेष्मोद्भवा विनिहिता भ्रममूर्च्छना वा ॥ १८ ॥ पाययेत्त्रिफलाक्काथं शीतं शर्करया युतम् ॥ दुरालभायाः क्वाथञ्च पाययेच्छर्करान्वितम् ॥ १९ ॥

पसीना, मालिस, मर्दन ये वातकी मूर्च्छामें हित है शीतल अन्न और पान, बीजनाकी पवन ये सब पित्तकी मूर्च्छामें हित हैं कसैला पदार्थका पान कफकी मूर्च्छामें हित है ॥ १८ ॥ त्रिफलाके शीतलकाथमें खांड मिला पीवै अथवा जवासाके क्वाथमें खांड मिला पीवै ये दोनों क्वाथ मूर्च्छाको हरते हैं ॥ १९ ॥

अथ रक्तमूर्च्छाआदिकोंको उपाय।

कणां कोलस्य मज्जाञ्च केसरोशीरचन्दनम् ॥ पिष्ट्वा शीताम्बुना खण्डपानं हन्ति विमूर्च्छितम् ॥ २० ॥ रक्तजां मूर्च्छनां दृष्ट्वा विधेयः शीतलोविधिः ॥ क्षयजे दुर्बले क्षीणे मूर्च्छापोषणकारणम् ॥ २१ ॥ नष्टचेष्टत्वमापन्ने नरे संचेतनक्रिया ॥ संपीड्य च

नवाङ्गुष्ठं नासिकां च प्रपीडयेत् ॥ २२ ॥ दन्तैर्वा सन्दंशैर्वापि शनैर्गात्रं प्रपीडयेत ॥ दाहयेद्वा ललाटे तु पृष्ठदेशे च भालके ॥ २३ ॥ एवं न सिध्यते वापि तदा चान्दोलनं हितम् ॥ २४ ॥

पीपळ, बेरकी मज्जा, नागकेसर, खस, चंदन, इन्होंको शीतल पानीसे पीस और खांड मिला पीवै यह मूर्च्छाको नाशता है ॥ २० ॥ रक्तसे उपजी मूर्च्छाको देखकै शीतल विधि करनी चाहिये. क्षयवाला, दुर्बल, क्षीण, इन्होंके मूर्च्छाकी रक्षाका कारण करना ॥ २१ ॥ जब मूर्च्छासे मनुष्यकी संज्ञा जाती रहै तब मनुष्यको चेतन करानेकी क्रिया करै. अँगूठेको पीडित कर पीछे नासिकाको पीडित करना ॥ २२ ॥ दंतोंसे अथवा नखआदिसे हौले शरीरको पीडित करना अथवा मस्तकमें और पृष्ठभागमें दाग देवै ॥ २३ ॥ जो ऐसेभी सिद्धि नहीं होवै तो आंदोलन क्रिया करनी हित है अर्थात् हिंडोलेसे झुलाना हित है ॥२४॥

अथ नष्टसंज्ञमूर्च्छितकी चिकित्सा।

मूर्च्छातुरं सकलशीतजलेन सिञ्चेत्संवीजयेच्च शिखिपिच्छकवीजनैस्तु ॥ दोलायनं हि विहितं मनुजस्य मूर्च्छांमोहं भ्रमञ्च हरते च मदात्ययं वा ॥ २५ ॥

मूर्च्छासे पीडित हुये मनुष्यको शीतल पानीसे सींचै और मोरकी पंखोंके वीजनेसे हवाकरै और दोलायन अर्थात् हिंडोलाके द्वारा झुलानेसे मूर्च्छा मोह भ्रम मदात्यय इन्होंका नाश होता है ॥ २५ ॥

अथ मूर्च्छामदभ्रमइन्होंकी चिकित्सा।

करञ्जबीजं सह सैन्धवेन रसोनपत्रस्य रसं च यत्र ॥ मार्कं च पथ्यञ्च वचां जलेन पिष्ट्वाञ्जनं हन्ति दिनस्य तन्द्राम् ॥ २६ ॥ घोटकलालामरिचं लवणयुतं नेत्रयोरञ्जनं शस्तम् ॥ विनिहान्ति दिनशतं तन्द्रां निद्रां वा मानुषस्य ॥ २७ ॥ सुगन्धं सुकषायोपयुक्ता रसस्त्रिफला गुडार्द्रकं प्रातः ॥ सप्ताहान्मधुरजलं हन्ति मदमूर्च्छाकरानुन्मादान् ॥ २८ ॥ रक्तकर्षणमिच्छन्ति मोहमूर्च्छाप्रशान्तये ॥ तस्मादवहितः कुर्य्यात्तासु रक्तावसेचनम् ॥ २९ ॥

करंजुआके बीज, सेंधानमक, लहसनके पत्ताका रस, भंगरा, हरडै, वच, इन्होंको पानीसे पीस अंजन करनेसे तंद्रा दूर होती है ॥ २६ ॥ घोडाकी लालोंसे काली मिर्च और सेंधा-

नमकको पीस नेत्रोंमें आँजनेसे सौ १०० दिनोंतक मनुष्यकी तंद्रा और नींद दूर होजाती है ॥ २७ ॥ चंदन, हरडै, बहेडा, आंवला, गुड, अदरख इन्होंको प्रभातमें खाके ऊपर मधुर जलको पीनेसे मद और मूर्च्छाको करनेवाले उन्माद दूर होते हैं ॥ २८ ॥ कुशलवैद्य मोह और मूर्च्छाकी शांतिके लिये रक्तको घटाना चाहते हैं इसवास्ते मोह मूर्च्छारोगमें सावधान मनुष्य रक्तको निकसावै ॥ २९ ॥

अथ मूर्च्छादिकोंके साधारण उपाय।

शीतसेकावगाहाद्यान् श्रीखण्डं व्यजनानिलान् ॥ शीतानि चान्नपानानि सर्वमूर्च्छासु योजयेत् ॥ ३० ॥ शर्करेक्षुरसद्राक्षा वातमूर्च्छाप्रपानकैः ॥ काश्मर्य्यमधुकैरेव पित्तमूर्च्छां जयेन्नरः॥ ॥ ३१ ॥ यष्ट्याः क्वाथं शृतं सर्पिः शृतं वामलकीरसम् ॥ पिबेद्रसं सितालाजायुक्तं चोष्णं च शीतलम् ॥ ३२ ॥ मधुना हन्ति च मूर्च्छामालेपैश्च प्रबोधयेत् ॥ ३३ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने मूर्च्छाचिकित्सा नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥१४॥

शीतल पानीकी सेक शीतल पानीमें स्नान करना सफेद चंदन, वीजनाकी पवन, शीतल अन्न और पान ये सब प्रकारकी मूर्च्छामें योजित करने ॥ ३० ॥ खांड, ईखका रस, दाख, इन्होंसे वायुकी मूर्च्छाको दूर करै कंभारी और मुलहटीसे पित्तकी मूर्च्छाको दूर करै ॥ ३१ ॥ मुलहटीके क्वाथमें पकाया हुआ घृत अथवा आंवलेके रसमें धानकी खीलोंका चूर्ण और मिश्री मिला पीवै ॥ ३२ ॥ अथवा शहद मिला पीवै तौ मूर्च्छा दूर होती है और मूर्च्छारोगीको सुंदर आलापोंसे जगाना श्रेष्ठ है ॥ ३३ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

अथ पञ्चदशोऽध्यायः १५.

अथ निद्राचिकित्सा।

आत्रेय उवाच ॥ धुरिणां गीतैर्नृत्यैर्हास्यैस्तन्द्रां निद्रां दिवा हन्ति ॥ यदा रात्रौ न निद्रा स्यात्तदा कुर्य्यादिमां क्रियाम् ॥ १ ॥ काकमाच्यास्तु मूलञ्च शिखां बद्ध्वा भिषग्वरः ॥ अधोमुखीं शिखां बद्ध्वा निद्रां जनयति निशि ॥ २ ॥ मस्तुना पादतलकौ

मर्दयेन्निद्रयार्थिनाम् ॥ यस्य नो दिवसे निद्रा तस्य निद्रा निशासु च ॥ ३ ॥ भयचिन्तया लोभेन या निद्रा न भवेन्निशि ॥ तां चिन्तां च परित्यज्य निद्रा संजायते क्षणात् ॥ ४ ॥ सिंही व्याघ्री सिंहमुखी काकमाची पुनर्नवा ॥ वार्त्ताकीनां च मूलानां क्वाथो निद्राकरो नृणाम् ॥ ५ ॥ काकजङ्घा चापामार्गः कोकिलाक्षः सुपर्णिका ॥ क्वाथो निद्राकरः शीघ्रं मूलं वा बन्धयेच्छिखाम् ॥ ६ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने निद्राचिकित्सा नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

आत्रेयजी कहते हैं-बैल और घोडाआदिके बोलनेसे, नाचनेसे, हास्य करनेसे दिनकी नींद और तंद्रा दूर होती है और जो रात्रिमें नींद नहीं आवे तब इस क्रियाको करना ॥ १ ॥ काकमाचीकी जडको चोटीपर बंधानेसे अथवा चोटीके मुखको नीचेकी तर्फ-कर बांधनेसे रात्रिको नींद आजाती है ॥ २ ॥ नींदकी इच्छावालोंके पैरोंके तलुवोंको दहीके पानीसे मर्दित करै और जिसको दिनमें नींद नहीं आती है तिसको रात्रिमें नींद आजाती है ॥ ३ ॥ भय, चिंता, लोभ, इन्होंसे जो रात्रिमें नींद नहीं आवै तब भय, चिंता, लोभ इन्होंको त्यागनेसे नींद आती है ॥ ४ ॥ कटेहली, बडी कटेहली, वांसा, मकोहविशेष, सांठी, वार्ताकुनामक कटेहलीका भेद इन्होंकी जडोंका क्वाथ मनुष्योंके नींदको प्राप्त करता है ॥ ५ ॥ काकजंघा, ऊंगा, तालमखाना, सालवण, इन्होंका क्वाथ बना पीवै अथवा इन्होंकी जडोंको शिखा अर्थात् चोटीपर बंधावै ॥ ६ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने निद्राचिकित्सानाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडशोऽध्यायः १६.

अथ मदात्ययचिकित्सा।

आत्रेय उवाच ॥ हालाहलाहलसमं भजते वियोगात्सेव्यानां शिष्यानुजानां कथितं मुनीन्द्र ॥ तृष्णा वमिः श्वसनमोहनदाहतृष्णा[1] संजायतेऽतिशरणं विकलेन्द्रियत्वम् ॥ १ ॥ ये नित्यं सेवनाद्दुष्टा मद्यस्य मनुजा भृशम् ॥ विषमाहारसदृशी सुरा मोहनकारिणी ॥ २ ॥ यथा विषं प्राणहरं वियोगाद्योगेन तं चाप्यमृतं वदन्ति ॥ तथा सुरा योगयुता हिता स्यादयोगतश्चारभतेऽतिक-

---

१ तृष्णा पिपासा तथा अप्राप्ताभिलाषा च।

ष्टम् ॥ ३ ॥ क्षुधातुरे तृषाक्रान्ते सुरा वा भोजनं विना ॥ न च क्षीणैर्विना भक्ता विनाहारातिपानकम् ॥ ४ ॥ अत्यशनेऽप्यजीर्णेऽपि सुरा पीता रुजाकरी ॥ ५ ॥

विशेषयोगसे मदिरा. हलाहलविषके समान फलको देती है और मदिराको अत्यंत पीनेसे तृषा, छर्दि, श्वास, मोह, दाह, अतिशरणपना, इंद्रियोंका विकलपना ये उपजते हैं ॥ १ ॥ जो नित्य मदिराको पीते हैं तिन्होंको जो समयपर नहीं मिलै तब वह मदिरा विषमभोजनके समान होजाती है और मोहको करती है ॥ २ ॥ जैसे बुरे योगसे विष प्राणोंको हरता है और अच्छे योगसे विष अमृतके समान होजाता है तैसेही योगसे युक्तकरी मदिरा हित है और अयोगसे युक्तकरी मदिरा अत्यंत कष्टको करती है ॥ ३ ॥ क्षुधासे पीडितको, तृषासे पीडितको, भोजनसे रहितको, क्षीणको, आहार और पानसे वर्जितको ॥ ४ ॥ भोजनपर भोजन करनेवालेको और अजीर्णवालेको पानकरी मदिरा रोगको करती है ॥ ५ ॥

अथ वातादिदोषजन्य मदात्यय ।

यस्य प्रलपनं चापि वाचा वातमदात्ययः ॥ दाहमूर्च्छातिसारश्च ज्वरः पित्तमदात्यये ॥ ६ ॥ छर्द्यरोचकहल्लासतन्द्रास्तैमित्यगौरवम् ॥ शीतता च प्रतिश्यायः कफजे च मदात्यये ॥ ७ ॥ त्रिषुदोषेषुसमतालिंगैर्येषामुपक्रमः ॥ स त्रिदोषसमुद्भूतो मदात्ययो भिषग्वर ! ॥ ८ ॥

जिसके बहुत प्रलाप उपजैं तिसके वातका मदात्यय जानना और जिसके दाह, मूर्च्छा, अतिसार, ज्वर, ये उपजैं तिसके पित्तका मदात्यय जानना ॥ ६ ॥ जिसके छर्दि, अरोचक थुकथुकी, तंद्रा, शरीरका गीलापन, भारीपन, शीतलपना, जुखाम, ये उपजैं तिसके कफका मदात्यय जानना ॥ ७ ॥ जिसके तीन दोषोंके लक्षण मिलैं तिसकेसन्निपातका मदात्यय जानना ॥ ८ ॥

मदात्ययकी चिकित्सा ।

वमनं च प्रशस्तं च निद्रासंसेवनं पुनः ॥ स्नानं हितं पयःपानं भोजने सगुडं दधि ॥ ९ ॥ मस्तुखण्डं सखर्जूरं मृद्वीका सारिवाम्लिका ॥ आमला च परूषं च लेहो हन्ति मदात्ययम् ॥ १० ॥ द्राक्षामलकखर्जूरपरूषकरसेन वा ॥ कल्कयेत्पयसा

तत्तु पानं सर्वमदात्यये ॥ ११ ॥ पथ्याक्वाथेन संयुक्तं पयःपानं मदात्यये ॥ १२ ॥

वमन, नींदको सेवना, स्नान, दूधका पीना, भोजनमें गुड सहित दही ये मदात्ययमें हित हैं ॥ ९ ॥ दहीका पानी, खांड, छुहारा, मुनक्का, सारिवा, अमली, आंवला, फालसा, इन्होंकी चटनी मदात्ययको नाशती है ॥ १० ॥ दाख, आंवला, खजूरका फल अथवा छुहारा, फालसा, इन्हेंकि रस करकै बनायी चटनी मदात्ययको नाशती है ॥ ११ ॥ सब प्रकारके मदात्ययमें दूधसे कल्क बना पीवै और मदात्ययरोगमें हरडैके काथसे संयुक्त किये दूधको पीना हित है ॥ १२ ॥

अथ सुपारीके मदका निदान और चिकित्सा।

पूगीफलमदे कम्पो मोहो मूर्च्छा क्लमस्तमः ॥ प्रस्वेदो विधुरत्वं च लालास्रावश्च जायते ॥ १३ ॥ भ्रमक्लमपरीतत्वं विज्ञेयं पूगमूर्च्छिते ॥ मानवो लक्षणैरेभिर्ज्ञेयः पूगविमूर्च्छितः ॥१४॥ तस्य शीतं जलं पीतं बस्ति वास्तुहितं भवेत् ॥ शर्कराभक्षणे देया मुस्ता वा शर्करान्विता ॥ १५ ॥

सुपारीके मदमें कंप, मोह, मूर्च्छा, ग्लानि, अँधेरी, पसीना, लारका पडना ये उपजते हैं ॥ १३ ॥ इन लक्षणोंकें होनेसे मनुष्य सुपारीसे मूर्च्छितहुआ जानना तिसको शीतल पानीका पीना और बस्तिकर्म्म हित कहा है ॥ १४ ॥ इसरोगीको खानेवास्ते अकेली खांड अथवा नागरमोथासहित खांडका देना हित है ॥ १५ ॥

अथ कोदूआदिसे उपजे मदात्ययकी चिकित्सा।

कोद्रवाणां भवेन्मूर्च्छा देयं क्षीरं सुशीतलम् ॥ धत्तूरकमदे देयं शर्करासहितं दधि ॥ १६ ॥ हलिनी करवीरं च मोहिनी मदयन्तिका ॥ अन्येषामपि कन्दानां वमनं चाशु कारयेत् ॥ १७ ॥ पाययेच्छर्करायुक्तं क्षीरं वा दधि शर्कराम् ॥ १८॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने मदात्ययचिकित्सा नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

कोदूसे उपजी मूर्च्छामें अच्छीतरह शीतल किया दूध हित है धतूराके मदमें खांडसहित दही हित है ॥ १६ ॥ कलहारी, कनेर, भांग, मोगरी, अन्य प्रकारके सबकंद, इन्होंके मदोंमें शीघ्र वमनको करवावै ॥ १७ ॥ अथवा खांडसे युक्तकिये दूधको अथवा खांडसे युक्तकरी दहीको पान करावै ॥ १८ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः १७.

अथ दाहकी संप्राप्ति आदिक ।

आत्रेय उवाच ॥ समानः संक्रुद्धो रुधिरमपि पित्तं त्वचि गतं नरस्याङ्गे दाह्यं भवति नितरां घोरमपि च ॥ कदादन्तोद्धर्षो भवति मनुजां दाह्योदये भवेच्छीतस्यार्त्तिः श्वसनमपि वा शोषमरतिः ॥ १ ॥ पित्तज्वरसमानानि लक्षणानि भिषग्वर ! ॥ पित्तज्वरवदारभ्य क्रिया दोषोपशान्तये ॥ २ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—जब समान वायु और रक्त कुपित होता है और पित्त त्वचामें प्राप्त होता है तब मनुष्यके अंगोंमें घोर दाह उपजता है और दाहके उदयमें कभी २ दंतोंको घसता है और शीतलकीभी पीडा होती है शोष और ग्लानि उपजती है ॥ १ ॥ हे वैद्यवर! दाहरोगके लक्षण पित्तज्वरके समान होते हैं इसकारणसे दोषकी शांतिके लिये पित्तज्वरकी तरह क्रिया करनी चाहिये ॥ २ ॥

अथ दाहकी चिकित्सा ।

कुशकासेक्षुमूलानामुशीरं घनवालकौ ॥ क्वाथः शर्करया युक्तः शीत दाहं नियच्छति ॥३॥ पर्पटः सघनोशीरः क्वथितः शर्करान्वितः॥शीतपानं निहन्त्याशु दाह्यं पित्तज्वरं नृणाम् ॥४॥ लामज्जचन्दनोशीरैर्लेपनं दाहशान्तये ॥ वीजयेत्तालवृन्तैश्चकदल्यम्भोजसंस्तरे ॥५॥ कालीयकरसोपेतं दाहे शस्तं प्रलेपनम् ॥ शस्यते शीतलं वारि दाहतृष्णानिवारणम् ॥६॥ उत्तानस्य प्रसुप्तस्य नाभेरुपरि संदधेत्॥कांस्यपात्रमये सौख्यं धाराभिः शीतवारिणा॥ ॥७॥पूरयेत्सुरतं यत्नात्तेन सौख्यं समाप्नुते॥शतधौतं घृतमपितदाहोपरि धारयेत् ॥८॥ मतिर्धात्रीफलं वापि शीतलजे प्रलेपनम्॥ दाहशोषातुरस्यापि लेह्यं वा सुखकारकम् ॥९॥ जम्ब्वाम्रपल्लवान्निम्बबीजपूररसेन तु ॥ पिष्टाप्रलेपनं दाहे शीघ्रं सुखमभीप्सते॥ ॥ १० ॥ धारागारं तथा सुशीतलशशी ज्योत्स्ना तु पानानि च वातः शीतलचन्दनं च कमलं प्रेमानुबन्धस्तथा ॥ रामागूहनसंदेनं स्तनयुगे शुक्लार्द्रवस्त्राणि च क्षीरं शर्करशङ्खलोहरजतं दाहप्र-

शान्त्यै हितम् ॥ ११ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने दाहचिकित्सा नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

डांभकी जड, कांसकी जड, ईखकी जड, खस, नागरगोथा, नेत्रवाला, इन्होंके काथमें खांड मिला पीवै यह शीतसहित दाहको नाशता है ॥ ३ ॥ पित्तपापडा, नागरमोथा, खस इन्होंके काथमें खांड मिलापीवे परंतु यह शीतकषाय बनाके पीना चाहिये, यह मनुष्योंके दाहको और पित्तज्वरको नाशता है ॥ ४ ॥ रोहिषतृण, चन्दन, खस इन्होंका लेप दाहकी शांतिके लिये हित है और दाहवालेको केलाके या कमल पत्तोंकी सेजपर शयन करा ताडके यामलके वीजनेसे हवा करवावै ॥५॥ दारुहलदीके रससे लेप करना दाहरोगमें हितै है और शीतल पानीभी श्रेष्ठ है वह तृषाको और दाहको निवारण करता है ॥६॥ दाहवाले मनुष्यको सीधा शयन करा तिसकी नाभीके ऊपर कांसीके पात्रको धर तिसमें शीतल पानीकी धारा देनेसे सुख उपजता है ॥ ७ ॥ सुन्दर स्त्रीसे मिलाप होनेसेभी दाह दूर होता है ओर सौ १०० वार धोयेहुये घृतकी मालिस करनेसेभी दाह दूर होता है ॥ ८ ॥ मचकनको अथवा आंवलाको शीतल पानीसे पीस लेप करावे अथवा चटावै तब दाहमें सुख होता है ॥ ९ ॥ जामन, आंब, नींब इन्होंके पत्तोंको विजौराके रससे पीस लेप करनेसे दाहरोगीको सुख मिलता है ॥ १० ॥ फुहारेका स्थान, चन्द्रमाकी शीतल चांदनी, शीतलपन्ने, शीतलवायु, सफेद चंदन, कमल, प्रेमका होना, स्त्रीका मिलाप और स्त्रीकी चूंचियोंको मसलना, सफेद वस्त्रको गीला बना धारण करना, दूध, खांड, शंख, लोहा, चांदी ये सब दाहकी शांतिके लिये हित हैं ॥ ११ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने दाहचिकित्सानाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्यायः १८.



अथ मृगीरोगकी संप्राप्ति आदिक ।

आत्रेय उवाच ॥ पित्तं मरुच्च श्लेष्मा च उदानः कुपितो भृशम् ॥ प्राणः शिरसि संकुप्य कुरुते नष्टचेष्टताम् ॥ १ ॥ प्राणान्नयत्यचैतन्यं नाडीं चेन्द्रियरोधनम् ॥ पतते काष्ठवल्लोको मुखे लालां विमुञ्चति ॥ २ ॥ कण्ठञ्च घुर्घुरायेत फेनमुद्गिरतेऽथवा ॥ कम्पेते हस्तपादौ च रक्तव्यावर्ति लोचनम् ॥ ३ ॥ अपस्मारे च

लिङ्गानि जायन्ते भिषजां वर ! ॥ व्यावृत्तं लोचनं क्षामं तमो दाहः शिरोव्यथा ॥ ४ ॥ हतप्रभेन्द्रियसंज्ञश्चापस्मारी विनश्यति ॥ ५ ॥

आत्रेयजी कहते हैं-पित्त, वात, कफ, उदानवायु, ये अत्यंत कुपित होके और प्राण वायु शिरमें कुपित होके चेष्टाको नष्ट करते हैं ॥१॥ तब चेतन नहीं रहता और नाडीभी अचेतन होजाती है और इन्द्रियां रुकजाती हैं और काष्ठकीतरह मनुष्य गिरजाता है और मुखसे लार पडती है ॥ २ ॥ कंठमें घुर्घुर शब्द होता है अथवा झागको मुखसे गेरता है हाथ और पैर कंपते हैं और रक्तसे विशेपकरके आवृतहुये नेत्र होजाते हैं ॥ ३ ॥ हे वैद्यवर ! मृगीरोगमें ये लक्षण होते हैं ॥ ४ ॥ जिसके नेत्र पलट जावैं और शरीर कृश होजावै और अंधेरी, दाह, शिरमें पीडा ये उपजै इंद्रियोंकी कांति-और संज्ञा जातीरहै ऐसा अपस्मारी अर्थात् मृगी रोगी मरजाता है ॥ ५ ॥

अथ मृगीरोगकी चिकित्सा।

तस्य पानाञ्जनालेपमर्दनं पानमेवच ॥ अपस्मारे चोपचार्य्यं घृतं तैलं च धीमता ॥ ६ ॥ अगस्तिपत्रं मरिचं मूत्रेण परिपेषितम् ॥ नस्ये शस्तमपस्मारं हन्ति शीघ्रं नरस्य तु ॥७॥ बन्ध्याकर्कोटिकामूलं घृतं शर्करयान्वितम् ॥ नस्ये वापि प्रयोक्तव्यमपस्मारप्रशान्तये ॥ ८ ॥

इसरोगवालेके लिये कुशलवैद्यको पान करनेके पदार्थ, अंजन, आलेप, मर्दन घृत तैल, इन्हेंसे इलाज करना ॥ ६ ॥ अगस्तिवृक्षके पत्तेको और काली मिर्चको गोमूत्रमें पीस नासिकामें चढानेसे मृगीरोग शीघ्र नष्ट होजाता है ॥ ७ ॥ बांझककोडीकी जडके रसमें घृत आर खांड मिला नासिकामें चढानेसे मगीरोग शांत होता है ॥ ८ ॥

अथ कूष्माण्डलेह।

कूष्माण्डखण्डाश्च पक्करसाश्च सत्र्यूषणैलादलनागकेशरम् ॥ कुमेधिका ग्रन्थकधान्यकानां समांशकेनापि सिताप्रयोज्या ॥ ॥ ९ ॥ प्रत्यूषसे भक्षणकं विधेयं तस्योपरि क्षीरमितं प्रशस्तम्॥ विहन्त्यपस्मारविकारमाशु विनाशयेच्छीघ्रमसृग्विकारम्॥१०॥

पके हुये कोहलेके टुकडे ले तिसमें सूंठ, मिर्च, पीपल, इलायची तेजपात, नागकेशर, रानीमेथी, पीपलामूल, धनियां, इन सबोंके चूर्ण मिला और सबोंके समान मिश्री मिलावै पीछे प्रभातमें खावै और तिसके ऊपर प्रमाणसे दूधको पीवै यह मृगी रोगको और रक्तके विकारको शीघ्र हरता है ॥ ९ ॥ १० ॥

अथ कूष्मांडघृत।

कूष्मांडब्राह्मी षड्ग्रन्था शंखपुष्पी पुनर्नवा ॥ सुरसासहितं चूर्णं शर्करामधुसंयुतम् ॥ ११ ॥ अपस्मारविनाशाय भक्षणे हितमेव च ॥ उन्मादे पित्तरक्ते तु वन्ध्याया गर्भदायकम् ॥१२॥

कोहला, ब्राह्मी, वच, शंखपुष्पी, सांठी, तुलसी इन्होंके चूर्णमें खांड और शहद मिला ॥ ११ ॥ खानेसे मृगीरोग, उन्माद, रक्तपित्त इन्होंका नाश होता है और वन्ध्याके गर्भ ठहरता है ॥ १२ ॥

अथ दीपघृत।

रास्नामागधिकामूलं दशमूलं शतावरी ॥ चणत्रिवृत्तथैरण्डो भागान्द्विपलिकान्क्षिपेत् ॥ १३ ॥ यष्टीमधुकमृद्वीका शंखपुष्पी शतावरी ॥ रास्ना समङ्गा शृतकं त्रिसुगन्धश्च भीरुकम् ॥ १४ ॥ कुष्ठं वैतद्दीपकं च घृतं योज्यं भिषग्वरैः ॥ हन्त्यपस्मारमुन्मादं रक्तपित्तं गुदामयम् ॥ १५ ॥

रास्ना, पीपलामूल, शतावरी, शण, निशोत, अरंड ये सब आठ २ तोले लेने ॥ १३॥ मुलहटी, मुनक्का, शंखपुष्पी, शतावरी, रायशन, मंजीठ, दालचीनी, इलायची, तेजपात, शतावरीका भेद ॥ १४ ॥ कूठ इन्होंमें घृतको पकावै यह घृत मृगीरोग, उन्माद, रक्तपित्त, गुदाका रोग इन्होंको नाशता है ॥ १५ ॥

अथ ब्राह्मीघृत।

ब्राह्मीरसवचाकुष्ठशंखपुष्पीभिरेव च ॥
पचेद्घृतं पुराणं च अपस्मारं नियच्छति ॥ १६ ॥

ब्राह्मीका रस, वच, कूठ, शंखपुष्पी इन्होंमें पुराने घृतको पकावै यह मृगी रोगको नाशता है ॥ १६ ॥

अथ अन्य उपाय।

महाबलाद्यं तैलं च बस्तौ नस्ये प्रशस्यते ॥ शतावर्य्यादिकं चापि स दैव च हितं भवेत् ॥ १७ ॥ चन्दनाद्यं घृतं चैव प्रयोज्यं चात्र चोत्तमैः ॥ अपस्मारे वाप्युन्मादे वातरोगेऽथवा हितम् ॥ १८ ॥

महाबलादि तैल और शतावर्य्यादि तैल नस्यकर्म्ममें और बस्तिकर्ममें सदा हित है॥ १७॥ मृगीरोग, उन्माद, वातरोग, इन्होंमें चन्दनादि घृत युक्त करना ॥ १८ ॥

अथ त्र्यूषणादि गुटिका ।

त्र्यूषणं त्रिफला हिङ्गु सैन्धवं कटुका वचा ॥ नक्तमालकबीजानि तथा च गौरसर्षपाः ॥ १९ ॥ बस्तमूत्रेण पिष्टैस्तु गुटिका छायाशोषिता ॥ अञ्जनं हन्त्यपस्मारमुन्मादं चैव दारुणम् ॥२०॥ स्मृतिभ्रंशभ्रमीदोषभूतदोषविनाशनम् ॥ ऐकाहिकं द्व्याहिकञ्च चातुर्थिकं ज्वरं हरेत् ॥ २१ ॥ हन्तितिमिरपटलं रात्र्यान्ध्यं च शिरोरुजम्॥सन्निपातविस्मरणं चेतयत्याशु मानवम् ॥ २२ ॥

सूंठ, मिर्च, पीपल, हरडै, बहेडा, आंवला, हींग, सेंधानमक, कुटकी, वच, करंजुवाके बीज, सपेद सरसों ॥ १९ ॥ इन्होंको बकराके मूत्रमें पीस गोलियां बना छायामें सुखावै पीछे गोलीको घिस नेत्रोंमें आंजनेसे मृगी रोग, दारुण रूप उन्माद ॥ २० ॥ स्मृतिभ्रंश, भ्रम, भूतदोष, ऐकाहिकज्वर, द्व्याहिकज्वर, चातुर्थिकज्वर ॥ २१ ॥ तिमिर, पटलगतरोग, रातौंध, शिरकी पीडा इन्होंका नाश होता है और सन्निपातसे मूर्च्छित हुआ रोगी जागता है ॥ २२ ॥

चन्दनादि चूर्ण ।

चन्दनं तगरं कुष्ठं यष्टीत्रिसुगन्धवासकम् ॥ मञ्जिष्ठाभीरुमृद्वीकापाठा श्यामाप्रियङ्गुभिः ॥ २३ ॥ स्वयंगुप्ता पीलुपर्णी विषा रास्ना गवादनी ॥ काकोल्यौ जीरकं मेदे पुष्करं घनवालुकम् ॥ ॥ २४ ॥ विदारी वासुमन्ती च वृद्धदन्ती विडङ्गकम् ॥ पद्मकं चैन्द्रवृक्षश्च तथारग्वधचित्रकम् ॥ २५ ॥ धान्यकं पञ्चजीरेण तथा तालीसपत्रकम् ॥ खदिरं निर्यासतगरं कालीयकं च कैकतम् ॥ २६ ॥ नागकेसरं परूषञ्च खर्जूरं चैकत्र मर्दयेत् ॥ भावितं पुनरेवं च मधुना सघृतेन च ॥ २७ ॥ लेहोऽयञ्च सदा शस्तश्चापस्मारेतिदारुणे ॥ उन्मादे कामलारोगे पांडुरोगे हलीमके ॥ २८ ॥ राजयक्ष्मे रक्तपित्ते पित्तातिसारपीडिते ॥

रक्तातिसारे शोषे च शिरोरोगे सदाज्वरे ॥ २९ ॥ तमकभ्रमके छर्दिदाहे च समदात्यये ॥ अश्मर्य्याश्च प्रमेहेषु कासे श्वासे च पीनसे ॥ ३० ॥ एतेषां च प्रयोक्तव्यः सर्वरोगनिवारणः ॥ वन्ध्यानां च प्रयोक्तव्यो वृद्धानां च विशेषतः ॥३१॥ बालानां च हितश्चैव शृणु चात्र प्रमाणकम् ॥ एवं प्रयोजितो रोगे महाकल्को मतो बुधैः ॥ ३२ ॥ बलवान्गुणवांश्चैव भवतीह फलप्रदः ॥ भिषग्भिः कथ्यते लेहः कृष्णात्रेयेणपूजितः ॥ ३३ ॥

चंदन, तगर, कूठ, मुलहटी, दालचीनी, इलायची, तेजपात, बांसा, मंजीठ, शतावरी, मुनक्का, स्योनापाठा, कालीनिशोत, मालकांगनी ॥ २३ ॥ कौंचके बीज, मीठी तोरी, अतीश, रास्ना, इंद्रायन, काकोली, क्षीरकाकोली, जीरा, मेदा, महामेदा, पोहकरमूल, नागरमोथा, नेत्रवाला ॥ २४ ॥ विदारीकंद, शालवण, भिदारा, जमालगोटाकी जड, वायविडंग, पद्माक, इंद्रायणविशेष, अमलताश, चीता ॥ २५ ॥ धनियां, पांचों तरहके जीरे, तालीशपत्र, खैर, तगर, दारुहलदी, कैथ ॥ २६ ॥ नागकेशर, फालसा, छुहारा, ये सब समान भागलेकै मर्दित करने पीछे घृत और शहदमें मिला खावै ॥ २७ ॥ यह लेह भयंकर रूपी मृगीरोग, उन्माद, कामला, पांडुरोग, हलीमक ॥ २८ ॥ राजरोग, रक्तपित्त, पित्तका अतिसार, शोष, शिरका रोग, सबकालमें रहनेवाला ज्वर ॥ २९ ॥ तमक, श्वास, भ्रम, छर्दि, दाह, मदात्यय, पथरीरोग, प्रमेह, खांसी, श्वासरोग, पीनस ॥ ३० ॥ इन्होंमें प्रयुक्त करना चाहिये यह सब रोगोंको निवारण करता है वंध्यास्त्रियोंको और वृद्ध मनुष्योंको विशेष करके हित है ॥ ३१ ॥ और बालकोंको हित है ऐसे यह कल्क बुद्धिमानोंने माना है ॥ ३२ ॥ यह चूर्ण बलको देता है गुणोंको प्रकाशित करता है यह चूर्ण अथवा कल्क वृद्ध वैद्योंने कहा है और कृष्णात्रेयजीने पूजित किया है ॥ ३३ ॥

अथ द्राक्षावलेह ।

द्राक्षा दारु तथा निशा च मधुकं कृष्णा कलिंगा त्रिवृद्यष्टीका त्रिफला विडंगकटुकासृक्चन्दनं दाडिमम्॥ चातुर्जातकनिम्बका च तुरगी तालीसपत्रं घना मेदे द्वे सुरदारु कुष्ठकमलं रोध्रं समङ्गावरी ॥ ३४ ॥ भार्ङ्गीकोलकदाडिमाम्लसहितं काश्मर्य्यशृङ्गाटकं काम्बोजा शणघण्टिका लघुतरा क्षुद्रा च रास्नायुतम् ॥ चूर्णं शर्करया समं मधु घृतं खर्जूरके संयुतं लिह्यात्कर्षमिदं समस्तव-

लकृद्धन्त्याश्वपस्मारकम् ॥ ३५ ॥ उन्मादश्च सुदारुणं क्षयमथो यक्ष्मा च पाण्डुश्वसन् कासासृग्रुधिरप्रमेहगुदजं स्त्रीणां हितं शस्यते ॥ ३६ ॥

मुनक्का, देवदार, हलदी, मुलहटी, पीपल, सपेद निशोत, कालीनिशोत, महुवा, हरडै, बहेडा, आंवला, वायविडंग, कुटकी, रक्तचंदन, अनार, दालचीनी, इलायची, नागकेशर, तेजपात, नींबकी छाल, कालानस्रक, असगंध, तालीशपत्र, नागरमोथा, मेदा, महामेदा, देवदार, कूठ, कमल, लोध, मजीठ, शतावरी ॥ ३४ ॥ भारंगी, बेर, अनार, अमली, कंभारी, सिंगाड, पदमाख, तानीवेल, छोटी कटेहली, रास्ना, खिजूरि ये अथवा छुहारे इन्होंके चूर्णमें खांड, घृत, शहद, इन्होंको मिला १ तोला भरको चाटै-यह बलको करता है मृगी रोगको हरता है ॥ ३५ ॥ और उन्माद, दारुणरूपी क्षय, राजरोग, पांडु, श्वासरोग, खांसी, रक्तके रोग, प्रमेहरोग, गुदाके रोग इन्होंकोभी नाशता है और स्त्रियोंको हित कहा है ॥ ३६ ॥

अथ अन्यउपाय।

एतैर्यदि न सौख्यं स्याद्दहेल्लोहशलाकया ॥ ललाटे च भ्रुवोर्मध्ये दहेद्वा मूर्ध्नि मानवम् ॥ ३७ ॥ वर्जयेत्कटुकं चाम्लं रक्तपित्तविकारिणाम् ॥ विशेषेण वर्जनीयं सुरापूगकषायकम् ॥ ३८ ॥ न सेव्यानि ह्यपस्मारे मोहमूर्च्छाकराणि वा ॥ ३९ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने अपस्मारचिकित्सा नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

जो इनयोगोंसे सुख नहीं होवै तब लोहाकी सलाईको गर्मकर मस्तक, भ्रुकुटियोंका बीच, शिर, इन्होंमें दाग देवै ॥ ३७ ॥ चर्चरा, खट्टा, रक्तपित्तविकारवालोंको वर्जित किये, मदिरा, सुपारी ॥ ३८ ॥ मोह और मूर्च्छाको करनेवाले पदार्थ, इन्होंको मृगीरोगमें त्यागै ॥ ३९ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थानेऽपस्मारचिकित्सा नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

ऊनविंशोऽध्यायः १९.

अथ उन्मादनिदान।

आत्रेय उवाच ॥ अयं मानसको व्याधिरुन्माद इति कीर्त्तितः ॥ प्रमत्ता ऊर्ध्वगा दोषा ऊर्ध्वं गच्छन्त्यमार्गताम् ॥ १ ॥ उन्मादो

नाम दोषोऽयं कष्टसाध्यो भिषग्वरैः॥ सोऽपि पृथग्विधैर्दोषैर्द्वन्द्वजोऽन्यः प्रकीर्त्तितः ॥ तथान्यः सन्निपातेन विषाद्भवति चापरः २ अशुचिविपथशून्यागारकेऽरण्यमध्ये सभयगहनवीथीदेवतागारकेच ॥ अथ कथमपि भीत्याशङ्कया खिन्नचेतः क्षुभितमनसमार्गत्याज्यमुन्मार्गयेति॥३॥चिन्ताव्यथासुभयहर्षविमर्षलोभाद्देवातिथिद्विजनरेन्द्रगुरूपमानात्॥ प्रेमाधिकाच्चयुवतौहित विप्रयोगादुन्मादजन्म च नृणां कथितं वरिष्ठैः ॥ ४ ॥ तेन गायति वा रौति विरूपं पठते यदा ॥ लोलयेच्छर्दिते वापि कम्पते हसते तथा ॥ ५ ॥ धावते हनने चैव तथा जिह्वा विनश्यति ॥ जवे भासयतेऽत्यर्थं पश्येद्वनमथातुरः ॥ ६ ॥ तस्यापस्मारकं कर्म कर्त्तव्यं भिषजांवरैः ॥ विशेषेण भूतविद्यामध्ये वक्ष्यामि चाग्रतः ॥ ॥ ७ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने उन्मादनिदानं नामोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

आत्रेयजी कहते हैंः–मनमें होनेवाली व्याधि उन्मादसंज्ञक कहाती है प्रमत्त अर्थात् बिगडके बढे हुए दोष ऊपरके मार्गमें प्राप्त होजाते हैं ॥ १ ॥ तब यह उन्माद रोग होता है यह वैद्योंने कष्टसाध्य कहा है वह उन्माद वात, पित्त, कफ इन्होंसे और द्वंद्वज होता है और एक सन्निपातसे उन्माद होता है एक विषसे होता है॥ २ ॥ और अशुद्ध होके भयंकर मार्गमें, शून्य मकानमें, वनमें, तथा भयवाले गह्वर मार्गमें, देवताके मंदिरमें, किसी प्रकारसे भयकी शंकासे, खिन्न मन होनेसे मनक्षोभको प्राप्तहो अपने मार्गको त्याग उन्मादको प्राप्त होजाता है ॥ ३ ॥ और चिंता, व्यथा, भय, हर्ष, क्रोध, लोभ, इन्होंसे और देवता, अतिथि, ब्राह्मण, राजा, गुरु, इन्होंके अपमान करनेसे और अधिक प्रेमवाले जनका तथा स्त्रीका वियोग होनेसे बुद्धिमान् पुरुषोंने उन्मादका हेतु कहा है ॥ ४ ॥ तिस उन्मादके होनेसे कभी गावै कभी रोवे बिरूप होजावे कभी पढे चंचलपनाहो छर्दि करै कांपै हँसै ॥ ५ ॥ और मारनेके समय भागजावे जिह्वाको छिपा लेवे और वेगसमय अत्यंत तेज होजावे और पीडित होकै वनको देखै॥ ६॥ ऐसे पुरुषके वैद्यजनोंने मृगीरोगमें कहे हुए कर्म करने चाहिये और विशेष करके मध्यमें भूतविद्याको कहैंगे ॥ ७॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसुनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने उन्मादनिदानं नाम ऊनविंशोऽध्यायः॥ १९॥

विंशोऽध्यायः २०.

अथ वातव्याधिचिकित्सा तहां सोलह प्रकारके शिरोगत प्राणवायुका प्रकोप।

आत्रेय उवाच ॥ चतुरशीतिर्विख्याता वाता नृणां रुजाकराः ॥ तेषां निदानं वक्ष्यामि समासेन पृथक्पृथक् ॥ १ ॥ विरुद्धचिन्ताशनजागराच्च व्यायामतश्चातितमोऽभिषङ्गात्॥ असृग्विरेकाद्विषमासनेन प्राणापानसमानसंधारणात् ॥ अध्वाश्रमे क्षीणबलेन्द्रियाणामासन्नतो धातुगतोऽपि वायुः ॥ २ ॥ प्राणोपानः समानश्च उदानो व्यान एव च ॥ एषां दोषाद्भवन्त्येते वातदोषाः पृथक्पृथक् ॥ ३ ॥ शिरःशूलं कर्णशूलं शङ्खशूलमसृग्गदः ॥ अर्द्धशीर्षविकारश्च दिनवृद्धिसमुद्भवः ॥ ४॥ नासिकोपद्रवो वापि मन्यास्तम्भो हनुग्रहः ॥ जिह्वास्तम्भस्तालुशूलं तथा च तमकं भ्रमः ॥ ५ ॥ तन्द्राश्वासगलाद्याश्च षोडशैते शिरोगताः ॥ प्राण प्रकोपतो यान्ति पित्तेन समभीरिताः ॥ ६ ॥

आत्रेयजी कहते हैं-वातसे उत्पन्न होनेवाले विकार मनुष्योंके ८४ होते हैं सो संक्षेप करके जुदे २ तिन्हेंके निदानोंको कहेंगे ॥ १ ॥ विरुद्ध भोजन, चिंता, जागरण, कसरत, अत्यंत तमोगुणके अभिषंगसे, रुधिरके विरेक अर्थात् फस्तसे, विषमभोजनसे, प्राण, अपान, समान, इनवायुयोंके रोकनेसे मार्गके श्रमसे, क्षीणबल इंद्रियवाले पुरुषोंके धातुके समीपमें वायु प्राप्तहो ॥ २ ॥ प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान इनवायुयोंके दोषसे जुदे २ वातदोष होजाते हैं ॥ ३ ॥ शिरमें शूलहो कानमें शूलहो, कनपटियोंमें शूलहो, रुधिरकी पीडाहो, दिनके चढनेके समय आधा शिरमें पीडाहो ॥ ४ ॥ नासिकामें उपद्रवहो, मन्यास्तंभ हनुग्रह अर्थात् ठोडी बंध रहै, जिह्वास्तंभ, तालुवामें शूल, तमकश्वास, भ्रम ॥ ५ ॥ तंद्रा, श्वास गलके रोग ये सोलह शिरमें प्राप्त होनेवाले वायुके रोग हैं और प्राण वायुके कोपसे पित्तके संग वायु कोप होजाते हैं ॥ ६ ॥

अथ सोलह प्रकारके उदानवायुके कोप।

हिक्का श्वासः परिश्वासः कासः शोषार्त्तिर्घण्टिका ॥ हृल्लासो हृदि शूलश्च यकृद्वातादिका वमिः ॥ ७ ॥ क्षवथुर्जृम्भणंचैव तथा

१ असिम्नयोचरणक्रसिद्धमधिकम्।

वैस्वर्य्यपीनसः ॥ अरुचिश्च प्रतिश्याय एते प्रोक्ता उदानतः ॥ ॥ ८ ॥ उदानः श्लेष्मसंयुक्तो दोषाद्धृदि प्रकुप्यति ॥ ९ ॥

हिचकी, श्वास, अत्यंतश्वास, खांसी, शोषकी पीडा, गलघंटिका रोग, थुकथुकी, हृदयमें शूल, यकृत्, वात आदिकोंकी छर्दि ॥ ७ ॥ छींक आना, जँभाई आना, स्वर बिगडना, पीनस, अरुचि, खेहर ये रोग उदानवायुके कोपसे होते हैं ॥ ८ ॥ यह उदान वायु कफके साथ दोष करके हृदयमें कुपित होता है ॥ ९ ॥

अथ व्यानवायुके कोपके लक्षण।

वक्ष्यामो व्यानको नाम मरुतस्य प्रकोपनम् ॥ वातः सर्वाङ्गको धातुविकारं कुरुते भृशम् ॥ १० ॥ स च धातुगतो ज्ञेयस्तथा प्रोक्तः पृथक् पृथक् ॥ त्वग्वाते रोमहर्षश्च मन्या चांसाभूरेव च ॥ ॥ ११ ॥ मांसगे शोथतोदश्च मेदःस्वस्थे च कम्पता ॥ भङ्गता-स्थिगते वाते पतनं मज्जगे भवेत् ॥ १२ ॥ शुक्रगे सन्धिशोथश्च तस्मात्त्वग्वातलक्षणम् ॥ एतैर्धातुगतान्वातान्साध्यासाध्यान्नि-रोधयेत् ॥ १३ ॥ संत्यक्तमांसमेदःस्थो वायुः सिध्यति भेषजैः ॥ अन्ये कष्टेन सिध्यन्ति न सिध्यन्त्यथवा पुनः ॥ १४ ॥

अब व्याननामवाले वायुके कोपके लक्षणोंको कहते हैं सब अंगमें रहनेवाला यह वायु अत्यंत धातुविकारको करता है ॥ १० ॥ सो वह धातुमें प्राप्त हुआ पृथक् २ जानना यह वात त्वचामें कोप होजावे तब रोम खडेहों मन्यासंज्ञक नसोंका फुरणाहो ॥ ११ ॥ और मांसमें प्राप्त होजावे तब शोजाहो चभकाहो मेदमें कंपनाहो ॥ १२ ॥ और अस्थियोंमें प्राप्त होवे तब हाड टूटजावे मज्जामें कुपित होवे तब गिरना होवे वीर्यमें होवे तब संधियोंमें शोजा होवे ऐसे त्वचा आदिकोंमें वायु प्राप्त होता है इत्यादिक धातुओंमें प्राप्तहुए वायुओंको साध्य और असाध्योंको रोकै ॥ १३ ॥ जो वायु मांससे रहित मेदमें प्राप्त होवे वह औषधोंसे सिद्ध होता है और अन्यवायु कष्टसे सिद्ध होते हैं ॥ १४ ॥

अथ समानवायुका प्रकोप।

लोमहर्षी भवेत्तोदो निद्रानाशोऽरुचिस्तमः ॥ गात्रं सूची च वि-ध्येत भ्रमन्त्येव पिपीलिकाः ॥ १५ ॥ रूक्षत्वं त्वग्रसे नेत्रे कृश-त्वं जायते पुनः॥गर्भरजसः शुक्रस्य नाशो भवति वेपथुः॥१६॥ मन्दाग्नित्वं च भवति स्वप्नानि च स पश्यति ॥ निद्रानाशः क्षोभयति सामान्यं वातलक्षणम् ॥ १७ ॥

और रोमहर्ष अर्थात् रोम खडे होजावें, शरीरमें चभकाहो, निद्राका नाशहो, अरुचिहो, अंधेरीहो, शरीरमें कीडीसी जलै ॥ १५ ॥ त्वचा, नेत्र, ये रूखे रहैं और माडा शरीर होजावे और स्त्रीके गर्भ, रजस्वला, इन्होंका नाश होजावे वीर्य नष्ट होजावे, कंपनाहो ॥ १६ ॥ मंदअग्नि होजावे अनेक सुपनें आवे निद्राका नाश होजावे शरीरमें क्षोभ होवे ये सामान्य वातके लक्षण हैं ॥ १७ ॥

अथ आक्षेपकवायुका लक्षण तथा अथ तन्त्रकवायुका लक्षण ।

मुहुराक्षेपयेद्गात्रं भेदस्तोदो बहुस्वरः ॥ स चैवाक्षेपको नाम जातो व्यानप्रकोपतः ॥ १८ ॥ धनुर्वन्नाम्यते गात्रमाक्षिपेच्च मुहुर्मुहुः ॥ प्रक्लिन्ननेत्रस्तब्धाक्षः कपोत इव कूजति ॥ तमाहुर्भिषजां श्रेष्ठा अपतन्त्रकनामतः ॥ १९ ॥

और जो वारंवार शरीर कांपै मेदमें चभका हो ज्वर बहुत होजावे ऐसा आक्षेपकनामवाला वायु होता है यह व्यानवायुके कोपसे होता है ॥ १८ ॥ शरीर वारंवार धनुषकी तरह नवै गीले और गर्वसरीखे नेत्र रहैं कपोतकी तरह कूजै ये लक्षण हों तिस वायुको वैद्यजन " अपतंत्रकनामवाला " कहते हैं ॥ १९ ॥

अथ अप्रतानकवायुप्रकोप ।

मतान्तरे वदन्त्यन्ये प्रह्वप्रतानको मतः ॥
गृहीतार्द्धं ततो वायुरप्रतानकः संस्मृतः ॥ २० ॥

और कईक मतोंमें इसवायुको अप्रतानक कहते हैं अथवा जो आधा शरीरको बंधकर दवै उसको " अप्रतानक " वायु कहते हैं ॥ २० ॥

सोऽपि कफाश्रितो वायुः संपीडयति दण्डवत् ॥ स्तम्भयत्याशु गात्राणि सोपि दण्डाप्रतानकः ॥ २१ ॥ हृद्वक्षोजकराङ्गुलीगुल्फसन्धौ समाश्रितः ॥ स्नायुं प्रतानयेद्यस्तु सोऽपि स्नायुप्रतानकः ॥ २२ ॥ बाह्यानामथ नाडीनां प्रतानयाति मारुतः ॥ कट्याश्रितो वा भवति सशल्यमिव कुर्वते ॥ २३ ॥ तमसाध्यं बुधाः प्राहुस्तञ्च वातं प्रतानकम् ॥ अन्धं चतुर्थमाक्षेपमभिघातसमुद्भवम् ॥ २४ ॥ अभिघातेन यो जातो न स साध्यः प्रतानकः ॥ ऊर्ध्वं तानयते यस्तु विशोषयति गात्रकम् ॥ २५ ॥ मोहतमः कृते वास्थिसन्धिसंशुष्कको मतः ॥

और वही वायु कफके आश्रय होके लाठीकी चोट सरीखी पीडा करता है गात्रोंको बध-
कर देता है वह दंडाप्रतानक वायु कहाता है ॥ २१ ॥ और हृदय, छाती, हाथोंकी अंगुली
टंकने इन्होंकी संधियोंके आश्रय होके जो नसोंको विस्तारित करदेता है वह स्नायुप्रतानक
वायु कहाता है ॥ २२ ॥ और जो वायु बाहिरकी नसोंमें विस्तारित होजाताहै अथवा क-
टिके आश्रय होजाती है और शल्य चोटलगी सरीखी पीडाहो ॥ २३ ॥ तिसको बुद्धिमान्
मनुष्य असाध्य प्रतानक वात कहते हैं और चोटसे उत्पन्न होनेवाला चौथा आक्षेपक वात
कहाता है ॥ २४॥ वह ऊपरले अंगोंमें फैलताहै और शरीरमें शोष कर देता है ॥ २५ ॥
और मोहहो, तम अर्थात् अंधेरी हो वह अस्थिसंधि इन्होंको सुखानेवाला वायु कहाता है.

अथ एकाङ्गवायु ।

कृच्छ्रार्द्धकर्षं भवति शुष्कतां च प्रकुप्यति ॥ २६ ॥
पृष्ठं प्रतानार्द्धं यो वै स तथैकाङ्गिको मतः ॥ २७ ॥

तिस्से आधा शरीरमें कष्ट रहै खिंचाहुआ रहै और शोषका कोपहो ॥ २६ ॥ और जो
पीठको तथा आधा शरीरको बंधकर देता है वह एकांगिक वायु कहाता है ॥ २७ ॥

अथ एकांगपक्षघातवायु ।

एकांगपक्षघातश्च भवत्यन्यतमो यदि ॥
वातघ्नैरौषधैः सर्वैर्वायुः कष्टेन सिध्यति ॥ २८ ॥

और जो यदि अन्य पक्षघातसंज्ञक वायु एकतर्फके अंगमें प्राप्त होजाता है वह संपूर्ण
वातनाशक औषधोंकरके कष्टसे सिद्ध होता है ॥ २८ ॥

अथ तूनी तथा प्रतितूनी वायु ।

तोदमूर्च्छा वेपनं स्याद्देष्टता स्पर्शनाज्ञता ॥ यस्तु नश्यति गात्राणि वायुस्तूनीतिशब्दितः ॥ २९ ॥ वेपनं तोदवेष्टत्वं स्पर्शनं वेत्ति यः पुनः ॥ प्रतूनयति गात्राणि प्रतितूनीति गद्यते ॥ ३० ॥

शरीरमें चभकाहो, मूर्च्छाहो, कंपनाहो, शरीर बंधा रहै, स्पर्श नहीं जाना जावे और
अंगोंको नष्ट कर देवे वह तूनीसंज्ञक वायु कहाता है ॥ २९ ॥ और शरीर कांपै चभकाहो
शरीर बंध रहे और स्पर्शको सह लेवै शरीरको पीने अर्थात् प्रीनने सरीखी पीडाहो वह प्रति-
तूनी वात कहाता है ॥ ३० ॥

अथ व्यानवायुके कोपका लक्षण ।

हृदिस्तम्भः पृष्ठस्तम्भ उरुस्तम्भश्च गृध्रसी ॥ पृथक्त्वेन च कथितमग्रे शृणुष्व कोविद ! ॥ ३१ ॥ एते व्यानप्रकोपेन द्विषोडश प्रकीर्त्तिताः ॥ ३२ ॥

हदाबंध रहे पीठ बंध रहे जांघ बंध रहे गृध्रसी रोग होजावे सो जुदे २ बत्तीस प्रकारके रोग पहले व्यान वायुके कोपसे कहे हैं अब आगे कहेहुए अन्यवायुओंके लक्षणोंको सुन ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

अथ सोलह प्रकारके समानवायुके कोप ।

शूलं गुल्म उदावर्त्त आध्मानोदावर्त्तमेव च ॥ परिणामो विषमाग्निरजीर्णं वाति गुल्मकः ॥ ३३ ॥ परिक्लेदी रसशेषो रसश्च मलवालकः ॥ बन्धी भेदी विलासी च षोडशैते समानतः ॥ ३४ ॥

शूलहो गुल्म, उदावर्त्त ॥ ३३ ॥ अफारा, परिणाम शूल, विषमाग्नि, अजीर्ण, वातका गोला, परिक्लेद, पीडा, रसशोष, रस नहीं पकना, मल कच्चा रहना, मलका बंधा, तथा पतला मल होना, भोग करनेकी इच्छा रहे ये सोलह विकार समान वायुके कोपसे होते हैं ॥ ३४ ॥

अथ सोलहप्रकारके अपानवायुके लक्षण ।

भगन्दरो बस्तिशूलो मेहार्शश्चातिकोठकः ॥ लिङ्गदोषौ गुदभ्रंशस्तथान्योगुदशूलकः ॥ ३५ ॥ मूत्ररोधो विड्रोधश्च षोडशैते विजानता ॥ अपानस्य प्रकोपेन विज्ञेयास्तु प्रधानतः ॥ ३६ ॥ एते विकाराः कथिताः विस्ताराश्च प्रकीर्त्तिताः ॥ दाहः सन्तापः शोषश्च मूर्च्छा पित्तान्वितो मरुत् ॥ ३७ ॥ शैत्यं शोफारुचिजाड्यं वातश्लेष्मसमन्वितम् ॥ यो द्वन्द्वजाश्रितो धीर ! तं साध्यं मारुतं विदुः ॥ ३८ ॥ केवलोऽपि समीरोऽपि सोऽपि साध्यतमः स्मृतः ॥ ३९ ॥

भगंदर रोगहो बस्तिमें शूल, प्रमेह, बवासीर, शीत, पित्त, लिंगदोष, गुदभ्रंश, गुदामें शूल ॥ ३५ ॥ मूत्रबंध होना मलबंध, होना, ये सोलह विकार वैद्योंने अपानवायुके कोपसे जानने ॥ ३६ ॥ ये विकार विस्तार करके यहां कहदिये हैं, और दाह, संताप, शोष, मूर्च्छा, ये पित्तवातसे होते हैं ॥ ३७ ॥ और शीतलता, शोजा, अरुचि, जडपना, ये वात कफसे होते हैं और जो दो दोषोंसे मिलाहुआ वायु है उसको साध्य कहते हैं ॥ ३८ ॥ तथा एक दोषवालाभी वायु सुखसाध्य कहा है ॥ ३९ ॥

अथ अर्दित अर्थात् लकुआके लक्षण ।

वक्रं भवति वक्रार्द्धं ग्रीवाचाप्युपवर्त्तते ॥ वैकृत्यं नयनानाञ्च विसंगो वेदनातुरः ॥ ग्रीवायां गण्डयोर्दन्तपार्श्वे यस्यातिवेदना ॥ ४० ॥ तमर्दितमिति प्राहुर्वातव्याधिविचक्षणाः ॥ ४१ ॥

मुख टेढा होजावे तथा ग्रीवा ऊपरको होजावे नेत्र बिगडजावे वायु बंध होजावे पीडा रहै और ग्रीवा, कपोल, दांतोंके मसूडे इन्होंमें ज्यादै पीडाहो ॥ ४० ॥ तिसको व्याधिको जाननेवाले वैद्य अर्दित अर्थात् लकुआ कहते हैं ॥ ४१ ॥

अथ द्वंद्वजअर्दितका लक्षण।

लालास्रावोऽथ शोषश्च हनग्रहो विरस्यता॥ दन्तशूलं भवेद्यस्य वातेनार्दितमेव च ॥ ४२ ॥ पीतांगं सज्वरं तृष्णा पित्तजो मोह एव च ॥ शोफस्तम्भोऽस्य भवति कफोद्भूतेऽथवार्दिते ॥४३॥

और लार गिर; शोषहो, ठोडी बंध रहे, मुखका रस बिगडा रहे, दांतोंमें शूलहो ये अर्दित वातके लक्षण हैं ॥ ४२ ॥ और पीला शरीरहो, ज्वरहो, तृषाहो, मोहहो ये पित्तसे उपजे अर्दित वायुके लक्षण हैं और शोजाहो गात्र बंध रहै हे कफसे उपजे वायुके लक्षण हैं ॥ ४३॥

अथ असाध्यअर्दित।

भाविनो लक्षणं यस्य वेपथुर्नेत्रमाविलम्॥क्षीणस्यानिमिषाक्षस्य प्रसक्ताव्यक्तभाषिणः ॥ ४४ ॥ न सिध्यत्यार्दितं गाढं विषमं चापि तस्य च ॥ कण्ठो घोरो भक्षणार्थं जृम्भा प्रस्तारिते मुखे ॥ ४५ ॥ हनुस्तम्भो भवत्येते कृच्छ्रसाध्या भवन्ति हि ॥ विषमे वा दिवास्वप्ने विवर्तितानिरीक्षणे ॥ ४६ ॥ मन्यास्तम्भं जनयंति कृच्छ्रात्पार्श्वे विलोकते ॥ वाग्वादिनीं शिरां रुद्ध्वा स्तम्भयेद्रसनानिलः ॥ ४७ ॥ रक्ताश्रितोऽपि पवनः शिरोनाड्यां समाश्रितः ॥ शिरोऽर्तिं कुरुते यस्तु सोऽप्यसाध्यः शिरोग्रहः ॥ ४८ ॥

और जिसके कंपनाहो नेत्र गड जावे आँखोंकी पलक क्षिण होजावे और अव्यक्त अप्रकट बोलै उसके जानना कि अब अर्दित वात होवेगा॥४४॥और जिसके विषम तथा अत्यंत लकुवा वात होजाता है उसके अच्छा नहीं होता है और जिसका कंठ घोरहो भक्षण करनेकेवास्ते तथा जंभाई लेनेकेवास्ते फाडाहुआ मुखसरीखा मुख रहजावे ॥ ४५ ॥ ठोडी बंद होजावे ये कष्टसाध्य लकुआके लक्षण हैं और जिसके दिनमें विषम सोनेसे उलटे देखनेके समय ॥ ४६ ॥ ठोडीकी नस बन्ध रहैं और पांशुकी तर्फ बडे कष्टसे देखा जावे और वाणीको बोलनेवाली नाडीको श्वासवायु बंधकर देवै यहभी कष्टसाध्य बात है ॥ ४७ ॥ और रक्तके आश्रयहुआ वायु शिरकी नाडियोंके आश्रय हो जो शिरमें पीडा करदेता है वहभी शिरोग्रह वायु असाध्य कहाता है ॥ ४८ ॥

अथ अपान आदिकवातोंकी चिकित्सा।

अतः प्रतिक्रियां वक्ष्ये यथा सिध्यति मारुतः ॥ स्नेहनं रूक्षणं कार्यं पाचनं शमनानि च ॥ ४९ ॥ स्वेदनं मर्द्दनाभ्यङ्गो बस्तिस्नेहो निरूहणम् ॥ स्नायुसन्ध्यस्थिसंप्राप्ते भेदनं कारयेत्सुधीः ॥ ५० ॥ माणिमन्थेन यन्त्रेण ततः संभूपयानिलम् ॥ असाध्ये शुक्रगे व्याने बीजवत्समुपाचरेत् ॥ ५१ ॥

अब जैसे वायु सिद्ध होता है तैसे चिकित्साको कहते हैं स्नेहन, रूक्षण, पाचन, शमन ऐसे इलाज करने चाहिये ॥ ४९ ॥ पसीना दिवाना, मालिसकरनी, बस्तिस्नेह, निरूहण बस्ति ये चिकित्सा करनी चाहिये और स्नायू, संधि, अस्थि, इन्होंमें वायु प्राप्त होजावे तो तब भेदन अर्थात् गहावे ॥ ५० ॥ और माणिमंथ यंत्र करके वायुको शांतकरै और जो असाध्य व्यानवायु शुक्रमें प्राप्त होवे तो वीर्यवृद्धिसरीखी औषध करै ॥ ५१ ॥

अथ स्नेहननामघृत।

मुण्डी गुडूची बृहतीद्वयं च रास्ना समङ्गा क्वथितः कषायः ॥ समुच्चितेनापि विमिश्रितं च दुग्धं दधि स्यान्नवनीतकञ्च ॥५२॥ पचेत्सुधीमान्मृदुवह्निना च सिद्धं घृतं स्नेहनमेव पुंसाम् ॥ कर्षप्रमाणं विहितं च पाने चाभ्यञ्जके भोजनके तथैव ॥ ५३ ॥ बस्तौ हितं स्नेहनमेव पुंसां सप्ताहकं वातविकारिणाञ्च ॥ ५४ ॥

गोरखमुंडी, गिलोय, छोटी कटेहली, बडीकटेहली, रास्ना, मँजीठ, इन्होंका क्काथ बनावे पीछे इस क्काथमें दूध, दही, नूनीघृत ॥ ५२ ॥ इन्होंको मिला फिर मंद २ अग्निसे पकावे फिर यह घृत सिद्ध होजावे तब इसकी मालिस करनी वातवालेपुरुषोंको हित है और एक तोला प्रमाण इसको पीवे अथवा मालिसमें और भोजनमें वरतै ॥ ५३ ॥ वातके विकारवाले पुरुषोंको यह घृत सात दिनतकसेवन करना चाहिये ॥ ५४ ॥

अथ निरूहणबस्ति।

रास्नाविडङ्गरजनी सह नागरेण सौवीरकेण सुरसा सह सैन्धवेन ॥ सौष्णञ्च पानमिदमेव विरूक्षणञ्च स्यान्नृणाञ्चपञ्चदिनकर्षमात्रमेव ॥ ५५ ॥

रास्ना, वायविडंग, हलदी, सूंठ, कांजी, तुलसी, सेंधानमक, इन्होंको एक जगह मिला गरम २ पीना हित है और रूखा भोजन खावै और पांच दिनतक एक एक तोला प्रमाण इसको खावै ॥ ५५ ॥

अथ पाचन तथा शमनका कथन।

अतः स्यात्पाचनं सम्यक् दिनसप्तकमेव तत् ॥ पाचिते चैव दोषे च तस्मात्संशमनं ददेत् ॥ ५६ ॥ वक्ष्यामि ते पुष्टिगते धमन्या समाश्रिते च बहुधाशनेन ॥ संस्वेदश्च नाशयते समीरं सप्ताहकं चोष्णजलेन सेकः ॥ ५७ ॥

इसके सेवनेसे वायु पकजाता है और फिर सात दिन पीछे दोष पकजावे तब संशमन औषधको करे ॥ ५६ ॥ अब धमनी नाडीके आश्रय होके पुष्टिस्थानमें प्राप्तहुए वायुके इलाजको कहते हैं तिस वायुको बहुत प्रकारसे शमन करके स्वेद अर्थात् पसीना दिवाके वायुको शांत करै और सात दिनतक गरम जलसे सेकै ॥ ५७ ॥

अथ सर्वांगवायुकी चिकित्सा।

रास्नात्रिकण्टकैरण्डशतपर्वा पुनर्नवा ॥ क्काथो वातामयं हन्ति सर्वाङ्गगतमाशु च॥ ५८ ॥रास्नागुडूचिकादारुनागरैरण्डसंयुतः॥ क्काथः सर्वाङ्गवातेऽपि समधातुगते हितः ॥ ५९ ॥ रास्नाश्वगन्धाकाशीशं वचा च कपिकच्छुकम् ॥ क्काथस्त्वेरण्डतैलेन पीतो हन्ति समीरणम् ॥ ६० ॥ रास्नाधान्यकशुण्ठी च यवानी दशमूलकम् ॥ क्काथः पाचनके प्रोक्तो नरे वातविकारिणि॥६१॥ रास्नाद्यानि पाचनानि हितानि कथितानि च ॥ ६२ ॥

और रास्ना, छोटी कटेहली, बडी कटेहली, गोखरू, अरंड, वच, सांठी इन्होंका क्काथ बना पीनेसे वातोंके रोग दूर होते हैं और सर्वांग वात शीघ्रही नष्ट होता है ॥ ५८ ॥ और रास्ना, गिलोय, देवदार, सूंठ, अरंड, इन्होंका क्काथ सर्वांग वातमें और धातुगत वातमें हित है ॥ ५९ ॥ और रास्ना, असगंध, हीराकसीस, वच, कौंचके बीज इन्होंके क्काथको अरंडीके तैलके संग पीनेसे वातका नाश होता है ॥ ६० ॥ और रास्ना, धनियां, सूंठ, अजवायन, दशमूल, इन्होंका क्काथ वातविकारवाले पुरुषोंको पाचन कहा है॥ ६१ ॥ ऐसे ये रास्ना आदिक क्काथ वातवालोंको हित और पाचन कहे हैं ॥ ६२ ॥

अथ रसोनकयोग।

अर्द्धपलं रसोनञ्च हिङ्गुसैन्धवजीरकैः ॥ सौवर्चलेन संयुक्तं तथैव कटुकत्रिकम् ॥ ६३ ॥ घृतेन संयुतं भक्षेन्मासमेकं दिने दिने ॥ निहन्ति वातरोगञ्च आर्दितं च प्रतानकम् ॥ ६४ ॥ एकाङ्गरोगि-

णाश्चापि तथा सर्वाङ्गरोगिणाम् ॥ ऊरुस्तम्भं क्रिमेदोषं गृध्रसीं वापि कर्षति ॥ ६५ ॥ पलार्द्धञ्च पलं चापि रसोनञ्च सुकुट्टितम्॥ हिङ्गुजीरकसिन्धूत्थं सौवर्चलकटुत्रयम् ॥ ६६ ॥ एभिः संचूर्णितैः सर्वैस्तुल्यं तैलेन संयुतम् ॥ यथाग्नि भक्षयेत्प्रातः रुबुक्काथानुपानवत् ॥ ६७ ॥ मासमेकं प्रयोगेण सर्ववातामयाञ्जयेत् एकाङ्गं चैव सर्वाङ्गमूरुस्तम्भं च गृध्रसीः ॥ ६८ ॥ कटिपृष्ठास्थिसन्धिस्थमर्दितं चापतन्त्रकम् ॥ ज्वरं धातुगतं जीर्णं नित्यञ्च सैकराह्वयम् ॥ ६९ ॥

लहसन २ तोले, हींग, सेंधानमक, जीरा, कालानमक, सूंठ, मिर्च, पीपल, इन्होंको समान भाग ले ॥ ६३ ॥ घृतमें मिला दिन २ प्रति एक २ मासाप्रमाण भक्षण करै यह वातरोग, लकुवा, प्रतानकवात इन्होंको नाशता है ॥ ६४ ॥ और एकांगवातरोग, सर्वांग वात, ऊरुस्तंभ, क्रिमिदोष, गृध्रसी वात इन्होंको दूर करता है ॥ ६५ ॥ और चार तोले अथवा दो तोले लहसनको कूटि तिसमें हींग, जीरा, सेंधानमक, कालानमक, सूंठ, मिर्च, पीपल ॥ ६६ ॥ इनसबोंको समान भाग ले चूर्ण बना तिसमें बराबरका तैल मिला फिर प्रातःकाल जठराग्निके अनुसार इसको भक्षण करे और इसपै अरंडका काथका अनुपान करै ६७ इसके एक मास खानेसे सबप्रकारके वातरोगोंका नाश होता है एकांग वात, सर्वांग वात, ऊरुस्तंभ, गृध्रसी वात ॥ ६८ ॥ कटि, पृष्ठ, अस्थि, संधि इन्होंको मर्दन करनेवाला वात अपतंत्रक वात, धातुगत ज्वर, तथा जीर्ण ज्वर, और नित्य आनेवाला ज्वर, शीतज्वर इन्होंको नाशता है ॥ ६९ ॥

अथ वातको शमन करनेवाले क्काथ ।

नागरा च हरिद्रा च कणाजाज्यजमोदिका ॥ वचा सैन्धवरास्ना च मधुकं समभागिकम् ॥ ७० ॥ श्लक्ष्णचूर्णं पिबेच्चैव सर्पिषा प्रत्यहं नरः ॥ एकविंशतिदिनैर्वा रोगान् हन्ति न संशयः॥७१॥ भवेच्छ्रुतिधरः श्रीमान् मेघदुन्दुभिनिस्वनः ॥ हन्ति वातामयान् सर्वान् लेहो यश्च सुखावहः ॥ ७२ ॥ शतावरी वचा शुण्ठी रास्ना कदरशल्लकी ॥ दशमूली बलाकिण्वस्तुम्बुरू च गुडूचिका ॥ ७३ ॥ एष कल्को घृतैर्युक्तो हन्ति वातं शरीरगम् ॥ ७४ ॥ शल्लकीचित्रकपीत्वचो काथस्तैलेन संयुतः कुर्याद्वातार्दितं स्वस्थ

मेकविंशतिदिनैर्नरम् ॥ ७५ ॥ अतोऽभ्यङ्गश्च कर्त्तव्यस्तैलैरपि घृतैरपि ॥ गुग्गुलश्च रसोनश्च कारयेद्विधिपूर्वकम् ॥ ७६ ॥

सूंठ, हलदी, पीपल, जीरा, अजमोद, वच, सेंधानमक, रास्ना, मुलहटी, इन्होंको समान भागले ॥ ७० ॥ बारीक चूर्ण बना घृतके संग पीनेसे इक्कीस दिनोंमें वातके रोग नष्ट होते हैं इसमें संदेह नहीं ॥ ७१ ॥ और श्रोत्र इंद्रिय बलवान् होजाती हैं मेघके समान स्वर होजाता है इसमें संदेह नहीं और यह लेह सबप्रकारके वातरोगोंको नाशता है सुख करनेवाला है ॥ ७२ ॥ और शतावरी, वच, सूंठ, रास्ना, छोटा• शल्यकी वृक्ष, दशमूल, खरैहटी, मदिरासे बाकी रहा द्रव्य, धनियां, गिलोय ॥ ७३ ॥ इन औषधोंका कल्क बना घृतके संग खानेसे शरीरमें प्राप्त हुवे वातका नाश होता है ॥ ७४ ॥ और शालवृक्ष, सुपारीका वृक्ष इन्होंकी छालके क्वाथमें तैल मिला मालिस करनेसे इक्कीस दिनमें वातसे पीडित मनुष्य स्वस्थ आनंदित होता है ॥ ७५ ॥ इसवास्ते तैलों करके तथा घृत करके मालिस करनी हित है और विधिपूर्वक लहसनमें गूगलको सिद्ध कर तिसका सेवन करना हित है ॥ ७६ ॥

अथ बलाआदिक औषध।

भागाश्चाष्टौ बलामूलं चत्वारो दशमूलकम् ॥ क्वाथश्चतुर्गुणे तोयेऽथवा द्रोणस्य संख्यया ॥ ७७ ॥ तत्राढकं क्षिपेत्क्षीरमाढकं मिश्रयेद्दधि ॥ कुलत्थाढकयूषं वै चाशु पर्य्युषितं क्षिपेत् ॥ ॥ ७८ ॥ तैलं तिलानां द्रोणं तु कटाहे पाचयेच्छनैः ॥ जीवन्ती जीवनीया च काकल्यौ जीवकर्षभौ ॥ ७९ ॥ मेदे द्वे सरलं दारु शल्लकश्च कुचन्दनम् ॥ कालीयकं सर्जरसं मञ्जिष्ठा त्रिसुगन्धिकम् ॥ ८० ॥ मांसी शैलेयकं कुष्ठं वचा कालाष्टशारिवा ॥ शतावरी चाश्वगन्धा शतपुष्पा पुनर्नवा ॥ ८१ ॥ किण्वकं च सुरा मुस्ता तथा तालीसपत्रकम् ॥ कटुत्रयं वालुकौ च सर्वं तत्रैव मिश्रयेत् ॥ ८२ ॥ सिद्धं सर्वगुणं श्रेष्ठं कृत्वा मङ्गलवाचनम् ॥ सौवर्णे राजते कुम्भे वाथवा मृन्मयायसे ॥ ८३ ॥ प्रतप्तं धारयित्वा तु पानाभ्यङ्गे निरूहके ॥ बस्तौ वापि प्रयोक्तव्यं मनुष्यस्य यथाबलम् ॥ ८४ ॥ वातार्दितेऽथवा भग्ने भिन्ने वापि प्रदापयेत् ॥ या वन्ध्या च भवेन्नारी पुरुषाश्चाल्परेतसः ॥ ८५ ॥

क्षीणो वा दुर्बलो वापि तथा जीर्णज्वरातुरः ॥ आमवातातुराणाञ्च तथा प्रक्षिप्य कञ्चटम् ॥ ८६ ॥ प्रभाते च प्रयोक्तव्यं तथा शुष्के हनुग्रहे ॥ कर्णशूले चाक्षिशूले मन्यास्तम्भे च पार्श्वगे ॥ ॥ ८७ ॥ सर्ववातविकाराणां हितं तैलं यथामृतम् ॥ हन्ति श्वासं च कासं च गुल्मार्शोग्रहणीगदम् ॥ ८८ ॥ अष्टादशानि कुष्ठानि शीघ्रं वापि नियच्छति ॥ ग्रहभूतपिशाचाश्च डाकिनी शाकिनी तथा ॥ ८९ ॥ दूरदेशे पलायन्ते बलातैलस्य दर्शनात् ॥ अपस्मारादिदोषांश्च तच्च दूरे नियच्छति ॥ ९० ॥ वृद्धा युवानो भवन्ति वन्ध्या च लभते सुतम् ॥ तैलं महाबलाद्यं च महावातहरं स्मृतम् ॥ ९१ ॥

खैरहटीकी जड आठ भाग, दशमूल चार भाग इन्होंको चारगुना जलमें और १०२४ तोले जलमें पकाके क्वाथ बनावे ॥ ७७ ॥ पीछे तिसमें २५६ तोले दूध मिला और २५६ तोले दही, २५६ तोले कुलथीका यूषको बासी करके मिलावे ॥ ७८ ॥ और तिलोंका तैल १०२४ तोले ऐसे इन सबोंको मिला पीछे शनैःशनैः कडाहीमें पकावे और जीवंती, हरडै, काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, ऋषभक ॥ ७९ ॥ मेदा, महामेदा, सरस, देवदार, शल्लकी, लाल चन्दन, रोहिस तृण, शलकावृक्ष, मंजीठ, त्रिसुगन्धि अर्थात् तेजपात, इलायची, दालचीनी ॥ ८० ॥ जटामांसी, शिलारस, कूठ, वच, नील, अनंतमूल, शतावरी, असगंध, सौंफ, सांठी ॥ ८१ ॥ मदिरासे बाकी रहा द्रव्य, मदिरा, नागरमोथा, तालीसपत्र, कुटकी, नेत्रवाला इन सबोंको एक जगह मिला ॥ ८२ ॥ पीछे इसको सिद्ध करै यह सब गुणोंवाला है श्रेष्ठहै इसको मंगलाचरण करके सुवर्ण अथवा चांदी तथा मृत्तिकाके पात्रमें घाल धरै ॥ ८३ ॥ इसको गरम २ को पीनेमें अथवा मालिसमें तथा निरूहबस्तिमें प्रयुक्त करै अथवा मनुष्यके अग्निबलको विचार साधारण बस्तिमें इसको प्रयुक्त करै॥ ८४॥लकुवावात, भग्नवात, भिन्नवात, इन्होंमें यह औषध वरतना चाहिये और जो वन्ध्या स्त्री है अथवा अल्पवीर्यवाला पुरुष है तिसको यह श्रेष्ठ कहा है ॥ ८५ ॥ और क्षीण पुरुष, दुर्बल, जीर्ण ज्वरसे पीडित इन पुरुषोंके वास्ते श्रेष्ठ कहा है और आमवात इनरोगवाले पुरुषोंको इस औषधमें गजपीपली मिलाके देना चाहिये ॥ ८६ ॥ और शुष्क हनुग्रहरोगमें भी इसको प्रभातकालमें खावे और कर्णशूल, अक्षिशूल, मन्यास्तंभ, पशलीशूल, इन्होंको नाशता है ॥ ८७ ॥ और यह तैल सम्पूर्ण वातके विकारोंको नाशता है और श्वास, खांसी, गुल्म, बवासीर, संग्रहणी रोग ॥ ८८ ॥ अठारह प्रकारके कुष्ठ रोग इन सबोंको नाशता है और ग्रहदोष, भूत, पिशाच,

डाकिनी, शाकिनी ॥ ८९ ॥ ये सब इस बलातैलके दर्शन करनेसे दूर भाग जाते हैं और मृगी आदि रोग दूर चले जाते हैं ॥ ९० ॥ और वृद्ध पुरुष जवान होजाता है और वन्ध्या स्त्री पुत्रवाली होजाती है यह महाबला आदिक नामवाला तैल महावातरोगोंको हरनेवाला कहा है ॥ ९१ ॥

अथ बलाआदि तैल।

बलाक्काथाढकं क्षिप्त्वा क्षिपेत्तत्राढकं दधि ॥ कुलत्थाढकयूषं तु सौवीरस्याढकं तथा ॥ ९२ ॥ एकत्र कृत्वा विपचेद्योजयेदौषधञ्च तत् ॥ शतपुष्पा देवदारु पिप्पली गजपिप्पली ॥ ९३ ॥ त्रिसुगन्धि सुरामांसी कुष्ठञ्च दशमूलकम् ॥ चूर्णकं निक्षिपेत्तत्र सिद्धं तदवतारयेत् ॥ ९४ ॥ योज्यं पाने तथाभ्यङ्गे निरूहे नस्यकर्मणि ॥ हन्ति वातामयाशीतिं श्रेष्ठं गुणगणात्मकम् ॥ ९५ ॥ यथा महाबलं तैलं तथेदं गुणवर्द्धनम् ॥ ९६ ॥

२५६ तोले खरैहटीके काथमें २५६ तोले दही मिलावे पीछे तिसमें २५६ तोल कुलथीका यूष मिलावे २५६ तोले कांजी मिला ॥ ९२ ॥ इनसबोंको एक जगहकर आगे कही हुई औषधोंको मिलावे सौंफ, देवदार, पीपल, गजपीपल ॥ ९३ ॥ दालचीनी, तेजपात, इलायची, मुरामांसी, कूठ, दशमूल, इन्होंके चूर्णको मिला अग्निसे पकावे सिद्ध होजावे तब उतारै ॥ ९४ ॥ इसको पीनेमें निरूहबस्तिमें नस्यकर्ममें वरतै और अस्सी प्रकारके वातरोगोंको यह तैल नाशता है जैसे पहले कहाहुआ महाबलादिक तैल गुणोंवाला है ॥ ९५ ॥ ऐसेही यह तैल गुणोंको बढानेवाला और बलमद कहा है ॥ ९६ ॥

अथ भृंगराजतैल।

भृङ्गराजरसश्चैव कटुतुम्बीरसं तथा ॥ सौवीरकरसं चैव क्काथं वै दशमूलकम् ॥ ९७ ॥ माषकुलमाषयूषं च वाजं दधि समाश्रयेत् ॥ समांशकानि सर्वाणि तैलं चार्द्धं प्रयोजयेत् ॥ ९८ ॥ मृद्वग्निना पाचनीयं सिद्धं चैवावतारयेत् ॥ अभ्यङ्गे च प्रयोक्तव्यं न पाने बस्तिकर्मणि ॥ ९९ ॥ पूरणं कर्णरोगेषु शिरःशूले च दारुणे ॥ अर्द्धशीर्षविकारेषु भ्रुवः शङ्खाक्षिशूलके ॥ १०० ॥ तस्य योगेन मनजः सुखमाप्यते द्रुतम् ॥ ॥ हन्ति कुष्ठं

च पामानं त्वग्रोगोऽभ्यञ्जनेन तु ॥ १०१ ॥ शीघ्रं विनाशमायाति हन्त्यपस्मारमुत्कटम् ॥ नं बास्तिशूलो भवति वामवाते श्रमः क्लमः ॥ १०२ ॥

भंगराका रस, कडुईतुंबीका रस, कांजीका रस, दशमूलका काथ ॥ ९७ ॥ उडदोंके वाकलोंका यूष अथवा बकरीका दही इन्होंको समान भाग ले और आधा भाग तैल मिला ॥ ९८ ॥ पीछे मंद २ अग्निसे पकावै जब सिद्ध होजावे तब उतारि इसकी मालिस करै और यह तैल पीनेमें तथा बास्तिकर्ममें नहीं वरतना चाहिये ॥ ९९ ॥ और कानके रोग, दारुण शिरकी शूल, इन्होंमें पूरण करना चाहिये और अर्धशिराका विकार, भृकुटि, कनपटी आंखि इन्होंकी शूल ॥ १०० ॥ इनरोगोंवाला मनुष्य इस तैलके योगसे सुखको प्राप्त होजाता है और इस तेलकी अच्छीतरह मालिस करनेसे कुष्ठ, पामा, इन्होंका नाश होता है ॥ १०१ ॥ और मृगीरोग शीघ्रही नष्ट होता है और बस्तिस्थानमें शूल नहीं रहता है और आमवातमें श्रम और ग्लानि होती है ॥ १०२ ॥

अथ आमपाककी चिकित्सा।

आमपाकीति विज्ञेयो न कुर्य्यात्तस्य पाचनम् ॥ विरेचनं न कर्त्तव्यं स्तम्भनं तस्य कारयेत् ॥ १०३ ॥ कटिपृष्ठे वक्षोदेशे तोदनं बास्तिशूलता ॥ गुल्मवज्जठरं गर्जेत्तथान्त्रे शोफमेव च ॥ १०४ ॥ शिरोगुरुत्वं भवति वामे च पतति भृशम् ॥ सर्वाङ्गगो भवेत्सोऽपि विज्ञेयः सुविजानता ॥ १०५ ॥ तस्य च पाचनं कुर्य्याद्विरेचनं ततः परम् ॥ विष्टम्भी गुल्मपाकी च सर्वाङ्गगोऽन्यः प्रकीर्त्तितः ॥१०६॥ विज्ञेयस्तत्र यः साध्यश्चान्यौ द्वौ कष्टसाध्यकौ॥ स्नेही वामश्च कथितः कृत्वापस्मारानिग्रहम्॥१०७॥

और जो पुरुष आमपाकी हो तिसको पाचन औषध नहीं देवे और जुलाब नहीं दिवावें किंतु स्तंभन औषध देवै ॥ १०३ ॥ और कटि, पीठ, छाती, इन्होंमें चभकाहो बस्तिमें शूल हो और गोलाकी तरह पेट बोलै आंतोंमें शोजा हो ॥ १०४ ॥ शिर भारीहो, और बहुतसी आंव गिरै वह सर्वांग वात अर्थात् सब आंगमें प्राप्तहुआ वात जानना ॥ १०५ तिसमें पहले पाचन औषध देवै पीछे जुलाबकी औषध देवै और जिसका मलबंध हो गोला पकजावे, वहभी अन्यप्रकारका सर्वांगवात कहाता है ॥ १०६ ॥ तहां एकतो साध्य होता है और दो कष्टसाध्य होते हैं, और स्नेह, तैलादिक देके वमन करके मृगीरोगको दूर करै ॥ १०७ ॥

अथ नारायणनामक तैल ।

श्योनाकः पाटला बिल्वं तर्कारी पारिभद्रकम् ॥ अश्वगन्धा कण्टकारी प्रसारिणी पुनर्नवा ॥ १०८ ॥ श्वदंष्ट्रातिबला चैव बला च समभागिकी ॥ पादशेषं जलद्रोणे क्वथितं परिस्रावयेत् ॥१०९॥ वाच्यमानानि योज्यानि भेषजानि भिषग्वरैः ॥११०॥ शतपुष्पा वचा मांसी दारु शैलेयकं वरा ॥ पतङ्गं चन्दनं कुष्ठं तथान्यं रक्तचन्दनम् ॥ १११ ॥ करञ्जबीजांशुमती त्रिसुगन्धि पुनर्नवा ॥ रास्ना तुरङ्गगन्धा च सैन्धवं च दुरालभा ॥ ११२ ॥ मिष्टासुरसा चैतच्च प्रत्येकं तु पलद्वयम् ॥ चूर्णं कृत्वा क्षिपेत्तत्र क्षिपेल्लाक्षारसाढकम् ॥ ११३ ॥ शतावरीरसं चैव अजाक्षीरं चतुर्गुणम् ॥ दधि तत्राढकं गव्यं तिलतैलं प्रयोजयेत्॥११४॥ सिद्धं तत्र प्रदृश्येत ततो मङ्गलवाचनम्॥प्रतिष्ठेनं प्रतिष्ठाप्य नारायणमिदं स्मृतम्॥११५॥ हन्ति वातविकारांश्च अपस्मारग्रहांस्तथा ॥ शिरोरोगान् कर्णरोगान् कुष्ठान्यष्टादशान्यपि ॥ ११६ ॥ वन्ध्या च लभते पुत्रं षण्ढोऽपि पुरुषायते ॥ कृशो युवायते मूर्खो विद्याराधनतत्परः॥११७॥नारायणमिदं तैलं कृष्णात्रेयेण भाषितम् ॥ ११८ ॥

सोनापाठा, पाडलवृक्ष, बेलपत्र, अरणी, नींब, असगंध, कटेहली, खींप, सांठी ॥१०८॥ गोखरू, खैरहटी, गंगेरनकी जड इन्होंको समान भागले १०२४ तोले जलमें पकावे जब चतुर्थांश बाकी रहे तब उतारि वस्त्रमांहके छान लेले ॥ १०९ ॥ पीछे वैद्यजनोंको आगे कहीहुई औषधें गेरनी चाहिये ॥ ११० ॥ जैसे—सौंफ, वच, जटामांसी, देवदार, शिलारस, त्रिफला, पतंग, चन्दन, कूठ, लाल चन्दन ॥ १११ ॥ करंजुवाके बीज, शालवन, दालचीनी, तेजपात, दालचीनी, इलायची, सांठी, रास्ना, आसगंध, सेंधानमक, जवांसा॥११२॥ मीठी तोरी, तुलसी, इनसबोंको आठ २ तोला प्रमाण ले चूर्ण बना तिसमें पहले कहे क्काथमें गेर देवै और लाखन रस २५६ तोले ॥ ११३ ॥ शतावरीका रस २५६ तोले, बकरीका दूध चार भाग गौका दही २५६ तोले और २५६ तोले तिलोंका तैल इन्होंको मिला ॥ ११४ ॥ फिर अग्निसे सिद्ध करै पीछे मंगलाचरण करके इस नारायणनामक तैलको प्रतिष्ठाकरके स्थापित कर देवै ॥ ११५ ॥ यह तैल वातके विकारोंको नाशता है

और मृगीरोग, ग्रहदोष इन्होंको दूर करता है और शिरके रोग ॥ ११६ ॥ कर्णरोग, अठारह प्रकारके कुष्ठ इन्होंको नाशता है वंध्यास्त्री पुत्रको प्राप्तहोजाती है और नपुंसकभी पुरुषकी तरह आचरण करता है और माडा पुरुषभी जवानकी तरह आचरण करता है और मूर्ख पुरुष विद्यावान् होजाता है ॥ ११७ ॥ यह नारायण नामवाला तैल कृष्णात्रेयजीने कहाहै ॥ ११८ ॥

अन्यानि घृततैलानि तानि चात्र प्रयोजयेत् ॥ एतेन जायते सौख्यं वातरोगं नियच्छति ॥ ११९ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने वातव्याधिचिकित्सा नाम विंशोऽध्यायः॥२०॥

और अन्यभी जो घृत तथा तैल कहे हैं वे इस जगह प्रयुक्त करने चाहिये इस कर्म्मकरके सुख होता है और वातरोग दूर होते हैं ॥ ११९ ॥ इति बेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने वातव्याधिचिकित्सानाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

एकविंशोऽध्यायः २१.

अथ आमवातचिकित्सा।

आत्रेय उवाच ॥ लक्षणं शृणु पुत्र त्वं समासेन वदाम्यहम् ॥ गुर्वन्नाहारपुष्टेन मन्दाग्निना व्यवायिनः ॥ १ ॥ तर्पितैः कन्दशाकैस्तु आमो वायुसमीरितः ॥ श्लेष्मस्थाने प्रपच्यैव जायते बहुवेदनः ॥ २ ॥ आमातिसारो वर्तेत सन्धौ शोफः प्रजायते ॥ जरत्वश्चैव गात्राणां बलासपतनं मुखे ॥ ३ ॥ पृष्ठमन्यात्रिके जाते वेदनार्त्तोऽपि सीदति ॥ अङ्गं वैकल्यमायाति आमवाते भिषग्वर ॥ ४ ॥ तस्य नो स्नेहनं कार्यं पाचनञ्च विधीयते ॥ आमं संक्षयते प्राज्ञश्चतुर्धा भेदलक्षणैः ॥ ५ ॥ विष्टम्भी गुल्मकृन्मेही आमः पक्वाम एव च॥सर्वाङ्गगो भवेच्चान्यो वक्ष्ये तस्यापि लक्षणम् ॥ ६ ॥

आत्रेयजी कहतेहैं-हे पुत्र ! आमवातके लक्षणोंको संक्षेपमात्रसे कहते हैं सुन भारी अन्नके भोजनसे मंदअग्निवाले पुरुषके ॥ १ ॥ कसरत नहीं करनेसे, कंद, मूळआदिक शाकों-

से तृप्त होनेसे वायुसे प्रेरित हुवा आम अर्थात कच्चा रस सो कफसे स्थानमें पकके बहुत पीडा सहित होजाता है ॥ २ ॥ तिस्से आमातिसार होता है संधियोंमें शोजाहो अंगोंमें ज्वर बना रहे मुखसे कफ गिरै ॥ ३ ॥ और पीठ, मन्या कटिआदि त्रिकस्थान इन्होंमें अत्यंत पीडा रहे और हे उत्तमवैद्य ! आमवातरोगमें सब अंग विकल होजाते हैं ॥ ४ ॥ तिस आमवातमें स्नेहन अर्थात् तैलआदिक औषध नहीं करै, पाचन क्वाथ देने चाहिये और चार-प्रकारके लक्षणोंसे आमवात होता है ॥ ५ ॥ विष्टंभी अर्थात् मलबंध रहे १ पेटमें गुल्महो २ स्नेही आम ३ पक्काम ४ ऐसे चारप्रकारका होता है और एक सर्वांगवात होता है तिसका लक्षणभी कहेंगे ॥ ६ ॥

अथ विष्टंभी आमके लक्षण ।

विष्टम्भी गुरुचाध्मानं बस्तिशूलं च जायते ॥
तस्यापि पाचनं कार्य्यं स्नेहनं चैव कारयेत् ॥ ७ ॥

मल बंध रहै पेट भारी रहै अफाराहो बस्तिमें शूलहो तिसकाभी पाचन औषध करना चाहिये और स्नेहन औषध नहीं करै ॥ ७ ॥

अथ गुल्मीआमका लक्षण ॥

जठरं गर्जते यस्य गुल्मवत्परिपीड्यते कटिदेशे जडत्वञ्च आमगुल्माभिशंकितः ॥ ८ ॥ तस्यादौ लङ्घनानि स्युर्ज्ञात्वा देहबलाबलम् ॥ पाचनं नैव कर्त्तव्यं गुल्मपाके विमूर्च्छति ॥ ९ ॥ पाचिते चापि गुल्मामे तदाशु मरणं ध्रुवम् ॥ १० ॥

जिसका पेट गर्जता रहे गोलासरीखी पीडाहो कटिमें जडताहो वह गुल्मवाला आम कहाता है ॥ ८ ॥ तिसकी देहके बलाबलको विचार लंघन कराने चाहिये और पाचन औषध नहीं करावे गुल्मपाक होनेमें मूर्च्छा होजाती है ॥ ९ ॥ गुल्म आममें पाचन औषध करनेसे शीघ्रही मृत्यु होजाती है ॥ १० ॥

अथ स्नेहीआमके लक्षण ।

यस्य च स्निग्धता गात्रे जाड्यं मन्दाग्निको बली ॥ स्नेहामो विजलो यस्य स्नेही वामः प्रकीर्त्तितः ॥ ११ ॥ तस्य नो स्नेहनं कार्य्यं चोपवासञ्च कारयेत् ॥ पाचनं चैव कर्त्तव्यमामं चैवातिसारयेत् ॥ १२ ॥

जिसके शरीरपै चिकनाई हो, जडताहो, मन्दअग्निहो, और जलसे रहित चिकनी २ आम गिरै वह स्नेही आम होता है ॥ ११ ॥ तिसकी स्नेहन औषध नहीं करे उपवास बस्तिकर्म करै और पाचन औषध करै आमको निकासै ॥ १२ ॥

अथ आमके लक्षण ।

यस्य शोफाननं जाड्यं तथा चैव घनोदरम् ॥ अरुच्यामातिसारश्च सचासाध्यो विजानता ॥ १३ ॥ प्रत्याख्येया क्रिया कार्य्या जीवितस्यापि संशये ॥ पाचनं पाचितं ज्ञात्वा तस्माच्चूर्णानि दापयेत् ॥ १४ ॥

जिसके मुखपै शोजाहो, जड़्‌ताहो, पेट करडाहो, अरुचिहो, आमातिसारहो, वह असाध्य कहा है ॥ १३ ॥ तिसकी सब क्रिया त्यागदेनी चाहिये तिसके जीवनेमें संदेह है तहां पाचन औषधोंको पकानेवाली जानके चूर्ण देना चाहिये ॥ १४ ॥

अथ पक्काम और सर्वांगआमके लक्षण ।

सपीतो विजलः श्यामः पक्कामः पतते त्वधः ॥ न बस्तिशूलो भवति आमवाते श्रमः क्लमः ॥ १५ ॥ आमपाकीति विज्ञेयो न कुर्य्यात्तस्य पाचनम् ॥ विरेचनं न कर्त्तव्यं स्तम्भनं तस्य कारयेत् ॥ १६ ॥ कटिपृष्ठे वक्षोदेशे तोदनं बस्तिशूलवान् ॥ गुल्मतो जठरं गर्जेत्तथातः शोफ एव च ॥ १७ ॥ शिरोगुरुत्वं भवति आमश्च पतते भृशम् ॥ सर्वाङ्गगो भवेत्सोऽपि विज्ञेयोऽसौ विजानता ॥ १८ ॥ तस्य च पाचनं कुर्य्याद्विरेचनमनन्तरम् ॥ विष्टम्भी गुल्मपाकी च अन्यः सर्वाङ्गगो मतः ॥ १९ ॥ विज्ञेयाश्चात्र ये साध्याश्चान्यौ द्वौ कष्टसाध्यकौ ॥ स्नेही आमश्च कथितः कृच्छ्रसाध्यं द्वयं मतम् ॥ २० ॥ पक्कामः सुखसाध्यस्तु ज्ञात्वा कर्म समाचरेत् ॥ २१ ॥

पीला रंगवाला जलसे रहित काला रंगवाला ऐसा ऐसा पका हुआ आंव गिरै और बस्तिस्थानमें शूल नहीं होवे और जो आमवात होवे तो श्रमग्लानि होती है ॥ १५ ॥ और जो आमपाकी वात होवे तो तिसका पाचन नहीं करै जुलाबभी नहीं देवै तहां स्तंभन औषधोंको करै ॥ १६ ॥ और कटि, पीठ, छाती इन्होंमें चभका हो बस्तिमें शूल हो गुल्मसरीखा पेट गर्जै शोजाहो ॥ १७ ॥ शिर भारी हो बहुतसा आम गिरै वह सर्वांगवात जानना ॥ १८ ॥ तहां पहले पाचन औषध देवै पीछे जुलाब देवै और विष्टंभी, गुल्मपाकी, सर्वांग ॥ १९ ॥ ये रोग साध्य हैं और स्नेही आम, आम ये दोकष्टसाध्य कहे हैं ॥ २० ॥ तहां पके हुये आमको सुखसाध्य जानके तिसका कर्म करै ॥ २१ ॥

अथ पाचन विधि।

रास्ना त्रिकण्टमेरण्डं शतपुष्पा पुनर्नवा ॥ पानं पाचनके शस्तं वामे वाते भिषग्वर ॥ २२ ॥ रास्ना श्योनाककाश्मीरं चिक्कणीकं च पुष्करम् ॥ क्काथं शृतं सुखोष्णं च पाचनं पाययेन्नरः ॥ एतत्पाचनकं विद्धि प्रोक्तं चामे सवातिके ॥ २३ ॥

हे उत्तम वैद्य ! आमवातमें रास्ना, छोटी कटेहली, बडी कटेहली, अरंड, सौंफ, सांठी, इन्होंका काथ बना पीनेमें पाचनके वास्ते श्रेष्ठ है ॥ २२ ॥ और रास्ना, सोनापाठा, खंभारी, चिकनीसुपारी, पोहकरमूल, इन्होंका काथ सुखसे सुहाता हुआ गरम २ पीना पाचनमें हित है यह काथ आमवातमें पाचनके वास्ते श्रेष्ठ है ॥ २३ ॥

आमवाते कणायुक्तं दशमूलीजलं पिबेत् ॥ गुडूची नागरं पथ्या चूर्णमेतद्गुडान्वितम् ॥ २४ ॥ धान्यनागरराजाम्लदेवदारुवचाभयाः ॥ पाचनं चामवाते च श्रेष्ठमेतत्सुखावहम् ॥ २५ ॥ तथा कोलकचूर्णं वा पिबेदुष्णेन वारिणा ॥ आमवातञ्च मन्दाग्निं शूलं गुल्मञ्च नाशयेत् ॥ २६ ॥ बलाक्काथाढकं क्षिप्त्वा दधितक्राढकं क्षिपेत् ॥ कुलत्थाढकयूषं तु सौवीरस्याढकं तथा॥२७॥ एकत्र कृत्वा विपचेद्योजयेदौषधश्च तत् ॥ शतपुष्पा देवदारु पिप्पली गजपिप्पली ॥ २८ ॥ त्रिसुगन्धि मुरामांसी कुष्ठं द्विपञ्चमूलकम् ॥ चूर्णं विनिक्षिपेत्तत्र सिद्धं तदवतारयेत् ॥२९॥ पाने चाभ्यन्तरे योज्यं निरूहे बस्तिकर्मणि ॥ हन्ति वातामयं सर्वं श्रेष्ठं गुणगणप्रदम् ॥ ३० ॥ पिबेदेरण्डजं तैलं गुडक्षीरेण संयुतम् ॥ सर्वाङ्गे चामवाते हि श्रेष्ठमेतद्विरेचनम् ॥ ३१ ॥ नागरस्य भागमेकं द्वौ भागौ क्रिमिजस्य तु ॥ त्रिवृद्भागत्रयं क्षिप्त्वा चूर्णं गुडसमं वटम् ॥ ३२ ॥ भक्षेत्तथोष्णतोयेन पुनश्चोष्णं पयः पिबेत् ॥ एतेन जायते वामे विरेकः सुखकारकः ॥ ३३ ॥ विडङ्गशुण्ठी रास्ना च पथ्या त्रिकटुकान्विता ॥ क्काथमष्टावशेषं च कारयेद्भिषजांवरः ॥ ३४ ॥ दुग्धं क्काथार्द्धकं तैलं तथैवैरण्डजं

क्षिपेत् ॥ कर्षमात्रं सुपातव्यो विरेकश्चानुपानतः ॥ ३५ ॥ गुडूची त्रिफला पथ्या गुडेन सह भक्षयेत् ॥ विरेको ह्यामवातेषु श्रेष्ठमेतत्सुखावहम् ॥ ३६ ॥

और आमवातमें पीपल, दशमूल, इन्होंका काथ बना पीना हित है और गिलोय, सूंठ, इन्होंके चूर्णमें गुड मिला खाना ॥ २४ ॥ तथा धनियां, सूंठ, अमलतास, देवदार, हरडै, इन्होंका चूर्ण आमवातमें पाचन है और सुखको करनेवाला है ॥ २५ ॥ और पीपलोंके चूर्णको गरम जलके संग पीनेसे आमवात, मंदाग्नि, शूल, गुल्म, इन्होंका नाश होता है॥२६॥ और २५६ तोले खरैहटीका काथ, दही, तक्र, इन्होंको २५६ तोले, लेवे कुलथीका यूष २५६ तोले कांजी २५६ तोले ॥ २७ ॥ इन्होंको एकजगह मिलाके पकावे और इन आगे कही औषधोंको गेरै सौंफ, देवदार, पीपल, गजपीपल ॥ २८ ॥ त्रिसुगंधि अर्थात् दालचीनी, तेजपात, इलायची, मुरामांसी, कूठ, दशमूल इन्होंका चूर्ण गेरै पीछे सिद्ध होजावे तब उतारलेवे ॥ २९ ॥ यह पीनेमें और निरूहबस्तिमें उदरके भीतर युक्त करना चाहिये यह संपूर्ण वातरोगोंको नाशता है श्रेष्ठ है गुणको देनेवाला है ॥ ३० ॥ और अरंडीके तेलको गुड तथा दूधके संग पीवे सर्वांगवातमें और आमवातमें यह जुलाब श्रेष्ठ है॥ ३१॥और सूंठ एक भाग, अगर दोभाग, निशोत तीन भाग, इनसबोंके समान गुड मिला गोली बांधलेवे ॥३२॥ पीछे गरम जलके संग भक्षण करै और ऊपरसे गरम दूध पीवे इससे आमवातमें सुखको करनेवाला जुलाब होता है ॥ ३३ ॥ और वायविडंग, सूंठ, रास्ना, हरडै, इन्होंको जलमें चढा अष्टमांश बाकी रहे तबतक काथ बनावे ॥३४॥ पीछे काथसे आधा दूध और अरंडीका तैल मिलावे पीछे यह एक तोला प्रमाण पीना चाहिये इसमें जुलाबका अनुपानकरै ॥३५॥ और गिलोय, त्रिफला, हरडै, इन्होंको गुडके संग भक्षणकरै यह जुलाब आमवातमें हित है सुखको करनेवाली है ॥ २६ ॥

अथ आमवातरोगको शमन करनेवाली औषध ।

अभया मस्तुना पिष्टा मधुशर्करयान्विता ॥ आमातिसारं स्तम्भेत्तु गुडामलकमेव च ॥ ३७॥ वत्सकं जीरके द्वे च दध्ना पिष्टं तु दापयेत् ॥ आमातिसारशमनं बस्तिशूलं नियच्छति॥ ३८ ॥ गुग्गुलं च रसोनं च हिङ्गु नागरसंयुतम् ॥ क्काथं वामविनाशाय शमनं मारुतस्य च ॥ ३९ ॥ अजमोदोग्रगन्धा च कुष्टं त्रिकटुकं शठी ॥ फलत्रिकं च भार्ङ्गी च पुष्करं लवणाष्टकम् ॥४०॥ जीरके द्वे विडङ्गानि तुम्बरू द्वे च दारु च ॥ तथा विल्वा शिला

भेदो रोध्रं वत्सकवासकम् ॥ ४१ ॥ धातकीकुसुमं चैव शाल्मली त्वक् च दाडिमम् ॥ एतानि समभागानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥ ४२ ॥ घृतेन संयुतं वातं नाशयत्याशु निश्चितम् ॥ सहिङ्गु चारनालेन पीतं शूलार्त्तिनाशनम् ॥ ४३ ॥ तथा चोष्णजलेनापि वामवातं नियच्छति ॥ गृध्रसीकटिशूले च दशमूल जलेन तु ॥ ४४ ॥ विबन्धैरण्डतैलेन शोफे वापि सुदारुणे ॥ गुल्मगोमूत्रसंयुक्तं गुडेन पाण्डुरोगजित् ॥ ४५ ॥ प्रमेहे मधुसंयुक्तं यक्ष्मणि शर्करायुतम् ॥ हन्ति सर्वामयान् घोरान् यथायोगेन योजितम् ॥ ४६ ॥

हरडैको दहीके पानीमें पीसि शहद और खांड मिला पीनेसे अथवा गुड आंवला इन्होंके पीनेसे आमातिसार बंद होता है ॥ ३७ ॥ कूडाकी छाल, दोनों जीरे इन्होंको दहीमें पीस देनेसे आमातिसार, बस्तिशूल ये शांत होते हैं ॥ ३८ ॥ और गूगल, लहसन, हींग, सूंठ इन्होंका काथ बना पीनेसे आमवातका नाश होता है ॥ ३९ ॥ और अजमोद, वच, कूठ, सूंठ, मिरच, पीपल, कचूर, त्रिफला, भारंगी, पोहकरमूल, लवणाष्टक, ८ नमक ॥ ४० ॥ दोनों जीरे, वायविडंग, धनियां दो भाग, देवदार, वेलगिरी, पाषाणभेद, लोध, कुडाकी छाल, वांसा ॥ ४१ ॥ धायके फूल, सालवृनकी छाल, अनारदाना इन्होंको समान भागले बारीक चूर्ण बना लेवे ॥ ४२ ॥ पीछे घृतमें मिला खानेसे आमवातका नाश होता है और हींग, कांजी इन्होंके संग पीनेसे बस्तिशूलकी पीडाका नाश होता है ॥ ४३ ॥ और गरम जलके संग पीनेसे आमवातका नाश होता है और गृध्रसीवात, कटिशूल, इनरोगोंमें दशमूलके काथके संग पीवे ॥ ४४ ॥ और मलका बंधा, दारुण शोजा, इन्होंमें अरंडीके तैलके संग पीवै पांडुरोगमें गुडके संग और पेटके गोलेमें गोमूत्रके संग पीवै ॥ ४५ ॥ प्रमेहमें शहदके संग, राजयक्ष्मारोगमें खांडके संग पीवे यह चूर्ण इसप्रकार यथायोगके संग देनेसे संपूर्ण घोर वातरोगोंको नाशता है ॥ ४६ ॥

अथ आमवातमें वर्ज्य।

वर्जयेद्विदलं गौल्यं तैलं पिच्छलमेव च ॥ शीतोदकेन न स्नानमामवाते भिषग्वर ॥ ४७ ॥ पाचिते चामदोषे च आमवातं न सेवयेत् ॥ न सेवनीयं चोष्णं च द्रवं द्रावं विशेषतः ॥ ४८ ॥ ज्वरे प्रोक्तानि पथ्यानि तानि चात्र प्रयोजयेत् ॥ ४९ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने आमवातचिकित्सा नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

और इसपै द्विदल धान्य, गुल्ली बंधनेवाला अन्न, तैल, झागोंवाला पदार्थ, इन्होंको वर्ज देवै. और हे उत्तम वैद्य ! आमवातमें शीतल जलसे स्नान नहीं करावे ॥ ४७ ॥ और आमदोष पकजावे तब आमवातनाशक औषधोंको नहीं सेवै और विशेष करके गरम वस्तुसे पतला और दस्त लगानेवाला भोजन, इन्होंको नहीं सेवै ॥ ४८ ॥ और ज्वरमें कहीहुई जो पथ्य वस्तु है इन्होंको यहां प्रयुक्त करै ॥ ४९ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने आमवातचिकित्सानाम एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

द्वाविंशोऽध्यायः २२.

अथ गृध्रसीवातका निदान और लक्षण।

आत्रेय उवाच ॥ रक्तवातसमुद्भूतान्दोषाञ्छृणु महामते ॥ कट्यूरुजानुमध्ये तु जायते बहुवेदना ॥ १ ॥ गृध्रसीति विजानीयात्तेन नोक्तश्च लक्षणम् ॥ २ ॥ जानुमध्ये भवेच्छोफो जायते तीव्रवेदना ॥ वातरक्तसमुद्भूता विज्ञेया कोष्ठशीर्षिका ॥ ३ ॥ कण्डरा बाहुपृष्ठे च अङ्गुल्यभ्यन्तरेषु च ॥ करक्रमक्षयकरी सा विज्ञेया विपश्चिता ॥ ४ ॥ पादहर्षो भवेच्चात्र पादयोर्लोमहर्षणम् ॥ कफवातप्रकोपान्ते प्रस्वेदः करपादयोः ॥ ५ ॥ पित्तवातान्वितं चान्ते उष्णत्वं करपादयोः ॥

आत्रेयजी कहते हैं—हे महामते ! रक्तवातसे उपजेहुए दोषोंको सुन, कटि, जांघ, गोडे, इन्होंमें बहुतसी पीडा होती है ॥ १ ॥ उसको गृध्रसीवात कहते हैं इसके अन्य लक्षण पहले नहीं कहे है. ॥ २ ॥ गोडाके मध्यमें पीडाहो शोजाहो तीव्र वेदना हो वह वातरक्तसे उपजी हुई कोष्ठशीर्षिका कहाती हैं ॥ ३ ॥ और भुजा, पीठ, अंगुली इन्होंमें खाजिहो वह कर क्रमक्षयकरी अर्थात् हाथके क्रमसे क्षय करनेवाली गृध्रसी कहाती है ॥ ४ ॥ और पैरोंमें जो रोमहर्ष होता है वह पादहर्ष कहाता है और कफवातके प्रकोपके मध्यमें हाथ पैरोंमें पसीना हो जावे ॥ ५ ॥ और पित्तवातके मध्यमें हाथ पैर गरम होजाते हैं ॥

अथ गृध्रसीवातकी चिकित्सा।

अमीषां रुधिरस्रावं ततः स्वेदं च कारयेत् ॥ ६ ॥ अभ्यङ्गे वातहृत्तैलं पानं रास्नायाः पञ्चकम् ॥ शतावरी बले द्वे च पिप्पली

पुष्कराह्वयम् ॥ ७ ॥ चूर्णमेरण्डतैलेन गृध्रसीमपकर्षति ॥ अज-
मोदादिकं चूर्णमामवाते प्रकीर्त्तितम् ॥ ८ ॥ तदत्र योजनीयं च
गृध्रसीनां निवारणम् ॥ एतैर्नजायते सौख्यं दहेल्लोहशलाकया ॥
॥ ९ ॥ पादरोगेषु सर्वेषु गुल्फे द्वे चतुरङ्गुले ॥ तिर्य्यग्दाहं प्रकु-
र्वीत दृष्ट्वा पादे शिरां दहेत् ॥ १० ॥ वातरोगेषु प्रोक्तानि पथ्यानि
चात्र योजयेत् ॥ ११ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने
गृध्रसीचिकित्सा नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

और इनसबोंमें रुधिरस्राव करावे पसीना दिवाना चाहिये ॥ ६ ॥ और वातको हरने-वाले तैलको मालिसमें वरतै और रास्ना पंचक आदि औषधोंका काथ पीना चाहिये और शतावरी, खरैहटी, बडीखरैहटी, पीपल, पोहकरमूळ ॥ ७ ॥ इन्होंके चूर्णको अरंडके तैलमें मिला पीनेसे गृध्रसी वातका नाश होता है और अजमोद आदिक चूर्ण जो आमवात रोगमें कहा है ॥ ८ ॥ वह यहां गृध्रसी वातके निवारण करनेमें देना चाहिये और इन इलाजोंसे जो यदि सुख नहीं होवे तो लोहकी शलाका करके दग्ध करै ॥ ९ ॥ और संपूर्ण पादरोगोंमें दोनों टकनोंसे चार अंगुल दाह करै अथवा पैरपे नाडीको देख तिरछा दाह करना चाहिये ॥ १० ॥ और वातरोगमें कहेहुए पथ्योंको यहां करे ॥ ११ ॥ इति वेरीनिवासि-बुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां गृध्रसीचिकित्सानामद्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशोऽध्यायः २३.

अथ वातरक्तका निदान और लक्षण।

आत्रेय उवाच ॥ कटुक्षाराम्ललवणै रक्तं देहे प्रकुप्यति ॥ रोधा-
त्संधारणाद्वापि दिवास्वप्नादिसेवनैः ॥ १ ॥ समीरकोपः प्रत्यङ्गे
युगपद्दृश्यते नृणाम् ॥ वातरक्तमिति प्रोक्तं नृणां देहे प्रवर्त्तते ॥
॥ २ ॥ जायते सुकुमाराणां तथा स्त्रीणां भिषग्वर ॥ स्थूलानाञ्च
विशेषेण कुप्यते वातशोणितम् ॥३॥ आलस्यं च तथा कण्डूर्म-
ण्डलानाञ्च दर्शनम् ॥ वैवर्ण्यं स्फुरणं शोफशोषौ दाहश्च मार्दवम्
॥४॥ वातरक्तं विजानीयाच्छ्यावतां दन्तरक्तयोः॥ एतद्विलक्षणं
दृष्ट्वा कर्त्तव्या च प्रतिक्रिया ॥ ५ ॥

आत्रेयजी कहतेहैं–कडुआ, खारा, खट्टा, नमक, इनभोजनोंके खानेसे शरीरमें रक्त कुपित होता है और मल आदिकोंके वेगके धारण करनेसे दिनमें सोनेसे ॥ १ ॥ वायुका कोप होजाता है तब मनुष्योंके अंगमें एकवार वातरक्त कुपितहोके दीखता है ॥ २ ॥ यह रोग सुंदर बालकोंके तथा स्त्रियोंके होता है और स्थूल शरीरवाले पुरुषके विशेष करिके वातरक्त कुपित होता है ॥ ३ ॥ आलकसहो खाजिहो शरीरमें मंडलसे दीखै शरीर विवर्ण होजावे और फुरै शोजाहो, शोषहो, दाहहो, कोमलपना हो ॥ ४ ॥ दांत, रक्त ये कालेहों तब जानिये कि, वातरक्त है ऐसा विलक्षण रोग जानके इसका इलाज करै ॥ ५ ॥

अथ वातरक्तकी चिकित्सा।

विरेकं रक्तमोक्षं च पानलेपनलेहकान् ॥ धान्यनागरसंयुक्तं क्षीरं चास्य प्रदापयेत् ॥ ६ ॥ पटोलीनिम्बपत्राणि क्वथित्वा मधुसंयुतम् ॥ पाचनं वातरक्तानां तथा च शमनानि च ॥ ७ ॥ काञ्जिकेन च संपिष्य पिचुमन्ददलानि च॥लेपनं शस्यते तस्य वातरक्तप्रशान्तये ॥ ८ ॥ दुर्वा मूर्वा शठी शुण्ठी धान्यकं मधुयष्टिका ॥ वर्त्तनं शीततोयेन वातरक्तप्रलेपनम् ॥ ९ ॥ धन्यकर्षञ्च जीरे द्वे गुडेन परिपाचितम् ॥ भक्षणे वातरक्तानां दापयेद्दोपशान्तये ॥ १० ॥ एतैर्यदि न सौख्यं स्यात्तदा रक्तावसेचनम् ॥ ज्वरे प्रोक्तानि पथ्यानि तानि चात्र प्रदापयेत् ॥ ११ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने रक्तवातचिकित्सानाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

और जुलाब दिवानी, फस्तखुलानी, पान, लेप, अवलेहये क्रिया करनी चाहिये और धनियां, सोंठ इन्होंसे युक्त दूधका पान करना चाहिये ॥ ६ ॥ और परवल, नीबके पत्ते इन्होंका काथ बना शहद मिला पीनेसे रक्तवातका पाचन होता है और शमन होता है ॥ ७ ॥ और नीम्बके पत्तोंका कांजीमें पीसि लेप करनेसे वातरक्तकी शांति होती है ॥ ८ ॥ और दूध, मूर्वा, सोंठ, कचूर, धनियां, मुलहटी, इन्होंको शीतल जलमें पीस लेप करनेसे वात रक्तकी शान्ति होती है ॥ ९ ॥ और १ तोला धनियां १ तोला दोनों जीरे इन्होंको गुडमें पका भक्षण करनेसे वातरक्त दोषकी शांति होतीहै ॥ १० ॥ और इन्होंसे जो शांति नहीं होवे तो रक्त निकसावे और ज्वरमें कहे हुए जो पथ्य हैं इन्होंको यहां करवावे ॥ ११ ॥ इति वेरीनिवासि॰हारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने रक्तवातचिकित्सा नामत्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशोऽध्यायः २४.

अथ अम्लपित्तका निदान।

आत्रेय उवाच ॥ गुडनिषेवणाच्चाम्ले विरुद्धाहारसूचिते ॥ कुपितश्चाम्ल पित्तश्च कण्ठस्तेन विदह्यते ॥ १ ॥ दाहो वा हृदये तस्य शिरोऽर्तिश्चैव जायते ॥ उद्गारानम्लकान् कण्ठे हिक्काम्लोऽपि प्रधावति ॥ २ ॥

आत्रेयजी कहते हैं–गुडका सेवन करनेसे और खट्टा पदार्थ खानेसे विरुद्ध भोजन करनेसे अम्लपित्त कुपित होजाता है तिससे कंठ दग्ध होता है ॥ १ ॥ अथवा तिसके हृदामें दाह होता है और शिरमें पीडा होती है और कंठमें खट्टी २ अडकार आवती है खट्टी हिचकी आवे ॥ २ ॥

अथ अम्लपित्तकी चिकित्सा।

शृणु तस्य प्रतीकारं वमनं कारयेद्द्रुतम् ॥ अधोगते चाम्लपित्ते विरेकश्च प्रदीयते ॥ ३ ॥ पारिभद्रदलानीति आमलक्याः फलानि च ॥ क्काथपानं प्रयोक्तव्यमम्लपित्तं व्यपोहति ॥ ४ ॥ पटोलपाटलाक्काथो धान्यनागरकान्वितः ॥ जलेन हितकः प्रोक्तश्चाम्लपित्तनिवारणे ॥ ५ ॥ पटोलविश्वामृतवल्लितिक्तापत्राणि निम्बस्य च वत्सकानाम् ॥ क्काथो विसर्पकृतमम्लपित्तं विनाशयेन्मण्डलकानिदद्रून् ॥ ६ ॥ रात्रौ संपाचनं देयं धान्यनागरकल्कितम् ॥ ७ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने अम्लपित्तचिकित्सा नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

तिसके इलाजको सुनो। तहां शीघ्रही पहले वमन करवावै और जो आम्लपित्त नीचेको प्राप्त होरहाहो तो जुलाब दिवानी चाहिये ॥ ३ ॥ और नींबके पत्ते आंवळे इन्होंका काथ बना पीनेसे अम्लपित्तका नाश होतां है ॥ ४ ॥ और परवल, पाडलवृक्ष इन्होंका काथ अथवा धनियां, सूंठ, इन्होंका काथ बना पीनेसे अम्लपित्तका निवारण होता है ॥ ५ ॥ परवल, सूंठ, गिलोय, कुटकी, और नींब, वासा इन्होंके पत्ते इन्होंका काथ बना पीनेसे विसर्परोगसे उपजाहुआ अम्लपित्तका नाश होता है और मंडल, दद्रु, इन्होंका नाश होता है ॥ ६ ॥ और धनियां, सूंठ इन्होंका कल्क बना रात्रीमें पाचनकेवास्ते देना चाहिये ॥ ७ ॥ इति वेरीनिवासि०हारीतसंहिताभाषाटीकायां आम्लपित्तचिकित्सानाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

पञ्चविंशोऽध्यायः २५.

अथ शोफचिकित्सा।

आत्रेय उवाच ॥ शोफो भवेच्च विकलेन्द्रियरोममार्गः क्षीणे बले वपुषि चाम्लकटूष्णसेवया ॥ शैत्यात्तथा विशदपिच्छलसेवनेन रूक्षाभिघातपतनेन च धारणाद्वा ॥ १ ॥ आमाशये गतवतोऽपि नरस्य यस्य अन्ते प्रधावति ततोऽपि च दोष एषः ॥ करोति पाणिचरणे च पृथक् प्रसूतो द्वन्द्वेन वा भवति शोफविकारचारः ॥ २ ॥ नरस्य चान्तःप्रभवाश्च शोफाः साध्या भवेयुर्विनता मुखेषु ॥ असाध्याये सर्वशरीरगाश्च पादे स्त्रियो वा वदने नरस्य ॥ ३ ॥क्षये वाते वापि च गुल्मदेशे स्याद्राजयक्ष्मणि तथोदरेषु॥ रक्तेन जातोऽप्ययमेव शोफो गात्रेभवेच्छोफविकारचारः ॥ ४ ॥ अन्याश्चोर्ध्वगशोफाश्च श्लेष्मापित्तसमुद्भवाः ॥ कष्टसाध्याश्च विज्ञेया बहूपद्रवसंयुताः ॥ ५ ॥ श्लेष्मणि शिरसि प्राप्ते ऊर्ध्वशोफः प्रजायते ॥ मध्यः पक्वाशयस्थेऽपि मलमप्यागते त्वधः ॥ ६ ॥ रसे सर्वानुगाः शोफाः सर्वदेहानुगा रसाः ॥ ७ ॥ सर्वाङ्गशोफा अथ मध्यशोफाः सर्वाङ्गशोफाः परिवर्जनीयाः ॥ वृद्धे च बाले क्षतजाः क्षयोत्थाश्छर्द्यातिसारश्वसनेन युक्ताः ॥ ८ ॥ भ्रमज्वरक्षीणशरीरजाता शोफोद्भवा या च भवेन्नरस्य ॥ साध्या न वैद्यस्य चानन्यदोषा सा नैव साध्या भिषजांवरिष्ठ ॥ ९ ॥ तोदश्च रूक्षं श्वसनश्च वातात्पित्ताच्छ्रमः शोफविदाहकश्च ॥ शीता घना श्लेष्मणि बाधकण्डूः स्याद्द्वन्द्वजा द्वन्द्वजलक्षणेन १० अतो वदामीत्युपचारमस्यां संस्वेदनं पाचनशोधनं वा ॥ विरेचनं रक्तविमोक्षणं च कषायशोफेषु विधिः प्रदिष्टः॥ ११ ॥ न चास्य स्नेहनं कार्य्यं नैव कार्यं विरूक्षणम् ॥ १२ ॥

आत्रेयजी कहते हैं-जिनकी इंद्रिय और रोममार्ग विकल होजावे बल क्षीण होजावे तब खट्टा चर्चरा गरम ऐसे पदार्थके सेवनसे शरीरमें शोजा होजाता है और शीतल पदार्थ कोमल और झागोंवाले पदार्थके सेवनसे रूखा भोजन करनेसे और चोट आदिके लगनेसे ॥ १ ॥ आमाशयमें प्राप्तहुआ शोथ वायुविकार मनुष्यके भीतर कुपित होजाता है तब हाथ पैरोंपे शोजा होजाता है और दोदोषोंके विकारसेभी यह शोजा होता है ॥ २ ॥ मनुष्यके भीतर होनेवाले शोजे और प्रमेहरोगसे उपजीहुई पिडिकाओंके मुखका शोजा साध्य है और सब शरीरमें होनेवाला शोजा स्त्रीके पैरोंमें तथा पुरुषके मुखमें होनेवाला शोजा असाध्य होता है ॥ ३ ॥ क्षयी रोग, वात, गुल्मका स्थान, राजयक्ष्मा, उदररोग, इन्होंमेंभी रक्तसे उपजाहुआ यह शोजेका विकार होजाता है ॥ ४ ॥ और अन्य ऊपरको होने वाले शोजे कफपित्तसे होते हैं व कष्टसाध्य होतेहैं और बहुत उपद्रवोंसे युक्त होते हैं ॥ ५ ॥ जब शिरमें कफ प्राप्त होजावे तब ऊपरको शोजा होजाता है और पक्वाशयमें स्थितहुआ मळ नीचेको प्राप्त होजावे तब मध्यमें शोजा होता है ॥ ६ ॥ और सब प्रकारके शोजे रसके अनुसार रहते हैं रस. सब शरीरमें प्राप्त होनेवाले हैं ॥ ७ ॥ सब अंगोंमें होनेवाला और मध्यमें होनेवाला दोप्रकारका शोजा होता है तहां सर्वांगशोथ और वृद्ध बालक इन्होंका शोजा चोटसे उपजा तथा क्षयरोगमें उपजा और छर्दि, अतिसार, इन्होंसे युक्त, ये सब शोजे वर्जे देने अर्थात् असाध्य है ॥ ८ ॥ और भ्रम, ज्वर, इन्होंसे क्षीण हुए शरीरमें जिस पुरुषके शोजाकी पीडा होती है वह वैद्यजनोंने असाध्य कही है. हे उत्तमवैद्य ! वह शोजाकी पीडा साध्य नहीं है ॥ ९ ॥ वातसे उपजा शोजामें चभकाहो रूखा शोजाहो श्वासहो, पित्तके शोजेमें भ्रमहो दाहहो और कफसे उपजा शोजा शीतल और करडाहो खार्जिकी पीडा होती है और दो दोषोंसे उपजे शोजेमें दो दोषोंके लक्षण होते हैं ॥ १० ॥ अब इस शोजेका इलाज कहते हैं पसीना देना पाचन और शोधन औषध देनी, जुलाब दिवानी, फस्त खुलानी, काथपान, ये विधि शोफ रोगमें कही है ॥ ११ ॥ शोजाकी आदिमें तेलआदि औषध और रूपी औषध नहीं करनी चाहिये किंतु आगे कहीहुई औषधोंको पाचनके वास्ते देवै ॥ १२ ॥

अथ पुनर्नवादि क्वाथः।

पुनर्नवा मगधजा च कटुत्रयं च निम्बाभया च कटुका च पटोलदार्वी ॥ क्वाथः सुखोष्णक्वथितस्तु विपाचनेन शोफो जहाति जठरं च नरस्य शीघ्रम् ॥ १३ ॥

सोंठी, पीपल, कटुत्रय अर्थात् सूंठ, मिर्च, पीपल, नींब, हरडै, कुटकी, परवल, दारुहलदी इन्होंका क्वाथ बना गरम २ पीना पाचन कहा है और मनुष्यके उदरमें प्राप्त हुआ रोग और शोजेको शीघ्रही नाश देता है ॥ १३ ॥

अथ अन्यउपाय।

पुनर्नवा गुडूची च गुग्गुलं समकल्कितम्॥
शोफदोषांश्च गुल्मञ्च हन्त्युदरं कफानयम्॥ १४॥

और सांठी, गिलोय, गूगल इन्होंको समान भागले कल्क बना खानेसे शोजा, गुल्मरोग, उदररोग, कफरोग इन्होंका नाश होता है॥ १४॥

गजमहिष्या वृषभस्य मूत्रं तथैव लाजं सकणं प्रयोज्यम्॥
पानेन शोफो विजहाति शीघ्रमेरण्डतैलेन युतं पयो वा॥ १५॥
संस्वेदनक्रिया तत्र कार्य्या चैव पुनः पुनः॥ एरण्डपत्रकैर्वापि अथवा तिन्तिडीच्छदैः॥ १६॥ लोमशा कटुतुम्बी च काञ्जिकेन जलेन वा॥ निष्काथ्य चापि संस्वेदस्तथैवोष्णेन तेन च॥१७॥
इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने शोफचिकित्सा नाम पञ्चविंशोऽध्यायः॥ २५॥

और हस्ती, भैंस, बैल इन्होंके मूत्रमें धानकी खील और पीपल मिला क्काथ बनाके पीनेसे शीघ्रही शोजाका नाश होता है और अरंडीके तेलमें दूध मिला पीनेसे भी शीघ्रही नाशता है॥ ॥ १५ ॥ और अरंडके पत्तोंसे अथवा अमलीके पत्तोंसे वारम्वार स्वेदनक्रिया अर्थात् पसीना दिवावै॥१६॥ और वालछड, कडुई तुंबी, इन्होंको कांजीमें अथवा जलमें औटाय गरम २ तिस जलसे पसीना दिवावै अथवा इन्होंकोही गरम करके पसीना दिवावै ॥ १७ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहाय०हारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने शोफचिकित्सा नाम पंचविंशोऽध्यायः॥ २५॥

षड्विंशोऽध्यायः २६.



अथ गुल्मनिदान और लक्षण।

आत्रेय उवाच॥ श्वयथूत्थैरुपचारैस्तैश्च संकुप्यतेऽनिलः॥ मन्दाग्निना विषमेण गुल्मं जठरे जायते॥ १॥ उदरं गर्जते यस्य विषमाग्निश्च दृश्यते॥ तोदो वपुषि शूलं च वातगुल्मं विनिर्दिशेत्॥ २॥ शोषोऽरतिः सपीतत्वं मन्दज्वरनिपीडिनम्॥ तमोभ्रम-

पिपासार्त्तिर्गुल्मं तत्पित्तसम्भवम् ॥ ३ ॥ शोषो जाड्यञ्च हृल्लासस्तन्द्रालस्यं सशीतकम् ॥ मन्दाग्निर्विड्विबन्धश्च गुल्मं तच्छ्लेष्मसम्भवम् ॥४॥ मोहो विभ्रमता जाड्यमरतिः क्षुत्पिपासकम् ॥ आलस्यं निद्रतावेश्यं गुल्मं तत्कफपैत्तिकम् ॥ ५ ॥ निद्रालस्यञ्च दाहश्च शोफाच्छूलं च सज्वरम् ॥ वैवर्ण्यमरतिर्जाड्यं विड्बन्धो विकलाङ्गता ॥ ६ ॥ तथातिसारो मूर्च्छा च तृड्हृल्लासश्च वेपथुः ॥ श्वासोऽरुचिरजीर्णत्वं गुल्मं तत्सान्निपातिकम् ॥ ॥ ७ ॥ साध्यं केवलदोषोत्थं द्वन्द्वं कष्टेन सिध्यति ॥ असाध्यं सन्निपातोत्थं वक्ष्यामस्तत्प्रतिक्रियाम् ॥ ८ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—शोजेसे उत्पन्न हुए उपचारों करके वायु कुपित होजाता है तिससे अथवा मन्द अग्निसे और विषम अग्निसे उदरमें गुल्म अर्थात् गोळा उत्पन्न होजाता है ॥ १ ॥ जिसका उदर गर्जै और विषम अग्नि दीखै शरीरमें चमकाहो और शूलहो वह वातसे उपजा गुल्म जानना ॥ २ ॥ और शोषहो, पीडाहो, ग्लानिहो पीला शरीरहो, मन्द ज्वरकी पीडाहो तम अर्थात् अंधेरी, भ्रम पिपासा ये हों वह पित्तसे उपजा गुल्म जानना ॥ ३ ॥ शोषहो, जडताहो, थुकथुकी हो, तंद्राहो, आलस्यहो, ठंढकर रहे, मन्दाग्नि रहे, विष्ठा बन्ध रहै वह कफसे उपजा गुल्म जानना ॥ ४ ॥ और मोह, विभ्रम, जडता, ग्लानि, क्षुधा, पिपासा, आलस्य, निद्रा आना, ये हों वह कफपित्तसे उपजा गुल्म जानना ॥ ५ ॥ और निद्राहो, आलस्यहो, दाहहो, शूलसहित शोजाहो, ज्वरहो, बुरा वर्णहो, ग्लानिहो, जडता, मलबंध, विकलपना ॥ ६ ॥ अतिसार, मूर्च्छा, तृषा, थुकथुकी, कांपना, श्वास, अरुचि, अजीर्ण, ये हों वह सन्निपातका गुल्म जानना ॥ ७ ॥ एक दोषका गुल्म साध्य हैं और दो दोषोंसे उपजा गुल्म कष्टसाध्य है सन्निपातसे उपजा गुल्म असाध्यहोता है अब इन्होंकी चिकित्सा कहैंगे ॥ ८ ॥

अथ गुल्मचिकित्सा ।

यकृद्ग्रहणीचिकित्सैव कथितं चोपवारणम् ॥ तद्वत्प्लीहा समाख्यातो न चात्र कथितः पुनः ॥ ९ ॥ चिकित्सोदरगुल्मस्य वक्ष्यते शृणु साम्प्रतम् ॥ स्नेहनं रूक्षणञ्चैव पाचनं शोधनानि च ॥ १० ॥ संशमनं विरेकश्च बस्तिस्नेहनिरूक्षणम् ॥ क्षारपानञ्च चूर्णानि गुल्मोपचरणक्रिया ॥ ११ ॥

पहले यकृत् ग्रहणीकेगुल्मकी चिकित्सा जो कही है वही तिल्लीकी चिकित्सा जान लेनी अब फिर नहीं कहैंगे ॥ ९ ॥ अब गुल्मोदर अर्थात् पेटके गुल्मकी चिकित्साको कहते हैं सो सुन, स्नेहन, रूक्षण, पाचन, शोधन ॥ १० ॥ संशमन, जुलाब, स्नेहनबस्ति, रूक्षण-बस्ति, क्षारपान, चूर्ण ये सब क्रिया गुल्मरोगकी शांतिके वास्ते करैं ॥ ११ ॥

अथ शुंठ्यादि क्काथ।

शुण्ठी दारु सुरसा च मूर्वा पञ्चमूलं लघुः ॥
क्काथोऽस्याष्टावशेषः स्यात्तत्समं क्षीरमेव च ॥ १२ ॥

सूंठ, देवदार, तुलसी, मूर्वा, लघुपंचमूल इन्होंका काथ अष्टमांश बाकी जल रहे ऐसा लेवे और इसकी बराबर दूध मिलावे ॥ १२ ॥

अथ स्नेहविधि।

दधि तत्सममाज्यं तु पाचयेत्तत्समाग्निना ॥ घृतं यावत्प्रदृश्येत सिद्धमुच्चार्य्यते ततः ॥ १३ ॥ तत्कृतं पानकेऽभ्यङ्गे भाजने च प्रदापयेत् ॥ स्नेहः सप्तविधो यावत्तस्माच्च रूक्षणं हितम् ॥१४॥

और तिस दूधके समान दही मिला और तिसीके समान घृत मिलावे फिर मंद २ अग्नि से पकावे जब घृतमात्र बाकी रहजावे तब सिद्धहुआ जानके उतार लेवे ॥ १३ ॥ पीछे इसको पात्रमें घाल धरै इसको पीनेमें और मालिसमें वरतै स्नेह सात प्रकारका होता है इस-वास्ते रूक्षण कर्म करना हित है ॥ १४ ॥

अथ शुंठ्यादि पानक।

दिनत्रयञ्च कर्त्तव्यं कथयाम्यत्र कोविद ॥ शुण्ठी सौवर्चलं जीरे द्वे वा हिङ्गु-समन्वितम् ॥ १५ ॥ काञ्जिकं पानमेतेषां रूक्षणं गुल्मशान्तये ॥ गुल्मचिकित्सिते क्षारपाकोऽत्र प्रति-युज्यते ॥ १६ ॥

तीन दिनतक रूक्षण कर्म करै सो कहते हैं सूंठ, कालानमक, दोनों जीरे, हींग, इन्होंको ॥ १५ ॥ कांजीमें मिला पान करना यह गुल्मकी शांतिके वास्ते रूक्षण कर्म कहा है और यहां गुल्मकी चिकित्सामें क्षारपाकयुक्त करनाभी श्रेष्ठ है ॥ १६ ॥

अथ विरूक्षण।

क्षारं पलाशार्जुनसूरणस्य तथैव क्षारं सहयावशूकम् ॥ सौवर्चलं सिन्धुभवोद्भिदञ्च सामुद्रजं वापि विमिश्रयेच्च ॥ १७ ॥ तोयं परिस्राव्य विधानतोऽपि युक्तं तथैतानि सदौषधानि ॥ पथ्या-

ग्निशुण्ठीरजनीसुराह्वं कुष्ठं विशाला च जवानिका च ॥ १८ ॥
तथाजमोदा सह जीरके द्वे षड्ग्रन्थिका हिङ्गुयुतं च चूर्णम् ॥
क्षारोदकापानाविमिश्रिपानं निहन्ति सर्वाण्यपि कोष्ठजानि
॥ १९ ॥ गुल्मानि सर्वाणि विषूचिकानां मन्दाग्निशूलानि
भगन्दराणाम् ॥ प्लीहोदरानाहं च विड्विबन्धं विनाशयेद्रोगत्रयं
नराणाम् ॥ २० ॥

केशू, अर्जुनवृक्ष, जमीकंद इन्होंका खार, जवाखार, कालानमक, सेंधानमक, रेही, इन्हों-का खार, खारीनमकका खार इन्होंको एकत्र मिलाय ॥ १७ ॥ जलमें उतार पीछे विधिसे इन औषधोंको गेरै, हरडै, चीतां सूंठ, हलदी, देवदार, कूठ, इंद्रायण, अजवायन ॥ १८॥ अजमोद दोनोंजीरे, वच, हींग, इन्होंके चूर्णको तिनक्षारोंके संग पीवे यह कोष्ठमें उपजे हुए सब विकारोंको नाशता है ॥१९॥ और सब प्रकारके गुल्म, विषूचिका, मंदाग्नि, शूल, भगं-दर, प्लीहोदर, अफारा, विड्बंध, इन सब रोगोंको नाशता है ॥ २० ॥

अथ वातगुल्मपाचन।

पथ्या समङ्गा कलसी वृषश्च महौषधं वातिविषा सुराह्वम् ॥ जले
च निष्क्वाथ्य त्विदं हि पानं गुल्मामयानां प्रतिपाचनञ्च ॥२१॥
वचायवानीत्रिकटुदशमूलीजलं स्मृतम् ॥ क्वाथश्चोष्णो हितः
पाने धान्यनागरयाथवा ॥ २२ ॥ वातगुल्मेषु सर्वेषु ज्वरेषु
विषमेषु च ॥ रास्नाद्यं पञ्चकं वापि वातगुल्मप्रपाचनम् ॥ २३ ॥
शठी सौवर्चलं शुण्ठी पाचनं वाथ गुल्मिते ॥ २४ ॥

हरडै, मंजीठ, पिठवन, वांसा, सूंठ, अतीश, देवदार इन्होंको जलमें क्वाथ बना तिसका पीना गुल्मरोगमें पाचन है ॥ २१ ॥ वच, अजवायन, त्रिकटु, सूंठ, मिर्च, पीपल, दशमूल इन्होंका जलमें क्वाथ बना सुखसे सुहाताहुआ गरम २ पीना हित है अथवा धनियां, सूंठ इन्होंका क्वाथ हित है ॥ २२ ॥ संपूर्ण वातगुल्म और विषमज्वर इन्होंमें ये क्वाथ हित हैं अथवा रास्नाद्य पंचक, रास्ना आदि पांच औषधोंका क्वाथ वातगुल्ममें पाचन है ॥२३॥ अथवा कचूर, कालानमक, सूंठ, इन्होंका क्वाथ देना पाचन है ॥ २४ ॥

अथ पित्तगुल्म तथा कफके गुल्मका पाचन।

विदुला द्राक्षा कटुका निम्बपत्राणि चैव तु ॥ सगुडं पाचनं देयं
पैत्तिके गुल्मरोगिणि ॥२५॥ धात्रीकल्कं सितोपेतं पाचनं पित्त-

गुल्मिते ॥ यवानी चोग्रगन्धा च तथा च कटुकत्रयम् ॥ पाचनं श्लैष्मिके गुल्मे पीतं चोष्णं निशासु च ॥ २६ ॥

सातला, दाख, कुटकी, नींबके पत्ते, इन औषधोंके काथमें गुड मिला पित्तके गुल्ममें पाचन देना चाहिये ॥ २५ ॥ और आंवलोंके कल्कमें मिश्री मिला खाना पित्तके गुल्ममें पाचन है और अजवायन, वच, सूंठ, मिर्च, पीपल, इन्होंका काथ रात्रिमें पियाहुआ पाचन है ॥ २६ ॥

अथ वातके गुल्ममें जुलाब।

नागरा क्रिमिजित्पथ्या त्रिवृतात्रिगुणायुता ॥ चूर्णं गुडान्वितं देयं वातगुल्मविरेचनम् ॥ २७ ॥ दन्ती च भागमेकं च द्वौ भागौ च हरीतकी ॥ त्रिवृताभागत्रयं स्याच्छुंठ्याश्चत्वार एव च ॥ २८ ॥ प्रक्षिप्य सर्वमेकत्र सर्वतुल्यगुडेन तु ॥ वटकं भक्षयेत्प्रातस्तस्योपरि जलं पिबेत् ॥ २९ ॥ कथितं च विरेकाय वातगुल्मोपशान्तये ॥ ३० ॥

सूंठ, वायविडंग, हरडै, तीन भाग निशोत, इन्होंके चूर्णमें गुड मिला वातगुल्ममें जुलाबके वास्ते देना चाहिये ॥ २७ ॥ जमालगोटाकी जड एक भाग, हरडै दोभाग, निशोत तीन भाग, सूंठ चार भाग ॥ २८ ॥ इस प्रकार इन्होंको ले चूर्ण बना तिसके समान गुड मिला तिस गोलीको प्रातःकाल भक्षण करै तिसमें औटायाहुआ जल पीवे ॥ २९ ॥ इसप्रकार जुलाब देनेसे वातका गुल्म शांत होता है ॥ ३० ॥

अथ पित्तके गुल्ममें जुलाब।

पिबेदेरण्डतैलं च शर्कराक्षीरसंयुतम्॥पित्तगुल्मविरेकाय श्रेष्ठमेतत्सुखावहम् ॥ ३१ ॥ आरग्वधप्रवालानि तथैवारग्वधानि च ॥ विभाव्यैरण्डतैलैनैरण्डपत्रैस्तु वेष्टयेत् ॥ ३२ ॥ कर्दमेन प्रलिप्याथ अङ्गारेषु च स्थापयेत् ॥ सुस्विन्नभर्जिकां तांश्च भक्षयेच्छर्करान्विताम् ॥ ३३ ॥ विरेकः पैत्तिके गुल्मे हितं शुद्धविरेचनम् ॥ ३४ ॥

अरंडीके तेलमें खांड और दूध मिलाके पीवे यह जुलाब पित्तके गुल्ममें श्रेष्ठ और सुखको देनेवाला कहा है ॥ ३१ ॥ और अमलतालसके पत्ते तथा अमलतास इन्होंको अरंडीके तेलमें भावना देके फिर अरंडके पत्तोंमें लपेटि ॥ ३२ ॥ गारासे लीप अंगारोंमें रख देवै जब

अच्छी तरह पकजावे तब खांड मिलाके भक्षण करै ॥ ३३ ॥ पित्तसे उपजे गुलममें यह जुलाब हित और शुद्ध कही है ॥ ३४ ॥

अथ कफगुल्मपर विरेचन ।

त्रिफलासुरसाशुण्ठीचूर्णं कृत्वा विभावयेत् ॥ स्नुहीक्षीरेण वारैकं गुडेन सह मिश्रितम् ॥ ३५ ॥ विरेकः श्लेष्मके गुल्मे सर्वोदरविनाशनः ॥ ३६ ॥ शुण्ठी सौवर्चलं पथ्या विडङ्गञ्च पुनर्नवा ॥ चूर्णेऽपामार्गबीजानां स्नुहीक्षीरेण भावितम् ॥ ३७ ॥ गुडेन संयुतं खादेत्पश्चादुष्णं जलं पिबेत् ॥ विरेकः सर्वगुल्मेषु प्रशस्तो हितकारकः ॥ ३८ ॥

त्रिफला, तुलसी, सूंठ, इन्होंका चूर्ण बना, एकवार थोहरके दूधमें भावना दे गुडमें मिला भक्षण करै ॥ ३५ ॥ यह जुलाब कफके गुलममें हित कही है और सब प्रकारके उदररोगोंका नाश करती है ॥ ३६ ॥ और सूंठ, कालानमक, हरडै, वायविडंग, सांठी, ऊंगाके बीज इन्होंका चूर्ण बना थोहरके दूधमें भावना दे ॥ ३७ ॥ गुडमें मिला भक्षण करै पीछे गरम पानी पीवै यह जुलाब सब प्रकारके गुल्मोंमें सुख करनेवाला है ॥ ३८ ॥

अथ क्षारपान ।

शुक्तिक्षारनिशाविशालकदली स्यात्सूरणं कोकिला पालाशं दहनार्जुनं शठिजयापामार्गकूष्माण्डकम् ॥ दग्ध्वा क्षारविपाचितं परिस्रुतं हिङ्गु त्रिकट्वान्वितं गुल्मानाहविबन्धशूलहरणं सर्वोदराणां हितम् ॥ ३९ ॥

सींप, जवाखार, हलदी, इंद्रायण, केला, जमीकंद, कोलिस्ता, केशू, चीता, अर्जुनवृक्ष, कचूर, अरणी, ऊंगा, कोहला, इन्होंको जला फिर पानीमें घोलके खार जमाके तिसखारमें हींग, सूंठ, मिर्च, पीपल ये मिला खानेसे गुल्म, अफारा, मलका बंधा, शूल, इन्होंका नाश होता है और सबप्रकारके उदररोगोंमें हित है ॥ ३९ ॥

अथ अजमोदादि औषध ।

अजमोदा शठी दन्ती विडंगं कुष्ठतुम्बुरू ॥ त्रिफला चित्रकं चैव शुण्ठी कर्कटशृङ्गिका ॥ ४० ॥ त्रिवृता च सुराह्वा च पुष्करं वृद्धदारुकम् ॥ तथाम्लवेतसं चैव तिन्तिडीकञ्च चिञ्चिनी॥४१॥ समं तु मातुलुङ्गेन विभाव्यमेकतः कृतम् ॥ त्रिभागहिङ्गुसंयुक्तं

घृतेन चूर्णितं हितम् ॥ निहन्ति वातगुल्मञ्च सशूलमुदरं तथा ॥ ४२ ॥

अजमोद, कचूर, जमालगोटाकी जड, वायविडंग, कूठ, धनियां, त्रिफला, सूंठ, काकडासींगी ॥ ४० ॥ निशोत, देवदार, पोहकरमूल, भिदारा, अम्लवेत, अमली इन्होंको ॥४१॥ समानभाग ले एकवार विजोराके रसमें भावनादे तीनभाग हींग मिला फिर घृतके संग इस चूर्णको खावे यह वातके गुल्मको तथा शूलसहित उदररोगको नाशता है ॥ ४२ ॥

अथ हिंग्वादिचूर्ण।

हिङ्गुफलत्रिकजीरकयुग्मं चित्रकभार्ङ्गी कुष्ठविडङ्गम् ॥ तुम्बुरुपुष्करविश्वसुराह्वं क्षारयुतं लवणानि च पञ्च ॥ ४३ ॥ वातिकगुल्मविनाशनहेतोः शूलरुजश्च निहन्ति नराणाम् ॥ ४४ ॥ हिङ्गुसौवर्चलाजाजी विश्वा कुष्ठं विडङ्गकम् ॥ आरनालेन पीतं च हन्ति गुल्मं सवातिकम् ॥ ४५ ॥

और हींग, त्रिफला, दोनों जीरे, चीता भारंगी, कूठ, वायविडंग, धनियां, पोहकरमूल, सूंठ, देवदार इन्होंके चूर्णमें जवाखार और पांचोंनमक मिला खानेसे वातके ॥ ४३ ॥ गुल्मका नाश होता है और मनुष्योंके शूलकी पीडाका नाश होता है ॥ ४४ ॥ और हींग, कालानमक, जीरा, सूंठ, कूठ, वायविडंग इन्होंको, कांजीके संग पीनेसे वातके गुल्मका नाश होता है ॥ ४५ ॥

अथ पित्तगुल्मोदरचिकित्सा।

जीरे द्वे त्रिकटु शठी तुम्बुरु चित्रकं मधु ॥ लेहः पित्तात्मके गुल्मे हितः शोफनिवारणः ॥ ४६ ॥ यष्टिकं निम्बपत्राणि तथा धात्रीफलं सिता॥चूर्णं मध्वावलीढं च पित्तगुल्मनिवारणम्॥४७॥

दोनोंजीरे, त्रिकटु, अर्थात् सूंठ मिर्च, पीपल, कचूर, धनियां, चीता, शहद, इन्होंका लेह बना खानेसे पित्तके गुल्मका नाश होता है और शोजा दूर होता है ॥ ४६ ॥ मुहलटी, नींबके पत्ते, आंवले, मिश्री, इन्होंके चूर्णको शहदमें मिला चाटनेसे पित्तके गुल्मका नाश होता है ॥ ४७ ॥

त्रिकटुत्रिफलाचित्रवटकफलसंयुतम् ॥ चूर्णं मद्येन वा पीतं फलकाथेन वा हितम् ॥ ४८ ॥ श्लेष्मगुल्मविनाशाय हितं चैतत्सुखावहम् ॥ ४९ ॥

और सूंठ, मिर्च, पीपल, त्रिफला, चीता, वडके फल, वडवंटे इन्होंके चूर्णको मदिराके संग अथवा त्रिफलाके काथके संग पीवे ॥ ४८ ॥ तो कफके गुल्मका नाश होता है और यह हित है सुखको देनेवाला है ॥ ४९ ॥

अथ कफके गुल्मकी चिकित्सा ।

रोध्रं च कमलं विश्वा कुष्ठं चित्रकमेव च ॥ नागरहिङ्गुसंयुक्तं चूर्णं मूत्रेण संयुतम् ॥ ५० ॥ श्लेष्मगुल्मविनाशाय शूलोदरविनाशनम् ॥ उग्रगन्धा च मरिचं क्षारचूर्णसमन्वितम् ॥ ५१ ॥ पिबेन्मूत्रेण संयुक्तं श्लेष्मगुल्मविनाशनम् ॥ ५२ ॥

लोध, कमल, सूंठ, कूठ, चीता, नागरमोथा, हींग, इन्होंके चूर्णको गोमूत्रके संग खावे ॥ ५० ॥ तो कफकी शूल, उदररोग, कफका गुल्म इन्होंका नाशहोता है और वच, मिर्च, इन्होंके समान जवाखार इन्होंके चूर्णको ॥ ५१ ॥ गोमूत्रके संग पीनेसे कफके गुल्मका नाश होता है ॥ ५२ ॥

अथ वातकफके गुल्मकी चिकित्सा ।

शुण्ठी सौवर्चलं भार्ङ्गी वत्सकं यावशूककम् ॥ जीरे द्वे चाटरूषं च यवानी हिङ्गु सैन्धवम् ॥ ५३ ॥ आरग्वधेन संयुक्तं चूर्णं सघृतमेव च ॥ वातश्लेष्मोद्भवे गुल्मे सुखमाशु प्रपद्यते ॥ ५४ ॥ उग्रगन्धा फलत्रिकं देवदारु पुनर्नवा ॥ त्रिवृत्सौवर्चलोपेतं क्षारोदकसमन्वितम् ॥ पीतं वातकफे गुल्मे सुखकारि परं मतम् ॥ ५५ ॥

सूंठ, कालानमक, भारंगी, कुडाकी छाल, जवाखार, दोनोंजीरे, वांसा, अजवायन, हींग, सैंधानमक ॥ ५३ ॥ अमलतास, इन्होंके चूर्णमें घृत मिला खानेसे वातकफसे उत्पन्नहुवे गुल्ममें शीघ्रही सुख उत्पन्न होताहै ॥ ५४ ॥ और वच, त्रिफला, देवदार, सांठी, निशोत, कालानमक इन्होंको जवाखारके जलके संग पीनेसे वातकफसे उपजे हुये गुल्ममें अत्यंत सुख होता है ॥ ५५ ॥

अथ सन्निपातके गुल्मकी चिकित्सा ।

ग्रहणीगुल्मक्रिया या सा चात्र प्रभवेद्यदि ॥ शोफोदरेषु सर्वेषु कार्य्यश्चात्र विरेचनम् ॥ ५६ ॥ शोफातिसारसंयुक्तो हन्तिगुल्मोदरो नरम् ॥ तस्य क्षारोदकपानं बृहद्धिङ्ग्वादिचूर्णकम् ॥५७॥

अजमोदादिकं वापि शोफातिसारशान्तये ॥ वमिश्चैवातिसारश्च गुल्मरोगेषु यद्यपि ॥ ५८ ॥ तेन साध्यं विजानीयात्प्रत्याख्येया क्रिया हिता ॥ गुडदाडिमपथ्यां च मधुना सहितां पिबेत्॥५९॥ वमिश्च वातिसारं च वारं वारं प्रयोजयेत् ॥ सर्वलक्षणसंयुक्तं गुल्मं तत्सान्निपातिकम् ॥ ६० ॥ तोदोऽरतिर्विवर्णत्वं मूर्च्छातीसारसंयुतम् ॥ वमिः क्लेदश्च तन्द्रा च तदसाध्यं त्रिदोषजम् ॥ ६१ ॥

संग्रहणी गुल्ममें कहीहुई जो क्रियाहों वह यहां करनी चाहिये और सबप्रकारके उदररोगोंमें जुलाब दिवानी चाहिये ॥ ५६ ॥ और शोजा, अतिसार, इन्होंसे संयुक्त गुल्मोदर मनुष्योंको मार देता है तिसको बृहत् हिंग्वादि चूर्णके संग क्षारोदक पान कराना चाहिये ॥ ५७॥ अथवा अजमोदआदिक चूर्णको शोजाकी शांतिके वास्ते देवै, गुल्मोदर रोगोंमें वमनहो और अतिसार हो ॥ ५८ ॥ जो साध्य जानना तिसकी संपूर्ण क्रिया करनी हित कही है और गुड, अनारदाना, हरडै, इन्होंको शहदके संग पीवे ॥ ५९ ॥ वमन अतिसार इन्होंको वारंवार करवावै और जो सब लक्षणोंसे युक्तहो वह सन्निपातसे उपजा गुल्म जानना ॥६०॥ चभकाहो, ग्लानिहो, विवर्णहो, मूर्च्छाहो, अतिसारहो, वमनहो, गीलापनहो, आलस्यहो, वह त्रिदोषसे उपजा गुल्मरोग असाध्य जानना ॥ ६१ ॥

अथ शोथचिकित्सा।

शृणु पुत्र महाप्राज्ञ एकाग्रमनसाधुना ॥ शोफोद्धारक्रियां नृणां वक्ष्यते च विजानता ॥ ६२ ॥ त्रिवृत् तथाचेक्षुगुडेन युक्ता अनन्तरं कोष्णजलेन पीता ॥ तस्मान्निहन्त्योदरकं सशोफं पित्तात्मकं वा विजहाति पुंसाम् ॥ ६३ ॥ हरीतकी च त्रिवृता च शुण्ठी गुडेन युक्ता त्वथ हन्ति शोफम् ॥ द्विपञ्चमूलं क्वथितं सुखोष्णमेरण्डतैलेन जहाति शोफम् ॥ ६४ ॥ गोमूत्रयुक्तं वरुणस्य तैलं पाने हितं नाशयते च शोफम् ॥ ६५ ॥

हे पुत्र ! अब एकाग्र मन करके सुन मनुष्योंके शोजाको दूर करनेवाली क्रियाको कहते हैं ॥ ६२ ॥ निशोतको ईखके गुडके संग खावे पीछे गरम जल पीवे तिस्से शोजासहित उदररोगका नाश होता है और तिस्से उपजा गुल्मरोगभी शांत होता है ॥ ६३ ॥ और

हरडै, निशोत, सूंठ, इन्होंको गुडमें मिला खानेसे शोजाका नाश होता है और दशमूलके गरम २ क्वाथको अरंडीके तेलके संग पीनेसे शोजाका नाश होता है ॥ ६४ ॥ और वरणाका तेल गोमूत्रके संग पीना हित है तथा शोजाको नाशता है ॥ ६५ ॥

अथ शोथरोगमें वर्ज्य ।

ग्राम्यानूपं पिशितलवणञ्च शुष्कशाकं नवान्नं गौडं पिष्टान्नं सदधिकृशरञ्च विजलं मद्यमन्नम् ॥ धान्यं वल्लूरं शोफकरणमथ गुर्वसात्म्यं विदाहिस्वप्नं वापि रात्रौ श्वयथुगदवान् वर्जयेन्मैथुनञ्च ॥ ६६ ॥ लेपोऽरुष्करस्यशोफं हन्ति तिलदुग्धमधुकनवनीतैः ॥ तत्तरुतलमृद्भिर्वा सकदलैर्वापिसाविरणैः ॥ ६७ ॥ शोफे विषनिमित्ते तु विषोक्ता शमनक्रिया ॥ लङ्घनं दीपनं स्निग्धमुष्ण वातानुलालनम् ॥ ६८ ॥ बृंहणं तु भवेदन्नं तद्विषं सर्वगुलिमनाम् ॥ वल्लूरं मूलकं मत्स्याञ्छुष्कशाकादि वैदलम् ॥ ६९ ॥ न खादेद्वालुकं गुल्मी मधुराणि समानि च ॥ ७० ॥

और गाममें रहनेवाला श्वान आदिजीव अनूपदेशके जीव इन्होंका मांस, नमक, सूखा-शाक, नवीन अन्न, गुडका भोजन, पीठीका भोजन, दही, खीचडी, जलसे रहित सूखा अन्न, मदिराका अन्न, सूखा धान्य, सूखा मांस, शोजा करनेवाला पदार्थ, भारी, प्रकृतिसे रहित और विदाही पदार्थ, रात्रिमें भी सोना, मैथुन, इन्होंको शोजावाला पुरुष त्याग देवै ॥ ६६ ॥ और भिलावा, तिल, मुलहटी इन्होंको दूधमें पीस नोनी घृत मिला लेप करनेसे शोजाका नाश होता है अथवा भिलावाके वृक्षकी जडकी माटी, वांसाके पत्ते नेत्रवाला इन्होंका लेप करनेसे शोजाका नाश होता है ॥ ६७ ॥ और विषसे उपजे हुए शोजेमें विषोंको शांत करनेवाली चिकित्सा करै, लंघन, दीपन, स्निग्ध, अर्थात् तेल आदि गरम वातको संचालन करना ॥ ६८ ॥ बृंहण पदार्थ, ऐसा अन्न सब गुल्म रोगवालोंको विषके समान है और सूखामांस, मूली, मच्छी, सूखाशाख, वैदल ॥ ६९ ॥ और आलुकादिकंद मधुर पदार्थ इन्होंको गुल्म रोगवाला पुरुष नहीं खावे ॥ ७० ॥

अथ रक्तगुल्ममें पाचन ।

सरक्तगुल्मे न तु पाचनं तु न हिङ्गुपानं कटिचालनं च ॥ न चैव संस्वेदनमर्दनञ्च न चक्रमं नोत्प्लवनं हितं च ॥ ७१ ॥ रोध्रार्जुनं खदिरमागधिकासमङ्गक्काथोऽम्लवेतसमधुघृतसंप्रयुक्तः ॥ गुल्मं सरक्तमपि चाथ निहन्ति चाशु हृत्क्लेदनं च विनिहन्ति च कुद्धरक्तम् ॥ ७२ ॥

और रक्तसहित गुल्मरोगमें पाचन औषध नहीं देवै और हिंगुआदि औषध पान, कटि मसलना, पसीने दिवाने, मालिस करनी, ऊपरको लफना, कूदना ये हित नहीं हैं ॥ ७१ ॥ और लोध, अर्जुन वृक्ष, खैर, पीपली, मँजीठ, अम्लवेत, इन्होंका क्वाथ बना शहद और घृत मिला खानेसे रक्तसहित गुल्मका शीघ्रही नाश होता है और हृदयकी पीडा, अत्यंत रक्तरोग इन्होंका नाश होता है ॥ ७२ ॥

अथ रक्तगुल्ममें पथ्य ।

क्षीरपानं प्रदातव्यं घृतसौवर्चलान्वितम् ॥ रक्तगुल्मविनाशायं यकृद्धिक्षतजेऽपिवा ॥७३॥ न च हिङ्गुयुतं पथ्यं न चोष्णं न विदाहि च ॥ रक्तजे क्षतजे गुल्मे मांसानि जाङ्गलानि च ॥ ७४ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने गुल्मचिकित्सा नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

और रक्तके गुल्मके नाशकेवास्ते तथा यकृत् भंगसे उपजे गुल्मके नाशकेवास्ते घृत कालानमक इन्होंसे युक्त दूधको पीनां चाहिये ॥ ७३ ॥ तहां हिंगुसंयुक्त औषध और गरम तथा विदाही पदार्थ हित नहीं है और रक्तसे उपजा तथा चोटसे उपजा गुल्ममें जांगल देशके जीवोंका मांस हित नहीं है ॥ ७४ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने गुल्मचिकित्सानाम षड्विंशोऽध्यायः २६

सप्तविंशोऽध्यायः २७.

अथ जलोदरका निदान तथा लक्षण ।

आत्रेय उवाच ॥ विषमासनोपवेशात्पीततोयादथापिवा ॥ श्रमाध्वश्वासनिष्क्रान्ते अतिव्यायामितेऽपि या ॥ पीतं तूदरमेवं च तस्माज्जातं जलोदरम् ॥१॥ उदरं सजलं यस्य सघोषमतिवर्द्धितः श्वयथुः पादयोः शोपो जलोदरस्य लक्षणम् ॥ २॥

विषम आसनपै बैठनेसे, ज्यादै जलपीनेसे श्रम, मार्ग, इन्होंकी पीडा होनेसे अथवा अत्यंत कसरत करनेसे पीला उदर होजाता है इन्होंसे जलोदर संज्ञक रोग होजाता है ॥ १ ॥ जिसका उदर जलसहित दीखे शब्दहो और अत्यंत बढजावे पैरोंमें शोजाहो यह जलोदरका लक्षण है ॥ २ ॥

अथ जलोदररोगकी चिकित्सा।

विरेकं वमनं कुर्य्यात्पाचनानि च कारयेत् ॥ क्षारयोगश्च वटकस्तेन तदुपशाम्यति ॥ ३ ॥ तस्मान्नाभेर्वलीभागे वर्जित्वाङ्गुलमात्रकम् ॥ जलनाडी चानुमान्य कुशमात्रेण वेष्टयेत् ॥४॥ एरण्डजलनालं च तत्र सञ्चारयेद्बुधः ॥ अन्तर्गतं जलं स्राव्यं ततः संधारयेद्द्रुतम् ॥ ५ ॥ यदा न धरते तच्च तदा दाहः प्रशस्यते ॥ कणकल्कं परिस्राव्य घृतं देयं चतुर्गुणम् ॥ ६ ॥ शुण्ठीविषासमं पाच्य पानमालेपनं हितम् ॥ शस्त्रकर्म भिषक्छ्रेष्ठो विज्ञातैनैव कारयेत् ॥ ७ ॥ दुष्करं शस्त्रकर्मैव न कुर्याद्यत्र तत्र तु ॥ अक्रियायां ध्रुवो मृत्युः क्रियायां संशयो भवेत् ॥ ८ ॥ तस्मादवश्यं कर्त्तव्यमीश्वरं साक्षिकारिणा ॥ ९ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने जलोदरचिकित्सा नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

इस रोगमें जुलाब, वमन, पाचन औषध, इन्होंको करवावै और क्षार योग, गोलीआदिक इन्होंसे यह रोग शान्त होता है ॥ ३ ॥ इसरोगमें नाभिके वलीभागसे एक अंगुल मात्र जगह वर्जके जलकी नाडीका अनुमान जानके कुशासे बांध देवै ॥ ४ ॥ पीछे बुद्धिमान जन तहां अरंडीके जलकी नालीको प्रयुक्त करै भीतरको प्राप्त हुवे सब जलको झिरादेवै पीछे शीघ्र बंद करदेवै ॥ ५ ॥ और जो इसप्रकार करनेसे तहां आराम नहीं होवे तो दाह करना श्रेष्ठ कहा है गेहुओंके कणीके चूनको छान तिसमें चौगुना घृत मिला ॥६॥ सूंठ अतीश, इन्होंको चूनके समान भाग मिला पकालेवे पीछे इसका पीना और लेप करना हित है और उत्तम वैद्यको अच्छी तरह जानें विना शस्त्रकर्म नहीं करना चाहिये ॥ ७ ॥ शस्त्रकर्म अत्यंत दुष्कर है इसवास्ते जहां तहां सब जगह नहीं करना चाहिये अन्यथा चिकित्सा होनेमें निश्चय मृत्यु होजाती है यथार्थ चिकित्सा करनेमेंभी सन्देह रहता है ॥ ८ ॥ इसवास्ते अवश्य ईश्वरको साक्षी करके कर्म करना चाहिये ॥ ९ ॥ ॥ इति हारीतसंहिताभाषाटीकायां जलोदरचिकित्सानामसप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशोऽध्यायः २८.

अथ प्रमेहचिकित्सा।

आत्रेय उवाच ॥ विंशत्येवं प्रमेहास्तु नराणामिह लक्षणम् ॥१॥ श्रमाद्व्यवायाच्च तथैव धर्मविरुद्धतीक्ष्णोष्णविभोजनेन ॥ मद्येन

वा क्षीरकटुप्रसेवनान्मेहप्रसूतिः कथिता मुनीन्द्रैः ॥ २ ॥ जलप्रमेहो रुधिरप्रमेहः पूयप्रमेहो लवणप्रमेहः ॥ तक्रप्रमेहः खटिकाप्रमेहः शुक्रप्रमेहः कथितः पुरस्तात् ॥ ३ ॥ स्याच्छर्करामेहोवसाप्रमेहो रसप्रमेहोऽन्यघृतप्रमेहः ॥ पित्तप्रमेही कफमेहिनश्च मधुप्रमेहीति विभावयेच्च ॥ ४ ॥ यथा च नामानि तथैव लक्षणं बलक्षयं वापि नरस्य देहे ॥ कुर्वन्ति शीघ्रं भिषजां वरिष्ठाः कुर्य्यात्क्रियाश्च शमनाय हेतुम् ॥ ५ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—मनुष्योंके वीस प्रकारके प्रमेह रोग होते हैं ॥ १ ॥ श्रम करनेसे, घाम, तीक्ष्ण विरुद्ध भोजन इन्होंसे मदिरा, दूध, चर्चरा, इन वस्तुओंके सेवनेसे मुनिजनोंने प्रमेह रोगकी उत्पत्ति कही है ॥ २ ॥ जलप्रमेह १ रुधिर प्रमेह २ पूयप्रमेह ३ लवण प्रमेह ४ तक्र प्रमेह ५ खटिका प्रमेह ६ शुक्र प्रमेह ७ ॥ ३ ॥ शर्करा प्रमेह ८ वसा प्रमेह ९ रस प्रमेह १० घृत प्रमेह ११ पित्त प्रमेह १२ कफ प्रमेह १३ मधु प्रमेह इस प्रकारसे हैं ॥ ४ ॥ जैसें इन्होंके नाम हैं वैसेही लक्षण हैं ये प्रमेहरोग मनुष्यके देहमें बलका क्षय कर देते हैं इसवास्ते इसरोगके नाशके वास्ते शीघ्रही उत्तमवैद्यको चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ५ ॥

अथ प्रमेहचिकित्सा ।

धवार्जुनं चन्दनशालछल्लीक्काथो हितः स्याच्च जलप्रमेहे ॥ रक्तप्रमेहे शिशिरं पयश्च द्राक्षान्वितं यष्टिकचन्दनेन ॥ ६ ॥ स्त्रीसेवनं चाल्पतरश्च पूयमेहे हितः क्वाथो धवार्जुनस्य ॥ दूर्वाकसेरुकदलीनलिन्या लवणस्य मेहे च कषाय उक्तः ॥ ७ ॥ कदम्बशालार्जुनदीप्यकानां विडङ्गदार्वीधवशल्लकीनाम् ॥ सर्वे तथैते मधुना कषायाः कफप्रमेहेषु निषेवणीयाः ॥ ८ ॥ रोध्रार्जुनः शीरमारिष्टपत्रात्तत्रैव धात्रीफलचन्दनानि ॥ तक्रप्रमेहे खटिकाप्रमेहे देयो हितः क्वाथगुडावटश्च ॥ ९ ॥ दूर्वा च मूर्वा कुशकाशमूलं दन्ती समङ्गा सह शाल्मली च ॥ शुक्रप्रमेहे क्वथितं जलेन पानं हितं वा रुधिरप्रमेहे ॥ १० ॥ फलत्रिकारग्वधमूलमूर्वाशोभाञ्जनारिष्टदलानि मोचा ॥ द्राक्षायुतो वा क्वथितः कषायः सर्पिः-

प्रमेहस्य निवारणाय ॥ ११ ॥ कुष्ठं तथा पर्पटकं च तिक्ता सिता प्रगाढं क्वथितः कषायः ॥ मूर्वारिकापाटलिकानियुक्तो दुरालभाकिंशुकटुण्टुकानाम् ॥ [1]रसप्रमेहे च सदा हितः स्यात् ॥ ॥ १२ ॥ नीलोत्पलार्जुनकलिङ्गधवाम्लिकानां धात्रीफलानि पिचुमन्ददलानि तोये ॥ निष्काथ्य शर्करयुते मनुजस्य पाने पित्तप्रमेहशमनाय वदन्ति धीराः ॥ १३ ॥ विडङ्गसर्जार्जुन कफलानां कदम्बरोध्राशनवृक्षकाणाम् ॥ जलेन क्वाथश्च हितो नराणां कफप्रमेहं विनिहन्ति तेषाम् ॥ १४ ॥ मुस्ता फलत्रिक- निशा सुरदारु मूर्वा इन्द्रा च रोध्रसलिलेन कृतः कषायः ॥ पाने हितः सकलमेहभवे गदे च मूत्रग्रहेषु सकलेषु वियोजनीयः ॥ १५ ॥ यच्चाभयालोहरजोनिकुम्भचूर्णं हितं शर्करया समेतम् ॥ फलत्रिकाया मधुना च लेहं सर्वप्रमेहेषु हितं वदन्ति ॥ १६ ॥ मधुमेहे प्रयोक्तव्यं घृतपानं सुधीमता ॥ क्षीरं वा शर्करायुक्तं क्वाथो वा गुटिकानि च ॥ १७॥ न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थ प्लक्षारग्व- धटुण्टुकम् ॥ पियालं कुकुभं जम्बूकपित्थाम्रातकानि च ॥१८॥ मधुकं यष्टिमधुकं रोध्रं वै पारिभद्रकम् ॥ पटोलं चारिणी चैव दन्ती मेषविषाणिका ॥ १९ ॥ चित्रकं च करञ्जश्च शक्राह्वं त्रिफलायुतम् ॥ भल्लातकानाञ्च समं त्रिगन्धं कटुकत्रयम् ॥ ॥ २० ॥ सूक्ष्मचूर्णं प्रदातव्यं न्यग्रोधाद्यं गुणाधिकम् ॥ मधुना संयुतं लेह्यं हन्याच्च मधुमेहकम् ॥ २१ ॥ क्वाथो वा तैलपाको वा घृतपाकोऽथवापि च ॥ पानाभ्यङ्गे प्रशस्तः स्याद्धन्ति वै मूत्रजं गदम् ॥ २२ ॥ न्यग्रोधाद्यमिदं चूर्णं पेयं वा क्षीरसंयुतम् ॥ मधुमेहेतु नान्योऽस्ति यथालाभेन योजितः ॥ २३ ॥ माक्षीकं धातुमाक्षिकं शिलोद्भेदं शिलाजतु ॥ चन्दनं रक्तधातुश्च तथा

१ अयमेकश्चरणोऽधिकोऽस्ति.

कपूरकं कणाः ॥ २४ ॥ वंशरोचनकं चैव क्षीरेण सहितं पिबेत्॥ मधुप्रमेहं हरति मूत्ररोगाद्विमुच्यते ॥ २५ ॥

धव, अर्जुन वृक्ष, चन्दन, शालवृक्ष इन्होंकी छाल इन्होंका काथ बना पीना जलप्रमेहमें हित है और रक्त प्रमेहमें दाख, मुलहटी, चन्दन इन्होंसे युक्त ठंढा दूध पीना हित है ॥ ६ ॥ और मैथुन स्वल्प करना, धव, अर्जुनवृक्ष इन्होंका काथ पीना पूयप्रमेहमें हित है और दूब, कसेरु, केला, कमलिनी, इन्होंका काथ लवण प्रमेहमें हित है ॥ ७ ॥ कदंब, अर्जुनवृक्ष, शाल, अजमोद, वायविडंग, दारुहलदी, धव, शल्लकीवृक्ष, इन्होंका काथ शहदके संग पीना कफप्रमेहमें हित है ॥ ८ ॥ लोध, अर्जुनवृक्ष, दूध, नींबके पत्ते, आंवला, चन्दन, इन्होंका काथ अथवा गुडमें मिलाके गोली देना तक्रप्रमेह, खटिका प्रमेह, इन्होंमें हित है ॥ ९ ॥ और दूब, मूर्वा, कुशा, कांस, इन्होंकी जड, जमालगोटाकी जड, मँजीठ, शालवन इन्होंका काथ बनाके पीना शुक्रप्रमेहमें और रुधिर प्रमेहमें हित है ॥ १० ॥ त्रिफला, अमलतासकी जड, मूर्वा, संहींजना, नींबके पत्ते, मोचरस, दाख इन्होंका काथ पीनेसे घृत प्रमेहका निवारण होता है ॥ ११ ॥ और कूठ, पित्तपापडा, कुटकी, मिश्री, इन्होंका अच्छीतरह काथ बना पीना अथवा मूर्वा, खैर, पाडलवृक्ष, जवासा, केशू, टेंटूवृक्ष, इन्होंका काथ पीना रस प्रमेहमें सदा हित है ॥ १२ ॥ नीला कमल, अर्जुनवृक्ष, इंद्रजव, धव, अमली, आंवला, नींबके पत्ते, इन्होंका काथ बना तिसमें खांड मिला मनुष्यको पीनेसे पित्तप्रमेह शांत होता है ऐसे वैद्यजन कहते हैं ॥ १३ ॥ वायविडंग, रालवृक्ष, अर्जुनवृक्ष, त्रिफला, कदंब, लोध, आसना इन्होंका काथ बना पीनेसे कफप्रमेहका नाश होता है ॥ १४ ॥ और नागरमोथा, त्रिफला, हलदी, देवदार, मूर्वा, इंद्रायण, इन्होंका काथ बना पीनेसे सबप्रकारके प्रमेह रोग और मूत्र-ग्रह अर्थात् मूत्र बंद होना ये दूर होते हैं ॥ १५ ॥ और हरडै, लोहाकी रज, जमालगो-टाकी जड इन्होंका चूर्ण बना खांडके संग खानेसे अथवा त्रिफलाके चूर्णको शहदमें मिला लेह बना चाटनेसे सबप्रकारके प्रमेहरोग दूर होते हैं ॥ १६ ॥ और वैद्यजनको मधुप्रमेहमें घृतका पान कराना चाहिये और खांडसे युक्त दूधके काथका पान करावे तथा गोली देवै ॥ १७ ॥ वड, गूलर, पीपल, पिलखन, अमलतास, टेंटूवृक्ष, चिरौंजीका वृक्ष, अर्जुन-वृक्ष, जामन, कैथ, अंबाडा वृक्ष ॥ १८ ॥ महुआ वृक्ष, मुलहटी, लोध, [illegible], परवल, अरणी, जमालगोटाकी जड, मेंढासींगी ॥ १९ ॥ चीता, करंज वृक्ष, देवदार, त्रिफला, भिलावे, त्रिगंध, दालचीनी, तेजपात, इलायची, सूंठ, मिर्च, पीपल ॥ २० ॥ इन सब औषधोंका चूर्ण बना शहदमें मिला लेह बना खानेसे मधुप्रमेहका नाश होता है ॥ २१ ॥ अथवा इन औषधोंका काथ तथा तैलपाक अथवा घृतपाक बनाके पीनेमें और मालिस कर-नेमें हित कहा है और सबप्रकारके मूत्ररोगोंको नाशता है ॥ २२ ॥ वडआदि औषधोंका यह चूर्ण दूधके संग पीना हित है मधु प्रमेहमें इसके समान औषध नहीं है इसमें कहीहुई जितनी औषध मिले उतनीही मिलादेवै ॥ २३ ॥ और शहद, सोनामाखी, पाषाणभेद,

शिलाजीत, चंदन, गेरू, कपूर, पीपल ॥ २४ ॥ वंशलोचन, इन्होंके चूर्णको दूधके संग पीवे यह मधुप्रमेहको नाशता है और संपूर्ण मूत्ररोगोंको दूर करता है ॥ २५ ॥

अथ प्रमेह पिटिकाकी चिकित्सा।

प्रमेहपिटिकानाञ्च वक्ष्यामोऽथ चिकित्सितम् ॥ धवार्जुनकदम्बानां बदरी खदिरशिंशपे ॥ पारिभद्रकमेतेषां मेहनस्य प्रधावनम् ॥ २६ ॥ अर्जुनस्य कदम्बस्य ठिण्टुकी वान्तरत्वचा ॥ पाके पूयविशोधार्थं मेहनस्य प्रशस्यते ॥ २७ ॥ भृङ्गराजरसं गृह्य तथाच सुरसादलम् ॥ निष्पावकपटोलानां पत्राणि काञ्जिकेन तु ॥ २८ ॥ पिष्ट्वा वातपिटिकानां लेपनं मेहनस्य च ॥२९॥ यष्टीमधु तथा कुष्ठं चन्दनं रक्तचन्दनम् ॥ उशीरं कत्तृणं चैव रक्तधातुमृणालकम् ॥ ३० ॥ क्षीरमण्डकसंयुक्तं यथालाभं भिषग्वर ॥ लेपनं पित्तरक्तानां मेहदाहः प्रशाम्यति ॥ ३१ ॥ धावनं शीतपयसा नवनीतेन मर्दनम् ॥ कणं कदम्बार्जुनपिण्याकपत्राणि दाडिमस्य च ॥ ३२ ॥ खदिरस्य दलानां तु तथा चामलकीदलान् ॥ उष्णेन वारिणा पिष्ट्वा सोमपाके च मेहने ॥३३॥ त्रिफलायाश्च वा चूर्णं शुष्कपूयनिवारणम् ॥ धावनं काञ्जिकेनाथ तक्रेणाथ तुषाम्बुना ॥ ३४ ॥ अतिशीतेन तोयेन मेहपाके च धावनम् ॥

अब प्रमेहकी पिडिकाओंकी चिकित्साको कहते हैं धव, अर्जुनवृक्ष, कदंब, बेर, खैर, सीसम, नींब इन्होंकी छालके क्काथसे प्रमेहरोगकी पीडिकाओंको धोवै ॥ २६ ॥ और अर्जुनवृक्ष, कदंब, टेटूवृक्ष, इन्होंकी भीतरकी बक्कलके क्काथसे, पकीहुई पिडिकाओंकी राधको शोधनेकेवास्ते धोवै ॥ २७ ॥ और भंगरेका रस, तुलसीके पत्तोंका रस, मोठ, परवल इन्होंके पत्ते इन्होंको कांजीमें और तिस रसमें ॥ २८ ॥ पीस वातसे उपजी हुई प्रमेहकी पीडिकाओंपै लेप करै ॥ २९ ॥ और मुलहटी, कूठ, चंदन, लाल चंदन, खश, रोहिसतृण, गेरू, कमलकी नाली ॥ ३० ॥ इन्होंको जितनी औषध मिलें उन्होंहीको दूधमें तथा चावलोंके मांडमें पीसके लेप करनेसे शिश्नका दाह शांत होता है ॥ ३१ ॥ तथा चावलोंके धोवनके ठंढे पानीमें वा नौंनी घृतमें पीस और गेहूंके कणका रस कदंबवृक्ष, तिलोंका वृक्ष इन्होंके पत्ते और अनार ॥ ३२ ॥ खैर, आंवला, इन्होंके पत्ते इन्होंको गरम जलमें पीस

सोमपाक प्रमेहरोगमें देवै ॥ ३३ ॥ और त्रिफलाका चूर्ण शुष्कपूय प्रमेहका निवारण करता है अथवा कांजी तक्र शीतल जल इन्होंसे इंद्रियका धोना हित है ॥ ३४ ॥ और प्रमेह पाकमें अत्यंत ठंढे जलसे इंद्रियका धोना श्रेष्ठ है ॥

अथ प्रमेहमें पथ्यापथ्य।

रक्तशालिश्च षाष्टीकश्चाढकी वा कुलत्थकः ॥ ३५ ॥ घृतं च मधुरं किञ्चिद्भोजनार्थे विधीयते ॥ क्षाराम्लकटुकं वापि दिवा स्वप्नं विशेषतः ॥ ३६ ॥ स्त्रीदर्शनं व्यवायश्च तथाचात्यशनं तथा ॥ चलनं धावनं चेति तथा मूत्रविरोधनम् ॥ ३७ ॥ वस्त्रवातं रक्तवस्त्रं वर्जयेद्भिषजां वरः ॥ एकान्ते गृहमध्ये च गानस्त्रीबालकं रमः ॥ ३८ ॥ न चाभरणताम्बूलं कोपशोषं जहाति च ॥ दूरे चैतानि वर्जेत्तु यदीच्छेत्सुखसम्पदः ॥ ३९ ॥

और लाल चावल, सांठी चावल, कुलथी ॥ ३५ ॥ घृत, किंचित् मधुर अन्न, इन्होंको भोजनके वास्ते देवै और खारा, खट्टा, चर्चरा पदार्थ, दिनमें सोना इन्होंको विशेष करके वर्ज देवै ॥ ३६ ॥ स्त्रीका दर्शन, मैथुन, ज्यादै भोजनकरना, मार्गमें चलना, भाजना, मूत्रका रोकना, ॥ ३७ ॥ वस्त्रसे वायु करना, रक्तवस्त्र पहिरना इन्होंको वैद्यजन इस रोगमें वर्ज देवै एकांतमें घरके मध्यमें गाना स्त्री बालक इन्होंके संग प्यार करना ॥ ३८ ॥ आभूषण पहिरना, पान चाबना, क्रोध करना इन्होंको इसरोगमें दूरसेही त्यागदेवै त° सुख होता है ॥ ३९ ॥

पीतप्रमेहपर हरिद्रादिक्काथ।

हरिद्राद्वितयं शुण्ठी विडङ्गानि हरीतकी ॥ कफप्रमेहे विहितः क्काथोऽयं मधुना सह ॥ ४० ॥ नीलोत्पलमुशीरञ्च पथ्यामलकमुस्तकम् ॥ पिबेत्पीतप्रमेहार्त्तः क्काथं मधुविमिश्रितम् ॥ ४१ ॥

और दोनों हलदी, सूंठ, वायविडंग, हरडै इन्होंका क्काथ शहदके संग पीना कफप्रमेहमें श्रेष्ठ कहा है ॥ ४० ॥ नीलाकमल, खश, हरडै, आंवला, नागरमोथा इन्होंका क्काथ शहदके संग पीनेसे पीतप्रमेहका नाश होता है ॥ ४१ ॥

अथ पित्तप्रमेहपर कमलादिक्काथ।

कमलञ्च तथा रोध्रमुशीरमर्जुनान्वितम् ॥
पित्तप्रमेहे विहितः क्काथोऽयं मधुना सह ॥ ४२ ॥

और कमल, लोध, खश, अर्जुनवृक्ष, इन्होंका काथ शहदके संग पीना पित्त प्रमेहमें हित कहा है ॥ ४२ ॥

अथ आमलक्यादिचूर्ण ।

आमलकस्य स्वरसं मधुना च विमिश्रितम् ॥
हरीतक्याश्च चूर्णं वा सर्वमेहनिवारणम् ॥ ४३ ॥

और आंवलोंके रसमें शहद मिला अथवा हरडेके चूर्णमें शहद मिला खानेसे सब प्रकारके प्रमेहरोगोंका नाश होता है ॥ ४३ ॥

अथ खदिरादि चूर्ण ।

खदिरं शर्करा दारु हरिद्रा मुस्तमेव च ॥
चूर्णितं तु पिबेत् सर्वप्रमेहगदशान्तये ॥ ४४ ॥

और खैर, खांड, देवदारु, हलदी, नागरमोथा इन्होंके चूर्णको पीनेसे सब प्रमेहरोग शांत होते हैं ॥ ४४ ॥

अथ कुष्ठादि चूर्ण ।

कुष्ठं हरिद्राद्वयदेवदारु पाठा गुडूची त्रिफला च मुस्तम् ॥ एषां हि चूर्णं मधुना विमिश्रं मूत्रप्रमेहं हरते व्यथाञ्च ॥ ४५ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने प्रमेहचिकित्सा नाम अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

और कूठ, दोनों हलदी, देवदार, पाठा, गिलोय, त्रिफला, नागरमोथा इन्होंके चूर्णको शहदके संग पीनेसे सब मूत्रप्रमेहरोग और पीडा इन्होंका नाश होता है ॥ ४५ ॥

इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थानेप्रमेहचिकित्सानाम अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशोऽध्यायः २९.

अथ मूत्रकृच्छ्रचिकित्सा ।

आत्रेय उवाच ॥ एलाशिलाजतुयुतं मागधिकापाषाणभेदसंचूर्णम् ॥ तण्डुलजलेन पीतं प्रमेहरोगं हरत्येव ॥ १ ॥ एरण्डमूलपाषाणभेदगोक्षुरकास्तथा ॥ एलाटरूषपिप्पल्यो यष्टीमधुसमन्विताः ॥२ ॥ एषां क्वाथं पिबेज्जन्तुः शिलादित्येन योजितम् ॥

अश्मरीशर्करायाश्च शर्करायाः पलद्वयम् ॥ ३ ॥ सुशीतलं जलं कर्षमात्रं स्यान्मूत्रकृच्छ्रहृत् ॥ दध्यम्बुना च संमिश्रमयश्चूर्णं सुखप्रदम् ॥ ४ ॥ मूत्रकृच्छ्रेयवक्षारचूर्णं हिङ्गुप्रयोजितम् ॥ कूष्माण्डं च समादाय शर्करासहितं पिबेत् ॥ ५ ॥ यो हि त्रिदोषसम्भूतमूत्रकृच्छ्रनिवारणः ॥ पिबेच्छतावरीमूलं शीतपानीयचूर्णितम् ॥ ६ ॥ अतः शर्करारोगार्त्तें शर्करां संप्रयोजयेत् ॥ आरग्वधफलं मूलं दुरालभा धान्यकशतावर्य्यः ॥ ७ ॥ पाषाणभेदपथ्ये क्वाथोऽयं मूत्रकृच्छ्रे स्यात् ॥ ८ ॥ पाषाणभेदास्त्रिवृता च पथ्या दुरालभा गोक्षुरपुष्करं वा ॥ एला सकुरुण्टककर्कटीजं बीजं कषायः सुनिरुद्धमूत्रे ॥ ९ ॥ कुलत्थयुक्तः पटोलीमूलकषायः प्रतिपाकः ॥ पुष्करमूलामिश्रः प्रमेहपाषाणरोगघ्नः स्यात् ॥ १० ॥ यो मातुलुङ्गिकामूलं पिबेत् पर्य्युषिताम्बुना ॥ तस्यान्तः शर्करोद्भूतं दुःखं सद्यो विलीयते ॥ ११ ॥ गवां तक्रेण संपिष्टं क्षिप्रनामकमौषधम् ॥ पिबेच्चिरेण तक्रञ्च शर्करादोषदूषितः ॥ १२ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने मूत्रकृच्छ्रचिकित्सा नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

आत्रेयजी कहते हैं–इलायची, शिलाजीत, पीपल, पाषाणभेद, इन्होंके चूर्णको चावलोंके धोवनके जलके संग पीनेसे प्रमेह रोगका नाश होता है ॥ १ ॥ और अरंडकी जड, पाषाणभेद, गोखरू, इलायची, वांसा, पीपली, मुलहटी इन्होंका क्वाथ बना तिसमें शिलाजीत मिला पीनेसे मूत्रकृच्छ्र दूर होता है ॥ २ ॥ और पथरीरोग, शर्करारोग, इन्होंमें ८ तोलाप्रमाण खांड मिला पीना चाहिये ॥ ३ ॥ और एक तोलाप्रमाण ठंढा जल पीनेसे मूत्रकृच्छ्ररोग दूर होता है तथा दहीके पानीसे लोहचूर्णको पानकरे ॥ ४ ॥ और मूत्रकृच्छ्ररोगमें जवाखारका चूर्ण, हींग, कोहला, खांड इन्होंको जलके संग पीवे ॥ ५ ॥ और शीतल जलके संग शतावरीके जडको पीनेसे त्रिदोषसे उपजा मूत्रकृच्छ्र दूर होता है ॥ ६ ॥ और शर्करारोगमें खाँडको पीवे और अमलतास, मूली, जवाँसा, धनियां शतावरी ॥ ७ ॥ पाषाणभेद, हरडै इन्होंका क्वाथ पीनेसे मूत्रकृच्छ्ररोग दूर होता है ॥ ८ ॥ और पाषाणभेद, निशोत, हरडै, जवासा, गोखरू, पोहकरमूल, इलायची, कोरंटा, काकडीका बीज, इन्होंका क्वाथ मूत्रबंधमें पीना श्रेष्ठ है ॥ ९ ॥ और कुलथी, परवल, मूली, पोहकर मूल इन्होंका क्वाथ

बना पीनेसे प्रमेह, पथरीरोग इन्होंका नाश होता है ॥ १० ॥ और जो पुरुष बिजौराकी जडको बासी जलके संग पीता है वह शर्करारोगसे छूटजाता है ॥ ११ ॥ और गौकी तक्रके संग कायफलको पीस पीनेसे शर्करारोग दूर होता है ॥ १२ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसुनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने मूत्रकृच्छ्रचिकित्सानाम एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

त्रिंशोऽध्यायः ३०.

अथ मूत्ररोधचिकित्सा।

आत्रेय उवाच ॥ पिबेत्कर्कटिकाबीजं त्रिफलासैन्धवान्वितम् ॥ उष्णाम्बुचूर्णितं पीतं मूत्ररोधं शमं नयेत्॥ १ ॥ यस्तिलकाण्डक्षारं दधिमधुसंमिश्रितं पिबेत् ॥ स नरश्च मूत्ररोधं हत्वा सद्यः सुखमाप्नोति ॥ २ ॥ अजाक्षीरेण संमिश्रं जातीमूलं प्रपेषितम्॥ पिबेत्सदाहमूत्रोष्णवेदनाशमनं यतः ॥ ३ ॥ तैलेन पद्मिनीकन्दं पक्वगोमूत्रमिश्रितम् ॥ पिबेन्मूत्रनिरोधे तु सतीव्रवेदनान्विते ॥ ४ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—काकडीके बीज, त्रिफला, सेंधानमक, इन्होंको पीस गरम जलकेसंग पीनेसे मूत्ररोध दूर होता है ॥ १ ॥ और तिलोंकी नालियोंका क्षार, दही, शहद, इन्होंको मिला पीनेसे मूत्ररोध रोग दूर होता है तात्काल सुख होता है ॥ २ ॥ और जायफलको बकरीके दूधमें पीस पीनेसे दाह, गरम मूत्रकी पीडा, इन्होंकी शांति होती है ॥ ३ ॥ और कमलकंदको तेलमें पीस गोमूत्रमें मिला पीनेसे तीव्र पीडासे युक्त मूत्रकृच्छ्ररोग दूर होता है ॥ ४ ॥

अथ मूत्रकृच्छ्रका कारण।

पित्तप्रकोपनैर्द्रव्यैः कट्वम्ललवणैस्तथा ॥ गौरास्त्रीसेवनेनापि रक्तं वापि प्रवर्त्तते ॥ ५ ॥ मद्यपानेन चोष्णेन श्रमव्यायामपीडितैः ॥ पित्तं प्रकोपयेच्छीघ्रं करोति मूत्रकृच्छ्रकम् ॥ ६ ॥ तेन मूत्रयते कृच्छ्रं चोष्णधारा प्रवर्त्तते ॥ मूत्रस्रोतश्च हरति रक्तं चापि प्रवर्त्तते ॥ तस्य वक्ष्यामि भैषज्यं येन संपद्यते सुखम्॥७॥

और पित्तको कोप करनेवाले द्रव्य चर्चरा, खट्टा, नमक इन्होंके खानेसे और गौरस्त्रीके सेवनेसे इंद्रियमें रक्त प्रवृत्त होजाता है ॥ ५ ॥ और गरम मदिरा पीनेसे, श्रम, कसरत इन्होंकी पीडा होनेसे शीघ्रही पित्त कुपित होजाता है वह मूत्रकृच्छ्र रोगको करदेता है ॥ ६ ॥ तिससे कष्टसे मूत्र उतरे गरम २ धार जावे और मूत्रका वेग बंद होजावे, तथा रक्त गिरने लगे ॥ ७ ॥

अथ मूत्रकृच्छ्रपर उपाय।

यष्टीमधुकमृद्वीकाचन्दनं रक्तचन्दनम्॥ रक्ततण्डुलतोयेन मूत्रकृच्छ्ररुजापहम् ॥ ८ ॥ वटप्ररोहमालासु द्राक्षाशर्करयान्वितः ॥ लेहोऽयं मूत्रकृच्छ्रस्य नाशनो भिषजां वर ॥ ९ ॥ देहोपशमनः प्रोक्तः शीतगाहनकोपतः॥ मूत्रकृच्छ्रे तु तत् प्रोक्तं भोजनं मधुरं हितम् ॥ १० ॥ उत्तानस्य रतौ भङ्गादाहव्यायामजातके ॥ मूत्ररोधे वचा वर्य्या दद्यात्तत्रा निरोधकान् ॥ ११ ॥ अव्यायामे शुभं भोज्ये शीतावगाहिता नरे ॥ एतैस्तु कुपितो वायुर्मूत्रद्वारं प्ररुन्धाति ॥ १२ ॥ श्लेष्मसहितः पापिष्ठ उक्तः कष्टतमो गदः ॥ शृणु तस्य प्रतीकारं कषायं वानुवासनम् ॥ १३ ॥ बस्तिनिरूहक्काथं च मूत्ररोधे हितो विधिः ॥ सर्वसंस्वेदनं चैव स्थानं वक्रमणाविव॥ १४॥ तुरङ्गशकटारोहधावनं च हितं मतम्॥ फलत्रिकं समगुडं क्काथः क्षीररसेन तु ॥ १५ ॥ पानं मूत्रनिरोधेषु पित्ताद्वा लवणाम्लिकम् ॥ पाटला टुण्टुका चैव निम्बगोक्षुरकं तथा॥ १६॥एलात्वक् च तथा पत्रं क्काथस्त्रिफलयान्वितः॥ गुडेन संयुतं पीतं हन्ति मूत्रनिरोधकम् ॥ १७ ॥ दाडिमाम्लयुतं चैव हितं मूत्ररुजां नृणाम् ॥ त्रिफलेक्षुसिताक्काथगुडेन सह सैन्धवम् ॥ १८ ॥ मूत्ररोधं वारयति पथ्या वा गुड संयुता ॥ अथवा तोदनन्नारीमैथुनं च विधेयकम् ॥ १९ ॥ तेन सौख्यं भवेच्छीघ्रं स्त्रीणाञ्च योनिमर्दनम् ॥ २० ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने मूत्ररोधचिकित्सानाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

अब तिसकी औषधोंको कहते हैं जिस्से सुख होवे है—मुलहटी, महुआ, मुनक्कादाख, चन्दन लाल चन्दन ॥ ८ ॥ इन्होंको लाल चावलोंके धोवनके जलमें पीस पीनेसे मूत्रकृच्छ्रकी पीडा दूर होती है । और वडके पत्तोंके अंकुर, दाख, खांड, ये मिला लेह बना खानेसे मूत्रकृच्छ्ररोगका नाश होता है ॥ ९ ॥ और यह लेह देहको शांत करनेवाला है और शीतल जलमें गोता मारनेसे उपजे हुए मूत्रकृच्छ्ररोगमें मधुर भोजन हित कहा है ॥ १० ॥ और मोधा सोवनेसे मैथुनके भंग होनेसे दाह आर कसरतके परिश्रमसे उपजे हुवे मूत्ररोधमें वच, शतावरी इन्होंको देवै ॥ ११ ॥ और कसरत नहीं करना सुन्दर तथा ज्यादै भोजन करना शीतल जलमें गोता मारना, इन्होंसे कुपितहुआ वायु मूत्रद्वारको रोकलेता है ॥ १२ ॥ और अत्यंत कष्टवाला पापवाला यह रोग कफ सहित होता है अब इसरोगका इलाज कहते हैं अनुवासन बस्तिमें क्वाथ वरतना चाहिये ॥ १३ ॥ और मूत्ररोधमें निरूह बस्तिद्वारा क्वाथ देना चाहिये और सब शरीरमें पसीना दिवाना हित है जैसे टेढी मणिमें स्थान दीखता है ऐसेही मूत्ररोध जानना ॥ १४ ॥ और घोडा, गाडी, इन्होंकी असवारीपे चढके भागना हित कहा है और त्रिफला, गुड इन्होंको समान भागले गुड़में क्वाथ बनादेना हित है ॥ १५ ॥ और पित्तसे उपजें मूत्ररोधमें नमक, कांजी इन्होंका पीना हित कहा है और पाडलवृक्ष, टेंटूवृक्ष, नींब, गोखरू ॥ १६ ॥ इलायची, दालचीनी, तेजपात, त्रिफला इन्होंका क्वाथ बना गुडके संग मिला पीनेसे मूत्ररोध दूर होता है ॥ १७ ॥ और अनारदानाकी कांजी पीना मूत्ररोगवाले पुरुषोंको हितहै और त्रिफला, ईख, मिश्री इन्होंका क्वाथ बना गुड, सेंधानमक इन्होंके संग पीनेसे ॥ १८ ॥ अथवा हरडैं गुड इन्होंके खानेसे मूत्ररोधका निवारण होता है अथवा इंद्रियोंको मलना अथवा स्त्रीके संग मूत्र आनेकेसमय विषय करना श्रेष्ठ है ॥ १९ ॥ और स्त्रीके मूत्र बंध होवे तो उसकी योनि मर्दन करै तो शीघ्रही सुख उत्पन्न होता है ॥ २० ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने मूत्ररोधचिकित्सानाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

एकत्रिंशोऽध्यायः ३१.

अथ अश्मरी अर्थात् पथरी रोगकी चिकित्सा ।

आत्रेय उवाच ॥ पितृमातृकदोषेण अथवा मूत्ररोधनात् ॥ अपथ्यसेवनाचारैर्जायते चाश्मरीगदः ॥ १ ॥ मूत्राविष्टौ च पितरौ सुरतं कुरुतो यदि ॥ मूत्रेण सहितं युक्तं च्यवते गर्भसम्भवम् ॥ ॥ २ ॥ पश्च यस्य सदेहस्य स च तत्र प्रजायते ॥ मूत्रं मूत्रस्य संस्था-

ने करोति बन्धनं त्रिषु ॥ ३ ॥ सोऽप्यसाध्यो मूत्रगदश्चाल्पाद्भवति मानुषे ॥ तारुण्ये चापि साध्यश्च जायते मूत्रशर्करा ॥ ४॥ विपरीतेन चोत्ताने स्त्रिया च पुरुषेण वा ॥ शुक्रश्च प्रबलेत्तस्य स्त्री शुक्रं विचिनोति च ॥ ५ ॥ पुनश्च मेहने वासः वातेन शोणितं च तत् ॥ द्वयं दत्तं प्रपद्येत मूत्रद्वारं प्ररुध्याति ॥ ६ ॥ तेन मूत्रप्ररोधश्च जायते तीव्रवेदना ॥ अण्डसन्धिस्थिता याति शर्करा शस्त्रसाध्यका ॥ ७ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—माता पिताके दोषसे अथवा मूत्रके रोकनेसे पथ्य वस्तुओंके सेवन नहीं करनेसे पथरीरोग होजाता है ॥ १ ॥ मूत्रके वेगसे युक्त हुए माता पिता जब मैथुन करते हैं तब गर्भको उत्पन्न करनेवाला वीर्य मूत्र सहित झिरता है ॥ २ ॥ फिर उस गर्भके शरीरमें वह मूत्र ऊक्षीस्थानमें प्राप्त होजाता है वह मूत्र मूत्रके स्थानमें बंधाकर देता-है ॥ ३ ॥ यह पथरीरोग असाध्य होता है बालकही अवस्थामें यह पैथरी रोग होता है यह तीन प्रकारसे होता है ॥ ४ ॥ और जवान अवस्थामें मूत्रशर्करा रोग होता है वह साध्य होता है स्त्री और पुरुषके विपरीत तथा मोंधेहोके मैथुन करनेसे जो वीर्य झिरता है और स्त्रीका वीर्य इकट्ठा होता है ॥ ५ ॥ वह वीर्यतो मूत्रके संग वासमें युक्त होता है और स्त्रीका रुधिर वातके संग युक्त होजाता है फिर इन दोनुओंके गर्भमें संयुक्त होनेसे मूत्रद्वारा रुक जाता है ॥ ६ ॥ वह जो बालक उत्पन्न होवे उसके मूत्ररोध रोग होवे तीव्र पीडाहो यह अंडसंधिमें शर्करा संज्ञक रोग होजाता है यह (शस्त्रसाध्य होता है) ॥७॥

अथ अश्मरीरोगपर चिकित्सा।

अतो वक्ष्यामि भैषज्यं शृणु पुत्र महामते ॥ शुण्ठी गोक्षुरकं चैव वरुणस्य त्वचस्तथा ॥ ८ ॥ क्वाथो गुडयवक्षारयुक्तश्चाश्मरि नाशनः ॥ कुशकाशनलं वेणु अग्निमन्थाक्षनृत्तकम् ॥ ९ ॥ श्वदंष्ट्रा मोरटा वापि तथा पाषाणभेदकम् ॥ पलाशस्त्रिफलाक्वाथो गुडेन परिमिश्रितः ॥ १० ॥ पाने मूत्राश्मरीं हन्ति शूलबस्तौ व्यपोहति ॥ ११ ॥

हे पुत्र, हे महामते ! अब इन्होंकी औषध कहते हैं सुन—सूंठ, गोखरू, बरणाकी छाल ॥ ८ ॥ गुड, जवाखार इन्होंका क्वाथ बना पीनेसे पथरीका नाश होता है ॥ ९ ॥ और

कुशा, कांस, नड, बांस, अरणी, बहेडा, बेत, गोखरू, मोरबेल, पाषाणभेद ॥ १० ॥ केशू, त्रिफला, इन्होंका क्वाथ बना गुडमें मिला खानेसे पथरीका नाश होता है और बस्तिशूल दूर होता है ॥ ११ ॥

अथ एलादि क्वाथ।

एलाकणावृषत्रिकण्टकरेणुकाचपाषाणभेदमधुकं च फलत्रिकञ्च ॥ एरण्डतैलकशिलाजतुशर्कराद्यं क्वाथोऽश्मरीञ्च हनते तथा सोष्णपानम् ॥ १२ ॥

और इलायची, पीपल, वांसा, दोनों कटेहली, गोखरू, रेणुका, पाषाणभेद, त्रिफला, अरंडीका तेल, शिलाजीत, खांड इन्होंका क्वाथ बना गरम २ पीनेसे पथरी रोग दूर होता है ॥ १२ ॥

अथ गोक्षुरकादि चूर्ण।

गोक्षुरकस्य बीजानां धातुमाक्षिकसंयुतम् ॥
चूर्णं महिषीदुग्धेन पानं चाश्मरीपातनम् ॥ १३ ॥

और गोखरूके बीज, सोनामाखी इन्होंके चूर्णको भैंसके दूधके संग पीनेसे पथरी गिरती है ॥ १३ ॥

अथ अन्य उपाय।

शस्त्रविधिरुत्तरीये सूत्रस्थाने प्रोक्तं घृताध्याये च स्मृतम् ॥१४॥ पुराणषष्टिका शालिरक्ततण्डुलकास्तथा ॥ श्यामाकः कोद्रवो दालो मर्कटी तृणधान्यकम् ॥ १५ ॥ यवगोधूमकुलत्थास्तथा-चैवाढकी भिषक् ॥ वातहराः प्रयोक्तव्या भोजने वातरोगिणाम् ॥ १६ ॥ क्रौञ्चाद्यानि च मांसानि पथ्यान्यश्मरीनाशने॥१७॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने अश्मरीचिकित्सानामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

और उत्तर सूत्रस्थानमें शस्त्रविधि कहदी है तैलाध्यायमें तेल कह दिया है और घृताध्यायमें घृत कह दिया है ॥ १४ ॥ और पुराने सांठी चावल शालिसंज्ञक चावल, लाल चावल, शामक, कोदूधान्य, दाल, क्रौंच, तृणधान्य आदि अन्न ॥ १५ ॥ जव, गेहूं, कुलथी, आढकी धान्य, इन भोजनोंको देवै और वातरोगवाले पुरुषोंको वात नाशक भोजनोंको देवै ॥ १६ ॥ और पथरी रोगके नाशके वास्ते कूंजि आदि पक्षियोंका मांस देना चाहिये॥ १७॥

इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने अश्मरीचिकित्सानामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशोऽध्यायः ३२.

अथ वृषणाचिकित्सा।

आत्रेय उवाच ॥ अत ऊर्ध्वमण्डवृद्धिर्दृश्यते भिषजां वर ॥ बाल्ये मातुः पितुर्दोषाज्जायते वृषणानुगा॥ १ ॥ दुष्टदाराविहाराच्च वातो बस्तिगतो भृशम् ॥ अण्डस्थानं च संप्राप्य तस्य वृद्धिं करोति वै ॥ २ ॥ एकैकसन्निपातश्च चतुर्थः सन्निपातिकः ॥ पित्तदोषात्सन्निपातात्तथाऽसाध्या इमे स्मृताः ॥ ३ ॥

आत्रेयजी कहते हैं-हे उत्तमवैद्य ! हारीत ! इसके उपरांत अंडवृद्धि रोग होता है सो बालकके मातापिताके दोषसे वृषणोंका रोग होता है ॥ १ ॥ दूषित स्त्रीके संग मैथुन करनेसे बस्तिस्थानमें प्राप्त हुआ बहुतसा वायु अंडस्थानमें प्राप्त होके अंडवृद्धि करदेता है॥२॥ एक एक दोषसे तीन प्रकारका और चौथा सन्निपातसे होता है और पित्तके दोषसे उपजे हुए और सन्निपातसे उपजे हुए अंडवृद्धिरोग असाध्य कहे हैं ॥ ३ ॥

दोषान् वक्ष्याम्यौषधानि शृणु तानि भिषग्वर ॥ स्वेदनान्यभ्यञ्जनानि क्वाथ्य पानं विधीयते ॥ ४ ॥ शिरःस्रावो भिषक्श्रेष्ठ तेषां वक्ष्यामि लक्षणम् ॥ कंपश्च मृदुवातेन पित्तेन दाहकज्वरः ॥ ५ ॥ कफाद्घनश्च शोषश्च कठिनोवृषणो भवेत् ॥ रसालशल्लकीक्वाथः तर्कारी कटुतुम्बिका ॥ ६ ॥ क्वाथसंसेवनार्थां च मुष्कवृद्धिः सवातिके ॥ शीततोयावगाहो वा शीतसंसेवनं तथा ॥ शीतशीतैश्चलेपश्च पित्तमुष्के प्रशस्यते ॥७॥

हे उत्तमवैद्य ! अब दोषोंको और औषधोंको कहते हैं सुन-पसीना दिवाना, मालिस करनी और क्वाथ पान नसोंका स्राव ये विधि करनी चाहिये ॥ ४ ॥ अब इन्होंके लक्षणोंको कहैंगे वातदोषसे उपजे अंडवृद्धिरोगमें कंपनाहो कोमलहो और पित्तसे दाहहो ज्वरहो ॥ ५ ॥ कफसे करडाहो शोषहो कठिन अंडहो वातसे उपजे अंडवृद्धिरोगमें आंब, शल्लकीवृक्ष, अरणी, कडुई तुंबी, इन्होंका क्वाथ बना सेवन करना चाहिये ॥ ६ ॥ और पित्तसे उपजे अंडवृद्धिरोगमें शीतल जलमें गोता मारना, शीतल वस्तुसे बना और चंदन, कपूर, खस, इन्होंका लेप करना श्रेष्ठ है ॥ ७ ॥

वृषणवृद्धिपर चिकित्सा ।

वचालवणतोयेन कदम्बार्जुनसर्षपैः ॥ कषायसेवनैः प्रोक्तं कफ-मुष्केऽहितापहम् ॥ ८ ॥ अरुणवरुणकोलं च शालिपर्णी शतावरी ॥ क्वाथः पित्तसन्निपातमुष्कवृद्धौ विदां वर ॥ ९ ॥ वरुणवृक्षादनी चैव दशमूली शतावरी ॥ क्वाथपानं वातिके च मुष्कवृद्धौ हितावहम् ॥ १० ॥ एतेन भवते सौख्यं तदा कर्मावकारयेत् ॥ कर्णकोषस्य मध्ये तु रक्तान्निर्हारयेच्छिराम् ॥ ११ ॥ वामकोष्ठस्य वृद्ध्या तु दक्षिणां हारयेच्छिराम् ॥ उभाभ्यां द्वे शिरे वेध्ये तेन वा तत्सुखं भवेत् ॥ १२ ॥ इति चाण्डक्रिया प्रोक्ता सा चैवोन्नीतरोगिणे ॥ १३ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने वृषणवृद्धिचिकित्सा नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

कफसे उपजे अंडवृद्धिमें वच, नमक, कदंबवृक्ष, शिरसम, इन्होंका काथ बना सेवन करना हित है ॥ ८ ॥ और लाल ऊंगा, वायवरणा, कंकोल, शालपर्णी, शतावरी, इन्होंका काथ पित्त और सन्निपातसे उपजे अंडवृद्धिरोगमें हित है ॥ ९ ॥ और अमरवेल, वायवरणा, दशमूल, शतावरी, इन्होंका काथ वातके अंडवृद्धिरोगमें पीना हित है ॥ १० ॥ इस करके सुख होजाता है पीछे अन्यकर्म करै कानके मध्यमें रहनेवाली रक्तको धारण करने वाली नाडीको विंधावे ॥ ११ ॥ और बाईतर्फ अंडवृद्धि होवे तो दाहिने कानकी नस विंधावे और दोनोंतर्फ अंडवृद्धि होवे तो दोनों कानोंकी नसोंको विंधावे ऐसे करनेसे सुख उत्पन्न होता है ॥ १२ ॥ यह दारुण क्रिया कही है जिसके ज्यादै अंडवृद्धि होरहीहो तिस-रोगीके करनी चाहिये ॥ १३ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने वृषणवृद्धिचिकित्सानाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ३३.



अथ विसर्परोगकी चिकित्सा ।

आत्रेय उवाच ॥ लवणाम्लक्षारकटुकैरुष्णस्वेदातिदोषतः ॥ रक्तपित्तं प्रकुप्येत स विसर्पी भिषग्वर ॥ १ ॥ स सप्तधा परिज्ञेयः पृथग्दोषैश्च द्वन्द्वजैः ॥ केवलो रक्तजस्त्वन्यः सन्निपातेन सप्तमः ॥

॥ २ ॥ तथापरे प्रवक्ष्यन्ते नामानि च पृथक्पृथक् ॥ आग्नेयो ग्रन्थिको घोरः कर्दमश्च तथापरः ॥ ३ ॥ आग्नेयो वातपित्तेन ग्रन्थिकः पित्तश्लेष्मणा ॥ कर्दमो वातश्लेष्मोत्थो घोरः स्यात्सान्निपातिकः ॥ ४ ॥ रक्तंलसीका त्वग्मांसं दूष्यं दोषास्त्रयो मलाः ॥ विसर्पाणां समुत्पत्तौ विज्ञेयाः सप्तधातवः ॥ ५ ॥ न्यग्रोधबिल्वखदिरकषायो धावने हितः ॥ काञ्जिकाम्लैः पिच्छिलया सौवीरकरसेन वा ॥ ६ ॥ मातुलुङ्गरसेनापि धावनं वातसर्पिषु ॥ क्षीरेण शीततोयेन धावनं पित्तसर्पिणि ॥ ७ ॥ श्लेष्मविसर्पिणे वाथ धवार्जुनकदम्बकम् ॥ धावनं सर्पिणे शस्तं सुरासौवीरकेण वा ॥ ८ ॥ धावनञ्च हितं तस्य सन्निपाते विसर्पिणे ॥ यवाग्निमन्थैश्च शठीन्यग्रोधैश्च ससर्षपैः ॥ ९ ॥ क्वाथः स्यात्सन्निपातोत्थविसर्पधावने हितः ॥ पञ्चजीरकपित्थांश्च काञ्जिकेन तु पेषयेत् ॥ मातुलुङ्गरसेनापि लेपनं वातसर्पिणे ॥ १० ॥ धवा रोध्रतिलाश्शैलविदारीकण्टकं तथा ॥ लेपः पित्तविसर्पे वा गुञ्जापत्रैस्तु लेपनम् ॥ ११ ॥ सैन्धवारिष्टतुम्बीकापटोलपत्रकैर्घृतम् ॥ पाचितं लेपने शस्तं विसर्पाणां निवारणम् ॥ १२ ॥ रक्तजेषु विसर्पेषु कुर्य्याद्रक्तावसेचनम् ॥ पश्चाद्धवकदम्बानां सर्वदा गृहधूमकम् ॥ १३ ॥ लेपने हितकृत्प्रोक्तं धावनं काञ्जिकेन तु ॥ कुठेरकाश्च सुरसा चक्रमर्दो निशायुगम् ॥ १४ ॥ सर्षपाः काञ्जिकेनापि पिष्टा च लेपनं हितम् ॥ १५ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने विसर्पचिकित्सा नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—नमक, खट्टा, खारा, चर्चरा, गरम, ऐसा पदार्थ सेवनेसे और पसीनेके दोषसे रक्त पित्त कुपित होजाता है वह विसर्परोग कहाता है ॥ १ ॥ वह जुदे २ दोषों करके और द्वंद्वज दोषों करके सात प्रकारका होता है और केवल रक्तसे उपजा हुआ सन्निपातसे युक्त सातवाँ होता है ॥ २ ॥ और अन्य कईकजन जुदे २ नामोंवाले इनरोगोंको कहते हैं आक्षेपनामवाला ग्रंथिकनामवाला तथा घोरनामवाला और कर्दमनामवाला ऐसे तीन

प्रकारसे होता है ॥ ३ ॥ आक्षेप विसर्परोग वातपित्तसे होता है और ग्रंथिक पित्तकफसे होता है कर्दमनामवाला विसर्प वातकफसे होता है और घोरनामक सन्निपातसे होता है ॥४॥ और रक्तकांति, त्वचा, मांस, इन्होंसे दूषित हुए तीनों दोष और सात धातु ये विसर्प रोगोंकी उत्पत्तिमें हेतु कहे हैं ॥ ५ ॥ और बड बेलगिरी, खैर इन्होंके क्वाथसे शरीरका धोवना हित है और कांजीका खटाईके झागोंसे अथवा सौवीर संज्ञक कांजीके रससे ॥ ६ ॥ अथवा बिजौराके रससे धोवना वातसे उपजे विसर्परोगमें हित है और पित्तके विसर्पमें दूध और शीतल जलकरके धोवना हित है ॥ ७ ॥ और कफके विसर्परोगमें धव अर्जुनवृक्ष, इन्होंके क्वाथसे अथवा मदिरा सौवीर संज्ञक कांजी इन्हों करके धोवना हित है ॥ ८ ॥ और सन्निपातके विसर्पमेंभी मदिरा सौवीर संज्ञक कांजी इन्होंसे धोवना हित है और अजवायन, अरणी, कचूर, बड, सिरसम, ॥ ९ ॥ इन्होंके क्वाथसे सन्निपातसे उपजे विसर्पको धोवना हित है और पांच प्रकारके जीरे, कैथ, इन्होंको कांजीमें पीस बिजौराके रसके संग वातके विसर्पमें लेप करना हित है ॥ १० ॥ और धव, लोध, तिल, एलवालुक, विदारीकंद, गोखरू, इन्होंको पीस लेप करना अथवा चिरमठीके पत्तोंका लेप करना हित है ॥ ११ ॥ और सैंधानमक, नींब, तुंबी, परवलके पत्ते इन्होंको घृतमें पका लेप करनेसे सब प्रकारके विसर्पोंका नाश होता है ॥ १२ ॥ रक्तसे उपजे हुए विसर्परोगमें फस्तखुलानी चाहिये पीछे धव, कदंब, घरका धूवां १३ ॥ इन्होंका लेप करना हित है और कांजीसे धोवना हित है और आजबला, तुलसी, पुआड, दोनों प्रकारकी हलदी ॥ १४ ॥ सिरसम, इन्होंको कांजीमें पीस लेप करना हित है ॥ १५ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनु-वैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने विसर्पचिकित्सानाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ३४.

अथोपसर्गचिकित्सा।

आत्रेय उवाच ॥ चतुर्विधो भवेद्दोषो वातरक्तसमुद्भवः ॥ गन्धदोषेण जायन्ते नामान्येषां पृथक् पृथक् ॥ १ ॥ क्षुद्रतश्चा-न्तको घोरः अथवान्यमसूरिका ॥ वसन्तः सर्षपाकारा पिटका यस्य दृश्यते ॥ २ ॥ सोऽपि क्षुद्रतरः प्रोक्तः पित्तरक्तप्रदोषतः॥ अग्निदग्धवत्स दाह्यः पिटिका यस्य दृश्यते ॥ ३ ॥ सोऽप्यतीव विसर्पी स्यादसुखी च निरन्तरम् ॥ ४ ॥ सघनाः पीडका यस्य

पाकयाति समः कफः ॥ दाहोऽरतिर्विवर्णत्वं तस्य सद्यः प्रजायते ॥ ५ ॥ वर्त्तुलमसूरिकावत् पिटका यस्य दृश्यते ॥ शाम्यति शीघ्रं पाकेन सा विज्ञेया मसूरिका ॥ तस्य वक्ष्यामि भैषज्यं यथाविधि महामते ॥ ६ ॥

आत्रेयजी कहते हैं-वात रक्तसे उपजाहुआ चारप्रकारका दोष होता है सो गंधके दोषसे उत्पन्न होते हैं तिन्होंके जुदे २ नामोंको कहते हैं ॥ १ ॥ क्षुद्रक, अंतक, घोर, मसूरिका ये हैं और जिसके गौर सिरसमके आकार फुनसी दीखैं ॥ २ ॥ वह क्षुद्ररोग पित्तरक्तके दोषसे होता है और जिसमें अग्निके दग्ध होनेके समान दाहहो ॥ ३ ॥ और निरंतर सुखी नहींहो वह अति घोर विसर्परोग होता है ॥ ४ ॥ और करडी तथा पकीहुईके समान पिडिकाहो दाहहो ग्लानिहो विवर्णहो वह तात्काल अंतक रोग होता है ॥ ५ ॥ जिसकै मसूरिकाके समान गोल पिडिकाहो जल्दीही पकके शांत होजावे वह मसूरिका कहाती है हे महामते ! तिसकी यथार्थ विधिको कहते हैं ॥ ६ ॥

अथ मसूरिकामें चिकित्सा ।

गुप्ताकारं सुरक्षेच्च रक्षायोगविधानतः ॥ न स्त्रीणां नाधमानाञ्च संसर्गं वा प्रसङ्गकम् ॥ ७ ॥ सुशीतं शीतलं स्थानं कारयेत्सुप्रयत्नतः ॥ क्षुद्रकस्योपसर्गस्य लेपनं चात्र कारयेत् ॥ ८ ॥ कुष्ठं सोशीरन्यग्रोधस्तथोदुम्बरिकत्वचः ॥ प्रलेपनं प्रशस्तं स्यात्क्षुद्रोपसर्गवारणम् ॥ ९ ॥ क्षीरञ्च मधुशर्करायुक्तं पानं सुखावहम् ॥ जम्ब्वाम्रपल्लवानाञ्च विष्टं दधिमधुयुतम् ॥ १० ॥ पाययेत् क्षुद्रकस्यास्य अतिसाराग्निनाशनम् ॥ गोक्षुरश्चातिविषा च कर्कटाद्यं सपर्पटम् ॥ ११ ॥ कल्कमेतत्प्रयोक्तव्यं मधुशर्करासंयुतम् ॥ हरीतकीमातुलुङ्गस्वरसं शर्करायुतम् ॥ १२ ॥ क्षुद्रकस्योपसर्गस्य वमिशोषनिवारणम् ॥ अग्निकोऽप्युपसर्गे च योज्यं चैतत्प्रलेपनम् ॥ १३ ॥ रक्तचन्दनमञ्जिष्ठा निम्बपत्राणि चार्जुनम् ॥ क्षीरेण नवनीतेन हितं स्याल्लेपनं तथा ॥ १४ ॥

गुप्त आकारसे रक्षायोगके विधानसे तिसरोगीको रक्खै और स्त्री तथा नीच जन इन्होंका मेल नहीं होनेदवै ॥ ७ ॥ और अत्यंत यत्नसे शीतल स्थान रक्खै और क्षुद्रक उपसर्गमें लेप करना चाहिये ॥ ८ ॥ कूठ, खश, वड, गूलरकी छाल इन्होंका लेप करनेसे क्षुद्र उप-

सर्गरोगका निवारण होता है ॥ ९ ॥ और शहद, खांड इन्होंसे युक्त दूधका पीना सुखदायक है और जामन, आंब इन्होंके पत्तोंको पीस दही और शहद मिला ॥ १० ॥ पीनेसे क्षुद्रकरोग अतिसारकी अग्नि इन्होंका नाश होता है। और गोखरू, अतीश, काकडासींगी पित्तपापडा ॥ ११ ॥ इन्होंका कल्क बना शहद और खांड मिला ॥ १२ ॥ खानेसे क्षुद्रक रोगवाले पुरुषका वमन, शोष, इन्होंका निवारण होता है और अग्निसरीखे दाहवाले उपसर्गरोगमें ॥ १३ ॥ लाल चंदन, मँजीठ, नींबके पत्ते, अर्जुनवृक्षकी छाल इन्होंको दूध, नौंनीघृत इन्होंमें पीस लेप करना हित है ॥ १४ ॥

घोरं चोपद्रवं दृष्ट्वा न स्वेदं न च मर्दनम् ॥ प्रलेपनं न कुर्वन्ति यथायोगेन पण्डिताः ॥ १५ ॥ अरण्यगोमयक्षारतैलेन चालनं हितम् ॥ न तैलेनापि चाभ्यङ्गं लेपेनैव च कारयेत् ॥ १६ ॥ चन्दनं मधुकं रोध्रं न्यग्रोधोत्पलसारिवा॥ मधुना संयुतः कल्कः पानेन चोपसर्गहृत् ॥ १७ ॥ उपसर्गे ज्वरस्तीव्रो रक्तमूत्रं प्रजायते ॥ तस्य वक्ष्याम्युपचारं येन संपद्यते सुखम् ॥ १८ ॥ पटोलं पर्पटं शुण्ठी मुस्ता च खदिरं समम् ॥ कल्को मधुयुतः पाने हितः स्याज्ज्वरनाशनः ॥ १९ ॥ चन्दनोशीरमञ्जिष्ठा पुष्करं दन्तधावनम् ॥ क्वाथपानं मधुयुतमुपसर्गज्वरापहम्॥२०॥ वमने चातिसारे च दाडिमं कुटजस्तथा ॥ मधुदध्नान्वितं पानमतिसारनिवारणम् ॥ २१ ॥ शेषाश्च क्षुद्रिकाः प्रोक्ताः क्रिया चात्र विधेयका ॥ एका क्रिया मसूरिके कर्त्तव्या सुविधानतः ॥ २२ ॥ वातलानि च सर्वाणि तथा रूक्षाणि कोविदः ॥ स्त्रीसङ्गं रूक्षशोकञ्च दूरतः परिवर्जयेत् ॥ २३ ॥ ज्वरे प्रोक्तानि पथ्यानि तानि चात्र प्रदापयेत् ॥ एवं त्रिसप्तरात्रेण सुखं सम्पद्यते नरः ॥ २४ ॥ ततोऽभिषेकः कर्त्तव्यः कृत्वा मङ्गलवाचनम् ॥ नूतनानि च सूक्ष्माणि वस्त्राणि च सितानि च ॥ २५ ॥ परिधाप्य होमकार्य्यमिष्टभोज्यं विधेयकम् ॥ २६ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने उपसर्गचिकित्सानाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

और उपसर्गरोगमें घोर उपद्रवको देखिके तहां पसीना नहीं दिवावे मर्दन नहीं करै और लेपभी नहीं करै पंडित जनोंको ऐसे जानना ॥ १५ ॥ तहां वनके आरनोंकी राख और तेल करके चालन कर्म करना हित है तेलसेभी मालिस और लेप नहीं करवावै ॥ १६ ॥ चंदन, महुआ, लोध, बड, कमल, अनंतमूल, इन्होंका कल्क बना शहदके संग पीनेसे उपसर्गरोगका नाश होता है ॥ १७ ॥ और उपसर्गरोगमें जो तीव्रज्वरहो लालमूत्र उतरे तिसकी चिकित्सा कहते हैं जिस्से सुख उत्पन्न होवे ॥ १८ ॥ परवल, पित्तपापडा, सूंठ, नागरमोथा, खैर इन्होंको समान भाग ले कल्क बना शहद मिला पीनेसे ज्वरका नाश होता है और यह हित है ॥ १९ ॥ और चंदन, खश, मँजीठ, पोहकरमूल इन्होंके क्राथसे दांतोंका धोवना और इसमें शहद मिला पीनेसे उपसर्गरोगमें उपजे ज्वरका नाश होता है ॥ २० ॥ और वमन अतीसार इन्होंमें अनारदाना इंद्रजौ इन्होंका क्काथ और शहद, दही इन्होंके पीनेसे अतिसारका नाश होताहै ॥ २१ ॥ और बाकीके रहे सब क्षुद्ररोगमें यही किया करनी यह क्रिया उत्तम विधानसे मसूरिका रोगमें करनी चाहिये ॥ २२ ॥ और सब वातवाले पदार्थ तथा रूखे पदार्थ स्त्रीसंग, शोक इन्होंको वैद्यजन दूरसेही वर्जे देवै ॥ २३ ॥ और ज्वरमें कहेहुए जो पथ्य हैं उन्होंको यहां करवावे इसप्रकार करनेसे तीन रात्रिमें अथवा सात रात्रिमें सुख उत्पन्न होता है ॥ २४ ॥ पीछे स्वस्तिवाचन करवावे अभिषेक अर्थात् स्नान करवाके और नवीन तथा बारीक सफेद वस्त्रोंको ॥ २५ ॥ धारण कर होम करवा इच्छा पूर्वक भोजन करै ॥ २६ ॥

इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने उपसर्गचिकित्सानाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ३५.

व्रणचिकित्सा ।

आत्रेय उवाच॥अथातः संप्रवक्ष्यामि व्रणानां तु चिकित्सितम् ॥ व्रणाश्चानेकधा प्रोक्ता नानाधातुविकारिणः ॥ १ ॥ दुष्टाम्बुपानाशनसेवनाच्च क्रोधातिभाराध्वसनेन वापि ॥ संजायते दुष्टव्रणोऽपि घोरश्चान्येन रक्तस्य हि दूषणेन ॥ २ ॥ वातेन पित्तेन कफेन वापि द्वन्द्वेन वा दोषसमुच्चयेन ॥ मांसं प्रदूष्य रुधिरं विकीर्य्य संजायते दुष्टव्रणोऽपि घोरः ॥३॥ त्वग्रक्तानि समेदांसि प्रदूष्यास्थिसमाश्रिताः ॥ दोषाः शोफं शनैर्घोरं जनयन्त्युद्धता भृशम् ॥ ४ ॥ सरक्तश्च सशूलश्च रुजावच्च सवेपथु॥रूक्षं वा वात-

सम्भूतं विज्ञेयं सरुजं व्रणम् ॥ ५ ॥ सततदाहस्वरः सृष्टः स्पर्शनं सहते तु यः ॥ शीतः सौख्यं लघुपाकी पित्तात् संजायते व्रणः ॥ ॥ ६ ॥ कठिनो वर्तुलाकारो घोरः पीतोल्पवेदनः ॥ उष्णसहः स्निग्धतरश्चिरपाकी कफव्रणः ॥ ७ ॥ सर्वैर्लिङ्गैर्विजानीयात्सन्निपातसमुद्भवम् ॥ द्वन्द्वजे द्वयदोषस्तु दोषे चापि प्रदृश्यते ॥ ८ ॥ अभिघातसमुद्भूता विज्ञेयास्ते चतुर्विधाः ॥ अन्ये नाडीव्रणा ये स्युः सवाताश्च सवेदनाः ॥ ९ ॥ अन्ये तु स्रोतसां मध्ये तेषां शृणु चिकित्सितम् ॥ प्रथमं मण्डविस्रावो द्वितीयं स्वेदनं स्मृतम् ॥१०॥ तृतीयं पाचनं प्रोक्तं पाचिते पाटनं तथा॥शोधनञ्च प्रयोक्तव्यं तथा रोहणमेव च ॥ ११ ॥ पश्चात्क्रमस्तथैव स्याद्व्रणानां हितकारकः॥रास्ना वचा तथा शुण्ठीमातुलुङ्गरसस्तथा ॥ ॥१२॥काञ्जिकेन सममेकधावनं वातिकेव्रणे ॥ यष्टीमधुकमञ्जिष्ठापटोलनिम्बपत्रकैः॥१३॥ दुग्धे न क्वथितं शीतं धावनं पैत्तिके व्रणे ॥१४॥ त्रिफला च कदम्बञ्च तथा जम्बु कपित्थकम्॥ क्वाथः सोष्णकफोद्भूते व्रणे धावनमुत्तमम् ॥ १५ ॥ मातुलुङ्गाग्निमन्थौ च मूलं वा काञ्जिकेन च ॥ सुरदारु तथा शुण्ठी लेपो वातव्रणे हितः ॥ १६ ॥ नलमूर्वा च मधुकं चन्दनं रक्तचन्दनम् ॥ पिष्टं तण्डुलतोयेन पित्तव्रणविनाशनम् ॥ १७ ॥ अंकोलकञ्च रोध्रञ्च कदम्बार्जुनवेतसाः ॥ पारिभद्रदलानां तु पिष्ट्वा व्रणविलेपनम्॥ ॥ १८ ॥ पाकं गते व्रणे वापि गम्भीरे सरुजेऽथवा ॥ सरन्ध्रे शोधनं कार्य्यं धावनं तु भिषग्वरैः ॥ १९ ॥ करञ्जधवनिम्बानां कदम्बार्जुनवेतसैः ॥ पादावशेषे क्वाथेन गम्भीरव्रणधावनम् ॥ ॥ २० ॥ मञ्जिष्ठा च तथा लाक्षारसश्चैव मनःशिला ॥ निशायुगे समायुक्तं पिष्ट्वा वस्त्रपरिस्रुतम् ॥ २१ ॥ मधुयुक्तं शोधनञ्च व्रणानां हितकारकम् ॥ निम्बपत्राणि संक्षिप्य मधुना व्रणशोधनम् ॥ २२ ॥ निम्बपत्रतिलक्षौद्रं दार्वीमधु-

कसंयुतम् ॥ तथा तिलानां कल्कश्च शोधनश्च व्रणेषु च ॥ ॥ २३ ॥ तिलका निम्बसीतस्य पत्राणि सुमनासु च ॥ कषायश्च हितश्चैव व्रणानां शोधनेषु च ॥ २४ ॥ विशुद्धश्च व्रणं ज्ञात्वा म्रक्षयेच्च व्रणं च तत् ॥ नवनीतेन वा श्रेष्ठं तेन नदहते व्रणः ॥ २५॥

आत्रेयजी कहते हैं–अब व्रणोंकी चिकित्साको कहेंगे–अनेक प्रकारकी धातुओंके विकारवाले अनेक प्रकारके व्रण कहे हैं ॥ १ ॥ दूषित जल और अन्नके सेवनसे क्रोधसे अत्यंत बोझाके उठानेसे किसीबातके व्यसनसे मनुष्योंके घोर दुष्ट व्रण होजाता है अथवा दूषित रक्तसे घोरव्रण होता है ॥ २ ॥ वातसे, पित्तसे, कफसे, अथवा दोषोंसे तथा सब दोषोंके मिलापसे मांसमें प्रहर्ष होके रुधिर बिखरके घोर दुष्टव्रण होजाताहै ॥ ३ ॥ और त्वचा, रक्त, मेद इन्होंको दूषितकर अस्थियोंके आश्रयहोके उठहुए दोष शनैःशनैः अत्यंत शोजाको उत्पन्न करदेते हैं ॥ ४ ॥ तहां रक्त सहित शूलसहित पीडा होती है और कंपना होती है तहां रूषाव्रणहो वह वातसे उपजा जानना ॥ ५ ॥ और जो तप्तदाहज्वर, इन्होंसे युक्तहो और स्पर्शको सहै शीलकसे सुखहो शीघ्र पाकहो वह पित्तसे उपजा व्रण होता है ॥ ॥ ६ ॥ और कठिनहो, गोल आकारहो, घोर हो, शीतलहो, थोडी पीडाहो, गरम वस्तुको सहै, अति चिकनाहो, बहुतकालमें पकै वह कफसे उपजा व्रण जानना ॥ ७ ॥ और जो सब लक्षण मिलते हों तो वह सन्निपातसे उपजा व्रण जानना और दो दोषोंसे उपजे व्रणमें दो दोषोंके लक्षण मिलते हैं ॥ ८ ॥ और चोटआदिसे उपजे हुए चार प्रकारके व्रण होते हैं और अन्य जो नाडीव्रण होते हैं वे पीडासहित और वात सहित होते हैं ॥ ९ ॥ और अन्य व्रण स्रोतोंमें होते हैं तिन्होंकी चिकित्साको सुन–पहले तो उठतेही मांडका तरडादे जिसे स्यात् बैठही जावे पीछे पसीना दिवावे अर्थात् अग्नि या गरम पदार्थसे सेंके ॥ १० ॥ फिर तीसरे पकावे पकजावे तब व्रणके फाडनेकी विधि कही है पीछे शोधन करै पीछे व्रणको भरै ॥ ११ ॥ पीछे व्रणको हित करनेवाला क्रम करना चाहिये रास्ना, वच, सूंठ, बिजौरेका रस ॥ १२ ॥ कांजी इन्होंसे धोवना वातके व्रणमें हित है और मुलहटी, महुआ, मंजीठ, परवल, नींबके पत्ते ॥ १३ ॥ इन्होंको दूधमें मिला क्वाथ बना शीलाकर पित्तका व्रण धोवना चाहिये ॥ १४ ॥ और त्रिफला, कदंब, जामन, कैथ इन्होंका क्वाथ बना गरम २ से कफसे उपजा व्रण धोवना चाहिये ॥ १५ ॥ और बिजौरा, अरणी, मूली, कांजी, देवदार, सूंठ, इन्होंका लेप करना वातव्रणमें हित है ॥ १६ ॥ और नड, मूर्वा, मुलहटी, चन्दन, लाल चन्दन, इन्होंको चावलोंके धोवनके जलमें पीस लेप करनेसे पित्तके व्रणका नाश होता है ॥ ॥ १७ ॥ और अंकोल, लोध, कदंब, अर्जुन वृक्ष, वेत, नींबके पत्ते इन्होंको पीस व्रणपै लेप करै ॥ १८ ॥ और व्रण पकजावे अथवा गंभीर होजावे पीडासहितहो अथवा छेद हो रहाहो तहां वैद्य व्रणोंमें शोधन और [illegible] करना चाहिये ॥ १९ ॥ और करंजुआ

धव, नींब, कदंब, अर्जुन और वेत इन्होंका चतुर्थांश क्वाथ रहे तब उससे गंभीर व्रणको शोधन करे ॥ २० ॥ और मँजीठ, लाखका रस, मनसिल, दोनों प्रकारकी हलदी, इन्हों को समान भागले बकरेके मूत्रमें पीस शहद मिला लेप करनेसे व्रणोंका शोधन होता है यह हित है और नींबके पत्तोंको पीस शहद, मिला लेप करनेसे व्रणोंका शोधनहोता है ॥ २१ ॥ २२ ॥ और नींबके पत्ते, तिल, शहद, दारुहलदी, तिलोंका कल्क इन्होंके लेप करनेसे व्रणोंका शोधन होता है ॥ २३ ॥ और तिल, नींब बहेडा इन्होंके पत्ते और पुष्पोंका क्वाथ बना सेक करनेसे व्रणोंका शोधन होता है ॥ २४ ॥पीछे शुद्धहुए व्रणको जानके व्रणको नौंनी घृतसे धोलेवे अर्थात् नौनी घृत धोके लगावे, नौनी घृत श्रेष्ठ है इससे व्रण भरजाता है और दाह नहीं होता ॥ २५ ॥

अथ जात्यादि घृत।

जातीकरञ्जपिचुमन्दपटोलमत्र यष्टीमधुश्च रजनी कटुरोहिणी च ॥ मञ्जिष्ठकोत्पलमुशीरकरञ्जबीजं स्यात्सारिवा त्रिवृन्माग धिका समांशा ॥ २६ ॥ पक्वं घृतं वै हितमेव व्रणे प्रशस्तं नाडी गते च सरुजे च सशोणिते च॥लूताविसर्पमपि हन्ति गभीरयेच्च व्रणाः सदाहकठिना अपिरोहयन्ति ॥ २७ ॥ इति जात्यादि घृतम् ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने व्रणचिकित्सा नामपञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

जावित्री, करंजुबा, नींब, परवल, मुलहटी, हलदी, कुटकी, मँजीठ, कमल, खश, करंजुवाके बीज, अनंतमूल, निशोत, पीपल, इन्होंको समान भाग ले ॥ २६ ॥ इन्होंको घृतमें पकालेवे यह घृत व्रणमें हित है और पीडा सहित तथा रक्तसहित नाडीव्रण, लूत, विसर्परोग, इन्होंका नाश करता है और इससे दाहसहित तथा कठिन ऐसा व्रण भरजाता है॥२७॥इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने व्रणचिकित्सा नाम पंचविंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंशोऽध्यायः ३६.

अथ श्लीपदरोगका निदान तथा लक्षण।

आत्रेय उवाच ॥ व्रणोक्तैरुपचारैश्च जायते श्लीपदं तथा ॥ वातेन स्फुटितं रूक्षं श्यामञ्चापि प्रदृश्यते ॥ १ ॥ सदाहपाकं पित्तेन

सज्वरश्चैव दृश्यते ॥ श्लेष्मणा जायते स्निग्धं घनं शोफसमन्वितम् ॥ २ ॥ सन्निपातेन सर्वाणि जायन्ते भिषजांवर ॥ मेदाश्रितं तु वाल्मीकं वल्मीकवत् प्रदृश्यते ॥ ३ ॥ सदृशानि च चिह्नानि वातिकोत्थानिं लक्षयेत् ॥ तस्य व्रणोक्ताः क्रियाश्च कारयेद्विधिपूर्विकाः ॥ ४ ॥ जात्यादि च घृतं शस्तं तथैवालेपनानि च ॥ पुनः प्रलेपनं कार्य्यं धवार्जुनकदम्बकैः ॥ ५ ॥ गिरिकर्णिकामूलञ्च तथा वृक्षादनीमपि ॥ पिष्ट्वा प्रलेपनं कार्य्यं वाल्मीकश्लीपदस्य च ॥ ६ ॥ सूरणकन्दकं पिष्ट्वा मधुना च घृतेन च ॥ लेपनं च हितं तस्य वाल्मीकश्लीपदापहम् ॥ ७ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने श्लीपदचिकित्सा नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

व्रणमें कहेहुए उपचारोंकरके श्लीपदसंज्ञकरोग हो जाता है वातसे उपजा श्लीपद स्फुटित हो रूखाहो श्यामवर्णवालाहो ॥ १ ॥ और पित्तसे उपजे श्लीपद रोगमें दाहहो पाकहो और ज्वर होता है और कफसे उपजा श्लीपदरोग चिकनाहो करडाहो शोजासे युक्त होता है ॥ २ ॥ और सन्निपातसे उपजे श्लीपद रोगमें सब लक्षण मिलते हैं और मेदके आश्रय हुआ यह रोग सर्पकी बँबईके समान लक्षणोंवाला होता है ॥ ३ ॥ और वात्तसे उपजें इस रोगमें समा लक्षण होते हैं तिसकी क्रिया व्रणमें कहीहुई करनी चाहिये ॥ ४ ॥ और पहले कहाहुआ जात्यादिघृत लेप करनेमें हित है और धव, अर्जुनवृक्ष, कदंब ॥ ५ ॥ गिरिकर्णिकाकी मूल, अमरवेल, इन्होंको पीस लेप करनेसे वल्मीकसंज्ञक श्लीपदरोगका नाश होता है ॥ ६ ॥ और जमीकंदको पीस शहद और घृतमें मिला लेप करनेसे वल्मीकसंज्ञक श्लीपदरोगका नाश होता है ॥ ७ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसुनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने श्लीपदचिकित्सानाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंशोऽध्यायः ३७.



अथ अर्बुदरोगकी चिकित्सा ।

वाताभिघातपवनाद्व्रणाद्वापि तथा पुनः ॥ रक्तनाड्यः प्ररोहन्ति [illegible]च्यन्ति च तथा पुनः ॥ १ ॥ तेन रक्तस्य मार्गस्तु रुध्यते तेन

जायते ॥ अर्बुदश्चमहास्थूलं मार्गरोधाच्च जायते ॥ २ ॥ वातान्मृदुच परुषं कफाच्च घनशीतलम् ॥ पित्तेन दाहपाकाद्यं विजानीयं विचक्षणैः ॥ ३ ॥ सन्निपातेन कठिनं घनं पाषाणसन्निभम्॥ वृद्धिमच्च गडुकं स्यादसाध्यं तद्भिषग्वर ! ॥ ४ ॥ तस्यादौ पाटनं कार्य्यं मर्मस्थानञ्च वर्जयेत् ॥ सैन्धवेन घृतेनापि कुर्य्यात्तस्यानुलेपनम् ॥ ५ ॥ सूरणं कन्दकं दग्ध्वा घृतेन च गुडेन च ॥ लेपनं चार्बुदानाञ्च नाशनञ्च भिषग्वर ! ॥ ६ ॥ शेषा व्रणक्रिया प्रोक्ता शस्ता वार्बुदशान्तये ॥ वातघ्नानि च पथ्यानि हितानि मधुराणि च ॥ ७ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने अर्बुदचिकित्सा नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—चोटके अभिवातसे और वायुसे तथा व्रणसे रक्तकी नाडी भरजाती है और रुकजाती है ॥ १ ॥ तिससे रक्तका मार्ग रुकजाता है सो मार्गके रुकनेसे महास्थूल अर्बुदरोग होजाता है ॥ २ ॥ वातसे उपजा अर्बुद रोग कोमलहो और खरदराहो और कफसे करडा और शीतल होता है और पित्तसे उपजेमें दाह और पाक होता है ऐसे वैद्यजनोंने जानना ॥ ३ ॥ सन्निपातसे उपजा कठिन और पत्थरके समान करडा होता है हे वैद्यजन ! बढनेवाला और गोलीसरीखा यह अर्बुदरोग असाध्य होता है ॥ ४ ॥ तिसरोगकी आदिमें मर्मस्थानको वर्जके फाडनेकी विधि करनी चाहिये पीछे सेंधानमक घृत, इन्होंका लेप करना चाहिये ॥५॥ और जमीकंदको दग्ध कर घृत और गुडमें मिला लेप करनेसे अर्बुदरोगोंका नाश होता है ॥ ६ ॥ और बाकीकी व्रणमें कहीहुई क्रिया करनी यह श्रेष्ठ है और वातको नाश करनेवाले मधुर पदार्थ हित कहे हैं और पथ्य हैं ॥ ७ ॥ इति वेरीनिवासिबुधाशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने अर्बुदचिकित्सानाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

अष्टत्रिंशोऽध्यायः ३८.

अथ लूत तथा गंडमाला रोगका निदान और लक्षण।

आत्रेय उवाच ॥ इति व्रणक्रिया प्रोक्ता समासेन भिषग्वर ॥ यथायोगं चोपचारं ज्ञात्वा सम्यगुपाचरेत् ॥ १ ॥ दुष्टाम्बुपानाञ्च कदन्ननिषेवणाच्च संजायते च क्रिमिसम्भवगण्डमाला ॥ समारुते

च कफपित्तभवे विकारे संसर्पते क्रिमिजदोषगणश्च गण्डात् ॥ २ ॥ वातेन वातसदृशानि च लक्षणानि पित्तेन दाहसरुजव्रणशोषतापाः ॥ संश्लेष्मणा च शीतलघना संप्रयोगात्स्यात्सन्निपातविहिता च समस्तलिङ्गैः ॥ ३ ॥

आत्रेयजी कहते हैं-हे उत्तम वैद्य ! इस प्रकारके संक्षेपमात्रसे व्रणकी चिकित्सा कहदी है इसके यथार्थ उपचारको जानके अच्छी तरहसे चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १ ॥ दूषित जलके पीनेसे और कुत्सित अन्नके सेवनेसे क्रिमिरोगसे उपजीहुई गंडमाला जाननी वात-पित्त कफ इनदोषोंसे उपजेहुए इस विकारमें क्रिमियोंसे उपजाहुआ दोष गंड अर्थात् कपोल-स्थानसे चलता है ॥ २ ॥ वातसे उपजेहुए इसरोगमें वातके समान लक्षण होते हैं और पित्तसे उपजेमें दाह, पीडा, व्रण, शोष, ताप, ये होते हैं और कफसे उपजेमें शीतलता, कठोरता, येउपचार होते हैं और जिसमें सब लक्षण मिलतेहों वह सन्निपातसे उपजा जानना ॥ ३ ॥

अथ लूता गंडमाला चिकित्सा ।

तस्य चेमं प्रतीकारं वक्ष्यामि शृणु पुत्रक ॥ रोहिणी विशदा चैव विजया च विभेदिनी ॥ ४ ॥ कान्तारी वज्रपुष्पा च तथा चेन्द्रायुधापरा ॥ इति सप्तविधा लूताः शृणु पश्चात्पृथक्पृथक् ॥ ५ ॥ रक्तमुण्डाभवेद्रक्ता रक्तस्थाने च रोहिणी ॥ विशदा मांसलस्थाने श्वेतवर्णा च दीर्घिका ॥ ६ ॥ विजया च शिरोमध्ये पीतवर्णा यवप्रभा ॥ ७ ॥ भेदिनी मेदसंस्थाने श्वेता च नीलरेखिका ॥ ८ ॥ कान्तारी बस्तिमध्ये च श्वेताङ्गा रक्तमुण्डिका ॥ वज्रपुष्पा चास्थिमध्ये श्वेता कृष्णा शिरा मता ॥ ९ ॥ इंद्रायुधा शिरान्ते च धूम्रा कृष्णा शिरा मता ॥ १० ॥ रोहिण्यङ्गुलिमात्रेण मूत्रेण विशदा समा ॥ विजया च यवाकारा वर्त्तुला विजया तथा ॥ ११ ॥ अन्या नृणां च विज्ञेया तण्डुलीकण्टकानिभा ॥ रोहिणी विजया विशा मांसस्थाने समाश्रिता ॥ १२ ॥ गुल्फे वा चास्थिसन्धौ च दृश्यते भेदिनी नरे ॥ कुक्षौ कर्णान्तरेऽपाङ्गे कान्तारी विद्धि पुत्रक ॥ १३ ॥ वज्रपुष्पा शिरसि च शिरान्ते चेन्द्रायुधा मता ॥ अतो वक्ष्यामि भैषज्यं शृणु पुत्र प्रयत्नतः ॥ १४ ॥ सान्द्रपूय

विस्रावश्च गम्भीरश्च व्रणं विदुः ॥ अन्यश्च सरुजं चैव पक्वजम्बूसमप्रभम् ॥ १५ ॥ लूताव्रणानां चैतानि अपक्कं यावदृश्यते ॥ त्यक्ता सन्धिस्थमर्मस्थां लूतां चैवहि तद्व्रणम् ॥ तदा तप्तेन तैलेन दाहश्चाशु विधीयते ॥ १६ ॥ अङ्कोलश्चैव मद्यानि पारिभद्रदलानि च ॥ गृहधूमं कृष्णजीरं गोमूत्रेण तु पेषितम् ॥ लेपनं च प्रशस्तं च लूतानां मारणे परम् ॥ १७ ॥ पिण्डीतकं विडङ्गानि तथा चेङ्गुदिमूलकम् ॥ बीजपूरकमूलानि पेषितानि विलेपयेत् ॥ गण्डमालां तथा घोरां हन्ति शीघ्रं प्रकण्टकान् ॥ १८ ॥ स्नुहीक्षीरं चार्कक्षीरं लूतारन्ध्रे नियोजयेत् ॥ तेन कीटस्तु तन्मध्ये म्रियते नात्र संशयः ॥ १९ ॥ आस्यतो गिरिकर्णीश्च चन्दनश्च समांशकम् ॥ पिष्ट्वा लेपः प्रयोक्तव्यो लूतां हन्ति सुदारुणाम् ॥ २० ॥ करवीरं चार्कदुग्धं तथा च कटुतुम्बिकाम् ॥ निशाद्वयं जाङ्गलिकां तिलतैले विपाचयेत् ॥ २१ ॥ लूतामभ्यञ्जने हन्ति गण्डमालाश्च दारुणाम् ॥ घृतं जात्यादिकं नाम तथा चात्र प्रयोजयेत् ॥ २२ ॥ अन्यान्यपि व्रणे यानि प्रोक्तानि च यथाविधि ॥ २३ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने लूतागण्डमालाचिकित्सा नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

हे पुत्र ! तिसके इलाजको कहते हैं सुन–रोहिणी, विशदा, विजया, त्रिभेदिनी कांतारी ॥ ४ ॥ वज्रपुष्पा, इंद्रायुध, ऐसे सात प्रकारकी लूत होती हैं सो हे पुत्र ! जुदी २ सुन ॥ ५ ॥ रक्तमुखवाली रक्तवर्णवाली रक्तके स्थानमें होनेवाली ऐसी रोहिणी नामक लूत होती है और सफेद वर्णवाली तथा दीर्घ ऐसी विशदानामवाली लूत मांसस्थानमें होती है ॥ ६ ॥ और विजयानामवाली लूत पीलेवर्णवाली और शिरके मध्यमें होती है और जवसरीखी होती है ॥ ७ ॥ सफेदवर्णवाली नीलेरेखावाली ऐसी लूत मेदके स्थानमें भेदिनीनामवाली होती है ॥ ८ ॥ और सफेदवर्णवाली रक्तमुखवाली ऐसी कांतारीनामवाली लूत बस्तिस्थानमें होती है और वज्रपुष्पा नामक लूत अस्थि स्थानमें होती है और सफेदवर्णवाली तथा काले मुखवाली होती है ॥ ९ ॥ और इंद्रायुधा लूत नसोंके मध्यमें होती है धूम्रवर्णवाली और काले शिरवाली होती है ॥ १० ॥ और रोहिणीनामवाली लूत अंगुल प्रमाणमें होती है विशदा

लूत सूतके समान होती है विजया लूत जवके आकारवाली अथवा गोल आकारवाली होती है ॥ ११ ॥ और अन्य लूत मनुष्योंके चौलाईके कांटेके समान जाननी और रोहिणी विजया विशदा लूत मांसस्थानके आश्रय रहती है ॥ १२ ॥ और टांकनेकी गुल्फ अस्थि संधि इन्होंमें विभेदिनी लूत होती है और कूखि, कानके समीपस्थान, नेत्रोंके समीप यह कांतारीनामक लूत होती है ॥ १३ ॥ और वज्रपुष्पा शिरमें होती है और नसोंके मध्यमें इंद्रायुधा लूत होती है हे पुत्र ! अब इन्होंकी औषध कहते हैं यत्नसे सुन ॥ १४ ॥ कर-डीराध झिरती हो तहां गंभीर व्रण कहते हैं और अन्य पीडा सहित और पकेहुए जामनके फलके समान व्रण होता है ॥ १५ ॥ और लूतके व्रण जबतक पके नहीं उससे पहले मर्म संधियोंको त्यागके लूतको और व्रणको गरम २ तैलसे दग्ध करना चाहिये ॥ १६ ॥ और अंकोल, मदिरा, नींबके पत्ते, घरका धूम, काळाजीरा, इन्होंको गोमूत्रमें पीस लेप करनेसे लूतका नाश होता है॥१७॥और तगर, वायविडंग, इंगुदीवृक्षकी जड, बिजोराकी जड इन्होंको पीस लेप करनेसे घोर गंडमाला कंटकरोग, इन्होंका शीघ्रही नाश होता है ॥ १८ ॥ और थोहरका दूध, आकका दूध, इन्होंको लूतके छिद्रोंमें युक्त करनेसे तिसके मध्यके कीडे मर-जाते हैं ॥ १९ ॥ सफेद गोकर्णी, चंदन, इन्होंको समान भागले पीसके लेप करनेसे दारुण लूतका नाश होता है ॥ २० ॥ और कनेर, आकका दूध, कडुई तुंबी, दोनों हलदी, कपूर, कचरी, इन्होंको तिलोंके तैलमें पका ॥ २१ ॥ मालिस करनेसे लूत, गंडमाला, इन्होंका नाश होता है और जात्यादिक नामवाला घृत यहां युक्तकरना श्रेष्ठ है ॥ २२ ॥ और अन्य जो व्रणमें कहीहुई औषध हैं वे यहां करनी श्रेष्ठ हैं ॥ २३ ॥ इति वेरीनिवासि-बुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थानेलूतागंडमाला-चिकित्सानाम अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ३९.

अथ कुष्ठचिकित्सा।

आत्रेयउवाच ॥ विरुद्धपानानि गुरूणि चाम्लपापोदकं सेवनकेन वापि ॥ निद्रा दिवासुप्रतिजागराच्च पित्तं प्रकुप्येद्रुधिराश्रितं तत् ॥ १ ॥ त्वचागतः सर्पति रोगदोषः कुष्ठेति संज्ञां प्रवदन्ति धीराः ॥ पापोद्भवास्ते प्रभवन्ति देहे नृणां भृशं कोपयतां विधिज्ञ ॥ २ ॥

आत्रेयजी कहते हैं-विरुद्धपान और गरिष्ठ भोजन खट्टे तथा दूषित जलके सेवनसे दिनमें सोने और रातमें जागरण करनेसे रुधिरके आश्रयहुआ पित्त कुपित होता है ॥ १ ॥

त्वचामें प्राप्तहुआ रोगरूपदोष फैलता है तब कुष्ठ ऐसी संज्ञा होती है पापसे उत्पन्न होनेवाले वे रोग मनुष्योंके शरीरमें कोंपसे प्राप्त होजाते हैं अब तिन्होंके जुदे २ लक्षणोंको कहेंगे ॥ २ ॥

कुष्ठोंके सामान्यभेद और लक्षण ।

कुष्ठानि चाष्टादशधा वदन्ति तेषां पृथक्त्वेन वदामि लक्षणम् ॥ असाध्यसाध्यानि च कर्मजानि दोषोद्भवानि च सहजानि तानि ॥ ३ ॥ कारुण्यपारुष्यमथैव कण्डूरोमप्रहर्षः स्तिमितं तथैपाम् ॥ तोदस्तथा संव्यथनं च देहे त्वचि स्थिते कुष्ठभवेति चिह्नम् ॥ ४ ॥

कुष्ठोंको अठारहप्रकारके कहते हैं तहां कर्मसे उपजे कुष्ठ असाध्य हैं और वातआदि दोषोंसे तथा स्वभावसे उपजे साध्य हैं ॥ ३ ॥ दीनता, कठोरपना, खाज, रोमहर्ष, गीलापन, शरीरमें चभका, पीडा ये लक्षण कुष्ठकी आदिमें होते हैं ॥ ४ ॥

अथ कुष्ठोंके नाम ।

कपालकं चैवमुदुम्बरञ्च तथैव दद्रूणि च मण्डलानि ॥ विसर्पकं हस्तिबलं किणञ्च गोजिह्वकं लोहितमण्डला वा ॥५॥ वैपादिकं चर्मदलं तथान्यं विस्फोटकान्यथ बहुव्रणञ्च ॥ कण्डर्विचर्ची कथितं तथान्यद्धातुप्रभेदास्त्वचि रोगसिद्धाः ॥ ६ ॥

और कपालकुष्ठ, उदुम्बरकुष्ठ, दद्रुमंडलकुष्ठ, विसर्पकुष्ठ, हस्तिबलकुष्ठ, किणकुष्ठ, गोजिह्वककुष्ठ, लोहितमंडला ॥५॥ वैपादिक, चर्मदल, विस्फोटक, बहुव्रण, कंडु, विचर्चिका, ऐसे इसप्रकारसे धातुवोंके भेदसे उपजेहुए रोग त्वचामें प्रतीत होते हैं ॥ ६ ॥

उदुंबरकुष्ठलक्षण ।

कपालकाभं सितवर्णकञ्च कपाल्यकं तद्गदितं विधिज्ञैः ॥ स्निग्धञ्च सर्वाङ्गगतं च कण्डूमुदुम्बरं तं प्रवदन्ति सन्तः ॥ ७ ॥

कपालसरीखा सफेद वर्णवालाहो वह वैद्यजनोंने कपालक कुष्ठ कहा है और चिकनाहो सब अंगमें प्राप्तहो खाजी हो वह उदुंबर कुष्ठ कहाता है ॥ ७ ॥

अथ मंडलकुष्ठ तथा गजचर्मकुष्ठका लक्षण ।

दद्रूपमं यद्भवते च दद्रूर्दद्रूपमं मण्डलकं तमाहुः ॥ विसर्पकं सर्पति तद्विसर्पं तथान्यमान्तं गजचर्मतुल्यम् ॥ ८ ॥

और जो दादके समानहो दादसरीखे मंडलहो वह दद्रुमंडल कुष्ठ कहता है और जो विसर्प रोगकी तरह शरीरमें फैले तिसको विसर्पकुष्ठ कहते हैं जिसकी हस्ती सरीखी त्वचा होजावे तिसको गजचर्मक कुष्ठ कहते हैं ॥ ८ ॥

अथ गोजिह्वककुष्ठ लक्षण।

यद्रूक्ष्यपारुष्यसकर्कशश्च गोजिह्वकं स्यात्खलु भेदयोग्यम् ॥
यवासरक्तानि च मण्डलानि सकण्डुकानि व्रणसंयुतानि ॥ ९ ॥

और जो रूषाहो कठोरहो करडाहो गौकी जिह्वाके समान वर्णवालाहो वह गोजिह्वक कुष्ठ कहाता है और रक्त मंडलहो कुंडलसरीखेहों व्रणसे संयुक्तहो वह लोहित मंडल कुष्ठ जानना ॥ ९ ॥

अथ विपादिका कुष्ठलक्षण।

ज्ञेयं तु तल्लोहितमण्डलश्च रक्तोद्भवं तद्रुधिराश्रितश्च ॥
सवेदनार्त्तस्य परिस्फुटश्च विपादिका सा कथिता विधेया ॥ १० ॥

और जो रक्तसे उत्पन्नहो रक्तके आश्रय हो पीडासे युक्तहो प्रकटहो वह विपादिका कुष्ठ कहाता है ॥ १० ॥

सरक्तवातकुपितेन जाता तथैव विस्फोटकसन्निभा वा ॥ तथापरं नाम बहुव्रणं च सूक्ष्मा च सा सुविदिता नरस्य ॥ ११ ॥ कुण्डू विचर्चीभुवने प्रतीता श्वेतानि सूक्ष्माणि च पाटलानि ॥ विसर्पते यस्य नरस्य रक्तं युवा न केनापि भवेच्च सिद्धः ॥ १२ ॥

और जो रक्तवातके कुपित होनेसे उत्पन्न हो और विस्फोटकके समानहो और बहुतसे व्रण हों वह सूक्ष्मा विपादिका नामक कुष्ठ जानना ॥ ११ ॥ और कंडू विचार्चिका ये संसारमें प्रसिद्ध हैं और जिसके सूक्ष्मवर्णवाले तथा सफेदवर्णवाले और पीले वर्णवाले ऐसे चिह्न दीखें और रक्त दुष्टहोके फैलाता है ऐसा तरुणरोग किसीप्रकारसेभी सिद्ध नहीं होता है ॥ १२ ॥

अथ वातादिजन्य कुष्ठका लक्षण।

शिरीषपुष्पाणि शिरीषकाणि सन्त्यक्तभावः पुरुषश्च सूक्ष्मः ॥
तोदस्तथा वेपथुवातलिङ्गं पित्तेनशोषभ्रमदाहतृष्णाः ॥ १३ ॥
श्लेष्मोद्भवे कठिनशीतलपाण्डुरश्च नेत्रे नखेषु च वपुष्यभिलाषता च ॥ मिश्रेण संभृतभवानि भवन्ति यस्य स्यात्सान्निपातिकभवं [illegible] लिङ्गं ॥ १४ ॥

और शिरसके पुष्पोंके समान और सिरसके समान वर्णहो कठोरहो सूक्ष्महो, चभकाहो कंपना हो ये वातसे उपजे कुष्ठके लक्षण हैं और पित्तसे उपजे कुष्टमें शोषहो, भ्रमहो, दाहहो तृषाहो ॥ १३ ॥ और कफसे उपजा कुष्ठ कठिन, शीतल होता है और नेत्र, नख, शरीर ये पीले होजाते हैं इन्होंमें खाजि करनेकी इच्छा रहे और सब मिलेहुए दोषोंसे मिलेहुए लक्षण होते हैं सान्निपातसे उपजे कुष्ठमें बहुतसे लक्षण मिलते हैं ॥ १४ ॥

अथ रक्तस्थ कुष्ठ ।

रूक्षं तथा सकण्डु त्वक्स्थितश्च मृदु शीतलम् ॥
आस्रावदाहरक्ताभं रक्तस्थं रक्तगं विदुः ॥ १५ ॥

और जो रूखाहो खाजिहो कोमलहो शीतलहो वह त्वचामें स्थित कुष्ठ जानना और जिसमें झिरनाहो रक्तसरीखी कांतिहो वह रक्तमें स्थितहुआ कुष्ठ जानना ॥ १५ ॥

अथ मांसस्थ मेदःस्थ तथा अस्थिस्थ कुष्ठ ।

सुस्निग्धं तोदगम्भीरं मांसगश्च विनिर्दिशेत् ॥ मेदःस्थंतोदवेष्टत्वं सुस्निग्धं रक्तलोचनम् ॥ अस्थिसंस्थश्च गम्भीरं विसर्पं नासिकामुखे ॥ १६ ॥

और स्निग्धहो चभकाहो गंभीरहो वह मांसमें प्राप्त हुआ कुष्ठ जानना जो मेदमें स्थितहो तिसमें चुभकाकी पीडाहो चिकनाहो रक्तनेत्रहों और जो अस्थिमें स्थितहो वह गंभीर होता है मुखमें तथा नासिकामें विसर्परोग दीखता है ॥ १६ ॥

अथ मज्जास्थ तथा शुक्रस्थ कुष्ठ ।

मज्जसंस्थश्च विकलो मज्जास्रावश्च जायते ॥ विशीर्य्यते च सर्वाङ्गं तथैव शुक्रगं विदुः ॥ १७ ॥ अतो वक्ष्ये समासेन प्रतिकर्म भिषग्वर ॥ १८ ॥

मज्जामें स्थितहोनेसे विकल होजावे, और मज्जास्राव होता है और जिसमें सब अंग शिथिल होजावें वह वीर्यमें प्राप्त हुआ कुष्ठ जानना ॥ १७ ॥ हे उत्तम वैद्य ! अब संक्षेप मात्रसे इन्होंकी चिकित्साको कहैंगे ॥ १८ ॥

अथ कुष्ठचिकित्सा ।

त्वक्स्थे स्वेदस्तथालेपो रक्तस्रावश्च रक्तगे ॥ विरेकं मांसगे प्रोक्तं मेदोगे क्वाथपाचनम् ॥ १९ ॥ अथ तानि च त्रीण्येवमास्थिमज्जागतानि च ॥ वातिके स्वेदनं पथ्यं पित्ते शीतोपचारणम् ॥ २० ॥

कष्टसाध्यमिदं प्रोक्तमसाध्यं सान्निपातिकम् ॥ रोगकारणमालोच्य तदा कर्म समारभेत् ॥ २१ ॥

त्वचामें स्थितहुए कुष्ठमें पसीना दिवावे लेप करै रक्तमें माप्तहुएमें स्राव करावे मांसमें माप्तहुए कुष्ठमें जुलाब देवै और मेदमें माप्तहुएमें क्काथ पाचन देवै ॥ १९ ॥ और यही उपचार अस्थि, मज्जा, इन्होंमें माप्तहुएमेंभी करना चाहिये वातसे उपजे कुष्ठमें पसीना दिवाना पथ्य है पित्तसे उपजेमें शीतल उपचार करना श्रेष्ठ है ॥ २० ॥ यह कुष्ठरोग कष्टसाध्य कहा है और सन्निपातसे उपजा असाध्य होता है पहलेरोगके कारणको जानके पीछे कर्म करनेका आचरण करै ॥ २१ ॥

पक्षान्पक्षाच्छोधनं पाचनञ्च मासान्मासान्कारयेद्रेचनञ्च ॥ मासान्कुष्ठे शोधनाय प्रकर्षात्षष्ठे षष्ठे मास्यसृग्मोक्षणञ्च ॥ २२ ॥ वासापटोलफलिनीलवणं वचाञ्च निम्बत्वचं क्वथितमाशु पिबेत्कषायम् ॥ कुष्ठे करोति वमनं मदनान्विते च पथ्याकषाय वमने मदनान्वितेषु ॥ २३ ॥ फलत्रिकं त्रिवृद्दन्ती विरेचकं भिषग्वर ॥ क्काथो वचोष्णतोयेन पानेस्याद्भिषगुत्तम ॥ २४ ॥ श्वासप्रश्वासयोर्वैध्या शिरा शिरसि चेद्बहिः ॥ ततः प्रयोजनीयश्च क्काथस्नेहस्य भोजनम् ॥ २५ ॥

और पक्षपक्षके प्रति शोधन और पाचनकर्म करै। महीना २ के प्रति जुलाब दिवानी चाहिये और कुष्ठरोगमें छठे २ महीनेके प्रति रक्तको निकसावे ॥ २२ ॥ और वांसा, परवल, मालकांगनी, नमक, वच, नींबकी त्वचा, इन्होंका क्काथ बना मैनफल मिला कुष्ठमें पीनेसे वमन होता है और पंचवृक्षोंका क्काथ बना मैनफल मिला वमनके वास्ते देना चाहिये॥२३॥ हे वैद्य ! त्रिफला, निशोत, इन्होंसे जुलाब दिवानी श्रेष्ठ है और वचका क्काथ बना गरम २ जलके संग पीना श्रेष्ठ है ॥ २४ ॥ और कुष्ठमें जो ज्यादै श्वास होवे तो शिरमें रहनेवाली बाहिरकी नस बींधनी चाहिये पीछे क्काथ और स्नेह अर्थात् घृत आदिक भोजन करवाना चाहिये ॥ २५ ॥

शुण्ठ्यादिक्काथ।

शुण्ठीकणाखदिरपाटलिकापटोलीमञ्जिष्ठाक्षुरविषाबिल्वयवानिकानाम् ॥ वासाफलत्रिकजलेन कषायसिद्धः पानान्निहन्ति मनुजस्य च कुष्ठदोषम् ॥ २६ ॥ वासाविडङ्गपिचुमन्दपटोलपाठा-

शुण्ठीसुरेन्द्रतरुपञ्चतरुमूलपथ्याः ॥ क्वाथो निहन्ति मरुत्प्रभवं च कुष्ठं त्रिःसप्तकेऽहनि महौषधमेव योज्यम् ॥ २७ ॥

सूंठ, पीपल, खैर, पाडलवृक्ष, परवल, मँजीठ, लघुगोखरू, अतीश, बेलगिरी, अजवायन, वांसा, त्रिफला, इन्होंका क्वाथ, बना पीनेसे मनुष्यका कुष्ठरोग दूर होता है ॥ २६ ॥ और वांसा, वायविडंग, नींब, परवल, पाठा, सूंठ, देवदार, बडआदि पंचवृक्ष, लाख, मूली, हरडै, इन्होंके क्वाथसे वातसे उपजा कुष्ठका नाश होता है इक्कीस दिनतक यह महान् औषध पीना चाहिये ॥ २७ ॥

गुडूच्यादि क्वाथ।

नित्यं छिन्नोद्भवाचूर्णं तस्याः क्वाथसमन्वितम् ॥ पीतं जीर्णे सघृतञ्च पीतञ्च षाष्टिकं पयः ॥ २८ ॥ हन्ति कुष्ठानि सर्वाणि सप्तधातुगतानि च ॥ २९ ॥

और गिलोयके क्वाथके संग गिलोयके चूर्णको नित्य पीवे जर जावे तब घृत सहित सांठि चावलोंके मांडको पीवे ॥ २८ ॥ यह सातों धातुओंमें प्राप्त हुए सब कुष्ठोंका नाशता है ॥ २९ ॥

अथ कुष्ठरोगमें लेपविधि।

काश्मर्य्यदरदघनञ्च कुष्ठं निशाद्वयं काञ्जिककुष्ठमेतत् ॥ लेपे प्रशस्तं विनिहन्ति कुष्ठं विचर्चिकां तथा विसर्पदोषम् ॥ ३० ॥ पिष्टानि तत्र मधुकाञ्जिकमूत्रपिष्टलेपेन कुष्ठमपि दुष्टविचर्चिकाञ्च ॥ ३१ ॥ विसर्पदोषे प्रोक्तानि धावनानि च कारयेत् ॥ सौवीरकरसेनापि धावनं त्रिफलाम्बुना ॥ ३२ ॥ वातिके चैव कुष्ठे च प्रशस्तं कथितं बुधैः ॥ निम्बपत्रकषाये च यष्टी मधुककल्कितम् ॥ ३३ ॥ दुग्धेन शीतलेनापि विदार्य्याः क्वाथकेन वा ॥ हन्ति कुष्ठं महाघोरं धावनं न प्रशस्यते ॥ ३४ ॥ अग्निमन्थपटोलानि मातुलुङ्गदलानि च सठीपर्पटकः क्वाथो धावनं श्लेष्मरोगिणाम् ॥ ३५ ॥ विपादिकां नवनीतेन क्षालयित्वा विदांवर ॥ स्वेदयित्वार्कदुग्धैश्च मधुतैलेन लेपनम् ॥ ३६ ॥

खंभारी, सिंगरफ, नागरमोथा, कूठ, दोनों हलदी, कांजीमें शोधा हुआ लोहा, इन्होंको पीस कुष्ठपै लेप करना श्रेष्ठ कहा है और विचर्चिका, विसर्पदोष, इन्होंका नाश होता है॥ ३०॥

और सीसाकी रजको शहद, कांजी, गोमूत्र इन्होंमें पीस लेप करनेसे कुष्ठ, दुष्टविचर्चिका, इन्होंका नाश होता है ॥ ३१ ॥ और विसर्प दोषमें कहेहुए धोवनेके कर्म यहां करने चाहिये और कांजी, त्रिफलाका रस इन्होंसे धोना श्रेष्ठ है ॥ ३२ ॥ यह इलाज वैद्यननेंने वातसे उपजे कुष्ठमें श्रेष्ठ कहा है और नींबके पत्तोंके काथमें मुलहटीका कल्क बना॥३३॥ शीतल दूधमें मिला अथवा विदारीकंदके काथमें मिला तिससे धोवनेसे महावोर कुष्ठका नाश होता है ॥ ३४ ॥ और अरणी, परवल, बिजौराके पत्ते, कचूर, पित्तपापडा इन्होंका काथ बना कफसे उपजे कुष्ठको धोना श्रेष्ठ है ॥ ३५ ॥ और विपादिका कुष्ठको नौंनी घृतसे संयुक्त कर तहां आकके दूधसे पसीना दिवा शहद और तैलका लेप करै ॥ ३६ ॥

अथ खदिरआदिकाथ।

खदिरनिम्बकदम्बकं तथा ककुभः पाटलिका शिरीषकम् ॥ कुटजकिंशुकवासुसमोरटः वटकुटं नटपिप्पलिपीलुकम् ॥ ३७ ॥ धवमुदुरम्बवेतसमेकतः कथितपानविधानघृतेन तु ॥ सकलकुष्ठविनाशनकारकं भवति चेन्दुसमानवपुर्नरः ॥ ३८ ॥

खैर नींब, कदंब, अर्जुनवृक्ष, पाडलवृक्ष, शिरस, कूडाकी छाल,केशू, वांसा, मोर अर्थात् खैरका भेद, वड, टेंटूवृक्ष, पीपल, पीलूवृक्ष ॥ ३७ ॥ धव, गूलर, वैत, इन्होंको एक जगहकर काथ बना घृत मिला पनेिसे संपूर्ण कुष्ठोंका नाश होता है और चंद्रमाके समान सुंदर शरीर होजाता है ॥ ३८ ॥

अथ आरग्वधआदिकाथ।

आरग्वधधातकीकर्णिकारधवार्जुनैः सज्जककिंशुकानाम्॥कदम्बनिम्बकुटजाटरूषाः खदिरेण युक्ताश्च तथैव मूर्वा ॥ ३९ ॥ मूलानि चैषामुपहृत्य सम्यगष्टावशेषे कथितः कषायः ॥ घृतेन तुल्यं प्रतिमानवस्य निहन्ति सर्वाणि शरीरजानि ॥ ४० ॥ कुष्ठानिसर्वाणि विसर्पदद्रुविचर्चिका हन्ति नरस्य शीघ्रम् ॥४१॥

अमलतास, धाय, कनेर, धववृक्ष, अर्जुनवृक्ष, रालवृक्ष, केशू, कदंब, नींब, कूडाकी छाल, वांसा, खैर, मूर्वा ॥ ३९ ॥ इन्होंकी जडको ले काथ बना लेवे पीछे अष्टमांश बाकी रहे तब उतार तिसमें समान भाग घृत मिला खानेसे मनुष्यके शरीरके सब प्रकारके कुष्ठोंका नाश होता है ॥ ४० ॥ सबप्रकारके कुष्ठ, विसर्परोग, दाद, विचर्चिका इन्होंका शीघ्रही नाश होता है ॥ ४१ ॥

अथ खदिरादिघृतपानक।

खदिरकदरमूर्वावालकं कर्णिकारः कुटजसपरिभद्रारग्वधाश्चेति पिष्टाः ॥ क्वथितमिततमांशं वैघृतपानमस्य विनिहन्ति सकलान् वै कुष्ठवैसर्पदर्पान् ॥ ४२ ॥

खैर, सफेद खैर, मूर्वा, नेत्रबाला, बडा अमलतास, कूडाकी छाल, नींब, अमलतास इन्होंको पीस इन्होंके समान घृत मिला क्वाथ बना पीनेसे संपूर्ण कुष्ठरोग विसर्पदोष इन्होंका नाश होता है ॥ ४२ ॥

अथ भल्लातक तैल।

भल्लातकत्र्यूषणमक्षचूर्णं कुष्ठञ्च गुञ्जालवणानि पञ्च॥ फलत्रिकं तैलविपाचितानि चाभ्यञ्जनं हन्ति च दद्रुकुष्ठम् ॥ ४३ ॥

भिलावा, त्र्यूषण अर्थात् सोंठ, मिर्च, पीपल, बहेडा, कूठ, चिरमठी, पांचोंनमक, त्रिफला इन्होंको समान भाग ले चूर्ण बना तैलमें पकावे पीछे तिस तैलकी मालिस करनेसे दद्रुकुष्ठका नाश होताहै ॥ ४३ ॥

अथ तिलतैल।

अश्वघ्नमूलं मलिनं समङ्गा निशाद्वयं सर्षपचित्रकञ्च ॥ सभृङ्गराजं कुहतुम्बिका च कुष्ठं विडङ्गं मगधा च चूर्णम् ॥ ४४ ॥ स्नुह्यर्कदुग्धेन विपाचितं तु तैलं तिलानां परिपक्कमेतत्॥ अभ्यञ्जनं चैव नरस्य नूनं दद्रूणिकण्डूनि विनाशयेच्च ॥ ४५ ॥

कनेरकी जड, अगर, मजीठ, दोनों हलदी, सिरसम, चीता, भंगरा, कुटकी, तुंबी, कूठ, वायविडंग, पीपली ॥ ४४ ॥ इन्होंको थोहरके और आकके दूधमें पका पीछे इसमें तिलोंके तैलको पकावे इसकी मालिस करनेसे मनुष्यके दद्रुकुष्ठोंका नाश शीघ्रही होता है ॥ ४५ ॥

अथ हरिद्रादितैल।

हरिद्रा समङ्गा सुराह्वं सचित्रविडङ्गानि कृष्णा विशालाम्बु कुष्ठम् तथा लाङ्गली चक्रमर्दं च गुञ्जा विशाला तथारिष्टपत्राणि चैतत् ॥४६॥ चूर्णं कृतं भावितं वै तथैतद्गुडेन घर्मे विपाच्यम् ॥ हितं लेपने कुष्ठपामाविचर्चीर्नरस्यातिशीघ्रं निहन्ति ॥ ४७ ॥

हलदी, मंजीठ, देवदार, चीता, वायविडंग, पीपली, इंद्रायण, नेत्रवाला, कूठ, कलहारी, पवाँड चिरमठी, इंद्रायण, नींबके पत्ते ॥४६॥ इन्होंको समान भाग ले चूर्ण बना गुडके रसमें भावना दे घाममें धरके पका लेप करना हित है कुष्ठ, पामा, विचार्चिका इनरोगोंका शीघ्रही नाश होता है ॥ ४७ ॥

अथ निंबादिघृत।

निम्बं पटोलं च किरातकश्च जाती विशाला सपुनर्नवा च॥ पयोदलाक्षारसमेव वासा त्रायन्तिका बिल्वककुष्ठयष्टिः ॥४८॥ संचूर्णितं क्षीरदधिसमेतं घृतं विपक्कं परिषेचने च॥ हितश्च कुष्ठक्षत दद्रुरक्तं पामाविचर्चीविनिहन्ति कण्डूम् ॥ ४९ ॥

नींब, परवल, चिरायता, जावित्री, इंद्रायण, सांठी, नागरमोथा, लाख, वांसा, त्रायमाण, बिल्वकूट, मुलहठी ॥४८॥ इन्होंका चूर्ण बना दही और दूध मिलावे तिसमें घृत मिला सिद्ध करै पीछे इस घृतसे सेक करनेसे कुष्ठक्षत, दद्रुरक्त, पामा, विचार्चिका, कंडू इन्होंका नाश होता है ॥ ४९ ॥

अथ पांडुरकुष्ठकी चिकित्सा।

पित्तश्चैव गदं भूत्वा वातेनैव समीरितम्॥ सरक्तश्च प्रकुपितं कुरुते पाण्डुरच्छविम् ॥ ५० ॥ स्तब्धचित्तं विरूपश्च तस्य च शृणु लक्षणम्॥असाध्यं कुष्ठं साध्यं वा विज्ञेयं तद्भिषग्वरैः ॥ ५१ ॥ ईषद्रक्तं भवेत् पाण्डु सन्निपातोत्थं च जायते ॥ असाध्यं तच्च सर्वाङ्गचित्रं स्निग्धं तदेव तु ॥ ५२ ॥ पीतच्छवि पाण्डुररूक्षमेव उपागतं साध्यतमं प्रतीतम् ॥ संपाचनं शोधनमेव शस्तं विरेचनं रक्तविमोक्षणञ्च ॥ ५३ ॥ वासागुडूचीत्रिफलाकरञ्जपटोलनिम्बार्जुनवेतसानाम् ॥ कृष्णासमङ्गासहितं च कल्कं पाने हितं चित्रकमण्डले च ॥ ५४ ॥ खदिरवासकनिम्बपटोलकैर्धवयवासकमेव फलत्रिकैः ॥ सकलकुष्ठविसर्पकमण्डलं विजयते मनुजस्य च पाण्डुरम् ॥ ५५ ॥ पाठाविडङ्गमगधासुरदारुचित्रं दद्रुघ्नरात्रियुगलं च तथा समङ्गा ॥ कुष्ठं वचामधुकसैन्धवकाञ्जिकेन पिष्टं तु मूत्रकरुधिररसेन वापि ॥ ५६ ॥ प्रलेपने चित्रमथैव सिद्धं विनाशमायाति च कण्डुकुष्ठम् ॥ विचर्चिका नाशयते च कण्डूं

विस्फोटमाशु प्रति सर्पणानि ॥ ५७ ॥ भृङ्गराजो हरिद्रा च दूर्वा जाती विडङ्गकाः ॥ कृष्णास्तिलाश्चित्रकाणि तथैव हरिचन्दनम् ॥ ५८ ॥ मूत्रेण पेपितं तच्च लेपनं चित्रकुष्ठिनि ॥ हन्ति दद्रूणि सर्वाणि कुष्ठं दद्रूविचर्चिकाः ॥ ५९ ॥ न विदाहीनि चाम्लानि वातलानि तथैव च ॥ ज्वरे च प्रोक्तानि पथ्यानि तानि चात्र प्रयोजयेत् ॥ व्रणेषु कुष्ठराजीषु हितमेवोपचारिणाम् ॥ ६० ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने कुष्ठचिकित्सा नामैको नचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ इति कायतन्त्रं समाप्तम् ॥

वातसे प्रेराहुआ पित्त रोगरूप होके रक्तके संग कुपितहो शरीरके पांडुर अर्थात् कछुक पीला सहित सफेद वर्णवाला करदेता है ॥ ५० ॥ चित्त दुखी रहे विरूप होजावे ऐसे लक्षणोंको सुन यह कुष्ठ असाध्य और साध्य दो प्रकारका होता है ॥ ५१ ॥ और जो कछुक लाल वर्णसे युक्त पीला वर्णवाला कुष्ठहो वह सन्निपातसे उपजा जानना वह असाध्य होता है तिसमें सब अंगमें चिकने २ चितंगे होते हैं ॥ ५२ ॥ और जो रूखा तथा पीला वर्णवाला पांडुरकुष्ठहो वह साध्य होता है तिसमें पाचन और शोधन करना तथा जुलाब दिवानी और फस्त खुलानी श्रेष्ठ है ॥५३॥ वांसा, गिलोय, त्रिफला, करंजुवा, परवल, नींब, अर्जुनवृक्ष, वेत, पीपल, मँजीठ, इन्होंका कल्क बना चित्रकमंडल कुष्ठमें पीना हित है ॥ ५४ ॥ और खैर, वांसा, नींब, परवल, धव, जवांसा, त्रिफला, इन्होंका कल्क बना पीनेसे सबप्रकारके कुष्ठ विसर्प, मंडल, पांडुरकुष्ठ, इन्होंका नाश होता है ॥ ५५ ॥ और पाठा, वायविडंग, पीपल, देवदार, चीता, पुआड, दोनों हलदी, मँजीठ, कूठ, वच, मुलहटी-सेंधानमक, इन्होंको कांजीमें अथवा गोमूत्रमें अथवा रुधिरके रसमें पीसि ॥ ५६ ॥ लेप करनेसे चित्रकुष्ठका नाश होता है और खाजिवालाकुष्ठ, विचर्चिका, कंडू, विस्फोटक, विसर्प, इन्होंका नाश होता है ॥ ५७ ॥ और भंगरा, हलदी, दूब, जीरा, वायविडंग, कालेतिल, चीता, लाल चंदन ॥ ५८ ॥ इन्होंको गोमूत्रमें पीस लेप करनेसे चित्रकुष्ठका नाश होता है और सबप्रकारके दाद, दद्रुकुष्ठ, विचर्चिका, विस्फोटक और विसर्प इन्होंका नाश होता है ॥ ५९ ॥ और कुष्ठरोगमें विदाही, खट्टा, वातवाला ऐसा भोजन नहीं करना चाहिये और ज्वरमें कहेहुए जो पथ्य हैं वे यहाँ करने चाहिये और व्रणोंमें कुष्ठोंमें यही उपचार करना श्रेष्ठ है ॥ ६० ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने कुष्ठचिकित्सानाम एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

चत्वारिंशोऽध्यायः ४०.

अथ शालाक्य तंत्र।

अथ शिरोरोगचिकित्सा।

आत्रेय उवाच ॥ अत्रिभारातियोगेन अतितीक्ष्णोष्णभावतः ॥ विनाभ्यङ्गेन वा शैत्यात्पित्तेनातिविशेषतः ॥ १ ॥ क्रिमिदोषेण वा पुंसां जायते च शिरोगदः ॥ वातरक्तकफात्पित्तात्पित्तेनापि विशेषतः॥२॥सन्निपातेन विज्ञेयाः क्रिमिजाश्च तथापरे ॥ अर्द्ध-शीर्षविकारश्च दिनवृद्धिकरस्तथा ॥ ३ ॥ वातेन रात्रौ भवते व्यथा च अथातुरस्य व्यथते शिरश्च ॥ सौख्यं लभेत्स्वेदनम-र्दनेन वातेन सा विड्वृषणे रुजा वा ॥ ४ ॥ यस्योष्णमङ्गं भवते शिरस्यं घर्मे सतापे च दिने च रात्रौ ॥ स धूमतो वा कटुको बलाशे शीतात्सुखं वा निशि स्वास्थ्यमेति ॥ ५ ॥ शीतात्सु खं वा प्रथमश्च तृष्णा सतीव्रपित्ताद्भवते रुजा च ॥ सूर्य्योदये वा भवते दिनान्ते भ्रमश्च तृष्णा भवते सुतीव्रा ॥ ६ ॥ सजाड्य-मुण्डं भवते च शीतं स्वेदेन युक्तं युगलश्च नूनम् ॥ सुदृश्यनेत्रं नयते च तद्वा कफे यदीष्टः शिरसो विकारः ॥ ७ ॥ रक्तेन ना-सापुटकेऽपि जालं निरेति शेषा वदने च तृष्णा ॥ रक्ताक्षमन्या जठरे च यस्य तमाहू रक्तोद्भवशीर्षरोगम् ॥ ८ ॥ मध्यं प्रदूष्य प्रतनोति पीता नाशापरिस्त्रावि साविड्जलश्च ॥ सजाड्यमोहश्व-सनं च यस्य त्रिदोषरोधाद्भवते शिरोऽर्त्तिः ॥ ९ ॥ यस्यातिमा-त्रं शिरसि प्रतोदो विभज्यमानेऽपि च मस्तकान्ते ॥ घ्राणे परि-स्त्रावि सरक्तपूयं क्रिमिप्रसूता च शिरोव्यथा च ॥ १० क्रोधा-च्छोकाद्भवेच्चान्या व्यायामेऽतिश्रमेषु च ॥ सा वातेन शिरः पीडा सरुजे च नृणामपि ॥ ११ ॥ अतिलेखनपाठेन तथा

सूक्ष्मान्निरीक्षणात् ॥ दूरदृष्टेक्षणेनापि वेदना वातरक्तजा ॥ १२ ॥ नासिकार्द्धे व्यथा तस्य व्यथा भ्रूयुगले भवेत् ॥ नीलं कृष्णञ्च पश्येत वेदना मस्तके भवेत् ॥ १३ ॥ न रक्तेन विना पित्तं रक्तं पित्तेन चाल्यते ॥ न पित्तेन शिरोऽर्त्तिः स्यात्पित्तं वातेन चाल्यते ॥ १४ ॥

आत्रेयजी कहते हैं-अतिभारके अत्यंत योगसे अतितीक्ष्ण भावसे तैलादिकी मालिस करे विना शीतलता लगनेसे अत्यंत पित्तसे ॥ १ ॥ अथवा क्रिमि दोषसे पुरुषोंके शिरो रोग होता है और वातरक्त, कफपित्त, पित्त ॥ २ ॥ अथवा सन्निपात, इन्होंसे उत्पन्नहोने-वाले शिरोरोग क्रिमिज शिरोरोग ऐसे होते हैं, और अधशिरका विकार तथा दिनके चढनेके समय शिरोरोग होता है ॥ ३ ॥ वातदोषसे उपजे शिरोरोगमें रात्रिमें पीडाहो और पीडित हुवेका शिर दूखै और पसीना दिवाने तथा मर्दन करनेसे सुख होवे विष्ठा उतरनेके समय अथवा वृषणस्थानमें दुःखहो वह वातसे उपजी पीडा जाननी ॥ ४ ॥ जिसका शिर गर्म रहे और घामके संतापमें दिनमें अथवा रात्रिमें धूवांसे शिरमें पीडाहो कडु कफ गिरै वह पित्तसे उपजा शिरोरोग जानना जिसमें रात्रिमें सुख होता है ॥ ५ ॥ और शीतलतासे सुखहो तृषा लगे तीव्रपीडाहो वह पित्तसे उपजी पीडा जाननी और जो सूर्योदयमें अथवा दिनके अंतमें श्रमहो तृषाहो पीडाहो ॥ ६ ॥ शिरमें जडताहो शीतलहो पसीनेसे युक्त दोनों नेत्रहों और सुंदर नेत्रहों वह कफसे उपजा शिरोविकार जानना ॥ ७ ॥ और रक्तसे उपजे शिरके विकारसे नासिकामांहसे रक्त झिरै मुखमें तृषा रहै और जिसके कंधा, कंधाके समीप मन्यास्थान, पर, ये लालहो तिसको कफसे उपजा शिरोरोग कहते हैं ॥ ८ ॥ और मध्यमें दूषितहो पीली नासिका होजावे दुर्गंधि सहित जल झिरै जडताहो मोहहो श्वासहो वह त्रिदोषसे उपजी शिरकी पीडा जाननी ॥ ९ ॥ जिसके शिरमें अत्यंत चभकाहो और मस्तक फटाजावे नासिकासे रक्त और राध झिरे वह क्रिमियोंसे उपजी शिरकी पीडा जाननी ॥ १० ॥ और क्रोध, शोक, कसरत, अत्यंत परिश्रम इन्होंसे उपजी हुई पीडा वातके कोपसे होती है तहां चभका होता है ॥ ११ ॥ और अत्यंत लिखना, पढना, सूक्ष्म, देखना, दूरसे दृष्टिदेके देखना इन्होंसे उपजी पीडा वात रक्तके कोपसे जाननी ॥ १२ ॥ तिसकी आधी नासिकामें और दोनों भ्रुकुटियोंके आधे भागमें पीडाहो नीला और काला वर्ण सरीखा दीखै मस्त-कमें पीडाहो ॥ १३ ॥ और रक्तके विना पित्त नहीं होती है और रक्त, पित्तसे चलायमान होता है और पित्तसे विना शिरमें पीडा नहीं होती है पित्त वातसे चलायमान होताहै ॥ १४ ॥

तस्माद्वक्ष्याम्युपचारं शृणु भेषजलक्षणम् ॥ स्वेदः प्रलेपनं नस्यं पानाभ्यङ्गञ्च मर्दनम् ॥ १५ ॥ स्वेदनं वातकफजे चाभिघाते

तथा पुनः॥ पित्तजे रक्तजे वापि न कुर्य्यात्स्वेदनं तयोः॥१६॥ रक्तजे च शिरा वेध्या पित्तजे वापि कुत्रचित्॥ कोकिलाख्या च तर्कारि कटुका निम्बपत्रकैः॥ १७॥ शोभाञ्जनकपुत्रैस्तु क्वाथं वा तेन स्वेदयेत्॥ अमीषाञ्च प्रलेपेन सौख्यं चास्य प्रजायते॥ १८॥ संशीतपरिषेकैश्च यष्टीमधुकचन्दनैः॥ केसरैर्मातुलुङ्गैश्च पित्तजे शीतलेपनम्॥ १९॥ कदम्बार्जुनसिन्धुश्च लेपनार्थे भिषग्वर॥ गुडेन नागरा वापि पथ्यां वापि गुडेन वा॥ २०॥ गुडशोभाञ्जनरसैर्नस्ययोगात्पृथक्पृथक्॥ नस्येन बस्तमूत्रेण शिरोऽर्त्तिश्चोपशाम्याति॥ २१॥ मरिचं पथ्या कट्फलं मूत्रेणोष्णोदकेन वा॥ नस्यं कफोद्भवे घोरे शिरोरोगे भिषग्वर॥ २२॥ वचामधुकसारं वा मूलं वा गिरिकर्णिका॥ नस्यप्रयोगे विहितं सन्निपाते शिरोगदे॥ २३॥ वन्ध्याकर्कटकीमूलं पिष्टमूष्णेन वारिणा॥ मितं नस्ये प्रयुञ्जीत क्रिमिजे च शिरोगदे॥ २४॥

इसवास्ते इसके उपचारको कहते हैं औषधोंको सुन पसीना दिवाना, लेप करना, नस्य दिवानी, पान कराना, मालिस मर्दन कराना॥१५॥ और वात कफसे उपजे तथा चोट आदिसे उपजे शिरोरोगमें पसीना दिवावे और पित्तसे तथा रक्तसे उपजेमें पसीना नहीं दिवावे॥१६॥ रक्तसे उपजे शिरोरोगमें फस्त खुलावे और कहींक पित्तसे उपजेमेंभी शिरावेध श्रेष्ठ है और कंकोल, अरणी, कुटकी, नींबकेपत्ते॥१७॥ सहिंजनाके पत्ते, इन्होंका क्वाथ बना तिससे पसीना दिवावे अथवा इन्होंके लेप करनेसे सुख होता है॥ १८॥ और पित्तके शिरोरोगमें मुलहटी, महुआवृक्ष, चंदन, इन्होंके शीतल क्वाथसे परिसेक करै और बिजौरेकी केशरसे शीतल २ लेपकरै॥ १९॥ और हेउत्तमवैद्य! कदंब, अर्जुनवृक्ष, सेंधानमक, इन्होंका लेप करना श्रेष्ठ है और गुडके संग सूंठ तथा हरडैका लेप श्रेष्ठ है॥ २०॥ और गुड सहिंजनेका रस इन्होंकी पृथक् २ नस्य देनी श्रेष्ठ है और बकरेके मूत्रकी नस्य देनेसे शिरकी पीडाका नाश होता है॥ २१॥ और कफसे उपजे घोर शिरोरोगमें मिर्च, हरडै, कायफल, इन्होंको पीस गरम २ गोमूत्रके संग नस्य देना श्रेष्ठ है॥ २२॥ और वच, महुआ, मूली, अमलतास, इन्होंको नस्यमें देनेसे सन्निपातसे उपजा शिरोरोग नाश होता है॥ २३॥ और बांझ ककोडीकी जडको पीस गरम जलके संग नस्य देनेसे कृमिसे उपजा शिरोरोग नाश होता है॥ २४॥

अथ षड्बिन्दुनामकतैल ।

भृङ्गराजरसं चैकं द्विभागं काञ्जिकेन च ॥ शोभाञ्जनं भागत्रयं सर्वं तत्र विनिक्षिपेत् ॥ २५ ॥ सौवीरकरसं पञ्च षडभागं तुम्बिकारसम् ॥ शुण्ठी सैन्धवमम्लीका पटोलं वासकं शिवा ॥२६॥ अभया सुरसा चैव तैलञ्च चतुरंशकम् ॥ पाचितं तत्तु नस्येन योजयेच्च षड्बिन्दुकम् ॥ २७ ॥ तथैव मस्तकाभ्यङ्गे हितं स्यात्कर्णपूरके॥ हितं वातादिजेरोगे शिरोऽर्त्तौ क्रिमिजे तथा२८

भंगराका रस एक भाग, कांजी दो भाग, सहिंजना ३ भाग ॥ २५ ॥ बेरोंका रस पांच भाग तुंबीका रस ६ भाग ऐसे इन्होंको एक जगह मिला सूंठ, सेंधानमक, अमली, परवल, बांसा, हलदी ॥ २६ ॥ हरडै, तुलसी, इन्होंको मिला पीछे इनसब रसोंसे चतुर्थांश तैल मिला तिसको पकाके फिर तिस तैलकी छह बूंद नस्यमें देनेसे ॥ २७ ॥ तथा मस्तकपै लेप करनेसे अथवा कानमें पूरनेसे वातादिक शिरोरोग तथा क्रिमियोंसे उपजा शिरके रोगका नाश होता है ॥ २८ ॥

अथ विंदुत्रयतैल ।

करञ्जबीजस्य विभीतकानां पुटेन तैलं परिहृत्य धीमन् ॥ बिन्दुत्रयं नस्यविधौ प्रयोज्यं जघान कुष्टंक्रिमिजं विकारम् २९

करंजुवाके बीज, बहेडा, इन्होंको पुटपाकमें धर तैल निकास तिसकी तीन बूंद नस्यमें दे यह तैल कुष्ठ, क्रिमिसे उपजा विकार इन्होंका नाश करता है ॥ २९ ॥

अथ कुष्ठादिघृत ।

कुष्ठं च यष्टीमधुकं च नीत्वा पटोलजातीसुरसारसञ्च ॥ विपाचितं तन्नवनीतकञ्च घृतेन नूनं च सरक्तपित्ते ॥ ३० ॥ सशर्करायुक्तमिदं दिवा च गव्यं प्रवृद्धप्रभवे च दोषे ॥ ३१ ॥

और कूठ, मुलहटी, परवल, जावित्री, ब्राह्मीका रस, नौंनी घृत इन्होंको पकालेवे पीछे इसघृतकी नस्य रक्तपित्तसे उपजे ।शिरके रोगमें देवै और दिनके बढनेके समय जो दर्द बढाता है ऐसे रोगमें इसघृतमें खांड मिलाके नस्य देना हित है ॥ ३० ॥ ३१ ॥

अथ लाक्षादितैल ।

लाक्षारसं चन्दनयष्टिकानां पटोलधात्रीफलशर्कराणाम् ॥ दधिसदुग्धं नवनीतकञ्च विपाचिते नस्यविधौ प्रयुज्यते ॥ ३२ ॥ भ्रूदोषशङ्खक्षतज क्षये वा दिनादिवृद्ध्या प्रभवेऽपि दोषे ॥ ३३ ॥

लाखका रस, चंदन, मुलहटी, परवल, आंवला, खांड, दही, दूध, नौंनीघृत इन्होंको पका नस्य देनेसे ॥ ३२ ॥ भ्रूदोष कनपटीस्थानका दर्द चोटसे तथा क्षयरोगसे उपजा तथा दिनवृद्धिके अनुसार शिरोरोग इन्होंका नाश होता है ॥ ३३ ॥

अथ कुंकुमादिघृत ।

कुङ्कुमं यष्टिमधुकं कुष्ठं च शर्करासमम् ॥ पक्वञ्च नवनीतेन घृतं नस्ये प्रयोजयेत् ॥ ३४ ॥ नश्यन्ति पित्तजा रोगा दिनवृद्ध्यो- पवर्जनात् ॥ अर्द्धशीर्षविकारश्च प्रशमं याति सत्वरम् ॥ ३५ ॥

इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने शिरोरोगचिकित्सा नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

और केशर, मुलहटी, कूठ, खांड, नौंनीघृत इन्होंको समान भाग ले पकाके नस्यदेनेसे ॥ ३४ ॥ पित्तसे उपजे तथा दिनवृद्धि शिरोरोग अर्धशिरा इन्होंका शीघ्रही नाश होता है ॥ ३५ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने शिरोरोगचिकित्सानामचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

एकचत्वारिंशोऽध्यायः ४१.

अथ भ्रूदोषलक्षण ।

आत्रेय उवाच ॥ अतिपठनशीलस्यसूक्ष्मवस्त्रेक्षणेनवा ॥ दूरालोकेन चोष्णेन भ्रूदोषश्चोपजायते ॥ १ ॥ रक्तवाताश्रितो दोषः पित्तेन सह मूर्च्छितः ॥ भ्रूव्यथा च प्रभवति नासावंशोद्भवा शिरा ॥ २ ॥ व्यथते चोष्णवेलासु शीतेन स्याद्विशेषतः ॥ नेत्रमध्येनीलपीतमण्डलानि च पश्यति ॥ ३ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—अत्यंत पढनेसे सूक्ष्म वस्त्र आदिके देखनेसे दूरसे देखनेसे गरम वस्तुके सेवनेसे भ्रूदोष रोग होजाता है ॥ १ ॥ रक्त वातके आश्रयहुआ दोषपित्तके संग मूर्च्छित हो भ्रुकुटियोंमें पीडाकर देता है और नासिकाकी डंडीपै होनेवाली नस ॥ २ ॥ पीडित होती है गरमीके समय पीडा होती है और ठंडकमें ज्यादे पीडा होती है और नेत्रोंके मध्यमें नीले और पीले मंडल दीसै ॥ ३ ॥

भ्रूदोषकी चिकित्सा।

तस्यादौ च क्रियां कुर्य्याच्छिरा वेध्या प्रयत्नतः ॥ पूर्वोक्तं स्वेदनं कार्य्यं नस्ये षड्बिन्दुकादिकम् ॥ ४ ॥ देवदारु रजनी घनं सठी पुष्करं कुटजबीजमागधी ॥ कुष्ठरोध्रचविकायवासकं क्वाथितं च पुनरेव विस्रुतम् ॥ ५ ॥ तत्र गुग्गुलं विनिक्षिपेत्पुनः शुण्ठिसैन्धवफलात्रिकं हितम् ॥ चूर्णितं दधिपयोविमिश्रितं पाचितं च नवनीतकं च तत् ॥ ६ ॥ सिद्धमेव विदधीत शीतलं शर्करायुतमिदं हितनस्यम् ॥ नस्यकर्म शिरसो रुजापहं भ्रूललाटभुजशङ्खमूलकम् ॥ ७ ॥ शीर्षरोगमपि चार्द्धशीर्षकं तोदने च विहितेन केवलम् ॥ कर्मरोगमपि वारयंत्यपि तैलश्च शिरोरोगहरं परम् ॥ ८ ॥ ताम्बूलपत्रस्य रसं बिडङ्गं सिन्धूद्भवं हिङ्गुगुडेन युक्तम् ॥ जलेन पिष्टं विहितं च नस्यं भ्रूशङ्खदोषांश्च क्रिमीन्निहन्ति ॥ ९ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने भ्रूदोषचिकित्सा नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

इस रोगकी आदिमें यत्नसे सिरोवेध कर्म करै और पहले कहाहुआ पसीनेका कर्म करवावे और नस्यमें षड्बिंदुक आदि तैलको देवै ॥ ४ ॥ और देवदार, हलदी, नागरमोथा, कचूर, पोहकरमूल, कूडाका बीज, पीपल, कूठ, लोध, चव्य, जवांसा इन्होंका काथ बना तिसको छान ॥ ५ ॥ पीछे तिसमें गूगल, सूंठ, सेंधानमक, त्रिफला इन्होंका चूर्ण मिला दही दूध ये मिला और नौंनीवृत मिला ॥ ६ ॥ पीछे इसको पकावे सिद्ध होजावे तब शीतलकर खांड मिला इसकी नस्य देनेसे शिरके रोगका नाश और भ्रूकुटि, मस्तक, भुजा, कनपटीका स्थान ॥ ७ ॥ शिरोरोग अधशिरेका रोग इन सब रोगोंकी पीडाका नाश होता है और इसीप्रकारसे सिद्ध किये हुवे तैलसे कानके रोगकी पीडा दूर होती है और शिरके रोग हरनेमें अति श्रेष्ठ है ॥ ८ ॥ और नागर पानका रस, वायविडंड, सेंधानमक, हींग, गुड इन्होंको जलमें पीस नस्य देनेसे भ्रूकुटी, कनपटी इनकी पीडा, क्रिमियोंसे उपजी शिरकी पीडा, इन्होंका नाश होता है ॥ ९ ॥ इति वेरीनिवासि० हारीतसंहिताभाषाटीकायां भ्रूदोषचिकित्सानाम एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ४२.

अथ नासारोग लक्षण।

आत्रेय उवाच॥ नासारोगो भवेद्धीमन् क्रिमिजो दोषजः पुनः॥ रक्तजश्च भिषक्छ्रेष्ठ लक्षणञ्च शृणुष्व मे॥ १॥ वाताच्छिरोऽर्त्तिः शोफश्च सदोषे वातपैत्तिकम्॥ कफजे सघनं शीतं क्रिमिजेऽसृगुपवाहनम्॥ २॥

आत्रेयजी कहते हैं–हे बुद्धिमन् वैद्य! नासिकाका रोग क्रिमिज और दोषज तथा रक्तज होता है तिन्होंके लक्षणोंको सुन॥ १॥ वातसे उपजेमें शिरमें पीडा होती है और वातपित्तसे उपजेमें शोजा होता है कफके नासा रोगमें करडाई और ठंढकपना होती है क्रिमिसे उपजे नासारोगमें रुधिर बहता है॥ २॥

अथ नासारोगचिकित्सा।

नासापाके गुडशुण्ठ्या वातिके नस्यमेव च॥ शर्कराघृतयष्ट्या च पैत्तिके नस्यमेव च॥ ३॥ श्लैष्मिके सुरसावासारसेन विहितञ्च तत्॥ विडङ्गहिङ्गुमगधाः क्रिमिदोषे हिता मताः॥ ४॥ रक्तजेऽसृग्विरेकश्च शिरोरोगस्योपक्रमे॥ ५॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने नासारोगचिकित्सानाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४२॥

वातके नासापाक रोगमें गुड, सूंठ इन्होंकी नस्य देवै पित्तके रोगमें खांड, घृत, मूलहटी, इन्होंकी नस्य देनी श्रेष्ठ है॥ ३॥ और कफके नासारोगमें तुलसी, वांसा, इन्होंके रसकी नस्य देनी श्रेष्ठ है॥ ४॥ और क्रिमिदोषके रोगमें वायविडंग, हींग, पीपली, इन्होंकी नस्य देनी श्रेष्ठ है रक्तसे उपजे नासारोगमें रुधिरकी फस्त खुलावे शिरोरोगके अनुसार कर्म करै॥ ५॥ इति वैरीनि० हारीतसंहिताभाषाटीकायां नासारोगचिकित्सानामद्विचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४२॥

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ४३.



अथ इन्द्रलुप्तरोगका लक्षण ।

आत्रेय उवाच ॥ ॥ केशघ्नस्य चिकित्सां तु शृणु हारीत साम्प्रतम् ॥ रूक्षं सपाण्डुरं वातात्पित्ताद्रक्तं सदाहकम् ॥ १ ॥ कफान्वितं भवेत् स्निग्धं रक्तात् पाकं व्रजन्ति तत् ॥ सन्निपातेन सदृशं जायते सर्वलक्षणम् ॥ २ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—हे हारीत ! अब इंद्रलुप्त अर्थात् बालोंका नाश होता है तिसकी चिकित्सा कहते हैं वातदोषसे रूखा और पांडुरवर्ण होजाता है पित्तसे रक्तवर्ण और दाह होती है ॥ १ ॥ कफसे चिकना वर्ण होता है और रक्तदोषसे स्थान पकजाता है सन्निपातके इंद्रलुप्तमें सब लक्षण मिलते हैं ॥ २ ॥

इंद्रलुप्तरोगकी चिकित्सा ।

गुडेन सुरसाशुण्ठीमातुलुङ्गरसेन तु ॥ केशघ्ने वातसम्भूते धावनञ्च प्रशस्यते ॥ ३ ॥ त्रिफलावचारोहीतं गुडेनापि प्रपेषितम् ॥ धावनं कफसम्भूते चेन्द्रलुप्ते प्रशस्यते ॥ ४ ॥ पैत्तिके च हितं दुग्धं नवनीतान्वितं तथा ॥ शिताशिवाफलं यष्टी पैत्तिके धावनं मतम् ॥ ५ ॥ भृङ्गराजरसं ग्राह्यं शृंगवेररसं तथा ॥ सौवीरकरसेनापि तिलान् पिष्ट्वा प्रलेपनम् ॥ पश्चात्कार्य्यं पूरुषेण स्नानमुष्णेन वारिणा ॥ ६ ॥ धवार्जुनकदम्बस्य शिरीषमपि रोहितम् ॥ क्वाथमेषां शिरोदद्रूं शमयेदिन्द्रलुप्तकम् ॥ ७ ॥ कुरबकस्य पुष्पेण जपायाःकुसुमेन च ॥ घृष्टस्य चेन्द्रलुप्तस्य कृतमेव निवारणम् ॥ ८ ॥ पैत्तिकानि च लिङ्गानि दृष्ट्वा दुग्धेन धावनम् ॥ शीतलानि प्रदेयानि पैत्तिकेन विधीयते ॥ ९ ॥ धत्तूरपत्राणि च मागधीनां निशाविशालागृहधूमकुष्ठम् ॥ घृतेन युक्तश्च जलेन पिष्टं शिरःप्रलेपे क्षतवारणं स्यात् ॥ १० ॥ पित्तकृते दोषयुते च रोगे पटोलपत्रं पिचुमन्दकं वा ॥ तथा मलक्याः फलमेव पिष्ट्वा घृतेन खण्डेन प्रलेपनञ्च ॥ ११ ॥ निवार्य्यते मस्तकजं

क्षतश्च शिरोऽर्त्तिसंघान्विनिहन्ति चैतत् ॥ गजेन्द्रदन्तस्य मर्षीं गृहीत्वा प्रलेपनं वा नवनीतकेन ॥ १२ ॥ तिलार्कभल्लातकदग्धमाषक्षारस्य लेपो नवनीतकेन ॥ सर्पस्य क्षारस्य तथा प्रयोगः खल्लाटके केशचयं करोति ॥ १३ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने इन्द्रलुप्तचिकित्सानामत्रिचत्वारिंशोध्यायः ॥ ४३ ॥

वातसे उपजे इन्द्रलुप्त रोगमें गुड, तुलसी, सूंठ, बिजौराका रस, इन्होंका लेप करना चाहिये ॥ ३ ॥ और त्रिफला, वच, बहेडा, गुड, इन्होंको पीस कफसे उपजे इंद्रलुप्तको धोवना श्रेष्ठ है ॥ ४ ॥ और पित्तके इंद्रलुप्तमें दूध, नौंनीघृत, मिसरी, आंवला, मुलहटी, इन्होंको पीस धोना श्रेष्ठ है ॥ ५ ॥ और भंगराका रस, अदरखका रस, कांजीका रस, इन्होंमें तिलोंको पीस लेप कर पीछे गरम जलसे स्नान करै ॥ ६ ॥ और धव, अर्जुनवृक्ष, कदंब, शिरस, बहेडा, इन्होंका क्वाथ बना धोनेसे शिरके दाद, इन्द्रलुप्त इन्होंकी शांति होती है ॥ ७ ॥ और रक्तकोरंटा, जासवंद, इन्होंके पुष्पोंको घिस लेप करनेसे इन्द्रलुप्तका नाश होतां है ॥ ८ ॥ और पित्तसे उपजे इंद्रलुप्तमें दूधसे धोवना श्रेष्ठ है और शीतल वस्तु देवै पित्तको करने वाले इलाज नहीं करे ॥ ९ ॥ और धतूराके पत्ते पीपल हलदी इन्द्रायण घरका धूंवा कूठ इन्होंको जलमें पीस घृतमें मिला शिरपे लेप करनेसे इन्द्रलुप्तक नाश होता है ॥ १० ॥ और पित्त दोषसे उपजे इंद्रलुप्त रोगमें परवलके पत्ते, नींब, आँवलाका फल, इन्होंको पीस घृत और खांड मिला लेप करनेसे ॥ ११ ॥ मस्तकपै उपजा केशनाशरोग दूर होता है और यह लेप शिरकी पीडाओंके समूहोंका नाश करता है और हस्ती दांतको फूँकि तिसकी स्याहीको नौंनीघृतमें मिला लेप करनेसे ॥ १२ ॥ अथवा तिल आक, भिलावा, उडद इन्होंको दग्ध करि इन्होंके खारको नौंनीघृतमें मिला लेप करनेसे तथा विधिसे निकासाहुआ सर्पके खारका लेप करनेसे गंजे शिरपे केशोंके समूह बढजाते हैं ॥ १३ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्त०हारीतसंहिताभाषाटीकायां इन्द्रलुप्तचिकित्सानाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ४४.

अथ कर्णरोगलक्षण ।

आत्रेय उवाच ॥ शेषेण वा तोयभृतेन वापि मलेन वा चातिभवद्रुजा च ॥ उच्चासरोगाद्भवते तथापि वातादिकैर्वा कुपितै-

रथापि ॥ १ ॥ संसर्गदोषैरपि सर्वदोषैः क्रिमिव्रणेनापि तथैव चान्या॥ संजायते कर्णे रुजा नरस्य शृणोति तेनापि बहुस्वनांश्च ॥ २ ॥ निःस्वानमेघध्वनिदन्तशब्दान् शूलं सदाहं च शिरोव्यथा च ॥ वेणुस्वनं वत्स शृणोति सर्वं पित्तेन तं विद्धि भिषग्वरिष्ठ ॥ ३ ॥ तथा च मूर्च्छां प्रतनोति शब्दं मेघस्वनं वा कफजे शृणोति ॥ ४ ॥ क्रिमिदोषे स्रवेत्पूयं सरक्तं वाति सत्तम ॥ तथाचैवाभिघातेन जायते तीव्रवेदना ॥ ५ ॥ क्षतेन पूयं स्रवते बाल्याद्भवति चापरः ॥ तत्रापि लूतिदोषेण जायते कर्णजा रुजा ॥ ६ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—कानमें प्राप्त हुआ जल शेष रहजावे और मैलहो तिससे अति पीडा होनेसे ॥ १ ॥ ऊंचा श्वासके रोकनेसे तथा वातादिक दोषोंके कुपित होनेसे और संसर्गदोषोंसे, सन्निपातसे अथवा क्रिमियोंसे उपजा व्रण होनेसे मनुष्यके कानमें अत्यंत पीडा होजाती है तिससे बहुतसे शब्दोंको सुनता है ॥ २ ॥ शब्दोंको मेघके गर्जनके समान और दांतोंके चाबनेके शब्दके समान सुनै शूलहो दाहहो शिरमें पीड़ाहो वह सब कुछ बीनके शब्दके समान सुनता है हे उत्तम वैद्य ! तिसरोगको पित्तसे उपजा जान ॥ ३ ॥ और शब्द सुननेसे मूर्च्छासीहो और मेघके गर्जनेसरीखा शब्द सुनै ये कफसे उपजे कर्णरोगके लक्षण हैं ॥ ४ ॥ और क्रिमिदोषसे उपजे कर्णरोगमें रक्त सहित राध झिरै और चोटसे उपजेमें तीव्र पीडा होती है ॥ ५ ॥ क्षतसे उपजेमें राध झिरै और बालअवस्थामें लूतिरोगसे उपजे कर्णरोगमें पीडा उत्पन्न होती है ॥ ६ ॥

अथ कर्णरोगकी चिकित्सा।

न कर्णरोगे जलपूरणश्च न चूर्णमेतत्कथितं विधिज्ञैः ॥ तैलं हितं स्वेदनमेव कर्णे सबाष्पबिन्दुश्च हितो मतश्च ॥ ७ ॥ सैन्धवं समुद्रफेनश्च सूक्ष्मचूर्णं च कारयेत् ॥ सौवीरकरसेनापि वातिके कर्णपूरणम् ॥ ८ ॥ आर्द्रसौवीरस्य रसं शुण्ठीसैन्धवगुग्गुलम् ॥ माषकुल्माषरसेन तैलं पक्वातिचोष्णकम् ॥ ९ ॥ कटुतुम्बेन धाय्यैंत कर्णरोगे प्रशस्यते ॥ १० ॥ यष्टीमधुकुष्ठमरिष्टपत्रं निशा विशालासुमनःप्रवालाः ॥ विपाचितं कर्णभवे च शूले सपैत्तिके वा घृतमेव शस्तम्॥ ११ ॥ब्राह्मीरसं सैन्धवकं विडङ्गं सभृङ्गराजस्य

घृतेन युक्तम् ॥ तथैव सौवीररसश्च पथ्या स्रुतश्च वस्त्रं परिपूर्णमेतत् ॥ १२ ॥ हितं भवेत्तच्छ्रुतिपूरणाय पूयं सरक्तं क्रिमिजं निहन्ति ॥ १३ ॥ सर्वे प्रोक्ताः शिरोरोगास्तैलानि च घृतानि च ॥ जात्यादिकान्वा युञ्जीत शिरोरोगविदांवरः ॥ १४ ॥ वातहारीणि पथ्यानि विदाहीनि गुरूणि च ॥ १५ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने कर्णरोगचिकित्सा नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

कानके रोगमें जल पूरना और चूर्ण पूरना हित नहीं कहा है कानरोगमें तैल पूरना और पसीना दिवाना हित है और फांभ दिवानेका कर्म हित कहा है ॥ ७ ॥ और सैंधानमक, समुद्रफेन, इन्होंका बारीक चूर्ण बना कांजीके रसमें मिला वातसे उपजे कानके रोगमें हितहै ॥ ८ ॥ और आलेबेरोंका रस, सूंठ, सैंधानमक, गूगल, उडदोंके वाकले इन्होंमें तैलको पका गरम गरम ॥ ९ ॥ तिस तैलके पुरानेसे कानका रोग दूर होता है और इस तैलको कडुई तुंबीमें घालके धरै ॥ १० ॥ और मुलहटी, कूठ, नींबके पत्ते, हलदी, इंद्रायणके पुष्प तथा कोमल २ पत्ते, इन्होंमें घृतको पका पित्तसे उपजी कर्णशूलमें पूरण करना श्रेष्ठ है ॥ ११ ॥ और ब्राह्मीका रस, सैंधानमक, वायविडंग, भंगरेका रस, घृत, कांजीका रस, हरडै, इन्होंको पका पीछे वस्त्रमांहके छान कानमें पूरनेसे ॥ १२ ॥ क्रिमियोंसे उपजी कानमें रक्तसहित राधका नाश होता है और कानमें पूरन करनेमें यह हित कहा है ॥ १३ ॥ और जितने शिरके रोग कहे हैं तिन्होंमें तैल और घृतमें सिद्ध कियेहुए औषधोंको वरतै ॥ १४ ॥ और वातको हरनेवाले विदाही तथा भारी ऐसे भोजन पथ्य कहे हैं ॥ १५ ॥

इति वेरीनिवासिगुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने कर्णरोगचिकित्सानाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ४५.

अथ नेत्ररोगकी चिकित्सा ।

आत्रेय उवाच ॥ उष्णातिक्षारकटुकैरभिघातेन वा पुनः ॥ सूक्ष्मवस्त्रेक्षणेनापि दोषाः कुप्यन्ति नेत्रजाः ॥ १ ॥ सहजा ये पराजेया वक्ष्यामि शृणु लक्षणम् ॥ रूक्षः कण्डुश्च तोदश्च शुष्कशीतास्रस्रवतिः ॥ २ ॥ वातिकं तं विजानीयात्पैत्तिकं शृण्वतः परम् ॥

॥३॥ सरक्ते सदाहे नेत्रे उष्णस्रावश्च पैत्तिके ॥ शोफकण्डू सन्निपाते शीतजाड्ये कफात्मके ॥४॥ द्वन्द्वजो मिश्रलिङ्गैश्च सर्वैस्तैः सान्निपातिके ॥ एतद्धि लक्षणं ज्ञात्वा चोपचारं शृणुष्व मे ॥५॥

आत्रेयजी कहते हैं—गरम, अतिखारा, चर्चरा ऐसे भोजनोंसे तथा अभिघातसे और सूक्ष्म वस्त्र मांहके देखनेसे नेत्रमें रहनेवाले दोष कुपित होजाते हैं ॥ १ ॥ और जो स्वभावसेही उत्पन्न होते हैं वे कष्ट साध्य होते हैं अब तिन्होंके लक्षणोंको सुन नेत्र रूखाहो, खाजिहो, चभकाहो शुष्कहो, और शीतलता रुधिर झिरै ॥ २ ॥ वह वातका नेत्ररोग जानना अब पित्तके लक्षणोंको सुन ॥ ३ ॥ पित्तसे उपजे नेत्ररोगमें गरम २ जल झिरै और लाल तथा दाहसहित नेत्रहों कफके नेत्ररोगमें शीतलता और जडताहो सन्निपातके नेत्ररोगमें शोजा और खाजि होती है ॥ ४ ॥ और दो दोषोंसे उपजे नेत्ररोगमें मिलेहुए लक्षण होते हैं और सन्निपातके नेत्ररोगमें सब लक्षण मिलते हैं ऐसे विलक्षण रोगको जानके तिसकी चिकित्साको मुझसे सुन ॥ ५ ॥

अथ नेत्ररोगकी चिकित्सा ।

शुण्ठीसुराह्वसुरसाः सह काञ्जिकेन चोष्णेन धावनमिदं सह पैत्तिकेच ॥ श्लेष्मोद्भवे त्रिफलकल्कमिदं समूत्रं प्रशस्तमन्यैः कथितं भिषग्वरैस्तथा ॥६॥ शुण्ठी सठी च रजनी त्रिफला सनिम्बा पत्राणि सैन्धवयुतानि तुषाम्लकेन ॥ शस्तं वदन्ति नयनेषु सन्निपाते रक्तोद्भवे च सरुजे च तथाच शस्तम् ॥ ७॥ फलत्रिकं चारुनिशासु धूमो वचासु वर्षाभवसैन्धवेन ॥ प्रलेपनं श्लेष्मभवे विकारे सवातिके वा हितमेव शस्तम् ॥८ ॥ शुण्ठीसैन्धवतक्रेण ताम्रभाण्डे विघर्षितम् ॥ अपामार्गस्य मूलं वा मूलं धत्तूरकस्य वा ॥ ९ ॥ अञ्जनश्च हितं तेषां वातनेत्रामयापहम् ॥१०॥ दुग्धोत्पन्नं नवनीतं यष्टी निम्बस्तिलाश्च संयोज्याः ॥ त्रिफला गुडसंयुक्ता लेपनं कफनेत्रजरोगघ्नम् ॥ ११ ॥ शुण्ठी सैन्धवतुत्थं मागधिका ताम्रभोजने घृष्टम् ॥ दध्ना घृतेनाञ्जनकं निहन्ति सर्वांश्च नेत्रगदान् ॥ १२ ॥ वातपित्तकफदोषसम्भवान्नेत्रयोर्बहुव्यथां हरते क्षणात् ॥ एक एव हरति प्रयोजितः शिग्रुपल्लवरसः समाक्षिकः ॥ १३ ॥

और सूंठ, देवदार, तुलसी, इन्होंको कांजीमें क्वाथ बना गरम २ से पित्तके उपजे नेत्ररोगमें नेत्रोंका धोवना श्रेष्ठ है और कफसे उपजे नेत्ररोगमें त्रिफलाके कल्कको गोमूत्रमें पका धोवना श्रेष्ठ है ऐसे अन्य वैद्योंनेभी कहा है ॥ ६ ॥ और सूंठ, कचूर, हलदी, त्रिफला, नींबके पत्ते, सेंधानमक, इन्होंको जवोंकी कांजीमें सिद्ध करि सन्निपातसे उपजे नेत्ररोग तथा रक्तसे उपजे हुवे पीडा सहित रोगमें धोवना श्रेष्ठ है ॥ ७ ॥ और त्रिफला, दारुहलदी, घरका धूंवा, वच, सांठी, सेंधानमक, इन्होंका लेप करनेसे कफसे उपजा अथवा वातसे उपजा नेत्ररोग दूर होता है ॥ ८ ॥ और सूंठ, सेंधानमक, इन्होंको तांबेके पात्रमें तक्रके संग घिस अंजन घाले अथवा ऊंगाकी जड तथा धतूरेकी जडको घिस ॥ ९ ॥ अंजन घालनेसे सब प्रकारके नेत्ररोगोंका नाश होता है ॥ १० ॥ और दूधसे उत्पन्न हुआ नौंनी-घृत, मुलहटी, नींब, तिल, त्रिफला, गुड, इनसबोंको मिला पीसि लेप करनेसे कफसे उपजा नेत्ररोग नाश होता है ॥ ११ ॥ और सूंठ, सेंधानमक, नीलाथोता, पीपली, इन्होंको तांबाके पात्रमें घिस दही और घृतके संग नेत्रमें आंजनेसे नेत्रके सब रोगोंका नाश होता है ॥ १२ ॥ और वात, पित्त, कफ, इनदोषोंसे उपजे हुए नेत्ररोगकी बहुतसी पीडाका नाश शीघ्रही होता है और एक सहिंजनेके पत्तोंके रसमेंही शहत मिला नेत्रोंमें आंजनेसे सब नेत्ररोग दूर होते हैं ॥ १३ ॥

अथ नेत्रके फूलेकी चिकित्सा ।

मिथ्याहारविहारैस्तु नेत्रे पुष्पश्च जायते ॥ प्रथमं सुखसाध्यं स्याद्द्वितीयं कष्टसाध्यकम् ॥ १४ ॥ तृतीयं शस्त्रसाध्यं तु चतुर्थं तदसाध्यकम् ॥ १५ ॥ शङ्खपुष्पं तथा रोध्रं शङ्खनाभिर्मनःशिला काञ्जिकेन तु संपिष्टा छायाशुष्का भिषग्वर ॥ १६ ॥ वातिके काञ्जिकेनापि पैत्तिके पयसा हिता ॥ श्लेष्मले मूत्रसंयुक्ता पुष्पस्याञ्जनके हिता ॥ १७ ॥ भृङ्गराजरसेनापि त्रिदोषशमने हिता ॥ हरीतकी वचा कुष्ठं पिप्पली मरिचानि च ॥ १८ ॥ विभीतकस्य मज्जा वा शङ्खनाभिर्मनःशिला ॥ एतानि समभागानि अजाक्षीरेण पेषयेत् ॥ १९ ॥ नाशयेत्तिमिरं कण्डूपाटलान्यर्बुदानि च ॥ हन्ति पुष्पं सपटलं रात्र्यान्ध्यञ्च नियच्छति ॥ २० ॥ क्षताभिघाति शोकेन अग्निदग्धं च वा पुनः ॥ काचश्च नीलिका चैव सिद्धिमिच्छन्ति नेत्रयोः ॥ २१ ॥

अपथ्य आहारविहार करनेसे नेत्रमें फूला होजाता है एकतो सुखसाध्य होता है और दूसरा कष्टसाध्य होता है ॥ १४ ॥ और तीसरा शस्त्रसाध्य होता है चौथा असाध्य होता है ॥ १५ ॥ हे उत्तमवैद्य ! शंखपुष्पी, लोध, शंखकी नाभि इन्होंको कांजीमें पीस छायामें सुखा ॥ १६ ॥ तिस अंजनको वातके फुलेमें कांजीके संग और पित्तमें दूधके संग कफकेमें गोमूत्रमें घिस नेत्रमें घालना हित है ॥ १७ ॥ और त्रिदोषसे उपजे फूलेमें भंगरेके रसके संग घाले और हरडै, वच, कूठ, पीपल, मिर्च ॥ १८ ॥ बहेडेकी मज्जा, शंखकी नाभि, मनशिल, इन्होंको समान भाग ले बकरीके दूधमें पीस ॥ १९ ॥ अंजन घालनेसे तिमिररोग, नेत्रकी खाज, नेत्रके पटलदोष, अर्बुद रोग, नेत्रका फूला, पटलमें प्राप्तहुआ फूला, रातौंधा, इन्होंका नाश होता है ॥ २० ॥ और चोटआदिके अभिघातसे शोकसे तथा अग्निसे दग्धहुआ काचपटल और नीलिका इननेत्ररोगोंकीभी सिद्धि होजाती है ॥ २१ ॥

अथ नेत्रपटलका लक्षण।

बाल्याद्दोषबलादेवदुष्टाहाराभिषेवणात् ॥ वार्द्धक्याच्च पटलं स्यात्तस्य वक्ष्यामि लक्षणम् ॥ २२ ॥ वातात्सकश्मलं रूक्षं पित्तान्नीलं च पीतकम् ॥ कफेन शुभ्रं सघनं रक्तेनारक्तकं विदुः ॥ २३ ॥ सन्निपातादिलिङ्गैश्च अतो वक्ष्यामि भेषजम् ॥ २४ ॥

बालक अवस्थासे दोषके बलसे और दूषित भोजन खानेसे वृद्ध अवस्थामें नेत्रमें पटल होजाता है तिसके लक्षणको कहते हैं ॥ २२ ॥ वातसे उपजा मैलाहो और पित्तसे नीलावर्णवालाहो अथवा पीलाहो और कफसे करडाहो सफेदहो और रक्तके दोषसे लाल पटल होजाता है ॥ २३ ॥ और सन्निपातसे उपजेहुएमें मिलेहुए लक्षण होते हैं अब इन्होंकी औषधको कहते हैं ॥ २४ ॥

अथ नेत्रपटलचिकित्सा।

शुण्ठीवचारजनितुत्थमनःशिला च शोभाञ्जनाञ्जनविशालजटा च शंखम् ॥ वास्तूकमूलमधुसैन्धवकट्फलानां सौवीरकेण परिमर्दनवर्तिरेषा ॥ २५ ॥ छायाविशुष्कनयनाञ्जनके प्रशस्तं नाशं नयेत्पटलनेत्रजरोगसङ्घान् ॥ २६ ॥ साञ्जना सकट्फलका हरीतकी मनःशिला ॥ गुडेन कट्फलश्चापि निहन्ति नेत्रप्रच्छदम् ॥ २७ ॥ महाविभीतकफलस्य च शङ्खनाभि घृष्टं ससैन्धवयुतं पयसाम्लकेन ॥ वर्तिर्गुडेन नयनाञ्जनके हिता च पित्तप्रसूतपटलस्य निवारणञ्च ॥ २८ ॥

सूंठ, वच, हदली, नीलाथोथा, मनासिल, सहिंजना, कालासुरमा, इंद्रायण, जटामांसी, शंख, बथुवाकी जड, शहद, सेंधानमक, कायफल इन्होंको कांजीमें खरल करि बत्ती बना ॥ २५ ॥ छायामें सुखा नेत्रोंमें आंजनी श्रेष्ठ कही है. पटलरोग, अन्य नेत्र रोगोंका समूह इन्होंको नाश करती है ॥ २६ ॥ और काला सुरमा, कायफल, हरडै, मनसिल इन्होंको पीस आंजनेसे अथवा गुडके संग कायफलको पीस नेत्ररोगोंका नाश होता है ॥ २७ ॥ बडा बहेडा, शंखकी नाभि, सेंधानमक इन्होंको दूधमें तथा कांजीमें घिस पीछे गुड मिला बत्ती बना नेत्रमें आंजनेसे नेत्रके पटल रोगका नाशहोता है ॥ २८ ॥

नेत्ररोगमेंवर्ज्य ।

सधूमश्च सवातश्च रूक्षमुष्णादिकं तथा ॥ कटुकाम्लं व्यवायश्च वर्जयेन्नेत्ररोगिणाम् ॥ २९ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने नेत्ररोगचिकित्सानाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४५॥

और नेत्ररोगवालेको धूंवासहित वायु रूषा और गर्म भोजन कडुआ तथा खट्टा भोजन और मैथुन करना ये वर्ज देने चाहिये ॥ २९ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने नेत्ररोगचिकित्सानाम पंचचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ४६.

अथ मुखरोगकी चिकित्सा ।

आत्रेय उवाच॥ ओष्ठौ च स्फुटितौ यस्य वातिवाहेन वातिकात् ॥ तस्य सर्पिर्भक्षणश्च ओष्ठदारणवारणे ॥ १ ॥ सदाहश्च भवेत्सौष्यं पैत्तिकं तं विनिर्दिशेत् ॥ २ ॥

आत्रेयजी कहते हैं–और जिसके ओष्ठ फटे रहै वायु बहै वातसे उपजा मुखरोग जानना तहां मुख फटे हुएको निवारणकेवास्ते घृतकी मालिस करै ॥ १ ॥ और दाहहो कभी ओष अर्थात् झालसी उठे तहां पित्तसे उपजा रोग जानना ॥ २ ॥

ओष्ठ रोगकी चिकित्सा ।

मधुना नवनीतेन ओष्ठयोर्म्रक्षणं मतम् ॥ लेपनं चोष्ठरोगेषु शर्करासहितं दधि ॥३॥ सरक्तमोष्टरोगञ्च दृष्ट्वा रक्तावसेचनम् ॥ धवार्जुनकदम्बानां प्रलेपः स्यात्सुखावहः ॥ ४ ॥

यहां नोनीघृत शहद इन्होंकी मालिस करना श्रेष्ठ है और इन पित्तके ओष्ठरोगोंमें खांड, दही, इन्होंकी मालिस करना श्रेष्ठ है ॥ ३ ॥ और रक्तसहित ओष्ठरोग जानके रक्त निकलाना श्रेष्ठ है और धव, अर्जुनवृक्ष, कदंब इन्होंका लेप करना श्रेष्ठ है ॥ ४ ॥

अथ दंतरोगलक्षण ।

कृष्णा दन्तावलिर्यस्य दन्तमूलं च वातिकात् ॥ चलनं वा प्रदृश्येत वातिकश्च विनिर्दिशेत् ॥ ५ ॥ पैत्तिकात्पित्तवाहश्च दन्तमांसं विनिर्दिशेत् ॥ श्लैष्मिके दन्तपाके च शोफः स्याच्छ्वेतता भृशम् ॥ ६ ॥ रक्तजे जायते कण्डूरक्तस्रावश्च दृश्यते ॥ सूयते दन्तमांसश्च सरक्ते दत्पुटे तथा ॥ ७ ॥ सच्छिद्रं दन्तमूलञ्च सबलं शूलमेव च ॥ दन्तमांसं विशीर्य्येत क्रिमिजा दन्तरुग्भवेत् ॥ ८ ॥

और जिसके दांत और दांतोंकी जड काली होजावे और दांत हिलने लगजावे वह वातसे उपजा रोग जानना ॥ ५ ॥ और पित्तसे उपजेमें पित्त बहै दातोंपै मांस बढ जावे और कफसे उपजे दंतपाकरोगमें शोजा हो और बहुतसे सफेद होजावे ॥ ६ ॥ और रक्तसे उपजेमें खाजिहो रक्तस्रावहो और दांतोंके मांससे शोजाहो और दांतोंके पुट रक्तहो ॥ ७ ॥ दांतोंकी मूल छिद्रसहित दीखै और अत्यंत शूलहो और दांतोंका मांस बिखर जावे वह क्रिमिज दंतरोग जानना ॥ ८ ॥

अथ दंतरोगचिकित्सा ।

वचावयानीसहचित्रकेण सिन्धूत्थविश्वासहसिन्धुवारम् ॥ कल्कं तथोष्णश्च सदन्तरोगे मुखे च गण्डूषशतानि पञ्च ॥ ९ ॥ सर्वेषु मुखरोगेषु हितमेतत्प्रशस्यते ॥ वचासैन्धवशुण्ठ्या च घर्षणं दन्तमूलके ॥ १० ॥ यवानीं च वचां रात्रौ दन्तमूले च धारयेत् पित्तजदन्तरोगेषु नवनीतं सशर्करम् ॥ ११ ॥ धात्रीफलेन संघृष्टं दन्तरोगनिवारणम् ॥ श्लैष्मिकदन्तरोगेषु हरीतक्या गुडेन वा ॥ ॥ १२ ॥ घर्षणं च प्रशस्तं च त्रिफलाक्काथसंयुतम् ॥ अहिमारकमूलस्य क्काथो गण्डूषधारणात् ॥ १३ ॥ खदिरस्य तथा क्काथो यवानीक्काथ एव च ॥ क्काथश्च निम्बमूलस्य दन्तरोग-

निवारणः ॥ १४ ॥ रक्तजे च विकारे च घर्षो लवणसर्षपैः ॥ रक्तश्च स्रावयेत्तस्य इष्टमोष्ठपुटे च तत् ॥ १५ ॥ विडङ्गं हिङ्गु सिन्धुश्च वचाचूर्णेन घर्षयेत् ॥ क्रिमिजदन्तरोगेषु हितमेतत्प्रशस्यते ॥ १६ ॥

वच, अजमान, चीता, सेंधानमक, सूंठ, संभालू, इन्होंका कल्क बना गरम २ दंत रोगमें लेपित करै और मुखमें पांचसौ कुरले धारण करै ॥ ९ ॥ और सब मुखरोगोंमें यही विधि करनी श्रेष्ठ है और वच, सेंधानमक, सूंठ, इन्होंको दांतोंकी जडमें घिसै ॥ १० ॥ और अजमान, वच, इन्होंको रात्रीमें दांतोंकी जडमें धारण करै और पित्तसे उपजे दंतरोगोंमें नौनीघृत खांड इन्होंको लगावे ॥ ११ ॥ और आंवलाके फलको घिसके लगानेसे दंतरोगोंका निवारण होता है और कफसे उपजे दंतरोगमें हरडै, गुड, इन्होंको ॥ १२ ॥ घिस त्रिफलाके काथमें मिला दांतोंके लगानेसे दंतरोग दूर होता है और गंधी हिंवर अर्थात् अरिमेदकी जडका काथ बना कुरले धारण करै ॥ १३ ॥ तथा खैरका काथ अजमानका काथ नींबकी जडका काथ इनसे दंतरोगका निवारण होता है ॥ १४ ॥ और रक्तसे उपजे दंतरोगमें नमक, सेंधानमक इन्होंसे दांतोंको घिसै और ओष्ठपुटमांससे रक्तको झिरवावे ॥ १५ ॥ और वायविडंग, हिंग, सेंधानमक, वच, इन्होंके चूर्णको दांतोंके घिसै और क्रिमिज दंतरोगमें भी यही विधि करनी हित है ॥ १६ ॥

अथ जिह्वारोग लक्षण।

जिह्वायां पिटिका यस्य जिह्वापाकं विनिर्दिशेत् ॥ वातिके सरुजा कृष्णा पित्तेन दाहसंयुता ॥ १७ ॥ श्लेष्मणा सघना श्वेता सर्वे वै सान्निपातिके ॥ १८ ॥

और जिसकी जिह्वापै पिडिकाहों वह जिह्वापाक जानना वातसे उपजी पिडिका पीडा सहित होती है और काली होती है पित्तसे दाह करके युक्त हों॥ १७॥ कफसे करडी हों सफेद वर्णवाली हों और सन्निपातसे उपजी पिडिकाओंमें सब लक्षण मिलते हैं ॥ १८ ॥

अथ जिह्वारोगचिकित्सा।

वचा भया विडङ्गानि शुण्ठी सौवर्चलं कणा ॥ घृतेन युक्तं जिह्वायां घर्षणं वातिके गदे ॥ १९ ॥ काञ्जिकेन तु तक्रेण सोष्णगण्डूषधारणम् ॥ यष्टीकं चन्दनं मुस्ता मागधी मधुसंयुतम् ॥ २० ॥ लेपनं पैत्तिके दोषे जिह्वास्फोटकवारणम् ॥ दुग्धेन च शीतेनापि हन्ति गण्डूषधारणम् ॥ २१ ॥ दन्तरोगे तथा जिह्वापाके

तच्च हितं विदुः ॥ रोध्रार्जुनकदम्बानां क्वाथश्चोष्णः सुखावहः ॥ ॥ २२ ॥ श्लेष्मोद्भवे मुखपाके हितं गण्डूषधारणम् ॥ रक्तजेषु विकारेषु रक्तस्रावं च कारयेत् ॥ २३ ॥ कण्टकेनापि जिह्वायाश्चीरयित्वा च लेपनम् ॥ मूर्वामुस्ताभयाशुण्ठीमागधीरजनीद्वयम् ॥ ॥ २४ ॥ गुडेन मधुना युक्तं लेपनं रक्तजिह्वके ॥ मरिचश्च वचा कुष्ठं हरीतक्याश्च चूर्णितम् ॥ घर्षणं श्लेष्मणि जाते जिह्वापाके हितं विदुः ॥ २५ ॥

और वच, हरडै, वायविडंग, सूंठ, कालानमक, पीपली, इन्होंको घृतमें युक्तकरि जिव्हापै घिसनेसे वातसे उपजा जिह्वारोग दूर होता है ॥ १९ ॥ और कांजी, तक्र इन्होंको गरम २ करि कुरले धारण करै, और मुलहटी, चन्दन नागरमोथा, पीपली इन्होंको पीस शहदमें मिला ॥ २० ॥ लेप करनेसे पित्तदोषसे उपजा जिह्वास्फोटक रोग दूर होता है और ठंढे २ दूधके कुरले धारण करना ॥ २१ ॥ दंतरोग, जिव्हापाक, इन्होंमें हित है और लोध, अर्जुनवृक्ष, कदंब, इन्होंका क्वाथ सुखसे सुहाता हुआ गरम २ मुखमें धारण करना ॥ २२ ॥ कफसे उपजें मुखपाक रोगमें हित है और रक्तसे उपजे विकारोंमें रक्त निकलाना श्रेष्ठ है ॥ २३ ॥ कांटेसे जिह्वाको चीरके तहां मूर, नागरमोथा, हरडै, सूंठ, पीपली, दोनों हलदी ॥ २४ ॥ गुड, शहद, इन्होंको मिला रक्तसे उपजे जिव्हारोगपै लेप करै और मिरच, वच, कूट, इन्होंका चूर्ण बना कफसे उपजे जिव्हारोगमें मसलना हित है ॥ २५ ॥

अथ गलगडूरोगके लक्षण ।

तिलपिच्छिलगौल्यादिसेवनातिद्रवादपि ॥ नवोदकेन कफजो जायते घण्टिकागदः ॥ २६ ॥ जिह्वामूले कण्ठसन्धौ श्लेष्मरक्तसमुद्भवः ॥ तेनास्यशोषो जडता ज्वरो मन्दश्च जायते ॥ २७ ॥ शिरोव्यथारुचिस्तन्द्रा तथास्य जडता भवेत् ॥

तिल और झागोंवाला तथा गुळी बंधनेवाला और पतला ऐसे भोजनके सेवनेसे और नवीन जलसे कफसे उपजा हुआ घण्टिकासंज्ञक रोग होजाता है ॥ २६ ॥ जिव्हाकी मूलमें कंठकी सन्धिमें कफ रक्तसे उपजा हुआ यह रोग होता है तिससे मुखमें शोषहो जडताहो मन्दज्वरहो ॥ २७ ॥ शिरमें पीडाहो अरुचिहो तंद्राहो मुखमें जडताहो ॥

अथ गलगडू रोगकी चिकित्सा ।

तर्जन्यां कण्ठमध्ये तु संपीड्य रक्तपन्थिका ॥ २८ ॥ परिस्रुतं तथा रक्तं तदा विम्लापनं हितम् ॥ वचाश्च मरिचं कृष्णाचूर्णं

तत्र निधापयेत् ॥ २९ ॥ मर्दनं स्यात्कण्ठदेशे तेन ग्रन्थिर्विलीयते ॥ धान्यनागरजीमूतवचाः ह्येताः समांशकाः ॥३०॥ क्वाथः स्वेदो घण्टिकाया मुखे गण्डूषधारणम् ॥ दिवारात्रौ वचाग्रन्थि मुखे संधारयेद्भिषक् ॥ ३१ ॥ तेन सौख्यं भवेत्तस्य मुखरोगाद्विमुच्यते ॥ ३२ ॥

तहां तर्जनी अंगुलीसे कंठके मध्यमें रक्तकी ग्रंथीको पीडित करै ॥ २८ ॥ तिस्से रक्त निकस जावे तब विम्लापन कर्म करना हित है तहां वच, मिर्च, पीपल, इन्होंके चूर्णको बुरकावे ॥ २९ ॥ और कंठके मध्यमें मर्दन करै तिस्से वह ग्रंथि शांत होजाती है और धनियां, सूंठ, नागरमोथा, वच, इन औषधोंको समान भागले ॥ ३० ॥ क्वाथ बना पसीना दिवावे और गडुरोगवाले पुरुषके मुखमें इस क्वाथके कुरले धारण करवावे॥ ३१ ॥और दिनराति मुखमें वचको धारण रखवावे ऐसे करवानेसे रोगीको सुख उत्पन्न होता है और मुखरोगसे छुट जाता है ॥ ३२ ॥

अथ गलशुंडिका रोगके लक्षण।

गले घण्टिकामार्गे च रक्तश्लेष्मविकारजा ॥ लम्बिका वर्धते नृणां विज्ञेया गलशुण्डिका ॥ ३३ ॥ रुन्धते चास्यमार्गश्च नेत्रस्रावः प्रदृश्यते ॥ शिरोऽर्त्तिः श्वासकासश्च ज्वरेणैव प्रपच्यते ॥३४॥

मनुष्योंके गलमें घाटीके मार्गमें रक्तकफके विकारसे उपजी हुई लंबी ग्रंथि होजाती है वह गलशुंडिका रोग कहाताहै ॥ ३३ ॥ वह रोग मुखके मार्गको रोकलेता है और नेत्रोंमें स्राव होता है शिरमें पीडाहो श्वासहो खांसीहो ज्वरकी तरह बाधाहो ऐसा यह रोग होता है ॥ ३४ ॥

अथ गलशुंडिकारोगकी चिकित्सा।

आशुकारी महाप्राज्ञः शीघ्रं कुर्य्यात्प्रतिक्रियाम् ॥ शस्त्रेण शुण्डिकां छित्त्वा कुर्य्याद्विम्लापनं हितम् ॥३५॥ मागधी मरिचं पथ्या वचाधान्ययवानिकाः ॥ क्वाथः सोष्णः स्वेदमायाद्गलशुण्डोपशान्तये ॥ ३६ ॥ दिवा रात्रौ यवान्याश्च मुखे संधारणं हितम् ॥ मर्दनं कण्ठदेशे तु तेन संपद्यते सुखम् ॥ ३७ ॥ सिद्धार्थकं वचा कुष्ठं रजनी पारिभद्रकम् ॥ ग्रहधूमं सलवणं कण्ठे वा लेपनं हि-

तम् ॥ ३८ ॥ ज्वरे प्रोक्तानि पथ्यानि यानि तानि महामते ॥ न गौल्यं पिच्छिलं सेव्यं तैलं नैव गलामये ॥३९॥ इति गलशुण्डिकाचिकित्सा ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने मुखरोगचिकित्सानाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

शीघ्रकार्य करनेवाला महान् वैद्य इस रोगका इलाज शीघ्रही करै शस्त्रसे गलशुंडिकाको च्छेदनकर विम्लापन कर्म करना हित है ॥ ३५ ॥ और पीपली, मिर्च, हरडै, वच, धनियां, अजमान, इन्होंका क्राथ बना तिस्से पसीना दिवानेसे गलशुंडिकारोगकी शांति होतीहै ॥ ३६ ॥ और दिनराति अजमानको मुखमें धारण रखना हित है और कंठकी जगह मर्दन करना हित है तिस्से रोगीको सुख उत्पन्न होता है ॥ ३७ ॥ और सिरसम, वच, कूठ, हलदी, नींब, घरका धूंवा, नमक, उन्होंका लेप कंठपै करना हित है ॥ ३८ ॥ और हे महामते ! ज्वरमें कहे हुए जो पथ्य हैं उन्होंको करै और गलरोगमें गुल्ली बंधनेवाला तथा पिच्छल भोजन और तैलको नहीं सेवै ॥ ३९ ॥ इति बेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने मुखरोगचिकित्सानाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ४७.

अथ वृद्धक्षीणानां वाजीकरणम्।

आत्रेय उवाच ॥ क्लैब्यं पञ्चविधं प्रोक्तं समासेन शृणुष्व मे ॥ १ निरोधातिव्यवायेन वयःश्रान्तेऽपि मानवे ॥ जायते रेतसो हानिः क्लीबत्वञ्चापि जायते ॥ २ ॥ त्रिविधं जायते क्लैब्यं मानसं रेतसः क्षयात् ॥ सहजं शुष्कसंस्वेदाज्जायते क्लीबता नरे ॥ ३ ॥ यस्य वै ममता चित्ते दृष्ट्वा स्त्रीणां विरागिताम् ॥ स्पर्शने स्वेदकं पञ्च तत्साध्यं मानसं स्मृतम् ॥ ४ ॥ यस्य विद्वेषतः स्त्रीणां व्यवायेन मनःक्षितिः॥ ध्वजभङ्गो भवेच्छीघ्रं तत्क्लैब्यं रेतसः क्षयात् ॥ ५ ॥ समप्रकृतिर्यस्यान्यः सोऽप्यसाध्यतमः स्मृतः ॥ ६ ॥ सरागविभ्रममनःक्षये मनोद्रेको मुग्धस्त्रीसहसङ्गमः ॥ कथालापैः संवर्द्धते मनः ॥ शुक्रक्षये शुक्रवृद्धिं कथयिष्यामि साम्प्रतम् ॥ ७ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—नपुंसकपना पांचप्रकारका होता है सो संक्षेपमात्रसे कहते हैं सुन ॥ १ ॥ मैथुनके रोकनेसे अथवा ज्यादे मैथुन करनेसे अवस्थाकी हार होनेसे मनुष्योंके वीर्यकी हानिहो नपुंसकपना होजाता है ॥ २ ॥ मनुष्योंके तीनप्रकारका नपुंसकपना होता है मानस, वीर्यक्षय, और शुष्क पसीनासे उपजा सहज ॥ ३ ॥ ऐसे होता है जिसपुरुषके स्त्रियोंके विरागभाव देखिकै मनमें ममताहो और स्पर्श करनेमें पसीना आजावे वह मानस कहाता है सो सुखसाध्यहोता है ॥ ४ ॥ और जिसके द्वेषयुक्त स्त्रियोंके संग मैथुन करनेसे मनकी हानि होजाती है और जिसके शीघ्रही लिंगका भंग होजाय वह वीर्यक्षय होनेसे नपुंसकपना होता है उसे ध्वजभंग कहते हैं ॥ ५ ॥ और जिसकी सदा समान प्रकृति रहे अर्थात् कभी चैतन्यताहोही नहीं वह असाध्यरोग कहाता है मनके क्षय होनेमें मनको बढावे और सुंदर भोली स्त्रीके संग विषय करवावे ॥ ६ ॥ और स्नेहसहित विभ्रमके वचन, स्त्रियोंकी कथाके आलाप इन्होंसे मनको बढावे और वीर्यक्षयके नपुंसकपनेमें वीर्यवर्द्धक औषधोंको कहते हैं ॥ ७ ॥

अथ शुक्रवृद्धिके उपाय ।

विदारिकागोक्षुरमूषकानां धात्रीफलं स्यात्सहसैन्धवानाम् ॥ समानि चैतानि च मागधीनां शुक्तं सिताढ्यं पयसा पिबेच्च ॥८॥ विषं बृहत्यौ मगधात्रिकण्टास्तथात्मगुप्ता सशतावरी च ॥ सशर्करं गोपयसो घृतेन पानं नराणां प्रकरोति बीजम् ॥ ९ ॥ यवगोधूममाषाणां निस्तुषाणाञ्च चूर्णकम् ॥ दुग्धेनेक्षुरसेनापि संस्कृत्य तु घृतेन तु ॥ १० ॥ पाचितं वटकश्रेष्ठं भक्षयेत्प्रातरुत्थितः ॥ तस्योपरि पयःपानं पिप्पलीशर्करान्वितम् ॥ ११ ॥ यवक्षारविदारीञ्च माषचूर्णं तथा यवान् ॥ मरिचानां सिताढ्यञ्च घृतानाञ्च प्रपोलिकाम् ॥ १२ ॥ पाचयेद्भक्षयेत्प्रातः पयःपानं तथोपरि ॥ वीर्य्यञ्च कुरुते पुंसां वनिता रमते भृशम् ॥ १३ ॥ गुडूची शतमूली च स्वयंगुप्ता बला तथा ॥ १४ ॥ शाल्मली मुसलीमूलं चूर्णं गोपयसान्वितम् ॥ पानं नराणां श्रेष्ठं तु बीजमिन्द्रियकारकम् ॥ १५ ॥

विदारीकंद, गोखरू, मूषापर्णी, आंवला, सेंधानमक, पीपली, इन्होंको समान भाग ले मिश्री मिला गौके दूधके संग पीवे ॥ ८ ॥ और अतीश, दोनों कटेहली, पीपली, गोखरू,

कौंचके बीज, शतावरी, इन्होंका चूर्ण बना खांड मिला पीछे गौके दूध और घृतके संग पीनेसे मनुष्योंके वीर्यवृद्धि होती है ॥ ९ ॥ और जव, गेहूं, उडद इन्होंके तुष उतारि चूर्ण बना पीछे दूधमें और ईखके रसमें मिला घृतमें ॥ १० ॥ पका तिनको प्रातःकाल उठके खावे और तिसके ऊपरि पीपली, खांड इन्होंसे युक्त दूधको पीवे ॥ ११ ॥ और जवाखार, विदारीकंद, उडदोंका चूर्ण, जव, मिर्च, इन्होंका चूर्ण बना तिसमें मिश्री मिला पीछे पोली बना घृतमें सिद्ध करलेवे इनपोलियोंको ॥ १२ ॥ प्रातःकाल भक्षण करै और ऊपरसे दूध पीवे ऐसे करनेसे पुरुषोंका वीर्य बढता है और स्त्रीके संग बहुतसा रमण करता है ॥ १३ ॥ और गिलोय, शतावरी, कौंचके बीज, खरैहटी ॥ १४ ॥ सेमर, मुसलीकी जड इन्होंका चूर्ण बना गौके दूधके संग पीना श्रेष्ठ है और मनुष्योंकी इंद्रियमें वीर्यको बढानेवाला है ॥ १५ ॥

अथ विदार्यादि औषध।

विदारिकन्दांशुमती बृहत्यौ काकोलिका भीरु पुनर्नवे द्वे ॥ शृङ्गाटकं मागधिका बला च चूर्णं सिताढ्यं सितया प्रयोज्यम् ॥ ॥ १६ ॥ जीर्णे पयः पायसमेव योज्यं करोति पुंसां बलमेव-मोजः॥स्त्रीणां सहस्रं भजतेऽपि षण्ढो मासद्वयेप्रस्तुतमेव शस्तम् १७

और विदारीकंद, शालवन, दोनोंकटेहली, कालोली, शतावरी, दोनोंप्रकारका सांठी, सिंघाडा, पीपली, खरैहटी इन्होंका चूर्ण बना मिश्री मिला ॥ १६ ॥ दूधके संग पीनेसें पुरुषोंके बल और वीर्य बढता है और हीजडा हो वह भी हजारों स्त्रियोंके संग रमणकर सकता है दो महीनोंतक इस औषधका सेवना श्रेष्ठ है ॥ १७ ॥

अथ शुक्रवृद्धिमें वर्ज्य।

वर्जयेत्कटुकं चाम्लं तीक्ष्णं चोष्णं विदाहि च ॥ रूक्षं वापि च सौवीरं प्रोक्तानि चेन्द्रियक्षतौ ॥ १८ ॥ पलाण्डुयवनं कन्दांस्ति-लान्माषान्यथाबलम् ॥ तथौदनं विशालीनां दुग्धं चेक्षुरसं तथा ॥ १९ ॥ वास्तुकं चिल्लकानाञ्च पथ्ये शुक्रक्षयादपि ॥ वर्जित्वा सूरणं शुण्ठीं योगयुक्तो न योजयेत् ॥ २० ॥ इत्यात्रे-यभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने वाजीकरणं नाम सप्तचत्वा-रिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

और चर्चरा, खट्टा, तीक्ष्ण ऐसे भोजनको वर्ज दे और गरम, विदाही, रूषा ऐसा भोजन, कांजी, इन्होंको वीर्यक्षयमें वर्ज देवै ॥ १८ ॥ और प्याज, तथा अन्यकंद, उडद, और शालीसंज्ञक चावलोंका भात, दूध, ईखका रस ॥ १९ ॥ बथुआका शाक और चिल्लक अर्थात् अन्य बथुवाका भेद, इन्होंको अग्नि बलके अनुसार खावे ये वीर्यक्षयमें पथ्य हैं और जमीकंद, सूंट, इन्होंको नहीं देवै ॥ २० ॥ इति बेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने वाजीकरणं नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ४७

अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ४८.

अथ वंध्यारोगके लक्षण।

आत्रेय उवाच॥वन्ध्या स्यात्षट्प्रकारेण बाल्येनाप्यथवा पुनः॥ गर्भकोशस्य भङ्गाद्वा तथा धातुक्षयादपि ॥ १ ॥ जायते न च गर्भस्य सम्भूतिश्च कदाचन ॥ काकवन्ध्या भवेच्चैका अनपत्या द्वितीयका ॥ २ ॥ गर्भस्रावी तृतीयाऽथ कथिता मुनिसत्तमैः ॥ मृतवत्सा चतुर्थी स्यात्पञ्चमी च बलक्षयात् ॥ ३ ॥ तस्योपक्रमणं वक्ष्ये येन सा लभते सुतम् ॥ ४ ॥ अजातरजसां स्त्रीणां क्रियते यदि मैथुनम् ॥ तेनैव गर्भसङ्कोचं भगत्वमुपगच्छति॥ ॥ ५ ॥ तेन स्त्री भवते वन्ध्या गर्भं गृह्णाति नो भृशम् ॥ सा च कष्टेन भवति रामा गर्भवती भिषक् ॥ ६ ॥ औषधैश्चोपचारैश्च सिद्धिश्चापि न संशयः ॥ अनपत्यबलेनापि जायते भिषजां वर ॥ ७ ॥ न भवेत्काकवन्ध्या च अनपत्यापि सिध्यति सिध्यन्ती क्षीणधातुत्वाज्जायते सा भिषग्वर ॥ ८ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—वंध्यारोग छह प्रकारका होता है. बालक अवस्थामें गर्भकोशके भंग होजानेसे अथवा धातुके क्षय होनेसे ॥ १ ॥ गर्भ कदाचित्भी नहीं ठहरता है और एक तो काकवंध्या होती है दूसरी अनपत्या होती है ॥ २ ॥ तीसरी गर्भस्रावी होती है चौथी मृतवत्सा होती है और पांचवीं बलके क्षय होनेसे होती है ॥ ३ ॥ अब इन्होंकी चिकित्सा कहते हैं जिसकरके सुख उत्पन्न होता है ॥ ४ ॥ जो यदि रजस्वला नहीं हुई हो ऐसी स्त्रीके संग मैथुन कर लेवे तो गर्भस्थान भगमें संकोचको प्राप्त होजाता है ॥ ५ ॥ जिसकरके स्त्री वंध्या होजाती है विशेषकरिके गर्भको धारण नहीं करती है हे वैद्य ! वह स्त्री

कष्टसे गर्भवती होती है ॥ ६ ॥ और हे उत्तम वैद्य ! जो अनपत्या वंध्या होती है वह औषधोंसे गर्भवती होती है ॥ ७ ॥ फिर वह काकवंध्याभी नहीं होती और अनपत्याभी नहीं होती है और जो क्षीणधातु होनेसे वंध्याहो वहभी औषधोंसे गर्भवती होजाती है ॥ ८ ॥

अथ वंध्यारोगको दूरकरनेवाले औषध ।

चन्दनोशीरमञ्जिष्ठापटोलं घनवालकम् ॥ मधुकं मधुयष्टी च तथा लोहितचन्दनम् ॥ ९ ॥ सारिवा जीरकं मुस्तं पद्मकञ्च पुनर्नवा ॥ क्षीरेण शर्करायुक्तं पानं पित्तोद्भवे गदे ॥ १० ॥ ज्ञात्वा योनिविशुद्धिञ्च तत्र दद्यान्महौषधम् ॥ चन्दनोशीरमञ्जिष्ठा गिरिकर्णी सिता तथा ॥ ११ ॥ क्षीरेणालोडिता पित्ते पुष्पसिद्धिं करिष्यति ॥ १२ ॥

चंदन, खश, मँजीठ, परवल, नागरमोथा, नेत्रवाला, महुआवृक्ष, मुलहटी, लालचंदन, ॥ ९ ॥ अनंतमूल, जीरा, नागरमोथा, पद्माख, सांठी, इन्होंको दूधमें मिला खांड मिला पान करना पित्तसे उपजे वंध्यारोगमें हित है ॥ १० ॥ और योनिकी शुद्धिको जानके पीछे ये महान् उत्तम औषध देनी चाहिये चंदन, खश, मंजीठ सफेद गोकर्णी, मिश्री ॥ ११ ॥ इन्होंको दूधमें मिला घोटि पीनेसे पित्तसे उपजे रोगमें स्त्रीके पुष्प होते हैं ॥ १२ ॥

त्रिदोषदूषितरजकी चिकित्सा ।

रजोरक्तं परीक्षेत वातपित्तकफात्मकम् ॥ सरुजञ्च सकृष्णञ्च पक्वजम्बूनिभं च यत् ॥ वातेन बाधितं पुष्पं तच्च संलक्षयेद्बुधः ॥ १३ ॥ तस्य नागरपिप्पल्यौ मुस्तावन्वयवासकम् ॥ बृहत्यौ पाटला चैव क्वाथः सगुडको दधि ॥ १४ ॥ सप्ताहं पाययेद्धीमान्यावत्स्रवति शोणितम् ॥ विशुद्धे च तथा रक्ते पाययेत्पयसान्वितम् ॥ १५ ॥ श्वेता च गिरिकर्णी च श्वेता गुञ्जा पुनर्नवा ॥ तेन सा लभते गर्भं मासमेकं प्रयोगतः ॥ १६ ॥

और वात, कफ, पित्त इन्होंसे दूषित रजस्वलाके रक्तको जाने पीडासहित और कृष्णवर्णवाला पकेहुए जामनके फलके समान वर्णवाला ऐसे रक्तको वातके कोपसे उपजा हुआ जानै ॥ १३ ॥ तहां सूंठ, पीपली, नागरमोथा, धमासा, दोनों कटेहली, पाडलवृक्ष, इन्होंका काथ बना गुड और दही मिला ॥ १४ ॥ रजस्वला कालमें सात दिनतक पिवावे और रक्त शुद्ध होजावे तब इस क्वाथको दूधके संग प्यावे ॥ १५ ॥ और सफेद गोकर्णी, सफेद

चिरमठी, सफेदसांठी, इन्होंको एक महीना तक पीवे तो वंध्या स्त्री गर्भको प्राप्त होजाती है ॥ १६ ॥

अथ पित्तदूषितरजकी चिकित्सा ।

जपाकुसुमसङ्काशं कुसुम्भरससन्निभम् ॥ दाहशोषमूत्रकृच्छ्रयुक्तं तत् पित्तदूषितम् ॥ १७ ॥ चन्दनोशीरमञ्जिष्ठापटोलं घनवालकम् ॥ मधुकं यष्टिमधुकं तथा लोहितचन्दनम् ॥ १८ ॥ पद्मकं पुनर्नवे द्व शारिवा जीरकं घनम् ॥ क्षीरेण शर्करायुक्तं पानं पित्तकृते गदे ॥ १९ ॥ ज्ञात्वा योनिविशुद्धिश्च तत्र दद्यान्महौषधम् ॥ श्वेतार्कमूलं पयसा श्वेता च गिरिकार्णिका ॥ २० ॥ श्वेताद्रिकर्णीमूलञ्च पानं गोक्षीरसंयुतम् ॥ वन्ध्यानां गर्भजननं भवते लक्षणान्वितम् ॥ २१ ॥

और जासवंदके पुष्पके समान तथा कसुंभाके रंगके समान वर्णवाला रजका रक्तहो, दाहहो, शोषहो, मूत्रकृच्छ्रहो वह पित्तदूषित रक्त जानना ॥ १७ ॥ तहां चंदन, खश, मँजीठ, परवल, नागरमोथा, नेत्रवाला, महुआ, मुलहटी, लाल चन्दन ॥ १८ ॥ पद्माक, दोनोंसांठी, अनंतमूल, भद्रमोथा इन्होंको दूधमें मिला खांड मिला पित्तसे उपजे रोगमें पीना हित है ॥ ॥ १९ ॥ पीछे योनिकी शुद्धिको जानके आगे कही हुई ये महान् औषध देनी चाहिये सफेद आककी जड, दूधी, सफेद गोकर्णी ॥ २० ॥ सफेद गोकर्णीकी जड, इन्होंको गौके दूधके संग पीवे और सफेद कटेहलीकी जडको दूधके संग पीनेसे वन्ध्या स्त्रीको गर्भ रहता है ॥ २१ ॥

अथ कफदुष्टरजकी चिकित्सा ।

सघनं पिच्छलं चापि जाड्यं स्यान्मूत्ररोधनम् ॥ आलस्यतन्द्रा निद्रा च कफदुष्टं रजो विदुः ॥ २२ ॥ त्रिफला गिरिकर्णी च तथारग्वधवत्सकौ ॥ पयसा पयसा पानं स्त्रीणांच गर्भकारणम् ॥ २३ ॥ बलाद्यं चन्दनाद्यंच द्राक्षाद्यं चूर्णमेव च ॥ दापयेद् गर्भजननं नारीणां भिषगुत्तमः ॥ २४ ॥ खण्डकाद्यञ्च चूर्णंच नारीणां भिषगुत्तमः ॥ पुनर्नवाद्यं देयं वा स्त्रीणां गर्भप्रदायकम् ॥ २५ ॥

और करडा २ झागोंवाला, जडरूप, मूत्रको रोकनेवाला, ऐसा रक्त गिरै और आलस्यहो निद्राहो तंद्राहो वह कफसे दूषित हुआ रक्त जानना ॥ २२ ॥ तहां त्रिफला, गोकर्णी, अमलतास, कूडाकी छाल, दूधी, इन्होंको दूधके संग पीनेसे स्त्रियोंको गर्भस्थिति होती है ॥ २३ ॥ और पहले कहाहुआ बलाआदिक चन्दनादिक और द्राक्षादिक चूर्णके देनेसे हे उत्तमवैद्य ! गर्भस्थिति होती है ॥ २४ ॥ और हे उत्तमवैद्य ! खण्डकाद्य चूर्ण अथवा पुनर्नवाद्य चूर्ण देनेसे स्त्रियोंको गर्भस्थिति होती है ॥ २५ ॥

अथ स्त्रियोंके गर्भार्थ पथ्य ।

अथ पथ्यं प्रवक्ष्यामि स्त्रीणां च शृणु पुत्रक ॥ कच्चरं सूरणं चैव तथा चाम्लं च काञ्जिकाम् ॥ २६ ॥ विदाहिकं च तीव्रं च स्त्रीणां दूरे परित्यजेत् ॥ वन्ध्याकर्कटकीमूलं लांगली कटुतुम्बिका ॥ २७ ॥ देवदाली द्विबृहती सूर्य्यवल्ली च भीरुका ॥ निर्माल्यं माल्यवस्त्रञ्च तथा स्याहतुसङ्गमः ॥ २८ ॥ अन्यस्त्रीस्नातमुदकं स्त्रीणां पथ्यमुपक्रमः ॥ २९ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने वन्ध्योपक्रमोनामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

और हे पुत्र ! अब स्त्रियोंके वास्ते पथ्य कहते हैं कचरी, जमीकन्द, चूकाका शाक, कांजी, ॥ २६ ॥ विदाही और तीक्ष्ण ऐसे भोजन स्त्रियोंको दूरसेही त्याग देने चाहिये और बांझ ककोडीकी जड, कलहारी, कडुई तुंबी ॥ २७ ॥ देवदाली, दोनों कटेहली, सूर्यमुखी, शतावरी, ये वस्तु वन्ध्यास्त्रीको पथ्य हैं और जिस स्त्रीके बालक होतेहों तिसका झूठा भोजन आदिक और तिसका वस्त्र और तिसका रजस्वला अवस्थामें स्पर्श ॥ २८ ॥ तिसका ऋतुसमयमें स्नान किया हुआ जल ऋतुसमयमें अपने पतिके संग भोग ये पथ्य हैं ॥ २९ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने वन्ध्योपक्रमोनामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ४९.

अथ गर्भोपचारविधि ।

आत्रेय उवाच ॥ प्रथमे मासि यष्टीमधुपरुषकं मधुपुष्पाणि यथा लाभम् ॥ नवनीतेन पयो मधु मधुरं पाययेच्च ॥ १ ॥

द्वितीये मासि काकोली मधुरं पाययेत्तथा ॥ तृतीये कृशरा श्रेष्ठा चतुर्थे च कृतौदनम् ॥ २ ॥ पञ्चमे पायसं दद्यात् षष्ठे च मधुरं दधि ॥ सप्तमे घृतखण्डेन चाष्टमे घृतपूरकम् ॥ ॥ ३ ॥ नवमे विविधान्नानि दशमे दोहदं तथा ॥ मासे तृतीये सम्प्राप्ते दोहदं भवति स्त्रियः ॥ ४ ॥ यद्यत् कामयते सा च तत्तद्दद्याद्भिषग्वरः ॥ ५ ॥ वर्जयेद्विदलान्नानि विदाहीनि गुरूणिच ॥ अम्लानि सोष्णक्षीराणि गुर्विणीनां विवर्जयेत् ॥ ॥ ६ ॥ मृत्तिका भक्षणीया न न च सूरणकन्दकाः ॥ रसोनश्च पलाण्डुश्च संत्याज्यो गुर्विणीस्त्रिया ॥ ७ ॥ सूरणानि प्रदेयानि गौल्यानि सरसानि च ॥ पथ्ये हितानि चैतानि गुर्विणीनां सदा भिषक् ॥ ८ ॥ व्यायामं मैथुनं रोषं शोषं चंक्रमणं तथा ॥ वर्जयेद्गुर्विणीनाञ्च जायन्ते सुखसम्पदः ॥ ९ ॥ अथोपपन्नं विहितमपि स्वकीयाचारेण पंचमासिकमष्टमासिकं वा ॥ ब्राह्मणमङ्गलादिभिर्गोत्रभोजनमपि कर्त्तव्यम् ॥ दोहदादिषु परिपूर्णेषु रूपवान् शूरः पंडितः शीलवान्पुत्रो जायते ॥ १०. ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने गर्भोपचारो नाम एकोनपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

पहले महीनेमें मुलहटी, फालसा, महुवृक्ष, इनमांहसे जितने मिलैं उतनेहियोंको नौनीघृत दूध इन्होंके संग खांड मिलाके मीठा २ प्यावै ॥ १ ॥ और दूसरे महीनेमें काकोली, शहद, इन्होंको प्यावै तीसरे महीनेमें श्रेष्ठ कृशरा अर्थात् खिचडी और चौथे महीनेमें चावलोंके भातका भोजन करै ॥ २ ॥ और पांचवें महीनेमें दूध और छठे महीनेमें मीठा दही देना चाहिये और सातवें महीनेमें घृत, खांड, आठवें महीनेमें घेवर ॥ ३ ॥ और नवमें महीनेमें अनेक प्रकारके भोजन दशवें महीनेमें गर्भवती स्त्रीके इच्छापूर्वक भोजन देने चाहिये. और जब तीसरा महीना प्राप्त होता है तब स्त्रियोंकी इच्छा अनेक वस्तुओंमें होती है॥ ४ ॥ तब स्त्री जिस २ वस्तुकी इच्छा करै वही २ भोजन देना चाहिये ॥ ५ ॥ और द्विदल धान्य, विदाही तथा भारी भोजन, खट्टे भोजन, गरम दूध, इन वस्तुओंको गर्भवती स्त्री वर्ज देवै॥ ६॥ और मृत्तिका नहीं भक्षण करनी चाहिये और जमीकंदको भक्षण नहीं करै और लहसन,

प्याज, ये गर्भवती स्त्रीको त्याग देने चाहिये ॥ ७ ॥ और जमीकंद आदिक तथा गुठली बंधनेवाले अन्न इन्होंको देवै तो रससहित देवै हे वैद्य ! इसप्रकार कहेहुए पथ्य गर्भवती स्त्रीको सदा पथ्य कहे हैं ॥ ८ ॥ और कसरत, मैथुन, क्रोध, शोक, जादे फिरना ये सब गर्भवतीस्त्रियोंको वर्ज देने चाहिये तब सुखकी उत्पत्ति होती है ॥ ९ ॥ और कहेहुवे इस विधानको करते हुएभी अपने आचरण करके पांचवें महीनेमें अथवा छठे महीनेमें मंगलादिक करवाके ब्राह्मण और गोत्री भाई इन्होंको भोजन करवावे और गर्भवतीकी इच्छापूर्वक वस्तु मिलती रहे तो रूपवान्, शूर, वीर, पंडित, शीलवान् ऐसा पुत्र उत्पन्न होता है ॥ १० ॥

इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिता भाषाटीकायां तृतीयस्थाने गर्भोपचारोनामएकोनपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५०.

अथ चलितगर्भचिकित्सा ।

आत्रेय उवाच ॥ प्रथमे मासि गर्भस्य चलनं दृश्यते यदि ॥ तदा मधुकमृद्वीकाचन्दनंरक्तचंदनम् ॥ १ ॥ पयसालोडितं पीतं तेन गर्भः स्थिरो भवेत् ॥ २ ॥ द्वितीये मासि चलिते मृणाले नागकेशरम् तृतीये मासि गर्भस्य चलनं दृश्यते यदा ॥ ३ ॥ तदा मूषककिट्टं तु शर्करापयसा पिबेत् ॥ चतुर्थे मासि दाहश्च पिपासा शूलमेव च ॥ ४ ॥ ज्वरेण स्त्रीणां यदि गर्भश्चलते तदोशीरचन्दननागकेशरधातकीकुसुमशर्कराघृतमधुदधिपाययेत् ॥ पञ्चमे मासे चलिते गर्भे दाडिमीपत्राणि चन्दनं दधि मधु च पाययेत् ॥ षष्ठे मासि गैरिकं कृष्णमृत्तिकागोमयभस्म उदकं परिस्रुतं शीतलं चन्दनं शर्करया सह पिबेत् ॥ सप्तमे मासि गोक्षुरसमञ्जापद्मकघनमुशीरनागकेशरं मधुरं पाययेत् ॥ अष्टमे मासि रोध्रं मधु मागधिकाञ्च सह दुग्धेन पीतवतीनां चलिते गर्भे स्त्रीणां सुखं सम्पद्यते ॥ ५ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने चलितगर्भचिकित्सानाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

आत्रेयजी कहते हैं-जो यदि पहिलेमहीनेमें गर्भ चलायमान दीखे तो मुलहटी, मुनक्का, दाख, चंदन, लाल चंदन ॥ १ ॥ इन्होंको दूधमें घोल पीनेसे गर्भ स्थिर होजाता है ॥ २ ॥ और दूसरे महीनेमें गर्भ चलायमान होजावे तो कमलकी नाली, नागकेशर, इन्होंको देवे और तीसरे महीनेमें गर्भ चलायमानहुआ दीखे ॥ ३ ॥ तो मूसाकी बीटको खांड और दूधके संग पीवे और चौथे महीनेमें जो दाहहो तृषाहो शूलहो ॥ ४ ॥ और ज्वरसे स्त्रियोंका गर्भ चलताहुआ मालूम होवे तो खश, चंदन, नागकेशर, धायके फूल, खांड, घृत, शहद, दही, इन्होंको प्यावे और पांचवें महीनेमें गर्भ चलताहुआ दीखे तो अनारके पत्ते, चंदन, दही, शहद, इन्होंको प्यावे, छठे महीनेमें गेरू, काली मृत्तिका, गोबर आरनोंकी भस्म इन्होंको जलमें घोल छानके दालचीनी, चंदन, खांड, ये मिला पीवे और सातवें महीनेमें गोखरू, लज्जावंती, पद्माक, नागरमोथा, खश, नागकेशर, शहद, इन्होंको प्यावे और आठवें महीनेमें लोध, शहद, पीपली, इन्होंको पीवती हुई स्त्रियोंका चलायमान गर्भ स्थिर रह जाता है और सुख होता है ॥ ५ ॥ इति वेरीनि० हारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने चलितगर्भचिकित्सानाम पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५१.



अथ गर्भोपद्रवचिकित्सा ।

आत्रेय उवाच ॥ शोषो हृल्लासश्छर्दिश्च शोफो ज्वरस्तथारुचिः॥ अतीसारो विवर्णत्वमष्टौ गर्भस्योपद्रवाः ॥ १ ॥ वक्ष्यामि भेषजं तस्य यथायोगेन साम्प्रतम् ॥ वटप्ररोहं मगधामुशीरं घनमेव च ॥ २ ॥ युता खण्डगुटिकास्ये विहिता शोषवारिणी ॥ ३ ॥ वत्सकं मगधा शुण्ठी तथा चामलकीफलम् ॥ युक्तं कोमलबिल्वेन दध्ना पिष्टं तु दापयेत् ॥ ४ ॥ शर्करासंयुतं पानं स्त्रीणां गर्भे हितं सदा ॥ ५ पीतो भूनिम्बकल्कश्च शर्करासमभावितः ॥ छर्दिं हरेच्च हृत्क्लेदं मधुना वा समन्वितः ॥ ६ ॥ शृङ्गवेरं सकटुकं मातुलुङ्गस्य केशरम् ॥ मार्जनं दन्तजिह्वासु गण्डूषश्चोष्णवारिणा ॥ ७ ॥ गुर्विणीनाञ्च सर्वासामरुचिं च नियच्छति ॥ वत्सकं दाडिमं पाठा बिलबिल्वबलास्तथा ॥ ८ ॥ जम्ब्वाम्रपल्लवाश्चैव यथा लाभेन सत्तम ॥ शर्करादधिसंयुक्तं स्त्रीणाञ्चै-

वातिसारके ॥ ९ ॥ हरीतकी नागरकं गुडेन वा त्रिफलाकषायः ॥ शीतः स्त्रीणां विनिहन्ति पाने विबन्धविद्रधींश्च ॥ १० ॥ मूत्रविबन्धनस्य त्रपुसैर्वारिबीजानि मागधी च शिलाभेदं सिताढ्यञ्च पिबेत्तण्डुलवारिणा ॥ मूत्ररोधं गुर्विणीनां वारयत्याशु निश्चितम् ॥ ११ ॥

आत्रेयजी कहते हैं-शोष, थुकथुकी, छर्दि, शोना, ज्वर, अरुचि, अतिसार, विवर्ण ये आठ गर्भके उपद्रव हैं ॥ १ ॥ अब योगसे तिसकी औषधको कहैंगे वडके अंकुर, पीपली, खश, नागरमोथा, इन्होंका चूर्ण करि ॥ २ ॥ मिला गोली बनाके मुखमें धारण करनेसे शोषका निवारण होता है ॥ ३ ॥ और कूडाकी छाल, पीपली, सूंठ, आंवले, कच्चीबेलगिरी इन्होंको दहीमें पीस ॥ ४ ॥ खांड मिला पीनेको देनेसे स्त्रियोंके गर्भमें सदा सुख होता है ॥ ॥ ५ ॥ और चिरायतेका कल्क बना बराबरकी खांड मिला पीनेसे गर्भवती स्त्रीकी छर्दिका निवारण होता है और शहदमें मिलाके पीनेसे हृदाकी ग्लानिका नाश होता है ॥ ६ ॥ और अदरख मिर्च विजौराकी केशर इन्हों करके दांत जिव्हा इन्होंको धोवे और कुरले धारण रक्खे ॥ ७ ॥ तो गर्भवती स्त्रियोंकी अरुचिका नाश होता है और कूडाकी छाल, अनारदाना, पाठा, बडीसेमफली, बेलगिरी, खैरहटी ॥ ८ ॥ जामन, आंब इन्होंके पत्ते इन मांहसे जितनी औषध मिलैं उतनीहियोंको खांड दही इन्होंमें मिलादेनेसे वातसे उपजा स्त्रियोंका अतिसार रोग दूर होता है ॥ ९ ॥ और हरडै, सूंठ इन्होंको त्रिफलाके क्वाथमें मिला और गुड मिला शीतलकर पीनेसे गर्भवती स्त्रीका मलका बंधा, विद्रधी इन्होंका नाश होता है ॥ १० ॥ और काकडीके बीज, नेत्रवाला, पीपली, पाषाणभेद, मिश्री, इन्होंको चावलोंके धोवनके जलके संग पीवै तो स्त्रियोंका बंध हुआ मूत्र शीघ्रही उतरता है ॥ ११ ॥

मधुकादिकल्क।

मधुकविषमृणालं पद्मकिञ्जल्ककल्कं घनमतिविषमैन्द्रं बीजमौशीरनीरम् ॥ समकृतमथ कल्कं देयमाशु प्रपाने हितमपि युवतीनां गर्भचाले सिताढ्यम् ॥ १२ ॥

और मुलहटी, अतीश, कमलकी नाली, कमलकेशर, इन्होंका कल्क बना अथवा नागरमोथा, अतीश, इंद्रजव, खश, नेत्रवाला इन्होंको समान भाग ले कल्क बना शीघ्रही गर्भवती स्त्रीको पान करावे तथा गर्भवती स्त्रियोंका गर्भ चलित होनेमें मिश्रीसे युक्त इन औषधोंका पान कराना श्रेष्ठ है ॥ १२ ॥

अथ गर्भोपद्रवमें उपचारकी शिक्षा।

गर्भस्योपद्रवाः शोफाः स्वेदयेदुष्णवारिणा ॥ न दातव्यो मतिमता विरेको दारुणो महान् ॥ १३ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने गर्भोपद्रवचिकित्सा नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५१

और गर्भके उपद्रव जो शोजे हो जावे तो गरम जलसे पसीना दिवावे और बुद्धिमान वैद्य गर्भवती स्त्रीको दारुण जुलाब नहीं देवै ॥ १३ ॥ इति वेरीनिवासिबुधाशिनसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने गर्भोपद्रवचिकित्सानाम एकपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५२.

अथ मूढगर्भचिकित्सा।

आत्रेय उवाच ॥ विरुद्धाहारसेवाभिस्तथा गर्भव्यथासु च ॥ अतिमूर्द्धनपीडायाः पीडां प्राप्नोति चार्भकः ॥ १ ॥ तिर्य्यग्वापिच गर्भश्च त्यक्त्वा द्वारं भगस्य च ॥ अन्यद्वा म्रियतेऽपत्यं तेन कष्टं प्रपद्यते ॥ २ ॥ अथवा लज्जया स्त्रीणां सङ्कोचात्सङ्कुचिते भगे ॥ मूढगर्भश्च जानीयात्तस्य वक्ष्यामि लक्षणम् ॥ ३ ॥ बस्तिशूलश्च भवति योनिद्वारं निरुन्धति ॥ गर्जते जठरं यस्या आध्मानश्चैव जायते ॥ ४ ॥ तोदनं चाङ्गभङ्गश्च निद्राभङ्गश्च जायते ॥ वाताद्भवति गर्भस्य संरोधो भिषगुत्तम ॥ ५ ॥ शूलं ज्वरस्त्रिदोषश्च तृष्णादोषो भ्रमस्तथा ॥ मूत्रकृच्छ्रं शिरोऽर्त्तिः स्यात्पित्ताद्रोधो भ्रूणस्य च ॥ ६ ॥ आलस्यतन्द्रानिद्रा च जाड्याध्मानं च वेपथुः ॥ कासो विरसता चास्ये श्लेष्मणा मूढगर्भके ॥ ७ ॥ द्वन्द्वैश्च द्वन्द्वजं विद्यात्सर्वै स्यात्सान्निपातिकम् ॥ ८ ॥

आत्रेयजी कहते हैं-विरुद्धआहारादिक करनेसे गर्भमें बाधा होनेसे बालकके मस्तकमें पीडा होनेसे बालक दुःखित होजाता है ॥ १ ॥ वह तिरछाहो भगके द्वारको त्याग देता है और कहींक मरजाता है तिस्से स्त्रीको कष्ट होता है ॥ २ ॥ अथवा लज्जासे स्त्रीकी भगका संकोच होनेसे मूढगर्भ होजाता है तिसके लक्षणको कहते हैं ॥ ३ ॥ बस्तिमें

शूल, योनिद्वार रुकजावे और जिसका उदर गर्जै, और अफाराहो ॥ ४ ॥ चभकाहो, अंगभंगहो, निद्राभंगहो, हे उत्तम वैद्य ! तहां वातसे उपजा गर्भका निरोध जानना ॥ ॥ ५ ॥ और शूलहो त्रिदोषसहित ज्वरहो, तृषाहो, दोषका भ्रमहो, मूत्रकृच्छ्रहो, शिरमें पीडाहो वह पित्तसे उपजा गर्भ निरोध जानना ॥ ६ ॥ और आलस्यहो तंद्राहो, निद्राहो, जडपनाहो, अफाराहो, कंपनाहो, खाँसीहो, मुखमें विरसताहो, ये लक्षण कफसे उपजे मूढगर्भके ह ॥ ७ ॥ और दोदोषोंसे मिलेहुए लक्षण जानने जिसमें सब लक्षण मिलैं वह सन्निपातका मूढगर्भ जानना ॥ ८ ॥

अथ मृतगर्भका लक्षण।

भ्रममूर्च्छातृषाध्मानं वातरोधश्च विह्वलम् ॥ मूर्च्छावमिं सपारुष्यं दीनत्वमुपगच्छति ॥ ९ ॥ मृतगर्भं विजानीयादाशुकारी स्त्रियामपि॥अतोवक्ष्यामि भैषज्यं महामोहे विशारद ॥ १० ॥

भ्रमहो मूर्छाहो, तृषाहो, अफाराहो, वातका रोधहो, विह्वलहो, मूर्छाहो, वमनहो कठोरताहो, गरीबपनाहो ॥ ९ ॥ तहां स्त्रीके मराहुआ गर्भ जानना, इसका इलाज शीघ्रही करे, हे वैद्य ! इस महामोहकी अब औषधोंको कहैंगे ॥ १० ॥

अथ वातिकमूढगर्भचिकित्सा।

वातिके मर्दनाभ्यङ्गं स्वेदनं वाल्पमेव च ॥
यवागूं पञ्चकोलञ्च पाययेद्भिषगुत्तमः ॥ ११ ॥

वातके मृतगर्भमें मर्दन करै मालिस करै अल्प २ पसीना दिवावै और पंचकोल, अर्थात सूंठ, पीपली, पीपलामूल, चव्य, चीता, इन्होंकी यवागू प्यावे ॥ ११ ॥

अथ पैत्तिकमूढगर्भचिकित्सा।

पैत्तिके शीतलं पानं शीतान्नसहितानि च ॥
व्यञ्जनानि तथा तस्य यष्टिकं पयसा पिबेत् ॥ १२ ॥

और पित्तके मृतगर्भमें शीतल पान, शीतल अन्न, और शाकआदिक देवै और मुलहटीको दूधके संग पीवे ॥ १२ ॥

अथ कफजमूढगर्भचिकित्सा।

त्रिकटु त्रिफला कुष्ठं रोध्रं वत्सकधातुकी ॥
सगुडं क्वथितं पाने श्लेष्मणा मूढगर्भके ॥ १३ ॥

और कफके मूढगर्भमें सूंठ, मिरच, पीपली, त्रिफला, कूठ, लोधं, कूडाकी छाल, धायके फूल, गुड इन्होंका क्वाथ बना पान कराना हित है ॥ १३ ॥

अथ रक्तपित्तजमूढगर्भचिकित्सा ।

मूर्वाचिञ्चावास्तुकर्णीमञ्जिष्ठारोध्रनीलिकाः॥कर्कन्धूमूलं सौराष्ट्री क्राथश्च सगुडो हितः ॥ १४ ॥ रक्तपित्तविकारेषु कुक्षिशुद्धिश्च जायते ॥ मृतगर्भस्य वक्ष्यामि भेषजं भिषजां वर ॥ १५ ॥ मर्दयित्वा मानुषीश्च ततश्चापि प्रयत्नतः ॥ निराहाराच्च म्रियते यदिगर्भोऽन्तरे स्त्रियः ॥ १६ ॥

और मरोडफली, अमली, वास्तुकर्णी, मंजीठ, लोध, नील, बेरीकीजड, फटकटी इन्होंका क्राथ बना गुड मिला ॥ १४ ॥ रक्तपित्तके विकारोंमें कुक्षिकी शुद्धिकेवास्ते देना श्रेष्ठ है और हे उत्तम वैद्य ! अब मृतगर्भकी औषधको कहते हैं ॥ १५ ॥ जो यदि निराहार लंघन करनेसे स्त्रीके उदरमें गर्भ मरजावे तो यत्नसे स्त्रीको मर्दन करि पीछे शस्त्रक्रिया करैं तिसको मुझसे सुन ॥ १६ ॥

अथ मूढगर्भमें शस्त्रचिकित्सा ।

तदा शस्त्रप्रतीकारं भेषजानि शृणुष्व मे ॥ नाभिबिलशयाच्च सुकुण्डलिकां कृत्वा तु तस्योपरि मूढगर्भामुपवेश्य जानुनी प्रसार्य्य किञ्चित्पृष्ठभागे साधारणमवष्टभ्य उदरादधोऽवतारयेत् ॥ योनिद्वारे प्रगलति तिलतैलेन वारिणा परिभ्यज्य हस्तो याति योनिद्वारञ्च तस्मात्तर्जन्याङ्गुष्ठेन गलप्रदेशे धृत्वा निःसारयेत् ॥ अथवार्द्धचन्द्रेण शस्त्रेणैव मृतगर्भस्य बाहुयुगलं संच्छिद्य बाहू निःसारयेत् ॥ १७ ॥

नाभिके बिलके समान गोल और डूंघी कुंडालिका अर्थात् ईढबीसी बनाके तिसके ऊपर मूढगर्भवाली स्त्रीको बैठाके तिसके गोडे पसराके पीठकी तर्फसे साधारण कछुक दबाव और उदरसे नीचेको गर्भको उतारे जब योनिके द्वारपै गर्भ आजावे तब तिलोंका तेल, जल इन्होंकी मालिस करै पीछे योनिद्वारसे बालकका हाथ निकसे तब तर्जनी अंगुली और अंगूठेको योनिके भीतर कर तिस बालकके गलेको पकडि बाहिरको खींच लेवे अथवा अर्द्ध चंद्र नामवाले शस्त्रसे तिस मरेहुवे बालककी दोनों बाहुओंको काटि बाहिरको निकास देवै ॥ १७ ॥

अथ उत्पत्तिके उपायकेवास्ते मंत्र और औषध ।

लाङ्गल्या मूलेन उष्णेन वारिणा योषितां नाभिलेपेन शीघ्रं गर्भो जायते प्रसूयते च ॥ बलामूलं सूर्य्यकान्तिसोमवल्लीकानि कज्जलैन पिष्ठा लेपनं करोतु ॥ १८ ॥

कलहारीकी जडको गरम जलमें पीस गर्भवती स्त्रियोंकी नाभिपे लेप करनेसे शीघ्रही बालक उत्पन्न होता है और खरैहटीकी जड, सूर्यमुखी, चांदवेल इन्होंको कज्जलके संग लेप करना हित है ॥ १८॥

अथ सुखसे बालकहोनेका यत्न ।

भीरुभूनिम्बवार्त्ताकीमूलञ्च पिप्पलीयकम् ॥ यवान्यग्रवचाः पिष्ट्वा तथा चोष्णेन वारिणा ॥ १९ ॥ नाभिदेशादधस्ताच्च प्रलेपेन प्रसूयते ॥ मूलञ्च लाङ्गलिक्याश्च देवदाल्याश्च तुम्बिका ॥ २० ॥ कोशातक्यादिकं सर्वं लेपने परिकल्पितम् ॥ सूतिलेपाः स्त्रियो ह्येते सुखेन सा प्रसूयते ॥ २१ ॥

शतावरी, चिरायता, वार्त्ताकी, कटेइलीका भेद, तिसकी जड, पीपली, अजवायन, वच इन्होंको गरम जलके संग पीस ॥ १९ ॥ नाभिस्थानसे नीचेको लेप करनेसे बालक उत्पन्न होता है और कलहारीकी जड, देवताडकी जड, तुंबी ॥ २० ॥ कडवी तोरी, इन्होंको पीस लेप करना श्रेष्ठ है कहे हुए ये सब लेप करनेसे स्त्री सुखसे बालकको जनती है॥२१॥

अथ मन्त्रः ।

हिमवदुत्तरे कूले सुरसा नाम राक्षसी ॥ तस्या नूपुरशब्देन विशल्या गुर्विणी भवेत् ॥ २२ ॥ ऐं ह्रीं भगवति ! भगमालिनि ! चल चल भ्रामय पुष्पं विकाशय विकाशय स्वाहा ॥ ॐ नमो भगवते मकरकेतवे पुष्पधन्विने प्रतिचालितसकलसुरासुराचित्ताय युवतिभगवासिने ह्रीं गर्भं चालय चालय स्वाहा ॥ एभिर्मन्त्रितं पयः पाययेत्तेन सुखप्रसवः ॥ २३ ॥

हिमवान् पर्वतकी दाहिनी तर्फको किनारेपे सुरसा नामवाली राक्षसणी रहती है तिसके नूपुर बिछुवोंके शब्दसे मूढगर्भवाली स्त्री बालकको जनती है ॥ २२ ॥ ऐंह्रीं भगवति भगमालिनि चलचल, भ्रामय पुष्पं विकाशय विकाशय स्वाहा ॥ ॐ नमो भगवते मकरकेतवे पुष्पधन्विने प्रतिचालितसकलसुरासुरचित्ताय युवतिभगवासिने ह्रीं गर्भं चालय चालय स्वाहा, इनमंत्रोंसे पढाहुआ दूध प्यावे तिस्से सुखसे बालक होता है ॥ २३ ॥

अथ यन्त्र ।

ऐं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रौं ह्रः ॥ २४ ॥ इदं यन्त्रं भूर्जपत्रस्योर्ध्वे भागे लिखित्वा मूढगर्भायै दर्शयेच्छय्यातले च स्थापयेत्तेन सुखेन प्रसवः ॥ २५ ॥

ऐं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रों ह्रौं ह्रः ॥ २४ ॥ इसयंत्रको भोजपत्रके ऊपर लिखके मूढगर्भवाली स्त्रीकेवास्ते दिखावे अथवा तिसकी शय्याके नीचे स्थापित करदेवै तिस्से सुखसे बालक उत्पन्न होता है ॥ २५ ॥

अथ मन्त्र।

गङ्गातीरे वसेत्काकी चरते च हिमालये ॥ तस्याः पक्षच्युतं तोयं पाययेच्च ततः क्षणात् ॥ २६ ॥ ततःप्रसूयते नारी काकरुद्रवचो यथा ॥ अनेन दूतो व्याकुलो भवेत्तावच्च पाययेत् ॥ २७ ॥ तेन प्रसूयते नारी गृहे काकसुखेन च ॥ २८ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने मूढगर्भचिकित्सानाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

"गंगातीरे वसेत्काकी चरते च हिमालये। तस्याः पक्षच्युतं तोयं पाययेच्च ततः क्षणात् ॥ ततःप्रसूयते नारी काकरुद्रवचो यथा ॥" अर्थ--गंगाके तीरपर हिमालयपर्वतमें एक काकी विचरती है. तिसके पंखसे गिराहुआ पानी स्त्रीको पिलावे. तिससे स्त्री प्रसवती है ऐसा काकरुद्रका वचन है ॥ २६ ॥ इसमंत्रको कहताहुआ दूत एक श्वाससे थकजावे तब गर्भवती स्त्रीको तिसजलको प्यादेवै ॥ २७ ॥ फिर वह स्त्री सुखसे बालकको जनती है जैसे कागणी अंडेको तैसे ॥ २८ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने मूढगर्भचिकित्सानाम द्विपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५३.

अथ सूतिकारोगकी चिकित्सा।

आत्रेय उवाच ॥ प्रसूत्यनन्तरं रोध्रार्जुनकदम्बदेवदारुबीजकाह्वं कर्कन्धूश्च यथालाभं लोहितविशुद्धे दापयेत् ॥ प्रसूतिजाता योनिः संशोध्यते ॥ तैलेनापूर्य्याभ्यज्य चोष्णेन वारिणा स्वेदयेत् ॥ उपवासमेवं कृत्वा द्वितीये दिवसे गुडनागरहरीतकीश्च दापयेत् ॥ द्वययामोर्ध्वं कुलत्थयूषं वा सोष्णं पाययेत् ॥ तृतीयदिवसे पञ्चकोलयवागूर्दापयेत् ॥ चतुर्जातक मिश्रा यवागूर्दापयेत् ॥ पञ्चमेऽहनि शालिषष्टिकौदनं भोजयेत् ॥ अनेन क्रमेण दशपञ्चदशाहं चोपचारयेत् ॥ १ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—बालक जननेके पीछे लोध, अर्जुनवृक्ष, कदंब, देवदार, बिजौरा, बेरी इन्होंमेंसे मिले उतनेहियोंको लहूकी शुद्धिके वास्ते क्काथ बनाके देवै इससे प्रसूति स्त्रीकी योनी शुद्ध होजाती है और तेलकी मालिस कर गरम जलसे पसीना दिवावै पहले दिन स्त्रीको लंघन करवावै और दूसरे दिन गुड, सूंठ, हरडै, इन्होंको देवै फिर दोपहर पीछे कुलथीका यूष गरम २ देवै और तीसरे दिन पञ्चकोल अर्थात् पीपली, पीपलामूल, सूंठ, चव्य, चीता इन्होंकी यवागू बनाके देवै और चौथे दिन इस यवागूमें चातुर्जातक अर्थात् दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर ये मिलाके देवै और पांचवें दिन शालिसंज्ञक चावलोंके भातका भोजन करै इसी क्रमके अनुसार पन्द्रह दिन पथ्य भोजनका उपचार करना चाहिये ॥ १ ॥

अथ स्त्रीके दूध बढानेके उपाय ।

पिप्पली पिप्पलीमूलं नागरं घनवालुकम् ॥ कुस्तुम्बुरूणि मञ्जिष्ठां सह क्षीरेण कल्कयेत् ॥२॥ पानं क्षीरविशुद्ध्यर्थं कल्कमश्नात्यनन्तरम् ॥ मरीचं पिप्पलीमूलं क्षीरं क्षीरविवृद्धये ॥ ॥ ३ ॥ मागधी नागरी पथ्या गुडेन सघृतं पयः ॥ पानं जनयते क्षीरं स्त्रीणाञ्च क्षीरपादपि ॥ ४ ॥ एवं कृत्वा च नारीणां द्वादशाहे भिषग्वरः ॥ माङ्गल्यं वाचनं कृत्वा योषार्थञ्च प्रदर्शयेत् ॥ ५ ॥ जातके सुतमोक्षञ्च द्वादशाहं तथा पुनः ॥ नामकर्मकृतौ सत्यां कर्णवेधनमेव च ॥ ६ ॥ वस्त्रबन्धं विवाहञ्च कारयेद्बालकस्य च ॥ ७ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने सूतिकोपचारोनाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

पीपल, पीपलामूल, सूंठ, नागरमोथा, नेत्रवाला, धनियां, मंजीठ इन्होंको दूधमें पीस कल्क बना ॥ २ ॥ इस कल्कको खावे और दूध पीवे ऐसे करनेसे स्त्रीके दूधकी शुद्धि हो जाती है और मिरच, पीपलामूल इन्होंसे युक्त दूधके पीनेसे स्त्रियोंके दूधकी शुद्धि होती है ॥ ३ ॥ और पीपली, सूंठ, हरडै इन्होंको गुड घृतसहित दूधमें मिला पीनेसे स्त्रियोंके दूध बढता है ॥ ४ ॥ और इस प्रकारके बारहमें दिन मंगलाचरण करवाके पीछे स्त्रियोंका (अर्थात् मंगलादिकके) दर्शन करवावे ॥ ५ ॥ जातककर्ममें सुतकी उत्पत्ति होनेका मंगल करवावे पीछे बारहमें दिन मंगल करवाके नामकर्म करवावे पीछे कर्णवेधकर्म करवावे ॥ ६ ॥ फिर वस्त्रबन्ध, तागडी आदि बांधनेका कर्म और विवाहकर्म ये सब कर्म बालकके करवाने चाहिये ॥ ७ ॥ इति वेरीनि० हारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने सूतिकोपचारोनाम त्रिपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५४.

अथ बालरोगनिदानलक्षण।

आत्रेय उवाच ॥ पञ्चैव क्षीरदोषाश्च स्त्रीणाञ्च कथिताबुधैः ॥ घनक्षीरोष्णक्षीराम्लक्षीरा चैव तथा परा ॥ १ ॥ अल्पक्षीरा क्षारक्षीरा मृदुक्षीरा तथा परा ॥ मृदुक्षीरा भवेत्सौख्या पञ्चान्या दोषकारकाः ॥ २ ॥ घनाध्मानानिरोधत्वं श्वासकासादिसम्भवः ॥ उत्फुल्लकुक्षितैवं हि घनक्षीरस्य सेवनात् ॥ ३ ॥ अल्पसत्वः कृशो दीनः श्वासातीसारपीडितः ॥ अल्पक्षीरस्य दोषेण सम्भवेद्धतवाक्सुतः ॥ ४ ॥ ज्वरः शोषस्तथाल्पत्वमुष्णक्षीरेण बालके ॥ तथैव चोष्णक्षीरेण ज्वरातीसार एव च ॥ ॥ ५ ॥ सुसत्वं बलमाप्नोति चारोग्यं लभते शिशुः ॥ मृदुक्षीरेण नियतं जायते रूपवानपि ॥ ६ ॥ चक्षूरोगश्च कण्डूश्च क्षतश्लेष्मावस्राविता ॥ संक्लेदयुक्तं नासास्यं जायते क्षारदुग्धके ॥ ७ ॥

पंडितजनोंने स्त्रियोंके दूधके दोष पांच कहे हैं गाढा दूध, गरम दूध, खट्टा दूध ॥ १ ॥ थोडा दूध,खारा दूध ये पांच दोष हैं और कोमल स्वच्छ दूधवाली स्त्री सुखसे युक्त कही और ये अन्य सब दूषित दूधवाली हैं ॥२॥ जो बालक गाढा दूध पीवे तो करडा अफाराहो श्वास रोगहो, खांसिहो और कूखि, जांघोंकी संधि ये फूली हुई रहै ॥३॥ और अल्प दूधके पीनेसे थोडा बलहो, कृशहो, दीनहो श्वास, अतिसार, इन्होंसे पीडितहो और वाणी नष्ट होजावे ॥ ४ ॥ और ज्वरहो अल्पशोषहो अतिसारहो ये स्त्रीका गरम दूध पीनेवाले बालकके रोग होजाते हैं ॥ ५ ॥ और कोमल स्वच्छ दूध पीनेसे बालक मोटा होता है और बल बढता है निरन्तर आरोग्य सुखमें प्राप्त रहता है और रूपवान् होता है ॥ ६ ॥ और आंखोंमें रोगहो खाजिहो गुमडे फुंसी अधिकहो कफगिरै जलसे युक्त नासिका और मुख रहै ये खारा दूध पीनेवाले बालकके रोग हैं ॥ ७ ॥

अतो वक्ष्यामि भैषज्यं शृणु हारीत मे मतम् ॥ ८ ॥

हे हारीत ! अब इन्होंकी औषधोंको कहैंगे तू सुन यह मेरा मत है ॥ ८ ॥

अथ उत्फुल्लरोगकी चिकित्सा।

आध्मानात्फुल्लकुक्षिश्च श्वासदोषादिपीडितः ॥ उत्फुल्लिका च विज्ञेया बालानां दुःखकारिणी ॥ ९ ॥ उदरे च जलौकादि-

रक्तं चादौ विमोक्षयेत् ॥ उत्फुल्लिदोषे दातव्यं क्षीरदोषनिवारणम् ॥ १० ॥ अग्निना प्रबलः स्वेदो दहेद्वापि शलाकया ॥ जठरे बिन्दुकाकारा जायन्ते भिषगुत्तम ॥ ११ ॥ बिल्वमूलफलं पाठा त्रिकटु बृहतीद्वयम् ॥ क्वाथश्च गुडयुक्तश्च बालानाञ्च ज्वरे हितः ॥ १२ ॥ स्त्रीणां स्यात्पानमेतेषां बालानां ज्वरनाशनम् ॥ १३ ॥

अफारासे कूखि फूली रहे श्वासआदि दोषोंसे पीडितहो वह उत्फुल्लिकासंज्ञकरोग होता है बालकोंको दुःख करनेवाला है ॥ ९ ॥ कुक्षि उत्फुल्लित रोगमें पहले जो दोष आदिकोंसे रुधिरको निकसावे पीछे दूधके दोषको निवारण करै ॥ १० ॥ और अग्निसे अति प्रबल पसीना दिवावे शलाकासे दग्ध करै उदरमें बिंदुवोंसरीखे आकार होजावे ऐसा दग्ध करै ॥ ११ ॥ और बेलगिरीकी जड और फल, पाठा, त्रिकटु अर्थात् सूंठ, मिरच, पीपल दोनों कटेहली, इन्होंका काथ बना गुड मिला देना बालकोंको हितदायक कहा है ॥ १२ ॥ और इस क्काथको बालककी माता स्त्रीको प्यावे तो बालकोंके ज्वरका नाश होता है ॥ १३ ॥

अथ बालरोगचिकित्साके अन्य उपाय।

हितः पर्पटकक्काथः शर्करामधुयोजितः ॥ बालानां ज्वरनाशाय कैरातं मधुसंयुतम् ॥ १४ ॥ भार्ङ्गीरास्नाकर्कटकचूर्णं वा मधुसंयुतम् ॥ लेहो वा बालकस्यापि श्वासकासनिवारणः ॥ १५ ॥ पथ्यावचानागरकं घनं कर्कटमेव च ॥ चूर्णं सगुडमेवं हि बालानां कासनाशनम् ॥ १६ ॥ पलाशभेदं त्रिफलात्रपुसीवरीमागधीः ॥ पिष्ट्वा तण्डुलतोयेन सिताढ्यं मूत्ररोधजित् ॥ १७ ॥ नागरीमभयादन्तीगुडचूर्णं प्रदापयेत् ॥ बालानां विद्रधिश्चैव नाशयेच्च न संशयः ॥ १८ ॥ पाठाबिल्वशिलादीनि वत्सकं शाल्मलीत्वचम् ॥ दुग्धेन पानं बालानामतिसारनिवारणम् १९ अर्जुनश्च कदम्बश्च कुष्ठं गैरिकमेव च ॥ लेपनं त्वचो दोषाणां वारणं बालकस्य च ॥ २० ॥ रोध्रं रसाञ्जनं धात्री गैरिकं मधुना युतम् ॥ अञ्जनञ्चैव बालानां नेत्ररोगनिवारणम् ॥ २१ ॥

और पित्तपापडाके क्वाथमें खांड और शहद मिलाके देना हित है और बालकोंके ज्वरके नाशकेवास्ते चिरायता, शहद इन्होंका प्याना हित है ॥ १४ ॥ और भारंगी, रास्ना, काकडासींगी, इन्होंके चूर्णमें शहद मिला लेह बना चटानेसे बालकका श्वास, खांसी इन्होंका नाश होता है ॥ १५ ॥ और हरडै, वच, सूंठ, नागरमोथा, काकडासींगी, इन्होंका चूर्ण बना बराबरका गुड मिला देनेस बालकोंकी खांसीका नाश होता है ॥ १६ ॥ और केशू, त्रिफला, खीरा, शतावरी, पींपली, इन्होंको चावलोंके धोवनके जलमें पीस प्यानेसे बालमूत्र-रोध दूर होता है ॥ १७ ॥ सूंठ, हरडै, जमालगोटेकी जड, इन्होंके चूर्णमें गुड मिलाके देनेसे बालकोंके विद्रधीरोगका नाश होता है ॥ १८ ॥ और पाठा, बेलगिरी, शिलाजीत, कुडाकी छाल, सेमळ छाल, इन्होंको पीसि दूधके संग प्यानेसे बालकोंके अतिसारका नाश होता है ॥ १९ ॥ और अर्जुनवृक्ष, कदंब, कूठ, गेरू, इन्होंको शहदमें मिला अंजन घाल-नेसे बालकोंके नेत्ररोगका नाश होता है ॥ २० ॥ लोध, रसांजन, आमला, गेरू, इन्होंको शहदके संग घिसकर अंजन करनेसे बालकोंके नेत्रका रोग नष्ट होता है ॥ २१ ॥

अथ बालकोंकी वृद्धिको बढानेवाले औषध।

वचा ब्राह्मी च मण्डूकी घनकुष्ठं सनागरम् ॥ घृतेन प्रातर्देयश्च बालानां पुष्टिकारकम् ॥ २२ ॥ गुडूचिकापामार्गश्च विडङ्गं शङ्खपुष्पिका ॥ विष्णुक्रान्ता वचा पथ्या नागरश्च शतावरी ॥ ॥ २३ ॥ चूर्णं घृतेन संमिश्रं लिहतो धीः प्रवर्त्तते ॥ त्रिभिर्दिनैः सहस्रकं श्लोकानामवधारयेत् ॥ २४ ॥

वच, ब्राह्मी, सूर्यफूलवेल, नागरमोथा, कूठ, इन्होंको घृतमें मिला प्रातःकाल देनेसे बाल-कोंकी पुष्टि होतीहै ॥ २२ ॥ गिलोय, ऊंगा, वायविडंग, शंखपुष्पी, विष्णुकांता, वच, हरडै, सूंठ, शतावरी, ॥ २३ ॥ इन्होंके चूर्णको घृतमें मिला चटानेसे बालककी बुद्धि बढती है तीन दिनमें हजार श्लोकोंको धारण कर सकता है ॥ २४ ॥

अथ बालकोंकी वाणीको करनेवाले औषध।

त्रिकटु त्रिफला धन्या यवानी सालमूलिका ॥ वचा ब्राह्मी तथा भार्ङ्गी चूर्णश्च मधुना हितम् ॥ वाक्पटुत्वञ्च बालानां नादो वीणासमस्वरः ॥ २५ ॥

सूंठ, मिरच, पीपली, धनियां अजवायन, सालवृक्षकी जड, वच, ब्राह्मी, भारंगी, इन्होंका चूर्ण बना शहदके संग चाटनेसे बालककी जुबान अति चपल होती है और वीनके समान शब्दका स्वर होता है ॥ २५ ॥

अथ बालकोंके अपस्माररोगकी चिकित्सा।

यस्य श्वासो विचैतन्यं तन्द्रा चातीववेपथुः॥ शिरोऽर्तिः संज्वरश्चैव सचासाध्यो भिषग्वर ! ॥ २६ ॥ लालाकृतिर्विचैतन्यं तृत्तविभ्रान्तलोचनम् ॥ स्तब्धाङ्गविकृतिर्यस्य चापस्मारी स उच्यते ॥ २७ ॥ अपस्मारे तु बालस्य शीतलानि प्रयोजयेत् ॥ वचा सैन्धवपिप्पल्यो नस्यं हि गुडनागरः ॥ २८ ॥ रसं चागास्तिपत्रस्य मरिचैः प्रतियोजितम् ॥ एतेन प्रतिसौख्यं स्यात्तदा चान्दोलनं हितम् ॥ २९ ॥ मस्तकान्ते ललाटे च दहेल्लोहशलाकया ॥ ३० ॥

जिसके अत्यन्त श्वासहो चेत नहीं रहे, तंद्राहो, अत्यंत कंपनाहो, शिरमें पीडाहो, ज्वरहो हे वैद्य ! वह असाध्य रोग होता है ॥ २६ ॥ लाल आकृतिहो, चेत नहीं हो, और फटे हुए भ्रमते हुए नेत्रहों, अंग जकडबंध बुरावर्णवाला होजावे वह अपस्मार अर्थात् मृगीरोग जानना ॥ २७ ॥ अपस्मार रोगमें बालकको शीतल वस्तु देनी चाहिये और वच, सेंधानमक, पीपली, सूंठ इन्होंको मिला नस्य देवै ॥ २८ ॥ अथवा अगस्तिवृक्षके पत्तोंके रसमें मिरच मिला नस्य देवै, इसप्रकार करनेसे सुख होजावे तब आंदोलन अर्थात् हिलाने चलानेका कर्म करै ॥ २९ ॥ और मस्तकके अंतमें शिरके ऊपरकी नसको शलाईसे दग्ध करना हित है ॥ ३० ॥

अथ बालकोंके पूतनाका दोष।

शून्यागारे देवकुले श्मशाने देवमध्यगे॥ चत्वरे सङ्गमे नद्योर्भय क्षुभितबालके॥३१॥संक्रामन्ति भिषक्छ्रेष्ठ बालकस्यापि पूतनाः ॥ ३२ ॥ लोहिता रेवती ध्वांक्षी कुमारी शाकुनी शिवा ॥ ऊर्ध्वकेशी तथा सेना ह्यष्टौ चैताः प्रकीर्त्तिताः ॥ ३३॥ तथान्यासाश्च मत्तस्त्वं नामानि शृणु साम्प्रतम् ॥ रोहिणी विजया काली कृत्तिका डाकिनी निशा ॥३४॥ भूतकेशी कृशाङ्गी च अष्टौ चैताः प्रकीर्त्तिताः। लक्षणञ्च प्रवक्ष्यामि शृणु पूजाबलिक्रमम् ॥३५॥ जातमात्रस्य बालस्य लोहिता नाम पूतना ॥ विस्रगन्धा लोहितश्च रोदिति स मुहुर्मुहुः ॥ ३६ ॥ बलिं तस्याः प्रवक्ष्यामि येन सौख्यं प्रजायते ॥ द्वितीये दिवसे बालं रेवती नाम पूतना ॥

॥ ३७ ॥ गृह्णाति लक्षणं तस्य रोदति कम्पते भृशम् ॥ कृष्णमृन्मयीं प्रतिमां कृत्वा गन्धानुलेपनैः ॥ ३८ ॥ कृशराराल्चूर्णञ्च दीपधूपैस्तथाक्षतैः॥ ताबूम्लैः कृष्णसूत्रैश्च रात्रौ नैर्ऋतिके क्षिपेत् ॥ ३९ ॥ तृतीये दिवसे प्राप्ते वायसी नाम पूतना ॥ तया गृहीत मात्रेण रोदिति न पिबेत्स्तनम् ॥ ४०॥ ज्वरश्चैवातिसारश्च काक वद्ददाति भृशम् ॥ तस्या दध्योदनं पात्रे यवकृशरपोलिकाः ॥ ॥ ४१ ॥ ध्वजाभिः सगुडश्चैव कृष्णगन्धानुलेपनम् ॥ धूपदीपाक्षतैश्चैव मध्याह्ने बलिमाहरेत् ॥ ४२ ॥ चतुर्थे दिवसे बालं कुमारी नाम पूतना ॥ गृह्णाति बालकस्ते न ज्वरेण परितप्यते ॥ ॥ ४३ ॥ शून्यं विगाहते बालस्तन्मुखं परिशुष्यति ॥ भृशं स रोदिति तस्याः शृणु पूजाबलिक्रमम् ॥ ४४ ॥ पायसं स घृतं खण्डं घृतस्य दीपकत्रयम् ॥ ४५ ॥ मृन्मयीं प्रतिमां कृत्वा पुष्प धूपाक्षतैरपि ॥ कृतान्तदिशि मध्याह्ने बलिं दत्वा सुखी भवेत् ॥ ४६ ॥ पञ्चमे दिवसे बालं शाकुनी नाम पूतना ॥ गृह्णाति स तयाक्रान्तः स्तन्यं नाकर्षते शिशुः ॥ ४७ ॥ सज्वरो वमति रौति कासमानोऽथ वेपते ॥ ४८ ॥ तस्याः शोभनिका पूजा क्रियते तिललड्डुकैः ॥ श्वेतगन्धाक्षतैर्धूपैः पूजयेन्मृण्मयाकृतिम् ॥ ४९ ॥ उत्तराशां समाश्रित्य पूर्वाह्णे बलिमाहरेत् ॥ षष्ठे च दिवसे प्राप्ते शिवा नाम कुमारिका ॥ ५० ॥ रौति निःश्वसिति तेन वमति कम्पते तथा॥स्तन्यञ्च नाहरेद्बालो ज्वरातिसारपीडितः॥५१॥ तस्यै बलिः प्रदेयश्च सप्तव्रीहिमयश्चरुः ॥ पायसैर्दधिदीपैश्च पूज्या सा तिलचूर्णकैः ॥ ५२॥ गन्धपुष्पाक्षतैर्धूपैः पूजयेन्मृण्मयाकृतिम् ॥ ऐशानीं दिशमाश्रित्यापराह्णे बलिमाहरेत् ॥ ५३ ॥ सप्तमेऽह्नि पूतनाया उर्ध्वकेश्याः शिशौ तथा ॥ पूर्ववद्दृश्यते चिह्नं तथैव बलिमाहरेत् ॥ ५४ ॥ अष्टमे

दिवसे प्राप्ते सेना नाम च पूतना ॥ तया गृहीतः श्वसिति

हस्तौ कम्पयते भृशम् ॥ ५५ ॥ तस्यै दध्योदनं दद्यात्तिलचूर्णञ्च पोलिकाम् ॥ धूपदीपगन्धपुष्पताम्बूलान्यक्षतानि च ॥ ॥ ५६ ॥ आग्नेयीं दिशमाश्रित्य प्रदोषे बलिमाहरेत् ॥ एवं क्रमेण मासस्य वर्षस्य बलिकर्म च ॥ ५७ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने बालचिकित्सानाम चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥ इति कौमारतन्त्रम् ॥

शून्य मकानमें और देवताओंके मंदिरमें तथा देवताओंकी मूर्त्तिके समीपमें, चौराहामें तथा नदीके संगममें भयसे क्षुभित बालक होजावे ॥ ३१ ॥ तब हे उत्तम वैद्य ! तिसबालकको पूतना ग्रहण करलेती है ॥३२॥ और लोहिता, रेवती, ध्वांक्षी, कुमारी, शाकुनी, शिवा, ऊर्ध्वकेशी, सेना, ऐसे आठ प्रकारकी पूतना होती हैं ॥ ३३ ॥ और अन्य पूतनाओंके नाम तू अब मुझसे सुन रोहिणी, विजया, काली, कृत्तिका, डाकिनी, निशा ॥ ३४ ॥ भूतकेशी, कृशांगी, ये आठ कही हैं इन्होंके लक्षण और पूजा, बलिके क्रमको कहतेहैं सुन ॥ ३५ ॥ जन्ममात्र लियेहुए बालकके लोहिता पूतना लगती है तिस्से बालकमें बुरी गंध आवे वारंवार रोवै ॥ ३६ ॥ सो तिसकी बलिको कहैंगे तिस्से सुख होता है और जन्मसे दूसरेदिन बालकको रेवती नामवाली पूतना ग्रहण करती है ॥ ३७ ॥ तिस्से रोवै और वारंवार कांपे तहां काली मृत्तिकाकी मूर्ति बनाके गंध, चंदन ॥ ३८ ॥ खीचडी, रालका चूर्ण, दीप, धूप, अक्षत, नागरपान, काला सूत इन्होंसे पूजन कर इन्होंको नैर्ऋत दिशामें गेर देवै ॥ ३९ ॥ और जन्मसे तीसरेदिन बालकको वायसी नामवाली पूतना ग्रहण करती है तिस्से ग्रहण होनेसे बालक रोवै चूंची नहीं पीवै ॥ ४० ॥ ज्वरहो अतिसारहो वारंवार काककी तरह पुकारे तिसपूतनाकेवास्ते दही, चावल, जवोंकी कृशरा, पोलिका ॥ ४१ ॥ इन्होंको पात्रमें घाल ध्वजाढांक तिसमें गुड कालेपुष्प, काला चंदनआदि अनुलेप गेर धूप, दीप, अक्षत इन्होंसे युक्त करि मध्याह्न समयमें इसबलिको देवै ॥ ४२ ॥ और चौथेदिन बालकको कुमारी नामवाली पूतना ग्रहण करती है तिस्से बालकको अति तप्त होती है ॥ ४३ ॥ और शूना रहजावे तब पीडितहो और तिसका मुख सूख जावे वारंवार रोवै ऐसी तिसपूतनाकी पूजा और बलिको सुन ॥ ४४ ॥ खीर, घृत, खांड, घृतके तीन दीप कर ॥ ४५ ॥ और माटीकी मूर्त्ति, पुष्प, धूप, अक्षत, इनसबोंको मध्याह्न समयमें दक्षिणकी दिशामें स्थापित कर देवै ऐसे करनेसे बालक सुखी होता है ॥ ४६ ॥ और पांचवेंदिन बालकको शाकुनी नामवाली पूतना ग्रहण करती है तिस्से ग्रसितहुआ बालक चूंचीको नहीं लेता है ॥ ४७ ॥ ज्वरसे युक्तहो वमन करै रोवै खांसताहुआ कांपे ॥ ४८ ॥ तिसपूतनाकी सुंदर पूजा तिललड्डु इन्होंसे करै और सफेदगंध, अक्षत, धूप इन्होंसे मृत्तिकाकी मूर्ति बनाके तिसका पूजन करै ॥ ४९ ॥ उत्तरकी दिशामें मध्याह्न समयसे पहिले इस बलिको

देवै और छठे दिन शिवानामवाली पूतना बालकको ग्रहण करती है ॥ ५० ॥ तिस्से बालक रोवे अत्यंत श्वास लेवे वमन करे कभी कांपे और चूंची नहीं पीवे ज्वर अतिसार इन्होंसे पीडित होजावे ॥ ५१ ॥ तिसकेवास्ते सातव्रीही धान्य और खीर, दही, दीपक, इन्होंकी बलि देवै और तिलोंके चूर्णसे तिसका पूजन करै ॥ ५२ ॥ और माटीकी मूर्त्तिका गंध पुष्प धूप अक्षत इन्होंसे पूजन करै ऐशान्यदिशाको तीसरे पहरमें इस बलिको देवै ॥ ५३ ॥ और सातवेंदिन बालकको ऊर्ध्वकेशी नामवाली पूतना ग्रहण करती है जिसके लक्षण पहिली कही पूतनाके समान होते हैं और पहली कहीहुई बलि देवै ॥५४ ॥ और आठवें दिन सेनानामवाली पूतना ग्रहण करती है तिस्से ग्रसित हुआ बालक अत्यंत श्वास लेवे वारंवार हाथ कांपे ॥ ५५ ॥ तिसकेवास्ते दही, चावल, तिलोंका चूर्ण, पोलिका, इन्होंकी बलि देवै और धूप, दीप, अक्षत, गंध, पुष्प, नागरपान, इन्होंसे पूजनकर ॥ ५६ ॥ अग्निकोण दिशामें प्रदोष समयमें इसबलिको देवै इसीप्रकारके क्रमसे महीनोंकी और वर्षोंकीभी देवै ॥ ५७ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने बालचिकित्सानाम चतुःपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

पञ्चपञ्चाशतमोऽध्यायः ५५.

अथ भूतविद्या।

आत्रेय उवाच ॥ शून्ये देवकुले श्मशानभूमौ वीथीप्रतोलीतले रथ्या कारविहारशून्यनगरे चारामके चत्वरे ॥ १ ॥ जायन्ते क्षुभिते बलानि हृदये क्षुद्रग्रहाणां नरे ते चापि प्रथिता ग्रहा दशविधा वक्ष्याम्यतः साम्प्रतम् ॥ २ ॥ दश प्रोक्ता महाचार्य्यैः कैश्चिदप्येकविंशतिः ॥ दशग्रहाणां वक्ष्यामि चिकित्सां शृणु पुत्रक ॥ ३ ॥ ऐन्द्राग्नेयौ यमश्चान्यो नैर्ऋतो वरुणो ग्रहः ॥ मरुतोऽपि कुबेरश्च ऐशान्यो ग्रहको ग्रहः ॥ ४ ॥ पैशाचिको ग्रहश्चान्यो दशैते ग्रहनायकाः ॥ आरामे च विहारे च देवस्थाने च यो भवेत् ॥ ५ ॥ ऐन्द्रग्रहं विजानीयात्तेन हर्षति गायति ॥ सदर्पश्चासदर्पश्च उन्मादग्रस्त एव च ॥ ६ ॥ श्मशाने चत्वरे चैव गृह्णात्याग्नेयकुग्रहः ॥ तेनैव रोदित्यत्यर्थं पश्यति सर्वतो भयम् ॥ ७ ॥ युद्धभूमौ श्मशाने च यमश्चापि

उदीर्य्यते ॥ तेन विह्वलो दीनश्च प्रेतवच्चेष्टते नरः ॥ ८ ॥ वल्मीकचत्वरे चैत्ये गृह्णाति नैर्ऋतो ग्रहः ॥ तेनासौ वर्त्तते द्वेष्टि धावति मारयत्यपि ॥ ९ ॥ दृप्तनेत्रो विवर्णास्यो बलिष्ठो दुष्टचेतनः ॥ नदीतडागतीरे च चलति वारुणग्रहः ॥ १० ॥ तेनास्यात्स्रवति लाला भृशं मूत्रयति नरः ॥ नेत्रस्रावश्च दृश्येत मूकवत्प्रविलोक्यते ॥ ११ ॥ वातमण्डलीमध्ये च गृह्णाति मारुतग्रहः ॥ तेनास्यं शोषयेद्दीनः कम्पते रोदित्यथवा ॥ १२ ॥ विह्वलः श्रान्तनेत्रश्च निषीदति क्षुधातुरः ॥ हर्षगर्वाभिमाने च गृह्णाति यक्षराड् ग्रहः ॥ १३ ॥ तेन गर्वोद्धतश्चैव तथालंकारसुप्रियः ॥ १४ ॥ देवस्थाने च रम्ये च शिवग्रहश्छलप्रदः ॥ भस्माङ्गरागं कुरुते भ्रमते च दिगम्बरः ॥ १५ ॥ शिवध्यानरतो नित्यं गीतवाद्यप्रियस्तु सः ॥ १६ ॥ शून्यागारे शून्यकूपे ग्रहको ग्रहनामकः ॥ क्षुधार्त्तो न तृषार्त्तश्च कथति न शृणोति च ॥ १७ ॥ उच्छिष्टे वा शुचौ यस्य छलति पिशाचग्रहः ॥ तेन नृत्यति रौति वा गायति जल्पति तथा ॥ १८ ॥ मत्तवद्भ्रमते नग्नो लालास्रावः क्षुधादिकः ॥ एवं दशग्रहाणाञ्च लक्षणं कथितं मया ॥ १९ ॥ वक्ष्याम्यतः प्रतीकारं शृणु पुत्र समासतः ॥ जलस्नानं सातिशयं तथा च बलिकर्म च ॥ पूजां यथा वाच्यमानां तेन संलभते सुखम् ॥ २० ॥ एलाजातिफलमधूकयुगलं रास्ना तथा खादिरः कर्पूरामलकीजटाबहुसुताघोण्टाम्लसारास्तथा ॥ सीसं पारदसारदाडिमफलं मद्यैश्च संमीलितं प्रत्येकं दधिदुग्धलाङ्गलरसैर्युक्तं समं कल्कितम् ॥ २१ ॥ रसेन भावितं तस्य गुटिका च प्रकल्पिता ॥ जयेच्चन्द्रप्रभा नाम तीव्रान्मोहादिकान्गदान् ॥२२॥ शुण्ठी मधुकसारञ्च चवी किंशुकमेव च ॥ वचाहिंगुसमायुक्तं बस्तमूत्रेण संयुतम् ॥ देयं ग्रहविकारघ्नं ग्रहाणां नाशनं परम् ॥ २३ ॥

आत्रेयजी कहते हैं-देवताके शून्य मंदिरमें श्मशानभूमिमें मार्गमें और उज्जड पडे हुवे शहर ग्रामआदिककी गलियों बगीचेमें चुराहेमें ॥ १ ॥ मनमें त्रास होनेसे बलवंत ग्रह लग जाते हैं वे बलवंत ग्रह दश प्रकारके होते हैं तिन्होंको अब कहते हैं ॥ २ ॥ बडे आचार्योंने दशग्रह कहे हैं और कितनेक इक्कीस कहते हैं हे पुत्र ! तिन दशग्रहोंकी चिकित्साको कहते हैं सुन ॥ ३ ॥ ऐंद्र, आग्नेय, धर्मराज, राक्षस, वरुण, वायु, कुबेर, ऐशान्य, ग्रहक ॥ ४ ॥ पैशाचिक ऐसे ये दश ग्रहनायक हैं जो बगीचेमें तथा क्रीडास्थानमें देवताके मंदिरमें मालूम हुआहो ॥ ५ ॥ वह ऐंद्रग्रह जानलेना तिस्से हर्षहो कभी गावे कभी अभिमानहो कभी नहींहो और उन्मादसे ग्रसाहुआ रहे ॥ ६ ॥ और आग्नेयग्रह, श्मशान, चूराहा, इनस्थानोंमें ग्रहण करता है तिस्से अत्यंत रोवै चारोंतर्फ भयसहित देखै ॥ ७ ॥ और युद्धकी भूमि, श्मशान, इन्होंमें यमग्रह लगता है तिस्से विह्वल होजावे दीनहो और प्रेतसरीखी चेष्टा करै ॥ ८ ॥ और बँवई चुराहा, यज्ञस्थान इन्होंमें राक्षसग्रह लगता है तिस्से सबसे वैर करताहुआ रहे भाजै किसीको मारदेवै ॥ ९ ॥ और वरुणग्रहसे ग्रसित हुआ मनुष्यके गर्वित नेत्र रहैं वर्ण और मुख बिगडा हुआ रहै बलवान् हो दुष्ट चित्तहो नदी तलाबके तीरपै चलता हुआ रहे ॥ १० ॥ और लाल गिरै बहुत ज्यादै मूतै और नेत्रोंमें जल भरारहै गूंगासरीखा दीखै ॥ ११ ॥ और जो वायुके भंभूलेमें पीडितहोवे मरुतग्रहसे पीडित जानना तिस्से मुखमें शोषहो दीनहो कांपे और रोवै ॥ १२ ॥ और विह्वलहो नेत्रोंमें हारसी रहै पीडाहो क्षुधासे पीडितहो, और कुबेर ग्रहसे ग्रसित वह होता है ॥ १३ ॥ जो कि हर्ष गर्व अभिमान इन्होंसे युक्त रहै तिस पुरुषके गर्भ उठारहै और गहिने पहरनेमें प्रियरहै ॥ १४ ॥ और देवताके रमणीक स्थानमें शिवग्रहकी पीडा होती है तिस्से शरीरपै भस्म लगावे और नग्नहोके भ्रमता रहै ॥ १५ ॥ नित्य शिवजीके स्थानमें रत रहै गीत-बाजा इन्होंमें रत रहै ॥ १६ ॥ और शूना मकान, शूना कूवा, इन्होंमें ग्रहकनाम ग्रह पीडा करता है और क्षुधासे युक्त नहींहो तृषासे युक्त नहीं हो और कुटिलता करै सुने नहीं ॥ १७ ॥ और झूठाहो अथवा अशुद्धहो तब पिशाच ग्रह पीडा करता है तिस्से नांचै और गावै और रोवै और शब्द करै ॥ १८ ॥ और नग्नहोके मदोन्मत्तकी तरह भ्रमै लाल गिरै क्षुधा आदिकोंसे पीडितहो इस प्रकारसे मैंने दश ग्रहोंके लक्षण कह दिये हैं ॥ १९ ॥ अब इन्होंकी चिकित्साको संक्षेपमात्रसे सुन, अत्यंत जलमें स्नान और बलि देनेका कर्म कही हुई पूजा ऐसे करनेसे सुख होता है ॥ २० ॥ और इलायची, जायफल, मुलहटी, महुआ, रास्ना, खैर, कपूर, आंवला, जटामांसी, महाशतावरी, सुपारी, बिजौरा, सीसा, पारा, चिरौंजी, अनारदाना, मदिरा इन्होंको समान भाग ले कल्क बना ॥ २१ ॥ पीछे दही, दूध, कलहारीका रस इन्होंमें भावना दे तिसकी गोली बना लेवे यह चंद्रप्रभा नामवाली गोली मोह अज्ञान आदिक तीक्ष्णरोगोंको नाशती है ॥ २२ ॥ सूंठ, मधुकसार, चव्य, केश, वच, हींग इन्होंकूं बकराके गोमूत्रके साथ देना इससे ग्रहोंका नाश होता है यह ग्रह विकारनाशक उपाय है ॥ २३ ॥

अथ ग्रहदोषनाशक धूप।

बिडालविष्ठाहिममोचनिम्बमयूरपिच्छं समराजिका च ॥ निर्मोकपिण्डीतकसर्जमोचधूपं घृताक्तं ग्रहदोषशान्त्यै ॥२४॥ चेतना नाम गुटिका तथा ब्राह्मीघृतं स्मृतम् ॥ अपस्मारे प्रयुक्तानि तानि चात्र प्रयोजयेत् ॥ २५ ॥

बिलावकी विष्ठा, कपूर, मोचरस, नींब, मोरका चन्दा, इन सबोंके समान राई और सांपकी कांचली, मैनफल, राल, मोखावृक्ष, इन्होंकी धूप बना तिसमें घृत मिला धूप देनेसे ग्रहदोषकी शांति होती है ॥ २४ ॥ और पहली कही हुई चेतना नामवाली गुटिका और ब्राह्मी घृत और अपस्मार रोगमें कहे हुए अन्य औषध तिन सबोंको यहां ग्रह दोषमें देवै ॥ २५ ॥

अथ भूतेश्वरमंत्र।

गुग्गुलुं समधुघृतं तेन धूपेन धूपयेत् ॥ मन्त्रेण तेन हारीत तर्जयेद्ग्रह पीडितम् ॥ २६ ॥ ओं नमो भगवते भूतेश्वराय कलिकलिनखाय रौद्रदंष्ट्राकरालवक्त्राय त्रिनयनधगधगितापिशङ्गललाटनेत्राय तीव्रकोपानलामिततेजसे पाशशूलखट्वाङ्गडमरुकधनुर्बाणमुद्गराभयदण्डत्रासमुद्राव्ययदसंयदार्द्रदण्डमण्डिताय कपिलजटाजूटार्द्धचन्द्रधारिणे भस्मरागरञ्जितविग्रहाय उग्रफणिकालकूटाटोपमण्डितकण्ठदेशाय जय जय भूतनाथामरात्मने रूपं दर्शय दर्शय नृत्य नृत्य चल चल पाशेन बन्ध बन्ध हुङ्कारेण त्रासय त्रासय वज्रदण्डेन हन हन निशितखड्गेन छिन्न छिन्न शूलाग्रेण भिन्न भिन्न मुद्गरेण चूर्णय चूर्णय सर्वग्रहाणामावेशयावेशयस्वाहा ॥ २७ ॥

गूगल, शहद, घृत इन्होंकी धूप बनाके धूपित करै और हे हारीत! ग्रहपीडित पुरुषको इस मन्त्रसे ताडना दे ॥ २६ ॥ ओं नमो भगवते भूतेश्वराय कलिकलिनखाय रौद्रदंष्ट्राकरालवक्त्राय त्रिनयनधगधगितपिशंगललाटनेत्राय तीव्रकोपानलामिततेजसे पाशशूलखड्गाय डमरुकधनुर्बाणमुद्गराभयदण्डत्रासमुद्राव्ययदसंयदार्द्रदंडमंडिताय कपिलजटाजूटचन्द्रधारिणे भस्मरागरंजितविग्रहाय उग्रफणिकालाकूटाटोपमंडितकंठदेशाय जय जय भूतानाथामरात्मने रूपं दर्शय दर्शय नृत्य नृत्य चल चल पाशेन बन्ध बन्ध हुंकारेण त्रासय त्रासय वज्रदण्डेन हन हन, निशितखण्डेन छिन्न छिन्न शूलाग्रेण भिन्न भिन्न मुद्गरेण चूर्णय चूर्णय सर्वग्रहाणामावेशयावेशय स्वाहा ॥ २७ ॥

अथ आवेशमंत्र।

ग्रहाविष्टेन चेत्तस्मै दीयते बलिरुत्तमः ॥ मुक्तो भवति तस्माच्च संशयो नास्ति तत्र च ॥ २८ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने भूतविद्यानाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

जिस पुरुषमें ग्रह प्रवेश होरहाहो तिसके इस मंत्रको पढ ताडना दे जो ग्रह प्रवेश मालूम होता हो तिसी ग्रहके वास्ते बलिदान देनेसे वह पुरुष ग्रहसे छूट जाता है इसमें सन्देह नहीं ॥२८॥ इति वेरीनिवा०वैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिता भाषाटीकायां तृतीयस्थाने भूतविद्यानाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५६.

अथ विषतन्त्र।

आत्रेय उवाच ॥ द्विविधं विषमुद्दिष्टं स्थावरं जङ्गमं भिषक् ॥ शृङ्गिको वत्सनाभश्च तथा च शाङ्गवेरिकः ॥ १ ॥ दारकः कालकूटश्च शङ्खस्यात्सत्सुकन्दुकः ॥ हालाहलश्चाष्टाभिश्च तथाष्टौ विषजातयः ॥ २ ॥ शृङ्गिकः कृष्णवर्णश्च वत्सनाभश्च पीतकः ॥ शुण्ठीसमानवर्णश्च शाङ्गवेरः स उच्यते ॥ ३ ॥ दारको हरिवर्णश्च कालकूटो मधुप्रभः ॥ शंखश्चातिविषाभासः पीताभः सत्सुकन्दुकः ॥ ४ ॥ हालाहलः कृष्णवर्णचाष्टौ च जातयस्तथा ॥ पीतं विषं नरं दृष्ट्वा सद्यो वमनमुत्तमम् ॥५॥ यावत्पीतातिविषश्च तावत्तु वमयेत्सदा ॥ सिञ्चेच्छीताम्भसा वक्रं मन्त्रपूतेन सत्वरम् ॥ ६ ॥

आत्रेयजी कहते हैं–हे वैद्य ! स्थावर और जंगम दो प्रकारका विष कहा है और शृंगिक, वत्सनाभ, शृंगवेरक ॥ १ ॥ दारक, कालकूट, शंख, सत्सुकन्दुक, हालाहल ऐसे आठ प्रकारके विष कहे हैं ॥ २ ॥ शृंगिक विष काला वर्ण वाला और वत्सनाभ विष पीला होता है और जो सूंठके समान आकार वर्णवालाहो वह शृंगवेरक विष होता है ॥ ३ ॥ दारक विष हरावर्णवाला और कालकूट विष शहद समान वर्ण वाला होता है और शंख विष अतीशके समान होता है और सत्सुकन्दुक विष पीला होताहै ॥ ४ ॥ हालाहल विष काला वर्णवाला होता है ऐसे आठ प्रकारकी विष जाति

कही हैं जहर पीये हुए मनुष्यको देखि शीघ्रही वमन करवावै ॥ ५ ॥ जबतक पीये हुए जहरको गेरै तबतक वमन कराताही रहै और मन्त्रसे पवित्र हुआ शीतल जलसे तिसके मुखको सींचै ॥ ६ ॥

अथ मुखसिंचन मन्त्र।

ॐ हर हर नीलकंठ ! अमृतं प्लावय प्लावय हूंकारेण विषं ग्रस ग्रस क्लीङ्कारेण हर हर ह्रौंकारेण अमृतं प्लावय प्लावय हर हर नास्ति विष उच्छिरे उच्छिरे ॥ ७ ॥

ॐ हर हर नीलकंठ अमृतं प्लावय प्लावय हूंकारेण विषं ग्रस ग्रस क्लींकारेण हर हर ह्रौंकारेण अमृतं प्लावय प्लावय हर हर नास्तिविष उच्छिरे उच्छिरे ॥ ७ ॥

अथ कानमें जपनेके वास्ते मंत्र।

ॐ नमो हर हर नीलग्रीवश्वेताङ्गसङ्गजटाग्रमण्डितखण्डेन्दुस्फूर्त्तमन्त्ररूपाय विषमुपसंहर उपसंहर हर ३ नास्ति विष ३ उच्छिरे ३ इति कर्णेजपमन्त्रेण वारंवारं तालुमुखं सिञ्चेच्छीतवारिणा ॥ ८ ॥

ॐ नमो हर हर नीलग्रीव श्वेतांगसंगजटाग्रमंडितखंडेंदुस्फूर्त्तमंत्ररूपाय विषमुपसंहर उपसंहर हर ३ नास्तिविष ३ उच्छिरे ३ इसकर्णेजपमंत्रसे वारंवार तालुवाको और मुखको शीतल जलसे सींचै ॥ ८ ॥

अथ विषशमन औषध।

ताण्डुलीयकमूलानि पिष्ट्वा चोष्णेन वारिणा ॥ पीतं पीतविषं हन्ति वमने लाघवं भवेत् ॥ ९ ॥ काकजङ्घा सहचरीमूलं चैडगजस्य च ॥ कदरं कार्मुकञ्चापि त्वचं पीतोष्णवारिणा ॥ पीतं तच्च विषं घोरं नाशयत्याश्वसंशयः ॥ १० ॥ खदिरस्य च मूलञ्च तथा निम्बफलानि च ॥ उष्णोदकेन पीतानि विषं जयेयुस्तत्क्षणात् ॥ ११ ॥ वत्साह्वश्चाश्वगन्धाश्च पीत्वा चोष्णेन वारिणा ॥ प्रपीतञ्च विषं पाति चाशु नरस्य वेदवाक् ॥ १२ ॥ अथ प्रधान रक्तस्य क्षते रक्तं विषस्य च ॥ तस्य वक्ष्यामि भैषज्यं येन सम्पद्यते सुखम् ॥ १३ ॥ मर्मस्थाने मर्मगतं तद्साध्यं भवेन्म-

तम् ॥ साध्यञ्च तत्त्वग्रक्तस्थं मांसस्थं कष्टसाध्यकम् ॥ १४ ॥ असाध्यं धातुसंप्रातं सखे वक्ष्यामि भेषजम् ॥ विषलिप्तं नरं ज्ञात्वा ततः कुर्य्यात्प्रतिक्रियाम् ॥ १५ ॥ रजनीयुग्माम्लकेन काञ्जिकेनं तु पेषितम् ॥ लेपेन च विषं हन्ति प्रलिप्तं नात्र संशयः ॥ १६ ॥ मातुलुङ्गरसेनापि धावनं काञ्जिकेन वा ॥ अतिशीतेन तोयेन प्रलिप्तं नात्र संशयः ॥ १७ ॥

चौंलाईकी जडको गरम जलके संग पीसि पीनेसे पीया हुआ विषका नाश होता है और वमन होके हलका होता है ॥ ९ ॥ और काबली, पीला कोरंटा, पुवाडकी जड, सफेद खैरकी छाल इन्होंको गरम जलके संग पीनेसे घोर विषका नाश होता है ॥ १० ॥ और खैरकी जड, नींबके फल निंबोली, इन्होंको गरम जलके संग पीनेसे शीघ्रही विषका नाश होता है ॥ ११ ॥ कूडाकी छाल, असगंध, इन्होंको गरम जलके संग पीनेसे पीया हुआ विष दूर होता है ॥ १२ ॥ इससे अनंतर जो रक्तमें प्रधान तिस विषकेवास्ते तिसकी औषधोंको कहेंगे तिससे सुख होता है ॥ १३ ॥ जो मर्मस्थानमें विष प्राप्त होजावे तब असाध्य जानना और त्वचा रक्त इन्होंमें स्थित हुआ विष कष्टसाध्य होता है ॥ १४ ॥ और धातुमें प्राप्त हुआ विष असाध्य होता है. हे प्रिय ! तिन्होंकी औषधोंको कहते हैं विषसे लिये हुए मनुष्यको जानके पीछे तिसकी चिकित्सा करै ॥ १५ ॥ दोनों हलदियोंको बिजौराके रसमें और कांजीमें पीस लेपकरनेसे शरीरके लिपाहुआ विषका नाश होता है ॥ १६ ॥ और बिजौराके रसमें अथवा कांजीसे तथा शीतल जलसे धोवनेसे शरीरके लिपाहुआ विषका नाश होता है ॥ १७ ॥

अथ जंगमविषकी चिकित्सा ।

विषं जङ्गममित्युक्तमष्टधा भिषगुत्तम ! ॥ दर्वीकरा मण्डलिनो राजिमन्तश्च गुण्डसाः ॥ १८ ॥ वृश्चिको गोरकश्चापि तथा च खण्डबिन्दुकः ॥ अलर्कमूषमार्जारविषं प्रोक्तमनेकधा ॥ १९ ॥ दार्वीकराणां सर्वेषामुक्तं वातात्मकं विषम् ॥ मण्डलिनाञ्च सर्वेषां पैत्तिकं विषमुच्यते ॥ २० ॥ राजिमन्तश्च ये प्रोक्तास्तेऽपि कफात्मका विषाः ॥ विचित्रगमनं मूर्ध्नः पीडनं चातिदुर्भरम् ॥ ॥ २१ ॥ हृदये व्यथनं यस्य तमसाध्यं वदन्ति च ॥ नासारक्त-स्रुतिर्यस्य नेत्रे प्लावश्च दृश्यते ॥ २२ ॥ जडा च जायते जिह्वा

तमसाध्यं विदुर्बुधाः॥यस्य लोमानि शीर्य्यन्ते पीताभं शरीरं भवेत् ॥ २३ ॥ न स्थिरं मस्तकं यस्य तमसाध्यं भिषग्वर ॥ एभिर्विरहितं दृष्ट्वा कुर्य्यात्तस्य प्रतिक्रियाम् ॥ २४ ॥

हे उत्तम वैद्य ! जंगम विष आठ प्रकारका होता है दर्वीकर सर्प, मंडलि; राजिमंत सर्प, गुंडस ॥ १८ ॥ वृश्चिक, गोरक, खंडबिंदुक, ऐसे इन सर्पोंके विष कहे हैं और कुत्ता, मूसा, बिलाव इत्यादिकोंके अनेक विष कहे हैं ॥ १९ ॥ दर्वीकर अर्थात् करछी सरीखे फणवाले सब सर्पोंका वातवाला विष होता है और मंडलवाले सर्पोंका पित्तवाला विष होता है ॥२०॥ और जो राजिमंत अर्थात् रेखावाले सर्प कहे हैं तिन्होंका कफवाला विष होता है और जिस पुरुषका विचित्र गमनहो और मस्तकमें अत्यंत दुर्भर पीडाहो ॥ २१ ॥ और जिसके हृदामें पीडाहो विषवाले तिस मनुष्यको असाध्य जानै और जिसकी नासिकासे रक्त झिरै नेत्रोंमें पानी भरा रहे ॥ २२ ॥ और जिह्वा जड होजावे तिसको वैद्यजन असाध्य कहते हैं और जिसके रोम बिखर जावें और शरीर पीला होजावे ॥ २३ ॥ और मस्तक स्थिर नहीं हो हे उत्तमवैद्य ! तिसको असाध्य जानै और जो पुरुष इनलक्षणोंसे रहितहो तिसका इलाज करै ॥ २४ ॥

अथ विषबंधनमंत्रः ।

ॐ नमो भगवते सुग्रीवाय सकलविषोपद्रवशमनाय उग्रकालकूटविषकवलिने विषं बन्ध बन्ध हर हर भगवतो नीलकण्ठस्याज्ञा ॥ ॐ नमो हर हर विषं संहर संहर अमृतं प्लावय प्लावय नासि अरेरे विष नील पर्वतं गच्छ गच्छ नास्ति विषम् ॐ हाहा ऊचिरे३ ॥ अनेन मंत्रेण मुखमुदकेन त्रासयेत् ॥ ॐ नमोऽरेरे हंस अमृतं पश्य पश्य ॥२५॥

ॐ नमो भगवते सुग्रीवाय सकलविषोपद्रवशमनाय उग्रकालकूटविषकवलिने विषं बंध २ हर २ भगवतो नीलकंठस्याज्ञा । ॐ नमो हरहर विषं संहर संहर अमृतं प्लावय प्लावय नासि अरेरे विष! नीलपर्वतं गच्छ गच्छ नास्ति विषम् ॐहाहा ऊचिरे३॥इस मंत्रको तीनवार पढ मुखपे जलके छिडके मारै ॐ नमो अरेरे हंस! अमृतं पश्य पश्य ॥ २५ ॥ इति मंत्रः ॥

अथ लेप ।

जयकूटं वचाकुष्ठं सैन्धवं मगधा निशा ॥ लेपो दष्टव्रणे प्रोक्तो विषं हन्ति सुदारुणम् ॥ २६ ॥ सुरसा रजनी व्योषं यवानी पारिभद्रकम् ॥ सर्पदष्टव्रणे प्रोक्तं लेपनं विषशान्तये ॥ २७॥

कुष्ठं मुस्ता अजाजी च विडङ्गं मधुयष्टिका ॥ गुञ्जामूलं शीततोयैर्लेपो मण्डलिना हितः ॥ २८ ॥ राजिमन्तो विषा यस्य गृहधूमं वचा घनम् ॥ सर्षपाश्च यवानी च पिचुमन्दफलत्रयम् ॥ लेपनं राजिमताश्चैव व्रणतैलेन संयुतम् ॥ २९ ॥

इति राजिमतां लेपः।

लोहाका चूर्ण, वच, कूठ, सैंधानमक, पीपल. हलदी, इन्होंका लेप दष्टव्रणमें कहा है यह दारुण विषको नाशता है ॥२६॥ और ब्राह्मी, हलदी, सोंठ, मिरच, पीपली अजवायन नींब इन्होंका लेप सर्पसे उपजा दष्टव्रणपे करना हित कहा है विषकी शांति होती है ॥ २७ ॥ और कूठ, नागरमोथा, जीरा, वायविडंग, मुलहटी, चिरमठीकी जड इन्होंको शीतल जलमें पीसि लेप करनेसे मंडलवाले सर्पोंके विषका नाश होता है ॥ २८ ॥ और रेखावाले सर्पोंके विषके नाशकेवास्ते घरका धूँवा, वच, नागरमोथा, शिरसम, अजवायन, नींब, त्रिफला इन्होंको व्रणमें कहेहुए तेलमें पीसि लेप करै ॥ २९ ॥

सठीकिरातं सकटुत्रयं च वचाविशालापिचुमन्दकञ्च ॥ पथ्यायवानीरजनीद्वयञ्च दष्टव्रणे लेपनमेव शस्तम् ॥ ३० ॥ स्थावरं जङ्गमं वापि विषं जग्धं भिषग्वर ॥ शीघ्रं दद्याद्व्यथां गुर्वी प्रोक्तञ्च नरसत्तमैः ॥ ३१ ॥

और कचूर, चिरायता, सोंठ, मिरच, पीपली, वच, इंद्रायण, नींब, हरडै, अजवायन दोनों हलदी इन्होंका लेप दष्टव्रणपै करना श्रेष्ठ है ॥ ३० ॥ हे उत्तम वैद्य ! स्थावर अथवा जंगम भक्षण कियाहुआ विष शीघ्रही अत्यंत पीडा करता है ऐसे श्रेष्ठ मनुष्योंने कहा है ॥ ३१ ॥

अथ मंत्र।

ॐ नमो भगवते शिरसिशिखराय अमृतधाराधौतसकलविग्रहाय अमृतकुम्भपरितोऽमृतं प्लावय प्लावय स्वाहा ॥३२॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने विषतन्त्रं नाम षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

ॐ नमोभगवते शिरसिशिखराय अमृतधाराधौतसकलविग्रहाय अमृतकुंभपरितोमृतं प्लावय प्लावय स्वाहा ॥ ३२ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने विषतंत्रनामषट्पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५७.

अथ भिन्न अर्थात् शस्त्रआदिसे टूटेहुवेकी चिकित्सा।

आत्रेय उवाच ॥ छिन्नं भिन्नं तथा भग्नं घृष्टं पिष्टं तथैव च ॥ आस्फालितं सम्प्रहारः संघातः कथ्यते बुधैः ॥ १ ॥ शस्त्रभिन्नं नरं दृष्ट्वा कर्त्तव्या च प्रतिक्रिया ॥ २ ॥ अस्थिस्थं विद्यते मांसमस्थि संच्छिद्यते यदि ॥ शाखाप्रशाखयोर्वापि छिन्नं तच्च निगद्यते॥३॥ असन्धौ परिसंच्छिन्नं तदसाध्यं विनिर्दिशेत्॥ खड्गार्द्धचन्द्रपरशुच्छिन्नं तु कथितं सदा॥४॥ तस्यादौ चारणालेप धावनं परिकीर्त्तितम् ॥ पिचुना तिलतैलेन शीघ्रं संस्वेदनान्वितम् ॥ ५ ॥ यावद्वै स्रवती रक्तं तावत्तैलेन चाभ्यजेत् ॥ रक्ते वै विकृतिं प्राप्ते तैलेनाभ्यञ्जनं मतम् ॥ ६ ॥ शोफाद्याश्च प्रजायन्ते वहुलोपद्रवा व्रणे ॥ सन्धौ छिन्नं नरं दृष्ट्वा सेचयेत्तप्तवारिणा ॥ ॥ ७ ॥ सञ्चितस्य व्रणस्यापि प्रशस्तं पिचुतैलकम् ॥ पूये वापि विनिर्याति निम्बारग्वधपत्रकम् ॥ ८ ॥ गुडेन पथ्यां पिष्ट्वा च लेपनं पूयशोधनम् ॥ दिनत्रये विशुद्धेऽपि तत्रैवलेपनं हितम् ॥ ॥ ९ ॥ धवार्जुनकदम्बस्य वृक्षोदुम्बरयोस्त्वचम् ॥ जलेन पिष्ट्वा लेपश्च तेन संरोहते व्रणः ॥ १० ॥

आत्रेयजी कहते हैं–छिन्न कटाहुआ, भिन्न टूटाहुवा, भग्न फूटाहुआ, घृष्ट घिसाहुआ, पिष्ट पिसाहुआ, आस्फालित फटा हुआ, संप्रहार, संघात, लाठी आदिकी चोट ऐसे ये हाड आदिके टूटनेके रोग होते हैं ॥ १ ॥ शस्त्रसे कटे हुए मनुष्यको देखि तिसकी क्रिया करै ॥ ॥ २ ॥ अस्थिमें स्थित हुआ मांसभेदन होजावे अथवा शाखा प्रशाखाओंकी अस्थि छेदन होजावे वह छिन्न कहाता है ॥ ३ ॥ और जो संधिके विना अन्य जगहकी हड्डी टूट जावे वह असाध्य कहाती है खड्ग अर्धचंद्रमाके समान शस्त्र फरशा इन्होंसे छिन्न अस्थि कही है।४। तिसकी आदिमें चारण, लेप, धोवना, ये कर्म करै और तिलोंके तेलसे रूईके फोहे करके चोपरिके पसीना दिवावै ॥ ५ ॥ जबतक रुधिर गिरै तबतक तेलसे चोपरता रहै और जब

रक्त विकारको प्राप्त होजाता है तब तेलसे मालिस करना हित कहा है ॥ ६ ॥ और तहां व्रणपै शोजा आदिक बहुतसे उपद्रव होजाते हैं संधिमें छिन्न हुए मनुष्यको देखिकै गरम जलसे सेक करै ॥ ७ ॥ फिर गरम जलसे सेक करलेवे तब फोहेसे तेल लगाना श्रेष्ठ है और जो राध निकलती हो तो नींब, अमलतास इन्होंके पत्ते बांधने श्रेष्ठ है ॥ ८ ॥ और हरडेको पीस गुडके संग लेप करनेसे राधकी शुद्धि होती है तीन दिनतक शुद्ध होजावे तब इनआगे कही औषधोंका लेप करना हित है ॥ ९ ॥ धव, अर्जुनवृक्ष, कदंब, पिलखनवृक्ष, गूलर इन्होंकी छालको जलमें पीस लेप करनेसे घाव भरता है ॥ १० ॥

अथ भिन्नअस्थिकी चिकित्सा ।

शक्तिशूलैश्च बाणैश्च भल्लारखड्गतोमरैः ॥ क्षुरिकामुखधाराभिर्भिन्नं तत्कथ्यते भिषक् ॥ ११ ॥ साध्यममर्मजं प्रोक्तं मर्मस्थं तन्न सिध्यति ॥ अपामार्गरसेनापि तथा कूष्माण्डकस्य च ॥ १२ ॥ धावनं काञ्जिकेनापि प्रशस्तं कथ्यते बुधैः ॥ तिलतैलेन चाभ्यङ्गो हितः स्यात्स्वस्थभिन्नके ॥ लेपनञ्च प्रयोक्तव्यं पूर्वोक्तञ्च हितावहम् ॥ १३ ॥

हे वैद्य ! शक्ति, शूल, बाण, भाला, तलवार, तोमर शस्त्र, छुरी, खांडा, जिनके नोकहों उनसे भेदन हुवा हाड भिन्न कहा है ॥ ११ ॥ जो मर्ममें नहीं लगाहो वह साध्य कहा है और मर्मस्थानमें लगा हुआ असाध्य कहा है तहां ऊंगाके रससे अथवा कोहलाके रससे तथा कांजीसे धोवना श्रेष्ठ कहा है ॥ १२ ॥ और वैद्योंने कांजीसे धोना श्रेष्ठ कहा है और भिन्न हुए हाडमें तिलोंके तेलकी मालिस करनी हित कही है और पहले कहा हुआ लेप करना हित कहा है ॥ १३ ॥

अथ शल्योद्धारचिकित्सा ।

उरसि शिरसि शङ्खे कक्षयोः पादयोर्वा त्रिकजठरमुखाग्रे नेत्रयोः कर्णयोर्वा ॥ भवति हि यदि शल्यं कष्टसाध्यञ्च शस्त्रैर्भवति यदि न गूढं भेषजैस्तैर्विधिज्ञ ॥ १४ ॥ शाखाप्रशाखयोर्यच्च मर्मस्थं तन्न सिध्यति ॥ यन्त्रशस्त्रप्रतीकारैः शल्यं प्राज्ञः समुद्धरेत् ॥ १५ ॥ द्वादशैव तु यन्त्राणि शस्त्राणि द्वादशैव तु ॥ चत्वारि च प्रबन्धानां शल्योद्धारे विनिर्दिशेत् ॥ १६ ॥ गोधामुखं वज्रमुखं च नाम संदंशचक्राकृतिकंकपादम् ॥ अथानकं

शृङ्गककुण्डलञ्च श्रीवत्ससौवत्तिकपञ्चवक्रम् ॥ १७ ॥ द्वादशैतानि यन्त्राणि कथितानि भिषग्वरैः ॥ अथ शस्त्राणि प्रोक्तानि नामानि च पृथक्पृथक् ॥ १८ ॥ अर्द्धचन्द्रं व्रीहिमुखं कंकपत्रं कुठारिका ॥ करवीरकपत्रञ्च शलाकाकारपत्रकम् ॥ १९ ॥ बडिशं गृध्रपादञ्च शूली च घनमुद्गरम् ॥ शस्त्राण्येतानि प्रोक्तानि शल्योद्धारे पृथक् पृथक् ॥ २० ॥ अतिगुप्तं च शल्यञ्च संदंशेन समुद्धरेत् ॥ भिन्नेन तत्प्रतीकारः कर्त्तव्यश्च सुधीमता ॥ २१ ॥ गम्भीरशल्यं ज्ञात्वा च प्रतीकारञ्च कारयेत् ॥ पाटनं कुशपत्रेण चोद्धरेत्कुङ्कमेन च ॥ २२ ॥ भिन्नवत्प्रतीकारश्च कर्त्तव्यश्च सुधीमता ॥ २३ ॥ यत्र शोफो भवेत्तीव्रस्तत्र शल्यं विनश्यति ॥ सशल्यं सघनं चैव रुजावन्तं निरूप्य च ॥ २४ ॥ तत्र योग्यं च यन्त्रं च यन्त्रशस्त्रञ्च योग्यकम् ॥ तत्तत्र योजनीयश्च ऊहापोहविशारदैः ॥ २५ ॥ या वेदना शल्यनिपातजाता तीव्रा शरीरे प्रतनोति जन्तोः ॥ घृतेन संशान्तिमुपैति तिक्ता कोष्णेन यष्टीमधुनान्वितेन ॥ २६ ॥ सर्जार्जुनोदुम्बरमर्कटीनां रोध्रं समङ्गासुरसासमेतम् ॥ जलेन पिष्ट्वा प्रतिलेपनाय शल्योद्धृतौ सौख्यमिदं करोति ॥ २७ ॥ शेषा क्रिया च पूर्वोक्ता छिन्ने भिन्ने हिता तु या ॥ कर्त्तव्यो वालुकास्वेदो घटीस्वेदश्च तत्र च ॥ २८ ॥

छाती, शिर, कनपटी, दोनोंकाख, दोनों पैर, कटिस्थान, उदर, मुख इन्होंके आगे नेत्र कान इन्होंमें जो यादि बाण आदि शल्य होवे तो शस्त्रोंसेभी कष्टसाध्य कही है और जो डूबै नहीं होवे तो औषधोंसे निकल जाती है ॥ १४ ॥ और शाखा प्रशाखा हाथ पैर अंगुली आदिस्थान मर्मस्थान, इन्होंमें लगी हुई शल्य नहीं निकलती है और यंत्र शस्त्रोंके प्रकार इन्होंसे बुद्धिमान् पुरुष शल्यको निकासै ॥ १५ ॥ बारह यंत्र हैं और बारह प्रकारके शस्त्र कहे हैं और शल्योद्धारमें चार प्रबंध अर्थात् बंधन आदिक पट्टी कही है ॥ १६ ॥ गोधामुख, वज्रमुख, संदंश, चक्राकृति, कंकपाद, आनक, शृंगक, कुंडल, श्रीवत्स, सौवत्सिक, पंचवक्र ॥ १७ ॥ ऐसे ये बारहप्रकारके यंत्र वैद्यजनोंने कहे हैं और जुदे २ नामोंवाले बारह प्रकारके शस्त्र कहे हैं ॥ १८ ॥ अर्धचंद्रमाके समान, व्रीहिमुख, कंकपत्र, कुठारिका, करवीरकपत्र, कुशपत्र

शलाकाकारपत्र ॥ १९ ॥ बाडिशशस्त्र, गृध्रपाद, शूली, घनमुद्गर, ऐसे ये जुदे २ शस्त्र शल्योद्धारमें कहे हैं ॥ २० ॥ जो अतिगुप्त शल्यहो वह संदंश अर्थात् चिमटासरीखे यंत्रसे निकालनी चाहिये और भिन्नहुई अस्थिके समान तिसकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ २१ ॥ और गंभीर शस्त्रको जानले तिसको कुशपत्र शस्त्रसे फाडना चाहिये, कुंकुमशस्त्रसे निकासै ॥ २२ ॥ और तिस शल्यकी चिकित्सा भिन्नहुए अस्थिके समान करै ॥ २३ ॥ और जहां अत्यंत शोजा होगयाहो तहां शल्य नहीं दीखता है तहां शल्य सहित और करडा पीडावाला ऐसा शोजा जानके ॥ २४ ॥ तहां जैसा योग्यहो वैसाही यंत्र और शस्त्रको बुद्धिमान वैद्य अपनी बुद्धिसे विचारके प्रयुक्तकरै ॥ २५ ॥ जो बाणआदि शल्यके लगनेसे पीडा हुईहो वह मनुष्यके शरीरमें ज्यादे बढजावे तहां कुटकी मुलहठी, शहद, इन्होंसे संयुक्त किये हुए, कछुक गरम २ घृतसे सेकनेसे वह पीडा शांतहोती है ॥ २६ ॥ और राळकावृक्ष, अर्जुनवृक्ष, गूलर, कौंच, लोध, मँजीठ, तुलसी, इन्होंको जलमें पीस शल्य निकासी हुई जगहपै लेप करनेसे सुख होता है ॥ २७ ॥ और बाकी जो पहले वालुकास्वेद, घटीस्वेद, इत्यादिक क्रिया कहीहै वे और अस्थिच्छिन्न, भिन्नअस्थि इन्होंमें जो क्रिया हित कही है वे सब करनी चाहिये ॥ २८ ॥

अथ अस्थिभग्नकी चिकित्सा।

भग्नास्थिश्च नरं दृष्ट्वा तस्य वक्ष्यामि भेषजम् ॥ मणिबन्धे कूर्परे च जानौ भग्ने कटौ तथा ॥ २९ ॥ पृष्ठवंशे विभग्ने च साध्यान्येतानि सत्तम ॥ ग्रीवादेशे चेन्द्रबस्तौ रोहिण्यां कूर्परादधः ॥ ३० ॥ स्कन्धकूर्परमध्ये च तथा च त्रिकमध्यतः ॥ उरसि चैव क्रोडे च विभग्नं तदसाध्यकम् ॥ ३१ ॥ विभग्नं च नरं दृष्ट्वा वेणुखण्डेन बन्धयेत् ॥ मृक्षयेन्नवनीते नैरण्डपत्रैश्च वेष्टयेत् ॥ ३२ ॥ उष्णाम्भसा सेचयेच्च वस्त्रेण मृदु बन्धयेत् ॥ ३३ ॥ धवार्जुनकदम्बानां वल्कलं काञ्जिकेन तु ॥ पिष्ट्वा हितः प्रलेपश्च तेन सौख्यं प्रजायते ॥ ३४ ॥ स्वेदयेत्तानि चोष्णेन आवासं कारयेत्पुनः ॥ एवं क्रियासमाप्तौ ततो बन्धं विमोचयेत् ॥ ३५ ॥ एकाहान्तरितेनापि पूर्ववत्तत्प्रबन्धयेत् ॥ यावद्ग्रन्थि न बध्नाति तावन्न स्नापयेन्नरम् ॥ ३६ ॥

भग्न अस्थिवाले मनुष्यकेवास्ते औषध कहते हैं पौंहचा कोहनी, गोडे कटि ॥ २९ ॥ पीठका बांस, ये जो भग्न होजावे तो साध्य कहे हैं और ग्रीवाके समीप, बस्तिस्थानकोहनी-

के नीचेकी जगह ॥ ३० ॥ और कांधा, कोहनीके बीचका स्थान, कटि, कलेजा, छाती, इन्होंमें भग्न हुई अस्थि असाध्य कही है ॥ ३१ ॥ भग्न अस्थिहुए मनुष्यको देखिके बांसकी फाटकोंसे बांध देवै और नौनीघृतका लेप कर अरंडके पत्तोंसे बांध देवै ॥ ३२ ॥ और गरम जलसे सेंक करै वस्त्रसे कोमल बांध देवै ॥३३॥ और धव, अर्जुनवृक्ष, कदंब, इन्होंकी छालको कांजीमें पीस लेप करनेसे सुख होजाता है ॥ ३४ ॥ पीछे गरम २ वस्त्र होजावे तबतक पसीना दिवावे वस्त्रको तहां बांधा रक्खे ऐसी क्रिया हो लेवे तब बंधनको खोलदेवै ॥ ३५ ॥ एकदिन खुला रक्खै और एकदिन बांधा रक्खे और जबतक टूटे हुवे हाडकी जगह ग्रंथि नहीं बंधे तबतक स्नान नहीं करवावै ॥ ३६ ॥

अथ घृष्ट हाडकी चिकित्सा ।

घृष्टश्चैव नरं दृष्ट्वा धावनं काञ्जिकेन च ॥ मूत्रेण शीततोयेन धावनञ्च हितं मतम् ॥ ३७ ॥ यावद्वै स्रवति रक्तं तावत्तैलेन सेचयेत् ॥ अल्पानि चौषधान्यत्र कारयेद्विविधानि च ॥ ३८ ॥

घृष्ट अर्थात् किसी वस्तुसे घिसके दबजावे वह घृष्ट हाड कहाता है तिसको कांजीसे धोवै अथवा गोमूत्रसे तथा शीतल जलसे धोवना हित है ॥ ३७ ॥ और तहां जबतक रुधिर झिरै तबतक तेलसे सेकता रहै और वैद्यजनको यहां स्वल्प औषध करनी चाहिये॥ ३८॥

अथ आस्फालित हाडकी चिकित्सा ।

विपाके रक्तस्रावश्च स्वेदनञ्च विधीयते ॥ भग्नवत्प्रतीकारञ्च कारयेद्विधिपूर्वकम् ॥ ३९ ॥ आस्फालिते प्रतीकारे ज्ञातव्यश्च भिषग्वर ॥ ऊहापोहैश्च कर्त्तव्यस्तेन सम्पद्यते सुखम् ॥ ४० ॥

पकेहुए हाडमें रुधिर झिरताहो तो पसीना दिवाना हित है और भग्न हुए हाडके समान इसका इलाज करै ॥ ३९ ॥ ऐसे वैद्यजनोंको जानना चाहिये और अपनी बुद्धिके बलके अनुसार चिकित्सा करै तिससे रोगीको सुख होता है ॥ ४० ॥

अथ अभिघात अर्थात् चोट लगी हुईकी चिकित्सा ।

शिरोऽभिघातजो दोषः शिरोरोगः प्रकीर्त्तितः ॥ उरसा चाभिघातेन यकृद्गुल्मश्च जायते ॥ ४१ ॥ इत्येवञ्च प्रतीकारं कुर्याद्रक्तावसेचनम् ॥ स्वेदनञ्च प्रयोक्तव्यं भिषजा कर्मसिद्धये॥४२॥ न च तैलञ्च भोक्तव्यं नात्युष्णकटुकं तथा ॥ मत्स्यानि न च मांसानि घनानि च गुरूणि च ॥ ४३ ॥ श्वेतशालिसमुद्भूतं यूषं

चैवाढकीषु च ॥ शशलावकवार्त्ताककक्कोलं तण्डुलीयकम् ॥
॥४४॥ शतपुष्पाद्यमन्यच्च न च हिङ्गुसमन्वितम् ॥ लवणं नाति-
भोक्तव्यं यदीच्छेदात्मनः सुखम् ॥ ४५ ॥ व्यायामश्च व्यवायश्च
दिवानिद्रां तथा क्रमम् ॥ वर्जयेत्सुखसम्पत्तिर्नरश्च प्रतिपद्यते ॥
॥ ४६ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने भग्नचिकित्सा
नाम सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

शिरमें चोट लगनेसे कुपितहुए दोषको शिरोरोग कहते हैं और छातीमें चोट लगनेसे यकृत् रोग गुल्म ये रोग होते हैं ॥ ४१ ॥ इन्होंको दूर करनेकेवास्ते रक्तको निकसावै और पसीना दिवावे ॥ ४२ ॥ और तेलका भोजन नहीं करै और अत्यंत गरम चर्चरा ऐसा भोजन नहीं करै और मछलियोंका मांस करडे तथा भारी पदार्थ इन्होंको नहीं खावे ॥४३॥ और शालिसंज्ञक सफेद चावलोंका यूष, तूरीधान्य, शशा, लावापक्षी, बत्तक इन्होंका मांस कंकोल, चौलाईका शाक ॥ ४४ ॥ सौंफ, हींग आदि और नमक, इन्होंको इच्छापूर्वक कम खावे इन्होंसे सुख होता है ॥ ४५ ॥ और कसरत, स्त्रीसंग, दिनमें सोना, टहल कदमी करना इन्होंको वर्जदेवै तब सुख उत्पन्न होता है ॥ ४६ ॥

इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने भग्नचिकित्सानाम सप्तपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५८.

अथाग्निदग्धचिकित्सा ।

आत्रेय उवाच ॥ अग्निदग्धं नरं दृष्ट्वा तच्च दग्धं चतुर्विधम् ॥
ईषद्दग्धं मध्यदग्धमतिदग्धश्च वेदभाक् ॥ १ ॥ सम्यग्दग्धं
भिषक्छ्रेष्ठ लक्षणं शृणु पुत्रक ॥ २ ॥ अतिदग्धं मांसगं स्या-
द्वातपित्तकफाश्रितम् ॥ सम्यग्धग्धश्च निर्दोषं विज्ञेयं च चतुर्वि-
धम् ॥ ३ ॥ त्वचा विशीर्य्यते येन स दाहः पित्तजो भवेत् ॥
सरक्तश्च सपित्तश्च पित्तकोपात्प्रदृश्यते ॥ ४ ॥ कृष्णवर्णश्च
[illegible] मांसगं तीव्रवेदनम् ॥ तस्य वक्ष्यामि संसिद्ध्यै भेषजं

भिषजां वर ॥ ५ ॥ ईषद्दग्धे काञ्जिकस्य लेपनं सुखहेतवे ॥ निम्बपत्राणि सुरसा कुष्ठं धात्रीफलानि च ॥ ६ ॥ ईषद्दग्धे यथालाभे लेपनं भिषगुत्तम ॥ मध्यदग्धे पयस्या या लेपनी सुखकारिणी ॥ ७ ॥ मधुकुष्ठकमञ्जिष्ठाघृतं पक्कं हितं मतम् ॥ कुष्ठञ्च यष्टीमधुकं चन्दनैरण्डपत्रकम् ॥ ८ ॥ मध्यदग्धे हितो लेपो दुग्धेन परिपेषितः ॥ ९ ॥ घृतकर्पूरचूर्णञ्च गैरिकं रोध्र-मेव च ॥ शुष्कचूर्णं पूयहरं दग्धं संरोहयत्यपि ॥ १० ॥ आम-लक्या तिलं कुष्ठं लेपनं वाग्निदग्धके ॥ रोध्रोशीरं समङ्गा च लेपनं शीतवारिणा ॥ ११ ॥ अतसी स्नेहमभ्यङ्गमधुयष्टीघृतेन तु ॥ लेपाभ्यङ्गे हितं दग्धरोहणं दाहवारणम् ॥ १२ ॥

आत्रेयजी कहते हैं-अग्निसे दग्ध हुए मनुष्यको देखै चारमकारका अग्निदग्ध होता है कछुक दग्ध, मध्यदग्ध, अतिदग्ध ॥ १ ॥ सम्यक्दग्ध, ऐसे चारमकारका होता है हे पुत्र ! अब इन्होंके लक्षणको सुन ॥ २ ॥ जो अत्यंत दग्धहो वह मांसमें प्राप्त होता है और वात पित्त कफ इन्होंके आश्रय होता है और जो सम्यक् अर्थात् सारा दग्ध होजावे वह दोषोंसे रहित दग्ध होता है वह चारमकारका दग्ध होता है ॥ ३ ॥ जिसमें त्वचा विखर जावे और दाहहो और रक्त तथा पित्त दीखै तहां धग्ध हुएमें पित्तका कोप जानना ॥ ४ ॥ और जहां काला वर्ण होजावे वह मांसमें माप्तहुआ पित्त जानना तिसमें तीव्रपीड़ा होती है । हे उत्तमवैद्य ! तिसकी सिद्धिकेवास्ते औषधको कहैंगे ॥ ५ ॥ कछुक दग्ध हुए पुरुषके सुखकेवास्ते कांजीका लेप करना हित है और हे उत्तमवैद्य ! नींबके पत्ते, सफेद संभालू, कूठ, आँवलाके फल, ॥ ६ ॥ इन्होंमेंसे जौनसी मिले उसीका लेप करना कछुक दग्ध हुए पुरुषको हित है और मध्यम दग्धहुए पुरुषके दूधीका लेप करनेसे सुख होता है ॥ ७ ॥ और शहद, कूठ, मंजीठ इन्होंमें घृतको पका लेप करना हित है और कूठ, मुलहटी, चंदन, अरंडके पत्ते ॥ ८ ॥ इन्होंको दूधमें पीस मध्यमदग्धहुए पुरुषकै लेप करना हित है ॥ ९ ॥ और घृत, कपूरका चूर्ण, गेरू, लोध, इन्होंके सूखे चूर्णको बुरकानेसे राधका नाश होता है और धग्धहुएका व्रण भरजाता है ॥ १० ॥ और आंवला, तिल, कूठ इन्होंका लेप करनेसे अग्निसे दग्धहुआ अच्छा होता है और लोध, खश, मँजीठ इन्होंको शीतल जलमें पीस लेन करना ॥ ११ ॥ अथवा अलसीका तेल, मुलहटी, घृत इन्होंका लेप करना हित है दग्धहुएका घाव भरता है और दाहका नाश होता है ॥ १२ ॥

अथ धूमपान चिकित्सा ।

धूमोपघाते वमनं क्षीरपानं तथोपरि ॥ जले च तरणं श्रेष्ठं धूमदाहोपशान्तये ॥ १३ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे चिकित्सास्थानं नामाष्टपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

तृतीयस्थानं समाप्तम् ॥ ३ ॥

धूवाँसे व्याकुलहुये पुरुषको दूध पिलाना हित है और जलमें तिरनां श्रेष्ठ है धूवाँके दाहकी निवृत्ति होती है ॥ १३ ॥ इति वेरीनिववासि० हारीतसंहिताभाषाटीकायां चिकित्सास्थाने अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

इति तृतीयस्थानं समाप्तम् ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थस्थानम् ।

प्रथमोऽध्यायः १.

अथ तुलामानविधि ।

आत्रेय उवाच ॥ सर्षपस्य चतुर्थांशोऽणुः ॥ चतुःसर्षपैर्माषः ॥ चतुर्माषैर्वल्लः॥ चतुर्वल्लैः सुवर्णैः कर्षः ॥ चतुःकर्षैः पलम् ॥ चतुः पलैः कुडवः ॥ चतुःकुडवैः प्रस्थः ॥ चतुःप्रस्थैराढकः ॥ चतुर्भिराढकैर्द्रोणः ॥ १ ॥ शुष्काणामौषधानाञ्च मानञ्च द्विगुणं भवेत् ॥ आर्द्राणामथ सर्वेषां विज्ञातव्यस्तुलाविधिः ॥ २ ॥

सिरसमका चौथा हिस्साके भागको अणु कहते हैं चार सिरसमोंका एक माष, चार माषोंका एक वल्ल और वल्ल प्रमाणको सुवर्ण नामक भी कहते हैं और चार वल्लोंका अर्थात चार सुवर्णोंका एक कर्ष होता है चार कर्षोंका एक पल और चार पलोंका एक कुडव, चार कुडवोंका एक प्रस्थ चार प्रस्थोंका एक आढक चार आढकोंका एक द्रोण होता है ॥ ॥ १ ॥ और सूखी हुई औषधोंका दूना प्रमाण लेवै और गीली औषधोंको कहे हुये प्रमाणके अनुसार लेवै ॥ २ ॥

अथ अन्यमत ।

सप्तभिर्यवशतैः साष्टषष्टिभिः पलं भवति ॥ चतुर्भिः पलैः कुडवः ॥ चतुर्भिः कुडवैः प्रस्थः ॥ प्रस्थैश्चतुर्भिराढकः ॥ चतुर्भिराढकैः कंसः ॥ द्वेपले प्रसृतिर्भवेत् ॥ ३ ॥ मस्तुतैलारनालानां क्षीरमंडगुडं सिता ॥ मधु मद्यं तथा द्राक्षा खर्जूरं गुग्गुलुस्तथा ॥ ४ ॥ रसोनलवणानाञ्च प्रोक्तावर्द्धार्धमान्नकौ ॥ बिडालपदिकामात्रं कर्षशब्दोऽभिधीयते ॥ ५ ॥ वटोदुम्बरमात्रेण पलमौदुम्बरं विदुः ॥ चतुःपलं बिल्वमानं पले द्वेऽञ्जलिरुच्यते ॥ ६ ॥ कुडवं चाञ्जलिद्वे च वक्ष्यमाणं महामते ॥ ७ ॥ चतुरंगुलविस्तारं चतुरंगुलमुन्नतम् ॥ काष्ठजं मृन्मयं वापि कुडवं तं विनिर्दिशेत् ॥ ८ ॥ चतुःकुडवैः प्रस्थः स्याच्चतुःप्रस्थैस्तथाढकः ॥ चतुराढकः स्याद्द्रोणो मानसंख्या प्रकीर्त्तिता ॥ ९ ॥ वमनं च विरेकञ्च प्रदद्यात्कर्षमात्रकम् ॥ सन्तर्पणं पलमात्रं चूर्णं कर्षकमात्रकम् ॥ १० ॥ क्षारमेव पलार्द्धं च कर्षं चैव हरीतकीम् ॥ पलं रसोनकल्कञ्च पलं गुग्गुलुमेव च ॥ ११ ॥ पलञ्च सूरणं कल्कं दापयेच्च सुपण्डितः ॥ अन्यानि चूर्णलोहानि कर्षमात्राणि दापयेत् ॥ १२ ॥ ज्ञात्वा देहबलं सम्यगुत्तमाधममध्यमम् ॥ लेहं चूर्णं कषायं च दापयेद्विधिवत्सुधीः ॥ १३ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे चतुर्थे सूत्रस्थाने तुलामानविधिर्नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

सातसौ अडसठ ७६८ जवोंका एक पळ, चार पलोंका एक कुडव, चार कुडवोंका एक प्रस्थ, चार प्रस्थोंका एक आढक होता है और चार आढकोंका एक कंस होता है और दो पलोंकी एक प्रसृति होती है ॥ ३ ॥ और दहीका मस्तु, तेल, कांजी, दूध, मंड अर्थात् छाहकी कूही, गुड, मिसरी और शहद, मदिरा, दाख, खिजूर, गूगल ॥ ४ ॥ लस्सन, नमक इन्होंका गीळा प्रमाण अर्थात् सूखी औषधोंसे दूना प्रमाण कहा है और बिडाळपदिका यह शब्द कर्ष प्रमाणका वाचक है ॥ ५ ॥ और वट उदुम्बर अर्थात् गूलरका फल इन शब्दोंसे पळ अर्थात् चार तोळा प्रमाणका ग्रहण जानना और चार पलोंका बिल्वसं-

ङ्क प्रमाण होता है और दो पलोंका अञ्जलि कहते हैं ॥ ६ ॥ और दो अञ्जलियोंका एक कुडव होता है हे महामते ! ऐसे प्रमाण कहा है ॥ ७ ॥ और चार अंगुल प्रमाणका और चार अंगुल ऊंचा ऐसा काष्ठका पात्र अथवा मृत्तिकाका पात्र उसको कुडव कहते हैं ॥ ८ ॥ और चार कुडवोंका प्रस्थ होता है और चार प्रस्थोंका आढक होता है, चार आढकोंका द्रोण होता है, ऐसे प्रमाणकी संख्या कही है ॥९॥ वमन और जुलाबमें कर्षप्रमाण मात्रा देनी और संतर्पण औषध पल प्रमाण देनी और चूर्ण कर्ष प्रमाण देना चाहिये ॥ ॥ १० ॥ क्षार औषधका आधा पल प्रमाण है हरडेका कर्ष प्रमाण देना है और लस्सनका कल्क गूगल, इन्होंका पल प्रमाण है ॥ ११ ॥ और उत्तमवैद्य ! जमीकन्दके कल्कको भी पल प्रमाण देवै और अन्य लोहआदिकोंके चूर्णको कर्षप्रमाण देवै ॥ १२ ॥ सम्यक् प्रकारसे देहके बलाबलको विचारि उत्तम, मध्यम, अधम ऐसे तीन प्रकारकी मात्रा देनी चाहिये ॥ १३ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहाय० हारीतसंहिता भाषाटीकायां सूत्रस्थाने तुलामान विधिर्नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः २.

अथ तैलपाकविधिः ।

आत्रेय उवाच ॥ पाकश्चतुर्विधः प्रोक्तस्तैलानां शृणु पुत्रक ॥ खरचिक्कणमध्यस्तु विशोषी चापरो मतः ॥ १ ॥ दुग्धारनाल क्वाथश्च दधि वा शोषयत्यपि ॥ न चार्द्रता चौषधानां निष्फेनो विमलस्तु यः ॥ २ ॥ मञ्जिष्ठारससङ्काशो भवेत्सखरपाकगः ॥ वातघ्नः सोऽपि विज्ञेयो मर्दनाभ्यञ्जने हितः ॥ ३ ॥ सफेनो मध्य पाकी च द्रवो भवति पिण्डितः ॥ नातिफेनमफेनं वा मध्यपाकं विनिर्दिशेत् ॥ ४ ॥ बस्तौ पाने च शस्तश्च त्रिदोषघ्नं भिषग्वर ॥ सफेनश्चन्द्रभो यस्य भवेत्स्वस्थसमो द्रवः ॥ ५ ॥ स च चिक्कणकः पाको नस्ये प्रोक्तो हितः सदा ॥ ६ ॥ सधूमश्चातिदग्धश्च दग्धगन्धरसस्तथा ॥ विज्ञेयो वातशोषी च वर्जितः सर्व कर्म ॥ ७ ॥ मर्दने खरपाकश्च बस्तौ चिक्कणपाकितः ॥ बस्तौ पानेमध्यपाको विशोषी वर्जितस्तथा ॥ ८ ॥ पक्षे सिध्यति तै-

लश्च सप्ताहे घृतमेव च ॥ कषायः प्रहरेणापि यत्नेनैव प्रसाधयेत् ॥ ॥ ९ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे चतुर्थे सूत्रस्थाने तैलपाकविधिर्नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

हे पुत्र ! तेलोंका पाक चारप्रकारका कहाहै सो सुन खर, चिक्कण, मध्य, विशोषी ४ ऐसे हैं ॥ १ ॥ जहां दूध, कांजी इत्यादिकोंके क्काथको सुखा केवल तेलमात्र बाकी रहजावे और औषधोंका आलापन नहींहो झाग नहींहो निर्मलहो ॥ २ ॥ मँजठिके रंगके समान वर्णवालाहो वह खरपाक अर्थात् तीक्ष्ण पाकवालाहो तेल जानना वह वातको नाशता है मर्दन मालिस इन्होंमें हित है ॥ ३ ॥ और झागोंसहितहो मध्यम पाकवालाहो और जिसके द्रवमें चलनेमें बूंधसी बंधजावे अत्यंत झाग नहींहों अथवा झागहों वह मध्यमपाकी तेल कहाता है ॥ ४ ॥ हे उत्तम वैद्य ! वह तेल बस्तिकर्ममें पीनेमें श्रेष्ठ है त्रिदोषको नाशता है और जिसमें चंद्रमाके समान सफेद २ झागहो और विनापकाहुआ, स्वच्छ तेलके समान पतलाहो ॥ ॥ ५ ॥ वह चिक्कणपाकवाला तेल कहाता है नस्य देनेमें हित है ॥ ६ ॥ और जिसमें धूवाँहो अत्यन्त दग्ध होगयाहो और जिसका रस गंध दग्ध होगयाहो वह विशोषी पाकवाला तेल कहाता है वह सबकर्मोंमें वर्जित है ॥ ७ ॥ और मर्दन करनेमें खरपाक अर्थात् तीक्ष्णपाकवाला तेल हित है और बस्तिकर्ममें चिक्कणपाकवाला तेल हित है और मध्यपाकी तेल बस्तिमें तथा पीनेमें श्रेष्ठ है विशोषी तेल सब कर्मोंमें वर्जित है ॥ ८ ॥ तेल पंद्रह दिनमें सिद्ध होता है अर्थात् वरतनेलायक होता है घृत सात दिनमें सिद्ध होता है क्काथ एक पहरमें सिद्ध होता है ऐसे यत्नकरके सिद्ध करै ॥ ९ ॥ इति वेरीनिवासि० हारीतसंहिताभाषाटीकायां सूत्रस्थाने तैलपाकविधिर्नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

अथ निरूहबस्तिक्रमविधिः।

आत्रेय उवाच ॥ चतुरङ्गुलां वेणुमयीं नाडीं प्रतिलक्षणं कृत्वा तया बस्तिप्रतिकर्म कुर्य्यात् ॥ १ ॥ नातिचोष्णे च काले च न शीते न च भोजिते ॥ न च निद्रालौ मूत्रार्त्ते विष्ठार्त्ते न च वेदभाक् ॥ २ ॥ निरूहं बस्तिकर्म च कारयेत्तं निरस्य च ॥ ३ ॥ आदौ मूत्रविष्ठोत्सर्गं कृत्वा गुदं प्रक्षाल्य नातिशिथिलशय्यायां शाययित्वा वामाङ्गे वामपादं दक्षिणाङ्गे दक्षिणपादञ्च सङ्कोच्य

जङ्घोपरि संस्थाप्यं गुदाभ्यन्तरे द्व्यङ्गुलमात्रां नाडीं सञ्चारयेत्सुधीः॥ततः शनैः शनैर्बस्तिं निष्पीड्य द्विपलपरिमिततैलेन निरूहं कुर्य्यात्॥ निरूहानन्तरं शनैः शनैरुत्तानं शाययित्वा ऊर्ध्वीकृत्वा च पश्चात्संकोच्य पाणिभिः पञ्चवारान्स्फिक्पिण्डांस्त्रोटयेत्॥ततः स्वस्थं कृत्वा क्षणेनापि आमाशयं मलस्थानं बोधयति ॥ बस्त्युदरवातान्दोषान्निवारयति॥ पण्डितास्तं बस्तिनिरूहं तद्वस्तिकर्म च विदुः ॥ ४ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे चतुर्थे सूत्रस्थाने निरूहबस्तिकर्मविधिर्नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—चार अंगुल प्रमाण बाँसकी नलिका बना तिसके चर्मकी बस्ति बांध भीतर प्रवेश करनेको पिचकारी बना तिससे बस्तिकर्म अर्थात् पिचकारी चढानेका कर्म करै॥ ॥ १ ॥ अत्यंत गरमीकी समय नहो और अत्यंत ठंढककी समय नहो भोजन नहीं किया हो नींद नहीं आवती हो मूत्र तथा विष्ठाकी हाजितसे पीडित नहींहो ॥ २ ॥ ऐसे पुरुषको देखि तिसके बस्तिकर्म करै ॥ ३ ॥ पाहिले मूत्र और विष्ठाका विसर्जन करवा गुदाको धुवाके पीछे अत्यंत शिथिल नहो ऐसी शय्यापै सुवा फिर बाँये अंगकी तर्फ बाँये पैरको और दाहीनें अंगकी तर्फ दहिने पैरको समेटके दबा जंघाके उपरि स्थापित करि तिस तलिकाको दो अंगुल प्रमाण गुदाके भीतर चढा देवै पीछे बुद्धिमान् वैद्य शनैः शनैः बास्तिको पीडित कर दो पल अर्थात् ८ तोला प्रमाण तेलसे निरूहबस्तिकर्म करै पीछे निरूहबस्तिकर्म अर्थात् पिचकारी चढानेका कर लेवे तब शनैः शनैः सूधा सुवाके ऊपरको करवाके संकोच करवा वैद्यजन अपने हाथसे पांचवार स्फिक् अर्थात् कूलाको मसले तिससे पीछे स्वस्थ बिठाकर आमाशय और मलाशयको जरा मले इससे बस्तिदोष उदर वात रोग इन्होंका निवारण होता है पंडितजन इसको निरूहबस्ति कहतेहैं और इसीको बस्तिकर्मभी कहते हैं ॥ ४ ॥ इति वेरीनिवासि० हारीतसंहिताभाषाटीकायां सूत्रस्थाने निरूहबस्तिकर्मविधिर्नामतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ४.

अथ स्वेदनविधि।

स्वेदः सप्तविधिः प्रोक्तो लोष्टस्वेदो बाष्पस्वेदोऽग्निज्वालास्वेदः [illegible]स्वेदो जलस्वेदः फलस्वेदो बालुकास्वेदश्च ॥ न तैलेन

विना स्वेदं कदाचिदपि कारयेत् ॥ तैलेनाभ्यञ्जयेत्स्वेदं स भवेद्गुणकारकः ॥ १ ॥ तीव्रज्वरे दाहशोषे तथातीसारपीडिते ॥ मूर्च्छाभ्रमदाहार्त्ते च विषे स्वेदं न कारयेत् ॥ २॥ शूलशोफातुरे वाते शीतश्लेष्मातुरेषु च ॥ एतेषां शस्यते स्वेदो नराणां सुखदायकः ॥ ३ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे चतुर्थे सूत्रस्थाने स्वेदनविधिर्नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

स्वेद अर्थात् पसीना सातप्रकारका होता है लोष्टस्वेद, अर्थात् मृत्तिकाके पिंडआदिका स्वेद १ बाष्पस्वेद भांफोंका स्वेद २ अग्निज्वालास्वेद ३ घटीस्वेद ४ जलस्वेद ५ फलस्वेद ६ वालुकास्वेद ७ ऐसे सातप्रकारका है ॥ और तैलके चोपरे विना किसीसमयमेंभी पसीना नहीं दिवाना चाहिये तैल चोपरिकै जो पसीना दिवाया जाता है वह गुण करनेवाला है ॥ १ ॥ तीव्रज्वर, दाह, शोष, अतिसारसे पीडित, मूर्च्छा, भ्रम, दाह इन्होंसे पीडित विषसे युक्त इन पुरुषोंके पसीना नहीं दिवावै ॥ २ ॥ और शूल, शोजा इन्होंसे पीडित वातसे युक्त शीत कफ इन्होंसे पीडित इन पुरुषोंको पसीना दिवाना श्रेष्ठ कहा है सुख देनेवाला है ॥ ३ ॥ इति वेरीनिवासि० हारीतसंहिताभाषाटीकायां सूत्रस्थाने. स्वेदनविधिर्नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः ५.

अथ रक्तावसेचन फस्तखुलानेकी विधि।

रक्तावसेचनं चतुर्भिः प्रकारैर्भवति ॥ शिराविरेचनेनापि अलाबुभिस्तथै व च॥श्लक्ष्णशृङ्गैर्जलौकाभी रक्तञ्च स्रावयेद् बुधः॥१॥ पूर्वाह्णे चापराह्णे च नात्युष्णे नातिशीतले ॥ यवागूपरिपीतस्य शोणितं मोक्षयेद्भिषक् ॥ २ ॥ शिरोरोगेषु सर्वेषु नासामध्यपुटे तथा ॥ असृजं रेचयेद्यत्नात्सर्वदा भिषगुत्तमः ॥ ३ ॥ ललाटमध्ये भ्रुवोरुपरिष्टादङ्गुलद्वयं त्यक्त्वा शिरां रेचयेत् ॥ बाह्वोः कूर्परमध्ये शिरां बन्धयेत् ॥ मणिबन्धसन्धौ अङ्गुष्ठमूलचतुष्टयमङ्गुलञ्च विहाय शिरां बन्धयेत् ॥ नातिपार्श्वे चतुरंगुलं विहाय शिरां

बन्धयेत् ॥ घुण्टिकां शिरां पादे बन्धयेत्॥अपरमपि ग्रंथविस्ता-रभयान्नोक्तम् ॥ अलाबुशृङ्गैः रक्तावसेचनं सर्वैरपि ज्ञातव्यम् ॥४॥

आत्रेयजी कहते हैं-बुद्धिमान् मनुष्य चारमकारसे रक्तकी फस्त खुलावै नसोंपै फस्त खुलाना, तूंबियोंसे फस्त खुलाना, बारीक सींगियोंसे फस्त खुलाना, जोकोंसे रुधिर निकसाना ऐसे चारमकारसे रक्तावसेचन होता है ॥ १ ॥ दुपहरे पहिले अथवा तीसरे पहरमें अत्यंत गरमी नहींहो और अत्यंत ठंढक नहींहो तब यवागू अर्थात् गुडियानी पिवाये हुए मनुष्यका रुधिर निकसावे ॥ २ ॥ और उत्तम वैद्यको सम्पूर्ण शिरके रोगोंमें नासिकाके मध्य पुटमें फस्त खुलानी चाहिये ॥ ३ ॥ मस्तकमें भ्रुकुटियोंसे ऊपरि दो अंगुल जगहको त्याग नाडीको वींधै और बाहुवोंकी नाडीको कोहनीके मध्यमें वींधै और पोहचेकी सन्धिमें अंगुठेकी जडमें चार अंगुल जगहको त्यागके नाडीको वींधै चार अंगुल जगहको त्याग अतिसमीपकी नसको नहीं वींधै और पैरमें टांकनेकी नसोंको वींधै और अन्य प्रकरण ग्रन्थके विस्तार होनेके भयसे नहीं कहा है इस प्रकरणमें तुम्बी सींगी इत्यादिकोंसे रुधिरका निकसाना सबको ज्ञात है और श्रेष्ठ है ॥ ४ ॥

अथ रक्तलक्षण।

सकृष्णं फेनिलं श्यामं रक्तं तद्वातदोषजम् ॥ सर्वलक्षणसंपन्नं विज्ञेयं तत्रिदोषजम् ॥ ५ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे चतुर्थे सूत्रस्थाने रक्तावसेचनविधिर्नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

और जो काला तथा झागोंवाला रक्तहो वह वातके दोषका रुधिर जानना जो सब लक्षणोंसे संयुक्तहो वह त्रिदोषसे रुधिर जानना ॥ ५ ॥ इति वेरी०हारीतसंहिताभाषायां चतुर्थे सूत्रस्थाने रक्तावसेचनविधिर्नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ६.

अथ जलौकाचारविधि।

आत्रेय उवाच ॥ जलौकाश्चतुर्विधाः प्रोक्ता इन्द्रायुधारोहिणी कालिकाधूम्रा चेति ॥ १ ॥

आत्रेयजी कहते हैं-जोंख चार प्रकारकी कहीं हैं इंद्रायुधा १ रोहिणी २ कालिका ३

अथ इंद्रायुधाके लक्षण।

नीलवर्णा पार्श्वरक्ता तीक्ष्णमुखी गम्भीरनिर्मलोदके पाषाणसन्धौ च प्रविशति ॥ तया विद्रध्युदरदाहशोफमूर्च्छाविषाद्युपद्रवयति ॥ २ ॥

जो नीलावर्णवालीहो पशलियोंकी तर्फ लालहो, तीक्ष्णमुखवाली हो यह जोख गंभीर निर्मलजलमें और पर्वतकी संधिमें रहती है इसकरके विद्रधि, उदररोग, दाह, शोष, मूर्च्छा, विष इत्यादिकोंको करती है ॥ २ ॥

अथ रोहिणीके लक्षण।

नीलवर्णा पार्श्वपीता शङ्खमुखी पद्मनाले प्रविशति ॥ तया विद्रधिविसर्पशोफाद्युपद्रवयति ॥ ३ ॥

नीलेवर्णवाली और पशलियोंकी तर्फ पीलेवर्णवाली शंखसरीखे मुखवाली ऐसी रोहिणी जोख होती है यह कमलकी नालीमें रहती है इसके लगानेसे विष, विद्रधि, शोजा ये उपद्रव होते हैं ॥ ३ ॥

अथ कालिकाजोखके लक्षण।

कृष्णा कालिका मत्स्याशये दूरे त्याज्या ॥ ४ ॥

कालेवर्णवाली जोख मत्स्याशय अर्थात् मच्छोंके वासमें रहती है यह दूरसे त्याग देनी चाहिये ॥ ४ ॥

अथ धूम्राजोखके लक्षण।

धूम्रा कपोतमहिषवर्णा पीतोदरी अर्द्धचन्द्रमुखी कर्दमे कलुषोदके प्रविशति ॥ सा रक्तावसेचनयोग्यानिरुपद्रवा च ॥ ५ ॥

धूम्रा जोख, कपोत और भैंससरीखे वर्णवाली होती है पीले उदरवाली होती है आधा चंद्रमाके समान मुखवाली होती है यह कीचमें और गिधलेहुए जलमें रहती है यह रुधिर निकालनेके योग्य कही है उपद्रवोंसे रहित है ॥ ५ ॥

अथ जोखलगवानेका क्रम।

अवस्थानं काञ्जिकेन प्रक्षाल्य नवनीतेन म्रक्षयित्वा उष्णोदकेन प्रक्षालयेत् ॥ पश्चात् तत्र जलौकावचारणीया ॥ ६ ॥ जलौका रक्तपूर्णापश्चात् पातिता ॥ तस्या मुखं लवणेन मूत्रेण वा प्रक्षालयेत् ॥ अथवा शनैर्गोस्तनवदुह्यते ॥ पुनर्नवनीतेन मुखमालि-

प्यावचारणीया ॥ दुष्टरक्ते विनिर्गते दंशं काञ्जिकेन प्रक्षाल्य घृतमधुनाभ्यज्य वस्त्रेण बध्नीयात् ॥ ७ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे चतुर्थे सूत्रस्थाने जलौकावचारविधिर्नाम षष्ठोऽध्यायः॥६॥

इति सूत्रस्थानं समाप्तम् ॥

जोख लगवानेके योग्य जगहको कांजीसे धोके नौंनीघृत लगा पीछे गरम जलसे धोकें पीछे तहां जोख लगवानी चाहिये ॥ ६ ॥ जब जोख रक्तसे पूरण होजावे तब तिसको गिरा देवै और तिसके मुखको नमकसे अथवा गोमूत्रसे धोदेवै अथवा शनैः शनैः गौके थनकी तरह सूंत देवै पीछे मुखके नौंनीघृत लगाके फिर लगवा देवै और जब दुष्ट रुधिर निकस जावे तब जोखके डंकके स्थानको कांजीसे धोके घृत और शहदसे चोपरी वस्त्रसे बांध देवै ॥ ७ ॥ इति वेरीनिवासि० हारीतसंहिताभाषाटीकायां सूत्रस्थाने जलौकाचारविधिर्नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

इति सूत्रस्थानम् समाप्तम् ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमं कल्पस्थानम् ॥

प्रथमोऽध्यायः १.

हिमवच्छिखरे रम्ये सिद्धगन्धर्वसेविते ॥ तत्रस्थं तपस्तेजस्थमत्रिश्च मुनिपुङ्गवम् ॥ १ ॥ कल्पानाञ्च प्रयत्नने हारीतः परिपृच्छति ॥ २ ॥

सिद्ध गंधर्व इन्होंसे सेवित ऐसे हिमवान् पर्वतके रमणीक शिखरपै बैठे हुए तप और तेजमें स्थित मुनियोंमें श्रेष्ठ ऐसे आत्रेयजीको ॥ १ ॥ हारीतमुनि कल्पोंकी विधिको यत्नसे पूछते भये ॥ २ ॥

ज्ञातं चैतन्मया तात समासेन चिकित्सितम् ॥
इदानीं श्रोतुमिच्छामि कल्पस्थानं तु सुव्रत ॥ ३ ॥

हारीत पूछता है-हे पिता ! मैंने यह चिकित्सास्थान संक्षेपमात्रसे जाना हे सुव्रत ! अब मैं कल्पस्थानको सुननेकी इच्छा करता हूं ॥ ३ ॥

अथ हरीतकीका कल्प ।

अत्रिरुवाच ॥ कल्पानामभया श्रेष्ठा तस्याः शृणु गुणागुणम् ॥ ४ ॥ स्वर्गस्थामराध्यक्षस्य अमृतं पिबतस्ततः ॥ पतिता बिन्दवो भूमौ तेभ्यो जाता हरीतकी ॥ ५ ॥ रसैः पञ्चभिः संयुक्ता रसेनैकेन वर्जिता ॥ कषायाम्ला च कटुका तिक्ता स्वादुरसा स्मृता ॥ लवणेन वर्जिता च शृणु तस्याः पृथक् पृथक् ॥ ६ ॥ त्वचाश्रितश्च कटुकं मेदस्तस्याः कषायकम् ॥ मेदोऽन्तरे तथा चाम्लं मधुरं चास्थिसंश्रितम् ॥ ७ ॥ तिक्तश्चान्तरे तावत् तु रसैः पञ्चभिः संयुता ॥ आम्लत्वान्मारुतं हन्ति पित्तं मधुरतिक्ततः ॥ कफं कटुकषायत्वात्त्रिदोषघ्नी हरीतकी ॥ ८ ॥ हरीतकी देहभृतां हिता स्यान्मातेव चैषा हितकारिणी च ॥ वरं कदाचित्कुपितापि माता न कुप्यते चाचरितापि पथ्या ॥ ९ ॥ तस्या उत्पत्तिनामानि वक्ष्यामि शृणु कोविद ॥ १० ॥ विजया रोहिणी चैव पूतना चामृता तथा ॥ चेतकी चाभया चैव जीवन्ती चैव सप्तमी ॥ ११ ॥ विन्ध्ये च विजया जाता अभया च हिमालये ॥ रोहिणी वैदिशे जाता पूतना मगधे स्मृता ॥ १२ ॥ जीवन्तिका सुराष्ट्र्यां चम्पायां चेतकी मता ॥ अमृता सरयूतीर इत्येताः सप्त जातयः ॥ १३ ॥ अभया नेत्ररोगेषु शिरोरोगेषु कालिका ॥ सर्वप्रयोगे विजया रोहिणी क्षतरोहिणी ॥ १४ ॥ पूतना लेपनार्थे च अमृता च तथा मता ॥ चेतकी सर्वतो योज्या जीवन्ती चूर्णयोगतः ॥ १५ ॥ बालानामुपकारार्थं विजयां परिलक्षयेत् ॥ त्र्यस्रा च रोहिणी प्रोक्ता अमृता स्थूलमांसला ॥ १६ ॥ पञ्चास्रा चाभया प्रोक्ता पूतना चतुरस्रका ॥ त्र्यस्रा तु चेतकी प्रोक्ता जीवन्ती दीर्घमांसला ॥ ॥ १७ ॥ विजया नीलवर्णा च पीता स्याद्रोहिणी भिषक् ॥ अमृता कृष्णवर्णा च किञ्चिच्छुभ्राभया तथा ॥ १८ ॥ सार्द्ध-

द्व्यङ्गुलमानेन अमृतां लक्षयेद् बुधः ॥ १९ ॥ पथ्या भवेत्पथ्यतमा नराणां रोगांश्च सर्वान्विनिहन्ति सद्यः॥आयुःप्रदा तुष्टिमती बमेधावर्णौजतेजःस्मृतिमातनोति ॥ २० ॥ उन्मूलिनी पित्तकफानिलानां सन्मीलिनी बुद्धिबलेन्द्रियाणाम्॥ विस्रंसिनी मूत्रशकृन्मलानां हरीतकी रोगहरा नराणाम् ॥ २१ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे कल्पस्थाने हरीतकीकल्पोनाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

आत्रेयजी कहते हैं–कल्पोंमें हरडै श्रेष्ठ है तिसके गुण औगुणोंको सुन ॥ ४ ॥स्वर्गमें स्थितहुए इंद्रके अमृत पीवतेहुए पृथ्वीमें अमृतकी बिंदु गिरती भई तिन्होंसे हरडै उत्पन्न होती भई ॥ ५ ॥ यह पांच रसोंसे संयुक्त है और एक रससे रहित है कसैली, खट्टी, चर्चरी, कडुई और मधुर रसवाली कही है नमकके रससे वर्जित है तिसके जुदे २ लक्षणोंको सुन ॥ ६ ॥ इसकी त्वचा चर्चरी है और इसका मेद कसैलाहै मेदके भीतर खट्टापन है अस्थि मधुर है और भीतरसे कडुई है ऐसे पांच रसोंसे संयुक्त है ॥ ७ ॥ यह खट्टापनसे वातको नाशती है और मीठी तथा कडवेपनसे पित्तको नाशती है और चर्चरे तथा कसैलेपनसे कफको नाशती है ऐसे त्रिदोषको नाशनेवाली हरडै है ॥ ८ ॥ देहधारियोंको हरडै हित है और यह माताकी तरह हित करनेवाली है किसी समयमें माता तो कुपितभी होजाती है परंतु हरडै कुपित नहीं होती है ॥ ९ ॥ हे पंडितजन ! तिसकी उत्पत्ति और नामोंको कहते हैं सुन ॥ ॥१०॥ विजया १ रोहिणी २ पूतना ३ अमृता ४ चेतकी ५ अभया ६ जीवंती ७ ऐसे सातप्रकारकी है ॥ ११ ॥ विजया तो विंध्याचलमें उत्पन्नहुई है और अभया हिमाचलमें हुई है, रोहिणी वैदिश नगरमें उत्पन्न हुई, पूतना मगध देशमें उत्पन्न हुई है ॥ १२ ॥ जीवंती हरडै सुराष्ट्रानदीपै हुई है, चम्पानदीपै चेतकी हुई है, अमृता हरडै सरयू नदीके तीरपै उत्पन्न भई है ॥ १३ ॥ नेत्ररोगमें अभया और शिरोरोगमें कालिका हरडै श्रेष्ठ हैं और संपूर्ण रोगमें विजया और क्षतरोगमें रोहिणी हरडै हित हैं ॥ १४ ॥ पूतना और अमृता हरडै लेपमें हित कही हैं जीवंती हरडै सब योगोंमें युक्त करनी चाहिये जीवंती हरडैको चूर्णके योगमें प्रयुक्त करै ॥ १५ ॥ और बालकोंके वास्ते विजया हरडै श्रेष्ठ कही हैं रोहिणी हरडै तिकूटी कही हैं और अमृता हरडै स्थूल मांस वाली होती हैं ॥१६॥ अभया पांच कूटोंवाली और पूतना चौकूटी कही है और चेतकी तीन कूटोंवाली कही है और जीवंती दीर्घ मांस वाली कही है ॥ १७ ॥ और विजया नीलवर्णवाली कही है और हे वैद्य ! रोहिणी पीला वर्णवाली कही है अमृता कालेवर्ण कही है और अभया किंचित् सफेदवर्णवाली कही है ॥ ॥ १८ ॥ और जो अढाई अंगुल प्रमाणकी हो उसको बुद्धिमान् वैद्य अमृता जाने ॥ १९ ॥

पथ्या अर्थात् हरडै मनुष्योंको अत्यंत पथ्य है सम्पूर्ण रोगोंको तत्काल नाशती है आयुको देने-वाली है तुष्टी, अत्यंत मेधा, वर्ण, पराक्रम, तेज, स्मृति इन्होंको बढानेवाली है ॥ २० ॥ पित्त कफ वात इन्होंको समान करनेवाली है बुद्धि बल इंद्रिय इन्होंको तुष्ट करनेवाली है मूत्र, विष्ठा, मल इन्होंको बहाने वाली है हरडै मनुष्योंके रोगोंको हरने वाली कही है ॥ २१ ॥ इति वेरी-निवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां पञ्चमे कल्पस्थाने हरीतकीकल्पोनाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः २.

अथ त्रिफला क्वाथ ।

आत्रेय उवाच ॥ हरीतक्याश्चामलक्या विभीतकस्य च फलम् ॥ त्रिफलेत्युच्यते वैद्यैर्वक्ष्यामि भागनिर्णयम् ॥ १ ॥ एकभागो हरीतक्या द्वौभागौ च विभीतकम् ॥ आमलक्यास्त्रिभागश्च सहैकत्र प्रयोजयेत् ॥ २ ॥ त्रिफला कफपित्तघ्नी महाकुष्ठवि-नाशिनी ॥ आयुष्या दीपनी चैव चक्षुष्या व्रणशोधिनी ॥ ३ ॥ वर्णप्रदायिनी घृष्टा विषमज्वरनाशिनी ॥ दृष्टिप्रदा कण्डु-हरा वमिगुल्मार्शनाशिनी ॥ ४ ॥ सर्वरोगप्रशमनी मेधा स्मृतिकरी परा ॥ वक्ष्यामि योगयुक्तिश्च रोगे रोगे पृथक् पृथक् ॥ ५ ॥ वाते घृतगुडोपेता पित्ते समधुशर्करा ॥ श्लेष्मे त्रिकटु-कोपेता मेहे समधुवारिणा ॥ ६ ॥ कुष्ठे च घृतसंयुक्ता सैन्धवे-नाग्निमान्द्यहा ॥ चक्षुर्धावनके क्वाथो नेत्ररोगनिवारणः ॥ ७ ॥ घृतेन हरते कण्डूं मातुलुङ्गरसैर्वमिम् ॥ ८ ॥ गुल्मार्शो गुडसू-रणैः स स्यात्तु गुणकारकः ॥ क्षीरेण राजयक्ष्माणं पाण्डुरोगं गुडेन च ॥ ९ ॥ भृङ्गराजरसेनापि घृतेन सह योजितः ॥ वली-पलितहन्ता च तथा मेधाकरः स्मृतः ॥ १० ॥ सक्षीरः सगुडः क्वाथो विषमज्वरनाशनः ॥ सशर्कराघृतः क्वाथः सर्वजीर्णज्व-रापहः ॥ ११ ॥ एषा नराणां हितकारिणी च सर्वप्रयोगे त्रि-

फला स्मृता च ॥ सर्वामयानां शमनी च सद्यः सतेजकान्ति प्रतिमां करोति ॥ १२ ॥ शोफे तथा कामलपाण्डुरोगे तथोदरे मूत्रयुता हिता च ॥ हिताऽतिसारे ग्रहणीविकारे हिता च तक्रेण फलत्रिका च ॥ १३ ॥ क्षीणेन्द्रिये जीर्णज्वरे च यक्ष्मे क्षीरेण युक्ता त्रिफला हिता च ॥ स्यान्नेत्ररोगे च शिरोगदे च कुष्ठे च कण्डूव्रणपीडने च ॥ १४ ॥ मूत्रग्रहे कामलकेऽग्निमान्द्ये जलेन पीतस्त्रिफलादिकल्कः ॥ सशीतकाले गुडनागरेण सशर्करा क्षीरयुता तथोष्णे ॥ १५ ॥ वर्षासु शुण्ठीसहिता फलत्रिका फलत्रिका सर्वरुजाहरा स्यात् ॥ १६ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे कल्पस्थाने त्रिफलाक्राथो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—हरडै, आंवला, बहेडा इन्होंके फलको वैद्यजन त्रिफला कहते हैं अब इन्होंके भागका निर्णय करते हैं ॥ १ ॥ हरडै १ भाग, बहेडा २ भाग, आंवला ३ तीन भाग इस प्रकार इन्होंको एक जगह मिलावे ॥ २ ॥ यह त्रिफला कफपित्तको नाशता है महाकुष्ठको नाशता है आयुमें हित है दीपन है नेत्रोंमें हित है व्रणको शोधन करनेवाला है ॥ ३ ॥ घिसके लगानेसे व्रणको भरनेवाला है ज्वरको नाशता है दृष्टिको देनेवाला है खाजिको हरता है वमन, गुल्म, बवासीर इन्होंको नाशता है ॥ ४ ॥ संपूर्ण रोगोंको शांत करता है और मेधा, स्मृति इन्होंको करनेवाला है अब रोग २ में जुदी २ योगकी युक्तिको कहैंगे ॥ ५ ॥ वातमें घृत और गुडसे संयुक्त त्रिफला देना चाहिये पित्तमें शहद और खांडके संग कफमें सूंठ, मिरच, पीपल इन्होंके संग देना चाहिये प्रमेह रोगमें शहत और जलके संग देवै ॥ ६ ॥ कुष्ठ रोगमें घृतके संग मन्दाग्निमें सेंधानमकके संग देना चाहिये और इसके काथसे नेत्रोंको धोनेसे नेत्रोंके रोगोंका नाश होता है ॥ ७ ॥ और घृतके संग सेवनेसे खाजिका नाश होता है विजौराके रसकेसंग देनेसे बमनका नाश होता है ॥ ८ ॥ गुड और नमीकंदके संग देनेसे गुल्म, बवासीर इन्होंका नाश होता है दूधके संग देनेसे राजयक्ष्मारोगका नाश होता है गुडके संग देनेसे पांडुरोगका नाश होता है ॥ ९ ॥ और भंगराके रस तथा घृतके संग देनेसे वलीपलित अर्थात् बुढापेके सफेद बालआदिरोग इन्होंका नाश होता है और बुद्धि बढती है ॥ १० ॥ और गुड मिला दूधका काथ बना तिसके संग देनेसे विषमज्वरका नाश होता है और खांड तथा घृतके संग काथ बनाके देनेसे संपूर्ण जीर्णज्वरोंका नाश होता है ॥ ११ ॥ यह त्रिफला मनुष्योंको हित करनेवाली है और सब प्रयोगोंमें

त्रिफला कहाता है तत्काल सब रोगोंको शांत करनेवाला कहा है और तेज कांति सुंदर मूर्ति इन्होंको करनेवाला कहा है ॥ १२ ॥ और शोजा, कामला, पांडुरोग, उदररोग इन्होंमें गोमूत्रके संग त्रिफला देना हित है और अतिसार संग्रहणी इनरोगोंमें तक्रके संग त्रिफला देना हित है ॥ १३ ॥ और क्षीण इंद्रियवाला, जीर्णज्वर, राजयक्ष्मा, इन्होंमें दूधके संग त्रिफला देना हित है और नेत्ररोग, शिरोरोग, कुष्ठ, खाजी, व्रणकी पीडा ॥ १४ ॥ मूत्रग्रह, कामला, मंदाग्नि इनरोगोंमें जलके संग त्रिफलाका कल्क बनाके देना हित है और ठंढककी समयमें गुड सूंठके संग और गरमीकें समय खांड दूध इन्होंके संग देना हित है ॥ १५ ॥ और वर्षासमयमें सूंठके संग त्रिफला दीहुई हित है यह त्रिफला सबरोगोंको नाशनेवाली है ॥ १६ ॥ इति वेरीनिवासिबुध० हारीतसंहिताभाषाटीकायां पंचमें कल्पस्थाने त्रिफलाकाथोनाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

अथ हरडोंके कल्प और वर्णोंका भेद।

आत्रेय उवाच ॥ अभया द्व्यङ्गुला प्रोक्ता पूतना चतुरङ्गुला ॥ सार्द्धाङ्गुला च जीवन्ती चेतकी स्यात्षडङ्गुला ॥ १ ॥ चेतकी द्विविधा प्रोक्ता आकारवर्णतस्तथा ॥ षडङ्गुला सिता प्रोक्ता शुक्ला चैकाङ्गुला स्मृता ॥ २ ॥ श्रेष्ठा कृष्णा समाख्याता रेचनार्थे जिगीषुणा ॥ ३ ॥ चेतकी वृक्षशाखायां यावत्तिष्ठति तां पुनः ॥ भिन्दन्ति पशुपक्ष्याद्या नराणां कोऽत्र विस्मयः ॥ ४ ॥ चेतकीं यावद्विधृत्य हस्ते तिष्ठति मानवः ॥ तावद्भिनत्ति रोगांस्तु प्रभावान्नात्र संशयः ॥ ५ ॥ नृपाणां सुकुमाराणां तथा भेषजविद्विषाम् ॥ कृशानां हितमेवं स्यात्सुखोपायविरेचनम् ॥ ६ ॥ हरीतकी दरिद्राणामनपायरसायनम् ॥ पथ्यस्यान्तेऽथवा चादौ भक्षेच्चामयनाशिनीम् ॥ ७ ॥ तृषातुराणां हृदि कण्ठशोषे हनुग्रहे चापि गलग्रहे च ॥ नवज्वरे क्षीणबलेन्द्रियाणां न गर्भिणीनां कथिता प्रशस्ता ॥ ८ ॥ हरीतकी वा गुडनागरेण सिन्धूत्थयुक्ता कथिता प्रयोगे ॥ आमाशयस्था जठरामयञ्च जघान

चेन्द्रायुधवद्वमाणाम् ॥ ९ ॥ सशारदे वा सितया प्रयुक्ता शुण्ठी गुडेनापि हिमे प्रयोज्या ॥ ससैन्धवपिप्पली शैशिरे च हितो वसन्ते त्रिकटुर्गुडेन ॥ १० ॥ ग्रीष्मे सितानागरकैश्च पथ्या वर्षासु सिन्धूत्थयुता हिता च ॥ निहन्ति सर्वामयमेव सद्यो घृतेन पथ्या विहिता हरीतकी ॥ ११ ॥ घृतेन देयं मनुजाय कल्कं आमानिलं हन्ति नरस्य कोष्ठे ॥ दुष्टान्विकारान्हरतीति सद्य एरण्डतैलेन विपाच्य पथ्यम् ॥ १२ ॥ खादेत्तदेवानुपिबेच्च तैलं सशूलविष्टम्भकृतान्विकारान् ॥ सर्वाञ्जयेत्पित्तकफानिलोत्थान्मूत्रे स्थितं सप्तदिनं महिष्याः ॥ १३ ॥ पञ्चाभया मूत्रपलानि पञ्च क्षीरेण सप्ताहमतिप्रशस्तम् ॥ क्षीरोदशोषी परतस्तथान्ये एष त्रिसप्तादपरः प्रयोगः ॥ १४ ॥ वातोदरं शीघ्रमिदं निहन्यात्प्लीहानमानाहमुरोग्रहञ्च ॥ सपाण्डुरोगञ्च क्रिमींश्च हन्ति हरीतकी धान्यतुषाम्बुसिद्धा ॥ १५ ॥ सापिप्पलीसैन्धवयुक्तचूर्णं सोद्गारधूपं भृशमप्यजीर्णम् ॥ निहन्ति सद्यो जनयेत्क्षुधाञ्च कल्कञ्च तस्याः सह नागरेण ॥ १६ ॥ ज्वरं जहाति सह सैन्धवेन दध्ना च तक्रेण हितातिसारे ॥ सराजयक्ष्मे मधुनावलिह्यान्मूत्रेण शोफोदरनाशहेतोः ॥ १७ ॥ सपाण्डुरोगे समशर्करायाः शोषे सदाहे सह मातुलुङ्ग्या ॥ रसेन युक्ता विहितातिपथ्या कल्कं समाप्तं कथितं मुनीन्द्रैः ॥ १८ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे कल्पस्थाने हरीतकीकल्पवर्णनभेदोनाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—अभया दो अंगुल प्रमाणकी होती है पूतना चार अंगुल प्रमाण की होती है जीवंती डेढ अंगुल प्रमाणकी होती है चेतकी छह अंगुल प्रमाणकी होती है ॥ १ ॥ तहां आकारसे और वर्णसे चेतकी हरडै दो प्रकारकी कही हैं तहां छह अंगुल प्रमाणवाली काली कही है और एक अंगल प्रमाणवाली सफेद कही है ॥ २ ॥ तहां जुलाबकेवास्ते काली चेतकी हरडै श्रेष्ठ कही हैं ॥ ३ ॥ और जबतक चेतकी हरडैके वृक्षके नीचे

स्थित रहै तबतक पशु पक्षीआदिकभी भेद न होते हैं दस्त लगजाते हैं मनुष्योंकी तो कौन बात है ॥ ४ ॥ और मनुष्य जबतक चेतकी हरडैको हाथमें रक्खै तबतक उसके दस्त लगे रहते हैं और रोगोंका नाश होजाता है ॥ ५ ॥ और राजे तथा सुंदर कोमल शरीरवाले जन अथवा जिन्होंसे औषध नहीं लीजावे ऐसे मनुष्य कृश, ऐसे मनुष्योंके सुखके उपायके वास्ते यही जुलाब दिवानी कही है ॥ ६ ॥ दरिद्री पुरुषोंको द्रव्य खरचकरे विनाही यह हरडै रसायन रूप औषध कही है पथ्य भोजनके अंतमें अथवा आदिमें भक्षणकीहुई यह हरडै रोगोंको नाशनेवाली कही है ॥ ७ ॥ और तृषासे पीडित पुरुष, हृदय, कंठ, इन्होंमें शोष-वाले हनुग्रह तथा गलग्रहरोगवाले नवीनज्वर क्षीणबलइंद्रियवाले पुरुष गर्भिणी स्त्री इन्होंको यह हरडै देनी पथ्य नहीं कही है ॥ ८ ॥ और गुड, सूंठ, सेंधानमक, इन्होंके संग हरडैको देवे तो आमाशयमें स्थित होनेवाले उदररोगोंका ऐसे नाश होता है कि जैसे बिजलीसे वृक्षोंका नाश होजाता है ॥ ९ ॥ शरद ऋतुमें मिश्रीके संग देनी और हिमऋतुमें गुड, सूंठ, इन्होंके संग देनी शिशिरऋतुमें सेंधानमक, पीपली, इन्होंके संग देनी और वसंतऋतुमें सूंठ, मिरच, पीपली, गुड, इन्होंके संग देनी हित है ॥ १० ॥ और ग्रीष्मऋतुमें मिसरी, सूंठ इन्होंके संग देनी पथ्य है और वर्षासमयमें सेंधानमकके संग देनी हित कही है और घृतके संग हुई यह हरडै सब रोगोंको नाशती है ॥ ११ ॥ और इसका कल्क बना घृतके संग देनेसे मनुष्यके कोष्ठकी आमवातका नाश होता है और दुष्ट विकारोंको तात्काल नाशती है और अरंडीके तैलमें पकाके देना पथ्य है ॥ १२ ॥ और त्रिफलाको खाके तिसपै यही तैल पीवे तो शूल मलका बंधाके किये हुए विकार इन्होंका नाश होता है और पित्त, कफ, वात, इनसे उपजे सब विकारोंके नाशकेवास्ते, महिषीके मूत्रमें सात दिनतक स्थापित करी हरडेके खानेको खावे ॥ १३ ॥ और पांच हरडै वीस तोले गोमूत्रमें और दूधमें स्थापि-तकर रक्खै सात दिनतक स्थापित करना श्रेष्ठ कहा है और कईक वैद्य ऐसे कहैं कि सात दिन पीछे दूध और गोमूत्र सूख जावे तबतक स्थापित रक्खै और कंईक ऐसे कहते हैं कि, इकीस दिन पीछेतक स्थापित रक्खै ॥ १४ ॥ इस प्रकारसे सिद्धकीहुई यह हरडै वातोदर रोग तिल्ली अफारा छातीको ग्रहण करनेवाला रोग इन रोगोंको नाशती है और धान्यकी कांजीमें सिद्धकीहुई हरडै पांडुरोग, क्रिमिरोग इन्होंका नाश करती है ॥ १५ ॥ पीपली, सेंधानमक इन्होंके चूर्णके संग दीहुई हरडै अठकारका धूवां अत्यंत अजीर्ण इन्होंका नाश करती है और तत्काल क्षुधाको उत्पन्न करती है और सूंठके संग इसका कल्क देनेसे॥१६॥ तथा सेंधानमकके संग देनेसे ज्वरको नाशती है और दही तथा तक्रके संग देनेसे अतिसारको नाशती है राजयक्ष्मा रोगमें शहदके संग चाटै और शोजा उदररोग इन्होंके नाशकेवास्ते गोमूत्रके संग देवै ॥ १७ ॥ पांडुरोगमें बराबरकी खांडकेसंग और दाह, शोष इन्होंमें विजौराके संग देनी हित कही है इस प्रकारसे मुनियोंसे कहाहुआ यह हरडैका कल्क समाप्त होचुका है १८ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनु० हारीतसंहिताभाषाटीकायां पंचमे कल्प-स्थाने हरीतकीकल्पवर्णभेदोनाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ४.

अथ रसोनकल्पः ।

अमृतमथने जातः सुरासुरग्रहो महान् ॥ जहार वैनतेयश्च चञ्चुना त्रिदिवं गतः ॥ १ ॥ संग्रामश्रमसंप्राप्ते श्रमवेगप्रधाविते॥ आरूढे वैक्कवं प्राप्ते च्युताः ह्यमृतबिन्दवः ॥ २ ॥ सकृत्संदूषिते देहे पतितास्तत्र संस्थिताः ॥ तस्मात्कालवशाज्जातं दुर्भिक्षं द्वादशाब्दिकम् ॥ ३ ॥ विशुष्काः कानने सर्वा वृक्षकण्टप्रतानिकाः॥ तस्माच्च ऋषयः सर्वे प्रकृष्टं गहनं गताः ॥ ४ ॥ तेषां मध्ये जराग्रस्तो गतिहीनोऽतिजर्जरः ॥ सयष्टिः सरणिक्षुण्णः शीर्णदन्तावलीमुखः ॥ ५ ॥ सव्यक्तस्थैः क्षुधापन्नैर्ऋषिभिस्तत्रविश्रुतः ॥ सोऽपि क्षुधातुरः सर्वां पर्य्यटत्पुर्वरां महीम् ॥ ६ ॥ कुत्रचित् पुण्ययोगेन दृष्टवान्विटपान् शुभान् ॥ नीलशैवालसंकाशान् शाद्वलान्बहुलान् भुवि ॥ ७ ॥ क्षुधासंपीडनेनापि भुक्तवान् सदलानपि ॥ ८ ॥ षण्मासानन्तरं शुष्कान् विटपांस्तदनन्तरम् ॥ भुक्तवान्कन्दकान् सोऽपि मासमेकं तथा ऋषिः ॥ ९ ॥ पश्चात् सुभिक्षे सञ्जाते सर्वे चैकत्र संस्थिताः ॥ सोऽपि वृद्धो युवा भूत्वा गतस्तत्र च यत्र ते ॥ १० ॥ तं दृष्ट्वा विस्मयापन्नाः पप्रच्छुः किं कृतं त्वया ॥ नोक्तवान् सतुकिञ्चिच्च रुषा तैः शापितस्ततः॥ ११॥ यत्त्वया खादितं द्रव्यं तदभक्ष्यं द्विजातिभिः॥ दुर्गन्धमपि चित्रञ्च तस्माज्जातं रसोनकम् ॥ १२ ॥ अथवीर्य्यञ्च वक्ष्यामि रसोनस्य महामते ॥ रसैः पञ्चभिः संयुक्तो रसोनस्तेन वर्जितः ॥ १३ ॥

अमृतमथनेके समय देवताओंका और दैत्योंका महान् युद्ध होता भया तब गरुड अमृतको हरके चोंचमें ग्रहणकर स्वर्गमें जातेभये ॥ १ ॥ फिर युद्धकी हारके श्रमसे और मार्गके खेद होनेसे युक्त होगया तब बैठ गया तहां अमृतकी बिंदु गिरती भई वे बूंद ॥ २ ॥ विष्ठासे दूषित हुए किसीके शरीरपै गिरके तहांही स्थिती होती भई पीछे कालके वशसे

तिस देशमें बारह वर्षतक दुर्भिक्ष काल पडताभया ॥ ३ ॥ तिस वनमें सब वेल वृक्ष पत्ते सूखते भये तिस्से सब ऋषि दूर गह्वरवनमें जाते भये ॥ ४ ॥ तिन ऋषियोंमें बुढापेसे ग्रसितहुआ गमन करनेमें समर्थ नहीं, जर्जर अंगवाला यष्टिकाको पकडे हुए क्षुधासे युक्त-हुआ, दाँत हिलते हुए ऐसा एक ऋषि था ॥ ५ ॥ सो क्षुधामें युक्त हुए कहीं एकांतमें बेमालूम हुए ऐसे अन्यऋषियोंसे विछडताभया पीछे वहभी क्षुधासे युक्तहुआ सब पृथ्वीपै विचरताभया ॥ ६ ॥ पीछे पुण्यके योगसे कहींक सुंदर वृक्षोंको देखताभया और नीली सिवालाके समान कांतिवाले बहुतसे घासोंको पृथ्वीपै देखता भया ॥ ७ ॥ पीछे क्षुधासे पीडित होनेसे तिन वृक्षोंके पत्तोंको खाता भया ॥ ८ ॥ फिर छह महीने पीछे सूखे वृक्षोंको खाताभया पीछे वह ऋषि एक महीनातक कंद अर्थात् लसुनकी जडोंको खाते भये तहाँ लहसन कंदभी खाया, फिर सुभिक्ष संवत् होगया ॥ ९ ॥ तब सब ऋषि एक जगह इकट्ठे हुए और वह वृद्ध ऋषिभी जहां वेथे उसी जगह जवान होकें आया ॥ १० ॥ तब तिसको देख आश्चर्यमें युक्तहो पूछते भये कि तैंने क्या किया फिर वह कुछभी नहीं बोला तब उन्होंने क्रोध होके शाप देदिया ॥ ११ ॥ कि जो द्रव्य तैंने खाया है वह द्विजाति ब्राह्मणआदि जातियोंको भक्षण करनेको योग्य नहीं है इसवास्ते दुर्गंधवाला और चित्र ऐसा लहसन होगया ॥ १२ ॥ हे महामते ! अब लहसनके गुणोंको कहैं गे यह पांच रसोंसे युक्त है और एक रससे वर्जित है इसवास्ते इसको रसोन कहते हैं ॥ १३ ॥

अथ लहसनके गुण।

कट्वम्लवीर्य्यो लशुनो हितश्च स्निग्धो गुरुः स्वादुरसोऽथ बल्यः॥ वृद्धस्य मेधास्वरवर्णचक्षुर्भग्नास्थिसन्धानकरः सुतीक्ष्णः ॥१४॥ हृद्रोगजीर्णज्वरकुक्षिशूलप्रमेहहिक्कारुचिगुल्मशोफान् ॥ दुर्नाम-कुष्ठानलश्यावजं तु समीरणं श्वासकफान् निहन्ति ॥ १५ ॥ तेन रसोनकं नाम विख्यातं भुवनत्रये ॥ कुक्कुटाण्डनिभं ग्रीष्मे शीर्णपर्णं समुद्धरेत् ॥ १६ ॥ बद्ध्वा पुटे सुनिर्गुप्तं धारयेत्तं महा-मते ॥ वर्षासु शिशिरे चैव कारयेन्मात्रया युतम् ॥ १७ ॥ रामठं जीरके द्वे च अजमोदा कटुत्रयम् ॥ घृतसौवर्चलोपेतं वातरोगे विशेषतः॥१८॥मातुलुङ्गरसेनापि शूलानाहे प्रकीर्त्तितः॥ दध्ना वातादिशमनो रसोनो विहितो बुधैः ॥ १९ ॥ जाङ्गलादि रसान्येव भोजनार्थं प्रदापयेत् ॥ २० ॥

लहसन चर्चरा और खट्टा है, हित है, स्निग्ध है, भारा है, स्वादु रसवाला है, बलदायक है, वृद्ध पुरुषकी वृद्धि, स्वर, वर्ण, नेत्र, भग्नअस्थि इन्होंको जोडनेवाला है सुंदर तीक्ष्ण है १४ और हृदयरोग, जीर्णज्वर, कुक्षिशूलं, प्रमेह, हिचकी, अरुचि, गुल्म, शोजा, बवासीर, कुष्ठ, वायुसे उपजे हुए क्रिमि, वात, श्वास, कफ इन्होंको नाशता है ॥ १५ ॥ पांच रसोंवाला होनेसे यह रसोन नामसे प्रसिद्ध है यह ग्रीष्मऋतुमें मुरगेके अंडेकेसमान होता है शिथिल२ पत्ते होते हैं ॥ १६ ॥ बुद्धिमान् जन इसको पुटविधिसे बांधके गुप्त धारण रक्खै और वर्षाऋतुमें तथा ग्रीष्मऋतुमें इसको मात्रासे युक्तकरै ॥१७॥ और हिंग दोनों जीरे, अजमोद, सूंठ, मिरच, पीपल, घृत, कालानमक इन्होंसे युक्तकर वातरोगमें देना श्रेष्ठ है ॥ १८ ॥और विजौराके रसके संग देनेसे शूल अफारा इन्होंका नाश होता ह और दहीके संग दिया हुआ लहसन वातआदि दोषोंको शांत करता है ॥ १९ ॥ और इसपर जांगल देशके जीवोंका रस भोजनमें हित कहा है ॥ २० ॥

अथ पेयरसोनविधि ।

निष्पीड्य च रसं तस्य गृहीत्वा मुनिसत्तम ॥ दुग्धेन शर्करोपेतं पित्तरोगे पिबेन्नरः ॥ २१ ॥ राजयक्ष्मक्षये पाण्डौ कामलायां हलीमके ॥ शिरोरुजासु सर्वासु रक्तपित्तभ्रमेषु च ॥ २२ ॥ शोष मूर्च्छापस्मारे च हितं चैतद्रसायनम् ॥ २३ ॥

हे उत्तम मुनि ! लहसनके रसको निचोड तिसमें दूध और खांड मिला पीवेसे पित्तरोग शांत होता है ॥ २१ ॥ और राजयक्ष्मा, क्षयरोग, पांडुरोग, हलीमक, संपूर्ण शिरके रोग और रक्तपित्तसे उपजे भ्रम ॥ २२ ॥ शोष, मूर्च्छा, मृगीरोग इन्होंमें हित है और रसायन है ॥ २३ ॥

परिपिष्य रसोनश्च तत्समा त्रिवृता मता ॥ गुडेनैरण्डतैलेन शीतं दत्त्वा च लेहकम् ॥ २४ ॥ भवत्येतत्समादत्त्य पायये-न्मूत्ररोगिणाम् ॥ शोफे गुल्मे वाऽमवाते हितमेतत्तदार्शसाम् ॥ ॥ २५॥ हरिणशशकलावातित्तिराणाञ्च मांसं कर्करमपि मयूरा-दिसाराद्यजाद्यम् ॥ घृतमधुररसानां शालिगोधूममासां हितमिति मनुजानां गुग्गुले वा रसोने ॥२६॥ व्यायामयानातपमैथुनानि क्रोधाध्वजीर्णान्परिवर्जयेच्च ॥ विवर्जयेद्वापि तथातिसारे महामये पाण्डुगुदामये च ॥२७॥ न गर्भिणीनां न च बालकानां भ्रमा-

तुरे वा न मदातुरे च ॥ न रक्तपित्ते न च कुष्ठिनेऽपि न रक्तवाते न विसर्पिके च ॥ २८ ॥ दत्तो रसोनो यदि मूढबुद्ध्या विरेचनं वा वमनं विधेयम् ॥ न वान्यथा कुष्ठमथापि पाण्डुं त्वद्दोषरोषं कुरुते नरस्य ॥ सुयोगयुक्त्याऽमृतवन्नराणां वीर्य्येन्द्रियं पुष्टिबलं तनोति ॥ २९ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे कल्पस्थाने रसोनकल्पो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

लहसनको पीस तिसके समान निशोत मिला और गुड अरंडीका तैल, दालचिनी इन्होंका अवलेह बनादेनेसे ॥ २४ ॥ मूत्ररोगवाले पुरुषोंके सुख होता है और शोजा, गुल्म, आमवात, बवासीर इन रोगवालोंको हित है ॥ २५ ॥ और हिरन, शशा, लावा, तीतर, ककेरा, मोर, सारस, बकरा इत्यादिकोंका मांस, घृत, मधुररस, शालिसंज्ञक चावल, गेहूं इन्होंका भोजन करना गूगल तथा लहसन खानेके पीछे हित कहाहै ॥ २६ ॥ और कसरत, गमन करना, घामसेवना, मैथुन करना, क्रोध, मार्गका श्रम इन्होंको वर्ज देवै और अतिसार, प्रमेह, पांडुरोग, गुदाके रोग, इन रोगोंमें लहसन नहीं देना ॥२७॥ और गर्भिणी स्त्री, बालक, श्रमातुर पुरुष, मदातुर, रक्तपित्तवाले, कुष्ठवाले, रक्तवातवाले, विसर्प रोगवाले इन मनुष्योंकोभी लहसन नहीं देवै ॥ २८ ॥ और जो यदि मूर्खपनेसे दियाजावे तो जुलाब दिवाना अथवा वमन कराना चाहिये नहीं तो मनुष्यके शरीरमें कुष्ठ, पांडुरोग, त्वग्दोष, इन्होंको करदेता है और सुंदर योगयुक्तिसे दियाहुआ लहसन मनुष्योंको अमृतकेसमान है वीर्य, इंद्रिय, पुष्टि, बल इन्होंको बढाता है ॥ २९ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां कल्पस्थाने रसोनकल्पोनाम चतुर्थोऽध्यायः ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः ५.

अथ गुग्गुलकल्पः ।

हारीत उवाच ॥ भगवन् गुग्गुलो नाम योगवीर्य्यमथोगुणम् ॥ वक्तुमर्हसि रोगेषु येषु वापि प्रशस्यते ॥ १ ॥ एवमुक्तस्तु शिष्येण प्रत्युवाच महातपाः ॥ २ ॥

हारीत पूछता है-हे भगवन्! गुग्गुलनामक औषधके योग वीर्य और गुणको आप कहो जिन २ रोगोंमें श्रेष्ठ कहा है सो कहो ॥ १ ॥ ऐसे शिष्यसे पूछे हुए महान् तपवाले आत्रेयजी प्रतिवचन कहते हैं ॥ २ ॥

आत्रेय उवाच ॥ मरुभूमौ प्रजायन्ते प्रायशः पुरपादपाः॥ भानोर्मयूखैः सततं ग्रीष्मे मुञ्चन्ति गुग्गुलम् ॥ ३ ॥ हिमाद्रितो वा हेमन्ते विधिवत्तं समाहरेत् ॥ जातरूपनिभं शुभ्रं पद्मरागनिभं क्वचित् ॥ ४ ॥ क्वचिन्महिषनेत्राभं यक्षदैवतवल्लभम् ॥ विधानं तस्य विधिवन्निबोध गदतो मम ॥ ५ ॥ त्रिदोषशमनो वृष्यः स्निग्धो बृंहणदीपनः ॥ गुग्गुलः कटुकः पाके वर्णप्रबलवर्द्धनः ॥ ॥ ६ ॥ आयुष्यः श्रीकरः पुत्रस्मृतिमेधाविवर्द्धनः ॥ पापप्रशमनः श्रेष्ठः शुक्रार्त्तवकरः स्मृतः ॥ ७ ॥ वर्णगन्धरसोपेतो गुग्गुलो मात्रया युतः ॥ भेषजैः सह निष्क्वाथ्यो यथा व्याधिहरैः पृथक् ॥८॥ मात्रावशिष्टं तं दृष्ट्वा चालयेच्छुक्लवाससा ॥ मृन्मये हेमपात्रे च राजते स्फाटिकेऽपिवा ॥ ९ ॥ पुण्ये तिथौ शुभे भे च जीर्णाहारः क्षमान्वितः ॥ हुत्वाग्निं पर्य्युपासीत देवब्राह्मणभक्तितः ॥ १० ॥ प्रविश्य कुसुमाकीर्णे मन्दिरे च समाश्रिते ॥ रास्ना गुडूची चैरण्डो दशमूलं प्रसारिणी ॥ ११ ॥ क्वाथं तेषां यथायोग्यं यवान्या वातिके पिबेत् ॥ पृथक्क्वृतैर्जीवनीयैः पिबेत्पित्तामयार्दितः ॥ १२ ॥ वासाचन्दनह्रीबेरं मृद्वीका तिक्तरोहिणी ॥ खर्जूरश्च परूषश्च तथा जीवककर्षकौ ॥ सपित्तरोगे पानाय क्वाथः स्याद्गुग्गुलान्वितः ॥ १३ ॥ त्रिफलाव्योषगोमूत्र निम्बधान्यकपुष्करैः ॥ अमृता दीप्यकः क्वाथः पटोली च कफार्दितः ॥ १४ ॥ नाडीदुष्टव्रणग्रन्थिगण्डमालार्बुदान्वितः ॥ त्रिफलाक्वाथसंयुक्तं पिबेन्मेही व्रणी तथा ॥ १५ ॥ किराततिक्तामृतानिम्बवृषाव्याघ्रीदुरालभाः ॥ एषां क्वाथेन संयुक्तं गग्गुलं पाययेद्भिषक् ॥ १६ ॥ गुल्मे कासे क्षते श्वासे विद्रधावरुचौ व्रणे ॥ दार्वी पटोलक्वाथेन संयुक्तं गुग्गुलं पिबेत् ॥ १७ ॥ कण्डूपिटकशोफाद्ये पिबेद्वातकफापहम् ॥ पथ्या पुनर्नवा दार्वी गोमूत्रममृतं तथा ॥ १८ ॥ एषां क्वाथो हितः पाण्डौ शोथो

दराकिलासिनाम् ॥ भवेन्मात्रां पलं यावत्कर्षादारभ्य यत्नतः ॥ १९ ॥ जीर्णेऽश्नीयान्मुद्गयूषैर्रसैर्वा जाङ्गलैस्तथा ॥ पयसा षष्टिकान्नञ्च शालीनामोदनं मृदु ॥ २० ॥ दिनाः सप्त प्रथमा च मध्यमा द्विगुणाः स्मृताः ॥ त्रिगुणाः परमा मात्रा विज्ञेया योगचिन्तकैः ॥ २१ ॥ सेवते गुग्गुलं यो वै वर्षेणापि नरः क्रमात् ॥ स्थावराज्जङ्गमाच्चैव न स्यादस्य क्षतिर्विषात् ॥ २२ ॥ निर्मुक्तो वलितत्वचोपि पलितो वृद्धो युवा जायते मेधादृष्टिबलौजवीर्य्यमधिकं वृद्धत्वहीनो भवेत् ॥ गुल्माष्ठीलहृदामवातशमनः कुष्ठं प्रमेहाश्मरीं शूलानाहविसर्परक्तशमनो भूतोपसृष्टे हितः ॥ २३ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे कल्पस्थाने गुग्गुलकल्पो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

आत्रेयजी कहते हैं–विशेष करिकै गूगलके वृक्ष मरुदेशमें होते हैं सो निरंतर सूर्यकी किरणोंसे ग्रीष्मऋतुमें गूगलको त्यागते हैं ॥ ३ ॥ और हिमाद्रिपर्वतमें गूगलवृक्षोंसे हेमंतऋतुमें गूगल निकसता है कहींक तो चांदीके समान सफेद होता है कहीं पद्मरागके समान होता है ॥ ४ ॥ कहींक भैंसाके नेत्रोंके समान वर्णवाला होता है वह यक्षदेवता इन्होंको प्रिय है सो तिसका विधान विधिसे कहतेहुए मुझसे सुन ॥ ५ ॥ यह त्रिदोषको शांत करनेवाला है वीर्यमें हित है स्निग्ध है धातुवोंको बढानेवाला है अग्निको दीप्त करनेवाला है और गूगल पाकमें चर्चरा है वर्ण बल इन्होंको बढानेवाला है ॥ ६ ॥ आयुमें हित है लक्ष्मी बढानेवाला है पुत्र, स्मृति, मेधा इन्होंको बढानेवाला है पापको शांत करनेवाला है श्रेष्ठ है पुरुषके वीर्य स्त्रीके आर्तव इन्होंको करनेवाला है॥७॥और वर्ण, गंध, रस इन्होंसे संयुक्त गूगलमात्रसे युक्त कियाहुआ और औषधोंकेसंग क्वाथ बनाके दियाहुआ व्याधिके अनुसार दियाहुआ सब व्याधियोंको नाशता है ॥ ८ ॥ मात्राके अनुसार तिस गूगलको देखके सफेद वस्त्रमांहके छान लेवे पीछे मट्टीके पात्रमें अथवा सुवर्णके पात्रमें तथा चांदीके पात्रमें तथा कांचके पात्रमें ॥ ९ ॥ शुभ तिथिमें और शुभ नक्षत्रमें घाल धरै पीछे भोजन जर जावे तब क्षमासे युक्तहुआ पुरुष सुंदर पुष्पोंसे आकीर्णहुए मंदिरमें जाके देवता ब्राह्मण इन्होंकी भक्ति और उपासना कर ॥ १० ॥ तिस गूगलको स्थापित करदेवै और वातसे उपजे रोगमें खायेहुए गूगलके ऊपर रास्ना, गिलोय, अरंड, दशमूल, खींप ॥ ११ ॥ अजवायन इन्होंका क्वाथ यथायोग्य पीवे और पित्तरोगसे पीडितहुए पुरुष पृथक् २ जीवनीयगणकी औषधोंमें पकायाहुआ क्वाथ पीवे ॥ १२ ॥ और वासा, चंदन, नेत्रवाला, मुनक्का, दाख, कुटकी,

खिजूर, फालसा, जीवक, ऋषभक इन्होंका क्वाथ गूगलमें युक्तकर पित्तके रोगोंमें पीना हित है ॥ १३ ॥ और त्रिफला, सूंठ, मिरच, पीपली, गोमूत्र, नींब, धनियां, पौहकरमूल, गिलोय, अजवायन, परवल, इन्होंके क्वाथकेसंग गूगल लेनी कफके रोगोंमें हित है ॥१४॥ दुष्टनाडीव्रण, ग्रंथिरोग, गंडमाला, अर्बुद, प्रमेह, व्रण, इन रोगोंवाला पुरुष त्रिफलाके क्वाथके संग पीवै ॥ १५ ॥ और चिरायता, गिलोय, नींब, वांसा, कटेहली, धमासा, इन्होंके क्वाथकेसंग गूगलको पीवै ॥ १६ ॥ तो गुल्म, खांसी, चोट, श्वास, विद्रधि, अरुचि, व्रण, इन्होंका नाशहोता हैं और दारुहलदी, परवल इन्होंके क्वाथकेसंग गूगलको पीवै ॥ १७ ॥ तो खाज, पिडिका, शोजा आदिक वात, कफ इन्होंका नाश होता है और हरडै, सांठी, दारुहलदी, गोमूत्र, दूध ॥ १८ ॥ इन्होंके क्वाथके संग गूगल पीनेसे पांडुरोग, शोजा, उदररोग, किलासकुष्ठ इन्होंका नाश होता है और एक तोलासे लेके चार तोला प्रमाणतक गूगलका खाना हित है ॥ १९ ॥ और जब खायाहुआ गूगल जर जावे तब मूंगोंका यूष और जांगलदेशके जीवोंके रसकेसंग भोजन करना हित है और दूधके संग सांठी चावल और शालीसंज्ञक चावलोंको खावै ॥ २० ॥ सात दिनतक गूगलका सेवन करना प्रथम मात्रा है और १४ दिनतक मध्यम मात्रा और इक्कीस दिनतक सेवन करनेको परममात्रा कहते हैं, ऐसे योग युक्तिको जाननेवालोंनें कहा है ॥ २१ ॥ और जो पुरुष क्रमसे वर्ष दिनतक गूगलको सेवता है तिसको स्थावर और जंगमविषोंकी मात्रा दुःख नहीं देती है ॥ २२ ॥ और जिसकी त्वचामें गुलझट गिर पडे बाल सफेद होजावे ऐसा वृद्ध पुरुषभी इसके खानेसे जवान होजाता है और बुद्धि, दृष्टि, बल, वीर्य इन्होंकी वृद्धि होती है वृद्धपनेके दुःखोंसे दूर होजाता है और गुल्म, अष्ठीला, हृदयका रोग, आमवात इन्होंको शांत करता है कुष्ठ, प्रमेह, पथरी, शूल, अफारा, विसर्प, रक्तदोष, भूतव्याधि इन्होंको शांत करता है ॥ २३ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां कल्पस्थाने गुग्गुलकल्पोनाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

इति पञ्चमं कल्पस्थानं समाप्तम् ॥

अथ षष्ठं शारीरस्थानम्।

प्रथमोऽध्यायः १.

अथ शारीराध्यायः।

आत्रेय उवाच ॥ पभूञ्चतात्मकं देहं पञ्चेन्द्रियसमायुतम् ॥
[illegible]धातुगुणोपेतं दशवातात्मकं विदुः ॥ १ ॥ जीवो मनस्त-

थाकाशस्तथैव त्रिगुणात्मिकः ॥ शुक्रशोणितसम्भूतं शरीरं दोषभाजनम् ॥ पञ्चभूतमयं चैतद्विज्ञेयं भिषजां वर ॥ २ ॥ चतुर्विधं शरीरं स्याद्बाल्यं प्रौढं प्रगल्भकम् ॥ स्थविरश्च तथा प्रोक्तं बाल्यमल्पशरीरकम् ॥ षोडशवार्षिकं यावद्बाल्यं तावत् प्रवर्त्तते ॥ ३ ॥ धातूनाञ्च बलं तत्र धातुमूलं शरीरकम् ॥ धातूनां पुष्टियोगेन शरीरश्चातिवर्द्धते ॥ ४ ॥ जीवितं धातुमूलं तु मृत्युर्धातुक्षयादपि ॥ हीनधातोश्च योगेन लभते स्वल्पजीवनम् ॥ ५ ॥ नरो धातुबलेनापि जीवितश्चात्र दृश्यते ॥ तस्माच्च मैथुनात्सम्यग्जायते गर्भसम्भवः ॥ ६ ॥ आदौ धातुबलं तस्मात्सत्त्वं तस्माद्रजो विदुः॥रजसा जायते कामः कामात्सुरत सङ्गमः ॥ ७ ॥ मासे मासे ऋतुः स्त्रीणां दृष्ट्वा ऋतुमतीस्त्रियः ॥ रजः सप्तदिनं यावदृतुश्च भिषजां वर ॥ ८ ॥ सप्तरात्राद्योनिशुद्धिस्तस्मादृतुमती भवेत्॥दृश्यते च रजः स्त्रीणां विना योगेन पुत्रक ॥ ९ ॥ दृश्यते न विना योगात्फलं स्त्रीणां तु पुत्रक ॥ संशयाद्विस्मितश्चित्ते हारीतः परिपृच्छति ॥ १० ॥

आत्रेयजी कहते हैं-पांच तत्त्वोंसे उत्पन्न होनेवाला पांच इंद्रिय और सात धातु तथा दश वायुओंसे युक्त ऐसे देहको कहते हैं ॥ १ ॥ और जीव, मन, आकाश ऐसे त्रिगुणात्मक शरीर है वीर्य और शोणितसे उपजे हुए शरीरको दोषका पात्र कहते हैं हे उत्तमवैद्य ! पांच तत्त्वोंसे उत्पन्न होनेवाला शरीर जान ॥ २ ॥ चार प्रकारका शरीर होता है बालक१, जवान २, प्रगल्भ ३, वृद्ध ४, ऐसे चार प्रकारका कहा है तहां बालक अल्प शरीर कहा है जब तक सोलह वर्षकाहो तब तक बालक अवस्था रहती है ॥ ३ ॥ तहां शरीरमें धातुओंका बल होता है और धातुओंकी जडवाला शरीर कहा है और धातुओंकी पुष्टीके योगसे शरीर अत्यंत बढता है ॥ ४ ॥ जीवना धातुओंकी जडसे है और धातुक्षय होनेसे मृत्यु होजाती है और हीन धातुके योगसे थोडा जीवना होता है ॥ ५ ॥ मनुष्यका जीवना धातुकेही बलसे दीखता है इस वास्ते मैथुनसे सम्यक् प्रकारसे गर्भ स्थित होता है ॥६॥ पहले धातुका बल, तिससे सत्त्वगुण, सत्त्वगुणसे रजोगुण, तिससे काम,कामसे मैथुनका संगम होता है ॥ ७ ॥ महीना २ के प्रति ऋतु अर्थात् स्त्री रजस्वला धर्ममें होती है हे उत्तमवैद्य ! सात दिनतक स्त्रियोंके रज रहता है तबतक ऋतुसमय कहाती है ॥ ८ ॥ और सात रात्री पीछे योनि-

की शुद्धि होजाती है तब वह ऋतुमती कहाती है हे पुत्र ! स्त्रियोंके रज विनाही योगसे होता है ॥ ९ ॥ और फल अर्थात् गर्भस्थिति संयोगके विना नहीं होती है ऐसे सुनके सन्देहमें युक्तहो हारीत फिर पूछता भया ॥ १० ॥

हारीत उवाच ॥ संयोगेन विना प्राज्ञ कथं गर्भो न जायते ॥ संयोगेन विना पुष्पं फलं वा न कथं भवेत् ॥ ११ ॥ वृक्षवन्न कथं स्त्रीणां फलोत्पत्तिः प्रदृश्यते ॥ एतत्पृष्टो महाचार्य्यः प्रोवाच ऋषिपुङ्गवः ॥ १२ ॥

हारीत पूँछने लगा-हे महाराज ! संयोगके विना स्त्रियोंके गर्भ क्यों नहीं ठहरताहै क्योंकि संयोगके विना पुष्प तो होगये फिर फल भी क्यों नहीं होता है ? ॥ ११ ॥ वृक्षकी तरह स्त्रियोंके भी गर्भकी उत्पत्ति क्यों नहीं होती ऐसे पूछाहुआ ऋषियोंमें उत्तम महान् आचार्य फिर बोलता भया ॥ १२ ॥

आत्रेय उवाच ॥ विरुद्धानाञ्च वल्लीनां स्थावराणाञ्च पुत्रक ॥ तत्र धातुसमं बीजं सह योगेन वर्त्तते ॥ १३ ॥ न भिन्नदृष्टिस्तस्येव दृश्यते शृणु पुत्रक ॥ स्थावराणाञ्च सर्वेषां शिवशक्तिमयं विदुः ॥ १४ ॥ निश्चलोऽपि शिवो ज्ञेयो व्याप्तिशक्तिर्महामते ॥ तत्र स्त्रीपुरुषगुणा वर्त्तते समयोगतः ॥ १५ ॥ आम्रपुष्पं फलं तद्वद्वीजं शुक्रमयं विदुः ॥ स्त्रीणां रजोमयं रेतो बीजाढ्यमिन्द्रियं नरे ॥ तस्मात्संयोगतः पुत्र जायते गर्भसम्भवः ॥ ॥ १६ ॥ प्रथमेऽहनि रेतश्च संयोगात्कललं च यत् ॥ जायते बुद्बुदाकारं शोणितश्च दशाहानि ॥ १७ ॥ घनं पञ्चदशाहे स्याद्विंशाहे मांसपिण्डकम् ॥ पञ्चविंशत्तमे प्राप्ते पञ्चभूतात्मसम्भवः ॥ १८ ॥ मासैकेन च पिण्डस्य पञ्चतत्त्वं प्रजायते ॥ पञ्चाशद्दिनसंप्राप्ते अङ्कुराणाञ्च सम्भवः ॥ १९ ॥ मासत्रये तु संप्राप्ते हस्तपादौ प्रवर्धते ॥ सार्द्धमासत्रये प्राप्ते शिरश्च सारवद्भवेत् ॥ २० ॥ चतुर्थके च लोमानां सम्भवश्चात्र दृश्यते ॥ पञ्चमे च सुजीवः स्यात्षष्ठे प्रस्फुरणं भवेत् ॥ २१ ॥ सप्तमे मासि जाते च अंग्नियोगः प्रवर्त्तते ॥ मासे तु नवमे प्राप्ते

जायते तस्य चेष्टितम् ॥ २२ ॥ जायते तस्य वैराग्यं गर्भवासस्य कारणात् ॥ दशमे च प्रसूयेत तथैकादशमेऽपिवा ॥ २३ ॥ अथ दोषबलेनापि गर्भो वापि प्रसूयते॥वातसंप्रेरिते गर्भे अपूर्णे दिवसैर्यदि ॥ २४ ॥ प्रसूयते वाप्यथ तद्गर्भे बालः प्रदृश्यते ॥ अथ वक्ष्यामि देहस्य वर्णज्ञानं महामते ॥ २५ ॥ नररेतोऽधिकत्वेन तथा शुक्राधिकेन तु ॥ हीनरसेन्द्रियैर्वापि जायते पुरुषाधिकः ॥ ॥ २६ ॥ स्त्रीरेतसोधिकत्वेन हीनशुक्रेन्द्रियादपि ॥ रजसोप्यधिकत्वेन स्त्रीसम्भूतिः प्रजायते ॥२७॥ सप्तधातुबलेनापि प्रकृत्या विकृतेः समे ॥ ऋतुव्याप्तरजःस्त्रीणां या या भवति भावना ॥ ॥ २८ ॥ सात्त्विकी राजसी वापि तामसी वापि सत्तम ॥ तादृशं जनयेद्बालं गुणैर्वा तादृशैरपि ॥ २९ ॥ या च भावयते चित्ते भ्रातरं पितरं नरम् ॥ येन वा तेन सदृशं सूयते सा भिषग्वर ॥ ३० ॥ वातेन श्यामः पुरुषो वातप्रकृतिसम्भवः ॥ पित्तेन गौरो भवति पित्तप्रकृतिवान्भवेत् ॥ ३१ ॥ श्लेष्मणा जायते स्निग्धः श्यामश्च लोमशस्तथा ॥ दीर्घशिरोरुहः स्थूलो दीर्घप्रकृतिसंयुतः ॥ ३२ ॥ वातरक्तेन कृष्णोऽपि पित्तरक्तेन पिङ्गलः ॥ पित्तवांश्च नरो रूक्षः स्निग्धः श्यामः कफासृजा ॥ ॥ ३३ ॥ भृङ्गराजाञ्जनाकारं वातेन दृष्टिमण्डलम् ॥ सूक्ष्मलोमा च कृष्णश्च रूक्षमूर्द्धजयान्वितः ॥ यस्य वातेन तं विद्धि नखसूक्ष्मासितच्छविम् ॥ ३४ ॥ पित्तेन पीतश्च भवेदलोमा पिङ्गेक्षणाभासपिशङ्गकेशः ॥ आलोमशः पीतनखप्रभः स्यात्क्षुधातुरो निरूष्मणां स दृप्तः ॥ ३५ ॥ सलोमशो दृतकठोरकेशः श्यामच्छविर्दृप्ततनुर्विशालः ॥ सुस्निग्धदन्तः सितनेत्ररम्यो नखच्छविः पाण्डुसुदीर्घनासः ॥ ३६ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—हे पुत्र ! विरुद्ध जो स्थावर वृक्ष वेल आदिक हैं तिन्होंको तो धातुके संग बीज योगसहित प्रवृत्त होता है ॥ १२ ॥ हे पुत्र ! तिन्होंके भिन्न दृष्टि नहीं है

सो सुन संपूर्ण स्थावर वृक्ष आदिकोंके शिव और शक्तिको जान ॥ १४ ॥ तहां निश्चल तो शिव है और शक्ति व्याप्त हो रही है तहां स्त्री पुरुषके गुणसंगही प्रवृत्त होते हैं ॥ १५ ॥ इसवास्ते आंबके पुष्प और फल संगमें ही प्रवृत्त होता है, और बीजको वीर्यकी जगह जान और स्त्रियोंके रजही वीर्य है, और पुरुषके वीर्य बीजरूप है हे पुत्र! इसवास्ते संयोगसे ही गर्भकी उत्पत्ति होती है ॥ १६ ॥ और पहले दिन वीर्यके संयोगसे बुलबुलाके आकार वीर्य स्थित होता है दशदिनमें रुधिर होजाता है ॥ १७ ॥ पंदरहदिनमें करडा होजाता है और बीसमें दिनमें मांसकी पिंडी होती है २५ दिनमें पांच तत्त्वोंका संभव होता है ॥ १८ ॥ एक महीना तिसके पांचों तत्त्व प्रकट होजाते हैं पंचाशदिनोंमें अंकुरोंकी उत्पत्ति होजाती है ॥ १९ ॥ तीन महीने होजावे तब हाथ पैर बढने लगजाते हैं साढेतीन महीनोंमें शिर प्रकट होजाता है ॥ २० ॥ चौथे महीनेमें रोम होते हैं और पांचवें महीनेमें जीव प्रकट होजाता है छठे महीनेमें फुरने लगजाता है ॥ २१ ॥ पीछे आठमें महीनेमें तिसके जठराग्निका योग होजाता है नवमें महीनेमें तिसको चेष्टा होती है ॥ २२ ॥ पीछे तिसको गर्भवासके कारणसे वैराग्य होता है अर्थात् संसारसे दूर होनेका ज्ञान होता है।फिर दशवे महीनेमें उत्पन्न होता ॥ २३ ॥ और वातआदिक दोषोंके बलसे गर्भ जनता है जो दशवां महीनातक दिन पूरे नहीं हुएहों ॥ २४ ॥ तो वह वातदोषसे प्रेरितहुआ गर्भ पहलेही उत्पन्न होजाता है हे महामते ! अब देहके वर्ण ज्ञानको कहते हैं ॥ २५ ॥ मनुष्यका वीर्य शुक्र अधिक होवे तो पुरुष जन्मै ॥ २६ ॥ और स्त्रीका वीर्य रज अधिक होवे और शुक्र हीन होवे तो कन्या जन्मै॥२७॥और सात धातुओंके बलसे प्रकृति और विकृति जब समान होजावे और रजस्वला होनेके स्त्रीके ऋतुसमयमें स्त्रियोंकी जैसी २ भावना हो ॥ २८ ॥ सत्त्वगुणी अथवा रजोगुणी तथा तामसी जैसी प्रकृतिहो तैसेही गुणोंसे युक्त तैसेही बालकको स्त्री जनती है ॥ २९ ॥ और जो स्त्री तिस समयमें चित्तमें भ्राता अथवा पिता अथवा अन्यपुरुष जिसका स्मरण करती है हे उत्तमवैद्य ! तिसीके सदृश पुत्रको जनती है ॥ ३० ॥ और वात दोषसे श्यामवर्णवाला पुरुष होता है वातकी प्रकृतिवाला होता है पित्तसे गौर वर्णवाला और पित्तकी प्रकृतिवाला होता है ॥ ३१ ॥ कफसे चिकना और श्वामवर्णवाला तथा रोमोंवाला होता है और बडे बाल हों स्थूलहो दीर्घ प्रकृतिसे युक्त होता है ॥ ३२ ॥ वात रक्तसे काले वर्णवाला और पित्तरक्तसे पिंगल वर्णवाला होता है और पित्तवाला मनुष्य रूषा होता है और कफरक्तसे स्निग्ध और कालेवर्णवाला होता है ॥ ३३ ॥ और वात दोषसे भौंरा तथा अंजनके आकारवाले दृष्टिमंडल होते हैं और जिसके सूक्ष्म रोमहों काले और रूषे बालहों और जिसके सूक्ष्म २ लाल नखहों उसकी वातकी प्रकृति जाननी ॥ ३४ ॥ पित्तसे पीले रोम होते हैं और पीले नेत्र तथा वांदरसरीखे केश होते हैं और रोम नख ये पीले होते हैं और क्षुधासे युक्त रहता है मुखसे भाफ निकसती रहती है और बहुतसे रोम

होते हैं गर्वीलाहोता है ॥ ३५॥ तथा कफसे कठोर बाल होते हैं श्याम कांति हो और गर्वीला तथा सुन्दर शरीर होता है चिकने दांतहों सुन्दर रमणीक सफेद नेत्र रहते हैं नख पीले रहते हैं और दीर्घ नासिका होती है ॥ ३६ ॥

अथ नपुंसक तथा अपत्ययुग्मका विचार ।

समवीर्य्यरजस्त्वेन नरः स्त्रीप्रकृतिर्भवेत् ॥ नपुंसकमिति ख्यातं न स्त्री न पुरुषो वदेत् ॥ ३७ ॥ दोषधातुविशेषेण सङ्गे सत्यङ्गसंभवः ॥ कृतभ्रान्ते च संभोगे द्वाभ्याञ्च द्रवते मनः ॥३८॥ दृश्यते यमलोत्पत्तिरन्यचित्तप्रियङ्करी ॥ ३९ ॥

और मैथुन करनेके समय पुरुषका वीर्य और स्त्रीका रज जो समान होवे तो नपुंसक जन्मता है वह न तो पुरुष नहीं स्त्री होता है ॥ ३७ ॥ और दोष धातु इन्होंका विशेष करिकै संग होनेसे जो अंगका संभव होता है और भ्रांत चित्त होके जो भोग करते हैं तहां दोष और धातु दोनुवोंसे मन द्रवता है ॥ ३८॥ तहां यमल अर्थात् जोडले बालक उत्पन्न होते हैं वे अन्योंके चित्तको प्रसन्न करनेवाले हैं ॥ ३९ ॥

अथ नपुंसकका विचार ।

समदोषबलेनापि प्रकृत्या विकृतेरपि ॥ शुक्रासृक्च भवेच्छयामा नपुंसकसमुद्भवः ॥ ४० ॥

रज वीर्य और प्रकृति विकृत्ति दोषधातु इनके समान होनेसे स्त्री जन्मे तो वहभी हीजडी होती है ॥ ४० ॥

गर्भकाविवर्णन ।

अथ बीजलेहिपञ्चभूताग्निना परिपक्कं कललं क्रियते ॥ सोऽपि चान्तःस्थो वायुर्बुद्बुदाकारो वाह्यवातेन संभृतो भवति॥स च कललं भूत्वा पञ्चभूताग्निना पिण्डं जनयति॥तच्च पिण्डं परिपाकंगतंघनसंघातश्च जातं व्यानवातेन पञ्चतत्त्वानि हस्तपादादीञ्छिरोवयवान्संजनयति अन्तःस्थो वायुरेकोऽपि नानास्थानं समाश्रित्य देहाकारंकरोति ॥ उदानो गलहृदयसंस्थितो देहमुखद्वारं प्रकाशयति ॥ अपानवायुरधःस्थोऽपानद्वारं विशोधयाति ॥ एते चान्तःस्थाः पृथक्पृथक् मार्गेच्छिद्रं कृत्वा निर्गच्छन्ति ॥ तान्येव नवद्वाराणि गुदयोनिकर्णनेत्रापानमेढ्रानि चैतानि द्वा-

राणि वातेन प्रभवन्ति॥तत्रान्तःस्थो वायुःप्रतानत्वेन हस्तापादाद्यानवयवान्संजनयति ॥ ४१ ॥ त्वङ्मांसकेशरोमास्थिभूभागं जनयेत्तथा ॥ रसं रक्तश्च लालाश्च मूत्रं शुक्रं जलानि च ॥ ४२ ॥ आग्नं पित्तश्च नेत्रश्च तमः क्रोधादिपञ्चकम् ॥ श्रुतिः स्पर्शस्तथोच्छ्वासः स्वेदश्चंक्रमणादि च॥४३॥ वाता ह्येते परिज्ञेया अन्या प्रकृतिरेव च ॥ मनो बुद्धिस्तथा निद्रा आलस्यं मद एव च ॥ ॥ ४४ ॥ शून्यात्पञ्च प्रजायन्ते देहे देहे व्यवस्थिताः ॥ वातरक्तेन त्वग्देहे मांसं त्वगाश्रितं मतम् ॥ ४५ ॥ शुक्रश्लेष्मोद्भवो मेदो रसोऽस्थिरक्तसंभवः ॥ पित्ताश्रितं हृदयस्थं वातरक्तमयं यकृत् ॥ ४६ ॥ रक्तश्लेष्मरसाश्रित उरुः कफरक्तश्लेष्ममयः ॥ प्लीहाकफरक्तमय्यः पेश्यश्च ॥ ४७॥ पञ्चभूतमयं देहमाकाशं शून्यमेव च ॥ शून्याद्वायुः समुत्पन्नो वायोः प्राणः प्रजायते ॥ प्राणांशश्च तथा जातः सर्वसत्त्वे प्रतिष्ठितः॥ ४८॥

और मैथुन समयमें योमिमें माप्त हुए वीर्यको पंच तत्वोंकी अग्नि पकाके कलल कर देती है पीछे उदरमें स्थित हुआ वह कलल बाहिरकी वायुसे बुलबुलेके आकार होजाता है फिर वह कललहोके पांच तत्त्वोंकी अग्निसे पिंड होजाता है पीछे पका हुआ वह पिंड करडा इकठ्ठा होजावे तब उदान वायु पांच तत्त्व हाथ पैर आदिक-शिरआदि अंग इन्होंको उत्पन्न कर देता है और अन्तर हृदयमें स्थित हुआ एकही वायु अनेक स्थानोंके आश्रय होके तिस पिंडको देहके आकर कर देता है उदान वायु तो गळ हृदा इन्होंमें स्थित होके देहमें मुखके द्वारको मकाशित कर देता है और अपानवायु नींचाको स्थितहो गुदाके द्वारको शोध देता है ये सब भीतर रहनेवाले वायु पृथक् पृथक् मार्गमें छिद्र करके निकसते हैं वे ही नव द्वारोंको करते हैं मुख, नासिका, कर्ण, नेत्र, गुदा, लिंग ऐसे ये ९ द्वार वायुसे होते हैं तहां भीतर रहनेवाला वायु विस्तृतहोके हाथ पैरआदिक अंगोंको उत्पन्न कर देता है ॥ ४१ ॥ और त्वचा, मांस, केश, रोम, अस्थि ये पृथ्वी तत्त्वसे उत्पन्न होते हैं रस, रक्त, राल, मूत्र, वीर्य ये जलतत्त्वसे उत्पन्न होते हैं ॥ ४२ ॥ और पित्त, नेत्र, अंधेरा, क्रोध, मोहआदिक पांच ये अग्निसे होते हैं कान, स्पर्श, ऊंचा श्वास, पसीना, चहलकदमी आदि करना ॥४३॥ ये वातसे उत्पन्न होते हैं और मन, बुद्धि, निद्रा, आलस्य, मद ॥ ४४ ॥ ये पांच आकाश तत्त्वसे होते हैं ऐसे सब शरीरोंमें व्यवस्था है और वातरक्तसे शरीरमें त्वचा होती है॥४५॥ और मांस त्वचाके आश्रय कहा है और वीर्य तथा कफसे मेद उत्पन्न होता है और अस्थि

रक्त इन्होंसे रस होता है और हृदामें पित्तका आश्रय है और वातरक्तसे युक्त यकृत् स्थान है ॥ ४६ ॥ और रक्त, कफ, रस इन्होंके आश्रय जांघ है और कफरक्त इन्होंके आश्रय तिल्लीस्थान है और कफरक्तके आश्रय मांसकी पेशी है ॥ ४७ ॥ यह पंच तत्त्वोंका शरीर है तहां आकाश शून्य है शून्यसे वायु उत्पन्न होता है वायुसे प्राण होते हैं फिर प्राणोंके अंशसे संपूर्ण जीवोंमें होनेवाला सत्त्वगुण होता है ॥ ४८ ॥

आकाशाज्जलमुत्पन्नं जलाज्जाता वसुन्धरा ॥ तस्यास्तेजस्तथा जातं तेजसो जायते तमः ॥ ४९ ॥ पञ्चभूतात्मके देहे पञ्चेन्द्रियसमायुते ॥ भूतानाञ्च प्रधानो य आकाशमिति शब्दितः॥५०॥ आकाशात्तेजस्तेजसो दर्पो दर्पात्पराक्रस्तस्मादहङ्कारस्ततः कोपः कोपात्तमस्तमसःपापमिति ॥ आकाशात्सत्त्वं सत्त्वात्सत्यं सत्यात्तपस्तपसो नयो नयाद्विवेको विवेकाच्छान्तिः शान्त्या धर्म इति ॥ सत्त्वाद्रजो रजसः कामः कामाल्लौल्यं लौल्यादसत्यमसत्यात्पापमिति ॥ रसात्कामः कामादभिलाषोऽभिलाषात्प्रजा प्रजाया मैत्री मैत्र्याः स्नेहः स्नेहान्मोहो मोहान्मायाततो भ्रान्तिर्भ्रान्त्या मिथ्या ततोऽविद्या अविद्यायाः पुण्यपापानि पुण्यपापेभ्यः सम्भव इति॥५१॥सत्त्वाच्च तम एव स्याज्जाग्रते स्वपते प्रभुः॥ तमसा प्रवृतो देही व्योमेन शून्यतां गतः ॥ ५२ ॥ देहं विश्रमते यस्मात्तस्मान्निद्रा प्रकीर्त्तिता ॥ नासार्द्धे च भ्रुवोर्मध्ये लीयते चान्तरात्मना ॥ ५३ ॥ तस्माच्चेतो भवेत्तत्र निद्रा व्यालीयते नृणाम् ॥ ५४ ॥ सत्त्वात्तेजः समाख्यातं तेजसा पित्तमेव च ॥ जायते वायुर्मनसः स्वपते तमसा वृतः ॥ ५५ ॥ वायोस्तमःसमायोगात्स्वप्नावस्थेति गीयते ॥ सत्त्वं तमस्तथा वायुर्वर्त्तते चैकयोगतः ॥ ५६ ॥ आहरनिद्राच क्षुधा च तृष्णाभयश्च मात्सर्य्यमदश्च मोहः ॥ क्रोधाभिलाषः सुखतृप्तिशान्तिर्भवन्ति वैदेहभृतां शृणु त्वम् ॥ ५७ ॥ आहारस्येच्छया देहे विचरते हुताशनः ॥ तृप्तिं वापि समाप्नोति रसस्वादरजस्य च ॥ ५८ ॥

यदा यदा शोषयते मलानामग्निस्तदा तृप्तिमिवातनोति ॥ यदा च यस्यैव भवेदतृप्तिस्तदैव तृष्णां प्रतनोति चेतः ॥ ६९ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे शारीरस्थाने शारीराध्यायो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ इति शारीरस्थानं समाप्तम् ॥

और आकाशसे जलतत्त्व होता है तिससे पृथ्वी होती है तिससे अग्नितत्त्व होता है अग्निसे तमोगुण होता है ॥ ४९ ॥ और पंचभूतात्मक तथा पांच इंद्रियोंसे युक्त ऐसे शरीरमें जो तत्त्वोंमें प्रधान है वह अकाश कहाता है ॥ ५० ॥ आकाशसे अग्नि होता है अग्निसे अभिमान होता है तिस्से पराक्रम होता है तिस्से अहंकार अहंकारसे क्रोध होता है तिस्से तमोगुण और तमोगुणसे पाप होता है और आकाशसे सत्त्वगुण तिससे सत्य सत्यसे तप तपसे नीति नीतिसे विवेक विवेकसे शांति शांतिसे धर्म होता है और सत्त्वसे रजोगुण होता है रजोगुणसे कामना कामनासे चंचलपना होता है चंचलपनेसे असत्य और असत्यसे पाप होता है और रससे कामना कामसे अभिलाषा अभिलाषासे प्रजा अर्थात् संतान और प्रजासे मित्रभाव होता है तिस्से स्नेह स्नेहसे माया होती है तिस्से भ्रांति भ्रांतिसे मिथ्या तिस्से अविद्या और अविद्यासे पुण्य तथा पाप दोनों होते हैं फिर पुण्यपापोंसे जन्म होता है ॥ ५१ ॥ सत्त्वगुणसे तमोगुण होता है वह जाग्रत् अवस्था तथा स्वप्न अवस्थामें बलवंत है और तमोगुणसे प्रवृत्त हुआ जीव आकाशके संग शून्यभावको प्राप्त होता है ॥ ५२ ॥ तब देहको विश्रामदेता है तिसको निद्रा कहतेहैं नासिकाका अर्द्धभाग और भ्रुकुटिमध्य तहां अंतरात्मके संग लीन होता है ॥ ५३ ॥ तहां चित्त रहताहै तिस्से मनुष्योंकी निद्रा दूर होती है॥५४॥ और सत्त्वगुणसे तेज तेजसे पित्त होता है और मनसे वायु उत्पन्न होता है और तमोगुणसे युक्त हुआ जीव सोवता है ॥ ५५ ॥ और तमोगुणके योगसे जो वायु होता है वह स्वप्नअवस्था कहाती है और सत्त्वगुण, तमोगुण, वायु ये तीनों स्वप्नअवस्थामें एक योगसे वर्त्तते हैं ॥ ५६ ॥ और आहार, निद्रा, क्षुधा, तृषा, भय, मत्सरपना, मद, मोह, क्रोध, अभिलाष, सुखकी तृप्ति, शांति ये सब देहधारियोंके होते हैं ऐसे तू सुन ॥ ५७ ॥ और देहमें विचरताहुआ अग्नि भोजनकी इच्छा कर देता है ॥ ५८ ॥ और जठराग्नि जब २ मलोंको शोषती है तब तिसकी तृप्ति रहती है और जब तिसकी तृप्ति नहीं होती है तब इसे बांछाको उपजा देती है ॥ ५९ ॥

इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां शारीरस्थाने षष्ठे शारीराध्यायोनाम प्रथमोऽध्यायः॥ १ ॥

अथ परिशिष्टाध्यायः ।



इति प्रोक्तः शरीरार्थस्तद्व्यासेनोपदिश्यते॥श्रुत्वा चैनं महातेजा हारीतो मुनिसत्तमः ॥ १ ॥ प्रणिपत्य गुरुश्रेष्ठं हृष्टान्तःकरणस्ततः ॥ जगाम स्वर्णदीतीरं स्नानध्यानरतस्तथा ॥ २ ॥ य एतत् पठति शास्त्रं महर्षेर्वचनाच्छ्रुतम् ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो नीरुजः सुखमश्नुते ॥ ३ ॥ आदौ यद् ब्रह्मणा प्रोक्तमात्रिणा तदनन्तरम्॥ धन्वन्तरिणा प्रोक्तश्च अश्विना च महात्मना ॥ ४ ॥ एवं वेदसमं ज्ञेयं नावज्ञाकारणं मतम् ॥ अन्यैश्च बहुधा प्रोक्तं नानाशास्त्रविशारदैः ॥ ५ ॥ अमीषां च मतं ग्राह्यं तस्मात् सर्वे समं विदुः ॥ चरकः सुश्रुतश्चैव वाग्भटश्च तथापरः ॥ ६ ॥ मुख्याश्च संहिता वाच्यास्तिस्र एव युगे युगे ॥ ७ ॥ अत्रिः कृतयुगे वैद्यो द्वापरे सुश्रुतो मतः ॥ कलौ वाग्भटनामा च गरिमात्र प्रदृश्यते ॥ ८ ॥ वैष्णवी चाश्विनी गार्गी तत्र माध्याह्निकापरा ॥ मार्कण्डेया च कथिता योगराजेन धीमता ॥ ९ ॥ संहिता ऋषिभिः प्रोक्ता मन्त्रैर्नानाविधैर्विभो ॥ १० ॥ अग्निवेशश्च भेडश्च जातूकर्ण्यः पराशरः ॥ हारीतःक्षीरपाणिश्च षडेते ऋषयस्तु ते॥११॥ यथा सिंहो मृगेन्द्राणां यथानन्तो भुजङ्गमे ॥ देवानाञ्च यथा शम्भुस्तथात्रेयोऽस्ति वैद्यके॥ १२॥ तस्माद्यतेन सद्वैद्यैः सादरार्द्रसुमानसैः ॥ अर्चनीयोऽनुमन्तव्यो दास्यति सुखसम्पदः ॥ ॥ १३ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे परिशिष्टाध्यायः ॥ १ ॥

इति हारीतसंहिता समाप्ता ॥

इस प्रकारसे आत्रेयजीने शरीरकी चिकित्सा विस्तारसे कह दी तब महान् तेजवाला उत्तम हारीत मुनि सुनके ॥ १ ॥ तिस श्रेष्ठ गुरुको प्रणामकर अंतःकरणमें प्रसन्नहो देवताओंकी नदीके तीरपै जा तहां स्नान ध्यानमें रत होता भया ॥ २ ॥ महर्षिके वचनोंसे

कहे हुये इस शास्त्रको जो सुनता है वह सब पापोंसें छुटकें सुखको प्राप्त होता है ॥ ३ ॥ पहले यह शास्त्र ब्रह्माजीने कहा है पीछे अत्रिमुनिने फिर धन्वंतरिने कहा है और अश्विनी-कुमारोंने कहा है ॥ ४ ॥ ऐसे वेदमें युक्तहुआ यह शास्त्र चला आता है निंदित करनेके योग्य नहीं है और अनेक शास्त्रोंको जाननेवाले अन्य बहुतसे ऋषियोंने अनेकप्रकारसें कहा है ॥ ५ ॥ और इन आगे कहेहुए ऋषियोंका मत है इसवास्ते सबको माननेलायक है चरक, सुश्रुत, वाग्भट इत्यादिक ॥ ६ ॥ मुख्य ऋषियोंसें यह संहिता युग २ में कही हुई है ॥ ७ ॥ अत्रिमुनि सतयुगमें वैद्य होते भये द्वापरमें सुश्रुत होते भये और कलियुगमें वाग्भटनामवाला महान् वैद्य दीखता है ॥ ८ ॥ और वैष्णवी, आश्विनी, गार्गी, माध्याह्निका, मार्कंडेया, ये संहिता योगराजने कही हैं ॥ ९ ॥ और आयुर्वेद संहिता ऋषियोंने अनेक प्रकारके मंत्र और औषधोंसे युक्त कर दी है ॥ १० ॥ और अग्निवेश, भेड, जातूकर्ण्य, पराशर, हारीत, क्षीरपाणि, ये छह ऋषि कहे हैं ॥ ११ ॥ और जैसे मृगोंमें सिंह है और सर्पोंमें शेषनाग है देवताओंमें शिवजी हैं तैसेही वैद्योंमें आत्रेयमुनि उत्तम हैं ॥ १२ ॥ इसवास्ते यत्नसे उत्तम वैद्योंने आदरसे सुंदर मनसे अत्रिमुनि पूजन करनेको योग्य हैं और माननेकों योग्य हैं सुख संपत्ति इन्होंको देवेंगे ॥ १३ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायपुत्रवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां परिशिष्टाध्यायः ॥ १ ॥

॥ इति हारीतसंहिता संपूर्णा ॥



क्रय्यपुस्तकें-



नाम.	की. रु. आ.
(वैद्यकग्रंथाः)	
चरकसंहिता-भाषाटीका सहित	८-०
सुश्रुतसंहिता-सान्वय सटिप्पण सपरिशिष्ट भाषाटीका समेत• सम्पूर्ण चारोंभाग...	१२-०
सूत्रस्थान भाषाटीका	३-०
सुश्रुतसंहिता निदान शारीरकस्थान	२-८
" चिकित्सास्थान व कल्पस्थान	३-८
" उत्तरतंत्र समाप्ति	३-८
" केवलशारीरकस्थान	१-०
अष्टांगहृदय (वाग्भट) भाषाटीका समेत	८-०
भावप्रकाश भाषाटीका	८-०
शार्ङ्गधर निदानसह भाषाटीका पं०दत्तराम चौबे मथुरानिवासीका बनाया ...	३-०
माधवनिदान उत्तम भाषाटीका ग्लेज	२-०
" रफू कागज	१-८
रसरत्नाकर भा षीकासमेत समस्त रसादि मारण शोधन आदि	५-०
हारीतसंहिता भाषाटीकासहित	३-०
कामरत्न योगेश्वर नित्यनाथप्रणीत भाषाटीकासमेत	१-१२
कामकौतूहल भाषाटीकासमेत...	०-६
पथ्यापथ्यभाषाटीका	०-१०
चिकित्साखण्ड भाषाटीका प्रथमभाग	४-०
चिकित्साक्रमकल्पवल्ली संस्कृत काशिनाथकृत (भिषग्वरोंके देखनेयोग्य) ...	२-८
अंजननिदान भाषाटीका अन्वयसहित	०-८
हंसराजनिदान भाषाटीका	१-०
चर्य्याचंद्रोदयभाषाटीका (व्यंजनबनानेका)	१-८
योगतरंगिणी भाषाटीका समेत	२-०
राजवल्लभनिघंटु भाषाटीका	१-८
वैद्यकपरिभाषाप्रदीप भा०टी० (वैद्योपयोगीऔषधियोंकी योजनामें तौल, मान और बदला, तथा वर्ग, चूर्णआदिकोंकी योजनाका वर्णन)	०-१२
वैद्यरत्न भा०टी० (सर्वरोगोंकी चिकित्सा उत्तमप्रकारसे वर्णन की है) ...	०-१४

नाम.	की. रु. आ.
वैद्यवल्लभ भाषाटीका (चिकित्सा उत्तम)	०–६
द्रव्यगुणशतक भाषाटीका	०–६
द्रव्यगुण बड़ा भाषाटीका समेत	१–०
वैद्यविनोद भाषाटीका समेत	१–१२
[illegible]रसिंहावलोकन ज्योतिषशास्त्रादिकर्मविपाक चिकित्सा वर्णन	१–१२
[illegible]चिंतामणिभाषाटीका दत्तरामचौबेकृत	१–४
तथा रफ कागजकी	१–०
लोलिंबराजकृत वैद्यजीवन संस्कृतटीका और भाषाटीका	१–०
नाडीदर्पण (नाडी देखनेमें अत्यंत उत्कृष्ट)	०–६
अनुपानदर्पण भाषाटीकासहित	०–१०
बालबोधपाकावली	०–२
कूटमुद्गराख्यसटीक	०–२
कूटमुद्गर भा० टी०	०–३
कालज्ञानभाषाटीका	०–३
वैद्यरहस्यभाषाटीका वैद्योंको परमोपयोगी	२–०
रसमंजरी भाषाटीका (सब प्रकारके रस बनाने और धातु फूंकनेकी क्रिया) ...	०–१४
शरीरपुष्टिविधान भाषाटीका (शरीरपुष्ट करनेकी औषधि अनुपानोंसमेत वर्णित हैं)	०–६
" छोटा गुटका	०–३
पाकप्रदीप वाजीकरण भा० टी०	०–७
आयुर्वेद सुषेण भा० टी० (सुषेणवैद्यकृत)	०–१४
वङ्गसेन–अत्युत्तम भाषाटीका समेत छपकर तयारहै	८–०
कुमारतंत्र (रावणकृत) भाषाटीका समेत	०–८
बालतंत्रभाषाटीका (इसमें बालकोंको डाकिनी शाकिनी छुड़ानेके यंत्र मंत्र तथा पोषण चिकित्सा वन्ध्या यत्न आदि विषय वर्णितहैं यह पुस्तक सभी गृहस्थोंको रखना योग्य है)	१–०
शालिग्रामौषधशब्दसागर–अर्थात् आयुर्वेदीय औषधिकोष	२–०
बोपदेवशतक (वैद्यक) भाषाटीका समेत	०–५
अर्कप्रकाश भाषाटीका रावण कृत (इसमें सब औषधियोंके गुण व अर्क निकालनेकी क्रियाहै)	१–०
ज्ञानभैषज्यमञ्जरी भाषाटीका	०–४
[illegible]पालनिघंटु भा० टी० ...	२–०
[illegible]चिकित्साभाषा	०–६

नाम.	की. रु. आ.
महामारी विवेचन भाषाटीका	०–५
योगशतक भा० टी० सहित	०–४
धन्वंतरीवैद्यक भाषाटीका समेत	५–०

वैद्यक भाषा।

चिकित्साधातुसार भाषा	०–५
रसराजमहोदधिभाषा प्रथमभाग–वैद्यक यूनानी हिकमत और यूनानीदवा और फकीरोंकी जड़ी बूटी और सन्तोंकी पुस्तकोंका संग्रह है	०–१२
रसराजमहोदधि दूसराभाग (उपरोक्त सर्वालंकारों समेत छपकर तय्यार है)...	०–१२
अमृतसागर कोषसहित (हिंदुस्थानी भाषामें) सर्वदेशोपकारक	२–४
रामविनोद वैद्यक भाषा	१–०
डाक्टरी चिकित्सासार भाषा अंगरेजीदेशी वैद्यक भाषा	०–१०
व्यञ्जनप्रकाश (नैमित्तिक भोजनके समस्त पदार्थ अचारादि बनानेकी सुगमता-और गुण)...	०–८
शालिहोत्र नकुलकृत (घोड़ोंके शुभाशुभ लक्षण और उनके रोगोंकी औषधि)	०–८
पशुचिकित्सा अर्थात्–पुष्पकल्पद्रुम छन्दबद्ध (इसमें बैल, गऊ, भैंसोंके शुभाशुभ लक्षण यन्त्र चिकित्सा पहिचान भली भांति लिखी हैं)	१–०
करिकल्पलता (हाथियोंकी पहँचान तथा दवा)	१–४
तिब्बअकबर (हिन्दीभाषा)...	७–०
योगमहोदधि भाषा	०–३
चक्षुरक्षक	०–२

बृहन्निघण्टुरत्नाकर.

सम्पूर्ण आठों भाग की० ३० रु० और पृथक् २ भागभी विकते है.

१–प्रथमभागमें गर्भाशय और यमल गर्भ आदि चित्रों समेत शारीरक और शस्त्रचिकित्सा हिन्दी भाषानुवाद सहित अच्छेप्रकारसे वर्णितहै कीमत ३) रु०

२–द्वितीयभागमें क्षारपाक, प्रतिसारणीय विधि, अग्निकर्म, जलौकावचारण विधि, शोणित वर्णन, दोष–धातु–मल–क्षयवृद्धिज्ञान दोषवर्णन, ऋतुचर्या, दिनचर्या, रात्रिचर्या, विशिखानुप्रवेश, नियमदूतपरीक्षा, शकुन,स्वप्नप्रकाशिका,नाडीदर्पण, फारसी व अँग्रेजीमत ये विषय स्पष्ट निरूपितहैं । कीमत ३) रु०

३ तृतीयभागमें अनेक प्रकारके रोगोंकी प्रशस्त चिकित्साएँ परिपूर्ण रूपसे स्पष्ट वर्णितहैं । कीमत ३॥) रु०